जे संस्कृत नहीं जानते हैं वे पृष्ठ १०से पढ़ें ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि भाषाटीकामें आये हुये संकेतोंकी सूची और अर्थ।



इस ग्रंथके प्रत्येक पृष्ठके ऊपरि भागमें इस मोक्षशास्त्रके सूत्र और संस्कृत वृत्ति रहेगी, मध्य भागके बाईं ओर उपर्युक्त सूत्रका और वृत्तिका पदच्छेद विभक्ति आदि सहित अलग ही लिखा जावगा जिसनेका शब्दशः अर्थ दाहिनी ओरके भागमें आजाय और नीचेके भागमें नाना प्रकारकी टिप्पणियां लिखी जावेंगी ॥

संस्कृतमें कर्ता प्रायः प्रथमा विभक्ति, कर्म द्वितीया विभक्ति, करण तृतीया विभक्ति सम्प्रदान चतुर्थी विभक्ति अपादान पंचमी विभक्ति, संबंध षष्ठी विभक्ति, अधिकरण सप्तमी विभक्ति और सम्बोधन प्रथमा विभक्ति होता है। इनमेंसे प्रथम छहको कारक भी कहते हैं॥ संबंध षष्ठी विभक्तिको कारक नहीं माना है क्योंकि संज्ञा और क्रियामें परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रादुर्भाव नहीं करता है।

संस्कृतमें एकवचन द्विवचन और बहुवचन होते हैं तथा तीन स्त्री पुरुष नपुंसक लिंग होते हैं।

आड़ी (—) लकीरके ऊपरकी संख्या विभक्तिकी और नीचेकी संख्या १, २, ३ यथा क्रमसे एक वचन द्विवचन, बहुवचनकी और ऊपरकी संख्याके दाहिनीओर एक खड़ी लकीर पुल्लिंगकी दो खड़ी रेखा स्त्री लिंगकी और तीन खड़ी लकीरें नपुंसक लिंगकी द्योतक हैं॥ जैसे- $\frac{1^{|}}{1}$ प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंगका संकेत है। $\frac{2^{||}}{2}$—कर्म द्वितीया विभक्ति द्विवचन स्त्रीलिंगका संकेत है। $\frac{3^{|||}}{3}$करण तृतीया विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंगका द्योतक है। $\frac{4^{||}}{3}$चतुर्थी विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगका चिन्ह है। $\frac{5^{|}}{2}$ पंचमी विभक्ति द्विवचन पुल्लिंगका द्योतक है। $\frac{6^{|||}}{1}$षष्ठी विभक्ति एकवचन नपुंसक लिंगका संकेत है। इत्यादि इसी प्रकार और भी जानना चाहिये॥ ३ संबोधनका संकेत है।

शब्दोंके पास निम्न लिखित संकेत नीचे लिखी हुई व्याकरण संबंधी संज्ञाओंके द्योतक हैं॥

* = अव्यय

† = क्रिया

जे संस्कृत नहीं जानते हैं वे पृष्ठ १० से पढ़ें ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि भाषाटीकामें आये हुये संकेतोंकी सूची और अर्थ ।

इस ग्रंथके प्रत्येक पृष्ठके ऊपरि भागमें इस मोक्षशास्त्रके सूत्र और संस्कृत वृत्ति रहेगी, मध्य भागके बाईं ओर उपर्युक्त सूत्रका और वृत्तिका पदच्छेद विभक्ति आदि सहित रचना की लिखा जायगा जिसमेंका शब्दशः अर्थ दाहिनी ओरके भागमें भाजाय और नीचेके भागमें नाना प्रकारकी टिप्पणियां लिखी जावेंगी ॥

संस्कृतमें कर्ता प्रायः प्रथमा विभक्ति, कर्म द्वितीया विभक्ति, करण तृतीया विभक्ति, सम्प्रदान चतुर्थी विभक्ति, अपादान पंचमी विभक्ति संबंध षष्ठी विभक्ति, अधिकरण सप्तमी विभक्ति, और सम्बोधन प्रथमा विभक्ति होता है । इनमेंसे प्रथम छहको कारक भी कहते हैं ॥ संबंध षष्ठी विभक्तिको कारक नहीं माना है क्योंकि सत्ता और क्रियामें परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रादुर्भाव नहीं करता है ।

संस्कृतमें एकवचन द्विवचन और बहुवचन होते हैं तथा स्त्री पुरुष नपुंसक लिंग होते हैं ।

आड़ी (—) लकीरके ऊपरकी संख्या विभक्तिकी और नीचेकी संख्या १, २, ३ यथा क्रमसे एक वचन द्विवचन, बहुवचनकी और ऊपर की संख्याके दाहिनीओर एक खड़ी लकीर पुल्लिंगकी दो खड़ी रेखा स्त्री लिंगकी और तीन खड़ी लकीरें नपुंसक लिंगकी द्योतक हैं ॥ जैसे- १^{I} प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंगका संकेत है। २^{II}—कर्म द्वितीया विभक्ति द्विवचन स्त्रीलिंगका संकेत है । ३^{III}करण तृतीया विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंगका द्योतक है। ४^{II}चतुर्थी विभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगका चिन्ह है। ५^{I} पंचमी विभक्ति द्विवचन पुल्लिंगका द्योतक है। ६^{III}षष्ठी विभक्ति एकवचन नपुंसक लिंगका संकेत है। इत्यादि इसी प्रकार और भी जानना चाहिये ॥ ८ सम्बोधनका संकेत है ।

शब्दोंके पास निम्न लिखित संकेत नीचे लिखी हुई व्याकरण संबंधी संज्ञाओंके द्योतक हैं ॥

* = अव्यय

T = क्रिया

× – मूलह्रस्व

+ – सोपसृष्ट मूलह्रस्व

– हैत्य ह्रस्व

॥ – वर्तमान ह्रस्व

यहाँ पर अष्टाध्यायी व्याकरणके १४ सूत्र और उनसे उत्पन्न हुये प्रत्याहार अर्थसहित लिखते हैं—

(१) अइउण् । इसमें अन्त्य ण्की इत्संज्ञा होनेसे एक 'अण्' प्रत्याहार बनता है।

(२) ऋऌक् । इसमें अन्त्य क् की इत्संज्ञा होनेसे तीन प्रत्याहार अक्–इक्–उक् बनते हैं।

(३) एओङ् । इसमें अन्त्य ङ् की इत्संज्ञा होनेसे एक एङ् प्रत्याहार बनता है।

(४) ऐऔच् । इसमें अन्त्य च् की इत्संज्ञा होनेसे अच्–इच्–एच्–ऐच् ये चार प्रत्याहार बनते हैं।

(५) हयवरट् । इसमें अन्त्य ट् की इत्संज्ञा होनेसे अट् ऐसा एक प्रत्याहार बनता है।

(६) लण् । इसमें अन्त्य ण् की इत्संज्ञा होनेसे तीन प्रत्याहार अण् इण् यण् बनते हैं।

(७) ञमङणनम् । इसमें अन्त्य म् की इत्संज्ञा होनेसे अम् यम् ङम् ञम् ये चार प्रत्याहार बनते हैं।

(८) झभञ् । इसमें अन्त्य ञ् की इत्संज्ञा होनेसे एक यञ् प्रत्याहार बनता है।

(९) घढधष् । इसमें अन्त्य ष् की इत्संज्ञा होनेसे झष् भष् ये दो प्रत्याहार बनते हैं।

(१०) जबगडदश् । इसमें अन्त्य श्की इत्संज्ञा होनेसे अश्–हश्–वश्–झश्–जश्–बश्–प्रत्याहार बनते हैं।

(११) खफछठथचटतव् । इसमें अन्त्य व्की इत्संज्ञा होनेसे एक छव् प्रत्याहार बनता है।

(१२) कपय् । इसमें अन्त्य य्की इत्संज्ञा होनेसे यय्–मय् झय्–खय् ये चार प्रत्याहार बनते हैं।

(१३) शषसर् । इसमें अन्त्य र्की इत्संज्ञा होनेसे यर्–झर्–खर्–चर्–शर् ये पाँच प्रत्याहार बनते हैं।

(१४) हल् । इसमें अन्त्य ल्की इत्संज्ञा होनेसे अल् हल् –वल्–रल्–झल्–शल् ये छह प्रत्याहार बनते हैं

ये चौदह सूत्र अक्षर समाम्नाय कहाते हैं। इनमें आनेवाले केवल ४२ प्रत्याहार हैं।

अनुस्वार–विसर्ग–जिह्वामूलीय–उपध्मानीय उपर्युक्त सूचीमें अन्तर्गत नहीं है।

ह–य–व इत्यादिमें अन्तका अकार उच्चारणके लिये है और अन्तका अमिश्रित या गिरा या हुआ व्यंजन (ण्–क्–ङ् इत्यादि)

प्रादक सूत्रमें हल् संज्ञक है शक्तिहीन वा फलदायक नहीं है। भावार्थ—व्याकरणसंबंधी रूप वाक्य इत्यादि बनानेमें कुछ कार्यकारी नहीं होते हैं॥

प्रत्याहार एक व्याकरणसंबंधी संकेत है जो आदिवर्ण और अन्त्यवर्ण जो इत्संज्ञक है उसके साथ मिलके अपने स्वरूप और मध्यस्थों का वाचक होता है जैसे हल् प्रत्याहारसे सर्वव्यंजनोंसे अभिप्राय है जो पांचवें सूत्रके ह से प्रारम्भ होते हैं और अंतके ल इत्संज्ञकके अनन्तर पूर्ण होते हैं, अर्थात् आदिवर्ण ह अपनी और बीचके अक्षर (अंतके ल् इत्संज्ञक के पूर्व पूर्व) हयवर-ल-ञमङणन-झभ घढध-जबगडद-खफछठथचटत-कप-शषस का वाचक है। हल् प्रत्याहारसे १४वें सूत्रसे अभिप्राय नहीं हो सक्ता क्योंकि उस इसमें ह आदिवर्ण वा है, बीचका कोई भी अक्षर नहीं है॥





नम परमात्मने वीतरागाय ।

पदच्छेदसहित भाषानुवाद ।

ॐ नमः[१] परमात्मने[२] वीतरागाय[३]

=(१) आरम्भमें परमात्मा वीतरागकेलिये नमस्कार हो ।
=(२) मंगलमय ईश्वर वीतरागके लिये प्रणाम हो ।
=(३) ब्रह्म चिदात्मा वीतरागके लिये प्रणति हो ।
=(४) पंचपरमेष्ठी परमब्रह्म रागरहितकेलिये नमस्कार हो ।
(ओम् शब्दके बहुत अर्थ हैं उनमेंसे चार आरम्भ मंगलमय, ब्रह्म, पंचपरमेष्ठी अर्थोंको लेकर अनुवाद किया है)

१। संस्कृत मान्यका नियम है कि ग्रंथकार तथा सूत्रकार भी अपने अपने ग्रंथकी आदिमें एक ऐसा मांगलिक शब्द लाते हैं जो शुभका वाचक हो और उसका कुछ अर्थ और तात्पर्य भी निकलता हो जैसे यह ॐ दिया है। पूज्यपाद स्वामीने "मोक्षमार्गस्य" दिया है। इसीप्रकार श्रीउमास्वामी सूरिने इस तत्त्वार्थमोक्षशास्त्रके प्रथम सूत्रका प्रारम्भ "सम्यग्" शब्द (सम्यक् शब्द) लाकर किया है। श्रीयुत पाणिनिने अष्टाध्यायीके प्रथम सूत्र "वृद्धिरादैच्" में (वृद्धिसंज्ञक आ ऐ औ हैं) वृद्धि पद दिया है। ॐ मोक्ष, सम्यक्, वृद्धि ये चारों शब्द मंगलवाची हैं और जिस जिस शास्त्रमें आये हैं उसके प्रकरण और तात्पर्यसे भी संबंध रखते हैं जैसा कि आगे चलकर ज्ञात होगा। वृद्धिरादैच्का अर्थ ऊपर लिख ही दिया है।

इस शब्दका रूप यथार्थमें आम्–ओम्–ओम्–ॐ ऐसा है। यदि इसके पश्चात् कोई शब्द हो जिसका आरम्भ किसी व्यञ्जनसे हो तो निम्नलिखित व्याकरणोंके सूत्रानुसार म्‌का अनुस्वार हो जाता है जैसे ओं नमः। ओं नमः। ओं नमः। ॐ नमः। ओं तत्सत्। ओं तत्सत्। ओं तत्सत्। ॐ तत्सत्। अनुस्वार होनेका नियम इस प्रकार है–

(१) मोऽनुस्वारः। श्रीअभयनन्दिविरचित जैनेन्द्रव्याकरणकी महावृत्ति। ५। ४। ७ और अष्टाध्यायी ८। ३। २३।

इस सूत्रमें 'पदस्य' की अनुवृत्ति अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद १ सूत्र १६ के (पदस्य) से है और 'हलि' शब्दकी अनुवृत्ति 'हलि सर्वेषाम्'। ८। ३। २२। सूत्रसे ली गई है इसलिये 'मोऽनुस्वारः' (पदस्य। मः। अनुस्वारः। हलि।) का अर्थ, मकारान्त पदको अनुस्वार हो यदि कोई हल् अर्थात् व्यंजन पश्चात्‌में हो तो, यह होता है॥

(२) नुम्मो मं। ५। ४। ११। श्रीगुणनन्दिविरचित जैनेन्द्रप्रक्रिया पृष्ठ १९ तथा शब्दार्णवचन्द्रिका श्रीसोमदेवसूरिविरचिता पृष्ठ २११

इस सूत्रमें 'हलि' ५। ४। १० वें सूत्रसे अनुवृत्ति आती है॥ और सूत्रार्थ—

नुमः। = नुम् (= न्) जो सदैव अपदान्त हो आता है और

मः। मं। = पदान्त मकारको मं अनुस्वार होता है—

हलि। = व्यंजन यदि उक्त न् और म् के पश्चात् आवे तो और यह अनुस्वार एक बिंदी है। मकार उच्चारण या बोलनेके लिये है। जैसे-रन्रम्यते = रंरम्यते अतिशय रमता है। यन्—यम्यते = यंयम्यते = बहुत यम करता है। पापम् हंति = पापं हंति = पापको नाश करता है। मतम् रक्षति = मतं रक्षति = मतको पालता है। धर्मम् शृणोति = धर्मं शृणोति = धर्मको सुनता है।

(३) मम्मो हलि वा। १। १। १११। शाकटायनव्याकरणं।

ममागमस्य।	= मम् आगमका जो सदैव अपदान्त होता है
पदान्तस्य। मः मकारस्य।	= और पदान्त मकारको
परस्यऽनुनासिकोऽनुस्वारः। पर्यायेण।	= परसवर्ण अनुनासिक और अनुस्वार पर्याय अर्थात् विकल्पसे
भवति हलि। परे।	= हो जाते हैं यदि मम् तथा मकारको कोई व्यंजन परे हो। जैसे कम धातुका

कर्मविभपाग चंक्रम्यते चङ्क्रम्यते रूप होते हैं इस शब्दमें च और क के मध्यका म आगम है। त्वम् करोषि = त्वङ्करोषि त्वं करोषि।

इस शब्दका तथा अन्य शब्दोंको जिनके अंतमें पदान्त मकार होता है और जिनके पश्चात् किसी व्यंजनसे प्रारम्भ होनेवाले शब्दका प्रयोग नहीं किया जाता है जैसे केवल ओं–ओं–ओं–ॐ–सम्यग्दर्शनं [सूत्र २ अध्याय १] मोक्षशास्त्रं (सूत्र ४ अ० १) ज्ञानं (सूत्र ९) ऐसा लिखा

देते हैं यह उपर्युक्त वैयाकरणों द्वारा रचित सूत्र द्वारा प्रयुक्त है। इसमें संदेह नहीं है ऐसे रूप कलापव्याकरण अर्थात् कातंत्र रूप माला व्याक रणके निम्नलिखित सूत्रानुसार विकल्पसे शुद्ध समझे जा सकते हैं।

मोऽनुस्वारं व्यंजने ॥

मः । अनुस्वार । व्यंजने । — पदान्तके मकारको अनुस्वार होता है व्यंजनके परे रहते अर्थात् यदि व्यंजन म् के पश्चात् आवे तो यथा त्वम् यासि = त्वं यासि । यहांतक तो कातन्त्ररूपमालाके रचयिताका मत उपर्युक्त तीन वैयाकरणोंसे मिलता है। परंतु

वा विरामे ।

ता० मकारस्य । पदान्तस्य । — अनुस्वारं । भवति । विरामे । — म् जो पदान्त हो उसको विकल्प करि अनुस्वार हो जाता है यदि म् के पश्चात् में विराम हो अर्थात् जो म् के पीछे कोई भी वर्ण या अक्षर न आवे । जैसे देवानाम् = देवानां । रामाणाम् = रामाणां देवम् = देवं ।

हम (अनुवादक) ने विरामकी अवस्थामें सर्वत्र म् को लिखा है । म् को अनुस्वार उसी अवस्थामें किया है जहां मकारके पश्चात् कोई शब्द व्यंजनसे प्रारम्भ हुआ है।

कहीं कहीं पर हमको जैसे पद्मचन्द्र कोषकी आदिमें तथा श्रीमत् श्रीलालचन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायीके आदिमें

" ॐ म् चिदात्मने नमः " ओम् परमात्मने नमः ' वाक्य मिलते हैं अर्थात् आरम्भमें व्यंजनसे आनेवाले शब्दोंके आनेपर भी म् का अनुस्वार नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि संस्कृतमें एक पदमें और धातु उपसर्गोंमें और समास इन तीनों स्थानोंमें सदा संधि होती है। परन्तु वाक्यमें चाहा चाहे तो संधि करे, चाहे न करे । जब हमको संधि करनी होती है तभी पदांत मकारको अनुस्वारमें परिवर्तन करते हैं ॐम् चिदात्मने नमः। ओम् परमात्मने नम" इन दोनों वाक्योंमें हमने संधि नहीं की यदि हम संधि करना चाहें तो ॐ चिदात्मने नमः और ओं परमात्मने नमः" वाक्य होंगे।

इस शब्दके ऊपर अर्द्ध चन्द्राकार चिन्हके लगानेसे यह अभिप्राय है कि म् केवल नासिका द्वारा उच्चारण किया हुआ अक्षर नहीं है क्योंकि इसका उच्चारण नासिका ओष्ठ द्वारा होता है इसी प्रकार ङ् का उच्चारण कंठ नासिका द्वारा, ञ् का तालु नासिका द्वारा ण का मूर्धा नासिका द्वारा न का दंत नासिका द्वारा होता है और उसके स्थानमें यह अनुस्वार हुआ है। शुद्ध वा स्वच्छ अर्थात् अमिश्रित वा निरा निरी नासिका द्वारा बोला जानेवाला अनुनासिक केवल अनुस्वार ही है।

कहीं कहीं पर ओ और म् के मध्यमें ऐसा ३ तीनकासा चिन्ह कर देते हैं अर्थात् ओ३म्–ओ३म्–ओ३म्–ओ३म् लिखते हैं। यह '३ चिन्ह प्रगट करता है कि ओ स्वर प्लुत संज्ञक है क्योंकि स्वर ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञक होते हैं अर्थात् एकमात्रिक—द्विमात्रिक—त्रिमात्रिक—स्वर क्रमसे ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञक हैं। भावार्थ—जिस स्वरके बोलनेमें उ के तुल्य काल लगे उसको ह्रस्व जिसके उच्चारणमें दीर्घ ऊ के समान काल लगे उसको दीर्घ और जिसके बोलनेमें बहुत बड़े या खिंचे हुये ऊ के बराबर समय लगे उस स्वरको प्लुत कहते हैं जैसे मधु भूयते सोम३प्लुत। बहुधा कुक्कुट प्रातः कालमें बोलते हैं उनकी बोलीमें इस ह्रस्व दीर्घ प्लुतका एक अच्छा उदाहरण मिलता है जैसे कु–कू–कू ३। उपर्युक्त चिन्हके लिखनेसे प्रायः तीनकी संख्याका बहुधा पाठकोंको भ्रम हो जाता है इसलिये ओ३म्–ओ३म्–ओ३म्–ओ३म् ३ के स्थानमें कहीं कहीं पर ओम्–ओम्–ओम्–ओम् लिख देते हैं इस ३ चिन्हकी धारणा उच्चारणके समय हृदयमें कर लेते हैं। प्लुत स्वर आने रोने चिल्लाने आदिकमें आता है। हमने कई स्थानोंमें देखा है कि लेखकोंने अज्ञानताके वशमें अथवा प्रमादके वशमें आकर प्लुत ३ चिन्हको ३ समझ कर ओ३म् ऐसा यहां तक अशुद्ध लिखा दिया है। ओ३म् किसी प्रकारसे शुद्ध नहीं है।

इस शब्दको सर्व जैनमतावलम्बियोंने आर्यसमाजियोंने धर्मसमाजियोंने वेदान्तियों आदिकने मंगलीक माना है और ग्रंथकारोंने तथा शास्त्रकारोंने अपनी २ रचनाकी आदिमें इस शब्दका प्रयोग बहुलतासे किया है॥

"ओम्" अव्यय प्रणव। अ उ और म् इन तीनोंसे बना हुआ एक अक्षर। आरम्भ स्वीकार–मानना–इच्छा–मंगल–ब्रह्म–जानने योग्य निकालना (पद्म चन्द्रकोष पृष्ठ ८७)

"स्याद्वोमेयं परमं मतं" ओम्, एवं परमं ये तीन नाम अंगीकारके हैं (अमरकोष वर्ग २४ श्लोक १२)

जैन सम्प्रदायमें यह शब्द पंचपरमेष्ठीका वाचक निम्नलिखित आर्या छन्द माना है॥

अरहंता ।' असरीरा ।' आयरिया ।' तह उवज्झया ।' मुणिणो ।' = अर्हंत अशरीर (सिद्ध) आचार्य उपाध्याय व मुनिके
अर्हन्ता ।' अशरीराः ।' आचार्याः ।' तथा उपाध्यायाः ।' मुनयः ।'
पढमक्खर–णिप्पण्णो ।' ओंकारो ।' पंचपरमेट्ठी ।' = प्रथम अक्षरसे निष्पन्न या सिद्ध हुआ
प्रथम–अक्षर–निष्पन्नः ।' ओंकारः ।' पंचपरमेष्ठी ।' = ओंकार या ओम् सा पंचपरमेष्ठी (का वाचक) है। अर्थात् अर्हंतका आदिका अक्षर 'अ' अशरीरी (सिद्ध) का आदिका अक्षर 'अ' आचार्यका आदिका अक्षर 'आ' उपाध्यायका आदिका अक्षर 'उ' मुनियों (साधुओं) का आदिका अक्षर 'म्' इस प्रकार

...ते है यह उपर्युक्त वैयाकरणों द्वारा रचित सूत्र द्वारा सम्भव है। इसमें संदेह नहीं है ऐसे रूप कलापव्याकरण अर्थात् कातन्त्र रूप माला व्याक... के निम्नलिखित सूत्रानुसार विकल्पसे शुद्ध समझे जा सकते हैं।

मोऽनुस्वारं व्यंजने ॥

म ‡ अनुस्वारं ‡ व्यंजने ‡ —

पदान्तके मकारको अनुस्वार होता है व्यंजनके परे रहते अर्थात् यदि व्यंजन म् के पश्चात् आवे तो यथा त्वम् यासि = त्वं यासि । यहांतक तो कातन्त्रसमासके रचयिताका मत उपर्युक्त तीन वैयाकरणोंसे मिलता है। परंतु

वा विरामे ॥

वा‡ मकारस्य ‡ पदान्तस्य ‡ —
अनुस्वारं ‡ भवति ‡ विरामे ‡ —

म् जो पदान्त हो उसको विकल्प करि अनुस्वार हो जाता है यदि म् के पश्चात्‌में विराम हो अर्थात् जो म् के पीछे कोई भी वर्ण या अक्षर न आवे । जैसे देवानाम् = देवानां । रामाणाम् = रामाणां देवम् = देवं ।

इस (मनुव्यवक) ने विरामकी अवस्थामें सर्वत्र म् को लिखा है । म् का अनुस्वार उसी अवस्थामें किया है जहां मकारके पश्चात् कोई शब्द व्यंजनसे प्रारम्भ हुआ है।

कहीं कहीं पर हमको जैसे पदच्छन्द कोषकी भांतिमें तथा ओमस्त् घोषपत्र अनुवादित अष्टाध्यायीके आदिमें

"ॐ म् चिदात्मने नमः" "ओम् परमात्मने नमः" वाक्य मिलते हैं अर्थात् आरम्भमें व्यंजनसे आनेवाले शब्दोंके जानेपर भी म् का अनुस्वार नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि संस्कृतमें एक पदमें और धातु उपसर्गोंमें और समास इन तीनों स्थानोंमें सदा संधि होती है। परन्तु वाक्यमें चाहे चाहे तो संधि करे, चाहे न करे । जब हमको संधि करनी होती है तभी पदांत मकारको अनुस्वारमें परिवर्तन करते हैं ॐम् चिदात्मने नमः। ओम् परमात्मने नमः इन दोनों वाक्योंमें हमने संधि नहीं की यदि हम संधि करना चाहें तो ॐ चिदात्मने नमः और ओं परमात्मने नमः वाक्य होंगे।

इस शब्दके ऊपर अर्द्ध चन्द्राकार चिन्हके लगानेसे यह अभिप्राय है कि म् केवल नासिका द्वारा उच्चारण किया हुआ अक्षर नहीं है क्योंकि इसका उच्चारण नासिका ओष्ठ द्वारा होता है इसी प्रकार ङ् का उच्चारण कंठ नासिका द्वारा, ञ् का तालु नासिका द्वारा ण का मूर्धा नासिका द्वारा, न का दंत नासिका द्वारा होता है और उसके स्थानमें यह अनुस्वार हुआ है। शुद्ध वा स्वच्छ अर्थात् अमिश्रित वा निरामिश्री नासिका द्वारा बोला जानेवाला अनुनासिक केवल अनुस्वार ही है।

कहीं कहीं पर ओ और म् के मध्यमें ऐसा ३ तीनकासा चिन्ह कर देते हैं अर्थात् ओ३म्-ओ३म्-ओ३म्-ॐ३म् लिखते हैं। यह '३ चिन्ह प्रगट करता है कि ओ स्वर प्लुत संज्ञक है क्योंकि स्वर ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञक होते हैं अर्थात् एकमात्रिक—द्विमात्रिक—त्रिमात्रिक—स्वर क्रमसे ह्रस्व दीर्घ और प्लुत संज्ञक हैं। भावार्थ—जिस स्वरके बोलनेमें उ के तुल्य काल लगे उसको ह्रस्व जिसके उच्चारणमें दीर्घ ऊ के समान काल लगे उसको दीर्घ और जिसके बोलनेमें बहुत बड़े या खिंचे हुये ऊ के बराबर समय लगे उस स्वरको प्लुत कहते हैं जैसे मधु भूपते सोम३सुत। बहुधा कुक्कुट प्रातः कालमें बोलते हैं उनकी बोलीमें इस ह्रस्व दीर्घ प्लुतका एक अच्छा उदाहरण मिलता है जैसे कु-कू-कू ३॥ उपर्युक्त चिन्हके लिखनेसे प्रायः तीनकी गणनाका बहुधा पाठकोंको भ्रम हो जाता है इसलिये ओ३म्-ओ३म्-ओ३म्-ॐ ३ के स्थानमें कहीं कहीं पर ओम्-ओम्-ओम्-ॐम् लिख देते हैं इस ३ चिन्हकी धारणा उच्चारणके समय हृदयमें कर लेते हैं। प्लुत स्वर, गाने रोने चिल्लाने आदिकमें बोला जाता है। हमने कई स्थानोंमें देखा है कि लेखकोंने अज्ञानताके वशमें अथवा प्रमादके वशमें आकर प्लुत ३ चिन्हको ३ समझ कर ओम् ऐसा यहां तक अशुद्ध लिखा दिया है। ओम् किसी प्रकारसे शुद्ध नहीं है।

इस शब्दको सर्व जैनमतावलम्बियोंने आर्यसमाजियोंने धर्मसमाजियोंने वेदान्तियों आदिकने मंगलीक माना है और ग्रंथकारोंने तथा शास्त्रकारोंने अपनी २ रचनाकी आदिमें इस शब्दका प्रयोग बहुलतासे किया है॥

"ओम्" अव्यय प्रणव। अ उ और म् इन तीनोंसे बना हुआ एक अक्षर। आरम्भ स्वीकार-मानना-हामी-मंगल-ब्रह्म-जानने योग्य निकालना (पद्म चन्द्रकोष पृष्ठ ८७)

"स्यादोमेवं परमं मते" ओम् एवं परमं ये तीन नाम अंगीकारके हैं (अमरकोश वर्ग २४ श्लोक १२)

जैन सम्प्रदायमें यह शब्द पंचपरमेष्ठीका वाचक निम्नलिखित आर्या छंद आया है॥

अरहंता ¹। असरीरा ²। आयरिया ³। तह उवज्झया ⁴। मुणिणो ⁵। — अर्हंत अशरीर (सिद्ध) आचार्य उपाध्याय व मुनिके
अर्हन्ता ¹। अशरीराः ²। आचार्याः ³। तथा उपाध्यायाः ⁴। मुनयः ⁵।
पढमक्खर-णिप्पण्णो ¹। ओंकारो ²। पंचपरमेट्ठी ³। — प्रथम अक्षरसे निष्पन्न या सिद्ध हुआ
प्रथम-अक्षर-निष्पन्नः ¹। ओंकारः ²। पंचपरमेष्ठी ³। — ओंकार या ओम् सा पंचपरमेष्ठी (का वाचक) है। अर्थात् अर्हंतका आदिका अक्षर 'अ' अशरीरी (सिद्ध) का आदिका अक्षर 'अ' आचार्यका आदिका अक्षर 'आ' उपाध्यायका आदिका अक्षर 'उ' मुनियों (साधुओं) का आदिका अक्षर 'म्' इस प्रकार

अ+अ+आ+उ+म्+ये पाँच अक्षरोंमें से आदिके अक्षर अ+अ = मिलकर 'आ' हो जाते हैं क्योंकि जब ए-ऐ-ओ औके अतिरिक्त किसी ह्रस्व या दीर्घ स्वरके पश्चात् वही स्वर ह्रस्व या दीर्घ आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें वही स्वर दीर्घ अकः सवर्णे (अचि) दीर्घः। पाणि० ६-१-१०१। सूत्रसे हो जाता है। अ+अ+आ+उ+म्=आ+आ+उ+म् हो गये। अब आ+आ+ दोनों मिलकर पूर्वोक्त सूत्रसे ही एक आ हो गये। यदि अ-आके पश्चात् इ-उ-ऋ-लृ (ह्रस्व या दीर्घ) आवें तो दोनों स्वरोंके स्थानमें (एक अनुकूल) गुण हो जाता है॥ इसलिये—आ+उ+म्=मिला कर ओम्=हो गये इसलिये ओम् शब्द पाँच परमेष्ठीका वाचक हुआ।

ओम् शब्द अव्यय है अर्थात्

सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु = तीनों लिंगोंमें और [च] सर्व विभक्तियोंमें समान रहे।

वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् = और समस्त वचनोंमें जो विकारको प्राप्त न हो वह अव्यय है।

स्मरण रहे कि ॐम् अव्यय [जिसका उच्चारण ओम् है] वही अव्यय नहीं है जो उम् है। उम् एक न्यारा और भिन्न अव्यय है जिसका अर्थ कोपसे रोकना और मत निंदा है"। देखो पद्मचंद्र कोष पृष्ठ ८१॥ इन तीनों अर्थोंमेंसे ओम् किसी भी एक अर्थमें नहीं आता है॥ उम् और ॐम् का उच्चारण भी भिन्न २ है।

२। नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधा, अलम्, वषट्, हित, सुख इनके अर्थसे जिस शब्दका योग हो उससे चतुर्थी विभक्ति होती है।

(१) नमः जैसे ओं नमः परमात्मने ३१ वीतरागाय ३१ गुरवे ३१ नमः। नमः श्रीवर्धमानाय (वर्धमानके लिये नमस्कार है) यदि नमस् शब्दके साथ क्रियाका योग हो तो विकल्पसे चतुर्थी होती है जैसे गुरवे३१ नमस्कृत्य = गुरुके लिये प्रणाम करके अथवा गुरुं २ नमस्कृत्य = गुरुको प्रणाम करके।

(२) स्वस्ति जैसे राज्ञे स्वस्ति = राजाके लिये मंगल या कल्याण हो। तुभ्यं स्वस्ति = तुम्हारे लिये कल्याण या मंगल वा—क्षेम हो।

(३) स्वाहा = जैसे अग्नये स्वाहा-आगके लिये अर्पण हो। अग्नये ३१ वायवे ३१ वरुणाय ३१ इन्द्राय ३१ प्रजापतये ३१ सूर्याय ३१ चन्द्रमसे ३१

अथ श्रीमत्पूज्यपादाचार्यविरचिता सर्वार्थसिद्धि प्रारभ्यते।

अथ श्रीमत्-पूज्यपाद-आचार्यविरचिता १।११	=अब (अथ) श्रीमान् पूज्यपाद आचार्यकृत
सर्वार्थसिद्धि. १।११	=सर्वार्थसिद्धि अर्थात् उमास्वामिविरचित तत्त्वार्थसूत्र पर संस्कृतवृत्ति
प्रारभ्यते ॥ ॥ प्रथम १।१ अध्यायः १।१	=प्रारम्भ की जाती है। पहिला या आदि पर्व ॥

वा स्वाहा=आगके लिये, पवनके लिये, वरुण देवताके लिये इन्द्रके लिये, विश्वकर्माके (प्रजापति) के लिये भानुके लिये, सर्वके लिये, अर्पण हो।

(४) स्वधा—जैसे-पित्रे ४।१ स्वधा=पिताकेलिये अर्पण हो-प्रदान हो। पितृभ्यः ४।१ स्वधा=पितरोंकेलिये अर्थात् बाप-दादा-परदादा इत्यादि बड़े पुरुषोंके लिये अर्पण हो।

(५) अलम्—जैसे अलं मल्लोऽयम् मल्लाय ४।१ यह मल्ल दूसरे मल्लके लिये बहुत है। अलं अयम् एकम् सूत्राय ४।११—यह इस सूत्रके लिये बहुत है। अलं जलं पिपासायै ४।११—जल प्यासके लिये बस है बहुत है। कृष्णः दैत्येभ्यः ४।१ अलम्—कृष्णजी असुरोंके लिये समर्थ हैं।

(६) वषट्—जैसे इन्द्राय ४।१ वषट्=इन्द्रके लिये पूजा या सत्कार हो। शिखायै ४।११ वषट्=आगकी ज्वालाकेलिये सत्कार या सन्मान हो।

(७) हित—जैसे साधुभ्यः ४।१ हितम्=साधुओंके लिये हितकारी है।

(८) सुख—जैसे सज्जनेभ्यः सुखम्=सज्जनोंके लिये सुखकारी है।

१। श्रीमत् (सम्पत् शोभायुक्त) एक प्रकारकी उपाधि है जो प्रतिष्ठा आदर या सन्मानके लिये व्यक्तिवाचक नामके प्रथम लाते हैं तथा बोलते हैं। २। पूज्यपाद— पूज्यपादस्वामी नन्दिसंघके आचार्य थे। देवनन्दि और जिनेन्द्रबुद्धि ये दो नाम भी इन्हींके हैं। गणरत्नमहोदधिके कर्त्ताने आपका नाम चन्द्रगोमि भी बतलाया है। विक्रम संवत् ३०८ जेठ सुदी १० को आपका जन्म हुआ था ऐसा पट्टावलियोंसे प्रतीत होता है। जैनाभिषेक, समाधिशतक, चिकित्साशास्त्र और जैनेन्द्रव्याकरण आदि ग्रंथ भी आपके बनाये हुए हैं" ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रकी उत्थानिका पृष्ठ २। साल सार्थ अथवा ये भद् परवारोंमें बहुत पुराने समयमें हुए जान पड़ते हैं। क्योंकि विक्रम संवत् १४० में

प्रथमोऽध्याय ॥

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।

जो नंदिसंघके पट्टपर जिनचन्द्र नामके आचार्य हुए हैं वे पौरवाल परवार थे और संवत् १५८ में जो पूज्यपाद आचार्य हुए हैं वे पद्मावती पुरवार थे ऐसा पट्टावलियोंमें लिखा हुआ मिलता है। जैनहितैषी छठा भाग अंक ११-१२ पृष्ठ ४५। ऐसा जान पड़ता है कि पूज्यपाद स्वामीका अस्तित्व २५८ विक्रम संवत्में था परंतु जन्म संवत् २०८ जेठ सुदी १० का हुआ था। "सिद्धिप्रिय पञ्चवास्तुक आदि कई ग्रंथ भी पूज्यपादके बनाये हुए प्रसिद्ध हैं परन्तु बहुत करके ये दूसरे पूज्यपाद भट्टारकके बनाये हुये हैं।' जैनहितैषी छठा भाग पृष्ठ ४३ अंक ५-६ "पूज्यपाद द्वितीयकृत-पूजाक्रम सिद्धप्रिय पाणिनीयसूत्रवृत्ति काशिका (श्लो० १००) जैनेन्द्रपंचाध्यायीकी टीका पञ्चवास्तुक श्रावकाचार, वैद्यक जैनेन्द्र व्याकरणकी लघुटीका ॥-- इस बातको तो अन्य धर्मके विद्वान भी मानते हैं कि काशिकाका कर्ता कोई जैनी है" जैनहितैषी (मासिक पत्र) भाग ५ अंक ५-६ का पृष्ठ ४१।

१। जब ए अथवा ओ अक्षर पदके अन्तमें हो पश्चात् इस पदान्त ए अथवा ओके अकार (अ) आवे तो यह अ, ए अथवा ओमें समा जाता है या अन्तर्गत हो जाता है अर्थात् न तो यह अकार बोला ही जाता है और न लिखा ही जाता है। इस अके स्थानमें बहुधा ऽ ऐसा चिन्ह कर दिया जाता है जैसे कि (१) मुने+अत्र मुनेत्र या मुनेऽत्र (२) ते+अत्र=तेत्र या तेऽत्र (३) प्रथमोऽध्यायः वाक्योंसे प्रगट है। इस चिन्ह ऽ को अर्ध अकार कहते हैं।

२ यह श्लोक मंगलाचरणरूप श्रीमत्पूज्यपादकृत है। श्रीउमास्वामिसूरि कृत तत्त्वार्थसूत्रका भाग नहीं है। इसके संबंधमें प० जयचन्द्रजीने लिखा है कि "तहां प्रथमही सर्वार्थसिद्धिटीकाकार मंगल अर्थि आसका असाधारण विशेषणरूप श्लोक रच्या है, सो लिखिये हैं। "मोक्ष मार्गस्य नेतारं इत्यादि"। अधिकतर प्रतियोंमें यह तत्त्वार्थसूत्र 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। इस सूत्र ही करि प्रारम्भ किया है परंतु कुछ प्रतियां ऐसी हैं जिनसे यह झलकता है कि उपर्युक्त श्लोक भी सूत्रकारने रचा है सो यह भूल है क्योंकि भाष्यकारोंकी यह प्रथा है कि प्रथम वे मंगलाचरण लिखते हैं जैसे कि श्रीमदकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिककी आदिमें "प्रणम्य सर्वविज्ञान" इत्यादि और श्री मद्विद्यानंदिस्वामीने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिककी आदिमें 'श्रीवर्धमानमाध्याय' इत्यादि ऐसे भिन्न भिन्न दो श्लोक मंगलाचरणरूप रचे हैं। समाप्य

ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां

मोक्षमार्गस्य ४ नेतारम् २	=मोक्षपथके प्रवर्तावनवालेको या चलानेहारेको
भेत्तारम् ४ कर्मभूभृताम् ६	=कर्मरूपी पर्वतोंके भेदनेवालेको अथवा विनाश करनेवालेको

तत्त्वार्थाधिगमसूत्रके रचयिताने भी 'सम्यग्दर्शनशुद्धं' इत्यादि आर्याछंद मंगल रूपमें दिया है। इसही प्रकार पूज्यपाद स्वामीने भी 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' इत्यादि दिया है। यदि हम इसका उमास्वामिकृत श्लोक मान लें तो पूज्यपाद स्वामीका मंगलाचरण कहां है वह कौनसा श्लोक है? मूल सूत्रकार सबसे ही ग्रन्थका आरंभ करते हैं और सूत्रकी आदिमें ही एक दो शब्दका ऐसा प्रयोग करते हैं कि वह शब्द मंगलाचरणको भी पूर्ण करता है और साथहीमें प्रकरण और विषयके अभिप्राय व अर्थसे भी संबंध रखता है जैसे कि हम इस ग्रन्थकी आदिमें लिख चुके हैं।

१। नेतारं—यह शब्द 'नीञ्' भ्वादि प्रथमगणकी धातुमें तृच् प्रत्यय आनेसे और नी का गुण करदेनेसे बनता है जैसे नी+तृच्=ने+तृच् (नीका गुण करदेनेसे) इस रूपमें च् इत्संज्ञक है अर्थात् च् का लोप हो जाता है और नेतृ शेष रह जाता है। नेतृ=प्रवर्तावनवाला—चलानेवाला बतानेवाला।

२। भेत्तारं—यह शब्द भिद् रुधादि सप्तमगण उभयपदी धातु (परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी) से सकर्मकमें तृच् प्रत्यय लगानेसे और भिद्की इकारका गुण (ए) करदेनेसे बना है। भिद्+तृच् गुणसंज्ञा करनेसे = भेद्+तृच् हुआ। अष्टाध्यायीके ८।४।५५ खरि च (खरि झलां चरः स्युः—अर्थ खर् पश्चात्में हो तब झलोंको चर् हो।

(अर्थात् जब ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त् क्-प्-श्-ष्-स् परे हों तब झ्-भ्-घ्-ढ्-ध्-ज्-ब्-ग्-ड्-द्-ख्-फ्-छ्-ठ्-थ्-च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स्-ह्-को च्-ट्-त्-क्-प्-श्-ष्-स् हों) सूत्र द्वारा भेद्के द् का त् होकर भेत्तृच् रूप हुआ। च् का इत्संज्ञक होनेके हेतुसे लोप प्राप्त हुआ तब भेत्तृ ऐसा रूप भेदनेवालेके अर्थमें हुआ।

३। ज्ञातारं—यह शब्द ज्ञा (=जानना—समझना) क्र्यादि नवमगणके परस्मैपद सकर्मक धातुमें तृच् प्रत्यय लगानेसे ज्ञा+तृच् ऐसा रूप बना। च् इत्संज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त हुआ इसलिये ज्ञातृ जाननेवालेके अर्थमें बन गया है।

नेतारं भेत्तारं-ज्ञातारं—ये तीनों शब्द कर्म—द्वितीया विभक्ति एक वचन पुल्लिङ्गमें हैं। द्वितीया विभक्ति इसप्रकारसे बनती है कि ऋकारान्त

ज्ञातारं। विश्वतत्त्वानां॥[111] = संसार (विश्व) के अथवा समस्त (विश्व) तत्त्वोंके जाननेवाले हो,

पुंलिंग शब्दके ऋकी वृद्धि होजाती है अर्थात् ऋकार आर्में पलट जाता है। उसके पश्चात् अम् द्वितीया विभक्तिका प्रत्यय आनेसे नेतार् + अम्। भेत्तार् + अम्। ज्ञातार् + अम् रूप हुये = नेतारम्-भेत्तारम्-ज्ञातारम् = नेतारं-भेत्तारं ज्ञातारं क्योंकि इन प्रत्येकके पीछे व्यञ्जनसे आरम्भ होनेवाले शब्द (श्लोकमें) भेत्तारं कर्म और विश्व क्रमसे हैं। केवल भेत्तारमें दुहरा तकार है इसलिये नेतारं या ज्ञातारंमें दुहरा तकार बोलना अथवा लिखना अशुद्ध है।

१। तत्त्वानां-तत्वानां—ये दोनों प्रकारके पाठ प्रायः मिलते हैं। तत्त्व और तत्वमें कुछ भेद नहीं है।

(१) तत्त्व-तद्–" (त्रि०) तन्+अदि। पहिले कहा हुआ। बुद्धिमें ठहरा हुआ। दूरका विषय। ब्रह्म।" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १६५ तन् प्रथम स्वादिगण आठम तनादिगण और दशम चुरादिगणका धातु अर्थात् करना उपकार करना फैलाना इत्यादि अर्थोंमें आता है। तन्+अदि से व्याकरणके नियमानुसार तद् बन गया 'तद्' ऐसा सर्वनाम सदा है (-तदिति सर्वनामपदम्)। और सर्वनाम संज्ञा समानता या सामान्यमें प्रवर्तती है (सर्वनाम च सामान्ये वर्तते) तिस (तद्) का भाव सो तत्त्व है (-तस्य भावः तत्त्वम्)" सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २। तद्+त्व उपर्युक्त 'त्वादि च सूत्रात् -तत्+त्व-तत्त्व होता है। इस तद्-तत् में [illegible] प्रत्यय भाव अर्थमें आया है। तत्त्व अमरकोषमें यथार्थ सार सत्यार्थ इत्यादि अर्थोंमें है॥

(२) "तत्त्व (न) तन्+क्विप्। तता भावः। तस्य भावः। त्वथा तलोपः। सत्यार्थ-स्वरूप" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ १६५। अब श्रीपूज्यपादकृत जैनेन्द्र-व्याकरणके ४-३-१७ वें सूत्र [पिति कृति तुक्—ह्रस्वस्य तुगागमो भवति पिति कृति परतः अर्थात् ह्रस्व (अ) अंतमें जिसके हो उसको तुक (=त्) का आगम होता है यदि उस ह्रस्वांतके पश्चात् ऐसा कृत् प्रत्यय आवे जिस प्रत्ययके अंतमें प् हो। यहां पर क्विप् ऐसा [illegible] प्रत्यय है जिसके अंतमें प् है। क्विप् प्रत्यय साराही उड़ जाता है॥] द्वारा तन्+क्विप्=तन्+तुक=तत्पश्चात् पद्मचन्द्रकोषमें लिखा है तता भावः। तस्य भावः। इसलिये त्व—ता दो प्रत्यय भाववाचकोंमेंसे ता स्त्रीलिंग प्रत्ययको छोड़कर त्व लगानेसे तत्त्व बना। पुनः उसी कोषमें लिखा है त्व या तकारः विकल्पकरि त्वके तका लोप हो गया और तत्व शब्द रह गया॥ हमारी समझमें नहीं आया कि किस नियमसे त्वका लोप हो गया॥ अंगरेज विद्वान् मानीयर विलियम महाशयने अपने संस्कृत कोष पृष्ठ २६५ में तत्त्व शब्द लिखनेके पश्चात् तत्व शब्द लिखा

वन्दे तद्गुणलब्धये ॥ १ ॥

वन्दे[1] तद्गुणलब्धये[2] = उन्हीं (मोक्षमार्गप्रणयन–कर्मभेदन–विश्वतत्त्वज्ञान) गुणोंकी प्राप्तिकेलिये प्रणाम करता हूं या वन्दना करता हूं अर्थात् मैं पूज्यपाद आचार्य इस सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका रचयिता उक्त तीनों गुणोंके उपार्जनके लिये उसको जो मोक्षमार्गका नेता है, जो कर्मोंका विनाशक है, जो जड चेतन सर्व वस्तुओंका युगपत् एक समयमें ज्ञाता है, नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

है और यह मत प्रगट किया है कि तत्त्व शब्दके स्थानमें तत्त्व शब्द अक्षर ईप्सत् या कुछेक शुद्ध रूप थे, कुछ भी हो प्रमादवश या असावधानीसे या सुगमताके हेतुसे तत्त्व शब्द इस वृत्तिमें तथा अन्य अन्य कोश व शास्त्रोंमें पचासों स्थानों लिखा है। इसलिये तत्त्व तरह दोनों पक्ष हैं।

१। कहीं कहीं पर वंदे और कहीं कहीं वन्दे शब्द पुस्तकोंमें आया है उनमें वंदे अशुद्ध है। (देखो अष्टाध्यायी ८।३।२४ ८।४।५८ और ८।४।७१ वें सूत्र।

२। लब्धि शब्द स्त्रीलिङ्ग है। अव्यय चतुर्थी (सम्प्रदान) विभक्तिका एक वचन है इसका रूप ऐसे बना है कि ए चतुर्थीका चिन्ह है इ अथवा ई का गुण ए है, उ अथवा ऊ का गुण ओ है ऋ का = अर् है लृ का अल् है। स्त्रीलिंग संज्ञाके अतके इ या उ चतुर्थी (सम्प्रदान) पंचमी (अपादान) और षष्ठी (संबंध) विभक्तियोंके प्रत्ययोंके पहिले अपनी अपनी गुण संज्ञामें पलट जाते हैं इसलिये लब्धिका लब्धे हो जाता है। ए चतुर्थीका चिन्ह आइनेसे लब्धे+ए हुआ। संस्कृतमें दो स्वर बिना मिले हुये प्रायः नहीं रह सके हैं। वर्तमान दशामें जो नियम लागू है वह यह है कि पहिले आये हुये ए ऐ ओ औ का यथासंख्य [=क्रमसे] परिवर्तन अय् आय्, अव्, आव्में हो जाता है तब पश्चात्का स्वर जोड़ देते हैं जैसे लब्धेकी ए का अय् होकर लब्धय् हो गया पश्चात् ए जोड़नेसे (जो चतुर्थीका चिन्ह है) लब्धय्+ए हुआ अर्थात् लब्धये हो गया। संक्षेपतः ए ऐ ओ औ का क्रमसे अय् आय् अव् आव् हो जाता है यदि इनके पीछे कोई स्वर आवे तो, एचोऽयवायावः अष्टाध्यायी ६।१।७८ वां सूत्र।

कश्चिद्भव्य प्रत्यासन्ननिष्ठः प्रज्ञावान् स्वहितमुपलिप्सुर्विविक्ते परमरम्ये भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे क्वचि-दाश्रमपदे मुनिपरिषन्मध्ये सन्निषण्णं मूर्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं

कश्चित् भव्य १। प्रत्यासन्ननिष्ठः १।	= कोई भव्य अत्यन्त निकट है सिद्धि जिसके
प्रज्ञावान् १। स्वहितम् २। उपलिप्सुः १। विविक्ते ७।१।१	= बुद्धिमान् अपने हितको इच्छुक निर्जन
परमरम्ये ७।१।१ भव्यसत्त्वविश्रामास्पदे ७।१।१ क्वचित्	= अत्यन्त सुन्दर भले जीवोंके विराम (=विश्राम) स्थानमें (=आस्पदे) किसी (=क्वचित्)
आश्रमपदे ७।१।१ मुनिपरिषन्मध्ये ७।१।१ सन्निषण्णं २।	= आश्रम स्थानमें (=पदे) मुनियोंकी सभामें बैठे हुवे
अवाग्विसर्गं २।१।१	= वचन (=वाग्) दान (=विसर्ग) रहित (=अ) अर्थात् विना ही वचनके

१ चित् अथवा अपि इन दो अव्ययोंका यदि किम्‌के सर्व लिंगोंके साथ जोड़ दें तो वह [अर्थात् जुड़ा हुआ] वाक्य अनिश्चित अर्थ का वाचक होगा जैसे किंचित् = कुछ वस्तु अथवा कोई पदार्थ, कश्चित् [= कः १। चित्] कोई पुरुष अथवा कोई जन। देखो भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १२१।

२ भव्यः—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामेन भविष्यति इति भव्यः = सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र भावकरि, जो होगा अथवा परिणमेगा सो भव्य है [राजवार्तिक पृष्ठ ७०]

३ क्वचित्—क्व—क्वचन—क्वचित्—ये तीनों अव्यय कहीं अर्थमें आते हैं (पद्यचन्द्रकोष पृष्ठ १२०)

४ पद्यार्थमें यह शब्द वाच् स्त्रीलिंगी वाक्य वचन वाणी कहना आदि अर्थोंमें आता है और वाचा शब्द भी स्त्रीलिंगी है और इसी अर्थमें आता है [देखो पद्यचन्द्रकोष पृष्ठ ३५२]

वाच्‌का चकार ए में कैसे पलट गया? वा॰ क्रु [झलि पदान्ते] अष्टा॰ ८-२-३०। जैनेन्द्रव्याकरण ५।३।६५वां सूत्र। च्-छ्-ज्-झ्-श (चु) के स्थानमें क्रमसे क्-ख्-ग्-घ् क्- = कु) हों यदि झल् प्रत्याहार परभागमें हो वा पदान्तमें च्-छ् ज्--झ् श हो इसलिये वाच्‌के पदान्त चकारका क होकर वाक् होगया।

वपुषा निरूपयन्त युक्त्यागमकुशल

वपुषा १ ११	=अच्छे स्वरूप [=वपुषा] या प्रशस्ताकारकरि (=वपुषा।) अर्थात् अपने शरीरहीकी शांत मुद्राकरि
मूर्तम् ३। इव मोक्षमार्गम् २। निरूपयन्तं ३। युक्ति—आगम—कुशलम् ३।	=मानो मूर्तिक मोक्षमार्गको निरूपण करते, युक्ति तथा आगममें प्रवीण

स् का परिवर्तन षृमें हो जानेका यह नियम है कि जब किसी शब्दके अन्तका व्यंजन (ङ्-ञ्-ण्-न्-म् व्यंजनोंको छोड़कर) दूसरे शब्दके प्रथम घोष व्यंजन (=ग्—घ्—ङ् । ज—झ्—ञ् । ड्—ढ्—ण् । द्—ध्—न् । ब्—भ्—म् । य्—र्—ल व्—ह्) या प्रथम स्वरके साथ संधित या समासित किया जावे तो यह अन्तका व्यंजन अपने वर्गके तीसरे व्यंजनमें परिवर्तित हो जाता है अतः अपाक्+विसर्गका अपाग्+विसर्ग हो गया । क्रियाविशेषण सदा नपुंसकलिंग एक वचन होता है इसलिये यहां अपाग्विसर्ग निरूपय क्रियाका विशेषण होनेसे नपुंसक लिंग एवं एक वचन होगया है ।

इसी प्रकार भगवत्+आगच्छतिका भगवद्=आगच्छति=भगवदागच्छति होगया (मा० मार्गोपदेशिका पृष्ठ ८८) ।

१। वपुषा—वपुस् नपुंसक लिंगी शब्द प्रशस्ताकार या अच्छे स्वरूपके अर्थमें है । (पद्म० का० पृ० ३२६) यहां पर शांत मुद्रारूप शरीर इस तात्पर्यमें लिया है। वपुस्में आङ् (=आ) तृतीयावचन विभक्तिका चिन्ह लगाकर और स् को निम्नलिखित नियमसे ष् में पलट कर वपुषा बना लिया है॥

जब स् जो कि अरादान्त हो और जो आदेश अथवा अव्ययका अंश या टुकड़ा हो, अ—आको छोड़कर किसी स्वरके पीछे आवे, य्—र्—ल—व् के पश्चात् आवे, क—ख्—ग्—घ्-ङ् के परे आवे, अथवा ह् के पश्चात् आवे तो यह स् पलट कर ष् हो जाता है, अष्टाध्यायीके ८—३ के ५५—५७—५९ सूत्रोंके अनुसार॥

परहितप्रतिपादनैककार्यमार्यनिषेव्य निर्ग्रंथाचार्यवर्यमुपसद्य सविनय परिपृच्छति स्म। भगवन्

परहित-प्रतिपादन-एक-कार्यम् [1]	=दूसरेके हित करनेका है केवल (एक) काम जिन (आचार्य) को
आर्य-निषेव्य [1]	=श्रेष्ठ पुरुषोंकरि सम्यक् (= नि) सेवने योग्य
[2] निर्ग्रंथ—आचार्य—वर्यम् [1] उपसद्य [2]	=निर्ग्रन्थ अर्थात् परिग्रहरहित दिगम्बर आचार्योंमें मुख्य तिनको प्राप्त होकर
सविनय-परिपृच्छति स्म [3] भगवन् [5]	=विनयसहित पूछता हुआ कि हे स्वामी!

[1] नि (अव्यय) =सदा (देखो पदचन्द्रकोष पृष्ठ २१) ष्यादि प्रथम गणके सेव् आत्मनेपदी धातुमें यत् प्रत्यय लगानेसे ...। य इत् संज्ञक होनेसे लोपको प्राप्त होता है और केवल य रह जाता है और इसलिये नि+सेव+यत्=नि+सेव्+य=नि+सेव्य पूर्वोक्त नियमसे (देखो पृष्ठ १५) सकारका परिवर्तन षकारमें हो गया और विशेष्य रूप प्राप्त हुआ जो द्वितीया विभक्ति एक वचन पुल्लिंगमें है।

[2] यह सम्बन्धभूत कृदन्त है। इसके बनानेका यह नियम है कि धातुमें त्वा प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे श्रु (=सुनना) से श्रुत्वा (=श्रवण करके) बनता है। यदि धातुसे पहिले उपसर्ग लगा हुआ हो तो त्वा प्रत्ययके स्थानमें य लगाते हैं जैसे अनु उपसर्ग लगाकर अनुभू बनाया इसका संबंधभूत कृदन्त अनुभूमें य जोड़नेसे अनुभूय (=अनुभव करके) हुआ। इसी तरह तुदादि अथवा भ्वादि गणके सद् धातुमें उप उपसर्ग लगानेसे उपसद् (=प्राप्त होना) शब्द बना पश्चात् उपसद्य (=प्राप्त होकर) ऐसा शब्द बना। इसी सम्बन्धभूत कृदन्तके बनानेमें अन्य विशेष यह है कि यदि धातुके अंतमें ह्रस्व स्वर हो तो इस य से पहिले त् जोड़ा जाता है जैसे प्रणुत्य=प्रणामपूर्वक स्तुति करके। प्रतीत्य=समझ करके। यदि धातु सेट् हो तो त्वा के पहिले इ लगाकर सम्बन्धभूत कृदन्त बनाते हैं जैसे जीव धातुमें इ जोड़नेसे जीव+इ हुआ पश्चात् त्वा लगाकर जीवित्वा बना (देखो लघुसिद्धान्तकौमुदी उपदेशिका पृष्ठ ४१)

[3] स्म अव्यय है जो यहां पर वाक्यपूर्णताके लिये आया है।

[4] ... अव्यय है। "ति+इ। अतीत (बीतजाना) पापका पूरा करना" देखो पदचन्द्रकोष पृष्ठ २३०।

[5] भगवन्—यह भगवत् पुल्लिंग शब्दका सम्बोधन है।

किं खलु आत्मने हितं स्यादिति ॥ स आह मोक्ष इति ॥ स एवं पुनः प्रत्याह किंस्वरूपोऽसौ मोक्षः कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति ॥

किं खलु आत्मने हितं स्यात् इति स आह	=आत्माके लिये क्या हितकारी है? आचार्य (=सः) कहते हैं
मोक्षः इति। सः एव	=मोक्ष (आत्माके लिये हितकारी) है वह (= स एव) ही
पुनः प्रति+आह (= प्रत्याह)	=फिर (=पुनः) पलटकर (=प्रति) पूछता है (आह) कि
किंस्वरूपः असौ मोक्षः च	=यह (=असौ) मोक्ष किस (=किं) स्वरूप है और क्या
अस्य प्राप्ति—उपाय इति	=इस मोक्षकी प्राप्तिका साधन या उपाय है।

१ इति—यह अव्यय यहां पर वाक्यकी समाप्तिके लिये है।

७ स आह न, पर विसर्गोंसे पहिले अकार (अ) हो, और उसके पश्चात्में अ स्वरके अतिरिक्त कोई, अन्य स्वर आवे तो विसर्गका लाप हो जाता है। जैसे सः आह = स आह। सः एव = स एव। पुनः इच्छति = पुन इच्छति इत्यादि (देखो मार्गोपदेशिका पृष्ठ१५)

८ प्रत्याह—प्रति+आह उलट कर (=प्रति) अथवा फिर (=प्रति) पूछता है-प्रश्न करता है। प्रति=फिर-उलट कर (देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २७३) इसलिये अनुवादमें पुनः के लिये फिर शब्द लाये हैं और प्रति शब्दके लिये लोटकर या पलटकर शब्द अनुवादमें लाये हैं।

आह-यह ब्रू (=कहना-बतलाना) द्वितीय अदादि गण उभय पद (परस्मै-पद, और आत्मने-पद) धातुसे बना है। अन्य पुरुष एक वचन वर्तमान कालमें इस शब्द (ब्रू) का रूप आह बिना किसी व्याकरणके नियमसे बना है। आह=आख्याता है-कहता है। परन्तु श्रीआचार्यके लिये सम्मान, आदर या प्रतिष्ठा प्रगट करनेके लिये बहुवचन अन्य पुरुष वर्तमानकाल क्रियामें "कहते हैं" ऐसा अनुवाद किया है।

९ असौ—यह शब्द कर्ता प्रथम कारक एक वचन पुल्लिंग अदस् शब्दका है अदस् शब्दका अर्थ वह अथवा यह दोनों हैं यहां पर 'असौ'का अर्थ 'यह' ऐसा किया है क्योंकि कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति' इस वाक्यमें अस्य शब्द इदम् शब्दकी षष्ठी विभक्ति पुल्लिंग एक वचन है जिसका अर्थ है 'इस (मोक्ष) का।'

१० प्राप्त्युपाय-यदि इ, उ, ऋ, और लृ (ह्रस्व हों अथवा दीर्घ हों) असमान स्वरके पहिले हों तो यथाक्रम (क्रमसे) य्, व्, र्, और ल् का

आचार्य आह–निरवशेषनिराकृतकर्ममकलङ्कस्याशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्यस्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्याबाधसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तर मोक्ष इति ॥

आचार्य: १। आह १	= आचार्य कहते हैं।
आत्मन ६। निर् अवशेष–निराकृत कर्मभ–कलङ्कस्य ६।	= आत्माके (=आत्मनः) समस्त कर्ममल कलङ्करहित हो जानेको
अशरीरस्य ६।।।	= (आत्माके) शरीररहित हो जानेको
अचिन्त्य–स्वाभाविक–ज्ञानादि–गुणम् १।।।	= (आत्माके) स्वाभाविक अचिंत्य ज्ञानादिगुण प्रगट हो जाना।
अव्याबाध–सुखम् १।।।	= (आत्माके) बाधारहित सुखकी प्राप्ति [और]
आत्यन्तिकम् १।।। अवस्थान्तरः १।।।	= (आत्माकी संसार अवस्थासे) अत्यन्त भिन्न दशाका हो जाना
मोक्ष १। इति ॥	= ऐसी मोक्ष है ॥

अयाग उनके स्थानमें होता है। जैसे मा पृ ल् इ+आय = मा पृ ल् य+उपाय = प्राप्सुपाय।

सूपानि+अस्ति+अत्र = सूपान् इ+अप् इ+अत्र = सूपान् स्+अप् य+अत्र (सूपान्यपत्र—पोड़ा जिनके अर्थात् मास जाता है।) इस ही प्रकार कर्तृ इ+आत्मने=कर्तृरूप्+आत्मने = कर्तेर्वात्मने (सं स सूत्र १०८) मूर्तमिव मोक्षमार्गमवागविसर्गं वपुषा निरूपयन्तं, युक्त्यागमकुशलं, परहितप्रतिपादनैककार्यम्, आर्यनिषेव्य, निर्ग्रन्थाचार्यवर्यम् ये पांच विशेषण निर्ग्रन्थ आचार्य महाराजके हैं जिनके समीप भव्य बैठ कर प्रश्न करता है।

तस्यात्यन्तपरोक्षत्वाच्छद्मस्थाः प्रवादिनस्तीर्थकरम्मन्यास्तस्य स्वरूपमस्पृशन्तीभिर्वाग्भिर्युक्त्याभासनिबन्धनाभिरन्यथा परिकल्पयन्ति 'चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं, तच्च ज्ञेयाकारपरिच्छेदपराङ्मुखम्' इति ॥ तत्सदप्यसदेव, निराकारत्वात् खरविषाणवत् ॥ बुद्ध्यादिवैशेषिकगुणोच्छेदः पुरुषस्य मोक्ष इति च ।

तस्य अत्यन्तपरोक्षत्वात्	=तिस मोक्षके अतिशय (बहुत) परोक्ष होनेसे
छद्मस्थाः प्रवादिनः	=अल्पज्ञानी प्रतिवादी (अन्यमती)
तीर्थकरम्मन्याः	=जो अपनेको धर्मका उत्पादक मानते हैं (वे)
तस्य स्वरूपम् अस्पृशन्तीभिः	=उस (मोक्ष) के स्वरूपको स्पर्शतक न करनेवाले
युक्ति+आभासनिबन्धनाभिः वाग्भिः	=युक्तिसहित सरीखे दीखनेवाले वचनोंकर
अन्यथा परिकल्पयन्ति	=और प्रकार (=उलटा) कहते हैं । जैसे—
चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं	=[सांख्यमती मानता है कि] आत्माका (पुरुषस्य) स्वरूप चैतन्य है
तत् च ज्ञेयाकारपरिच्छेदपराङ्मुखम् इति	और वह [स्वरूप] ज्ञेयाकार [पदार्थों] को नहीं जानता है । (इसप्रकार मोक्षका स्वरूप कहता है)
तत् सत् अपि असत् एव	=सो [ऐसा मानना] ठीक है तो भी ठीक नहीं है
निराकारत्वात् खरविषाणवत्	=क्योंकि [वह] निराकार है गधाके सींगवत् मिथ्या [कल्पना] है
च पुरुषस्य बुद्ध्यादिवैशेषिकगुण–उच्छेदः मोक्षः इति	=और आत्माके बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदि विशेष गुणोंका नाश होजाना सो मोक्ष है [ऐसा वैशेषिक मतवाले मानते हैं]

१। वैशेषिक "—कणाद मुनिका रचा हुआ एक शास्त्र । कणादके शास्त्रका माननेवाला । धर्मचंद्रकोष पृष्ठ १७० ।

तदपि परिकल्पनमसदेव विशेषलक्षणशून्यस्यावस्तुत्वात् ॥ प्रदीपनिर्वाणकल्पमात्मनिर्वाणमिति च । तस्य खरविषाणवत्कल्पना तैरेवाहत्य निरूपिता । इत्येवमादि ॥ तस्य स्वरूपमनवद्यमुत्तरत्र वक्ष्यामः ॥ तत्प्राप्त्युपायं प्रत्यपि ते विसंवदन्ते—ज्ञानादेव चारित्रनिरपेक्षात्तत्प्राप्तिः,

तत् १।१।१ अपि परिकल्पनम् १।१।१ असत् १।१।१ एव *	= वह भी सब कल्पना झूठी ही है
विशेषलक्षणशून्यस्य १।१।१ अवस्तुत्वात् १।१।१	= [क्योंकि] विशेषतारहित कोई वस्तु ही नहीं होती
च प्रदीपनिर्वाणकल्पम् १।१।१	= बहुरि दीपकके विनाशके समान [बुझ जानेके सदृश]
आत्मनिर्वाणम् १।१।१ इति	= आत्माका [ज्ञानादि गुणोंका] नाश होजाना मोक्ष है इसप्रकार [मोक्षका स्वरूप बौद्धमती मानते हैं]
तस्य १।१ कल्पना १।१ खरविषाणवत् *	= उसका [मोक्षका] यह स्वरूप गधाके सींगके तुल्य
तै १।१ एव आहत्य * निरूपिता १।१ इति एवम् * आदि १।१।१	= [तैः एव] उनने ही प्रसिद्ध ठहरा दिया है । इसीप्रकार और भी हैं
तस्य १।१ स्वरूपम् १।१।१ अनवद्यम् १।१।१ उत्तरत्र * वक्ष्यामः T	= उस [मोक्ष] का स्वरूप यथार्थ आगें (हम) कहेंगे
तत्प्राप्ति—उपाय १।१ प्रति * अपि * ते विसंवदन्ते T	= तिस [मोक्ष] के साधनके प्रति भी वे [अन्यवादी] वाद = विवाद करते हैं अर्थात् मोक्षके उपार्जनके उपायोंको भी एकमत दूसरे मतके विरुद्ध बताता है ।
ज्ञानात् १।१।१ एव चारित्रनिरपेक्षात् १।१।१ तत्प्राप्तिः १।१	= ज्ञान [मात्र] सेही चारित्रके विना सर्वथासे तिस [मोक्ष] की प्राप्ति [बताते हैं]

१।""कल्प सादृश्य अर्थमें कल्पप् प्रत्यय होता है जैसे—पितृकल्पः गुरुकल्पः —गुरुके समान निर्वाणकल्पम् । पञ्चचंद्रकोष पृष्ठ १०१।

श्रद्धानमात्रादेव वा, ज्ञाननिरपेक्षाच्चारित्रमात्रादेवेति च ॥ व्याध्यभिभूतस्य तद्विनिवृत्युपायभूतभेषजविषयव्यस्तज्ञानादिसाधनत्वाभाववत् ॥ एवं व्यस्तं ज्ञानादि मोक्षप्राप्त्युपायो न भवति। किं तर्हि? तत्त्रितयं समुदितमित्याह—

वा * श्रद्धानमात्रात् [111] एव *	= अथवा श्रद्धान [विश्वास] मात्रसे ही [ज्ञान चारित्रके बिना मोक्षकी प्राप्ति कहते हैं]
च * ज्ञाननिरपेक्षात् [111] चारित्रमात्रात् [111] एव* इति	= बहुरि ज्ञान संबंधसे रहित चारित्रमात्रसे ही इसप्रकार (मोक्ष की प्राप्ति कहते हैं)
व्याधि–अभिभूतस्य [1]	= रोगसे घबराये हुए (रोगी) के
तद्–विनिवृत्ति–उपाय–भूत–	= उस (रोग) के दूर करनेके कारणभूत
भेषज–विषय–व्यस्त–ज्ञानादि–	= औषधके संबंधमें ज्ञान, श्रद्धान, आचरणमें कोई एक
साधनत्व–अभाववत् * एवं *	= साधन जिसप्रकार दूर करनेमें असमर्थ हैं तिस प्रकार
व्यस्त [111] ज्ञानादि [111]	= ज्ञान–चारित्र–श्रद्धानमेंसे एक एक (= व्यस्त)
मोक्ष–प्राप्ति–उपाय [1] न भवति	= मोक्षके प्राप्तिका साधन नहीं होता है
किं [111] तर्हि*	= तौ (= तर्हि) क्या (मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है ?)
तद्–त्रितयं [111] समुदितं [111]	= उन तीनों (ज्ञान–दर्शन–चारित्र) की एकता है
इति–आह	= ऐसे [श्रीउमास्वामी आचार्य सूत्र) कहते हैं

१ अभिभूत (त्रि०) घबराया हुआ दबाया हुआ। पद्मचन्द्रकोष देखो पृष्ठ ३७।
२ व्यस्त (त्रि०) सारे पदार्थोंमेंसे एक एक। देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३७२

अन्वयसहायपदकीलकत पदच्छेद विषयसर्वसहित सर्वार्थसिद्धिका अक्षरशः हिंदी अनुवाद।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि १।११ = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र (इन तीनोंका समुदाय अथवा संगम)

मोक्ष–मार्गः १।१ = मोक्षका मार्ग है अथवा मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है अर्थात् पदार्थों के यथार्थ ज्ञानके विषयमें श्रद्धान व प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है जिस जिस भांति जीवादिक पदार्थ स्थित हैं तिस तिसप्रकार जानना सो सम्यग्ज्ञान है। संसारके हेतुओं (आस्रव-बन्ध) की निवृत्ति करनेके लिये उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषके कर्मोंका ग्रहण करनेवाली क्रियाका त्याग सो सम्यक्चारित्र है। अनुभवसे यह बात प्रत्यक्ष है कि संसारके जितने कार्य हैं उन सबमें ही प्रथम ज्ञान, दूसरे श्रद्धान वा विश्वास तीसरे आचरणकी आवश्यक्ता होती है यदि इन तीनोंमेंसे एक भी त्रुटि हो तो कोई कार्य कदाचित् सिद्ध नहीं हो सक्ता है वैसे ही मोक्षकी प्राप्तिमें भी इन तीन हीकी आवश्यक्ता है। ध्यान रहे कि प्रथम ज्ञान होता है उसके पश्चात् सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है उस सम्यक्त्वकी प्राप्ति होते ही वही ज्ञान जो सम्यग्दर्शनके पहिले अज्ञान था सम्यग्ज्ञान हो जाता है (विशेष जाननेकेलिये नीचेका फुटनोट देखो)

[1] इस तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थकी रचनाके विषयमें कर्णाटकभाषाकी तत्त्वार्थवृत्ति नामकटीकाकी प्रस्तावनामें एक बड़ी मनोरंजक कथा लिखी है, वह इस प्रकार है कि,—

सौराष्ट्र (गुजरात) देशके किसी नगरमें एक पवित्रात्मा करुण और नित्यनैमित्तिक क्रियाओंमें तत्पर प्रज्ञावान् द्वैपायक नामक श्रावक रहता था। वह बड़ा विद्वान् था। और इसलिये चाहता था कि किसी उत्तम ग्रन्थकी रचना करूं, परन्तु गार्हस्थ्यजंजालके कारण अनवकाशवशतः कुछ कर नहीं सका था। निदान एकदिन उसने प्रतिज्ञा की कि, प्रतिदिन जब एक सूत्र बना लूंगा, तब ही भोजन करूंगा, अन्यथा उपवास करूंगा। और मोक्षशास्त्रके बनानेका निश्चय करके उसी दिन उसने "दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" यह प्रथम सूत्र बनाया। तथा विस्मरण हो जानेके भयसे अपने घरके एक खम्भेपर उसे लिख दिया।

इसके पश्चात् दूसरे दिन वह श्रावक किसी कार्यके निमित्त कहीं अन्यत्र चला गया और उसके घर एक मुनिराज आहारके लिये आये। मुनिके दर्शनसे द्वैपायककी सुशीला गुणवती भार्याने अत्यन्त प्रसन्न होकर नवधाभक्तिपूर्वक उन्हें भोजन कराया। भोजनानन्तर मुनिराजने खंभेपर लिखा हुआ वह सूत्र जो द्वैपायकने लिखा था देखकर किंचित् विचार किया और तत्काल ही उसके पहिले सम्यक् विशेषण लिख कर वह से चल दिये। तदनन्तर जब द्वैपायक आया, तो उसे अपने लिखे हुए सूत्रमें सम्यक् विशेषण अधिक लिखा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही सूत्रकी शुद्धता (निर्दोषता) से आनंद भी हुआ। भार्याके पूछनेसे विदित हुआ कि, मुनिराज आहारके निमित्त पधारे थे, कदाचित् वे लिख गये होंगे। तब श्रावक उसी समय बड़ी आतुरतासे उनके ढूंढनेको निकला। बन बन बहुत भटकनेके पश्चात् एक रमणीक वनमें उसे उक्त मुनिराजके दर्शन हुए। वे एक बड़े भारी मुनियोंके संघके नायक थे। उनकी मुद्राके दर्शनमात्रसे वह श्रावक जान गया कि इन्हीं महात्माने मेरे सूत्रको शुद्ध करनेकी कृपा की होगी और गद्गद होके उनके चरणोंपर पड़ गया। बोला भगवन्! इस मोक्षशास्त्रको आप ही पूर्ण कीजिये। ऐसे महान् ग्रन्थके रचनेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है। आपने बड़ा उपकार किया, जो मेरी यह बड़ी भारी भूल सुधार दी। सच है दर्शन ज्ञान और चारित्र मोक्षका मार्ग नहीं है किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मोक्षमार्ग है। अतएव "सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः" ही परिपूर्ण और विशुद्ध सूत्र है। श्रावकके उक्त आग्रह और प्रार्थनाको मुनिराज टाल नहीं सके, और निदान उन्होंने इस तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) को रचके पूर्ण किया। पाठक! वे मुनिराज और कोई नहीं, हमारे इस लेखके मुख्यनायक भगवान् उमास्वामी ही थे।"

भगवदुमास्वामि श्रीमत्कुन्दकुन्द आचार्य जिन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है उनके शिष्य थे। उमास्वामि सूरिका जन्म दिगम्बर सम्प्रदायकी पट्टावलियोंके अनुसार विक्रमशक ५७ (विक्रम सम्वत् ११२) में हुआ था १२ वर्षकी अल्प वयमें आपने जिन दीक्षा ग्रहणकी और

सम्यगित्यव्युत्पन्न शब्दो व्युत्पन्नो वा। अञ्चतेः क्वौ समञ्चतीति सम्यगिति। अस्यार्थः प्रशंसा।

सम्यग्+इति अ+व्युत्पन्न १¹	=सम्यग् ऐसा (पद) अव्युत्पत्ति पक्ष (व्याकरणकी रीति रहित) वाला
वा व्युत्पन्नः १¹ शब्दः १¹	=अथवा व्युत्पत्ति पक्ष (व्याकरणकी रीति) वाला शब्द हो सक्ता है अर्थात्। यह अव्युत्पत्ति पक्ष अपेक्षा तो रूढि संज्ञक है
अञ्चते ६¹ क्वौ ७¹¹ समञ्चति ग इति सम्यक् १¹ इति	= और व्युत्पत्तिपक्ष अपेक्षा सम् उपसर्ग पूर्वक अञ्च धातुसे पूजन वा प्रशंसार्थमें (अञ्च = पूजायाम् गतौ) क्विप् प्रत्यय करनेपर सम्यक् बनता है।
अस्य ६¹ अर्थः १¹ प्रशंसा १¹ ॥	=इस (सम्यक् शब्द) का अर्थ (इस सूत्रविषे) प्रशंसा है। प्रशस्त=उत्तम = प्रशंसनीय

२५ वर्ष दीक्षित रहनेके पश्चात् कार्तिक शुक्ला ८ विक्रमशक १०१ में मंडिलमके पट्ट पर विराजमान होकर आचार्य पद लाभ किया। उन्होंने ४० वर्ष ८ दिन आचार्य पद पर सुशोभित रहकर परम धर्मका उपदेश किया। इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। तत्त्वार्थ सूत्र दोनों संप्रदायोंमें माना जाता है। दिगम्बर सम्प्रदायका मत है कि वे दिगम्बर आचार्य थे और उनका नाम उमास्वामि है। श्वेताम्बर आम्नायवाले उनको उमास्वातिके नामसे श्वेताम्बर आचार्य मानते हैं। कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं है श्रीमदुमास्वामिने एक ही तत्त्वार्थ शास्त्र रचा था। पश्चात् अपने अपनी माने हुये पदार्थोंके प्रतिपादनके लिये जहां तहां सूत्रोंमें पाठ भेद कर दिया गया है। प्रायः ऐसा होता है कि जो ग्रन्थ अति उत्तम होता है और जिसका रचयिता अत्यन्त मान्य और प्रतिभाशाली प्रसिद्ध होता है उस ग्रन्थ तथा आचार्यको प्रत्येक शाखाकी जनता अपनाया करती है। यही कारण है कि जहां तहां सूत्रोंमें भेद है।

१। सम्यग्—सम् उपसर्गमें अञ्च धातु पूजन वा प्रशंसा अर्थमें जोड़कर तथा क्विप् प्रत्यय लगानेसे सम्+अञ्च+क्विप् ऐसा रूप हुआ। इस सम् उपसर्गके स्थानमें समि आदेश अष्टाध्यायी ६-३-९३ सूत्रसे होकर समि+अञ्च+क्विप् बना। क्विप् प्रत्यय सारा ही उड़जाता है और

स प्रत्येकं परिसमाप्यते। सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमिति। एतेषां स्वरूपं लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण निर्देक्ष्यामः॥ उद्देशमात्रं त्विदमुच्यते। भावानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणम्। येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्।

सः १।१ प्रत्येकं १।१।१ परिसमाप्यते T	=सम्यक् पद प्रत्येक प्रसंग (तीनोंमें) लगाया जाता है
सम्यग्दर्शनं १।१।१ सम्यग्ज्ञानं १।१।१	=सब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और
सम्यक्चारित्रं १।१।१ इति॰	=सम्यक्चारित्र इसप्रकार (तीनों पद) होते हैं।
एतेषां १।१।१ स्वरूपं १।१।१ लक्षणतः॰	=इन (सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र)के स्वरूपको लक्षण
च विधानतः॰ पुरस्तात्॰ विस्तरेण १।१।१ निर्देक्ष्यामः T	=तथा भेदसे आगे विस्तारकरि कहेंगे।
उद्देशमात्रं १।१।१ तु॰ इदं १।१।१ उच्यते T	=परंतु संक्षेपमात्र यह (इस सूत्रमें) कहा जाता है
भावानां १ याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं १।१।१	=पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानके विषयमें श्रद्धानको ग्रहण करनेके लिये
दर्शनस्य १।१।१ सम्यक् विशेषणम् १।१।१	=दर्शनके सम्यक् (पद) विशेषण है
येन १ येन १।१ प्रकारेण १।१ जीवादयः १।१ पदार्थाः १।१	=जिस २ भांति जीवादिक पदार्थ
व्यवस्थिताः १।१ तेन १।१ तेन १।१ अवगमः १।१ सम्यग्ज्ञानम् १।१।१	=तिष्ठे हैं तिस तिस प्रकार जानना (सो) सम्यग्ज्ञान है।

धातु प्रायः इकारान्त रहता है इसलिये समि+अञ्च् रूप हुआ। जब इ, उ ऋ, और लृ (ह्रस्व अथवा दीर्घ हों) किसी असमान स्वरके प्रथम आवें तो यथाक्रमसे य्-व्-र्-ल् का प्रयोग उनके स्थानमें हो। इसलिये समि+अञ्च्=सम्यञ्च् हुआ। (देखो अष्टाध्यायी ६ १-७७ वां सूत्र) सम्यञ्च्के च् का लोप होकर सम्यक् सिद्ध हुआ। शब्दकल्पद्रुम पृष्ठ ४१४ में सम्यञ्च् को अव्यय भी लिखा है॥ सम्यक् का क् घोष अक्षरके पहिले ग् में पलट जाता है इसलिये सम्यग् दर्शन और सम्यग्ज्ञान रूप हुये और अघोष अक्षरके पहिले क् में इस क् का परिवर्तन हो जाता है इसलिये सम्यक्चारित्र हुआ॥ इस सूत्रके प्रत्येक शब्द दर्शन-ज्ञान और चारित्रके साथ सम्यग्-सम्यक् पद लाना चाहिये।

(१) यदि यह है जो प्रकृति और प्रत्ययके पृथक्की अपेक्षा किये बिना समुदाय शक्ति (सार शब्द सामर्थ्य) से "समंचतीति।" रूढि यह है जो

मोहसंशयविपर्ययनिवृत्यर्थं सम्यग्विशेषणम् । संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम् । अज्ञानपूर्वकाचरणनिवृत्यर्थं

मोह–संशय–विपर्यय–निवृत्ति–अर्थं ।१११	= अनध्यवसाय (मोह, विमोह,) संदेह, तथा विभ्रम मिटनेके लिये
सम्यग्विशेषणम् ।१११	= (ज्ञानके पहले) सम्यग् विशेषण (लगाया) है ।
संसारकारणनिवृत्तिं ।११ प्रत्यागूर्णस्य ।१ ज्ञानवतः ।१	= संसारके हेतुओं (आस्रव बन्ध) की निवृत्ति करनेको उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषके
कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः ।१ सम्यक्चारित्रं ।१११	= कर्मको ग्रहण करनेवाली क्रियाका त्याग (सो) सम्यक्चारित्र है ।
अज्ञानपूर्वक–आचरणनिवृत्ति–अर्थम् ।१११	= अज्ञानपूर्वक चारित्रको दूर करनेके अर्थ [चारित्र इस पदमें]

नाम किसीका हो परन्तु न आप किसी दूसरे शब्दसे निकला हो न उससे कोई दूसरा शब्द निकल सके अर्थात् न किसी ठहराये हुये नियमके साथ किसी धातुसे बना हो और न वह आप धातु हो (हिन्दी व्याकरण पृष्ठ १७)

१ द्रव्य संग्रह (सम्यग्ज्ञानके प्रकरण) गाथा ४२ में मोह–संशय–विपर्यय इन्हीं तीन विशेषणोंके लिये "संशय विमोह विब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ऐसा वाक्य आये हैं । प० जयचन्दजीने मोहका अनुवाद इसी सूत्रके अर्थ करनेमें "विमोह" किया है । 'संशय विपर्यय और अनध्यवसाय रहित जीवादि पदार्थोंके जाननेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं" पन्नालालजी कृत भाषाटीका पृष्ठ १ । "अध्यवसाय–यह ऐसा ही है इस प्रकार किसी विषयके विचारमें निश्चय करना" शब्दकल्पद्रुम पृष्ठ १७ । इसलिये मोह शब्दका अनुवाद अनध्यवसाय किया है । "जाननेकी इच्छाके अभावमें अनिश्चितरूप तथा विकल्प रहित जो सूक्ष्म ज्ञान हो, उसे अनध्यवसाय कहते हैं । जैसे–मार्गमें चलते समय पांवसे छुए हुए अनेक मूर्छितरूप पावन बालू तृण आदिकोंका स्पर्श होनेपर 'कुछ है' इसप्रकार विकल्परहित तथा अनिश्चितरूप (जिसमें अनेक कोटियोंका अवधान नहीं हो ऐसा) ज्ञान होता है वह अनध्यवसाय है" पन्ना० तत्त्वार्थ पृष्ठ १ नं स वृत्तिके दूसरे संस्करणमें मोहके स्थानमें अनध्यवसाय पाठ है

२ संशय—' अनिश्चितानेककोट्यवगाहनं संशयः" । जिन जिन पदार्थोंके जाननेमें संशय हो उनमें समान रहनेवाले धर्मके दर्शनसे तथा उनके विशेष धर्मके अदर्शनसे जो अनेक पदार्थोंका अवलम्बन करनेवाला ज्ञान होता है उसको संशय कहते हैं । जैसे यह पदार्थ स्थाणु (ज्यादाकि विहीन वृक्ष = ठूंठ) है वा पुरुष है ? सीप है वा चांदी है ।

३ "समान चिन्ह देखने पर अन्य पदार्थमें अन्य पदार्थके निश्चय होनेको विपर्यय कहते हैं–जैसे रस्सीमें सर्पका निश्चित–ज्ञान । विपर्यय शब्द के लिये उक्त द्रव्य संग्रहके गाथाओंमें 'विब्भम (= विभ्रम) शब्द आये हैं इसलिये विपर्ययका अनुवाद हमने विभ्रम किया है ।

सम्यग्विशेषणम् ॥ स्वयं पश्यति दृश्यतेऽनेनेति दृष्टिमात्रं वा दर्शनम् ॥ जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञप्तिमात्रं वा ज्ञानम् । चरति चर्यतेऽनेन चरणमात्रं वा चारित्रम् । नन्वेवं स एव कर्ता स एव करणमित्यायातम् । तच्च विरुद्ध

सम्यग्विशेषणम्	= सम्यग्विशेषण (लगाया) है ।
स्वयं पश्यति इति दर्शनम्	= आपही आप श्रद्धान करे सो दर्शन है [यहां कर्तृसाधन भया, करनेवाला आत्मा है सो ही दर्शन है]
दृश्यते अनेन इति दर्शनं	= जाकरि श्रद्धिये सो दर्शन है [यहां करण साधन भया]
वा दृष्टिमात्रं इति दर्शनम्	= अथवा श्रद्धान सो दर्शन है [यहां भाव साधन हुआ, दर्शन-क्रियाको ही दर्शन कहा]
जानाति ज्ञानम्	= जो जाने सो ज्ञान है [यहां कर्तृसाधन हुआ, जाननेवाले आत्माहीको ज्ञान कहा]
ज्ञायते अनेन ज्ञानम्	= जाकरि जानिये [सो] ज्ञान है [यहां करण साधन हुआ]
वा ज्ञप्तिमात्रं ज्ञानम्	= अथवा जानना सो ज्ञान है [यहां भाव साधन भया, जानना रूप क्रियाको ज्ञान कहा]
चरति चारित्रम्	= आचरण है सो चारित्र है [यहां कर्तृसाधन हुआ क्योंकि आत्मा ही चारित्र है]
चर्यते अनेन चारित्रम्	= जिसकरि आचरण किया जाय सो चारित्र है [इसप्रकार करण साधन भया]
वा चरणमात्रं चारित्रम्	= अथवा आचरण मात्र है सो चारित्र है [यहां भाव साधन भया] अर्थात् आचरनेहीको चारित्र कहा गया ।
ननु एवं सः । एव कर्ता सः एव करणं	= प्रश्न—इसप्रकार तो वही कर्ता वही करण [=साधन]
इति आयातम् तत् विरुद्धं	= ऐसा प्राप्त हुआ सो विरुद्ध है ।

सत्य, स्वपरिणामपरिणामिनोर्भेदविवक्षायां तथा ऽभिधानात्। यथाऽग्निर्दहतीन्धनं दाहपरिणामेन॥ उक्तः कर्त्रादिभिः साधनभावः पर्यायपर्यायिणोरेकत्वानेकत्वं प्रत्यनेकान्तोपपत्तौ स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यविवक्षोपपत्तेरेकस्मिन्नप्यर्थे न विरुध्यते। अग्नौ दहनादिक्रियायाः कर्त्रादिसाधनभाववत्॥ ज्ञानग्रहणमादौ न्याय्यं, दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वात् अल्पान्तरत्वाच्च॥ नैतद्युक्तं,

सत्य, स्वपरिणाम-	=[नहीं, यह] ठीक है क्योंकि अपने परिणाम
परिणामिनो ¹ विवक्षायां ¹¹ तथा	=और परिणामी (दोनोंकी) भेद विवक्षामें वैसा
विधानात् ¹¹¹	=विधान है। अर्थात् वही कर्ता वही कर्म वही करण हो सकता है
यथा अग्नि ¹ दहति T इन्धनं ¹¹¹ दाहपरिणामेन ¹	=जैसे अग्नि अपने दाह परिणामसे लकड़ीको जलाती है।
उक्त ¹ कर्त्रादिभिः ¹	=(भावार्थ) कहा गया जो कर्ता कर्म क्रियासे
साधनभावः ¹	=साधनभाव (कर्तादिको प्रधान मानकर कीहुई व्युत्पत्ति)
पर्यायपर्यायिणोः ¹ एकत्व-अनेकत्वं ¹¹¹ प्रति अनेकान्त-	=यह पर्याय और पर्यायवालेके एकपना और अनेकपना अनेकांतसे
उपपत्तौ ¹¹ स्वातन्त्र्य-पारतन्त्र्य-	=स्वीकार [illegible] लेनेपर स्वतन्त्रता और परतन्त्रताकी
विवक्षा-उपपत्ते ¹¹ एकस्मिन् ¹ अपि न विरुध्यते T	=विवक्षा होनेसे एक पदार्थमें भी विरुद्ध नहीं पड़ता है
अग्नौ ¹¹ दहनादिक्रियायाः ¹¹	=जैसे-अग्निमें दहन आदि क्रियाकी
कर्त्रादि-साधनभाववत्॥	= [पृथक् और एक मान लेनेपर] कर्ता आदिमें सिद्धि हो जाती है।
ज्ञानग्रहणमादौ ¹ न्याय्यं ¹¹¹	=(प्रश्न) सूत्रमें ज्ञानका लाना आदि विषे उचित था
दर्शनस्य ¹¹¹ तत्पूर्वकत्वात् ¹¹¹	=क्योंकि दर्शनके उस ज्ञानका कारणपना है
अल्पान्तरत्वात् ¹¹¹ + च॥	=दर्शनसे ज्ञानके अल्प अक्षर होनेके कारण [क्योंकि व्याकरणमें द्वंद्व समासविषे जिस शब्दमें अल्प अक्षर होते हैं वह प्रथम आता है] ऐसी प्रथम लाना योग्य है।
न + एतद् ¹¹¹ युक्तं ¹¹¹	=उत्तर-यह तुम्हारा कहना या तर्क ठीक नहीं है

युगपदुत्पत्तेः ॥ यदाऽस्य दर्शनमोहस्योपशमात्क्षयात्क्षयोपशमाद्वा आत्मा सम्यग्दर्शनपर्यायेणाविर्भवति तदेव तस्य मत्यज्ञानश्रुताज्ञाननिवृत्तिपूर्वकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं चाऽविर्भवति । घनपटलविगमे सवितुः प्रतापप्रकाशाभिव्यक्तिवत् ॥ अल्पान्तरादभ्यर्हितं पूर्वं निपतति । कथमभ्यर्हितत्वं ? ज्ञानस्य सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् ॥ चारित्रात्पूर्वं ज्ञानं प्रयुक्तं,

युगपत् + उत्पत्तेः ५।१	=क्योंकि दर्शनज्ञानकी एक काल उत्पत्ति है
यदा * + अस्य ६।१ दर्शनमोहस्य ६।१	=जब इस (आत्मा) का दर्शन मोहका
उपशमात् ५।१ क्षयात् ५।१ वा क्षयोपशमात् ५।१ वा	=उपशमसे क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे
आत्मा १।१ सम्यग्दर्शनपर्यायेण ३।१ आविर्भवति T	=चेतन सम्यग्दर्शनकी पर्यायसहित प्रकाशित होता है । अर्थात् चेतनके सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है
तदा+एव तस्य ६।१ मति+अज्ञान श्रुत+अज्ञान निवृत्तिपूर्वकं २।१११	=तब ही तिस चेतनके कुमति कुश्रुतका अभाव होकर
मतिज्ञानं १।१११ च* श्रुतज्ञानं १।१११ आविर्भवति	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञान प्रकट होते हैं।
घनपटलविगमे ७।१ सवितुः ६।१	= बादलोंकी ओटके दूर होनेपर सूर्यके
प्रतापप्रकाश–अभिव्यक्तिवत् *	= तेज व धूप (= आतप) के (एक साथ) प्रगट होनेके सदृश दर्शन व ज्ञानकी उत्पत्ति एक साथ है।
अल्पाक्षरात् ५।११ अभ्यर्हितं १।११ पूर्वं १।११ निपतति T	= थोड़े अक्षर वाले (अल्प* अच् शब्द) से पूज्य (व्याकरणके अनुसार) पहले आता है।
कथम् * अभ्यर्हितत्वं १।११	= कैसे दर्शनको ज्ञानसे पूज्यपना है ?
ज्ञानस्य ६।११ सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् ५।११	= सम्यग्दर्शन ज्ञानको सम्यक् नाम देनेका हेतु है।
चारित्रात्पूर्वं ५।११ ज्ञानं १।११ प्रयुक्तं १।११	= सूत्रमें चारित्रसे पहले ज्ञान कहा।

तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य ॥ सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः । तत्प्राप्त्युपायो मार्गः । मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तस्य मार्गभावज्ञापनार्थः । तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्तिः कृता भवति ॥ अतः सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रमित्येतत्त्रितयं समुदितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः ॥ तत्रादावुद्दिष्टस्य सम्यग्दर्शनस्य लक्षणनिर्देशार्थमिदमुच्यते—

तत्पूर्वकत्वात् ११ चारित्रस्य ११	= क्योंकि चारित्रके पहिले वह ज्ञान होता है अर्थात् चारित्र तब ही सम्यक् होता है जिस समय सम्यग्ज्ञान हो लेता है।
सर्वकर्मविप्रमोक्षः १ । मोक्षः ११	= समस्त कर्मोका अत्यन्त अभाव [सो] मोक्ष है।
तत्प्राप्ति + उपायः ११ मार्गः ११	= उस [मोक्ष] की प्राप्तिके लिये यत्न करना [सो] मार्ग है
मार्गः ११ इति च एकवचननिर्देशः ११	= और [सूत्रमें] मार्ग [शब्द] एकवचनमें कहा है
समस्तस्य ११ मार्गभावज्ञापनार्थः ११	= सो समस्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रके [एक ही] मार्गभाव जनावनेके लिये है।
तेन ११ व्यस्तस्य ११ मार्गत्वनिवृत्तिः १११ कृता ११ । भवति	= तिस [मार्ग शब्द एकवचन] करि जुदे जुदे [सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र] को मार्गपनाका वर्जना होता है।
अतः सम्यग्दर्शनं ११ सम्यग्ज्ञानं ११	= इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान [भले प्रकारका ज्ञान]
सम्यक्चारित्रं १११ +इति+एतत् ११ त्रितयं १११ समुदितं १११	= भले प्रकारका आचरण ऐसे ये तीनों मिले हुए
मोक्षस्य ११ साक्षात्मार्गः ११ वेदितव्यः ११	= मोक्षका प्रत्यक्ष मार्ग जानना चाहिये।
तत्र+आदौ ११+ उद्दिष्टस्य १११	= तहां (सूत्रमें) आदिविषैं उपदेशित
सम्यग्दर्शनस्य १११	= सम्यग्दर्शनका
लक्षणनिर्देशार्थम् १११ इदम् १११ उच्यते	= लक्षण कहनेकेलिए यह (अर्थात् आगेका सूत्र) कहा जाता है।

१ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एक देशपना परम्परा मोक्षका कारण है और समस्तता (=पूर्णता) साक्षात् मोक्षका कारण साक्षात् है यहां ऐसा समझने आनेका भाव है।

॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

तत्त्वशब्दो भावसामान्यवाची । कथम् ? तदिति सर्वनामपदम् । सर्वनाम च सामान्ये वर्तते । तस्य भावस्तत्त्वम् ॥ तस्य कस्य ?

(क) सूत्रार्थ—तत्त्वार्थ = तत्त्वेन [111] + अर्थः [1] = यथावस्थित रूप करि [तत्त्वेन] जो निश्चय किया जाय पदार्थ [अर्थ] उसका जो श्रद्धान

श्रद्धानं [111]

सम्यग्दर्शनम् [111] = सो सम्यग्दर्शन है—अथवा

[ख] तत्त्वार्थ = तत्त्वम् [111] एव + अर्थः [11] = यथावस्थित [= तत्त्वं] ही [= एव] वस्तु [= अर्थः] की

श्रद्धानं [111] सम्यग्दर्शनम् [111] प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है ।

[ग] तत्त्वार्थ (= तत्त्वम् [1] ॥ एव + अर्थः [1]) = जो जिस प्रकार अवस्थित है [= तत्त्व] उस ही [= एव] वस्तु

श्रद्धान [111] सम्यग्दर्शनम् [111] = (अर्थ) की उस ही प्रकार प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका भाषानुवाद ।

तत्त्वशब्द [1] भावसामान्यवाची [1] = (इस सूत्रमें) तत्त्व शब्द (वस्तुके) भाव स्वरूप या धर्मका वाचक है

कथम् । तद् इति सर्वनाम-पदम् [111] । = (तत्त्व) कैसे (भाव सामान्यवाची) है तद् ऐसा शब्द सर्वनाम पद है

सर्वनाम [111] च सामान्ये [111] वर्तते । = और सर्वनाम सादृश्य अथोलकधर्म [बराबरीको जतलानेवाले धर्म] में वर्तता है

तस्य [111] भाव [1] तत्त्वम् [111] ॥ तस्य [111] कस्य [11] । = तिस (तद्) का भाव सो तत्त्व है ॥ वह (भाव) किसका है ?

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है । (२) वाचा—यह शब्द अकारान्त वाचिन् पुंलिंगका प्रथमा विभक्ति एक वचन है । स् प्रथमा विभक्ति पुंलिंग एक वचनका चिन्ह है इस स् को वाचिन् में जोड़नेसे वाचिन्+स् हुआ । अब पदान्तमें एक व्यंजनसे अधिक हों तो पहिला व्यंजन रह जाता है और अन्यका लोप हो जाता है (भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ ४७), वाचिन्+स, वाचिन् जिस पुंलिंग शब्दके अन्तमें इन् हो तो न् का प्रथमा विभक्ति एक वचनमें और विभक्तियोंके सर्व इन प्रत्ययोंके पहिले जो व्यंजनसे (प्रत्यय)

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्- शेषा स्पर्शरूपशब्दमनः प्रविचारा ॥८॥

—(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्वार्थ टीकामें' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे किया है कि "ऐशानात्पूर्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्"—ऐशानात् ऊर्ध्व शेषाः कल्पोपपन्नाः देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप-शब्द मनःप्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम्—"ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। व दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयो"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इस सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में दश कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९२ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। "कल्पः समुदाय सविवेशो विमानप्रस्तारपृथिवीप्रस्तारमभिमितमेषा द्वादशधा" "सूत्र २० सौधर्मादि" पृष्ठ ३५५।" "आरणाच्युताविमैव द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानि अनुत्तराणि पंच महा विमानानि इति" पृ.ठ३५६॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक है श्वेताम्बरों में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के क्षेत्रमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बाँये ओर दिगम्बर आम्नाय का क्षेत्र है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहाँ स्पर्शन द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहाँ स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहाँ रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प		यहाँ रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लांतवकल्प	कापिष्ठकल्प	—एक ही इन्द्र है	लान्तक कल्प		
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	" शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प	यहाँ शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
शतारकल्प	सहस्रार कल्प	—एक ही इन्द्र है		सहस्रार कल्प	
आनतकल्प	प्राणत कल्प	" मनोविकल्प से काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहाँ मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प	—एक एक इन्द्र है	आरणकल्प	अच्युत कल्प	

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पर्शश्च रूप च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषा ते स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा: ॥

, =(ऐशानादूर्ध्वं) शेपा (कल्पोपपन्नान्देवा) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासख्यम् भवन्ति)

ऐशानात ।। ऊर्ध्वम् * शेपा' ।। कल्पोपपन्ना ।। देवा ।। =ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवों स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)

स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्— =स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें

पूविचारा: ।। यथासंख्यम् ।।। भवन्ति T =काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥

पूत्वनुवाद—उक्त—अवशिष्ट— =(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के

ग्रहण—अर्थ ।।। शेष—ग्रहणम् ।।। पुनर्—उक्त— =ग्रहणके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न] बहुरि कथित (देवों) मेंसे

अवशिष्टा ।। के ।। कल्प—वासिन' ।। =शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥

स्पर्श ।। च * रूपं ।।। च शब्द' ।। च मनः ।।। =और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]

स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि ।।। तेषु ।।। =स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं। तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषैं

* पूविचार' ।। येषां ।। ते ।। स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-पूविचारा: ।। =काम सेवन है जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मन पूविचारा हैं

इस सबके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के अर्थ भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में ' द्वयोर्द्वयोः ' वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्टकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्टकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प, शतारकल्प, सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शादि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्— शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रविचाराः ॥८॥

—(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहाँके पाठमे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहाँके सूत्र पाठमे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्"—ऐशानात् ऊर्ध्व शेषाः कल्पोपपन्ना देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप शब्द मनःप्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम्—"ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। वे दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप, शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयो"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में दश कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९१ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। "कल्पा मनुष्याः सविषया विमानभावपृथिवीप्रस्तारसन्निविष्टमेदा द्वादशधा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३१५।" "आरणाच्युतावसिरेष द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानिमानपुष्पदित पंच महा विमानानि इति" पृ०३१२६॥ इस भाष्य में बाहर सहस्र श्लोक से अधिक है सब ग्रन्थों में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के क्षेत्रमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहाँ सोलह कल्प माने हैं॥ बाँये ओर दिगम्बर आम्नाय का क्षेत्र है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहाँ काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहाँ स्पर्शन द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहाँ स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	यहाँ रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प		यहाँ रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लांतवकल्प	कापिष्ठकल्प	—एक ही इन्द्र है	लान्तक कल्प		
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	" शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प	यहाँ शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
शतारकल्प	सहस्रार कल्प	—एक ही इन्द्र है		सहस्रार कल्प	
आनतकल्प	प्राणत कल्प	" मनोविकल्प से काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	आनतकल्प	प्राणत कल्प	यहाँ मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प	—एक एक इन्द्र है	आरणकल्प	अच्युत कल्प	

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पर्शश्च रूप च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषा ते स्पर्शरूपशब्दमन'प्रवीचारा' ॥

= (ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नान्देवा.) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ।, ऊर्ध्वम् * शेषा ,। कल्पोपपन्नाः ;। देवा ;।	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात् तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचाराः ;। यथासंख्यम् ;।।। भवन्ति T	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
पूर्वसूत्र—उक्त—अवशिष्ट—	=(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थ ;।।। शेष—ग्रहणम् ,।।। पुनर्—उक्त—	=ग्रहणके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न]बहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टाः ,। के ,। कल्प—वासिन' ,।	=शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्शः ;। च * रूपं ,।।। च शब्दः ,। च मनः ;।।।	=और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि ;।। तेषु ;।।	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं । तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषै
प्रविचाराः ;। येषां ;। ते ;। स्पर्श-रूप शब्द-मनस्-प्रविचाराः,।	=काम सेवन हैं जिनके वे स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रविचारा हैं

इस सबके मिलाने स दोनों सम्प्रदायों के अर्थ भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में ' द्वयोर्द्वयोः ' वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्टकल्पका सो दोनों आचार्यों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्टकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प, शतारकल्प, सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद का सकते हैं कि स्पर्शादि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्- शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रविचाराः ॥८॥

–(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानात्पूर्व्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासंख्यम्"–ऐशानात् ऊर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्नाः देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप शब्द मनःप्रवीचाराः भवन्ति यथासंख्यम्–"ऊपर कहे हुये ऐशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। व दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप, शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयोः"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में बारह कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९१ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। "कल्पाः समुदाय सन्निवेशा विमानप्रस्तारपृथिवीप्रस्तारसन्निमित्तभेदा द्वादशधा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३५१।" आरणाच्युतावसिधेन द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानिमर्त्योपयुपरित पञ्च महा विमानानि इति" पृ०३१२४॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक है श्वेताम्बरों में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बायें ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ऐशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ऐशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहां स्पर्श द्वारा काम सेवन है—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्श द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प, ब्रह्मोत्तरकल्प / लांतवकल्प, कापिष्ठकल्प		यहां रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है / —एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प / लान्तव कल्प		यहां रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प / सतारकल्प, सहस्रार कल्प		"शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है—एक ही इन्द्र है / —एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प / सहस्रार कल्प	यहां शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
आनतकल्प, प्राणत कल्प / आरणकल्प, अच्युत कल्प		"मनोविकल्प से काम सेवन है—एक एक इन्द्र है / —एक एक इन्द्र है	आनतकल्प / आरणकल्प	प्राणत कल्प / अच्युत कल्प	यहां मनो विकल्प से काम सेवन है

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ॥ स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारा येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषा (कल्पोपपन्नान्देवा) स्पर्शरूपशब्दमन प्रवीचारा (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ऊर्ध्वम् शेषा कल्पोपपन्ना देवा	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष या बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचाराः यथासंख्यम् भवन्ति	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
पूर्वसूत्र—उक्त—अवशिष्ट—	=(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थ शेष—ग्रहणम् पुनर्—उक्त—	=आदानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न] बहुरि कथित (देवों) में से
अवशिष्टा के कल्प—वासिन	=शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्श च रूपं च शब्द च मनः	=और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि तेषु	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं। तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषे
प्रविचार येषां ते स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः	=काम सेवन है जिनके वे स्पर्श-रूप-शब्द-मन प्रविचारा हैं

इस सबके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के मध्य भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में ' द्वयोर्द्वयोः " वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका कापिष्टकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्टकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्रकल्प, शतारकल्प सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहाँ शुक्रकल्प और शतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शकरि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

कथमभिसम्बन्ध ? आर्षाविरोधेन । कुत पुन प्रवीचारग्रहणं ? इष्टसम्प्रत्ययार्थमिति ॥ कः पुनरिष्टोऽभिसम्बन्ध आर्षाविरोधी ? । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवा देवाङ्गनास्पर्शमात्रादेव परा प्रीतिमुपलभन्ते तथा देवोऽपि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु देवा दिव्याङ्गनाना

	अर्थात् स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें और मनके विचारनेमें कामसेवनेवाले हैं
कथम् * अभिसम्बन्धः ॥	=(इन देव और मैथुनके भेदोंमें) कैसे अभिसम्बन्ध है अर्थात् प्रश्न यह है कि इन शेष चौदह स्वर्गोंके देवोंका स्पर्शप्रविचार, रूपप्रविचार, शब्दप्रविचार, मनःप्रविचारोंमें से किस किस प्रकार या भांतिके प्रविचारसे सम्बन्ध है ॥
आर्ष-अविरोधेन ॥	=(उत्तर) आगम अथवा धर्मशास्त्रकी विरुद्धता (=विरोध) से रहित (अभिसम्बन्ध) है
कुतः * पुनः * प्रविचार—	=(प्रश्न) क्यों फिर (जब पूर्व सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है) प्रविचारका (इस सूत्रमें)
ग्रहणं ॥ इष्ट-सम्प्रत्यय-अर्थम् ॥ इति * ॥	=उपादान है। (उत्तर) अभिलषित अभिसम्बन्धके लिये है अर्थात् शिष्यके पूछने पर कि जब सातवां सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है तब फिर इस सूत्रमें क्यों लाये हो उत्तरमें कहते हैं कि वांछित अभिसम्बन्धके (जो चौदह स्वर्गके देवोंको जिस जिस भांति के प्रविचार है) प्रगट करने के लिये लाये हैं।
कः ॥ पुनः—इष्टः ॥ अभिसम्बन्धः ॥	=(प्रश्न) पुनरि क्या वांछित अभिसम्बन्ध (कथित देवों और उक्त प्रविचारोंमें) है
आर्ष-अविरोधी ॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः ॥ देवाः ॥	=(उत्तर) आगमसे अविरोधरूप (सम्बन्ध) है। (अर्थात्) सनत्कुमार, महेन्द्र स्वर्गमें देव
देव-अङ्गना-स्पर्श-मात्रात् ॥ एव परां ॥ प्रीतिम् ॥	=देवियोंके स्पर्श करने मात्रसे ही परम प्रीतिको
उपलभन्ते ॥ तथा * देव्यः ॥ अपि * ।	=प्राप्त होते हैं। तैसे देवाङ्गना भी (परमप्रीति को प्राप्त होती हैं) ॥
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-	=ब्रह्म [पांचवां स्वर्ग] ब्रह्मोत्तर [छठवां स्वर्ग] लान्तव [सातवां स्वर्ग]
कापिष्ठेषु ॥ देवाः ॥ दिव्य-अङ्गनानाम् ॥	=कापिष्ठ [आठवां स्वर्ग] में, देव स्वर्गकी [=दिव्य] स्त्रियोंके अर्थात् देवियोंके

शृङ्गाराकारविलासचतुरमनोज्ञवेषरूपावलोकनमात्रादेव परमसुखमाप्नुवन्ति । शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु देवा देववनितानां मधुरसङ्गीतमृदुहसितललितकथितभूषणरवश्रवणमात्रादेव परां प्रीतिमास्कन्दन्ति । आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु देवाः स्वाङ्गनामनःसङ्कल्पमात्रादेव परं सुखमाप्नुवन्ति ॥

अथोत्तरेषां किंप्रकारं सुखमित्युक्ते तन्निश्चयार्थमाह—

शृङ्गार आकार-विलास-चतुर-मनोज्ञ-वेष-रूप-	=शृङ्गार, आकार, हर्ष (=विलास) चतुर, सुंदर (=मनोज्ञ) वेष और रूपके
अवलोकन-मात्रात्॥। एव॰ परम्-सुखम्॥। आप्नुवन्ति॥	=केवलमात्र देखनेसे ही उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होते हैं ॥
शुक्र-महाशुक्र-शतार	=शुक्र (नवमां स्वर्ग) महाशुक्र (दशवां स्वर्ग) शतार (ग्यारहवां स्वर्ग)
सहस्रारेषु॥। देवाः॥ देव-वनितानाम्॥। मधुर	=सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) में देव और देवियोंके प्रिय (=मधुर)
सङ्गीत-मृदु	=नाचना-गाना-बजाना (=संगीत) अथवा गान (=संगीत) कोमल (=मृदु)
हसित-ललित-कथित-भूषण-रव-	=हास्य, मनोहर (=ललित) बोलना (=कथित) और आभूषण के शब्द (=रव)के
श्रवण-मात्रात्॥। एव॰ पराम्॥ प्रीतिं॥ आस्कन्दन्ति	=केवल (=मात्र) सुननेसे ही अतिशय प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥
आनत-प्राणत-आरण-अच्युत	=आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां) आरण (पंद्रहवां) और अच्युत (सोलहवां)
कल्पेषु॥ देवाः॥ स्व-अङ्गना-	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु) देव अपनी २ (=स्व) सुंदरीयोंकी (=अङ्गना) अर्थात् देवियोंका
मनः-सङ्कल्प-मात्रात्॥। एव॰ परं॥ सुखम्॥।	=मनमें विचार अथवा चिंतवन मात्रसे ही उत्कर्ष सुखको
आप्नुवन्ति। अथ-उत्तरेषाम्॥	=पाते हैं। अब अग्रिम (अहमिन्द्र अथवा कल्पातीत देव) निकें
किम्॰ प्रकारं॥ सुखम्॥ इति॰ उक्ते॥ तत्	=सुख कौन प्रकार है ऐसा पूछने पर उस (सुख) के
निश्चय-अर्थम्॥ आह।	=निर्धारणके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) परम् (अव्य॰)—केवल अनन्तर । परम (त्रि॰)—उत्कृष्ट, प्रधान, बड़ा, पहिला ॥ परमम् (अव्य॰)—हाँ, स्वीकार, अनुज्ञा ॥ पर—का अर्थ सबसे अच्छे का भी है। (देखो परां प्रीतिं आस्कन्दन्ति पृ॰ २१९ पुष्टि॰)

(२) 'कल्प' यह शब्द "समाप्ततत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्" में निम्न वाक्योंमें पुल्लिंगमें आया है। सौधर्मस्य कल्पस्योपर्युपरि कल्पः। सा (=सभा) अस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः। सर्वकल्पाः (देखो पृष्ठ १०१ चौथा अध्याय सूत्र २० का)

। परेऽप्रवीचारा ॥९॥

परग्रहणमितराशेषसंग्रहार्थम् । अप्रवीचारग्रहणं परमसुखप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ प्रवीचारो हि वेदनाप्रतिकार । तदभावे तेषां परमसुखमनवरतं भवति ॥ उक्ता ये आदिनिकायदेवा–

सूत्रम्– परेऽप्रवीचारा, =(कल्पोपपन्नेभ्य)[तीसरे सूत्रसे लिया]परे देवा अप्रवीचारा भवन्ति

सूत्रार्थ–कल्प-उपपन्नेभ्यः ।, परे ।, देवा ।, = स्वर्ग में उत्पन्न होनेवाले देवोंसे परे वा अन्य अशेष देव अर्थात् कल्पातीत देव या अहमिन्द्र

अप्रविचाराः ।। =काम सेवन सेरहित है ।

इत्यर्थ–पर-ग्रहणम् ।।। इतर अशेषं– =(इस सूत्र में) पर शब्दका ग्रहण अन्य समस्त (अशेष) (देवों) के

संग्रह-अर्थम् ।।। अप्रविचार-ग्रहणम् ।।। परम– =संग्रह के लिये है । अप्रविचारका ग्रहण उत्कर्ष

सुख-प्रतिपत्ति-अर्थम् ।।। प्रविचारः ।।। हि वेदना–=सुख के जनाने के लिये है काम सेवन ही (=हि) (मैथुन) वेदना या पीड़ाका

प्रतिकार ।। तद्-अभावे ।। = उपाय या चिकित्सा (प्रतिकार= प्रतीकार) है जिस (मैथुनरूपी वेदना) के न होने पर

तेषाम्।। परम-सुखं ।।। अनवरतम् ।। भवति ।। = तिन (कल्पातीत देवों) के उत्कृष्ट (=परम) निरंतर वा लगातार (=अनवरत) सुख होता है

उक्ता ।। ये ।। आदि-निकाया-देवाः ।। =कहे थे प्रथम समुदाय के देव (अर्थात् भवनवासी)

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है सामान्य रूप से अर्थ भी एक है क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "नवअनुदिश" नहीं माने हैं तब भी विमानों की संख्या जो सोलहवां स्वर्ग से ऊपर हैं दोनों आम्नायोंमें ३२३ (तीन सौ तेईस) ऐसे हैं कि और ग्रैवेयकोंमे अधोभागमें एक सौ ग्यारह (१११) विमान हैं । मध्य भाग में एकसो सात (१०७) और ऊपर केवल सात (१००) विमान हैं । और अनुत्तरदेवोंके केवल पांच हैं समाप्य० पृ१०९। तीन अधोग्रैवेयक विषै एकसो ग्यारह विमान हैं । और तीन मध्यम ग्रैवेयक विषै एकसो सात विमान हैं । और तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयकनि विषैं इक्यानवे विमान हैं बहुरि नव अनुदिश विषैं नव विमान हैं और अनुत्तर विषैं पांच विमान हैं अर्थ प्रकाशिका सूत्र १९ पृष्ठ २१४ सत। ३२३ हुवे

(२) पं० जयचन्द रायजीकी वचनिकामें इस वाक्यसे कि 'यहां पर शब्द का ग्रहण अवशेष रहे जे अहमिन्द्र तिन के ग्रहण के अर्थि हैं'। जान पड़ता है कि जिस संस्कृत प्रति से उन्हों ने वचनिका की है उसमें ऐसा पाठ होगा कि 'परग्रहणमितरावशेषसंग्रहार्थम्' अर्थात् अशेष शब्द के स्थान में अवशेष शब्द होगा । परन्तु सदासुख जी की अर्थप्रकाशिकाके इस वाक्यसे कि यहां 'पर' शब्दके कहने करि कल्पातीत समस्त देवनिका संग्रह भया जान पड़ता है कि जिस प्रति से उन्हों ने भाव लिया है उसमें 'अशेष' शब्द था जैसा कि ऊपर पाठ है । दोनों पाठोंका एकही आशय है । हस्तलिखित एक प्रतिमें इसको 'अशेष' शब्द मिला है ।

दशविकल्पा इति तेषां सामान्यविशेषसञ्ज्ञाविज्ञापनार्थमिदमुच्यते—

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥

भवनेषु वसन्तीत्येवंशीला भवनवासिनः । आदिनिकायस्येयम्

दश-विकल्पाः ॥ इति ॥ तेषां ॥ सामान्य-विशेष-	=दश भेदरूप तिन (भवनवासी देवों) के सामान्य और विशेष
सञ्ज्ञा-विज्ञापन-अर्थम् ॥ इदम् ॥ उच्यते ॥	=संज्ञाओंके जतानेके लिये यह (अभिमसूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रम्— भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः[1] ॥१०॥

=भवनवासिन असुरकुमारा नागकुमारा विद्युत्कुमारा सुपर्णकुमारा अग्निकुमारा वातकुमारा स्तनितकुमारा उदधिकुमारा द्वीपकुमाराः दिक्कुमारा च दशविकल्पा भवन्ति ॥

पदार्थ— भवनवासिनः ॥ असुरकुमाराः ॥ नागकुमाराः ॥	=भवनवासी देव, असुरकुमार, नागकुमार,
विद्युत्कुमाराः ॥ सुपर्णकुमाराः ॥ अग्निकुमाराः ॥	=विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार,
वातकुमाराः ॥ स्तनितकुमाराः ॥ उदधिकुमाराः ॥	=वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार,
द्वीपकुमाराः ॥ दिक्कुमाराः[2] ॥ च ॥ दश-विकल्पाः ॥ भवन्ति	=द्वीपकुमार, और (=च) दिक्कुमार, दशभेदरूप हैं
वृत्त्यनुवादः—भवनेषु ॥ वसन्ति ॥ इति ॥ एवं शीलाः ॥	=भवनोंमें बसते हैं ऐसे स्वभाव वाले (=शीलाः)
भवनवासिनः ॥ आदिनिकायस्य ॥ इयम् ॥	=भवनवासी देव हैं (चार समूहके देवोंमेंसे) प्रथमसमुदायकी यह

(१) दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्र का अर्थ और पाठ एक है। हमारे यहां यह दशवां सूत्र है श्वेताम्बर आम्नाय में यह ग्यारहवां सूत्र है।

(२) द्वन्द्व समासमें जितने शब्द जोड़े जावें उन प्रत्येकके अन्तका एक चकार गुप्त समझ लिया जाय अथवा प्रत्येक शब्द के साथ जितने शब्द जोड़े जावें उतने ही चकार समझ लिये जावें इसलिये ऊपरके दशदेवोंके भेदोंमें इस प्रकार दश चकार होंगे कि असुरकुमाराः च, नागकुमाराः च, विद्युत्कुमाराः च, सुपर्णकुमाराः च, अग्निकुमाराः च, वातकुमाराः च, स्तनितकुमाराः च, उदधिकुमाराः च, द्वीपकुमाराः च, दिक्कुमाराः च, इस अवस्थामें अनुवादमें भी दशवार 'और' शब्द आवेगा परन्तु अनुवादक ने केवल एक चकार लेकर ऊपरका अनुवाद किया है।

सामान्यसञ्ज्ञा । असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तयः । सर्वेषां देवानामवस्थितवयः स्वभावत्वेऽपि वेषभूषायुधयानवाहनक्रीडनादिकुमारवदेषामाभासन्त इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो रूढः । स प्रत्येके परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि ॥ क तेषां भवनानीति चेदुच्यते— रत्नप्रभाया पङ्कबहुलभागेऽसुर

सामान्य-सञ्ज्ञा ।। असुर-आदयः ।। =सामान्य संज्ञा है असुर, नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्

विशेष-संज्ञा ।।। विशिष्ट-नामकर्म-उदय आपादित— =विशेषसंज्ञा है । विशेष नाम कर्मके उदयके भावसे (=आपादित)

वृत्तयः ।।। सर्वेषाम् ।। देवानाम् ।। =(ये दश विशेषसंज्ञा) प्रवर्ते हैं । समस्त (भवनवासी) देवों के

अवस्थितवयः ।।। =स्थिर अथवा एकरूप (=अवस्थिति) (बालपन यौवनादिक) अवस्था

स्वभावत्वे ।।। अपि ● वेष-भूषा-आयुध— =स्वभावसे होनेपर भी वेष सजावट (=भूषा) अस्त्र (=आयुध)

यान-वाहन— =लेजानेके साधन रथ, गाड़ी आदिक (=यान) सवारी (=वाहन)

क्रीडन-आदि-कुमार-वत् ● एषाम् ।। आभासन्ते । इति =परिहास या कौतुक आदिक कुमारके सदृश इन (भवनवासी देवों)के शोभे हैं अर्थात् यद्यपि समस्त भवनवासी देवोंके जन्म समयसे मरण पर्यन्त एकसी दशा अथवा अवस्था रहती है । बाल, यौवन, जरा आदिक अवस्था पलटती नहीं है तो भी इनकी कुमार संज्ञा पूर्वोक्त निमित्तसे नहीं है वरन इस कारणसे है कि वे वेष, आभूषण, यान, वाहन, क्रीडनादि कुमारके समान प्रवर्ते हैं ।

भवनवासिषु ।। कुमार-व्यपदेशः ।। रूढः ।। =भवनवासी (देवों) विषै कुमारनाम प्रसिद्ध (=रूढ) है

सः ।। प्रत्येकं ● परिसमाप्यते । =यह कुमार व्यपदेश या संज्ञा प्रत्येक (दश विशेष संज्ञाओं पर) जोड़ा जाता है ।

असुर-कुमाराः ।। इति ● एवम् ● आदि ।।। =(जैसे) असुरकुमार एवं आदिक (पूर्वोक्त दश संज्ञा) हैं ।

क ● तेषाम् ।। भवनानि ।।। इति ● चेत् ● उच्यते । =कहां तिनके निवासस्थान हैं ? इस प्रकार प्रश्न होनेपर (=चेत्) कहा जाय है कि

रत्नप्रभायाः ।।। पङ्कबहुल-भागे ● असुर— =रत्नप्रभा (पृथिवी) के पंकबहुल भागमें अर्थात् दूसरे भागमें असुर

(१) यह शब्द भूष् धातु जिसका अर्थ सजाना है का रूपमें अर्थात् भूष+आ =भूषा (स्त्रीलिंगमें) होता है जिसका अर्थ भूषण, आभूषण, सजावट, सम्भालकिया, अलंकार, आभरण है । देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४७०

कुमाराणां भवनानि । खरपृथिवीभागे उपर्यधश्च एकैकयोजनसहस्रं वर्जयित्वा शेषनवानां कुमाराणामावासा ॥

द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञावधारणार्थमाह—

कुमाराणाम्॥ भवनानि,॥ खर-पृथिवी-भागे॥ =कुमारोंके भवन हैं (रत्नप्रभाके तीन भागोंमेंसे ऊपरके) खर पृथिवी भागमें

उपरि॥ अधस्॥ च॥ एक-एक-योजनसहस्रं॥ वर्जयित्वा =ऊपर और नीचे एक एक सहस्र योजन छोड़कर

शेष-नवानाम्॥ =अवशेष (भागमें) नो (नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्)

कुमाराणाम्॥ आवासा॥ =कुमारोंके निवास स्थान हैं अर्थात् रत्नप्रभा नामकी पृथिवी एक लाख अस्सी सहस्र योजनकी मोटी है। उसके तीन विभाग हैं, उन तीन भागोंमें से ऊपरका खरभाग १६००० योजन मोटा है। उसमें चित्रा, वज्रा, वैडूर्य इत्यादि एक एक सहस्र योजनकी मोटी १६ पृथिवी हैं॥ इनमेंसे ऊपर और नीचे की एक एक सहस्र योजनकी दो पृथिवी छोड़कर बीचकी चौदह सहस्र योजन मोटी और एक राजू लम्बी चौड़ी पृथिवीमें नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार अग्निकुमार वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, इन नव प्रकारके भवनवासी देवोंके निवास स्थान हैं॥ इस खर भागके नीचे दूसरा पङ्कबहुल भाग है जो चौरासी सहस्र योजन मोटा है। उसमें असुरकुमार रहते हैं और पङ्क भागके नीचे अस्सी सहस्र या ८००००×२०००=१६००००००० सोलह करोड़ कोस मोटा अब्बहुल भाग है उसमें प्रथम नरक है।

द्वितीय-निकायस्य॥ सामन्य-विशेष सञ्ज्ञा- =दूसरे समुदायके सामान्य और विशेष संज्ञाओंके

अवधारण-अर्थम्॥ आह॥ =निश्चय करने के लिये (आचार्य उपर सूत्रमें) कहते हैं कि

---

(१) वर्जक्रिया संबंधकसूचक भूत कृदन्त है।

सामान्यसञ्ज्ञा । असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तयः । सर्वेषा देवानामवस्थितवय. स्वभावत्वेऽपि वेषभूषायुधयानवाहनक्रीडनादिकुमारवदेषामाभासन्त इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो रूढः । स प्रत्येक परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि ॥ क तेषां भवनानीति चेदुच्यते– रत्नप्रभाया पङ्कबहुलभागेऽसुर

सामान्य-सञ्ज्ञा ;। असुर-आदयः ;। =सामान्य संज्ञा है असुर, नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि,वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्
विशेष-संज्ञा ;॥ विशिष्ट-नामकर्म-उदय आपादित– =विशेषसंज्ञा है। विशेष नाम कर्मके उदयके प्राससे (=आपादित)
वृत्तयः ;॥ सर्वेषाम् ;। देवानाम् ;। =(ये दस विशेषसंज्ञा) प्रवर्ते हैं। समस्त (भवनवासी) देवों के
अवस्थितवयः ;॥ =स्थिर अथवा एकरूप (=अवस्थिति) (बाल्यन योवनादिक) अवस्था
स्वभावत्वे ;॥ अपि ✻ वेष-भूषा-आयुध– =स्वभावसे होनेपर भी वेष सजावट (=भूषा) अस्त्र (=आयुध)
यान-वाहन– =ले जानेके साधन रथ, गाड़ी आदिक (=यान) सवारी (=वाहन)
क्रीडन-आदि-कुमार-वत् ✻ एषाम् ;। आभासते T इति =परिहास या कौतुक आदिक कुमारके सदृश इन (भवनवासी देवों)के शोभे हैं अर्थात्

यद्यपि समस्त भवनवासी देवोंके जन्म समयसे मरण पर्यन्त एकसी दशा अथवा अवस्था रहती है। बाल, योवन, जरा आदिक अवस्था पलटती नहीं है तो भी इनकी कुमार संज्ञा पूर्वोक्त निमित्तसे नहीं है वरन इस कारणसे है कि ये वेष, आभूषण, यान, वाहन, क्रीडनादि कुमारके समान प्रवर्ते हैं।

भवनवासिषु ;। कुमार-व्यपदेशः ;। रूढः ;। =भवनवासी (देवों) विषे कुमारनाम प्रसिद्ध (=रूढ) है
सः ;। प्रत्येकं ✻ परिसमाप्यते T =यह कुमार व्यपदेश या संज्ञा प्रत्येक (दस विशेष संज्ञाओं पर) जोड़ा जाता है।
असुर-कुमाराः ,। इति ✻ एवम् ✻ आदि ,॥ =(सब) असुरकुमार एवं आदिक (पूर्वोक्त दस संज्ञा) हैं।
क ✻ तेषाम् ;। भवनानि ;॥ इति ✻ चेत ✻ उच्यते T =कहाँ तिनके निवासस्थान हैं? इस प्रकार शंका होनेपर (=चेत) कहा जाय है कि
रत्नप्रभायाः ;॥ पङ्कबहुल-भागे ;। असुर– =रत्नप्रभा (पृथिवी) के पङ्कबहुल भागमें अर्थात् दूसरे भागमें असुर

(१) यह शब्द भूष् धातु जिसका अर्थ सजाना है आ लगाने अर्थात् भूष्+आ =भूषा (स्त्रीलिंगमें) होता है जिसका अर्थ भूषण, आभूषण ,सजावट, सजावट, अलंकार, आभरण है। देखो पदप्रबन्धकोष पृष्ठ २५९

आवासाः ॥ राक्षसानां पङ्कबहुलभागे ॥ तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञासंकीर्तनार्थमाह—

॥ ज्योतिष्काःसूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

आवासाः ॥ राक्षसानाम् ॥ पङ्कबहुलभागे ॥	= निवासस्थान हैं । राक्षसोंके (निवासस्थान) पङ्कबहुलभागमें हैं ।
तृतीयस्य ॥ निकायस्य ॥ सामान्य—	= तीसरे निकायके (देवोंकी) सामान्य और
विशेष-सञ्ज्ञा-संकीर्तन-अर्थम् ॥ आह ॥	= विशेष संज्ञाके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— ज्योतिष्काः सूर्याचंन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

= ज्योतिष्काः सूर्यो चन्द्रमसौ ग्रह नक्षत्र-प्रकीर्णकतारकाः च (पञ्चविकल्पा भवन्ति

(१) सूर्य अथवा सूर्य्य यह शब्द दोनोंमेंसे शुद्ध है क्योंकि संस्कृतके व्याकरणसे यदि किसी शब्दमें पहिले स्वर आवे र् अथवा ह् पीछेसे आवे और पश्चात् कोई व्यंजन हो तो छोड़कर आवे तो वह व्यंजन इच्छानुसार द्वित्व होसकता है अर्थात् चाहो तो उस व्यंजनको दोहरा करदो चाहो न करो जैसे अर्क वा अर्क्क,मर्क वा मर्क्क, धर्म वा धर्म्म,कर्म वा कर्म्म,ब्रह्मा वा ब्रह्म्मा अपह्नुते वा अपह्न्नुते इसी प्रकार सूर्य वा सूर्य्य दोनोंही ठीक हैं

(२) इससूत्र का पाठ हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें "सूर्याचन्द्रमसौ" है कहीं कहीं पर "सूर्याचन्द्रमसौ" भी है इसकी टिप्पणीसे यह प्रगट है कि पूर्वोक्त पाठ ठीक है शेष पाठ हमारे यहां सर्वत्र चलता है । अब प्रश्न यह है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों शब्दोंका समास 'सूर्यचन्द्रमसौ' क्यों नहीं हुआ 'सूर्याचन्द्रमसौ' कैसे हुआ । (उत्तर, यहांपर सूर्याचन्द्रमसौ यह द्वन्द्व समास है अर्थात् देवताओंके नामोंके द्वन्द्वसमास बनाने में पहिले अवयवके अन्तको 'आनङ् (=आ) आदेश होता है । जैसे इन्द्रावरुणौ, अग्नीषोमौ, मित्रावरुणौ, इन्द्राबृहस्पती, अतः सूर्याचन्द्रमसौ हुआ, अष्टाध्यायी अध्याय ६ पाद ३ सूत्र २६,२९ देखो ।

(३) इसप्रकार आम्नायके समास्तस्सर्वेषिमसमसूत्रके हमारे यहांके "सूर्याचन्द्रमसौ" पाठकके स्थानमें 'सूर्याचन्द्रमसौ' पाठ्य है अर्थात् सूर्याः (बहुत सारे अधिक सूर्य) चन्द्रमसः ॥ (बहुत वा दो से अधिक चन्द्रमा)इसप्रकार यहां अर्थ सूर्याचन्द्रमसौ पाठमें = एक सूर्य और एक चन्द्रमा किया है परन्तु समासरूप सूर्याचन्द्रमसौ पाठ्य का अर्थ = बहुत सूर्य बहुत चन्द्रमा किया है समासरूप में सूर्य चन्द्रमाका समासम न करने का हेतु ऐसा है कि इस सूत्रमें समास न करनेका और आदिमध्यमें सूर्य तथा चन्द्रमा का क्रमभेद करनेका कारण यह है कि जिससे यह सूचित होजाय कि इनकी यथा क्रम ऊर्ध्व स्थिति है अर्थात् जैसे क्रमसे चन्द्रमा पूर्वे पीछे है । और सूर्य पश्चात् यह यहां पर इस नहीं है । यहां पर सूर्यकी ही प्रथम कहना है क्योंकि पाठ के क्रमानुसार ऊपर इन सूर्योंकी स्थिति नहीं है । किन्तु इनकी एकके पश्चात् दूसरकी ऊपर ऊपर स्थिति है । जैसे सबके नीचे प्रथम सूर्य है । चन्द्रमाओंके ऊपर ग्रह हैं उनके ऊपर नक्षत्र हैं । और नक्षत्रोंके ऊपर प्रकीर्णक तारका हैं। और आद, ग्रह का भविष्य।यारी अर्थात्

॥व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

विविधदेशान्तराणि येषा निवासास्ते व्यन्तरा इत्यन्वर्था सामान्यसञ्ज्ञेयमष्टानामपि विकल्पानाम् ॥ तेषा व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो वेदितव्या नामकर्मोदयविशेषापादिता ॥ क्व पुनस्तेषामावासा इति चेदुच्यते–अस्माज्जम्बूद्वीपादसंख्येयान्द्वीपसमुद्रानतीत्य उपरिष्टे खरपृथिवीभागे सप्ताना व्यन्तराणाम्

सूत्रम्– व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

=व्यन्तरा किन्नर किम्पुरुष महोरग गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचा (अष्ट विकल्पा) भवन्ति

सूत्रार्थ—व्यन्तराः, किन्नर-किम्पुरुष-महोरग	=व्यन्तर, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग,
गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः॥ अष्ट॥ विकल्पाः॥ भवन्ति	=गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आठ प्रकारके हैं।
टबानुसार—विविध-देश-अन्तराणि॥ येषाम्॥	=नाना प्रकारके अन्य देश हैं, जिनके
निवासाः॥ ते॥ व्यन्तराः॥ इति॰	=वासस्थान वे व्यन्तर हैं इस प्रकार
अन्वर्था॥ सामान्य-सञ्ज्ञा॥ इयम्॥ अष्टानाम्॥ अपि॰	=सार्थक अथवा यथा नाम तथा गुणरूप सामान्य संज्ञा यह आठों ही
विकल्पानाम्॥ तेषां॥ व्यन्तराणां॥ अष्टौ॥	=भेदों की है। तिन व्यन्तरोंके आठ
विकल्पाः॥ किन्नर-आदयः॥	=भेद किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आदिक
विशेष-सञ्ज्ञाः॥ वेदितव्याः॥ नाम-कर्म-	=विशेष संज्ञायें जानना चाहिये। (ये आठ विशेष संज्ञा) नाम कर्मके
उदय-विशेष-आपादिताः॥ क्व॰ पुनः॰ तेषां॥ आवासाः॥	=उदयकी विशेषतासे प्राप्त(आपादित)हैं। बहुरि तिन (व्यन्तरों)के वासस्थान कहां हैं
इति॰ चेत्-उच्यते॥ अस्मात्॥ जम्बूद्वीपात्॥	=इसप्रकार प्रश्न या शंका (=चेत्) होने पर कहाजाय है कि इस जम्बूद्वीपसे
असंख्येयान्॥ द्वीप-समुद्रान्॥ अतीत्य–	=असंख्यात द्वीप और समुद्रोंको उलंघकरि (=अतीत्य) (इस रत्नप्रभाके)
उपरिष्टे॰ खर-पृथिवीभागे॥ सप्तानाम्॥ व्यन्तराणाम्॥	=ऊपरके अर्थात् पहिले खर पृथिवी भागमें सात व्यन्तरोंके
	(अर्थात् किन्नर किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत, पिशाचोंके)

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस सूत्रको बारहवां किया है॥

किं कृतं पुन प्राधान्य ? प्रभावात्कृतम् ॥ क्व पुनस्तेषामावासाः ? इत्यत्रोच्यते अस्मात्समानभूमिभागादूर्ध्वं सप्तयोजनशतानि नवत्युत्तराणि ७९० उत्पत्य सर्वज्योतिषामधोभागविन्यस्तास्तारकाश्चरन्ति । ततो दशयोजनान्युत्पत्य सूर्याश्चरन्ति । ततोऽशीतियोजनान्युत्पत्य चन्द्रमसो भ्रमन्ति । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य नक्षत्राणि । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य बुधा । ततस्त्रीणि

उसी प्रकार इन पांचों भेदोंको मिलाकर इसप्रकार सूत्र करते कि " सूर्य-चन्द्रमा-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्ण- कतारकाश्च" सो ऐसा सूत्र न करके "सूर्यचन्द्रमसौ" इन दो शब्दोंकी प्रथमा विभक्ति दो वचन न्यारीकी और शेष सूत्र " ग्रह-नक्षत्र प्रकीर्णकतारकाश्च" इन तीन शब्दोंकी न्यारी विभक्तिकी सो ऐसा क्यों किया । उत्तरमें कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रकी शेष तीन प्रकारके ज्योतिषी देवोंपर प्रधानता (=प्राधान्य)जतानेके लिये सूर्य-चन्द्रमाकी विभक्ति अथवा कारक न्यारा किया और शेष तीन ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारका का न्यारा कारक किया ॥

किं,॥॥ कृतम्,॥॥ पुन* प्राधान्यम्॥॥	=(प्रश्न) बहुरि क्यों प्रधानपना वा श्रेष्ठता (इन सूर्य चन्द्रकी अन्य ज्योतिषियोंपर) है
प्रभाव-आदि-कृतम्॥॥ । क्व* पुनः* तेषाम्॥	=(उत्तर) प्रताप आदिक करि (प्रधानपना) किया है । (प्रश्न) बहुरि तिनके कहां
आवासा,। इति* । अत्र* उच्यते॥	=निवास स्थान हैं (उत्तर) यहां कहा जाय है कि
अस्मात्॥ समान-भूमि-भागात्॥ ऊर्ध्वम्*	=इस (मध्यलोकके) समान भूमिभागसे अर्थात् चित्राभूमिसे ऊपरकी ओर(=ऊर्ध्वम्)
सप्त-योजन-शतानि॥॥ नवति-उत्तराणि,॥॥ उत्पत्य	=सात सौ योजन नव्वै अधिक ७९० ऊंचा (=उत्पत्य)
सर्व-ज्योतिषाम्॥ अधस्* भाग-विन्यस्ताः,।	=समस्त ज्योतिषियोंके नीचे भागमें फैले हुये (=विन्यस्त)
तारका,। चरन्ति तत* दशयोजनानि,॥॥	=तारे विचरते हैं यहांसे अर्थात् तिन तारकाओंसे दशयोजन
उत्पत्य* सूर्या,। चरन्ति-ततः* अशीति योजनानि॥॥	=ऊपर सूर्य भ्रमण करते हैं । यहांसे अस्सीयोजन
उत्पत्य* चन्द्रमसः,। भ्रमन्ति॥ तत* चत्वारि,॥	=ऊपर चन्द्रमा विचरे हैं । यहांसे चार
योजनानि,॥॥ उत्पत्य* नक्षत्राणि॥॥ ततः* चत्वारि,॥॥	=योजन ऊपर नक्षत्र (२८) हैं । यहांसे चार
योजनानि॥॥ उत्पत्य* बुधाः॥ ततः त्रीणि॥॥	=योजन ऊंचे बुद्ध हैं । यहांसे तीन

ज्योतिस्स्वभावत्वादेषां पञ्चानामपि ज्योतिष्का इति सामान्यसञ्ज्ञा अन्वर्था ॥ सूर्यादयस्तद्विशेषसञ्ज्ञा नामकर्मोदयप्रत्ययाः ॥ सूर्याचन्द्रमसाविति पृथग्ग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम् ॥

सूत्रार्थ—ज्योतिष्काः, सूर्य-चन्द्रमसौ, ग्रह-नक्षत्र च॰	=ज्योतिष्कदेव सूर्य चन्द्रमा और (=च) ग्रह, नक्षत्र
प्रकीर्णकतारकाः, पञ्च, विकल्पाः, भवन्ति	=प्रकीर्णक तारे पांच प्रकार हैं
वृत्त्यर्थ— ज्योतिः-स्वभावत्वात्, एषां, पञ्चानाम्	=ज्योतिरूप स्वभाव होनेसे इन पांचों (सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक तारों) की
अपि॰ ज्योतिष्का, इति॰ सामान्य-सञ्ज्ञा, अन्वर्था	=भी ज्योतिष्का ऐसी सामान्य संज्ञा सार्थक अर्थात् यथा नाम तथा गुणरूप है।
सूर्य-आदयः	=सूर्यादिक अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक, तारका
तद् विशेष-संज्ञा, नाम-कर्म-उदय-प्रत्ययाः	=उन (ज्योतिषी देवों)की विशेष संज्ञायें (विशेष) नाम कर्मके उदयके निमित्तसे हैं
सूर्या-चन्द्रमसौ, इति॰ पृथक्॰ ग्रहणं	=सूर्याचन्द्रमसौ ऐसे (इस सूत्रके इस भागसे) अलग (विभक्ति) ग्रहण
प्राधान्य-ख्यापन-अर्थम्	=(इन दोनों सूर्य चन्द्रकी)मुख्यता वा प्रभुता(ग्रह नक्षत्र तारकोंपर) जतानेके लिये है

अर्थात् मतलब यह है कि जैसे दसवां सूत्रमें भवनवासी देवोंके दस भेद मिलाकर कहे और अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन दे दी और व्यन्तरोंके आठ भेद मिलाकर अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन देदी।

जिनकी गति निश्चल नहीं ऐसा होनेसे सूर्य तथा चन्द्रमाके ऊपर तथा नीचे भी भ्रमण करते हैं और सूर्यसे दश योजन अवलम्ब होते हैं अर्थात् सूर्यसे दश योजन दूर रहते हैं ॥ ( ) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र॰ में हमारे यहांके 'प्रकीर्णक' शब्दके स्थानमें 'प्रकीर्ण' शब्द है। शेषपाठ एक है दोनों सम्प्रदायोंमें अर्थ लगभग एक सा है।

( )श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र'का पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च॥१३॥" श्वेताम्बर समाजके 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'–सिद्धसेनसूरि रचितका पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याः चन्द्रमसो ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्ण तारकाश्च"

(१) इस "पञ्चविकल्प" वाक्यका तीसरे सूत्रसे इस सूत्रमें लिया है अथवा अनुवर्तन किया है ( ) (प्रश्न) 'चन्द्रमस्' शब्द सूत्रमें क्यों लाये? जब पुल्लिङ्गमें तो 'चन्द्र' शब्द उसी अर्थमें लाया जाता है। अथवा इन्दु, विधु, शशाङ्क, सोम, इत्यादि इन सारे शब्दोंमेंसे कोई शब्द लाते। अमरकोश १ वर्ग ११ श्लोक (उत्तर) चन्द्र और शब्दोंसे प्रसिद्ध है परन्तु चन्द्रमा सब से प्रसिद्ध है सभी लक चन्द्रमा कहते हैं इससे सूत्रमें चन्द्रमस् शब्द लाये हैं॥

दस सीदी चदुदुगातियचउक्कम् ताराराविससिरिक्खा बुद्धभग्गवगुरुअंगिरारसणी ॥१॥

ज्योतिष्काणां गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

दस,॥॥ सीदी;॥ चदुदुग-तियचउक्क ॥॥ (दश;॥॥ अशीतिः॥ चतुर्द्विक-त्रयचतुष्कम्॥॥) } =दशयोजन अस्सीयोजन-चारयोजन दो बार अर्थात् चारयोजन चारयोजन तीनयोजन चारबार अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन,

तारा-रवि-ससि-रिक्खा,। (तारा-रवि-शशि-ऋक्षाः॥) =तारे, भानु, चन्द्रमा, नक्षत्र (अठाईस)

बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणी॥ बुध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयः॥ } =बुध शुक्र-बृहस्पति-मंगल (और) शनैश्चर (यथासंख्य सम भूमिसे विचरें) हैं

भावार्थ सम भूमि चित्रा पृथिवीसे सातसौ नब्बे योजन ऊंचे तारे हैं। तिन तारोंसे दश योजन ऊपर सूर्य हैं। तिन से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर बुध हैं। तिनसे तीनयोजन ऊर्ध्व शुक्र हैं। तिनसे तीनयोजन ऊपर बृहस्पति है। तिनसे तीनयोजन ऊंचे मंगल हैं और मंगलसे तीनयोजन ऊपर शनिश्चर हैं।

ज्योतिष्काणां॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं॥॥ आह = ज्योतिषी देवोंके गमन विशेषके ज्ञानके लिये (उपर सूत्रमें) कहते हैं कि

---

* पूज्यपाद स्वामीके मतमें चन्द्रमासे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे चारयोजन ऊपर बुध (ग्रह) हैं परन्तु तत्त्वार्थराजवार्तिकके रचयिता श्री अकलंक स्वामी तथा श्लोकवार्तिकके रचयिता आचार्य विद्यानंदि स्वामीके मतमें चन्द्रमासे तीन योजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे तीन ही योजनपर बुध हैं इन आचार्योंके मतानुसार बृहस्पति देवोंसे चारयोजनकी ऊंचाईपर मंगल हैं और मंगलसे चार योजनकी ऊंचाईपर शनैश्चर नामक ज्योतिषीदेव भ्रमण करते हैं अर्थात् सभी आचार्य (i) ज्योतिष्क समस्तदेवोंके क्रमानुसार अवस्थित (ii) तथा क्रमानुसार एक दूसरेके ऊपर ऊपर होनेमें सहमत हैं (iii) इस बातमें भी सहमत हैं कि ज्योतिष्क पटल एकसौ दशयोजन ऊंचाईमें नभमें फैल रहा है। केवल मतभेद इतना है कि एकके मतमें नक्षत्र और बुध चार चार योजन ऊंचे हैं और मंगल शनिश्चर तीन तीन योजन ऊंचे हैं अन्य आचार्योंके मतमें मंगल शनिश्चर प्रत्येक ग्रह चार चार योजन ऊंचे हैं और नक्षत्र, बुध (ग्रह) तीन तीन योजन ऊपर हैं॥ श्वेताम्बर आम्नायके समान्य० में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में ऐसा आदेश दिया है कि समान भूमिभागसे आठसौ (८००) योजनपर सूर्य है, सूर्यसे अस्सी (८०) योजनपर चन्द्रमा है और चन्द्रमासे बीस (२०) योजनपर तारा हैं श्वेताम्बर आम्नायके समान्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ १०० पर सम तल भूमि भागसे ऊपर सातसौ (७००) योजन अधिक नब्बे (९०) योजन, प्रथम ज्योतिष्क विमानका प्रस्तार है

योजनान्युत्पत्य शुक्राः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य बृहस्पतयः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्याङ्गारकाः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य शनैश्चराश्चरान्ति । स एष ज्योतिर्गणगोचरो नभोऽवकाशो दशाधिकयोजनशतबहल-स्तिर्यगसङ्ख्यातद्वीपसमुद्रप्रमाणो घनोदधिपर्यन्तः ॥ उक्तं च-णउदुत्तरसत्तसया—

योजनानि ॥ उत्पत्य • शुक्राः ॥ ततः • त्रीणि ॥ =योजन ऊंचे शुक्र हैं। यहां से तीन

योजनानि ॥ उत्पत्य • बृहस्पतयः ॥ ततः • त्रीणि ॥ =योजन ऊंचे बृहस्पति हैं। यहां से तीन

योजनानि ॥ उत्पत्य • अङ्गारकाः ॥ ततः • त्रीणि ॥ =योजन ऊपर मंगल हैं। यहां से तीन

योजनानि ॥ उत्पत्य • शनैश्चराः ॥ चरन्ति T =योजन ऊपर शनैश्चर भ्रमण करते हैं।

सः ॥ एषः ॥ ज्योतिर्गण-गोचरः ॥ नभस् अवकाशः ॥ =सो यह ज्योतिष्क मंडल (=गण) के विषयरूप (=गोचर) आकाशका स्थानदेना (अवकाश)

दश-अधिक-योजन-शत-बहलः ॥ =दश ऊपर सौ योजन मोटा (=बहल) है अर्थात् इस समतल भूमिसे अर्थात् चित्रा पृथिवीसे सातसौनब्बे योजनके ऊपर नौसौ योजन पर्यन्त एकसौदश योजन मोटा ज्योतिषी देवोंका पटल है

तिर्यक् • =और तिर्यग् विस्तार अर्थात् तिरछा या दायें बायें या इधर उधर फैलाव

असंख्यात-द्वीप-समुद्र-प्रमाण ॥ घनोदधिपर्यन्तः ॥ =असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण (लम्बा चौड़ा) घनोदधि वातवलय पर्यन्त है अर्थात् घनोदधिवातवलय (जो घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय जो तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने ही आधार है) गीली पवनका है उसके भीतर इनका तिर्यग् विस्तार नहीं है वरन जहां यह घनोदधिवातवलय आरम्भ हुआ है वहां इन ज्योतिष्क देवोंके विस्तारका अंत है (घनोदधि पर्यन्त वाक्य का आशय और भावार्थ मेरी समझमें ऐसाही आया है वह स्पष्ट करदिया, शेष पाठकगण निर्णय करें)

उक्तम् ॥ च • णउदु-उत्तर-सत्तसया(नवति उत्तर-सप्तशतानि ॥) =कहा गया भी है कि नब्बे ऊपर सातसौ योजन अर्थात् सातसौ नब्बे योजन

• यह गाथा जिस स्थानसे लीनी है उसके पाठकी आर्यामें 'योजन' शब्द का जो प्रकरणवश इस गाथामें नहीं है अनुवर्तन करना चाहिये।

तिर्यग् असंख्यात द्वीप-समुद्रप्रमाणः घनोदधिपर्यंत	=(और) तिरछा विस्तार असंख्याते द्वीप समुद्र प्रमाण घनोदधि वातवलय तक है।
शके च-नवयुत्तरसप्तशत्या (भवति उत्तर-सप्तशतानि)	=कहा जाता भी है कि नव्वे ऊपर सातसौ (योजन) अर्थात् सातसौ नव्वे योजन
दस-सीदि-चदु तिगं च दुगचदुक्कं दस असीति-चतुःत्रिक-च द्विक चतुष्कम्	=दशयोजन, अस्सीयोजन, चारबार तीनयोजन, और (=च) दोबार चार योजन अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन और चारयोजन चारयोजन (चित्रा भूमिके समतलसे उत्तरोत्तर-क्रमसे)
तारा-रवि-ससि-रिक्खा (तारा-रवि शशि-रिक्षाः)	=तारे, सूर्य, चन्द्रमें, नक्षत्र
बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणी बुध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनय	=बुध शुक्र-बृहस्पति-मंगल शनिश्चर (हैं) (विद्यमान) हैं

यह आर्या छंदके सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें (और एक हस्त लिखित प्रतिमें भी) और राजवार्तिक की दो मुद्रित प्रतियोंमें, पन्नालाल दूनीकी हस्तलिखित प्रतिमें तथा पन्नालाल न्यायदिवाकर हस्तलिखित और अनुवादित एक प्रतिमें भी प्रथम, तृतीय और चतुर्थ पाद शब्दशः एक ही है केवल द्वितीय पादके अंत भागके पाठमें सर्वार्थसिद्धिका पाठ "चदुदुग तियचदुक्कं" (चार दोबार तीन चारबार) के स्थानमें तत्त्वार्थराजवार्तिक में "चदु तिगं" व "दुग चदुक्क" पाया जाता है इसीसे अर्थमें भेद है जिसको हम ऊपर लिख चुके हैं और दोनों पाठोंमें जो अन्तर है वह तृतीय पादका भी अर्थ दोनों मतानुसार ऊपर लिख चुके है विद्यानंदि स्वामीने 'मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके' ॥१३॥ इससूत्रके नीचे अकलंक स्वामी से सहमत होते हुये निम्न श्लोक दिये हैं :—

योजनानां शतान्यष्टौ (=शतानि अष्टौ) हीनानि दश योजनैः। उत्पत्य तारकास्तावच्चरंत्यध (तारकाः तावत् चरंति अधस्) इति श्रुतिः =आठसौ योजनमेंसे दशयोजन कमि यानि सातसौ नव्वे योजन तो (चित्रा भूमिके समतलसे) ऊपर (=उत्पत्य) तारे (सब ज्योतिष्कोंसे) नीचे विचरते हैं ऐसा शास्त्र है॥ ततः सूर्या दशोत्पत्य (दश-उत्पत्य) योजनानि महाप्रभाः। ततश्चंद्रमसो शीतिं (ततः चन्द्रमसोऽशीतिं) मानि श्री चे तदधः (ततः अध) ॥४॥ इन (तारकाओं) में दशयोजन ऊपर महाप्रमाणवाले सूर्य भ्रमते हैं। उन (सूर्योंसे) अस्सीयोजन (ऊपर) चन्द्रमें हैं। इन तीनोंसे (ऊपर) तीन (त्रीणि) योजन नक्षत्र हैं ॥५॥ त्रीणि त्रीणि बुधाः शुक्रा गुरवश्चोपरि (च्गुरवः च उपरि) क्रमात्। चत्वारिंगारका स्तद्वच्चत्वारि (=चत्वारि-अंगारका तद्वत् चत्वारि) च शनैश्चराः ॥६॥ तीन तीन (योजन) बुध शुक्र बृहस्पति क्रमसे (एक दूसरेके) ऊपर हैं। वैसे ही (=तद्वत) चारयोजन ऊपर मंगल है और (=च) चारयोजन ऊपर शनीश्चर है ॥७॥ भाषाके टीकाकार पं० सदासुख जी और पं० जयचंद राय जी ने अकलंकदेव स्वामी और विद्यानन्दि स्वामीके मतानुसार अर्थ प्रकाशिका और सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें उल्लख किया है परन्तु कविवर धानतराय जीने चरचा शतकमें (संवत् १७८०) पूज्यपाद स्वामीके मतानुसार ऐसा छप्पयछंद बनाया है कि "सात सतक अरु नव्वे दासपर तारे रावें। ता ऊपर दशमम ससीपर नछत्र दिपावें। चार नछत बुधचार तीनपर शुक्र बतायो। तीन गुरु कुज तीन तीन पर शनि (=शनिश्चर) ठहरायो

उसके दश योजन ऊपर भानु या सूर्य विमानका प्रस्तार या पटल है। उसके ऊपर अस्सी योजन चन्द्रमाके विमानका प्रस्तार है। तिस (चन्द्र विमान) के ऊपर तीस योजन तारा ग्रहोंके विमानका विस्तार है। इस प्रकार ज्योतिषलोक एकसौ दश योजन मोटा है। ऐसो भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका हमी सूत्रपर पृष्ठ १४४ जहांमें उपर्युक्त भाष्यका शब्दशः अनुवाद किया है। संस्कृतभाष्य विस्ताररूपमें नहीं दिया है। ऊपरसे स्पष्ट है कि उनके यहां न्यू वा भाष्योंमें विशेषरूपसे नहीं दर्शाया है कि जिससे हमको निश्चय करनेमें सहायता मिले। एक बातको आचार्योंके मतमें पढ़कर बहुत अचम्भित और विस्मय हुआ कि उसी एक गाथासे पूज्यपाद स्वामीने अपना मत पोषण किया है और उसी गाथामें कुछ एक शब्दको परापेरी सहित अकलंक स्वामीने अपना मत पोषण किया है। अब हम उन तीनों आचार्योंका मत शब्दशः लिखते हैं। पूज्यपाद स्वामीका मत शब्दशः हम पृष्ठ ३१, ३२ ३३ में लिख चुके हैं विस्ताररूपसे दुहरानेकी आवश्यकता नहीं।

(१) अकलंक स्वामीका मत ऐसे है कि—

अस्मात् समात् भूमिभागात् ऊर्ध्वं सप्तयोजनशतानि	=इस समतल (चित्रा पृथिवीके) भूमिभागसे ऊपर सातसौ योजन (और)
नवत्युत्तराणि उत्प्लुत्य	=नव्वे सहित ऊंचाईपर (=उत्प्लुत्य) अर्थात् सातसौ नव्वे योजनकी ऊंचाईपर
सर्वं ज्योतिषां अधोभाविन्यः तारकाः चरन्ति	=समस्त ज्योतिषीदेवोंमें नीचे रहने वाले (=अधोभाविन्य) तारे भ्रमण करते हैं।
ततो दशयोजनानि उत्प्लुत्य सूर्याः चरन्ति	=उन (तारों) से दशयोजन ऊंचाई पर (=उत्प्लुत्य) सूर्य भ्रमण करते हैं।
ततः अशीति योजनानि उत्प्लुत्य चन्द्रमसः भ्रमंति	=उन (सूर्यों) से अस्सी योजन ऊंचाईपर या चढ़करकर चन्द्रमा भ्रमण करते हैं।
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य नक्षत्राणि	=उन (चन्द्रमाओं) से तीन योजन ऊंचाईपर नक्षत्र (भ्रमण करते हैं)
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बुधाः	=उन (नक्षत्रों) से तीन योजन ऊंचाईपर बुध (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य शुक्राः	=उन (बुधदेवों) से तीन योजन ऊपर शुक्र (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बृहस्पतयः	=उन शुक्र (देवोंसे) तीन योजन ऊपर बृहस्पति (देव) हैं
ततः चत्वारि योजनानि उत्प्लुत्य अंगारकाः	=उन बृहस्पति (देवों) से चार योजन ऊंचे मंगल (=अंगारका) भ्रमण करते) हैं
ततः चत्वारि योजनानि उत्क्रम्य शनैश्चराः चरन्ति	=उन (मंगल देवों)से चार योजन ऊंचे (=उत्क्रम्य) शनिश्चर (भ्रमण करते) हैं
सः एषः ज्योतिर्गणगोचरः नभ अवकाशः दशाधिक—	=सो यह ज्योतिषियोंका समूहके गोचर आकाशका अवकाश या आकाशदेश दशऊपर
योजनशतबहुलः	=सौ योजन मोटा है (=बहुलः =बहुलः) अर्थात् एक सौ दश योजन गगनमें फैले हुये पटलमें

ज्योतिष्कविमानाना गतिहेत्वभावात्तद्वृत्त्यभाव इति चेन्न, असिद्धत्वात् ॥ गतिरताभियोग्यदेवप्रेरितगतिपरिणामात्कर्मविपाकस्य वैचित्र्यात्तेषा हि गतिमुखेनैव कर्म विपच्यत इति ॥ एकादशभिर्योजनशतैरेकविंशैर्मेरुमप्राप्य ज्योतिष्का प्रदक्षिणाश्चरन्ति ॥ गतिमज्ज्योतिरसम्बन्धेन व्यवहारकालप्रतिपत्त्यर्थमाह

॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

ज्योतिष्क विमानानाम्॥ गति हेतु अभावात्॥	=(प्रश्न) ज्योतिषी देवोंके विमानोंके गमनका कारण न होनेसे
तद्-वृत्ति-अभावः॥ इति॥ चेत्॥ न॥	=उस (गति)का प्रवर्तन नहीं (=अभाव) है। ऐसा संदेह होना चाहिये (उत्तर) (शंका) नहीं (क्योंकि यह कहना कि ज्योतिषीदेवोंके विमान स्थिर हैं इससे गमन नहीं करते हैं)
असिद्धत्वात्॥ गति-रत आभियोग्य-	=असिद्ध होता है। क्योंकि गमन विषैं लीन ऐसे आभियोग्य जातिके
देव-प्ररित-गति-परिणामात्॥	=देवोंकरि किया (=प्रेरित) गमन परिणाम है। अर्थात् गतिरूप अवस्थामें परिवर्तन अथवा पलटाव है ॥
कर्म-विपाकस्य॥ वैचित्र्यात्॥ तेषाम्॥ हि॥	=सो कर्मकी उदयकी विलक्षणतासे तिन (आभियोग्य जातिके देवों) के ही
गति मुखेन॥ एव॥ कर्म॥ विपच्यते॥ इति॥	=गमन रूप प्रधानतासे ही कर्म पकाया जाता है अर्थात् उदय होता है।
एकादशभिः॥ योजन शतैः॥ एकविंशैः॥ मेरुम्॥ अप्राप्य	=ग्यारह सौ इक्कीस योजन मेरु को छोड़कर (परे)
ज्योतिष्काः॥ प्रदक्षिणाः॥ चरन्ति। गतिमत्-ज्योतिस्	=ज्योतिषी देव प्रदक्षिणा करते हैं। गमन करने वाले अथवा गतिमान्ज्योतिषीयोंके
सम्बन्धेन॥ व्यवहार-काल-प्रतिपत्ति अर्थम्॥ आह।	=सम्बन्धसे व्यवहार कालके जाननेके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

[1]सूत्रम्— तत्कृत कालविभाग ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—तत्कृतः॥ (=तत्-कृत)काल विभागः	=तिन गतिमान् ज्योतिषियों से (=तत्) कियागया काल या समयका विभाग है अर्थात् गमन करतेहुये सूर्य चन्द्रमादिक द्वारा व्यवहार कालके भाग जैसे समय, आवली, पल, घड़ी, पहर, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, इत्यादि सूचित कियेजाते हैं

(१) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा सिद्धसेन सूरिरचित भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें तथा हमारे यहां सर्वत्र इस सूत्रका एक पाठ और अर्थ है॥

॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

मेरोः प्रदक्षिणा, मेरुप्रदक्षिणाः। मेरुप्रदक्षिणा इति वचनं गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं विपरीतगतिर्मा विज्ञायीति ॥ नित्यगतय इति विशेषणमनुपरतक्रियाप्रतिपादनार्थम्। नृलोकग्रहणं विषयार्थम्। अर्धतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोर्ज्योतिष्का नित्यगतयो नान्यत्रेति ॥

सूत्रम्— मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥	=(ज्योतिष्काः) मेरु प्रदक्षिणाः नित्यगतय नृलोके ॥१३
सूत्रार्थ— ज्योतिष्काः ॥	=(ये पांच प्रकारके) ज्योतिषीदेव
मेरु-प्रदक्षिणाः ॥	=सुमेरुकी प्रदक्षिणा देते हुये अथवा मंडलाकार फिरते हुये
नृ-लोके ॥ नित्य-गतयः ॥	=मनुष्य लोकमें अर्थात् अढाई द्वीप और दो समुद्रोंमें निरन्तर गमन करनेवाले हैं
टीकानुवाद— मेरोः ॥ प्रदक्षिणा ॥ मेरु-प्रदक्षिणा ॥	=सुमेरुके मंडलाकार फिरना सो मेरुप्रदक्षिणा है।
मेरु-प्रदक्षिणा ॥ इति • वचनं ॥ गति-विशेष—	=मेरुप्रदक्षिणा ऐसा वाक्य गमनविशेष
प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ विपरीतगतिः ॥ मा • विज्ञायि-इति	=जाननेके लिये है अन्य प्रकार गमन न जाना अर्थात् पूर्वोक्त ज्योतिषी देवोंका गमन सुमेरु पर्वतके मंडलाकार ही जानो भिन्न प्रकारसे न जानना
नित्य-गतयः ॥ इति • विशेषणं ॥ अनु-उपरत—	=(सूत्रमें) 'नित्यगतय' ऐसा गुणवाचक शब्द निरन्तर अथवा लगातार
क्रिया-प्रतिपादन-अर्थम् ॥ नृ-लोक—	=(गमनरूप) क्रियाके जतलानेके लिये है। मनुष्य लोकका
ग्रहणं ॥ विषय-अर्थम् ॥	=ग्रहण क्षेत्र (=विषय) के लिये है। अर्थात् ज्योतिषी देवोंके गमनकी मर्यादा अथवा सीमाके लिये है।
अर्ध-तृतीयेषु । द्वीपेषु ॥ द्वयोः • च समुद्रयोः ॥	=अढाई (=अर्धतृतीयेषु) द्वीपमें और (=च) दो समुद्रोंमें
ज्योतिष्काः ॥ नित्यगतयः ॥ न-अन्यत्र • इति •	=ज्योतिषीदेव नित्यगमन (करने) वाले हैं न दूसरे स्थानमें।

• श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगम सूत्रका पाठ और हमारे यहाँ का पाठ और अर्थ एक है परन्तु उनके यहाँके आम्नायानुसारिणी तत्त्वार्थटीका हस्तलिखितमें (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में 'मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयः' ऐसा पाठ है ॥

गति क्रिया रहित केवल ज्योतिषियोंको परिवर्तन रहित स्थिर माना जायगा।

स्थितिशील ज्योतिषियोंसे कालका निर्णय नहीं हो सकता। इसलिए कालके निश्चयमें गतिमान ज्योतिषी ही असाधारण कारण हैं। उन्हींसे कालका निर्णय होता है राजवार्तिक अनुवादित पं० गजाधरलाल शास्त्री पं० मक्खनलाल न्यायालंकारद्वारा संशोधित पृष्ठ१०३॥

अर्थ—सूत्रके विषैं तत् शब्दका ग्रहण है सो गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है" अथ टीकाका—गतिरूप परिणत जे ज्योतिषी देव गति विशिष्ट ज्योतिषीनिके ग्रहण के अर्थ सूत्र के विषैं तत् शब्द कह्या है॥

जहां यह व्यवहारकाल है सो केवल गतिही करि तथा ज्योतिषीनिकरि नाहीं जान्या जावहै॥ जातैं गमनतो इनका कछु भी दीखै नाहीं और गमन न होय तो ज्योतिषीनिका परिवर्तनका अभाव होय सो ये स्थिती रहै॥ जैसे गमनकी अनुपलब्धितैं तथा ज्योतिषीनिके अपरिवर्तनतैं व्यवहार काल नहीं जाना जाय है॥

तातैं निश्चयकरि (=हि) ज्योतिषिनिके परिवर्तनतैं व्यवहारकाल जाना जाय है' पं० पन्ना लाल न्याय दिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थ रत्नमाला पृष्ठ ८३३ "गतिमान ज्योतिषीनिका क्रिया काल विभागकूं बतावने के अर्थ तत् ऐसो शब्द कहिये है। अर निश्चयकरि केवल गति करि भी काल नहीं जानिये है अर केवल ज्योतिषीनिकरि भी काल नहीं जानिये है क्योंकि अनुपलब्धितैं कि प्रत्यक्ष नहीं दीखनेतें। अर अपरिवर्तनतें कालकी सत्ता नहीं जात होय है अर्थात् काल प्रत्यक्ष भी नहीं दीखै है अर कालका पलटना भी नहीं होवे है। तातैं ज्योतिषीनिका परिवर्तन करिही कालका ज्ञापन है" ॥ पं०पन्नालाल जी कृत भूमिकाके अनुवादित राजवार्तिक पृष्ठ २१॥

मैंने पं० पन्नालालकी भूमिकाके के साथ सहमत होकर ऊपर अनुवाद किया है॥ मुझको लगभग चालीस वर्ष प्रथम भी सन्देह हुआ था कि अनुपलब्धेरप रिवर्तनाच्च" वाक्यका अनुवाद ठीक नहीं है उस समय मैंने उसे छोड़ दिया था अब इन्द्रप्रस्थमें नाना प्रकार के साधन प्राप्त होने पर किया है॥ कारण यह है कि ज्योतिषियों का गमन अनुपलब्ध नहीं है क्योंकि हम सर्व उनका गमन प्रत्यक्ष आंखों से देखते हैं निस्संदेह काल प्रत्यक्ष नहीं दीखता है और कालका पलटना भी नहीं दीखता है॥ स्मरण रहे कि जितने भी ज्योतिषीदेव स्थिर हैं उनका गमन नहीं होता अतः नहीं देखा जासकता है॥

...गमा व सदा कहनेके लिए (...) ...

तद्ग्रहणं गतिमज्ज्योति प्रतिनिर्देशार्थम्। न केवलया गत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भि काल परि-च्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च॥

पृथग्नुवादः—तद्-ग्रहणम्।।गतिमत्-ज्योतिस्	=(सूत्रमें) तत् शब्दका आदान गमन सहित ज्योतिषी देवों
प्रति॰निर्देश-अर्थम्।।न॰केवलया।।गत्या।।	=के (=प्रति) कथनके लिये है न अकेले गमनसे (और)
न॰अपि॰केवलैः।।ज्योतिर्भिः।।कालः।।परिच्छिद्यते।	=न केवल ज्योतिषी देवों करि ही (=अपि) (यह व्यवहार) काल जानाजाता है (गमन करतेहुये ज्योतिषी देवोंकरि ही उक्त व्यवहारकाल समय आवलीआदि ज्ञात है)
अनुपलब्धेः।।च॰	=क्योंकि (व्यवहार काल) प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा नहीं देखाजासका है और (=च)
अपरिवर्तनात्।।।	=न (उस व्यवहार काल का) पलटना (भी दीखे है)

(१) अनुपलब्धेः और अपरिवर्तनात् ये दो शब्द व्यवहार काल से सम्बन्ध रखते हैं अथवा ज्योतिष्क देवों से अर्थात् व्यवहार काल प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा और उस व्यवहारकालका परिवर्तन और पलटन नहीं दीखते हैं अथवा ज्योतिषी देवोंकी गति, गमन नहीं देखा जासका है और वे परिवर्तन रहितहैं अर्थात् अवस्थित हैं। इस 'तत' शब्दके सम्बन्धमें हमको श्लोकवार्तिकमें अर्थप्रकाशिकामें पं॰सदासुखजीकी लघुटीकामें श्वेताम्बरसम्प्रदायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उसकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें तथा दो चार अन्य भाषाओंकी टीका में कुछ भी नहीं मिलता है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें ठीक उसी आशय का लेख है जो सर्वार्थसिद्धि में है जैसे

संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका पाठ

तद् ग्रहणं गतिमज्ज्योति प्रतिनिर्देशार्थम्

न केवलया गत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः कालः परिच्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च॥

...तो तत्शब्दका ग्रहण गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है। ...यह व्यवहार काल केवल गतिही करि तथा केवल ज्योतिषीहीनिकरि नाहीं ...ज्या जावै जातैं गमनतो इनिका काहू कू दीखै नाहीं। बहुरि गमन न होयतो ...फिरती रहैं। तातैं दोनों सम्बन्ध लेना" प॰ जयचन्दजी कृत वचनिका मुद्रित ...३ २५७ हस्तलिखित पृष्ठ १५७ वा १५८

तत्त्वार्थ राजवार्तिकालङ्कार का पाठ

तद्ग्रहणं गतिमज्ज्योति प्रति निर्देशार्थम् ॥१॥

गतिमतां ज्योतिषां प्रतिनिर्देशार्थं तदित्युच्यते

नहि केवलगत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः काल परिच्छिद्यते अनुपलब्धेर परिवर्तनाच्च ज्योतिः परिवर्तनलभ्यो हि कालपरिच्छेदः।

"सूत्रमें जो तत् शब्दका ग्रहण किया गया है वह गतिमान ज्योतिषियोंके ग्रहणार्थ है ॥१॥ केवल गति क्रियाके आधीन कालका निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि गतिकी अनुपलब्धि है नेत्र से नहीं दीखपड़ती। केवल ज्योतिषियों सेभी काल का निश्चय नहीं होसकता क्योंकि

मति क्रिया रहित केवल ज्योतिषियोंको परिवर्तन रहित स्थिर माना जायगा।

स्थितिशील ज्योतिषियोंसे कालका निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये कालके निश्चयमें गतिमान ज्योतिषी ही असाधारण कारण हैं। उन्हींसे कालका निर्णय होता है राजवार्तिक अनुवादित पं० गजाधरलाल शास्त्री पं० मक्खनलाल न्यायालंकारद्वारा संशोधित पृष्ठ१०३५॥

अर्थ—सूत्रके विषैं तत् शब्दका ग्रहण है सो गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है"

अथ टीकाका—गतिरूप परिणये जे ज्योतिषी ऐसे गति विशिष्ट ज्योतिषीनिके कहन के अर्थ सूत्र के विषैं तत् शब्द कह्या है॥

तहां यह व्यवहारकाल है सो केवल गतिही करि तथा ज्योतिषीनिकरि नाहीं जान्या जावहै॥ जातैं गमनतो हमका काहू कूं दीखै नाहीं और गमन न होय तो ज्योतिषीनिका परिवर्तनका अभाव होय तो न दिखते रहैं॥ ऐसे गमनकी अनुपलब्धितैं तथा ज्योतिषीनिके अपरिवर्तनतैं व्यवहार काल नहीं जाना जाय है॥

तातैं निश्चयकरि (=हि) ज्योतिषिनिके परिवर्तनतैं व्यवहारकाल जाना जाय है पं० पन्नालाल न्याय दिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थ रत्नमाला पृष्ठ ८३३

'गतिमान ज्योतिषीनिका क्रिया काल विभागहूं जनावने के अर्थ तत् ऐसोग्रहण कहिये है। अर निश्चयकरि केवल गति करि भी काल नहीं जानिये है अर केवल ज्योतिषीनिकरि भी काल नहीं जानिये है क्योंकि अनुपलब्धितैं कि प्रत्यक्ष नहीं दीखनेतैं। अर अपरिवर्तनतैं कालकी सत्ता नहीं जात होय है अर्थात् काल प्रत्यक्ष भी नहीं दीखै है अर कालका पलटना भी नहीं दीखै है। यातैं ज्योतिषीनिका परिवर्तन करिही कालका ज्ञानपना है" ॥ पं०पन्नालाल जी दूनीवाले अनुवादित राजवार्तिक पृष्ठ २१॥

मैंने पं० पन्नालालजी दूनीवाले के साथ सहमत होकर ऊपर अनुवाद किया है॥ मुझको लगभग वर्षपूर्व प्रथम भी सन्देह हुआ था कि अनुपलब्धेरप रिवर्तनाच" वाक्यका अनुवाद ठीक नहीं है उस समय मैंने उसे छोड़ दिया था अब इन्द्रप्रस्थमें नाना प्रकार के साधन प्राप्त होने पर लिखा है॥ कारण यह है कि ज्योतिषियों का गमन अनुपलब्ध नहीं है क्योंकि हम सर्व उनका गमन प्रत्यक्ष आंखों से देखते हैं किसतरह काल प्रत्यक्ष नहीं दीखता है और कालका पलटना भी नहीं दीखता है॥ स्मरण रहै कि जितने ही ज्योतिषीदेव थिर हैं उनका गमन नहीं होता अतः नहीं देखा जासकता है॥

कालो द्विविधो व्यावहारिको मुख्यश्च ॥ व्यावहारिक कालविभागस्तत्कृत समयावलिकादिः क्रियाविशेषपरिच्छिन्नोऽन्यस्यापरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतु ॥ मुख्योऽन्यो वक्ष्यमाणलक्षण ॥ इतरत्र ज्योतिषामवस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥

बहिरित्युच्यते, कुतो बहि ? नृलोकात ॥ कथमवगम्यते ?

कालः द्वि विधः व्यावहारिकः मुख्यः च	=काल दो प्रकार है व्यवहार और निश्चय (=परमार्थकाल) अर्थात् कालके अणु ॥
व्यावहारिकः काल-विभागः तत्-कृतः	=व्यवहार कालका विभाग तिन(गमन करते हुये ज्योतिषी देवों)से सूचितक्रियारूपा
समय आवलिक आदिः क्रिया विशेष-परिच्छिन्नः	=समय, आवली आदिक क्रिया विशेषकरि जाना गया है।
अन्यस्य अपरिच्छिन्नस्य परिच्छेद-हेतुः	=(सो) दूसरे बिना जाने हुयेके जनावनेका कारण है। अर्थात् उस व्यवहारकालके विभाग समय आवली घटिका, दिन, मास, वर्ष, इत्यादि दूसरे निश्चयकाल जो जाननेमें नहीं आसक्ता है। उसके सूचित करने वा जनावने का कारण है।
मुख्यः अन्यः वक्ष्यमाण-लक्षणः ॥	=दूसरा परमार्थ कालका कहेंआनेवाला स्वरूप (अ०पांच २२,३९,४०सूत्रोंमें) है
इतरत्र ज्योतिषाम् अवस्थान प्रतिपादन अर्थम् आह	=यहां (मनुष्यलोक)से भिन्न ज्योतिषी देवोंके अवस्थितहोनेके कथनको कहते हैं कि
सूत्रम्—बहिरवस्थिता ॥ १५ ॥	=([2]ज्योतिष्का [1]नृलोकात्)बहिर् अवस्थिता (भवन्ति)।१५।
सूत्रार्थ—ज्योतिष्काः नृ-लोकात्	=ज्योतिषी देव मनुष्य लोक से अर्थात् जम्बूद्वीप धातकी खंड, पुष्करार्ध और लवणोदधि और कालोदधि दो समुद्रोंसे
बहिर् अवस्थिता भवन्ति।	=बाहिर गमन रहित हैं (जहां के तहां स्थिर रहते हैं)
वृत्त्यनुवाद—बहिर् इति उच्यते। कुत बहिः	=बाहिर ऐसा (सूत्रमें) कहा गया है। (प्रश्न) कहां से बाहिर
नृ-लोकात् कथम् अवगम्यते।	=(उत्तर) मनुष्यलोकसे (बाहिर) (प्रश्न) (मनुष्यलोकसे बाहिर यह) कैसे जानागया

(१) भगवत्पूज्यपादाचार्य कृत सर्वार्थसिद्धि टीका में तथा भ गवानुभावसिको तत्वार्थबोधिनी टीकामें और हमारे यहां सबमें इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है।
२) (१) 'ज्योतिष्क' बारहवां और नृलोकात् तेरहवां सूत्रसमसे लियेगये हैं। सबकीसन्धिकरनेसे ज्योतिष्का नृलोकाद्बहिरवस्थिता "ऐसासूत्रहोगा।

अर्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवति ॥ ननु च नृलोके नित्यगतिवचनादन्यत्रावस्थान ज्योतिष्काणा सिद्ध । अतो वहिरवस्थिता इति वचनमनर्थकमिति । तन्न । किं कारणम् ? नृलोकादन्यत्र वहिर्ज्योतिपामस्तित्वमवस्थान चासिद्धम् । अतस्तदुभयसिध्यर्थं वहिरवस्थिता इत्युच्यते ॥ विपरीतगतिनिवृत्त्यर्थं कादाचित्कगतिनिवृत्त्यर्थं च सूत्रमारब्धम् ॥

तुरीयस्य निकायस्य सामान्यसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमाह—

अर्थवशात्॥विभक्ति-परिणामः॥भवति।	=(उत्तर)अभिप्रायकेवशसे वा सामर्थ्यसे विभक्तिका पलटाव,वा परिणमनहोजाताहै अर्थात् १३ वां सूत्रमें कहा है कि "नित्यगतयो नृलोके" (=नरलोकमें नित्यगमनकरनेवाले हैं) इस वाक्यसे स्वाभाविक प्रश्न आता है कि नरलोकमें तो नित्यगमनकरनेवाले हैं। फिर नरलोकसे बाहिर क्या हैं यहां पर सप्तमी विभक्ति "नरलोकमें" अभिप्रायवश पंचमी विभक्ति "नरलोकसे" में परिणमन होजाती है अथवा परिवर्तन करली जाती है
ननु॥च॥नृलोके॥नित्य-गति-वचनात्॥अन्यत्र॥	=शङ्काकार मनुष्यलोकमें नित्यगमन(एस)वाक्यसेयहां(मनुष्यलोक)सेअन्यस्थानमें
अवस्थानम्॥ज्योतिष्काणाम्॥सिद्धम्॥	=ज्योतिषी देवोंका अवस्थान सिद्ध वा निष्पन्न है।
अत॥बहिर्॥अवस्थिताः॥इति॥वचनम्॥	=इस लिये "बहिर् अवस्थिताः" ऐसा वचन अर्थात् यह पन्द्रहवां समस्त सूत्रही
अनर्थकम्॥इति॥। तत्॥न॥	=निष्प्रयोजन है (उत्तर) सो (=तद्) नहीं है
किम्॥कारणम्॥नृ लोकात्॥अन्यत्र॥	=क्या कारण कि मनुष्य लोकसे अन्यत्र
बहिर्॥ज्योतिषाम्॥अस्तित्वम्॥अवस्थानम्॥च॥असिद्धम्॥	=बाहिर ज्योतिषी देवोंकी विद्यमानता औरगमनका अभाव (१५सूत्रसे सिद्ध है)
अतः॥तद् उभय सिद्धि अर्थम्॥	=इसलिये उन(=तद्) दोनों (अस्तित्व सत्ता और अवस्थान स्थिरता)प्राप्तिकेलिये
"बहिरवस्थिताः"॥इति॥उच्यते। ॥ विपरीत गति	= "बहिरवस्थिता"ऐसा(सूत्र)कहागया है। उलटागमन अर्थात् अप्रदक्षिणारूपगतिके
निवृत्ति अर्थम्॥कादाचित्क गति-निवृत्ति अर्थम्॥च॥	=निषेधके लिये और (=च) कभी कभी होने वाले गमन के निराकरणकेलिये
सूत्रम्॥आरब्धम्॥तुरीयस्य॥निकायस्य॥	=(यह पन्द्रहवां) सूत्र आरम्भ कियागया है ॥ (देवोंकी) चौथे समुदायकी
सामान्य-सञ्ज्ञा-सङ्कीर्तन अर्थम्॥आह।	=सामान्य संज्ञा कहनेके लिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

॥ वैमानिका ॥ १६ ॥

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम् । इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादिति अधिकार क्रियते ॥ विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि । विमानेषु भवा वैमानिका ॥ तानि विमानानि त्रिविधानि । इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन ॥ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि ।

[1]सूत्रम्—वैमानिका ॥ १६ ॥	=([3]चतुर्थ [2]देवनिकाय) वैमानिका (सामान्यसञ्ज्ञा भवति)
सूत्रार्थ—चतुर्थः देवनिकायः वैमानिकाः सामान्यसंज्ञा भवति	=चौथा देवोंका समुदाय वैमानिक ऐसी (उन देवों की) सामान्य संज्ञा है
वृत्त्यनुवाद—वैमानिक-ग्रहणम् अधिकार-अर्थम्	=वैमानिक शब्दका ग्रहण अधिकार या प्रकरण के लिये है
इतः उत्तरम् वक्ष्यन्ते तेषाम्	=यहांसे आगे जो कहे जायगे तिनकी
वैमानिक-सम्प्रत्ययः [4]यथा स्यात्	=यथायोग्य वैमानिक संज्ञा जानना चाहिये वा समझना चाहिये(=सम्प्रत्यय स्यात्)
इति अधिकारः क्रियते ॥ विशेषेण आत्मस्थान्	=(यहां) ऐसा प्रकरण किया गया है ॥ जिनमें रहनेवाले जीवोंको विशेषकरि
सुकृतिनः मानयन्ति इति विमानानि	=पुण्यवंत (भव्यजीव) मानते हैं । ऐसे विमान हैं ॥
विमानेषु भवाः वैमानिकाः । तानि विमानानि	=विमानोंमें (उत्पन्न) होनेवाले वैमानिक हैं । वे विमान
त्रिविधानि इन्द्रक-श्रेणि-पुष्पप्रकीर्णक भेदेन	=तीन प्रकार इन्द्रक, श्रेणीबद्ध, और पुष्पप्रकीर्णक भेदसे हैं ।
तत्र इन्द्रक विमानानि इन्द्रवत् मध्ये व्यवस्थितानि	=वहां इन्द्रक विमान इन्द्रके समान बीचो बीचमें (=मध्य) तिष्ठते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ (२) इस शब्दकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पहिले सूत्रसे की गई है ।
(३) क्योंकि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें देवोंके चार निकाय या समुदाय कहे हैं और १०वां ११वां १२वां सूत्रोंमें भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी सामान्य और विशेषसंज्ञायें यथाक्रम कही हैं । तब केवल चौथासमुदाय अवशेष रहता है इसलिये चतुर्थशब्दका अध्याहार(=यह वाक्य को स्पष्ट समझमें न आसके उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करलेना) इस सोलवां सूत्र में किया है ॥
(४) यहां 'यथा' शब्द यथायोग्यके अर्थ में लाया गया जान पड़ता है अर्थात् जिस जिस प्रकारके वैमानिक देव हैं जैसे कल्पोपपन्न उनमें भी सौधर्मादि आदिके देव और कल्पातीत वैमानिक इत्यादि को तैसे तैसे यथायोग्य जानो ॥ यथायोग्य यथाचित यथाविधि विधिपूर्वक ये चारों समान अर्थ वाचक हैं ॥ सस्कृत वृत्तिहस्तलिखित दो प्रतियोंसे मिलान किया तो यथा शब्द ही पाठ प्राप्त हुआ परन्तु राजवार्तिक मुद्रित तथा दो हस्त लिखित प्रतियों में "वैमानिक सम्प्रत्यय कथ स्यादित्यधिकार क्रियते" अर्थात् 'यथा' शब्दके स्थान में कथम् शब्द है ॥ "एकाकार वृत्तिकीने "वैमानिकपणो की सबै प्रकार प्रतीति कैसे होय याते अधिकाररूप सूत्र करिये हैं ऐसा अनुवाद किया है ॥

तेषा चतसृषु दिक्षु आकाशप्रदेशश्रेणिवदवस्थानात् श्रेणिविमानानि । विदिक्षु प्रकीर्णपुष्पवद-वस्थानात्पुष्पप्रकीर्णकानि ॥ तेषा वैमानिकाना भेदाववोधनार्थमाह—

॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

कल्पेषूपपन्ना कल्पोपपन्ना कल्पानतीता कल्पातीताश्चेति द्विविधा वैमानिका ॥

तेषामवस्थानविशेषनिर्ज्ञापनार्थमाह—

तेषाम् चतसृषु दिक्षु	=तिन (इन्द्र विमानों) की चारों दिशाओंमें
आकाश प्रदेश-श्रेणिवत् अवस्थानात्	=आकाशके प्रदेशकी श्रेणीके सदृश तिष्ठनेसे
श्रेणि-विमानानि विदिक्षु प्रकीर्ण-पुष्पवत्	=श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥ विदिशाओंमें बिखरे फूलोंके समान
अवस्थानात् पुष्पप्रकीर्णकानि	=स्थिति होनेसे वा तिष्ठनेसे पुष्प प्रकीर्णक हैं ।
तेषाम् वैमानिकानाम् भेद अववोधन अर्थम् आह	=तिन वैमानिकदर्वोके भेद जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—कल्पोपपन्ना कल्पातीताश्च॥१७॥	=(वैमानिका)कल्पोपपन्ना कल्पातीता च (द्विविधाभवन्ति)
सूत्रार्थ —वैमानिकाः कल्प उपपन्ना	=वैमानिक देव कल्प (अर्थात् स्वर्गों) में उत्पन्नहोनेवाले
कल्प अतीता च	=तथा =च)कल्पातीत अर्थात् स्वर्गोंसे ऊपर उत्पन्नहोनवाले भावार्थ स्वर्गों को उल्लघकरि (ऊपर ऊपर) नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पांचअनुत्तरोंमेंउपजनेवालेएसें
द्वि-विधा भवन्ति	=दो प्रकार होते हैं
सूत्रानुवादः—कल्पेषु उपपन्नाः	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु)उपजन वाले हैं
कल्पोपपन्ना कल्पान् अतीताः च	=(वे) कल्पोपपन्न हैं और (=च) स्वर्गोंका लांघने वाले (अर्थात् स्वर्गोंमें न उपज-करि उनके ऊपर नवग्रैवेयक नव अनुदिश, पांच अनुत्तर इन तेईस स्थानोंमें उत्पन्न होने वाले)
कल्प अतीता इति द्वि-विधा वैमानिकाः	=कल्पातीत हैं । ऐसे दो प्रकार वैमानिक देव हैं ।
तेषाम् अवस्थान-विशेष-निर्ज्ञापन अर्थम् आह	=तिनके निवासस्थानका विशेष जाननेके(=निर्ज्ञापन) लिये कहते हैं कि

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥

॥ वैमानिका ॥ १६ ॥

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम् । इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादिति अधिकारः क्रियते ॥ विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि । विमानेषु भवा वैमानिकाः ॥ तानि विमानानि त्रिविधानि । इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन ॥ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि ।

[2]सूत्रम्—वैमानिका ॥ १६ ॥ =([3]चतुर्थ [4]देवनिकाय) वैमानिका (सामान्यसञ्ज्ञा भवति)

सूत्रार्थः—चतुर्थः देवनिकायः वैमानिकाः सामान्यसञ्ज्ञा भवति=चौथा देवोंका समुदाय वैमानिक ऐसी (उन देवों की) सामान्य संज्ञा है

वृत्त्यनुवादः—वैमानिक-ग्रहणम् अधिकार अर्थम् =वैमानिक शब्दका ग्रहण अधिकार वा प्रकरण के लिये है

इतः उत्तरम् वक्ष्यन्ते तेषाम् =यहांसे आगे जो कहे जायगे तिनकी

वैमानिक-सम्प्रत्ययः [5]यथा स्यात् =यथायोग्य वैमानिक संज्ञा जानना चाहिये वा समझना चाहिये(=सम्प्रत्यय स्यात्)

इति अधिकारः क्रियते ॥ विशेषेण आत्मस्थान् =(यहां) ऐसा प्रकरण किया गया है ॥ जिनमें रहनेवाले जीवोंको विशेषकरि

सुकृतिनः मानयन्ति इति विमानानि =पुण्यवंत (भव्यजीव) मानते हैं । ऐसे विमान हैं ॥

विमानेषु भवा वैमानिकाः । तानि विमानानि =विमानोंमें (उत्पन्न) होनेवाले वैमानिक हैं । वे विमान

त्रिविधानि इन्द्रक-श्रेणि-पुष्पप्रकीर्णक भेदेन =तीन प्रकार इन्द्रक, श्रेणीबद्ध, और पुष्पप्रकीर्णक भेदसे हैं ।

तत्र इन्द्रक विमानानि इन्द्रवत् मध्ये व्यवस्थितानि =वहां इन्द्रक विमान इन्द्रके समान बीचा बीचमें (=मध्य) तिष्ठते हैं

---

(२) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ (३) इस वाक्यकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पहिले सूत्रसे आती है।

(४) क्योंकि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें देवोंके चार निकाय वा समुदाय कहे हैं और १०वां ११वां १२वां सूत्रोंमें भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी सामान्य और विशेषसंज्ञायें यथाक्रम कही हैं। तब केवल चौथा समुदाय अवशेष रहता है इसलिये चतुर्थशब्दका अध्याहार(=वह वाक्य जो स्पष्ट समझमें न आसके उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करलेना) इस सोलवां सूत्र में किया है ॥

(५) यहां यथा' शब्द यथायोग्यके अर्थ में आया यथा जान पड़ता है अर्थात जिस जिस प्रकारके वैमानिक देव हैं जैसे कल्पोपपन्न कल्पमें भी लौकान्तिक आदिके देव और कल्पातीत वैमानिका इत्यादि हों तैसे तैसे यथायोग्य जानो ॥ यथायोग्य यथोचित यथाविधि विधिपूर्वक ये चारों समान अर्थ वाचक हैं ॥ संस्कृत वृत्तिहस्तलिखित दो प्रतियोंसे मिलान किया तो यथा शब्द को पाठ प्राप्त हुआ परन्तु राजवार्तिक मुद्रित तथा दो हस्त लिखित प्रतियों में "वैमानिक सम्प्रत्ययः कथं स्यादित्यधिकारः क्रियते अर्थात् यथा शब्दके स्थान में कथम् शब्द है ॥ पश्चात्ताप पूर्वोक्तमें "वैमानिकपदों की भले प्रकार प्रतीति कैसे होय याते अधिकाररूप सूत्र करिये हैं ऐसा अनुवाद किया है ॥

भावार्थ प्रथम युगल पहले सौधर्म दूसरे ईशान स्वर्गके जो मध्य लोकसे

() देवा इतिचेन्नाऽनिष्टत्वात् ॥२॥ यदि देवा उपर्युपरीत्यनेनाभिसम्बध्यन्ते । तन्न, किं कारणं अनिष्टत्वात् देवानां हि उपर्युपरि अवस्थानमनिष्टम् ॥ = जो 'देवा' उपरि उपरि के साथ सम्बन्ध कियाजाय सा हो नहीं सकते, किस कारण कि आगमके विरुद्ध होने से अनिष्ट हैं अतः देवोंका ऊपर ऊपर अवस्थान नहीं माना जासका है ॥ तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १५८

() विमानानि इति चेन्न श्रेणि प्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात् ॥३॥ संस्कृतअर्थ । अथ विमानान्युपर्युपरीति कल्प्यते तदपिनोपपद्यते । श्रेणिप्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात् । श्रेणिविमानानि पुष्प प्रकीर्णक विमानानि च प्रतीन्द्रकं तिर्यगवस्थितानि इति इष्यन्ते ॥ राजवार्तिक पृष्ठ १५८ = विमान ऊपर ऊपर हैं यदि (= अथ) ऐसी कल्पनाकी जाय तो भी उत्पन्न नहीं होय है क्यों कि श्रेणीबद्ध विमानोंका और प्रकीर्णक विमानोंका तिर्यग् तिरछा अवस्थान है। (अर्थात्) श्रेणीबद्ध विमान, पुष्पप्रकीर्ण विमान और प्रतीन्द्रक विमान (ये) तिर्यग् अवस्थित हैं ऐसा आगममें इष्ट करते हैं

() कल्पा इति चेद्दोषः ॥४॥ संस्कृत अर्थ । यदि कल्पा न दोषो भवति यथा न दोष तथास्तु कल्पाहि उपर्युपरि स्थिता इति॥ राजवार्तिक १५८ = जो (ऊपर ऊपर) कल्प (स्वर्ग) अवस्थित (हैं) तब (कुछ) दोष नहीं है। जैसे दोष न होय तैसे ही ठीक है। निश्चयकरि (= हि) कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित हैं भावार्थ यदि कहा जायगा कि कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित हैं तब कुछ दोष नहीं। तथा जिस बातके मानने में किसी प्रकारका दोष नहीं वही बात मानना ठीक है। स्वर्गों का ऊपर ऊपर अवस्थान मानने में कोई दोष नहीं इसरीति से देव और विमानोंका ऊपर ऊपर अवस्थान बाधित होनेसे स्वर्गोंका ही ऊपर ऊपर अवस्थान सुनिश्चित है।

() कल्पातीतेषु किमभिसम्बध्यते ? विमानानि । तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १५८

(प्रश्न) कल्पातीतनिमें क्या सम्बन्ध किया जाय अर्थात् प्रश्न का सरांश यह है उपर्युपरि'में यदि हम केवल कल्पा शब्दकी अनुवृत्ति करेंगे तो यह अर्थ होता है कि स्वर्ग या कल्प ऊपर ऊपर हैं स्वर्गों से परें नवग्रैवेयक विमान, नव अनुदिश विमान, पांच अनुत्तर विमानों के अवस्थानके सम्बन्धमें कुछ न आया तो इनके अवस्थान जानने के लिये 'उपर्युपरि' वाक्य के साथ कौन शब्द अनुवर्तता है सो कहिदीजिये ।

(उत्तर) "उपर्युपरि के साथ विमानानि (का सम्बन्ध करना चाहिये) इस सबका सारांश यह है कि जहां हमें कल्पोपपन्न देवोंका अवस्थान जानना है वहां 'उपर्युपरि' के साथ कल्पा शब्द लगाना चाहिये कि स्वर्ग और उनके पटल ऊपर ऊपर हैं और जहां अहमिन्द्रों का अवस्थान विवक्षित है वहां 'उपर्युपरि' के साथ विमानों" इस शब्द को जोड़लो और कल्पातीत विमान ऊपर ऊपर हैं यह अर्थ समझलेना चाहिये ॥

॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥

(1)सूत्रम्–उपर्युपरि (उपर्य्युपरि) =(वैमानिका) उपर्युपरि (अवस्थितयः भवन्ति) ॥१८॥

सूत्रार्थ –वैमानिकाः॥उपरि॥उपरि॥ =वैमानिक देवोंके निवासस्थान (एक दूसरेसे) ऊपर ऊपर

अवस्थिताः॥भवन्ति॥ =अवस्थित हैं या विद्यमान हैं अर्थात् कल्पोंके युगल तथा उनके पटल तथा नवग्रैवेयक नव अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सब विमान क्रमसे ऊपर ऊपर अवस्थित हैं

---

(१) हमारे यहां 'उपर्युपरि' और कहीं कहीं 'उपर्य्युपरि' पाठ है अथोरहाम्यां द्वे वा व्याकरणके सूत्रसे दूसरा पाठ भी ठीक है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य में 'उपर्युपरि' पाठहै परन्तु भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका श्रीसिद्धसेन सूरिरचितमें 'उपर्युपरि च' ऐसा पाठहै अर्थ सर्वत्र एक है।

(२) इसमूत्रमें अनुवृत्ति किसकिस वाक्यकी है इसमें चार मतभेद हैं(क)पूज्यपाद स्वामीके मतमें 'कल्पाः' शब्द अनुवर्तताहै(सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ२४३)

(ख) श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे अधिक हैं उसके अनुकूल 'कल्पाः' शब्द अनुवर्तता है। न तो 'देवाः' न 'विमानानि' शब्द अनुवर्तते हैं। देखो भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका पृष्ठ ३१५

(ग) तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार 'कल्पाः' शब्द की अनुवृत्ति सोलह स्वर्ग तकके लिये और 'विमानाः' शब्दकी कल्पोंसे(स्वर्गोंसे)ऊपरके लियेहै अर्थात् 'कल्पाः' और 'विमानाः' दो शब्द अनुवर्तते हैं। (घ)तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकके अनुसार "वैमानिकाः" शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रसे होना चाहियेकि "वैमानिकाः" ऐसा अधिकार सूत्र सोलहवां जब कह चुके हैं तब उसके अनुकूल किसी अन्य शब्द या वाक्य का अनुवर्तन नहीं होना चाहिये। श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८१ देखो। इस आशयके सम्बन्धमें जो 'व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्ति नहि सन्देहादलक्षणम्' (=संदेहात्मक वाक्यका यथार्थ तात्पर्य उसकी व्याख्यासे निर्णय किया जाता है क्योंकि नियम लक्षण रहित नहीं होता है) व्याकरण के इस सिद्धान्तसे स्पष्ट होसका है।

सब आचार्यों के वाक्य अथवा वाक्योंके अनुवादका उल्लेख नीचे क्रमसे किया है।

() "उपर्युपरीत्युच्यन्ते"(सूत्रमें)ऊपर ऊपर ऐसे वर्णितहैं(प्रश्न)के ते? ते(ऊपर ऊपर वर्णित)कौनहैं। (उत्तर)कल्पाः= कल्पहैं (सर्वार्थ०पृष्ठ २४३

() 'कल्पाः सम्बध्यन्ते। न देवा विमानानि वा यो यं निर्देशः करिष्यते" भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीका पृष्ठ ३१५ देखो।

=इस उपर्युपरि सूत्रमें 'कल्पाः' शब्द मिलायाजाता है न कि 'देवा' या 'विमानानि' शब्द जो यह कथन किया गया है। (ऊपरके वाक्य का यह शब्दशः अनुवाद है)

() "इह विचार्यते-किमग्रादेयत्वेन कल्प्यमानाः देवा उत विमानानि आहोस्वित् कल्प इति किं वा कामचारः"। तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ१५६

=यह विचार उत्पन्न होता है कि यहां (उपरि उपरि इस वचनसे) उपादेयपनाकरि (आदेयपनाकरि) अर्थात् ग्रहण करने योग्य कल्पना कियेगये (=कल्प्यमानाः) देव (ऊपर ऊपर) हैं या विमान (ऊपर ऊपर) हैं अथवा स्वर्ग (=कल्प)(ऊपर ऊपर) हैं अथवा वक्ताकी इच्छाका विषय स्वतन्त्र कोई पदार्थ है (=कामचारः) अर्थात् वक्ताकी इच्छानुसार कहीं देवोंका ग्रहणहै कहीं विमानोंका तो कहीं स्वर्गों का ग्रहण है।

किमर्थमिदमुच्यते?तिर्यगवस्थितिप्रतिषेधार्थमुच्यते॥न ज्योतिष्कवत्तिर्यगवस्थिता।न व्यन्तरवदसमावस्थितय। उपर्युपरीत्युच्यन्ते॥के ते? कल्पा॥यद्येवं, कियत्सु कल्पविमानेषु ते देवा भवन्तीत्यत आह–

॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

तिकड़ी ऊर्ध्व तिकड़ी) के नौ पटल जो मध्यलोकसे सातवां राजूसे आरम्भ होकर चौड़ाई राजूके भीतर हैं। एक पटल नव अनुदिशका जो मध्यलोकसे साढ़े छठवां राजूसे आरम्भ होता है और उसही के भीतर है और एक पटल पांचअनुत्तरका जो मध्यलोकसे पोने सातवां राजूसे आरम्भ होता है और उसके भीतर ही है ये सब तेरह (=आठ युगलोंके, तीन तिकड़ी ग्रैवेयकोंके, एक अनुदिशका, एक पांच अनुत्तरका) स्थानों में त्रेसठ (६३) पटल एक दूसरेके ऊपर ऊपर अवस्थित हैं॥

वृत्त्यनुवाद।–किम्॥अर्थम्॥इदम्॥उच्यते	=किसलिये यह (सूत्र) कहागया है।
तिर्यग् अवस्थिति-प्रतिषेध अर्थम्॥उच्यते	=(उत्तर) (वैमानिकदेवोंकी) तिर्यग् अवस्थानके निषेधके लिए(यहसूत्र)कहागया है
न ज्योतिष्कवत् तिर्यग्-अवस्थिताः	=न (वे वैमानिक देव) ज्योतिषी देवोंके सदृश तिर्यग् अवस्थित हैं।
न व्यन्तरवत् असम-अवस्थितयः	=न व्यन्तरों के समान विषम (अर्थात् जहां तहां) अवस्थित हैं॥
उपरि उपरि इति उच्यन्ते। के॥ते॥कल्पा॥	=(इसलिये)ऊपरऊपर ऐसे वर्णित हैं। वे कल्प कौन हैं? अर्थात् वे स्वर्ग क्या हैं?
यदि एवम् कियत्सु॥कल्पविमानेषु॥	=जो इस प्रकार हैं अर्थात् ऊपर ऊपर हैं तो कितने कल्प विमानोंमें
ते॥देवाः॥भवन्ति इति अतः आह	=वे देव हैं? इसलिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्– सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्र महाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय वैजयन्तजयन्ता पराजितेषु सर्वार्थसिद्धौच ॥ १९॥

दो राजू तक हैं इकतीस पटल, दूसरे युगल (तीसरे चौथे स्वर्ग सानत माहेन्द्र जो मध्यलोकसे तीसरे राजूमें है) के सातपटल तीसरे युगल (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवां छठवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साढ़े तीसरे राजूमें है) के चार पटल, चौथा युगल (लांतव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां स्वर्ग जो तीसरे युगलसे आधे राजू ऊपर में है) के दो पटल, पांचवे युगल (शुक्र नवमां स्वर्ग महाशुक्र दशवां स्वर्ग जो मध्यलोक से साढ़े चौथे राजू में है) का एक पटल, छठवां युगल (शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्ग जो पांचवां युगलसे ऊपर आधे राजूमें है)का एक पटल, सातवां युगल(आनत तेरहवां स्वर्ग प्राणत चौदहवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साढ़े पांचवां राजूमें है)के तीनपटल, आठवां युगल(आरण पन्द्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग जो सातवां युगलसे ऊपर आधे राजू में है) के तीन पटल इसप्रकार बावन पटलवो सोलह स्वर्गों के और तीन तिकड़ी ग्रैवेयक(अधोतिकड़ी, मध्यकी

() कल्पा इत्येके=कल्पाः इति पके (मुद्रित श्लोकवार्तिक पृष्ठ २८१) =(उपर्युपरि के साथ अनुवृत्ति) 'कल्पाः शब्दकी होना ऐसा कितनोंका मत है श्लोकवार्तिकका शब्दशः संस्कृत पाठ विस्तारभयसे न लिखकर प० गजाधरलाल शास्त्रीकी टिप्पणी जो पृष्ठ १०५५ (राजवार्तिकके अनुवाद) में दी है ऐसे है कि"उपर्युपरि यहांपर कल्प शब्दका [illegible] मानना सर्वसम्मत नहीं है क्योंकि वैमानिकाः इस सूत्रको अधिकारसूत्र बतलाये हैं। इसलिये इस सूत्रमें उसीका सम्बन्ध मानना ठीक होगा इस रीतिसे जिस प्रकार वैमानिकदेव कल्पोपपन्न और कल्पातीतहैं(इस प्रकार कल्पोपपन्ना 'कल्पातीताश्च इस सूत्रमें वैमानिकोंका सम्बन्ध है उसी प्रकार वैमानिकदेव ऊपरऊपर हैं इस रूपसे 'उपर्युपरि' इस सूत्रमें भी वैमानिक देवोंका ही संबंध है। यदि यहांपर यह कहाजाय कि पहिले देवोंका ऊपरऊपर अवस्थान अनिष्ट कह आये हैं। यदि 'उपर्युपरि यहांपर वैमानिकदेवोंका सम्बन्ध कर उनका ऊपर अवस्थान माना जायगा तो अनिष्ट होगा। सो ठीक नहीं। विशेषण रहित केवल देवोंका यदि ऊपर ऊपर अवस्थान मानाजाय तब अनिष्ट कहा जा सकता है किन्तु यहांतो मध्य में स्थित इन्द्रक विमान तिर्यग् अवस्थित श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानरूप कल्पोपपन्नत्व विशेषण विशिष्ट देवों का तथा कल्पातीतत्व (नवग्रैवेयकत्व) आदि विशिष्ट देवोंका ग्रहण हैं। इस प्रकारके विशेषण विशिष्ट देवोंका ऊपर ऊपर रहना शास्त्र सम्मत है। अनिष्ट इष्ट है। इसलिये कल्पोपपन्न और कल्पातीत दोनों की अपेक्षा 'उपर्युपरि यहां पर 'वैमानिक' शब्द का ही सम्बन्ध ठीक है॥

() श्लोकवार्तिकका यह कथन यद्यपि स्थूल दृष्टि से विरुद्धसा मालूम होता है कि राजवार्तिक कारने विमानों को ऊपर ऊपर कहा है और श्लोकवार्तिक कारने देवों को ऊपर ऊपर कहा है तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे दोनों एक रूप ही में पड़ते हैं श्लोक वार्तिक कारने केवल देवों को ऊपर २ नहीं कहा है किन्तु विमानोंसे विशिष्ट देवोंको कहा है विमान सहित देव कहा जाय वा विमान कहाजाय दोनों का एक ही अर्थ है॥

"ते कल्पा उपरि उपरि हैं प० जयचन्द्रकृत। प्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ २७१॥

श्री स्वामी विद्यानन्दिके सम्मत हैं कि उक्त सूत्रमें 'वैमानिका' की अनुवृत्ति आती है क्योंकि यह अधिकार सूत्र है। इसीलिये अधिकार सूत्र होनाहै कि इसकी अनुवृत्ति बराबर आगल आगले सूत्रोंमें चलीजावे॥ रहा सूत्रोंका आशय सो प्रकरणके प्रसंगवश द्वारा निकल आता है॥

शुक्र-महाशुक्र

=शुक्र नवमे और महाशुक्र दशवें स्वर्गों में

एक विभक्ति 'नवग्रैवेयकेषु' ऐसी करते। सारांश हमारे यहां नवअनुदिश संज्ञक विमानोंको माना है। श्वेताम्बर समाजमें नहीं माना है। अर्थात् उनके यहां नव अनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं स्वीकार किये हैं यद्यपि दोनों आम्नायोंमें प्रथम स्वर्ग सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानोंकी संख्या चौरासीलाख सत्तानवे सहस्र तेईस (८४९७०२३) एकसी मानी है जैसाकि निम्न लिखित लेखसे ज्ञात होता है

दिगम्बर तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १०७ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ२५७	श्वेताम्बर आम्नायमें देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १०९
प्रथम सौधर्म स्वर्गमें बत्तीस लाख (३२०००००) विमान हैं	प्रथम सौधर्म कल्पमें बत्तीसलाख (३२०००००) विमान हैं
द्वितीय ईशान स्वर्गमें अट्ठाईस लाख (२ ०००००) विमान हैं	द्वितीय ऐशान कल्पमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान हैं
तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें बारह लाख (१२०००००) विमान हैं	तीसरे सनत्कुमार कल्पमें बारहलाख (१२०००००) विमान हैं
चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें आठलाख (८०००००) विमान हैं	चौथे माहेन्द्र कल्पमें आठलाख (८०००००) विमान हैं
पांचवां ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगलमें चारलाख (४०००००) विमान हैं	पांचवां ब्रह्मलोक कल्पमें चारलाख (४०००००) विमान हैं
छठवां लांतवकापिष्ठ युगलमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं	छठवां लान्तक कल्पमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं
सातवां शुक्र महाशुक्र युगलमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं	सातवां महाशुक्र कल्पमें चालीससहस्र (४०० ०) विमान हैं
आठवां शतार सहस्रार युगलमें छहसहस्र (६ ०) विमान हैं	आठवें सहस्रार कल्पमें छहसहस्र (६०००) विमान हैं
आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें सातसौ (७००) विमान हैं	आनत प्राणत आरण अच्युत कल्पोंमें सातसौ (७००) विमान हैं
नवम तीनअधो ग्रैवेयकनि विषैं एकसौग्यारह (१११) विमान हैं	नवम तीन अधो ग्रैवेयकनिमें एकसौ ग्यारह (१११) विमान हैं
दशम तीन मध्यकी ग्रैवेयकनिमें एकसौसात (१०७) विमान हैं	दशम तीन बीचकी ग्रैवेयकनि में एकसौसात (१०७) विमान हैं
ग्यारहवें तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनिमें इक्यानवे (९१) विमान हैं	ग्यारम तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनि में एक शत (१००) विमान हैं
बारहवें नव अनुदिशके वा नवनवोत्तर के भी (९) विमान हैं	(नव अनुदिश नाम न देतेहुये उन्होंने इसमेंकी संख्याको ऊपर सौमें गर्भितकियाहै)
तेरहवें अनुत्तरके पांच (५) विमान हैं सर्वयोग(८४९७०२३) हुआ	अनुत्तर (बारहवीं संख्या पर) पांच विमान हैं। सर्वयोग (८४९७०२३) हुआ ॥

पदच्छेद (वैमानिका) सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रारेषु, आनत-प्राणतयो, आरण-अच्युतयो, ग्रैवेयकेषु, नवसु, विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजितेषु-सर्वार्थसिद्धौ च भवन्ति ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—वैमानिकाः सौधर्म-ऐशान,	=वैमानिकदेव सौधर्म और ऐशानमें (प्रथमस्वर्ग और द्वितीयस्वर्गमें)
सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ,	=सानत्कुमार और माहेन्द्रमें, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें, लान्तव और कापिष्ठमें,

(१) हमारे यहांके सूत्रके 'ब्रह्म' शब्दके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'ब्रह्मलोक' शब्द है और 'ग्रैवेयकेषु' शब्दके स्थानमें उक्त सभाष्य में 'ग्रैवेयेषु' शब्द है परन्तु उनके यहांकी श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "ग्रैवेयकेषु" ही है और 'सर्वार्थसिद्धौ' शब्दके स्थानमें उक्त समाजके दोनों भाष्योंमें 'सर्वार्थसिद्धे' शब्द है। इन चारों शब्दोंमें अर्थभेद नहीं है। उनके दोनों ही भाष्योंमें ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक्र शतार शब्द नहीं है अर्थात् उनके यहां केवल बारह ही स्वर्ग माने हैं लान्तवके स्थानमें लांतक है शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। इस सूत्रकी संख्या भी उनके यहां बीसवीं है। हमारे यहां भी इन्द्रोंकी अपेक्षासे बारह कल्पही माने हैं। देखो तत्त्वार्थराजवार्तिक वार्तिक ४॥

दिगम्बर आम्नायके उन्नीसवां सूत्रका पाठ	श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके बीसवां सूत्रका पाठ
सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठ	सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोक——लान्तक——
शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो	——महाशुक्र——सहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो
र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषुसर्वार्थसिद्धौ च	र्नवसु ग्रैवेयेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च

(यदि ग्रैवेयेषुके स्थानमें 'ग्रैवेयकेषु' लिखदें तो भाष्यानुसारिणी का पाठ है)

अर्थभेद—सभाष्य० और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके अनुकूल बारह स्वर्ग हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग हैं। ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक्र-शतारको स्वर्ग नहीं माने हैं। उक्त आम्नायके दोनों भाष्योंमें 'नवसुग्रैवेयेषु' वा 'नवसुग्रैवेयकेषु' वाक्य केवल नौग्रैवेयकोंका द्योतक है नकि नव अनुदिशविमानोंका भी। हमारे यहां सर्वभाष्योंमें तथा हिन्दीअनुवाद और टीकाओंमें उक्त वाक्यसे नौग्रैवेयक और नौ ही अनुदिश ग्रहण किये हैं जिन अनुदिशोंका केवल पढ़ही पड़ता है। क्योंकि यदि उमास्वामी नौ ग्रैवेयक ही ग्रहणकरते तो 'नव' शब्दका और ग्रैवेयक शब्दको भिन्नभिन्नसप्तमीविभक्तियोंमें नहीं लाते।

शुक्र-महाशुक्र

शुक्र नवमे और महाशुक्र दशवें स्वर्गों में

पञ्च विभक्ति 'नवग्रैवेयकेषु' ऐसी करना । सारांश हमारे यहां नवअनुदिश संज्ञक विमानोंको माना है । श्वेताम्बर समाजने नहीं माना है । अर्थात् उनके यहां नव अनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं स्वीकार किये हैं यद्यपि दोनों आम्नायोंमें प्रथम स्वर्ग सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानोंकी संख्या चौरासीलाख सत्तानवे सहस्र तेईस (८४९७०२३) एकसी मानी है जैसाकि निम्न लिखित लेखसे ज्ञात होता है

दिगम्बर तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १०७ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ२४४	श्वेताम्बर आम्नायमें देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १०६
प्रथम सौधर्म स्वर्गमें बत्तीस लाख (३२०००००) विमान हैं	प्रथम सौधर्म कल्पमें बत्तीसलाख (३२०००००) विमान हैं
द्वितीय ईशान स्वर्गमें अट्ठाईस लाख (२ ०००००) विमान हैं	द्वितीय ऐशान कल्पमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान हैं
तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें बारह लाख (१२०००००) विमान हैं	तीसरे सानत्कुमार कल्पमें बारहलाख (१२०००००) विमान हैं
चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें आठलाख (८०००००) विमान हैं	चौथे माहेन्द्र कल्पमें आठलाख (८०००००) विमान हैं
पांचवां ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगलमें चारलाख (४०००००) विमान हैं	पांचवां ब्रह्मलोक कल्पमें चारलाख (४०००००) विमान हैं
छठवां लांतवकापिष्ठ युगलमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं	छठवां लान्तक कल्पमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं
सातवां शुक्र महाशुक्र युगलमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं	सातवां महाशुक्र कल्पमें चालीससहस्र (४०० ०) विमान हैं
आठवां शतार सहस्रार युगलमें छहसहस्र (६०००) विमान हैं	आठवें सहस्रार कल्पमें छहसहस्र (६०००) विमान हैं
आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें सातसौ (७००) विमान हैं	आनत-प्राणत आरण अच्युत कल्पोंमें सातसौ (७००) विमान हैं
नवम तीनअधो ग्रैवेयकनि विर्षे एकसौग्यारह (१११) विमान हैं	नवम तीन अधो ग्रैवेयकनिमें एकसौ ग्यारह (१११) विमान हैं
दशम तीन मध्यकी ग्रैवेयकनिमें एकसौसात (१०७) विमान हैं	दशम तीन बीचकी ग्रैवेयकनि में एकसौसात (१०७) विमान हैं
ग्यारहवें तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनिमें इक्यानवे (९१) विमान हैं	ग्यारह तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनि में एक शत (१००) विमान हैं
बारहवें नव अनुदिशके या नवनवोत्तर के भी (९) विमान हैं	(नवअनुदिश नाम न देतेहुये उन्होंने इसमेंकी संख्याको ऊपर सौमें गर्भितकियाहै)
तेरहवें अनुत्तरके पांच (५) विमान हैं सर्वयोग(८४९७०२३) हुआ	अनुत्तर (बारहवीं संख्या पर) पांच विमान हैं। सर्वयोग (८४९७०२३) हुआ ।

'शतार-सहस्रारेषु'	=शतार और सहस्रार ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गोंमें (इन छह युगलों में)
आनत 'प्राणतयो:' 'आरण-'अच्युतयो:'	=आनत और प्राणत तेरहवां और चौदहवां स्वर्गोंमें, आरण और अच्युत स्वर्गोंमें

(१) यहां प्रश्न यह है कि कल्पोपपन्नदेव और कल्पातीतदेव जब सब वैमानिक हैं और विमानोंके रहनेवाले हैं तो उमास्वामीने सूत्रके अन्तमें ही एकबार सप्तमी विभक्ति बहुवचनमें क्यों नहीं की सातबार सप्तमी विभक्ति क्योंकी एक विभक्ति करनेमें कुछ अक्षर और च और कईएक मात्राओंका लाभ होजाता अर्थात् जिसरूपमें सूत्र है उस रूपमें न करके ऐसा सूत्र रचते सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारानतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिषु' ॥ १९ ॥

(उत्तर) आनत प्राणतयो । आरण अच्युतयो इन दो युगलोंकी जुदी जुदी विभक्तियां करनेसे यह जानना चाहिये कि सोलह स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो प्रत्येक युगल एक दूसरेके ऊपर है न कि एक स्वर्ग दूसरेके ऊपर है जैसे सौधर्म स्वर्गके ऊपर ऐशान स्वर्ग नहीं है वरन सौधर्म ऐशान युगलके ऊपर सानत्कुमार माहेन्द्र युगल है इसी प्रकार और भी शेष सात युगलोंको एकसे दूसरेको ऊपर ऊपर जानो जैसाकि हम भावार्थ पृष्ठ ४५, ४६ और ४७ में लिखचुके हैं । पं० जयचन्द्रजयजी इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि "इहां कल्पनिका युगलनिका उपरि उपरि होयवोय कहना यातै शेष युगलनिके जुदी विभक्ती करी समास न किया तातैं जाना जाय है । इस सम्बन्धमें अपर या अधिकतर प्रश्न यह है कि श्री उमास्वामीने 'सौधर्मैशानयो' 'सानत्कुमार माहेन्द्रयो' ब्रह्मब्रह्मोत्तरयो: लान्तवकापिष्ठयो: 'शुक्रमहाशुक्रयो: शतारसहस्रारयो: 'आनतप्राणतयो' आरणाच्युतयो: ऐसे आठ विभक्तियां क्योंन की प्रथम बारह स्वर्गोंकी एक विभक्ति क्योंकी फिर आनत प्राणतकी एक विभक्ति क्योंकी अन्तमें आरण अच्युतकी एक विभक्ति क्यों की ? यदि आठ विभक्तियां करदेते तो स्पष्ट होजाताकि स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो एकयुगलसे दूसरा युगल ऊपर है दूसरे से तीसरा ऐसेही सबसे ऊपर आठवां युगल 'कल्पोपपन्न' देवोंमें है ।

(उत्तर) आनतप्राणतग्रहणमारणाच्युतयोरिति । सूत्रभागेनाप्य सा कल्पस्वेव्येवैकल्पनाता" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक श्लोक ३ पृष्ठ ३८२

= आनतस्वर्गप्राणतस्वर्गका द्वन्द्व समास है आरण अच्युतमें (द्वंद्वसमास)है ऐसी सूचना है कि शब्दवृत्ति(=सा)का अंत कल्पोंमें ही(कल्पोंतक ही) है यहां से(अर्थात् पन्द्रहवां सोलहवां आरण अच्युत कल्पों या स्वर्गोंसे ऊपर) एकएकबी(विभक्ति) है । अर्थात् आनत प्राणत और आरणअच्युतमें पृथक् पृथक् द्वन्द्व समास और विभक्तियोंसे प्रगट है कि सोलह स्वर्गतकही एक युगल दूसरे युगलसे ऊपर ऊपर है उसके ऊपर फिर एक एक है । आठ युगलोंकी आठ विभक्तियां जुदी जुदी इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता । अथवा यौंभी कहसकते हैं कि आनत प्राणतकी विभक्तिसे यह भासहोताहै कि एक एक युगल दूसरे दूसरे से ऊपर ऊपर है और आरणअच्युतकी विभक्तिसे यह जतलाती भासकती है कि युगलोंका अन्त सोलह स्वर्ग तक है और द्वन्द्व समास भी सोलह स्वर्ग तक ही है ॥

0 बहुतसे विद्वानोंका मत है कि उमास्वामीने बारहस्वर्गोंकी एक विभक्ति और आनत प्राणत की दूसरी विभक्ति और आरण अच्युत की तीसरी विभक्ति इसहेतुसे भी की है कि सौधर्म ऐशान युगलमें दो सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें सात सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है । ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पमें दशसागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट अवस्था है । लांतवकापिष्ठ युगलमें चोदह सागरसे कुछअधिक उत्कृष्ट जीवन काल है । शुक्र महाशुक्र कल्पमें सोलह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है । सतार सहस्रार युगलमें अठारह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥ परन्तु आनत प्राणत युगलमें उत्कृष्ट स्थिति ठीक बीस सागरकी और आरण अच्युत युगलमें भी उत्कृष्ट स्थिति ठीक बाईस सागरकी क्रमसे है । छह युगलोंमें जहां पूरेसागरोंसे कुछ अधिक स्थिति थी वहां विभक्ति जुदी की और एकही द्वन्द्वसमासमें डेरादिये और जहां पूरी पूरी स्थिति थी वहां वहां प्रथम छह युगलोंसे पृथक् पृथक् विभक्तिकी ॥ (इसी अध्याय के देखो सूत्र २६ ३० ३१,)

तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१ में छह युगलोंकी एक विभक्ति करना और आनतप्राणतकी भिन्न विभक्ति करना और आरणअच्युत को एक पृथक् विभक्तिमें लानेका यह हेतु दिया है कि बारह स्वर्गोंमें प्रत्येक में एक एक इन्द्र और आनतप्राणत दो स्वर्गों में एक इन्द्र और आरण अच्युत में एक इन्द्र ऐसे लोक अनुयोगके उपदेशसे इन्द्र चौदह भी कहे हैं ॥ इससे तीन विभक्ति जुदी जुदीकी हैं सम्भवहै कि उमास्वामी के मतानुसार चौदह इन्द्रहों । वार्तिक सात पृष्ठ१६१में और पृष्ठ १६६ में इन्द्र बारहभी कहे हैं । राजवार्तिकका लेख ऐसेहै कि तथाचोत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत्" ॥ वार्तिक॥ संस्कृतअर्थ ॥ एवंकृत्वा उत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत् भवति आनत प्राणत योरारणाऽच्युतयोरिति । इतरथाहि लघ्वर्थं एकएवद्वन्द्व क्रियते ।

तथा ते एत लोकानुयोगापदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ताः । इह द्वादश इष्यंते ।

तथा॰च॰उत्तरयोः,।पृथग्वचनम्,१।अर्थवत्॰

एवम्॰कृत्वा +

=दोनों जगहोंमें(युगलों) में जुदी जुदी विभक्ति है सो सार्थक है या अर्थवत् है ॥ = ॥

=ऐसे करके अर्थात् सातवीं वार्तिक [प्रत्येकम्इन्द्रसम्बन्धः मध्ये प्रतिद्वयं] में बारह इन्द्र (सौधर्म ऐशान दो स्वर्गोंमें दोइन्द्र सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें दोइन्द्र ब्रह्मलोक,ब्रह्मोत्तरदोंमें एक ब्रह्मनाम इन्द्र लांतव कापिष्ठ दोमें एक लांतवनामक इंद्र, शुक्रमहाशुक्र दोमें शुक्र नामक एक इंद्र शतारसहस्रार दोमें एकइन्द्र आनत प्राणत दोमें एक एक ऐसे दो इन्द्र आरण अच्युत में एक एक ऐसे दो इन्द्र) कहकर (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१

उत्तरयो ।आनत प्राणतयो,।आरण-अच्युतयोः२।इति॰

पृथग्॰वचनम्,१।अर्थवत्॰भवतिT

इतरथा॰हि॰

लघ्वर्थ,१।एकः,१।एव॰द्वन्द्वः,१।क्रियतेT

=(सौधर्म ऐशान से) अगले (=उत्तरयोः) आनत प्राणतमें आरण अच्युतमें ऐसी

=भिन्न भिन्न विभक्ति है सो प्रयोजनको लिये हुये है (व्यर्थ नहीं है)

=अन्यथाही अर्थात् जो प्रयोजनीय भिन्न भिन्न विभक्ति न लाते तो निश्चयकरि (=हि)

=लघुताकेलिये एक(आनतप्राणतारणाच्युतयोः ऐसा,)ही द्वन्द्वसमास करते सोठीक था इसनहींया

'शतार सहस्रारेषु'	=शतार और सहस्रार ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गोंमें (इन छह युगलों में)
आनत 'प्राणतयोः' आरण 'अच्युतयोः'	=आनत और प्राणत तेरहवां और चौदहवां स्वर्गोंमें, आरण और अच्युत स्वर्गोंमें

(१) यहां प्रश्न यह है कि कल्पोपपन्नरेव और कल्पातीतरेव [redacted] सब वैमानिक हैं और विमानोंके रहनेवाले हैं तो उमास्वामीने सूत्रके अन्तमें ही एकबार सप्तमी विभक्ति बहुवचनमें क्यों नहीं की सातबार सप्तमी विभक्ति क्योंकी एक विभक्ति करनेमें छह अक्षर और च और कईएक मात्राओंका काम होजाता अर्थात् जिसरूपमें सूत्र है उस रूपमें न करके ऐसा सूत्र रचते सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतार सहस्रारानतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिषु' ॥ १६ ॥

(उत्तर) आनत प्राणतयो । आरण अच्युतयो इन दो युगलोंकी जुदी जुदी विभक्तियां करनेसे यह जानना चाहिये कि सोलह स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो प्रत्येक युगल एक दूसरेके ऊपर है न कि एक स्वर्ग दूसरेके ऊपर है जैसे सौधर्म स्वर्गके ऊपर ऐशान स्वर्ग नहीं है बरन सौधर्म ऐशान युगलके ऊपर सानत्कुमार-माहेन्द्र युगल है इसी प्रकार और भी शेष सात युगलोंको एकके दूसरेको ऊपर ऊपर जानो जैसाकि हम भावार्थ पृष्ठ ४५, ४६ और ४७ में लिखचुके हैं ॥ पं० जयचन्द्रायजी इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि यहां कल्पका युगलका उपरि उपरि दोयदोय कहना अंतके दोय युगलनिके जुदी विभक्ती करी समास न किया तातैं जाना जायहै ॥ इस सम्बन्धमें अपर या अधिकतर प्रश्न यहहै कि श्री उमास्वामीने 'सौधर्मैशानयो 'सानत्कुमार माहेन्द्रयो ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः लांतवकापिष्ठयोः 'शुक्रमहाशुक्रयोः शतारसहस्रारयोः 'आनतप्राणतयो' आरणच्युतयोः एसेआठविभक्तियां क्योंन की प्रथम बारह स्वर्गोंकी एक विभक्ति क्योंकी फिर आनत प्राणतकी एक विभक्ति क्योंकी अन्तमें आरण अच्युतकी एक विभक्ति क्यों की ? यदि आठ विभक्तियें करदेते तो स्पष्ट होजाताकि स्वर्गोंके आठ युगलहैं सो पहले युगलसे दूसरा युगल ऊपर है दूसरे से तीसरा ऐसेही सबसे ऊपर आठवां युगल 'कल्पोपया' देखोंगे ।

(उत्तर) आनतप्राणतयोरारणाच्युतयोरिति । सूत्रमात्र न सा वक्तव्येत्येवैकवाक्यता" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक श्लोक ३ पृष्ठ ३८२

= आनतस्वर्गप्राणत-स्वर्गका द्वन्द्व समास है आरण अच्युतमें (द्वन्द्वसमास)है ऐसी सूचना है कि द्वन्द्ववृत्ति(= सा)का अंत कल्पोंमें ही(कल्पोंतक हो) है यहां से(अर्थात पन्द्रहवां सोलहवां आरण अच्युत कल्पों वा स्वर्गोंसे ऊपर) एकएकही(विभक्ति) है ॥ अर्थात् आनत प्राणत और आरणअच्युतमें पृथक् पृथक् द्वन्द्व समास और विभक्तियोंसे प्रगट है कि सोलह स्वर्गतकही एक युगल दूसरे युगलसे ऊपर ऊपर है उसके ऊपर फिर एक एक है ॥ आठ युगलोंकी आठ विभक्तियां जुदी जुदी इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाय । अथवा योंभी कहसकतेहैं कि आनत प्राणतकी विभक्तिसे यह मालूमहोताहै कि एक एक युगल दूसरे दूसरे से ऊपर ऊपर है और आरणअच्युतकी विभक्तिसे यह बातभी झलकती है कि युगलोंका अन्त सोलह स्वर्ग तक है और द्वन्द्व समास भी सोलह स्वर्ग तक ही है ॥

() बहुतसे विद्वानोंका मत है कि उमास्वामीने बारहस्वर्गोंकी एक विभक्ति और आनत प्राणत की दूसरी विभक्ति और आरण अच्युत की तीसरी विभक्ति इसहेतुसे भी की है कि सौधर्म ऐशान युगलमें दो सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें सात सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है । ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पमें दशसागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट अवस्थाहै । लांतवकापिष्ठ युगलमें चौदह सागरसे कुछअधिक उत्कृष्ट जीवन काल है । शुक्र महाशुक्र युगलमें सोलह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयुहै । सतार सहस्रार युगलमें अठारह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है । परन्तु आनत प्राणत युगलमें उत्कृष्ट स्थिति ठीक बीस सागरकी और आरण अच्युत युगलमें भी उत्कृष्ट स्थिति ठीक बाईस सागरकी क्रमसे है । छह युगलोंमें जहां पूरेसागरोंसे कुछ अधिक स्थिति थी वहां विभक्ति जुदी की और उनको द्वन्द्वसमासमें समाये और जहां पूरी पूरी स्थिति थी वहां वहां प्रथम छह युगलोंसे पृथक् पृथक् विभक्तिकी । (इसी अध्याय के देखो सूत्र २९, ३०, ३१,)

तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१ में छह युगलोंकी एक विभक्ति करना और आनतप्राणतकी भिन्न विभक्ति करना और आरणअच्युत को एक पृथक् विभक्तिमें लानेका यह हेतु दिया है कि बारह स्वर्गोंमें प्रत्येक में एक एक इन्द्र और आनतप्राणत दो स्वर्गों में एक इन्द्र और आरण अच्युत में एक इन्द्र ऐसे लोक अनुयोगके उपदेशसे इन्द्र चौदह भी कहे हैं । इससे तीन विभक्ति जुदी जुदीहैं सम्भवहै कि उमास्वामी के मतानुसार चौदह इन्द्रहो । वार्तिक सात पृष्ठ१६१में और पृष्ठ १६६ में इन्द्र बारहभी कहे हैं । राजवार्तिकका लेख ऐसेहै कि 'तयावोत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत्" ॥ वार्तिक८ ॥ संस्कृतअर्थ ॥ एवंकृत्वा उत्तरयो पृथग्वचनमर्थवत् भवति आनत प्राणत यारारणाऽच्युतयारिति । इतरथाहि लघ्वर्थं एकएवद्वन्द्व क्रियते ।

तथा ते एते लोकानुयोगापदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ताः । इह द्वादश इष्यते ।

तथा॥च॥उत्तरयोः ।पृथग्वचनम्। ॥अर्थवत्॥ =तीनों जगहोंमें(युगलों) में जुदी जुदी विभक्ति है सो सार्थक है या अर्थवत् है ॥ ८ ॥

एवम्॥कृत्वा + =ऐसे करके अर्थात् सातवीं वार्तिक [प्रत्येकम्‌इन्द्रसम्बन्धा मध्ये प्रतिज्ञर्य] में बारह इन्द्र (सौधर्म ऐशान दो स्वर्गोंमें दोइन्द्र सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें दोइन्द्र,ब्रह्मलोक,ब्रह्मोत्तरदोमें एक ब्रह्मनाम इन्द्र लांतव कापिष्ठ दोमें एक लांतवनामक इंद्र शुक्रमहाशुक्र दोमें शुक्र नामक एक इन्द्र शतारसहस्रार दोमें एकइन्द्र आनत प्राणत दोमें एक एक ऐसे दो इन्द्र आरण अच्युत में एक एक ऐसे दो इन्द्र) कहकर (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१

उत्तरयो ।आनत प्राणतयो,।आरण-अच्युतयो।इति॥ =(सौधर्म ऐशान से) अगले (=उत्तरयोः) आनत प्राणतमें आरण अच्युतमें ऐसी

पृथग्॥वचनम्। ॥अर्थवत्॥भवतिT =भिन्न भिन्न विभक्ति है सो प्रयोजनको लिये हुये है (व्यर्थ नहीं है)

इतरथा॥हि॥ =अन्यथाही अर्थात् जो प्रयोजनीय भिन्न भिन्न विभक्ति न लाते तो निश्चयकरि (=हि)

लघ्वर्थ।।एक।।एव॥द्वन्द्वः।।क्रियतेT =लघुताकेलिये एक(आनतप्राणतारणाच्युतयोः ऐसा,ही द्वन्द्वसमास करते सोठीक था इष्टनहींथा

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "पर्वंशस्या इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पृष्ठ ६४२में किया है ऐसे किये अगिले दोय युगल आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषैं भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है ॥ आनत प्राणतयो आरणअच्युतयो ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है।सो एकएक कल्पमें एकएक इन्द्र है ॥ ऐसे जानिये" ॥ पिछला वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इन्द्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं ॥ पश्चात् पृष्ठ ६४३ में और पृष्ठ ६४४में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गों में "आरणनामादेवराज है——अच्युतनामा देवराजहै" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इन्द्रोंकी अपेक्षासे) दोही इन्द्र हैं पं० पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वदीपिकामें और पं० गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०७८ और १०७६ (उन्होंद्वारा अनुवादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है ॥

तथाय० ,, =जैसे सौधर्म इन्द्र ऐशान इन्द्र सानत्कुमारइन्द्र माहेन्द्र इन्द्र ब्रह्मनामक इन्द्र ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र लांतव नामक इन्द्र कापिष्ठ नामक इंद्र शुक्र नामक इन्द्र शतार नामक इन्द्र सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र अच्युत नामक इन्द्र (आनत प्राणत नामक कोई इन्द्र नहीं हैं) ते इतने लोक नियोगके अपेक्षाकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ २५१ से २५५ तक)

इह०आरण)।इष्यन्तेT =यहां(=इह) (मूल सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(इन्द्र कहना)इष्ट है ॥ इसका देखो पृष्ठ ५१ ॥

इस समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अंततक सारांश यह है कि(क)प्रथम षट्युगलों बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता (ख) 'आनत प्राणतयोः 'आरणाच्युतयो' की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो विभक्तिसे यह भी झलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे यहभी झलकताहै कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भी बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (च) ये तीन विभक्तियां इस बातकीभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गोंमें एक एक इन्द्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां दूसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इंद्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहैं परन्तु प्रसिद्ध बारहही इंद्र हैं ॥ श्वेताम्बरआम्नायमें १०ही मानेहैं।

'ग्रैवेयकेषु' 'नवसु' 'विजय वैजयन्त-जयन्त-	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त
अपराजितेषु' 'च' 'सर्वार्थसिद्धौ'॥	=अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षासे श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्रआदिकी रचना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके तो इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन रहते हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथक् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रका विचार पूर्वक पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे अनुदिश बताये गये हैं (=निर्दिष्ट हैं) मुद्रितसर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २८४ द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १४३ देखो। नवसु शब्द यदि ग्रैवेयकेषु के पहिले मानाजावे तो 'नवअनुदिश' देवयकोंसे नीचे हुये जाते हैं। यदि कहाजावेकि नवसु शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या बतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश' छूटेजाते हैं इसलिये मैंने 'नवसु' शब्दको 'ग्रैवेयकेषु' के पश्चात् रखकर नवअनुदिशोंमें ऐसा अनुवाद किया है। यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' का पाठान् तरसे ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि 'नवसु' शब्द को जब पूर्वको आकर्षण करते हैं तब ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं तब अनुदिशोंका वाचक 'नवसु' शब्द होजाता है। यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री उमास्वामीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते नवसु शब्दको 'ग्रैवेयक' के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और इस प्रकारका काम होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (देखो मुद्रित पृष्ठ ३८२) ऐसे होता है कि "ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विव" =ग्रैवेयकेषु नवसु नवसु अनुदिशेषु इत्यम्=ग्रैवेयकोंमें, नौ अनुदिशोंमें यह (वृत्ति=विभक्ति भिन्नभिन्न) है ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवेय तथा ग्रैवेयक सब एकार्थवाचक हैं। अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिशा है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहलाता है। दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'आ' है उसका समास अनु अव्ययके साथ करने पर 'अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है।

(३) (प्रश्न) विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहींहै फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण हैं।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासीदेव निरंतर श्रुतभावनामें लीन रहतेहैं और उपशांतश्रेणीकेविषैं अध्यन्त मन्दकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टताको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये या बतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषुसे की।

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "पृथक्त्वा इत्यादि वाक्यका भिन्न लिखित अर्थ पृष्ठ ६४२में किया है ऐसे किये अगिले दोय युगल आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषें भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है। आनत प्राणतयो आरणअच्युतयोः ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है सो एकएक स्वर्गमें एकएक इन्द्र है। ऐसे जानिये" । पिछला वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानें और बारह इंद्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं। पश्चात् पृष्ठ ६४३ में और पृष्ठ ६४७में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गों में "आरणनामा देवराज है——अच्युतनामा देवराज है" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इन्द्रोंकी अपेक्षासे) दोही इन्द्र हैं पं० पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वकौमदीमें और पं० गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०३८ और १०३९ (सभ्याद्वारा सम्पादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है।

तद्यथा०" " =जैसे सौधर्म इन्द्र ऐशान इन्द्र सानत्कुमारेन्द्र, माहेन्द्र इन्द्र ब्रह्मनामक इन्द्र ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र लांतव नामक इद्र कापिष्ठ नामक इंद्र शुक्र नामक इद्र शतार नामक इन्द्र सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र अच्युत नामक इन्द्र (आनत प्राणत नामक कोई इंद्र नहीं हैं) ते इतने लोक नियोगके अपेक्षाकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ १९१ से १९६ तक)

इह०द्वादश।।इन्द्रोT =यहां(=इह) (मूल सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(इन्द्र कहना)इन्द्र है। इसका देखो पृष्ठ ५१।

इस समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अंततक सारांश यह है कि(क)प्रथम कल्पयुगको बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बड़जाता (ख) आनत प्राणतयोः 'आरणाच्युतयोः की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो विभक्तिसे यह भी झलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे यहभी झलकता है कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भी बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (ङ) ये तीन विभक्तियां इस बातकीभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गमें एक एक इंद्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां तीसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इंद्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहैं परन्तु प्रसिद्ध बारहही इंद्र हैं। श्वेताम्बरआम्नायमें १०ही मानेहैं।

'ग्रैवेयकेषु' 'नवसु' 'विजय वैजयन्त जयन्त	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त
अपराजितेषु' 'च' 'सर्वार्थसिद्धौ'॥	=अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षासे श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्र आदिकी कल्पना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके ही इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन क्रमसे हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथग् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रको विचार पूर्वक पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहेगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे अनुदिश दर्शाये गये हैं (=निर्दिष्ट हैं) मुद्रितसर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १४७, श्लोकवार्तिक पृष्ठ १५३ देखो। नवसु' शब्द यदि 'ग्रैवेयकेषु' के पहिले माना जावे तो 'नवअनुदिश' ग्रैवेयकोंसे नीचे हुये जाते हैं। यदि कहाजावेकि नवसु शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या बतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश' छूटेजाते हैं इसलिये मैंने 'नवसु' शब्दको ग्रैवेयकेषु के पश्चात् रखकर 'नवअनुदिशोंमें' ऐसा अनुवाद किया है। यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' का पश्चात् लानेसे ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि 'नवसु' शब्द को जब पूर्वको आकर्षण करते हैं तब ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं तब अनुदिशोंका द्योतक नवसु शब्द होजाता है। यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री उमास्वामीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते नवसु शब्दका 'ग्रैवेयक' के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और [illegible] अक्षरका लाभ होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (इसको मुद्रित पृष्ठ ३८२) ऐसे होता है कि "ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विव =ग्रैवेयकेषु नवसु नवसु अनुदिशेषु इवम्=ग्रैवेयकोंमें, नौ अनुदिशोंमें पद (पुष्टि=विभक्ति भिन्नभिन्न) है ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवेय तथा ग्रैवेयक सब एकार्थवाचक हैं। अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिश है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहाजाता है। दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'श' है उसका समास 'अनु' अव्ययके साथ करने पर 'अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है।

(३) (प्रश्न) विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहीं है फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया? (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण हैं।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासी देव निरंतर शुभभावनामें लीन रहते हैं और उपशांतमोही जैसे अत्यन्त मन्दकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टताको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये या बतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति "विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषु" से की।

पं॰ पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "पृथक्त्वा इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पृष्ठ ६४२में किया है जैसे किये अगिले दोय युगल आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषैं भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है ॥ आनत प्राणतयो आरणअच्युतयोः ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है।सो एकएक कल्पमें एकएक इन्द्र है ॥ ऐसे जानिहैं" ॥ जिसका वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इन्द्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं ॥ पश्चात् पृष्ठ ६९३ में और पृष्ठ ६९७में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गों में "आरणनामा देवराज है———अच्युतनामा देवराज है" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इन्द्रोंकी अपेक्षासे) दोही इन्द्र हैं पं॰ पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वकौमदीमें और पं॰ गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०७८ और १०७९ (सस्थाद्वारा सम्पादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है ॥

तयथा॰ ''

=जैसे सौधर्म इन्द्र, ऐशान इन्द्र सानत्कुमारइन्द्र माहेन्द्र इन्द्र ब्रह्मनामक इन्द्र ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र लांतव नामक इंद्र कापिष्ठ नामक इंद्र शुक्र नामक इन्द्र शतार नामक इन्द्र सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र अच्युत नामक इन्द्र (आनत प्राणत नामक कोई इंद्र नहीं हैं) ये इतने लोक नियोगके अपेक्षाकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ १९१ से १९६ तक)

इस॰आदश)।इच्छेT

=यहां(=इह) (सूत्र सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(इन्द्र कहना) इष्ट है ॥ इसका देखो पृष्ठ ५१ ॥

इस समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अंततक सारांश यह है कि(क)प्रथम छःयुगलों बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता (ख) 'आनत प्राणतयोः आरणाच्युतयोः' की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो विभक्तिसे यह भी झलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे पहली झलकताहै कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भी बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (च) ये तीन विभक्तियां इस बातकीभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गोंमें एक एक इद्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां दूसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इन्द्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहैं परन्तु प्रसिद्ध बारहही इंद्र हैं ॥ श्वेताम्बरआम्नायमें १२ही मानेहैं।

ग्रैवेयकेषु॰ नवसु॰ विजय वैजयन्त-जयन्त-	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त-
अपराजितेषु॰ च॰ सर्वार्थसिद्धौ॰॥	=अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षासे श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्रआदिको कल्पना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके तो इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन समझे हैं) अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथग् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रको विचार पूर्वक पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहेगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे अनुदिश' दर्शाये गये हैं (=निर्दिष्ट हैं) मुद्रितसर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २४५, श्लोकवार्तिक पृष्ठ १५२ देखो। नवसु शब्द यदि 'ग्रैवेयकेषु' के पहिले मानाजावे तो 'नवअनुदिश' ग्रैवेयकोंसे नीचे हुए जाते हैं। यदि कहाजावेकि नवसु शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या बतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश' छूटेजाते हैं इसलिये मैंने 'नवसु' शब्दको ग्रैवेयकेषु के पश्चात् रखकर नवअनुदिशोंमें ऐसा अनुवाद किया है। यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' का पश्चात् लानेसे ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि नवसु' शब्द को जब पूर्वको आकर्षण करते हैं तब ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं तब अनुदिशोंका द्योतक नवसु शब्द होजाता है। यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री स्वामीजीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते नवसु शब्दको 'ग्रैवेयक' के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और एक अक्षरका लाभ होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (जो मुद्रित पृष्ठ ३८२) पर से होता है कि 'ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विव' =ग्रैवेयकेषु नवसु नवसु अनुदिशेषु इयम्=ग्रैवेयकोंमें, नौ अनुदिशोंमें यह (वृत्ति=विभक्ति भिन्नभिन्न) है।

ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवय तथा ग्रैवयक सब एकार्थवाचक हैं। अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिश है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहलाता है। दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'आ' है उसका समास 'अनु' अव्ययके साथ करने पर 'अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है।

(३) (प्रश्न) विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहीं है फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया? (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासी देव निरंतर श्रुतभावनामें लीन रहतेहैं और उपशांतमोहीकेसदृश अत्यन्त मन्दकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टसीढीको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये या जतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति "विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषु"से की।

कथमेषां सौधर्मादिशब्दानां कल्पाभिधानं ? चातुरर्थिकेनाणा, स्वभावतो वा कल्पस्याभिधानं भवति ॥ अथ कथमिन्द्राभिधानं ? स्वभावतः साहचर्याद्वा ॥ तत्

शब्दानुवाद—कथम्॥एषाम्॥सौधर्म आदि शब्दानाम्॥ — =कैसे इन सौधर्म आदिक (सोलह) शब्दोंका (अर्थात् सोलह स्वर्गोंका)

कल्प अभिधानम्॥चातुरर्थिकेन॥अणा॥ — =कल्प नाम हुआ ? (उत्तर) चातुरर्थिक अण्(=अ प्रत्यय)करि अर्थात् व्याकरणके तद्धितप्रकरणमें (=संज्ञामें प्रत्यय मिलाकर अर्थ बदलने रूप प्रकरणमें)

चातुरर्थिक प्रकरणके (=वह अधिकार जिसमें अण् अञ्-ठक् 'वुञ्-छण् इत्यादि बहुतसे प्रत्ययोंमेंसे प्रत्येक प्रत्यय चारचार (क) "वह जिसमें हो (ख) " बनायागया (ग) " उसका निवास (घ) "अदूर अर्थोंमें विधान कियाजाता है उन प्रत्ययोंमेंसे इस) अण् (प्रत्यय) द्वारा (वह जिसमें हो—उसका निवास-इन अर्थोंमें लेकर वा ग्रहणकरि)

वा॥स्वभावतः॥कल्पस्य॥अभिधानम्॥भवति — =अथवा (=वा) स्वभावसे, कल्पकी संज्ञा वा नाम (अभिधान) होता है भावार्थ सौधर्म आदिकी कल्पसंज्ञा चारें अण् प्रत्यय 'वह जिसमें हो' 'उसका निवास' अर्थोंमें लेकर सुधर्मा, ईशान, सनत्कुमार, महेन्द्र आदि शब्दोंमें यथायोग्य लगाकर करलेनी चाहिये अथवा सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र आदि स्वाभाविक नाम हैं यों समझलेना चाहिये

अथ॥कथम्॥इन्द्र-अभिधानम्॥स्वभावतः॥ — =प्रश्न (=अथ) इन्द्रका नाम कैसे है ? (उत्तर) स्वभावसे, प्रकृतिसे,

साहचर्यात्॥वा॥ — =अथवा संसर्गतासे, सहचरितासे, उसमें रहनसहनसे (अर्थात् जैसा अमुक कल्प या स्वर्ग का नाम है वैसा उस स्वर्ग वा कल्प के इन्द्रका नाम है)

तत्॥ — =सो (अर्थात् कल्पका अभिधान, नाम अण् प्रत्यय करि अथवा स्वभावसे और इन्द्रकी संज्ञा वा नाम स्वभावसे अथवा साहचर्यसे)

[१] वुञ् छण् क इत्यादि ४-२-८० । [२] तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ४-२-६७ ॥ [३] तेन निर्वृत्तम् ॥ ४-२-६८ ॥ [४] तस्य निवासः ॥ ४-२-६९ ॥ [५] अदूरभवश्च ॥ ४-२-७० ॥ उक्त पांच सूत्रोंको अष्टाध्यायी पाणिनिमुनिकृतमें देखो ॥ इन्हीं सूत्रोंके समानअर्थक निम्नलिखित सूत्र जैनेन्द्रव्याकरण में देखना चाहिये ॥ वे सूत्र इस प्रकार हैं कि

[१] वुञ्छण्क इत्यादि । ३-२-६१ । [२] तदस्मिन्नस्तीति देशे णौ ॥ ३-२-५७ ॥ (३) तेन निर्वृत्त । ३।२।५८ (४) (५) तस्यनिवासादूरभवौ ३-२-६०

कथमिति चेदुच्यते—सधर्मा नाम सभा, साऽस्मिन्नस्तीति सौधर्म कल्प । तदस्मिन्नस्तीत्यण् तत्कल्पसाहचर्यादिन्द्रोऽपि सौधर्म ॥ ईशानो नाम इन्द्र स्वभावत । ईशानस्य निवास कल्प ऐशानस्तस्य निवास इत्यण् । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि ऐशान ॥

कथम्॰इति॰चेत्॰उच्यते सुधर्मा१।१नाम१।१ =कैसे है ? ऐसे प्रश्न (करने) पर कहा जाता है कि सुधर्मा नाम

सभा१।१सा१।१अस्मिन्७।१अस्ति१इति॰सौधर्म १।१कल्प१।१ =सभा है। वह (सभा) जिसमें है ऐसा सौधर्म कल्प है

"तदस्मिन्नस्तीत्यण्"(=तत्१।१अस्मिन्७।१अस्ति१इति॰अण्१।१)='तदस्मिन्नस्ति' ऐसे (अष्टाध्यायीके चौथ अध्याय पाद दो सूत्र ६७ से और जैनेन्द्रव्याकरण के तीसरा अध्याय पाद दो सूत्र ५८ से)

अण् (प्रत्ययको 'वह जिसमें हो' इस अर्थमें प्रयोग करके सौधर्म शब्द सिद्ध किया) है । भावार्थ सुधर्मा शब्दमें अण् प्रत्ययका यह प्रभाव है कि सुधर्मा शब्दके 'उ'की वृद्धि संज्ञा होजाती है और अण्प्रत्ययका अ जोड़ाजाता है तब सौधर्मा+अ ऐसा रूप हुआ क्योंकि 'अण्' के 'ण्' का इत् संज्ञक होनेसे लोप होजाता है शेष 'अ' रहता है अण् प्रत्ययका यह भी प्रभाव है कि शब्दके स्वरोंमेंसे अंतिम स्वरवालेभाग या खंडको मय उस भागके व्यंजनको यदि कोई व्यंजन उस भागमें होता गिरादेताहै और अण् प्रत्ययका अ उस शब्दके शेषभागमें जुड़जाताहै इसलिये सौधर्मा शब्दका 'आ' गिरकर और अण्का अ मिलनेसे सौधर्म शब्द ऐसे सिद्ध हुआ कि सौधर्म्+अ=सौधर्म

तत्-कल्प-साहचर्यात्५।१ =उस (सौधर्म) कल्पमें रहन सहन से अथवा सौधर्म कल्पकी सहचरितासे

इन्द्र१।१अपि॰सौधर्म १।१ =इन्द्र भी (=अपि) सौधर्म है ॥

ईशान१।१नाम१।१इन्द्र१।१स्वभावत॰ । ईशानस्य६।१निवास१।१ =ईशान नामा इन्द्र है सो स्वभावसे है । ईशान इन्द्रका निवास

कल्प१।१ऐशान१।१ 'तस्य निवास' =सो स्वर्ग(=कल्प)ऐशान है ॥ 'तस्य निवास' जैनेन्द्र व्याकरण और अष्टाध्यायीके इसी सूत्रसे

इति॰अण्१।१ =ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय(निवास अर्थमें)है कि ईशान+अण्=ऐशान्+अ=ऐशान बना

तत् साहचर्यात्५।१इन्द्र१।१अपि॰ऐशान १।१ =उस (ऐशान कल्प, स्वर्ग) में रहनसहनसे अथवा सहचरितासे इन्द्र भी ऐशान है।

सनत्कुमारो नाम इन्द्रः स्वभावतः । तस्य निवास इत्यण् । सानत्कुमारः कल्पः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि सानत्कुमारः ॥ महेन्द्रो नामेन्द्रः स्वभावतस्तस्य निवासः कल्पो माहेन्द्रः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि माहेन्द्रः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ प्रथमौ सौधर्मैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि

सनत्कुमारः नाम इन्द्रः स्वभावतः । तस्यनिवासः'	=सनत्कुमार नाम इन्द्र (है सो) स्वभावसे है । 'तस्य निवासः' उक्तसूत्र द्वारा
इति अण्	=ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय (निवास अर्थमें) होकर (सनत्कुमार से, सानत्कुमारबनकर)
सानत्कुमारः कल्पः, तत्साहचर्यात्	=सानत्कुमार स्वर्ग हुआ । उस (सानत्कुमार कल्प) में रहनेसे वा रहनसहनसे
इन्द्रः अपि सानत्कुमारः । महेन्द्रः नाम इन्द्रः	=इन्द्रभी सानत्कुमार है । महेन्द्र नाम इन्द्र है
स्वभावतः तस्य निवासः कल्पः माहेन्द्रः	=सो स्वभावसे है उसका निवासस्थान स्वर्ग माहेन्द्र है ("तस्य निवासः" इस सूत्र द्वारा ऐसे अण् प्रत्यय निवास अर्थमें होकर महेन्द्र से माहेन्द्र शब्द बनाया)
तत्-साहचर्यात् इन्द्रः अपि माहेन्द्रः ॥	=उस (माहेन्द्र कल्प)के साहचर्यसे इन्द्र भी माहेन्द्र है ।
एवम् उत्तरत्र अपि	=इस प्रकार यहां (माहेन्द्र कल्प) से आगे (उत्तरत्र) भी
योज्यम् ॥	=(ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर इत्यादि सोलह स्वर्ग पर्यंत इन्द्र तथा कल्पकानाम) जोड़नाचाहिये
आगम अपेक्षया व्यवस्था भवति इति	=शास्त्रकी अपेक्षासे ऐसे निर्णय (=व्यवस्था) होता है कि
उपरि उपरि इति अनेन द्वयोः द्वयोः	=ऊपर ऊपर इस (वाक्य) करि दो दो (स्वर्गों) का
अभिसम्बन्धः वेदितव्यः । प्रथमौ सौधर्म-ऐशानकल्पौ	=सम्बन्ध जानना योग्य है । पहिले दो सौधर्म और ऐशान कल्प हैं ।
तयोः उपरि सानत्कुमार-माहेन्द्रौ	=उनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र हैं ।
तयोः उपरि ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरौ	=तिनके ऊपर ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर हैं ।
तयोः उपरि लान्तव-कापिष्ठौ, तयोः उपरि	=उनके ऊपर लान्तव और कापिष्ठ हैं । तिनके ऊपर

शुक्रमहाशुक्रौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणतौ, तयोरुपरि आरणाच्युतौ ॥ अध उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्य । मध्ये तु प्रतिद्वयमेक ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमार-माहेन्द्राणा चतुर्णा चत्वार इन्द्रा । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम । लान्तवकापिष्ठयोरेको लान्तवाख्य । शुक्रमहाशुक्रयोरेक शुक्रसञ्ज्ञ । शतारसहस्रारयोरेक शतारनामा । आनतप्राणतारणाच्युताना चतुर्णा चत्वार । एव कल्पवासिना द्वादश इन्द्रा भवन्ति ॥ जम्बूद्वीपे महामन्दरो

शुक्र महाशुक्रौ (स्तः) तयोः उपरि शतार	=शुक्र और महाशुक्र हैं ॥ तिनके ऊपर शतार
सहस्रारौ (स्तः) तयोः उपरि आनत प्राणतौ (स्तः)	=और सहस्रार हैं । उनके ऊपर आनत और प्राणत (कल्प) हैं
तयोः उपरि आरण अच्युतौ (स्तः) ॥ अध च	=तिनके ऊपर आरण और अच्युत हैं । नीचे (चार स्वर्गों में)
उपरि च प्रत्येकम् इन्द्रसम्बन्धः वेदितव्यः	=और ऊपर(चार स्वर्गोंमें) एकएक (=प्रत्येकम्) इन्द्रका सम्बन्ध जानना चाहिये अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, इन प्रत्येक प्रत्येकमें एकएक इन्द्र एमचार और आनत,प्राणत,आरण,अच्युत प्रत्येकप्रत्येकमें एकएक ऐसे आठइन्द्र हैं
मध्ये तु प्रति-द्वयम् एकः ॥ सौधर्म-ऐशान	=और (=तु) मध्य (आठ स्वर्गों) में प्रति युगल एक (एक) इन्द्र है सौधर्मऐशान
सानत्कुमार-माहेन्द्राणाम् चतुर्णाम् चत्वारः	=सानत्कुमार और माहेन्द्र चार (स्वर्गों) के चार
इन्द्राः, ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरयोः एकः ब्रह्म	=इन्द्र हैं, ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर का एक ब्रह्म
इन्द्रः नाम, लान्तवकापिष्ठयोः एकः	=नाम इन्द्र है, लान्तव कापिष्ठ (कल्प) का एक
लान्तव नामा, शुक्र-महाशुक्रयोः एकः	=लान्तव नाम (इन्द्र) है, शुक्र और महाशुक्र (स्वर्गों) का एक
शुक्र-नामा, शतार-सहस्रारयोः एकः	=शुक्र नामा (इन्द्र) है, शतार सहस्रार का एक
शतारनामा, आनत प्राणत आरण अच्युतानाम्	=शतार नामा (इन्द्र) है, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत
चतुर्णाम् चत्वारः, एवम् कल्प-वासिनाम्	=चार (स्वर्गों) के चार (इन्द्र) हैं, इस प्रकार स्वर्गों में निवास करनेवाले(देव)निके
द्वादश इन्द्राः भवन्ति । जम्बूद्वीपे महामन्दरः	=बारह इन्द्र होते हैं ॥ जम्बूद्वीपमें सुमेरुपर्वत

---

(१) इस पाठ में [illegible] ऐसा अनुवाद भी हो सकता है जैसे ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर में एक ब्रह्म नाम इन्द्र है [illegible] (२) नाम यहां पर [illegible] है जैसे हिमालयो नाम नगाधिराजः कुम्भकर्णभ्रमसे (देखो पृष्ठ १०४ देखो)

सनत्कुमारो नाम इन्द्रः स्वभावतः । तस्य निवास इत्यण् । सानत्कुमारः कल्पः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि सानत्कुमारः ॥ महेन्द्रो नामेन्द्रः स्वभावतस्तस्य निवासः कल्पो माहेन्द्रः । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि माहेन्द्रः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ प्रथमौ सौधर्मैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि

सनत्कुमारः नाम इन्द्रः स्वभावतः । तस्यनिवास ' इति अण्	=सनत्कुमार नाम इन्द्र (है सो) स्वभावसे है । 'तस्य निवासः' उक्तसूत्र द्वारा =ऐसे अण् (=अ) प्रत्यय (निवास अर्थमें) होकर (सनत्कुमार से, सानत्कुमार बनकर)
सानत्कुमारः कल्पः, तत्साहचर्यात्	=सानत्कुमार स्वर्ग हुआ । उस (सानत्कुमार कल्प) में रहनेसे या रहनसहनसे
इन्द्रः अपि सानत्कुमारः । महेन्द्रः नाम इन्द्रः	=इन्द्रभी सानत्कुमार है । महेन्द्र नाम इन्द्र है
स्वभावतः तस्य निवास कल्पः माहेन्द्रः	=सो स्वभावसे है उसका निवासस्थान स्वर्ग माहेन्द्र है ("तस्य निवासः" इस सूत्र द्वारा ऐसे अण् प्रत्यय निवास अर्थमें होकर महेन्द्र से माहेन्द्र शब्द बनाया)
तत्-साहचर्यात् इन्द्रः अपि माहेन्द्रः ॥	=उस (माहेन्द्र कल्प)के साहचर्यासे इन्द्र भी माहेन्द्र है ।
एवम् उत्तरत्र अपि	=इस प्रकार यहां (माहेन्द्र कल्प) से आगे (उत्तरत्र) भी
योज्यम्	=(ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर इत्यादि सोलह स्वर्ग पर्यंत इन्द्र तथा कल्पकानाम) जोड़नाचाहिये
आगम-अपेक्षया व्यवस्था भवति इति	=शास्त्रकी अपेक्षासे ऐसे निर्णय (=व्यवस्था) होता है कि
उपरि उपरि इति अनेन द्वयोः द्वयोः	=ऊपर ऊपर इस (वाक्य) करि दो दो (स्वर्गों) का
अभिसम्बन्धः वेदितव्यः । प्रथमौ सौधर्म-ऐशानकल्पौ	=सम्बन्ध जानना योग्य है । पहिले दो सौधर्म और ऐशान कल्प हैं ।
तयोः उपरि सानत्कुमार-माहेन्द्रौ	=उनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र हैं ।
तयोः उपरि ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरौ	=तिनके ऊपर ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर हैं ।
तयोः उपरि लान्तव-कापिष्ठौ तयोः उपरि	=उनके ऊपर लान्तव और कापिष्ठ हैं । तिनके ऊपर

शुक्रमहाशुक्रौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणतौ, तयोरुपरि आरणाच्युतौ ॥ अध उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्य । मध्ये तु प्रतिद्वयमेक ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमार-माहेन्द्राणा चतुर्णा चत्वार इन्द्रा । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम । लान्तवकापिष्ठयोरेको लान्तवाख्य । शुक्रमहाशुक्रयोरेक शुक्रसंज्ञ । शतारसहस्रारयोरेक शतारनामा । आनतप्राणतारणाच्युतानां चतुर्णा चत्वार । एवं कल्पवासिनां द्वादश इन्द्रा भवन्ति ॥ जम्बूद्वीपे महामन्दरो

शुक्र-महाशुक्रौ तयो उपरि शतार	=शुक्र और महाशुक्र हैं ॥ तिनके ऊपर शतार
सहस्रारौ तयो उपरि आनत प्राणतौ	=और सहस्रार हैं । उनके ऊपर आनत और प्राणत (कल्प) हैं
तयो उपरि आरण अच्युतौ ॥ अधः	=तिनके ऊपर आरण और अच्युत हैं । नीचे (चार स्वर्गों में)
उपरि च प्रत्येकम् इन्द्रसम्बन्ध वेदितव्य	=और ऊपर(चार स्वर्गोंमें) एकएक (=प्रत्येक) इन्द्रका सम्बन्ध जानना चाहिये अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, इन प्रत्येक प्रत्येकमें एकएक इन्द्र एसमार और आनत,प्राणत,आरण,अच्युत प्रत्येकप्रत्येकमें एकएक ऐसे आठइन्द्र हैं
मध्ये तु प्रति-द्वयम् एक ॥ सौधर्म-ऐशान	=और (=तु) मध्य (आठ स्वर्गों) में प्रति युगल एक (एक) इन्द्र है सौधर्मऐशान
सानत्कुमार-माहेन्द्राणाम् चतुर्णाम् चत्वार	=सानत्कुमार और माहेन्द्र चार (स्वर्गों) के चार
इन्द्रा ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयो एक ब्रह्म	=इन्द्र हैं, ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर का एक ब्रह्म
इन्द्र नाम लान्तवकापिष्ठयो एक	=नाम इन्द्र है, लान्तव कापिष्ठ (कल्प) का एक
लान्तव आख्य शुक्र-महाशुक्रयो एक	=लान्तव नाम (इन्द्र) है, शुक्र और महाशुक्र (स्वर्गों) का एक
शुक्र-संज्ञ शतार सहस्रारयो एक	=शुक्र नामा (इन्द्र) है, शतार सहस्रार का एक
शतारनामा आनत प्राणत आरण अच्युतानाम्	=शतार नामा (इन्द्र) है, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत
चतुर्णा चत्वार एवम् कल्प-वासिनाम्	=चार (स्वर्गों) के चार (इन्द्र) हैं, इस प्रकार स्वर्गों में निवास करनेवाले(देव)तिनके
द्वादश इन्द्रा भवन्ति । जम्बूद्वीपे महामन्दर	=बारह इन्द्र होते हैं ॥ जम्बूद्वीपमें सुमेरुपर्वत

(१) (न पाठ) [illegible] पृथक् सप्तमी हो कथन मानकर का के इन्द्रानमें में" ऐसा अनुवाद भी होसकता है जैसे ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर में एक ब्रह्म नाम इन्द्र है इत्यादि । (२) 'नाम' यहां पर अव्यय है जैसे हिमालयो नाम नगाधिराजः कुमारसम्भवसे (पैराकाव्य पृष्ठ २०५ देखो)

तेनानुदिशानां ग्रहणं वेदितव्यम्॥एषामधिकृतानां वैमानिकानां परस्परतो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः॥२०॥

स्वोपात्तस्यायुष उदयात्तस्मिन्भवे शरीरेण सहावस्थानं स्थिति । शापानुग्रहशक्ति प्रभाव । सुखमिन्द्रियार्थानुभव ।

तेन॥अनुदिशानाम्॥ग्रहणम्॥वेदितव्यम्॥	=तिस ('नवसु'कारक) से अनुदिश विमानों का ग्रहण जानना चाहिए ॥
एषाम्॥अधिकृतानाम्॥वैमानिकानाम्॥	=इन प्रकरणकियेहुये वैमानिकदेवोंके
परस्परतः॥विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह	=आपसमें विशेष जाननेकलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

[1]सूत्रम्— स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिका ॥ २० ॥

(=वैमानिका उपर्युपरि)स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयत -अवधिविषयत अधिका

सूत्रार्थः—वैमानिका॥उपरि॥उपरि॥	=वैमानिकदेव हैं वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति तथा पटल पटल प्रति
स्थिति प्रभाव-सुख-द्युति-	=आयु, प्रताप वा महिमा, सुख, दीप्ति (शरीरादि की कान्ति वा प्रकाश)
लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयत॥	=लेश्याकी विशुद्धता अथवा उज्ज्वलता, इन्द्रियोंके विषयकरि
अवधि-विषयत॥अधिका॥	=और अवधि ज्ञानके विषयकरि (अर्थात् इन सातों बातोंमें) अधिक अधिक हैं
वृत्त्यनुवादः—स्व-उपात्तस्य॥आयुष॥उदयात्॥	=स्वप्राप्त आयुके उदयसे
तस्मिन्॥भवे॥शरीरेण॥सह॥	=तिस भवमें वा जन्ममें शरीर सहित
अवस्थानम्॥स्थिति॥शाप-	=टिकाव वा ठहराव सो स्थिति है(परको)अपकार वा विग्रह(यथामें शाकरदंडदेने)की
(शक्ति)-अनुग्रहशक्ति॥प्रभाव॥	=(सामर्थ्य और) उपकार करनेकी सामर्थ्य सो प्रभाव है
इन्द्रिय अर्थ अनुभव॥सुखम्॥	=(सातावेदनीय के उदयसे) इन्द्रिय विषय (=अर्थ) का भोगना सो सुख है

(१) हमारे यहांकी पुस्तकोंमें कहीं पर 'विशुद्धीन्द्रिया' पाठ है कहीं पर विशुद्धीन्द्रिया" पाठ है दोनोंपाठ ठीक हैं। शेषपाठ हमारे यहां सर्वत्र एक है। श्वेताम्बर आम्नायके समाप्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें और दिगम्बरआम्नायके भाष्योंमें पाठ तथा अर्थ एकसा है।

योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजनसहस्राच्छ्राय । तस्याधस्तादधोलोक । बाहुल्येन तत्प्रमाण–(मेरुप्रमाण) स्तिर्यक्प्रसृतस्तिर्यग्लोक । तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोक । मेरुचूलिका चत्वारिंशद्योजनोच्छ्राया । तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थितमृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्मस्य ॥ सर्वमन्यल्लोकानुयोगाद्वेदितव्यम् ॥ नवसु ग्रैवेयकेष्विति नवशब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम् ? । अन्यान्यपि नवविमानानि अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम् ।

योजन-सहस्र अवगाहः भवति नव-नवति- =सहस्र योजन पृथिवीमें प्रविष्ट होता है (और) निन्यानवे
योजन-सहस्र उच्छ्रायः तस्य अधस्तात् =सहस्र योजन की ऊचाई है । तिस (सुमेरुपर्वत की जड़) के नीचे
अधोलोकः बाहुल्येन =अधोलोक है बहुलतावसे अथवा प्रचुरतासे वा बहुलतासे
तत्प्रमाणः (मेरुप्रमाणः) तिर्यक् प्रसृतः तिर्यग्लोकः =उसके परिमाण (सुमेरुके बराबर मौटाई) तिर्यक् फैलवा तिर्यग्लोक है
तस्य [1] उपरिष्टात् ऊर्ध्व लोकः मेरु-चूलिका =उस (सुमेरु)के ऊपर ऊर्ध्व लोक है । मेरु पर्वतकी चूलिका
चत्वारिंशत् योजन उच्छ्राया तस्याः उपरि =चालीस योजन ऊचाई वाली है तिस (चूलिका) के ऊपर
केशान्तरमात्रे व्यवस्थितं ऋजुविमानइन्द्रकं सौधर्मस्य =बालके अन्तरमात्र तिष्ठा हुआ ऋजुनामा इन्द्रक विमान सौधर्म(स्वर्ग)का है
सर्वम् अन्यत् लोक अनुयोगात् वेदितव्यम् =अन्य(=अन्यत्)समस्त वर्णन लोकनियोग(=लोकमें प्रचलित)ग्रंथसे जानना चाहिये
नवसु ग्रैवेयकेषु इति । नव शब्दस्य =(प्रश्न) "नवसु ग्रैवेयकेषु" इस प्रकार नव शब्दके (ग्रैवेयक शब्दसे)
पृथग् वचनम् किम् अर्थम् ? =न्यारी विभक्ति किस लिये है अर्थात् प्रश्न यह है कि जब नवग्रैवेयक हैं तो "नवग्रैवेयकेषु" ऐसा मिलाकर एकही बहुवचन कारक वा विभक्ति क्यों न की

नवसु को सप्तमी बहुवचन में भिन्न कारक किया और 'ग्रैवेयकेषु' को सप्तमी बहुवचन न्यारा कारक किया यदि एकही में दोनों को मिलाकर एकही विभक्ति करदेते तो "सु" अक्षर न्यून होजाता ।

अन्यानि अपि नव-विमानानि =(उत्तर) (इन नवग्रैवेयकोंसे ऊपर) इतर वा दूसरे भी नौ विमान
अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्ति इति ज्ञापन अर्थम् =अनुदिशनामक हैं ऐसा जनावनेको(नवसु ग्रैवेयकेषुसे न्यारी-न्यारी विभक्ति की) है॥

---

(१) उपरिष्टात् और उपरि दोनो अव्यय हैं इनके साथ (जैसे यहां) द्वितीया और षष्ठी विभक्तियां मिलती हैं ॥ (२) सुमेरु के ऊपर चालीस योजन की चूलिका है सो तिर्यग्लोक का भाग है ॥

देशाद्देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गति । शरीरं वैक्रियिकमुक्तम् । लोभकषायोदयाद्विषयेषु सङ्ग परिग्रहः । मानकषायादुत्पन्नोऽहङ्कारोऽभिमान । एतैर्गत्यादिभिरुपर्युपरि हीना ॥ देशान्तरविषयक्रीडारतिप्रकर्षाभावादुपर्युपरि गतिहीना ॥ शरीरं सौधर्मैशानयोर्देवाना सप्तारत्निप्रमाणम् ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयो षडरत्निप्रमाणम् ॥ ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पञ्चारत्निप्रमाणम् ॥ शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु चतुररत्निप्रमाणम् ॥ आनत प्राणतयोरर्द्धचतुर्थारत्निप्रमाणम् ॥ आरणाच्युतयोस्त्र्यरत्निप्रमाणम् ॥ अधोग्रैवेयकेषु

वृत्त्यनुवादः—देशात्‌=देश अन्तर-प्राप्ति हेतुः	=एक स्थानसे अन्य क्षेत्रकी प्राप्तिका कारण
गति ॥ शरीरम्=वैक्रियकम्	=सो गति अथवा गमन है ॥ (देवों का) शरीर वैक्रियक है
उक्तम्=लोभ कषाय-उदयात्‌	=जो (दूसरे अध्याय के ४६ वां सूत्रमें) कथित है। लोभ तथा कषायके उदयसे
विषयेषु=सङ्ग=परिग्रहः=मान कषायात्‌	=विषयोंमें सम्बन्ध सो परिग्रह है। मान और कषायके उदयसे
उत्पन्न=अहङ्कार=अभिमान=एतैः=गति-	=उत्पन्न हुआ गर्व सो अभिमान है। इन गति
आदिभि=उपरि॰उपरि॰	=शरीर, परिग्रह, अभिमानकरि, ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति पटल२ प्रति
हीना=देशान्तर-विषय-क्रीडा रति	=घटते घटते हैं। अन्य क्षेत्र-विषय-क्रीडन प्रीति की
प्रकर्ष अभावात्=उपरि॰ऊपरि॰गति हीना	=अधिकताके न होनेसे ऊपर ऊपर गमन हीन है।
शरीरम्=सौधर्म ऐशानयो=देवानाम्=सप्त-अरत्नि	=शरीर सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें देवोंका सात हाथ
प्रमाणम्=सानत्कुमार-माहेन्द्रयो=षट् अरत्नि प्रमाणम्	=प्रमाण है। सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें छह हाथ प्रमाण (शरीर) है।
ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर लान्तव-कापिष्ठेषु	=ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मोत्तर, लान्तव तथा कापिष्ठ (स्वर्गों) में
पञ्च अरत्नि-प्रमाणम्=शुक्र-महाशुक्र शतार	=पांच हस्त परिमाण (शरीर) है। शुक्र तथा महाशुक्र शतार तथा
सहस्रारेषु=चतुर् अरत्नि-प्रमाणम्=आनत-प्राणतयो	=सहस्रार स्वर्गोंमें चार हस्त प्रमाण (शरीर) है। आनत प्राणत स्वर्गोंमें
अर्द्धचतुर्थ-अरत्नि प्रमाणम्=आरण अच्युतयो	=साढ़े तीन हाथ परिमाण (शरीर) है। आरण अच्युत स्वर्गोंमें
अरत्नि प्रमाणम्=अध ग्रैवेयकेषु	=तीन हाथ माप (शरीर) है। नीचली ग्रैवेयक (तिकड़ी) में

शरीरवसनाभरणादिदीप्ति द्युति । लेश्या उक्ता । लेश्याया विशुद्धिर्लेश्याविशुद्धि ।इन्द्रियाणामवधेश्च विषय इंद्रियावधिविषय । तेभ्यस्तैर्वाऽधिका इति॥ तस्मिन्नुपर्युपरि प्रतिकल्प प्रतिप्रस्तारं च वैमानिका स्थित्यादिभिरधिका इत्यर्थ ॥ यथा स्थित्यादिभिरुपर्युपर्यधिका एवं गत्यादिभिरपीत्यतिप्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह–

॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

शरीर-वसन आभरण-आदि-दीप्ति, द्युति,	=शरीर वस्त्र तथा भूषण अथवा गहना आदिक का प्रकाश सो द्युति है
लेश्या	=लेश्या अर्थात् कषायके उदयकरि रंजित योगों की प्रवृत्ति
उक्ता लेश्यायाः विशुद्धिः	=(दूसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें) वर्णित है । लेश्याकी उज्ज्वलता वा विशुद्धता
लेश्या-विशुद्धि इन्द्रियाणाम् अवधे च विषयः इन्द्रिय-	=सो लेश्या विशुद्धि है । इन्द्रियोंका और अवधिज्ञानका विषय है सो इन्द्रिय
अवधि-विषय तेभ्य	=अवधिविषय है ।तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रिय,अवधि विषय)से
वा तैः	=अथवा तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रियविषय,अवधिविषय)करि
अधिका इति तस्मिन् उपरि उपरि	=अधिक अधिक हैं ऐसें तिस (ऊर्ध्वलोक) में ऊपर ऊपर
प्रति कल्पम् प्रति प्रस्तारम् च वैमानिका स्थिति-	=स्वर्गस्वर्ग प्रति और पटल प्रति वैमानिक देव स्थिति
आदिभि अधिका इति अर्थ यथा स्थिति	=आदि करि अधिक अधिक हैं ऐसा आशय है जैसे स्थिति
आदिभि उपरि उपरि अधिका एवम् गति-	=आदि करि ऊपर ऊपर अधिक अधिक हैं ऐसे गमन
आदिभि अपि इति अतिप्रसङ्गे	=आदिकरि भी इस प्रकार अति प्रसक्ति अर्थात् विपरीत सम्बन्ध आने पर
तत्-निवृत्ति-अर्थम् आह	=उस (विपरीत प्रसक्ति) के निषेध के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्– गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीना ॥ २१ ॥

(वैमानिका उपर्युपरि) गति-शरीर-परिग्रह-अभिमानत हीना भवन्ति ॥

सूत्रार्थः–वैमानिका उपरि उपरि	=वैमानिक देव हैं ते ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति पटल पटल प्रति
गति-शरीर-परिग्रह अभिमानत हीना	=गमन, शरीर की उच्चता, परिग्रह और अहंकार करि घटते घटते हैं

इदानीं वैमानिकेषु लेश्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

इदानीं=वैमानिकेषु=लेश्या विधि प्रतिपत्ति अर्थम्=आह=अब वैमानिक देवोंमें लेश्याके नियमकी प्राप्तिके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(1)सूत्रम्— पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्याद्वि त्रिशेषेषु" ऐसा है श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका और हमारे यहांका एक पाठ है। हमारे यहां इस सूत्रका अर्थ सामान्यरूपसे और विशेषरूपसे एक ही प्रकारसे किया है। एकसा पाठ होने पर भी अर्थ भेद है जिसको सविस्तार टिप्पणी में दिखलाते हैं ॥

श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका सिद्धसेनसूरि रचितका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु"

'पूर्वेण बहुव्रीहिस्ततस्तत्र द्वन्द्वः। यथासंख्यं चाभि सम्बन्धः कार्यः। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादि भाष्यम् पृष्ठ १५० = इस सूत्रके पहले पीतपद्मशुक्ललेश्या तक बहुव्रीहि समास है आगे द्वित्रिशेषेषु तक द्वन्द्व समास है। यथासंख्य' शब्द इस सूत्रमें लगाना चाहिये। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादिक भाष्य का व्याख्या है॥ स्मरण रहे कि सौधर्मैशान इत्यादि सूत्र २० में ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ शुक्र शतार ये चार स्वर्ग नहीं माने हैं इसलिये उनके यहां दोनो भाष्योंके अनुकूल बारहस्वर्गोंमें "समानत्वे चाप्युपर्युपरि विशुद्धितरत्वं सौधर्मैशानयोः सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकेषु पद्मलान्तकादिषु सर्वार्थसिद्धान्तेषु शुक्ललेश्या" पृष्ठ १५० = (लेश्याओंमें) समानता होनेपर भी (=सति अपि) ऊपर ऊपरके देवोंकी लेश्या अधिक विशुद्ध है। सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्याके धारक देव हैं। सानत् कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक (स्वर्गों) में पद्मलेश्या वाले देव हैं। लांतकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक शुक्ललेश्या के धारी देव हैं।

श्वेताम्बर० 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' तथा श्वेताम्बर हरिभद्रीय टीकाका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वि त्रिशेषेषु" ॥ २३ ॥

भाष्यम्—उपर्युपरि वैमानिकाः सौधर्मादिषु द्वयोस्त्रिषु शेषेषु च पीतपद्मशुक्ललेश्या, भवन्ति यथासंख्यम्। द्वयोः पीतलेश्या सौधर्मैशानयोः। त्रिषु पद्मलेश्या सनत्कुमार माहेन्द्रब्रह्मलोकेषु। शेषेषु लान्तकादिष्वा सर्वार्थसिद्धाच्छुक्ललेश्या। उपर्युपरि तु विशुद्धतरेत्युक्तम्। =ऊपरऊपर वैमानिकसौधर्मादिक दो (स्वर्ग या कल्प) में, तीनस्वर्गोंमें और (=च) बचेहुये (लांतस्वर्ग-नवग्रैवेयक पंचोत्तर निर्मोंमें) पद्म-शुक्ललेश्या [illegible] से हैं॥

दो सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्या है। तीन सानत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्मलोकमें पद्मलेश्या है। बचेहुये लांतकआदिमें अर्थात् महाशुक्रसहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत नवग्रैवेयक, पांच विजय वैजयंत जयंत अपराजित (=आदिम) तिनमें सर्वार्थसिद्धि, पर्यंतमें (आ-सर्वार्थसिद्धितो) शुक्ललेश्या है (और समान लेश्याओं में भी) ऊपर ऊपर के देवों की लेश्या अधिक विशुद्ध है ऐसा कहचुके हैं (सभाष्य० पृष्ठ ११२)

श्वेताम्बर आम्नायके उक्त दोनों भाष्योंके अर्थ करने पर एक ही भाव या अभिप्राय प्रगट होता है यद्यपि सूत्र पाठमें भेद है सम्भव है कि सभाष्य०के पाठमें द्वि त्रि' 'द्वि त्रि के स्थानमें अशुद्ध छपगया हो या अशुद्ध लिखगया हो क्योंकि शायद उक्त सूत्रका कोई अनुवाद समाधान योग्य नहीं होसका है

अर्द्धतृतीयारत्निप्रमाणम् ॥ मध्यग्रैवेयकेष्वरत्निद्वयप्रमाणम् ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु अनुदिशविमानेषु
च अध्यर्द्धारत्निप्रमाणम् ॥ अनुत्तरेष्वरत्निप्रमाणम्॥ परिग्रहश्च विमानपरिच्छदादिरुपर्युपरि हीन ॥
अभिमानश्चोपर्युपरि तनुकषायत्वाद्धीन ॥ पुरस्तात्रिषु निकायेषु देवानां लेश्याविधिरुक्त

अर्द्ध-तृतीया-[1]अरत्नि प्रमाणम्॥ मध्य-ग्रैवेयकेषु॥	=अढ़ाई हाथ परिमाण (शरीर) है। मध्य ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अरत्निद्वय-प्रमाणम्॥ उपरिम-ग्रैवेयकेषु॥	=दो हाथ माप (शरीर) है। उपरिम ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अनुदिश-[2] विमानेषु॥ च अध्यर्द्ध अरत्नि प्रमाणम्॥ ॥	=और अनुदिश (नव) विमानोंविषैं डेढ़ हस्त प्रमाण(शरीर) है।
अनुत्तरेषु॥	=अनुत्तर (विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि) विषैं
अरत्नि-प्रमाणम्॥ । परिग्रहः॥ च विमान [3]परिच्छद	=एक हाथ प्रमाण (शरीर) है। बहुरि परिग्रह विमान परिवार (=परिच्छद)
आदिः॥ ऊपरि ऊपरि हीन॥ अभिमानः॥ च उपरि उपरि	=आदिक ऊपर ऊपर घाटि घाटि हैं। बहुरि अभिमान वा अहंकार ऊपर ऊपर
तनु कषायत्वात्॥ हीनः॥ पुरस्तात् त्रिषु॥	=थोड़ी वा मंद कषाय होने स हीन है। पहिले तीन
निकायेषु॥ देवानाम्॥ लेश्या-विधिः॥ उक्तः॥	=समुदायके देवोंके लेश्याका नियम कहा गया।

(१) अरत्नि—(पु०)(क)कुहनी(ख)मुट्ठी(ग)-पु०स्त्री-कोहनीसे लेकर कनिष्ठका पयत हाथकी लंबाई(वैद्यकाशपृष्ठ ४४) (कनिष्ठा छिगुनीको कहते हैं)
अरत्नि—(पु०) "चौथी अंगुलीको फैलाकर मुट्ठी बांधा हुआ हाथ" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४१॥ चौथी अंगुली कनिष्ठा वा छिगुनीको कहते हैं॥
रत्नि—(पु०स्त्री) बंधीहुई मुट्ठी वाले हाथ का माप (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३१६॥ अमरकोश ११ वर्ग श्लोक ८६ में बंधीहुई मुट्ठी सहित हाथ॥
उपर्युक्त लेखसे विदित है कि अरत्नि एक छिगुनी (एक कनिष्ठा अंगुली) के बराबर रत्नि से बड़ी है और एक हस्त हाथ से न्यून है जैसाकि हलायुध ग्रन्थकारके निम्न लिखित श्लोक से प्रगट है

मध्यांगुली कूर्परयोर्मध्ये प्रामाणिक करः। (मध्य अंगुली-कूर्परयोः)	=बीचकी अंगुली और कुहनी(=कूर्पर)के बीचमें जो मापागया है वह हाथहै॥
बद्धमुष्टि करो रत्निररत्नि सकनिष्ठक॥ (बद्धमुष्टिकः रत्निः अरत्निः)	=बंधी हुई मुट्ठी सहित हाथ है सो रत्नि है और बंधीहुई मुट्ठी सहित हाथ मय फैली हुई छिगुनी के अरत्नि है अर्थात् कोहनी से लेकर कनिष्ठका तक लम्बाई को अरत्नि कहते हैं जो हाथ भरसे एक दो हीन होती है॥

(२) परिच्छेद—(पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २१० में) विशेष रूप से ध्यसाकरण सर्ग अध्याय, सीमा विचार अर्थो में है परन्तु परिच्छद का अर्थ (पृष्ठ २१०) में उपकरण सामान कपड़ा गहना-परिवार आदि हैं यहांपर परिवार के अर्थ में है॥ परिच्छद के स्थानमें परिच्छेद अशुद्ध छपगया है। हस्त लिखित प्रति पृष्ठ ६६ पर 'परिग्रहश्च विमान परिच्छदादि' ऐसा पाठ है॥ (३) विमान शब्द पुल्लिंग और नपुसक लिंग दोनोंमें आता है॥

पीता च पद्मा च शुक्ला च ता पीतपद्मशुक्ला । पीतपद्मशुक्ला लेश्या येषा ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥ कथं ह्रस्वत्वम् ?।

सौधर्म ऐशानमें पीतलेश्यावाले देव और सानत्कुमार माहेन्द्रमें पीत पद्म दोनों लेश्यावाले देव और ब्रह्मलोक ब्रह्मोत्तर और लान्तव कापिष्ठमें पद्मलेश्यावाले देव, शुक्र महाशुक्र और शतार सहस्रारमें पद्म शुक्ल दोनोंलेश्यावाले देव आनत प्राणत और आरण अच्युत और नव ग्रैवेयकोंमें शुक्ललेश्यावाले देव और नव अनुदिशमें और पांच अनुत्तरोंमें देव परम शुक्ल लेश्या वाले हैं॥

वृत्त्यनुवादः—पीता¹॥च॥पद्मा¹॥च॥शुक्ला¹॥च॥ =और पीता और पद्मा तथा शुक्ल हैं

ताः¹॥पीत-पद्म-शुक्लाः¹॥पीत-पद्म शुक्ला¹॥लेश्याः¹॥येषाम्⁶ =वे पीतपद्मशुक्लाः (द्वंद्व समास रूपमें) हैं। पीत पद्म और शुक्ल हैं लेश्यायें जिनके

ते¹॥पीत-पद्म शुक्ल-लेश्याः¹ =वे पीत-पद्म शुक्ललेश्यावाले(देव) हैं (यह वाक्य द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहि समासमें है) अर्थात् 'पीतपद्मशुक्लाः¹॥' यह वाक्य स्त्रीलिंग द्वन्द्व समासमें है और 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः¹' यह वाक्य पुरुषलिंग द्वंद्व समास गर्भित बहुव्रीहिसमासमें है। सारांश पीत, पद्म, शुक्ललेश्या जिनके हैं वे पीत-पद्म-शुक्ल लेश्या सहित देव हैं॥

कथं॥ह्रस्वत्वम्¹॥ ? =(प्रश्न) ह्रस्वपना या लघुपना (पीता, पद्मा और शुक्ला शब्दों के) कैसे हुआ ?

इस प्रश्न का दोहरा तात्पर्य है प्रथम यह कि पीता-पद्मा-शुक्ला तीनों शब्दोंका द्वंद्वसमास किया है तो 'पीतापद्माशुक्लाः¹॥' ऐसा रूप होना चाहिये क्योंकि द्वन्द्वसमासमें जो शब्द समुच्चय किये जाते हैं वे ह्रस्व हों तो ह्रस्व बन रहते हैं और दीर्घ हों तो दीर्घ बने रहते हैं द्वंद्वसमासमें पूर्व पदका कभी ह्रस्व नहीं होता है। जैसे हरिश्च हरश्च=हरिहरौ(विष्णु और महादेव)ईशश्च कृष्णश्च ईशकृष्णौ(शिव औरकृष्ण) माता च पिता च=माता पितरौ (मा और बाप) इसलिये 'पीतापद्माशुक्लाः¹॥' रूप होना चाहिये। दूसरा तात्पर्य है कि यदि हम 'पीतापद्माशुक्लाः¹॥' द्वंद्व समासमें 'लेश्या' शब्द मिलाकर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास करदें तो 'पीतापद्माशुक्लालेश्याः¹' ऐसा रूप होना चाहिये 'शुक्ला' शब्दका 'शुक्ल' ह्रस्व कैसे हुआ॥ (उत्तर)

(उपर्युपरि वैमानिका) पीत-पद्म-शुक्ललेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु (यथासंख्यम्) (भवन्ति)

उपरि॰उपरि॰वैमानिकाः।।पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः।।	=ऊपर ऊपर रहनेवाले वैमानिक देव पीत पद्म और शुक्ललेश्याओं के धारक
यथासंख्यम्॰द्वि	=क्रमसे (सामान्यपनेसे) दो (युगल सौधर्मैशान और सानत्कुमार माहेन्द्र) में
त्रि	=तथा तीन (युगल ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर और लांतव कापिष्ठ और शुक्र महाशुक्र) में
शेषेषु।।	=बचे हुये (शतार-सहस्रार और आनत-प्राणत और आरण अच्युत तथा नवग्रैवेयक और नव अनुदिशों और पांच अनुत्तर)निमें हैं परन्तु विशेष रीति से

केवल शब्दश. यह अनुवाद होसकता है कि पीत पद्म और शुक्ल लेश्यायें दो प्रकार प्रकार (भिन्न भिन्न-स्वर्गों) में होती हैं यह सुविमर्द नहीं है न किसी तात्पर्य को स्पष्ट रूपसे प्रगट करता है। पंडित ठाकुर प्रसादजी ने 'सौधर्मादि कल्पोंमें प्रथक् दो कल्पोंमें तो पीत लेश्या है, और उसके आगे तीन कल्पोंके देवोंमें पद्मलेश्या है, और आगे शेष देवोंमें शुक्ललेश्या है" अर्थ किया है सो 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'के अनुकूल है इस सूत्रके पाठानुसार नहीं है। जो समझमें आया है वही लिखा है विशेष रूपसे पाठकगण अन्वेषण करलें।

दोनों समाजोंमें सूत्रका अर्थ भेद उपयुक्त टिप्पणीसे और हमारे यहां के मूल अर्थ से (जो विशेषरूप से किया है) इस प्रकार प्रगट होता है कि

() श्वेताम्बर आम्नायमें सौधर्म-ऐशान स्वर्गोंमें पीत लेश्या है वही पीतलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल सौधर्म-ऐशान कल्पोंमें है

() श्वेताम्बरीय भाष्योंमें सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंमें पद्मलेश्या है। पीतलेश्या और पद्मलेश्या दिगम्बर समाजके अनुसार सानत्कुमार माहेन्द्रमें हैं

() श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ब्रह्मलोक स्वर्गमें पद्मलेश्या है वही पद्मलेश्या दिगम्बर आचार्यों के अनुकूल ब्रह्मलोक स्वर्ग या कल्पमें है

() श्वेताम्बर आचार्योंमें लान्तक कल्पमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्मलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल लान्तव (=लान्तक) स्वर्गमें है

() श्वेताम्बर समाजमें महाशुक्र सहस्रार कल्पोंमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्म शुक्ललेश्यायें दिगम्बर सिद्धान्तके अनुसार महाशुक्र-सहस्रारस्वर्गों में हैं

() श्वेताम्बर भाष्योंमें आनत प्राणत आरण अच्युत-नवग्रैवेयक-पांच अनुत्तरोंमें शुक्ललेश्या है वही शुक्ललेश्या दिगम्बराचार्योंमें नव अनुदिश सहितमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ शुक्र-शतार स्वर्गोंको श्वेताम्बरोंने नहीं माना है इससे मिलान नहीं होसकता है हमारे यहां ब्रह्मोत्तर कापिष्ठमें पद्म, शुक्र-शतारमें पद्मशुक्ल लेश्यायें मानी हैं

(१) वैमानिकाः' सोलहवांसूत्रसे और(२)उपर्युपरि अठारहवां सूत्र से अनुवर्तते हैं(३) यथासंख्यम् शब्दका अध्याहार सूत्रार्थ स्पष्टकेलिये कियागया है

(४) तेषाम्।।एव॰लेश्याः।।येषां।।	=तिन पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) के
ते।।पीत-पद्म शुक्ललेश्याः।।	=वे पीत पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं।

अष्टाध्यायी अध्याय छह पाद तीन सूत्र (१) चौतीसवें अथवा जैनेन्द्र व्याकरण अध्याय चार पाद तीन सूत्र एकसौ छयालीसवें से (देखो निम्नलिखित टिप्पणी) पुंवद्भाव होकर (अर्थात् शुक्ला के आकारका अकार होकर पुरुष लिंगी शब्दके सदृश तात्पर्यको प्रगट करते हुये) 'शुक्ल' शब्द होगया अतः 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' ऐसा वाक्य होगया भावार्थ 'पीतपद्मशुक्ला॥लेश्याः॥येषाम्॥(=पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥) यहांपर शुक्लाशब्द स्त्रीलिंग है उसके समान आकृति (=रूपवाला) और समान भावका (=आशय) द्योतक पुल्लिंग शब्द 'शुक्ल' है। इस स्त्रीलिंग शब्द 'शुक्ला'के अन्तमें 'ऊङ्' प्रत्यय नहीं है वरन अन्तमें 'आ' प्रत्यय है इस (शुक्ला शब्द)के पश्चात् [redacted] उत्तरमें 'लेश्या' स्त्रीलिंग शब्द है यह 'लेश्या' शब्द शुक्ला शब्दके साथ समानाधिकरणमें है और [redacted] लेश्या शब्द क्रमिक संख्या (जैसे पहला दूसरा-तीसरा चौथा इत्यादि) नहीं है और न प्रियादि गणके शब्दोंमें से एक शब्द है इसलिये यह शब्द 'शुक्ला'जो स्त्रीलिंग है अपने अनुरूप वाले 'शुक्ल' पुल्लिंग शब्दमें पलट जाता है इसलिये 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यके स्थानमें उक्त सूत्र द्वारा 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः' ऐसा वाक्य बनगया। इस 'शुक्ला' शब्दका उसीप्रकार से पुंवद्भाव हुआ है जिस प्रकारसे 'दर्शनीया' शब्दका पुंवद्भाव होकर 'दर्शनीय' शब्द दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य) वाक्यमें बन जाता है ॥ अर्थात् दर्शनीयाभार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः हुआ।

पूज्यपाद स्वामीने 'द्वाभ्यां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' पतञ्जलि वार्तिकको प्रमाणरूपमें केवल इसीलिये दिया है कि जैसे पतञ्जलिने मध्यमाका मध्यम विलंबिता विलंबित करदिया उसीप्रकार उमास्वामीने 'पीता पद्मा' को शुक्ला परे होते संते क्रमसे पीत पद्म करदिया ॥ उनको इस वार्तिक के वस्तुतः अर्थसे कुछ प्रयोजन नहीं और यथार्थ अर्थ इस वार्तिकका सूत्रके अर्थ या भावसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता वार्तिकका अर्थ पृष्ठ६८–७४ तक है।

(१)स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥६।३।३४॥ स्त्र्युक्तपुंस्कादनूङेकार्थे उत्तर् प्रियादौ स्त्रियाः पुंवत् ॥४।३।१४६

=स्त्रियाः॥ पुंवत्॥भाषितपुंस्कात्॥अनूङ्॥समानाधिकरणे॥स्त्रियाम्॥अपूरणीप्रियादिषु॥ (अपूरणी–अप्रियादिषु)

स्त्रियाः॥पुंवत्॥समानाधिकरणे,॥ =स्त्रीलिंग शब्दका पुंवद्भाव समास हुए ही जब (समास में) समानाधिकरण में अथवा एकान्वय में

स्त्रियाम्,॥अपूरणी =ऐसा स्त्रीलिंग(शब्द) उत्तरपद हो जो क्रमिक संख्या(प्रथम दूसरा-तीसरा-चौथा पांचवा इत्यादि)न हो और

प्रियादिषु,॥ =न प्रियादिगण के शब्दोंमेंसे कोई शब्द हो। (और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्दका)

भाषितपुंस्कात्॥अनूङ्॥ =पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि जिसके अन्तमें (स्त्रीलिंग) ऊङ् प्रत्यय न हो। जैसे दर्शनीय भार्य (=दर्शनीया भार्या यस्य)। यहां दर्शनीया' स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अनुरूप पुल्लिंग शब्द उसी आकृति और उसी अर्थवाला दर्शनीय शब्द है। इस 'दर्शनीया' शब्द के अन्तमें ऊङ् प्रत्यय नहीं है वरन 'आ' है इस दर्शनीया' शब्द के पश्चात् स्त्रीलिंगी शब्द भार्या है जो दर्शनीया शब्द के साथ एकान्वयमें है॥

श्योत्तरपदिकम् ।

भोत्तरपदिकम् =अग्रिम पद (दीर्घ) रहनेसे पूर्व पदको ह्रस्व हुआ है अर्थात् 'पीतापद्मा' द्वंद्वसमासमें 'पद्मा' अग्रिम पद स्त्रीलिंग दीर्घ होनेसे 'पीता' का तकार ह्रस्व होकर 'पीतपद्मा' हुआ पश्चात् 'पीतपद्मशुक्लाः॥' वाक्य में 'शुक्ला' शब्द स्त्रीलिंग दीर्घ पद होने से 'पद्मा' का ह्रस्व हुआ, अतः 'पीतपद्मशुक्लाः' ऐसा वाक्य द्वन्द्वसमास स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्ति बहुवचनमें बनगया । स्मरण रहे कि यहांपर 'पीतापद्मा' शब्दोंको पुंवद्भाव (=पुरुषलिंगी शब्दकेसदृश तात्पर्यको प्रगट करनेवाला) नहीं हुआ, केवल पीता पद्मा ह्रस्व होगये हैं ॥ 'पीतपद्मशुक्लाः॥' वाक्य का अर्थ 'पीत और पद्म और शुक्ल' है ऐसा है। ऐसा रूप बनजानेके लिये कोई व्याकरणका नियम और वार्तिक इस विषयपर नहीं है। श्री पतञ्जलिमुनिने जिनका अस्तित्व खृष्टीयशतकसे लगभग १५० वर्ष पहिले निर्णय कियागया है और जिनने पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी पर लगभग एकलाख श्लोकका महाभाष्य रचा है उनने अध्याय १ पाद १ सूत्र ७० 'तपरस्तत्कालस्य' पर 'द्रुतायां तपर करणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम' यह वार्तिक स्वमहाभाष्यमें दी है इसमें 'मध्यमविलम्बितयो' ='मध्यमा च विलम्बिता च मध्यमविलम्बित तयोः' का प्रयोग किया है इस द्वंद्वसमास युक्त पदमें 'विलम्बिता' उत्तर पद दीर्घ रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है। जैसे इस द्वंद्वसमास युक्तपद में 'विलम्बिता' उत्तर दीर्घ पद रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है उसी प्रकार यहांपर 'पद्मा' अग्रिम पद रहते 'पीता' को ह्रस्व किया और 'शुक्ला' को उत्तरपद रहते 'पद्मा' को ह्रस्व किया। यह एक बात प्रसिद्ध है कि यदि किसी रूपकी सिद्धिके लिये व्याकरणमें किसी सूत्र, वार्तिक वा अन्य नियमका अभाव हो और किसी शब्दको किसी रूपमें (चाहें वह व्याकरणके विरुद्धही प्रयोग हो) पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि योगी और श्रीकुन्दकुन्द, उमास्वामी, भद्रबाहु स्वामी इत्यादि आचार्य प्रयोग करदें वह शुद्ध मानलिया जाता है और उसको आर्ष प्रयोग भी कहते हैं यही दशा हमारे 'पीतापद्मा'वाक्यकी है। उक्त वार्तिकके अनुवादमें हम इसकी पूरी व्याख्या देंगे ॥'ह्रस्व'के लिये उत्तरपद दीर्घ और स्त्रीलिंगमें होना चाहिये ॥

दूसरी शंका (कि 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यमें शुक्ला शब्दका ह्रस्वहोकर 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥' वाक्य कैसे होगया) का उत्तर पीत और पद्म और शुक्ल हैं लेश्या जिनके वे पीत और पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं। ऐसा अर्थ 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥' इस द्वंद्व गर्भित बहुव्रीहि समास वाले वाक्य का हुआ ॥ 'शुक्ला' शब्दका

अष्टाध्यायी अध्याय छह पाद तीन सूत्र (१) चौंतीसवें अथवा जैनेन्द्र व्याकरण अध्याय चार पाद तीन सूत्र एकसौ छयालीसवें से (देखो निम्नलिखित टिप्पणी) पुंवद्भाव होकर (अर्थात् शुक्ला के आकारका अकार होकर पुरुष लिंगी शब्दके सदृश तात्पर्यको प्रगट करते हुये) 'शुक्ल' शब्द होगया अतः 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' ऐसा वाक्य होगया भावार्थ 'पीतपद्मशुक्ला:[१]'लेश्या:[२]'यषाम्[३](=पीतपद्मशुक्ललेश्या:[४]) यहांपर शुक्लाशब्द स्त्रीलिंग है उसके समान आकृति (=रूपवाला) और समान भावका (=आशय) द्योतक पुल्लिंग शब्द 'शुक्ल' है। इस स्त्रीलिंग शब्द 'शुक्ला'के अन्तमें 'ऊङ्' प्रत्यय नहीं है वरन अंतमें 'आ' प्रत्यय है इस (शुक्ला शब्द)के पश्चात् या उत्तरमें 'लेश्या' स्त्रीलिंग शब्द है यह 'लेश्या' शब्द शुक्ला शब्दके साथ समानाधिकरणमें है और यह लेश्या शब्द क्रमिक संख्या (जैसे पहला दूसरा-तीसरा चौथा इत्यादि) नहीं है और न प्रियादि गणके शब्दोंमें से एक शब्द है इसलिये यह शब्द 'शुक्ला'जो स्त्रीलिंग है अपने अनुरूप वाले 'शुक्ल' पुल्लिंग शब्दमें पलट जाता है इसलिये 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यके स्थानमें उक्त सूत्र द्वारा 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः' ऐसा वाक्य बनगया। इस 'शुक्ला' शब्दका उसीप्रकार से पुंवद्भाव हुआ है जिस प्रकारसे 'दर्शनीया' शब्दका पुंवद्भाव होकर 'दर्शनीय' शब्द दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य) वाक्यमें बन जाता है ॥ अर्थात् दर्शनीयाभार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः हुआ।

पूज्यपाद स्वामीने 'द्वृतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' पतञ्जलि वार्तिकको प्रमाणरूपमें केवल इसीलिये दिया है कि जैसे पतञ्जलिने मध्यमाका मध्यम विलम्बिता अगलेपद होतेसंते कर दिया उसीप्रकार उमास्वामीने 'पीता पद्मा' को शुक्ला परे होते संते क्रमसे पीत पद्म करदिया ॥ उनको इस वार्तिक के वस्तुतः अर्थसे कुछ प्रयोजन नहीं और यथार्थ अर्थ इस वार्तिकका सूचक अर्थ वा भावसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता वार्तिकका अर्थ पृष्ठ६८–७४ तक है।

---

(१)स्त्रिया पुंवद्भाषित पुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥६।३।३४॥ स्न्युक्तपुंस्कादनूङेकाथ उन्द् प्रियादौ स्त्रियां पुंवत् ॥ ४।३।१४६
= स्त्रियाः[१]॥ पुंवत्[२]भाषितपुंस्कात्[३]।अनूङ्[४]।समानाधिकरणे[५]।।।स्त्रियाम्[६]॥अपूरणीप्रियादिषु[७]॥(अपूरणी–अप्रियादिषु)

स्त्रियाः[१]पुंवत्[२]समानाधिकरणे[५]॥ = स्त्रीलिंग शब्दका पुल्लिंग के समान रूप हो जब (समास में) समानाधिकरण में अथवा एकान्वय में

स्त्रियाम्[६]॥अपूरणी = ऐसा स्त्रीलिंग(शब्द) उत्तरपद हो जो क्रमिक संख्या(प्रथम दूसरा-तीसरा-चौथा पांचवां इत्यादि)न हो और

प्रियादिषु[७]॥ = न प्रियादिगण के शब्दोंमेंसे कोई शब्द हो। (और इस प्रकार पहलेवाले स्त्रीलिंग शब्दका)

भाषितपुंस्कात्[३]।अनूङ्[४]। = पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि जिसके अन्तमें (स्त्रीलिंग) ऊङ् प्रत्यय न हो। जैसे दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य)। यहां 'दर्शनीया' स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अनुरूप पुल्लिंग शब्द उसी आकृति और उसी अर्थवाला दर्शनीय शब्द है। इस 'दर्शनीया' शब्द के अन्तमें ऊङ् प्रत्यय नहीं है वरन 'आ' है इस दर्शनीया' शब्द के पश्चात् स्त्रीलिंगी शब्द भार्या है जो दर्शनीया शब्द के साथ एकान्वयमें है॥

यथाहु द्रुताया तपरकरणे

यथा॰आहुः॥तपरकरणे॥।	=जैसा कि वे कहते हैं कि 'तपर' करनेपर अर्थात् तकार जिससे परे करना हो, जिसके पश्चात् तकार जोड़ना हो या लगाना हो अथवा तकार से जिसको परे करना हो, तकार से जिसको पश्चात् लाना हो सो (ऐसे प्रयोग में)
द्रुतायाम्॥।	=द्रुता वृत्तिमें अर्थात् शीघ्र उच्चारण की चाल, ढंग, क्रिया अथवा रीतिमें; शब्द के जल्दी बोलनेमें

या सामानाधिकरण्यमें है और यह भार्या शब्द कमिक सख्या वाला नहीं है और न प्रियादिगणके शब्दोंमेंसे कोई शब्द है अतः 'दर्शनीया' शब्द अपने अनुरूपक पुल्लिंगशब्द 'दर्शनीय'में पलट जाता है ॥ ऐसेही दीर्घजङ्घः =दीर्घा जङ्घा यस्य दीर्घजङ्घ जिसकी जांघ बड़ी है और रूपवद्भार्या यस्य = रूपवद्भार्यः॥

स्त्री॥पुंवत्॰एकार्थे,। =(जैनेन्द्र व्याकरणके अध्याय ४ पाद ३ सूत्र १४५ का अनुवाद) स्त्रीलिंग शब्द पुल्लिंग सदृश हो जब (समासमें) एक अर्थमें

स्त्रियम्,॥अनूङ्प्रियादौ॥। =ऐसा स्त्रीलिंग (शब्द) उत्तर पद हो जो संख्या न हो (=अष्टा अष्टाध्यायी १-२-२१) न प्रियादि पद में (से) हो

उक्तपुंस्कात्,। =(और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्द का) पूर्व पद भाषित पुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि

अनूङ्॥। =जिसके अन्त में ऊ प्रत्यय न (=अन्) हो ॥ ऊङ् प्रत्ययके ङ् का हल् संज्ञक होनेसे लोप होजाता है ऊ शेष रहजाता है प्रियादि शब्द ये हैं (१) प्रिया (२) मनोज्ञा (३) कल्याणी (४) सुभगा (५) दुर्भगा (६] भक्ति [७] सचिवा(८)स्वा (स्वसा) (९)कान्ता (१०) क्षान्ता (११) समा (१२) चपला (१३) दुहिता (१४)वामना (वामा) (१५)तनया [१६] अम्बा॥इन शब्दोंमे एकभक्ति समास नियम विरुद्ध है ॥

(१) आहु यह शब्द हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ६६ पर नहीं है न राजवार्तिकमें है जिसका लेख लगभग वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें है हस्तलिखित प्रति में 'यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलम्बिता इति" ॥ ऐसा पाठ है अर्थात् 'आहु शब्द नहीं है और 'द्रुतमध्यमविलंबिता इति यह वाक्य अधिक है। हमने यह पाठ नहीं लियाहै क्योंकि श्रीपतञ्जलिकी वार्तिक केवल 'उपसंख्यानम्' तक है ॥

[२) द्रु —गत शप् सकर्मक अकर्मक परस्मैपद भ्वादि प्रथम गणका धातु है यह () बहना दौड़ना उड़ना दौड़पड़ना आक्रमणकरना ()गलजाना पतला होजाना इत्यादि अर्थोंमें आता है। जब द्रु (पु० । न०) में लगा होता है तो काठ, काठ का बनाहुआ लाकर, इन दो अर्थों में आता है जब केवल पल्लिंगमें आता है तो वृक्ष उसकी डाली इन दो अर्थों में आता है ॥ 'द्रु में त जोड़दें तो 'द्रुत त्रिलिंगी होजाता है और ता जोड़ने पर द्रुता स्त्रीलिंग होजाता है अर्थात् पिघला हुआ भागा हुआ अर्थोंमें प्रयोग कियाजाताहै। द्रुत पुल्लिंगमें वृक्ष बिल्ली बीछूके अर्थोंमें आता है द्रुतम् अव्यय है॥ जल्दी शीघ्र अर्थोंमे आता है ॥ द्रुता यहांपर स्त्रीलिंग एक वचन सप्तमी विभक्तिमें 'द्रुतायाम् ऐसे रूपमें शीघ्रता के अर्थमें आया है ॥ श्लोकवार्तिक हस्त लिखित में "द्रुतायाम् सप्तमी एक वचन स्त्रीलिंगमें है परन्तु मुद्रित श्लोक वार्तिक पृष्ठ ३८४ पर द्रुतायात् पंचमी विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग तपरकरणात् शब्द से प्रथम आया है ॥ द्रुतायात् = यहां पर 'शीघ्रतासे' इस अर्थमें आया है ॥

मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥

मध्यम	=मध्यमा वृत्तिका अर्थात् मध्यमकालिक उच्चारणका और
विलम्बितयोः॥उपसंख्यानम्॥इति॥	=विलम्बिता वृत्ति अर्थात् विलम्ब या देरीकालिक उच्चारणका समावेश या अन्तर्गतहोना चाहिये (इस वार्तिक सम्बन्धीय, इतिहास, व्याख्या, श्री पतञ्जलिका भाष्य अनुवाद सहित नीचे टिप्पणी में देते हैं)

खृस्त शतकसे लगभग ६५० वर्ष पूर्व श्री पाणिनिजी ने जो दाक्षीके पुत्र शलातुरीय नामक ग्राममें उत्पन्न हुये थे अष्टाध्यायीरूप व्याकरण जिसमें ३९६५ सूत्र हैं बनाया तत्पश्चात् खृष्टीय शतकसे ३५० वर्ष पहिले कात्यायन मुनिने पाणिनि मुनिके सूत्रोंमें जो त्रुटि थी उसको दूर करनेके लिये लगभग एक सहस्र अस्सी वार्तिक रचे। तत्पश्चात् पतंजलि मुनिने खृष्टीय शतकसे १५०वर्ष पूर्व अष्टाध्यायीके सूत्रों पर महाभाष्य रचा जिसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं इससे बड़ा कोई भाष्य या वृत्ति उक्त व्याकरण पर नहीं है। खृष्टीय शतक ६५०में भर्तृहरि रचित भागवृत्ति इसी अष्टाध्यायी पर रचीगई। इसके कुछ समय पश्चात् लगभग ६५० खृस्ताब्दीमें वामन जी और जयादित्यजीने 'काशिकावृत्ति' लगभग दशसहस्र श्लोक के रची। इसी अष्टाध्यायी की इसी काशिका वृत्तिके ऊपर जिनेन्द्रबुद्धि (द्वितीय पूज्यपाद स्वामी) ने खृष्टीय ७०० से ७५० तक 'काशिकाविवर्ण पञ्जिका' इस पञ्जिका पर बनाई जिसकी श्लोक संख्या १०००० सहस्र से अधिक है। इसका सम्पादन श्रीमान् शशीशचन्द्र चक्रवर्तिने कियाहै और वारिन्द्रअन्वेषण सभा,राजशाही प्रान्त से प्रकाशित हुई है। स्मरण रहै कि प्रथम पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि वृत्ति के कर्ता ने विक्रम सम्वत् ५५० के लगभग जैनेन्द्र व्याकरण रचा॥ इसके पश्चात् अष्टाध्यायी पर भाषावृत्तिअर्थात् वैदिक सूत्रोंका छोड़कर संस्कृतमें ही लघुभाष्य रचा इसके रचयिता पुरुषोत्तमदेव हुये। पश्चात् भट्टोजी दीक्षितने खृष्टीय सत्रहवी शतकमें 'सिद्धान्त कौमदी' रची॥ इसमें पाणिनि मुनिके समस्त सूत्र हैं परन्तु सूत्रोंका क्रम भट्टोजी दीक्षितने परिवर्तन करदियाहै॥ इसकेपीछे मध्यकौमुदी रचीगई फिर श्रीयुत् वरदराजने लघुकौमदी रची जिसमें अष्टाध्यायीके१२००सूत्रसे अधिकहैं॥

इस महाभाष्यके रचनेके सम्बन्धमें एक मनोरञ्जक वृत्त कथा इस प्रकार है कि एक वार पतञ्जलिकी माता सूर्य्यको अर्घ देरही थी कि अर्घ देते समय लोटेमेंसे एक सांपका बच्चा भूमिपर गिरपड़ा श्रीमतीकी जिह्वासे घबराहटमें 'को भवान्' (=आप कौन हैं) के स्थान में 'कोर्भवान्' निकलगया तब ('सर्पोऽहम्' के स्थानमें) उत्तर मिला कि 'सपोऽहम्' (=मैं सांप हूं)। तब माताजीने सावधानीमें आकर प्रश्न किया कि 'रेफकुतः गतः' अर्थात् सांप के बच्चे से पूछा कि तुमने अशुद्ध उच्चारण 'सर्पोऽहम्' के स्थानमें 'सपोऽहम्' क्यों किया फिर उत्तर मिलाकि 'त्वयाऽपहृतः' अर्थात् रेफ तुमने हरलिया भावार्थ 'को भवान्' के स्थानमें तुम 'कोर्भवान्' वाक्यका उच्चारण करगई फिर मैंने सपोऽहम् कहदिया। 'कोर्भवान्' का रेफ यदि 'सपोऽहम्' वाक्य मे मिलादियाजावे तो दोनों वाक्य 'को भवान्' (=आप कौन हैं) और 'सर्पोऽहम्' (मैं सांप हूं) ठीक होजावेंगे। पश्चात् ऐसा

प्रसिद्ध है कि विक्रिया ऋद्धिद्वारा सांपके बच्चोंने ऋषिका रूप धारण करके इस 'महाभाष्य' को लिखा और महाशेषजी इसको एक कोठरीमें से बोलते गये। पतञ्जलि ऋषि के लगभग एक सहस्र शिष्य थे। इस भाष्यके लेख को रोककर उक्त ऋषि कहीं आवश्यकीय कार्यको गय और शिष्योंको उपदेश करगय कि कोठरीका आवरणपट न उठाना परन्तु आपको अनवसर होनाकि जिस कामको लड़कोंसे कहो कि मत करना बस उसको अवश्यही करें आवरणपट खोलदिया तो ऐसा कहाजाता है कि उष्णताके कारण समस्त शिष्य भस्म होगये केवल दो चार शिष्य जो कार्यवश बाहर चलेगये थे जीवित रह। अष्टाध्यायीके आठ भागहैं यह महाभाष्य भी आठ भागोंमें काशी पंजाब इत्यादि देशोंमें मुद्रित हुआहै। कहतेहैंकि कुछेक भाग इस भाष्यका जहांकहीं प्रकरण ठीकठीक नहीं मिलता है भ्रष्ट होगया ह अर्थात् उपहासमें प्रसिद्ध है कि ऋषिके अनुपस्थितिमें बकरी कुछ पत्र महाभाष्यके चरगई॥

इस बातके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है कि पूज्यपादस्वामीने जैनेन्द्र व्याकरण रचा और बड़े प्रकर्ष वैयाकरण थे उन्होंने कहीं पर भी इस समस्त सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें अन्य मतके किसी शास्त्रका प्रमाण नहीं दिया है जैनमतके ही शास्त्रोंका प्रमाण दिया है। इस वार्तिकका प्रमाण देनेके दो कारण सम्भव हैं प्रथम यह कि प्रश्न करनेवाला कोई अन्य मतका विद्वान् हो और वह जैनमतके शास्त्रोंके प्रमाणसे इस वैयाकरणीय प्रश्नके उत्तरसे सन्तुष्ट न हुआ हो तब उक्त स्वामीजीने उसको इस महाभाष्यकी पङ्क्तिसे सन्तुष्ट किया हो जो अन्यमतमें सबसे प्राचीन, महत्वका और प्रभाव शाली महाभाष्य है। दूसरे यहकि उनको भी उमास्वामीसे पूर्वका कोई प्राचीन प्रमाण जैनमतके ग्रन्थोंसे प्राप्त न होसका हो और उमास्वामी जिन्होंने सम्वत् १०१ में तत्त्वार्थसूत्र की रचना कीथी उनके पश्चात् के ग्रन्थो द्वारा इस व्याकरणके प्रश्नका समाधान नहीं होसका है। इसीकारण से हमने उक्त इतिहास दिया है कि कोई अन्यमतका विद्वान 'पीत पद्म शुक्ललेश्याः' वाक्यकी रचना पर संदेह और तर्क न कर सके।

प्रथम इसके कि हम भी पतंजलिकी वार्तिक और उसकी संस्कृत व्याख्याका शब्दशः अनुवाद और भावार्थ लिखें 'अ' स्वरके अठारहरूप और अष्टाध्यायीके 'अणुदित्सवर्णस्य चा प्रत्ययः सूत्र ६९ 'तपरस्तत्कालस्य' ॥ सूत्र७० । और विप्रतिषेधे परं कार्यम् । अध्यायप्रथम पादचौथा सूत्र दूसरे को समझादेवें कि उक्त वार्तिकका अनुवाद अच्छे प्रकार और सरलता से पाठकोंकी समझ में आजावे।

'अ' स्वर के अठारह रूप हैं। उदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानोंके ऊपरके भागसे होता है। अनुदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानों के निचले भाग से होता है और स्वरित 'अ' जिसके उच्चारणमें उदात्त और अनुदात्त दोनों वर्णधर्म समान हो अर्थात् दोनों उदात्त अनुदात्त वर्णधर्म मिले हों। इन प्रत्येक तीन के अनुनासिक उच्चारण और निरनुनासिक उच्चारण से दोदो भेद होकर छह भेद 'अ' स्वर के हुये, पश्चात् प्रत्येक छह भेद ह्रस्व (एक मात्रिक उच्चारण) दीर्घ (दो मात्रिक उच्चारण) प्लुत (तीन मात्रिक उच्चारण)से अठारह भेद इस प्रकार होजातेहैं अ-अ॒-अ॑' अँ-अँ॒-अँ॑ । आ आ॒ आ॑' आँ आँ॒ आँ॑' । अ३-अ॒३-अ॑३' अँ३-अँ॒३-अँ॑३' । इनमें उदात्त पर कोई चिन्ह नहीं हैं, अनुदात्त 'अ' के नीचे ऐसी—लकीर है और स्वरित 'अ' के ऊपर ऐसी । खड़ी लकीर है॥

प्रथम 'उदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ है। दूसरा 'अनुदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ है। तीसरा 'स्वरित ह्रस्व निरनुनासिक' अ' है। (बिना नाक बोलो)

चौथा 'उदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। पांचवां 'अनुदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। छठवां 'स्वरित ह्रस्व अनुनासिक' अँ' है। (नाकसे बोलो)

सातवां 'उदात्तदीर्घ निरनुनासिक' आ है। आठवां 'अनुदात्त दीर्घनिरनुनासिक' आ है। नवमां 'स्वरित दीर्घ निरनुनासिक' आ' है। (बिना नाक बोलो)

दशवां 'उदात्तदीर्घ अनुनासिक' आँ है। ग्यारहवां 'अनुदात्त दीर्घअनुनासिक' आँ है। बारहवां 'स्वरित दीर्घ अनुनासिक' आँ' है। (नासिकासे बोलो)

तेरहवां 'उदात्त प्लुत निरनुनासिक' आ३ है। चौदहवां 'अनुदात्त प्लुत निरनुनासिक' आ३ है। पंद्रहवां 'स्वरित प्लुत निरनुनासिक' आ' ३ है। (बिनानाक बोलो)

सोलहवां 'उदात्त प्लुतअनुनासिक' आँ३ है। सत्रहवां 'अनुदात्त प्लुत अनुनासिक' आँ३। अठारहवां 'स्वरित प्लुत अनुनासिक' आँ' ३ है। (नाकसे बोलो)

() अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः = अण्॥ उदित्॥ सवर्णस्य॥, च अप्रत्ययः॥ स्वम्॥रूपम्॥ ॥ अष्टाध्यायी प्रथम अध्याय प्रथमपादका ६९ वां सूत्र

अण्॥ = प्रत्याहार अण् के अक्षर अर्थात् अ इ, उ ऋ, लृ ए ओ ऐ, औ ह य व र, ल, जिनमें अ इ उ प्रत्येक के अठारह 'ऋ' के अठारह और बारह 'लृ' के रूप मिलने से ऋकार के तीस रूप ऐसे ही लृ के बारह रूप और ऋ के अठारह रूप मिलने से ऐसे लृ कारके भी तीस रूपहैं(क्योंकि ऋ और लृ की आपस में सवर्ण संज्ञा मानी गई है) ए ओ ऐ, औ में से प्रत्येक के बारह बारह रूप हैं। अनुनासिक औरअननुनासिक भेदों से य व ल प्रत्येकके दोदो रूपहैं अर्थात् साधारण य व ल में अनुनासिक यँ वँ लँ का भी समावेश होजाता है। र ह यद्यपि 'अण्' प्रत्याहारमें अन्तर्गत हैं तोभी अपने एक एक रूपका ही प्रगट करते हैं क्योंकि उनका कोई सवर्णीय अक्षर नहीं है

उदित्॥ = कु चु टु तु पु ये उदित् हैं अर्थात् कु = कवर्ग (= क, ख ग घ ङ) चु = चवर्ग (च छ, ज झ ञ) टु = टवर्ग (= ट ठ ड ढ ण) तु = तवर्ग (= त थ द ध न) पु = पवर्ग (= प फ, ब, भ म) [समावेशहैं]

स्वम्॥रूपम्॥ च सवर्णस्य॥ रूपम्॥ = अपनेअर्थव रूपको तथासवर्णके अर्थवरूपको ग्रहणकरतेहैं (जैसे 'अ'में अठारह प्रकारके अ और 'कु' में क ख ग घ ङ

इन सूत्रमें 'स्वंरूपम्' वाक्यकी अनुवृत्ति 'स्वं रूप शब्दस्या शब्द संज्ञा' इस ६८ वां सूत्रसे आती है। स्वम् का अर्थ अपनाही है अर्थात् अर्थको प्रगटकरताहै और रूपम् शब्दके व्यक्तिगतआकारको प्रगट करताहै॥ स्वम्रूपम्का अर्थ यह मात्र है कि किसी शब्दके अर्थ और उसके आकार का द्योतक हो। जैसे कोई नियम जो अग्नि पर लागू होता है उस शब्द पर जो अ ग् न् इ से बना हो लागू होगा नकि अग्नि शब्द के समानार्थक वाची शब्दों पर जैसे कि पावक, ज्वलन इत्यादि॥ जैसे सूत्र आद्गुणः (६-१-८७] का अर्थ है कि 'अब एक स्वर अ के पश्चात् आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें गुण संज्ञाका आदेश हो यहांपर सूत्र में केवल ह्रस्व अ का निर्देश है परन्तु इस सूत्रसे दीर्घ आ' भी आजाता है जैसे केवल नर+ईशः = नरेश नहीं है परन्तु महा+ईश भी महेश है॥ अन्य उदाहरणों के लियेदेखो ७-४-३२' ५ ४-५० ६ ४ १४८ सूत्र॥

अप्रत्यय ॥ = यदि उक्त सर्व अक्षर प्रत्ययकी भांति या प्रत्ययकी रीतिपर प्रयोगमें न लाये जावेंतो (अपने रूप और सवर्ण के रूपों

के भाग्री होवेंगे) जैसे 'सनाशंसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ उन धातुओंके (जिनके अन्तमें सन् प्रत्ययहो) और आशंस् (=चाहना) और भिक्ष् (=मांगना) धातुओंके पश्चात् तत्स्वभाववाले कर्त्ताओंके अर्थमें उ' प्रत्यहो जैसे भिक्ष् मांगनासे भिक्षु भीख मांगनेवाला बना । यहांपर केवलहस्व उका ग्रहणहै दीर्घ ऊ और प्लुत'उ३ का ग्रहणनहीं हुआ ॥

() तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥ =त-परः॥ तत्कालस्य॥। (स्वम्॥ रूपम्॥)=तकार जिससे परे हो वा तकारसे जो परे हो वह उतनेकी सवर्णीय सवर्ण को अपने अर्थ और का ग्राहक हो ॥

तपरः॥तत्कालस्य॥। =(अर्थात्) तकार (=त्) जिस अक्षर से पीछे आवे अथवा तकार (=त) से कोई अक्षर परेमें होतो वह अक्षर

स्वम्॥रूपम्॥ =अपने अर्थ रूप और अपने उन सवर्णीय अक्षरोंका रूप स्वर्णका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें वही काल लगे उतनाही समयजो जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें लगता है सूत्र ६९ में यह कथन कियागया है कि व्यक्तिगत स्वरमें उसके सर्व सवर्णीय अक्षर समावेश होजावेंगे इस प्रकारकि 'अ' में आ भी अन्तर्गत होगा और इ में ई इत्यादि । यहसूत्र निर्देश करता है कि अक्षर का यही रूप ग्रहण किया जावेगा न कि उसके जाति के सर्व अक्षर ग्रहण किये जावेंगे यह कार्य अक्षर के पश्चात् अथवा प्रथम त् लाने से होता है जैसे अत् का आशय केवल अ अक्षर ग्रहण करना है न कि उसके सर्व सवर्णीय अक्षर । इसी प्रकार उत् का अभिप्राय केवल हस्व'उ' ग्रहण करने का है न कि दीर्घ और प्लुत उ । इस सत्रमें तपरः और तत्कालस्य दोपद हैं । तपरःका अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो 'तत्काल' का अर्थ है उतनाही काल ॥ समय की अपेक्षासे स्वरोंकेहस्व दीर्घ और प्लुत तीन भेद हैं 'हस्व' स्वर में एक मात्रा होती है दीर्घ स्वर दो मात्रिक होते हैं और प्लुत स्वर तीन मात्रा वालेहोते हैं । व्यंजन के उच्चारण में हस्व स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसके पश्चात् हो औरजो त् केपश्चात् हो अपने अर्थ स्वरूपका ग्राहक है और केवल उन सवर्णीय अक्षरोंके अर्थस्वरूपोंका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें उतनाहीवासमान काल लगताहोजैसे अक्षर'अत्' में उदात्त अनुदात्त,स्वरित अनुनासिकऔरअननुनासिक'अ'अर्थात्छह हस्वरूप'अ केगर्भितहोंगे दीर्घऔर प्लुत रूप अक्षरका एकभी समावेश न होगा ॥ यहसूत्र आज्ञा वाचकहै । इस सूत्रमें 'अण्' शब्दकी अनुवृत्ति पूर्व सूत्रसे नहींआती है । अण् प्रत्याहार के चौदह अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आवे तब उसपर भी यह सत्र लागू होगा । यह सूत्र पूर्व सूत्रको परिमित और समर्थित करता है अतः इससे पूर्व सूत्रका अर्थ होगाकि अण्प्रत्याहारके अक्षर यदि उनमेंसे किसी भी अक्षर के प्रथम वा पश्चात् में 'त्' न हो तो वे अपने अर्थ व रूपके और अपने सवर्णीय अक्षरों के अर्थ व रूपों के क्रमसे ग्राहक होंगे ॥ इसप्रकार कि सूत्र ७-१-९ 'अतोभिस ऐस्' शब्द जिनके अन्तमें अत् (अर्थात हस्व अकार) हो तो भिस्के स्थानमें ऐस् हो जैसे वृक्ष+भिस् के स्थानमें वृक्ष+ऐस् होकर वृक्षैः बना परन्तु खट्वा जिसके अन्तमें दीर्घ 'आ है और जिसका उच्चारण काल अकारके उच्चारण कालसे भिन्नहै उक्तसूत्र लागू न होगा और खट्वाभिः रूप बनेगा अर्थात् भिस् का ऐस् नहोगा ॥

() विप्रतिषेधे,। =(परस्पर) तुल्यबल विरोधमें (=विप्रतिषेधे) अर्थात् तुल्य वा समान बलवाले आपसमें विरोधी

परम्॥। कार्यम्॥। =नियम वा सूत्र किसी स्थानमें (किसी कार्यमें)एक साथ लगते हों तो (अष्टाध्यायीके) पिछले दिये नियम वा सूत्रके अनुसार कार्य हो भावार्थ अष्टाध्यायीमें दिया हुआ पिछला सूत्र लागू हो इससे पूर्वका सूत्र न लगेगा ॥ श्री पतंजलिभाष्य ऐसा है कि

तपरस्तत्कालस्येत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन। यद्येवं द्रु तायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानं कालभेदात्। द्रु तायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानं कर्तव्यम्। तथा मध्यमायां द्रु तविलम्बितयो। तथा विलम्बितायां द्रुतमध्यमयोः। किं पुनः कारणं न सिद्ध्यति कालभेदात्। ये हि द्रु तायां वृत्तौ वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते मध्यमायां ये च मध्यमायां वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते द्रु विलम्बितायाम्॥ सिद्धं त्ववस्थितावर्णा। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। सिद्धमेतत्। कथम्। अवस्थिता वर्णा द्रु तमध्यमविलम्बितासु किं कुतस्तर्हि वृत्ति विशेषः। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। वक्ता कश्चिदाशुभिधायी भवति। आशु वर्णानभिधत्ते। कश्चिच्चिरेण कश्चिच्चिरतरेण॥ कश्चिच्चिरतमेन॥ यतच्चापि महाभाष्य प्रथमपाद 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र की व्याख्यासे उद्धृत है॥

विप्रतिषेधन[1]।तपरस्तत्कालस्य[2]।इति०=	= विप्रतिषेधे परं कार्यम्' सूत्र द्वारा 'तपरस्तत्कालस्य' ऐसे (सूत्रकी)
एतद्०भवतिT	=इस समय (=एतद्०वैयाकरण पृष्ठ १५३ में अव्यय माना है) प्राप्ति होतीहै अर्थात् 'अणुदित्सवर्णस्यचाप्रत्ययः' सूत्रकी निवृत्ति और 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्रकी प्रवृत्ति विप्रतिषेधे परं कार्यम्' सूत्रसे होती है॥
यदि०एवम्०	=(प्रश्न) जो ऐसेहैं अर्थात् तत्काल(=उसकाल)कीप्रवृत्ति करताहै और भिन्नकालकी निवृत्ति
द्रु तायाम्[7]।तपरकरणे[7]।मध्यम	=तो शीघ्र कालिक उच्चारणकी वृत्तिमें 'तपर' करनेमें मध्यमकालीन उच्चारणका
विलम्बितयो[6]।उपसंख्यानम्[2]।कालभेदात्[5]।	=और विलम्बित या देरी कालीन उच्चारणका समावेश है (उसमें) काल भेद पड़जाता है (क्योंकि उतनेही कालमें शीघ्रतावृत्ति मध्यमावृत्ति और विलम्बिता वृत्ति नहीं होसकी)
द्रु तायाम्[7]।तपरकरणे[7]।	=(अर्थात् शिष्यके प्रश्न या शङ्काका आशय यहहै कि) शीघ्र कालिक उच्चारणमें तपरकरणमें
मध्यम-विलम्बितयो[6]।उपसंख्यानम्[1]।कर्तव्यम्[1]।	=मध्यमा कालीन उच्चारण और विलम्बिता कालीन उच्चारणका समावेश करनाचाहिये
तथा०मध्यमायाम्[7]।(तपर करणे[7])द्रु त	=और मध्यमा कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रु ताकालीन उच्चारणका
विलम्बितयो[6]।(उपसंख्यानम्[1])	=और विलम्बिता कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
तथा०विलम्बितायाम्[7]।(तपरकरणे) द्रु त	=और विलम्बित कालीन।उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रु ता कालीन उच्चारण का
मध्यमयो[6]।(उपसंख्यानम्[1])	=और मध्यमा कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)
किम्[1]।पुन०कारणम्[1]।	=(शिष्य बल देकर कहता है कि गुरुजी समझें) फिर क्या कारण है कि
न०सिद्ध्यतिT।कालभेदात्[5]।	=(ऊपर के तीनो उच्चारणोंकी) सिद्धि नहीं होती है। क्योंकि (उतनाहीकाल नहींलगता है) काल भेद पड़जाता है॥

के ग्राही होंगे) जैसे 'सनाशंसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ उन धातुओंके (जिनके अन्तमें सन् प्रत्ययहो) और आशंस् (=चाहना) और भिक्ष् (=मांगना) धातुओंके पश्चात् तच्छीलभाववाले कर्ताओंके अर्थमें 'उ' प्रत्ययहो जैसे भिक्षु मांगनासे भिक्षु भीख मांगनेवाला बना। यहांपर केवलह्रस्व उका ग्रहणहै दीर्घ ऊ और प्लुत 'उ३ का ग्रहणनहीं हुआ ॥

() तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥ =त-परः॥ तत्कालस्य॥ (स्वम्॥ रूपम्॥) =तकार जिससे परे हो या तकारसे जो परे हो वह उतनेकी समयकीय सवर्ण को अपने अर्थ और का ग्राहक हो ॥

तपरः॥ तत्कालस्य॥ =(अर्थात्) तकार (=त्) जिस अक्षर से पीछे आवे अथवा तकार (=त) से कोई अक्षर परेमें होतो वह अक्षर

स्वम्॥ रूपम्॥ =अपने अर्थ रूप और अपने उन सवर्णीय अक्षरोंका रूप अर्थका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें वही काल लगे उतनाही समयलगे जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें लगता है सूत्र ६९ में यह कथन कियागया है कि व्यक्तिगत स्वरमें उसके सर्व सवर्णीय अक्षर समावेश होजायेंगे इस प्रकारकि 'अ' में आ भी अन्तर्गत होगा और इ में ई इत्यादि। यहसूत्र निर्देश करता है कि अक्षर का वही रूप ग्रहण किया जायेगा न कि उसके जाति के सर्व अक्षर ग्रहण किये जावेंगे यह कार्य अक्षर के पश्चात् अथवा प्रथम त् लाने से होता है जैसे अत् का आशय केवल अ अक्षर ग्रहण करना है न कि उसके सर्व सवर्णीय अक्षर। इसी प्रकार उत् का अभिप्राय केवल ह्रस्व'उ' ग्रहण करने का है न कि दीर्घ और प्लुत उ। इस सूत्रमें तपरः और तत्कालस्य दोपद हैं। तपरःका अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो 'तत्काल' का अर्थ है उतनाही काल ॥ समय की अपेक्षासे स्वरोंकेह्रस्व दीर्घ, और प्लुत तीन भेद हैं 'ह्रस्व' स्वर में एक मात्रा होती है दीर्घ स्वर दो मात्रिक होते हैं और प्लुत स्वर तीन मात्रा वालेहोते हैं। व्यंजन के उच्चारण में ह्रस्व स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसके पश्चात् हो औरजो'त् केपश्चात् हो अपने अर्थ स्वरूपका ग्राहक है और केवल उन सवर्णीय अक्षरोंके अर्थस्वरूपोंका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें उतनाहीयासमान काल लगताहोजैसे अक्षर'अत्' में उदात्त अनुदात्त स्वरित अनुनासिकऔरअननुनासिक'अ' अर्थात्छह ह्रस्वरूप'अ' केगर्भितहोंगे दीर्घऔर प्लुत रूप अकारका एकभी समावेश न होगा ॥ यहसूत्र आज्ञा ज्ञापक है। इस सूत्रमें अण् शब्दकी अनुवृत्तिपूर्व सूत्रसे नहींआती है। अण् प्रत्याहार के चौदह अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आवे तब उसपर भी यह सूत्र लागू होगा। यह सूत्र पूर्व सूत्रको परिमित और समर्थित करता है अतः इसमें पूर्व सूत्रका अर्थ होगाकि 'अण्प्रत्याहारके अक्षर यदि उनमेंसे किसी भी अक्षर के प्रथम या पश्चात् में त् न हो तो वे अपने अर्थ व रूपके और अपने सवर्णीय अक्षरों के अर्थ व रूपों के क्रमसे ग्राहक होंगे ॥ इसप्रकार कि सूत्र ७-१-९ 'अतोभिस ऐस्' शब्द जिसके अन्तमें अत् (अर्थात ह्रस्व अकार) हो तो भिस्के स्थानमें ऐस् हो जैसे वृक्ष+भिस् के स्थानमें वृक्ष+ऐस् होकर वृक्षैः बना परन्तु खट्वा जिसके अन्तमें दीर्घ आ है और जिसका उच्चारण काल अकारके उच्चारण कालसे भिन्नहै उक्तसूत्र लागू न होगा और खट्वाभिः रूप बनेगा अर्थात् भिस् का ऐस् नहोगा ॥

() विप्रतिषेधे,। =(परस्पर) तुल्यबल विरोधमें (=विप्रतिषेधे) अर्थात् तुल्य वा समान बलवाले आपसमें विरोधी

परम्॥ कार्यम्॥ =नियम या सूत्र किसी स्थानमें ((किसी कृतिमें)एक साथ लगते हों तो (अष्टाध्यायीके) पिछले लिये नियम या सूत्रके अनुसार कार्य हो भावार्थ अष्टाध्यायीमें दिया हुआ पिछला सूत्र लागू हो इससे पूर्वका सूत्र न लगेगा ॥ श्री पतंजलिभाष्य ऐसा है कि

पं० जयचंदरायजी की वच निकासे उद्धृत

"इहां प्रश्न जो, इहां समास विषैं पीत पद्म शुक्ल इनके ह्रस्व अकार कैसे भया? शब्द तौ पीता पद्मा शुक्ला ऐसा चाहिये। ताका कहिये है, जो व्याकरण विषैं उत्तर पदसे ह्रस्व होना भी कहा है। जैसे द्रुता (द्रुती ?) ऐसा शब्द कातन्त्र करण विषैं है। वहां 'मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसे इहां भी जानना अथ वचनिका मुद्रित पृष्ठ १५८ (यह पाठ हस्तलिखित पाठोंसभी मिलाकर लिखा है जिसमें मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है। मुद्रित में मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसा पाठ है॥

पं० पन्नालाल दूनी के अनुवादसे उद्धृत पीतपद्मामें ह्रस्वउत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो है। सो पणा कार्यका विपरिणामतें सिद्धभयो है। अर द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है। तातें मध्यविलंबितयो उपसंख्यानमें सो व्याकरण की वार्तिक है। तहां मध्याविलंबिता शब्दमें उत्तरपद सर्व पी ह्रस्वपणो भयाहै तैसही इहां भी उत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो जानने योग्य है॥ पं० पन्नालाल दूनी पृष्ठ ५४ अध्याय चौथेसे उद्धृत

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकरके अनुवाद से उद्धृत

(प्रश्न) 'पीतपद्मशुक्ल' इन शब्दनिकै ह्रस्व अकार है यातैं पुल्लिंग है। तातैं लेश्या का विशेषण करि पीतादि शब्दनिका निर्देश करना युक्त नाहीं होय है। किन्तु पीता पद्मा शुक्ला ऐसा कहना चाहिये। यातैं लेश्या शब्द स्त्रीलिंग है ताके विशेषण भी तिसही लिंग का होना चाहिये। ऐसा शब्द शास्त्र का न्याय है। समाधान। व्याकरण विषैं उत्तर पदतैं ह्रस्व होना भी कह्या है। सो पणा कार्यके विपरिणामतैं सिद्ध है। जैसे द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है ताके विषैं मध्याविलंबित का उपसंख्यान है। यह व्याकरण सूत्र है। यहां उत्तर पदका ह्रस्व होनेतैं मध्यविलंबित ऐसा सिद्ध होय है। तैसे यहां भी पीतादिक शब्दनिकै ह्रस्वपना करि निर्देश जानना

पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखित पृष्ठ ६७५

पं० गजाधरलाल शास्त्रीके अनुवादसे उद्धृत

"पीता च पद्मा च शुक्ला च पीतपद्मशुक्लाः पीतपद्म शुक्लालेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः। यह यहां पर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास है। यदि यहां पर कहाजाय कि 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' यहांपर द्वन्द्व समास किया जायगा तो द्वन्द्वमें पुवद्भाव तो होता नहीं इसलिए 'पीतपद्मशुक्ललेश्या' यह जो पुवद्भावविशिष्ट निर्देश कियागया है अर्थात् आकार का अकार करदियागया है वह अयुक्त है किन्तु यहां पर 'पीतापद्माशुक्लालेश्या' ऐसा निर्देश करनाचाहिए। सो ठीक नहीं। यहां पुवद्भाव नहीं हुआ है किन्तु उत्तर पद रहने स पूर्वपद का ह्रस्व हुआ है जैस द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुप संख्यानम्" इस व्याकरण शास्त्रकी वार्तिकमेंमध्यमा च विलंबिता च 'मध्यमविलंबितातयो' इसप्रकार समासयुक्त पदमें विलंबिता' उत्तर पद रहने से 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्व करि निर्देश कियागयाहै उसी प्रकार पीतपद्मशुक्ला लेश्या' यहांपर भी 'शुक्ल उत्तरपद के रहते पीता और पद्मा इन दोनों पदों में ह्रस्व निर्देश न्याय्य है"॥

'द्रुतायाम् जहांतक हमने ८ १० व्याकरण देखे हमको नहीं मिला और अन्य विद्वानभी कहते हैं कि 'द्रुतायाम् ऐसा कोई सूत्र नहीं है। जो महोदय इसएर्ड उनके विद्यार्थियों के आचार्य कोतक है कि यदि 'द्रुतायाम्' कोई सूत्र है तो कृपया मुझे सूचनादें कि अनुवादमें मुद्रित कियाजावे।

य॥हि०द्र तायाम् ॥वृत्तौ॥
वर्णाः॥त्रिभाग अधिकाः॥मध्यमायाम्॥

ते॥

ते॥ध०मध्यमायाम्॥वर्णाः॥त्रिभाग
अधिका॥ते॥तु०विलम्बितायाम्॥

सिद्धम्॥तु०अवस्थिता॥वर्णाः॥

वक्तु॥चिर अचिर-वचनात्॥वृत्तय॥विशिष्यन्ते
सिद्धम्॥एतत्॥कथम्॥?
अवस्थिता॥वर्णाः॥
द्रुता-मध्यमा-विलम्बितासु॥
किम्॥कृत०तर्हि०वृत्ति विशेषः॥
वक्तुं॥चिर अचिर-वचनात्॥वृत्तय॥विशिष्यन्ते
यथा॥अध्वन्०आशु०अभिधावी॥भवति
आशु०वर्णान्॥अभिधत्ते॥कश्चित्०चिरेण०
कश्चित्०चिरतरेण॥कश्चित्०चिरतमेन॥

=(शिष्य कथन करता है कि कितना काल भेद पड़ता है) जो ही द्रुतावृत्तिमें
=बोलनेके क्रम (=वर्णाः—देखो पदचन्द्रकोश पृष्ठ ३१७) हैं (समयका) तीन भाग
अधिक मध्यमा वृत्तिमें
=वे (बोलनके क्रम=वर्णाः) हैं अर्थात् जो ही कालद्रुतावृत्तिमें वर्णोंके उच्चारणमें
लगताहै उससे तीसराभाग अधिक(काल)मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है
=और (=च) जो मध्यमा (वृत्ति) में बोलनेके क्रम (=वर्णाः) हैं। तीन भाग
=अधिक(मध्यमा वृत्तिसे)वे(बोलनेकेक्रम)विलम्बिता वृत्तिमेंभी(=तु पद०कोश१७३)हैं
अर्थात् जो (काल) मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है उससे तीसरा भाग
अधिक विलम्बिता वृत्तिके उच्चारणमें लगता है जैसे यदि नौ पल काल द्रुता
उच्चारणमें लगे तो मध्यमामें बारह पल और विलम्बितामें सोलह पल लगेंगे ॥
=(उत्तर) वर्ण वा अक्षर तोअवस्थितहैं इसस(गुरुजी कहते हैं हमारा कथन)बनजाताहै
अर्थात् काल भेद होने पर भी तीनों वृत्तियोंमेंवर्ण ज्योंकेत्यों रहतेहैंइससेबनजातीहै
=क्योंकि वक्ताके देर और शीघ्र उच्चारण सेही द्रुताआदि वृत्तियोंमें भेदपड़ता है
=(गुरुजी कहते हैं कि) यह सिद्ध होजाता है। [प्रश्न] कैसे सिद्ध होजाता है
=(उत्तर) क्योंकि वर्ण (प्रत्येक वृत्तिमें जैसे के तैस] अवस्थित वा स्थिर
=द्रुता-मध्यमा विलम्बिता कालक उच्चा णों में (रहते) हैं
=(प्रश्न (यदि वर्ण अवस्थित हैं)तो वृत्ति भेद कहांसे हुये(तीनों वृत्तियें कहांसे हुईं)
=(उत्तर) वक्ताके देर और शीघ्र बोलने के कारण से वृत्तियोंमें भेद होगये ॥
=कोई वक्ता मार्ग (=आशु) चलता है (अर्थात्)
=शीघ्रता से वर्णोंका उच्चारण करता है। कोई वक्ता विलम्बसे बोलताहै
=कोई वक्ता और देरसे बोलता है कोई और भी देरसे बोलता है (जैसे पथिक से
घोड़ा धीरे चलता है। घोड़ा से मनुष्य धीरे चलता है और मनुष्यसे बच्चाधीरे

चलता है ॥ सारांश यह है कि इसमेंभी शीघ्र उच्चारण रूप वृत्तिमें मध्यम कालीन उच्चारणमें और विलम्बित कालके उच्चारण में काल भेद रहने पर भी वर्णों के अवस्थित (ज्यों के त्यों) रहने से काल भेद नहीं माना जाता है क्योंकि काल भदमें वक्ताका जल्दी और देरसे कहना अथवा बोलना ही कारण है क्योंकि शब्द का रूप प्रत्येक अवस्थामें एकसा रहता है ॥ कि कृत के स्थानमें किसी किसी मुद्रित भाष्यमें कि कृतः पाठहै अर्थ दोनों पाठोंका एकसा है ॥ पृष्ठ ७४ में भिन्नभिन्न अनवादकोंके अनुवाद अगस्त दिये हैं जिनसे पाठक कुछ लाभ उठासकें हमारी समझमें उनके अनुवाद नहीं आये हैं अगला एक पृष्ठ ७५ में भिन्न भिन्न पाठ इस वार्तिकके जो हमारे यहां के ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं वे दियेगये हैं ॥ इस समस्तको पाठक बहुत ध्यानसे पढ़ें ॥

पं० जयचंद्रायजी की वच निकासे उद्धृत

इहां प्रश्न,जो, इहां समास विर्षे पीत पद्म शुक्ल इनके ह्रस्व प्रकार कैसे भया। शब्द तो पीता पद्मा शुक्ला ऐसा चाहिये। तहां कहिये है जो व्याकरण विर्षे उत्तर पदसे ह्रस्व होना भी कहा है। जैसे मृता (मृती ?) ऐसा शब्द कातगरकरणविर्षे है। तहां 'मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसे इहां भी जानना। भ०वचनिकामुद्रित पृष्ठ १८२ (यह पाठ दोहस्त लिखित पाठोंसेमी मिलाकर लिखाई जिनमें 'मध्याविलं बिता उपसंख्यानहै। मुद्रित में मध्याविलंबिता का उप संख्यान है ऐसा पाठ है॥

पं० पन्नालाल दूनी के अनुवादसे उद्धृत

पीतापद्मामें इहांउत्तर पद संबधी ह्रस्वपनो है। सो यथा कार्यका विपरिणाममें सिद्धभयो है। अर द्रु तायो या सूत्रमें तपर करण है। तामें मध्यविलंबितयो रुपसंख्यानं ही सो व्याकरण का वार्तिक है। तहां मध्याविलंबिता शब्दमें उत्तरपद संबंधी ह्रस्वपनो भयाहै तैसेंही इहां भी उत्तर पद संबंधी ह्रस्वपनी जानने योग्य है॥ पं० पन्नालाल दूनी पृष्ठ५४ अध्याय चौथेसे उद्धृत

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकरके अनुवाद से उद्धृत

(प्रश्न) "पीतपद्मशुक्ल इन शब्दनिके ह्रस्व प्रकार है यातैं पुल्लिंग है॥ तातैं लेश्या का विशेषणकरि पीतादि शब्दनिका विर्षे ह्र करना युक्तनाहीं होय है। किंतु पीता पद्माशुक्ला ऐसाकहना चाहिये। यातैंलेश्या शब्द स्त्रीलिंग है ताके विशेषण भी तिसही लिंग का होना चाहिये। ऐसा शब्द शास्त्र का न्यायहै।समाधान। व्याकरणविर्षेउत्तर पदतैं ह्रस्व होना भी कहा है। सो यथा कार्यके विपरिणमनतैं सिद्ध है॥ जैसे द्रु तायो या सूत्रमें तपर करण है ताके विर्षे मध्याविलंबित का उपसंख्यान है। यह व्याकरण सूत्र है। यहां उत्तर पदका ह्रस्व होनेतैं मध्यविलंबित ऐसा सिद्ध होय है। तैसे यहां भी पीतादिक शब्दनिके ह्रस्वपना करि निर्देश जानना

पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखित पृष्ठ ६५४

पं० गजाधरलाल शास्त्रीके अनुवादसे उद्धृत

"पीता च पद्मा च शुक्ला च पीतपद्मशुक्ला। पीतपद्म शुक्लालेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः। यह यहां पर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास है। यदि यहां पर कहाजाय कि-'पीतपद्मशुक्ललेश्या' यहांपर द्वन्द्व समास किया जायगा तो द्वन्द्वमें पुंवद्भाव तो होता नहीं इसलिए 'पीतपद्मशुक्ललेश्या' यह जो पुंवद्भावविशिष्ट निर्देश कियागया है अर्थात् आकार का अकार करदियागया है वह अयुक्त है किन्तु यहां पर 'पीतापद्माशुक्लालेश्याः' ऐसा निर्देश करनाचाहिए। सो ठीक नहीं। यहां पुंवद्भाव नहीं हुआ है किंतु उत्तर पद रहने से पूर्वपद का ह्रस्व हुआ है जैसे द्रु तायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुप संख्यानम्" इस व्याकरण शास्त्रकी वार्तिकमेंमध्यमा च विलंबिता च 'मध्यमविलंबितायोः' इसद्वन्द्व समासयुक्त पदमें 'विलंबिता' उत्तर पद रहने से 'मध्यमा' शब्दका ह्रस्व करि निर्देश कियागयाहै उसी प्रकार पीतपद्मशुक्ला लेश्या' यहांपर भी 'शुक्ला' उत्तरपद के रहते पीता और पद्मा इन दोनों पदों में ह्रस्व निर्देश न्याय्य है" ॥

'द्रुतायाम्' आदितक हमने ८, १० व्याकरण देखे हमको नहीं मिला और अन्य विद्वानभी कहते हैं कि 'द्रुतायाम्' ऐसा कोई सूत्र नहीं है॥ जो महोदय इसेपढ़ें उनसे विद्यार्थियों के सामार्थ अंगिकार है कि यदि 'द्रु तायाम्' कोई सूत्र है तो कृपया मुझे सूचनादें कि अनुवादमें मुद्रित कियाजावे।

अथवा पीतश्च पद्मश्च शुक्लश्च पीतपद्मशुक्ला वर्णवन्तोऽर्था । तेषामिव लेश्या येषा ते पीतपद्मशुक्ललेश्या ॥

अथवा॰	=वा (यदि उपर्युक्त उत्तरसे अधिकतम संशयशील प्रश्न कर्ताओंका समाधान न हो तो)
पीतः॥च॰पद्म ॥च॰शुक्ल॥च॰पीतपद्मशुक्ला ॥	=पीत और पद्म और शुक्ल हैं ये पीत पद्म शुक्ल
वर्णवन्त ॥अर्था ॥	=रूपवाले पदार्थ हैं अर्थात् पीत पद्म शुक्ल ये तीनों मूलित शब्द पीत पद्म शुक्ल रंगवाले वस्तुओंके शब्दार्थहैं औरउन्हीं रंगवाले पदार्थोंके वाचकहैं और येतीनों शब्दपुरुषलिंगीहैं॥
तेषाम्॥इव॰लेश्या॥येषाम्॥ते॥	=जिन (पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों) के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) की ते
पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः॥ ॥	=पीत पद्म शुक्ल लेश्या वालेहैं(यहां उक्त रंगीन वस्तुओंकी उपमा भी इन लेश्याओं को दी गईहै और उपमित समासमें ह्रस्व होता ही है अतः पीतपद्मशुक्ल उपमितसमास ह्रस्वरूपमें है ॥

() "वा द्रुत (द्रुत-आद्रुत) द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥ सर्वार्थसिद्धि प्रथम संस्करण पृष्ठ ७८३, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ१५४ "यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलंबिता इति" ॥ हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ६६

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमित्यौत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापि वेदितव्यं" तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७०

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यविलम्बितयोरुपसंख्यानमित्यत्र औत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापिवेदितव्यं यह पाठ पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर की हस्त लिखिततत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६३७ परसे तथा पं०पन्नालालसूनीजीकी हस्तलिखित राजवार्तिक पृष्ठ ५७ अध्याय ४ परसे लिया है इनदोनो प्रतियों के पाठमें 'मध्यम' शब्दके स्थानमें मध्य शब्द मिलता है। प०जय०चन्दजीकी एक मुद्रित दोहस्तलिखित प्रतियोंमें मध्या मिलताहै। 'मध्यम'चाहिये

() पीतपद्मशुक्लानां ग्रहणे पीतपद्मयोरुत्तरपदिकं ह्रस्वत्वं 'द्रुतायास्तपरकरणान्मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमित्याचार्यवचनदर्शनात् मध्यमाशब्दस्य विलम्बितोत्तरपदे ग्रहणेऽपि ह्रस्वत्वसिद्धेः। यह पाठ मुद्रित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८४ और दो हस्त लिखित प्रतियोंके क्रमसे पृष्ठ १०५ और१२१ पर है॥ यहीपाठहै इसकाहमने बहुतमावधानीसे तीनोंप्रतियोंको मिलाकर लिखाहै इसमें विलंबिता के स्थानमें विद्यानंदिस्वामी विलंबिता' लायेहैं और सप्तमी विभक्तियोंके स्थानमें पंचमी विभक्तियां लाये हैं। हमारी ठीक ठीक समझमें यह नहीं आया है कि'इति आचार्य वचन दर्शनात् वाक्य में 'आचार्य' से श्लोक वार्तिकके कर्ताका पूज्यपाद स्वामी श्रीमदकलंक भट्ट जिन्होंने यह वार्तिक शब्दशः पतंजलि मुनिके महाभाष्यसे उद्धृत की है इनमेंसे किसी से अभिप्राय है अथवा श्रीमान् पतंजलिसे तात्पर्य है अथवा किसी अन्य आचार्य से प्रयोजन है। विद्वज्जन इसका अन्वेषण करके इसका मुझको सूचित करें॥

तत्र कस्य का लेश्येत्यत्रोच्यते—सौधर्मैशानयो पीतलेश्या। सानत्कुमारमाहेन्द्रयो पीतपद्मलेश्ये ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पद्मलेश्या। शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु पद्मशुक्ललेश्ये। आनतादिषु शुक्ललेश्या। तत्राप्यनुदिशानुत्तरेषु परमशुक्ललेश्या। सूत्रेऽनभिहितं कथं मिश्रग्रहणं साहचर्याल्लोकवत्॥

तत्र कस्य का लेश्या इति अत्र उच्यते	=तहां किस (देव) के कौन लेश्या है (ऐसे) यहां (=अत्र) कहा जाता है कि
सौधर्म-ऐशानयोः पीतलेश्या सानत्कुमार	=सौधर्म ऐशान में (देवनिकै) पीत लेश्या है। सानत्कुमार
माहेन्द्रयोः पीत-पद्म-लेश्ये ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर	= माहेन्द्र में (देवों के) पीतपद्मलेश्या हैं। ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर
लान्तव-कापिष्ठेषु पद्म-लेश्या शुक्र-महाशुक्र-	=लान्तव और कापिष्ठ में (देवों के) पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्र
शतार-सहस्रारेषु पद्म शुक्ल-लेश्ये आनत	=शतार और सहस्रार में (देवों के) पद्म शुक्ल दो लेश्या हैं। आनत
आदिषु	=और प्राणत, आरण और अच्युत इन दो युगलोंमें और नवग्रैवेयकोंमें और नव अनुदिशों में और पांच अनुत्तरोंमें (देवोंके)
शुक्ल-लेश्या तत्र अपि अनुदिश-अनुत्तरेषु	=शुक्ललेश्या है। तहां भी (नव) अनुदिशोंमें और (पांच)अन्तरोंमें (देवोंके)
परम-शुक्ल-लेश्या सूत्रे अन् अभिहितम्	=उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या है (प्रश्न) सूत्रमें अकथित
कथम् मिश्र-ग्रहणम् ?	=मिश्र (लेश्या) का ग्रहण(यहां)कैसे है ? अर्थात् इस बाईसवां सूत्रमें तो किसी युगलके देवोंके दो लेश्या वर्णन नहीं की हैं इस सूत्रकी वृत्तिमें आपने कैसे

कहा कि सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें पीत-पद्म दो लेश्या हैं सूत्रमें तो इस युगलमें केवल पीतलेश्या कही है और शुक्र महाशुक्रके युगलमें सूत्रमें तो पद्मलेश्या कही वृत्तिमें आपने पद्मशुक्ल दोनों लेश्यायें कैसे कहीं और शतार सहस्रार युगलमें सूत्रानुसार केवल शुक्ल लेश्या है आपने वृत्तिमें पद्म शुक्ल दो लेश्यायें कैसे कहीं।

साहचर्यात्	=(उत्तर) एक ही आश्रय होनेसे अथवा साथ साथ रहनेसे
लोकवत्	=लोक (व्यवस्था या रीति) सदृश (मिश्र लेश्याओंका ग्रहण है अर्थात् मुख्यता करि जो जो लेश्या जिन जिन युगलोंमें हैं वहसो सूत्र विषैं कहीं उसके साथ लोक रीतिके समान गौण लेश्याका भी ग्रहण करना योग्य है॥

तद्यथा–छत्रिणो गच्छन्ति इति अछत्रिषु छत्रिव्यवहार । एवमिहापि मिश्रयोरन्यतरग्रहणंभवति॥ अयमर्थ सूत्रत कथं गम्यते ? इति चेदुच्यते—एवमभिसम्बन्ध क्रियते, द्वयो कल्पयुगलयोः पीतलेश्या । सानत्कुमारमाहेन्द्रयो पद्मलेश्याया

तद्यथा॰छत्रिणः॰गच्छन्ति॰इति॰ =जैसे (लोक विदित वा प्रसिद्धमें राजादिक) छत्रधारी जाते हैं इस प्रकार

अछत्रिषु॰छत्रिन्-व्यवहारः॰ =बिना छत्रवाले (साथियों) विषैं छत्रधारीका व्यवहार होता है अर्थात् राजादिक छत्रधारी और उनके साथीगण सब साथ साथ जाते हैं परन्तु पूंछनेपर लोक प्रसिद्धमें यह कहा जाता है कि अमुक छत्रधारी राजा जाते हैं भावार्थ मुख्य अथवा प्रधानका जो नाम लेते हैं उसमें गौणभी गर्भित होजाते हैं ॥

एवम्॰इह॰अपि॰ =इस प्रकार यहां (लेश्याओंके कथनमें) भी

अन्यतर-ग्रहणम्॰ =दोनों (पृथक् और मिश्र लेश्याओं)में से एकके(सूत्रमें) ग्रहणसे

मिश्रयोः॰भवति॰ =मिश्र (पीतपद्म, पद्मशुक्ल वा शुक्लपद्म लेश्याओं) का (ग्रहण) होजाताहै भावार्थ ऐसाहैकि पीत-पद्म शुक्ल-तीन लेश्यायें पृथक् पृथक्हैं और पीतपद्म तथा पद्मशुक्ल (जोयतारसहस्रारमें भीहैं) ये दो मिश्र हैं। सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ल व्यक्तिगत लेश्याओं का ग्रहण है इन व्यक्तिगत लेश्याओंके ग्रहणसे पीतपद्म, पद्मशुक्ल इन दो मिश्र लेश्याओंका ग्रहण उसी प्रकारसे होजाताहै कि जिस प्रकार किसीसड़कपर छत्री और विनाछत्री वाले दोनों प्रकारके मनुष्य जातेहों। उनमें छत्रीवाले अधिक होंतो वहांपर 'छत्रिणोगच्छंति' अर्थात् छत्रीवाले जारहे हैं ऐसा व्यवहार होताहै और यहां पर 'छत्रीवाले' कहनेसे छत्री और विनाछत्रीवाले दोनों प्रकारके पुरुषोंका ग्रहण होजाताहै वैसही इस सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ललेश्याओंसे मिश्रका भी है

अयम्॰अर्थः॰सूत्रत॰कथम्॰गम्यते॰ =यहअर्थ सूत्रसे कैसे जानाजाताहै अर्थात् पीतपद्म पद्मशुक्लका ग्रहणसूत्रमेंकैसेहुआ

इति॰चेत्॰उच्यते॰एवम्॰अभि-सम्बन्ध॰क्रियते॰ =ऐसा संदेह होने पर कहाजाता है कि इस प्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि

द्वयोः॰कल्प-युगलयोः॰ =दो स्वर्ग-युगलों (सौधर्म और ऐशान सानत्कुमार और माहेन्द्र) में

पीतलेश्या॰सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः॰पद्मलेश्यायाः॰ =पीत लेश्या है सानत्कुमार माहेन्द्र में पद्मलेश्या का (अस्तित्व)

अविवक्षात ॥ ब्रह्मलोकादिषु त्रिषु कल्पयुगलेषु पद्मलेश्या । शुक्रमहाशुक्रयो शुक्ललेश्याया अविवक्षात ॥ शेषेषु शतारादिषु शुक्ललेश्या । पद्मलेश्याया अविवक्षातइति नास्ति दोष ॥ आह कल्पोपपन्ना इत्युक्तं तत्रेदं न ज्ञायते के कल्पा इत्यत्रोच्यते—

॥प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः॥ २३॥

अविवक्षात	=अपेक्षा रहित है अर्थात् पद्मलेश्या इस सूत्रमें गौण है इसलिये सूत्रमें कहनेकी इच्छा नहीं है भावार्थ सूत्रमें गौण लेश्याका कथन करनेका अभिप्राय, वांछा, वा प्रयोजन नहीं है। इससे पद्मलेश्याका निर्देश इस सूत्रमें नहीं किया गया है ॥
ब्रह्मलोक आदिषु त्रिषु कल्पयुगलेषु	=ब्रह्मलोक, ब्रह्मोत्तर, लान्तव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र तीन कल्प युगलोंमें
पद्मलेश्या ।; शुक्र-महाशुक्रयो शुक्ललेश्याया	=पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्रमें शुक्ललेश्याका (अस्तित्व)
अविवक्षात	=विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलमें शुक्ललेश्या गौण है इससे कहने की सूत्रमें इच्छा नहीं है
शेषेषु शतार-आदिषु शुक्ललेश्या	=शेष शतार सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत में शुक्ललेश्या है।
पद्मलेश्याया अविवक्षात	=(शतार सहस्रार विषैं) पद्मलेश्या का (अस्तित्व) विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलक देवोंके पद्मलेश्या गौण है इससे सूत्र में कहने की इच्छा नहीं है
इति	=इस प्रकार (कथनस कि मुख्यताकरि दो युगलोंमें पीतलेश्या, तीन युगलोंमें पद्मलेश्या शेष तीन युगलों में शुक्ललेश्या है)
न अस्ति दोष	=दूषण नहीं है (क्योंकि मुख्य लेश्या तो सूत्रद्वारा कहीं गौण लोक रीतिसे जानना चाहिये)।
आह 'कल्प-उपपन्ना' इति उक्तम्	=शिष्य प्रश्न करता है कि "कल्पोपपन्ना" ऐसा वाक्य सत्रहवां सूत्रमें कहा गया है।
तत्र इदम् न ज्ञायते	=वहां यह ज्ञान नहीं कराया गया है अथवा वहां यह नहीं जतलाया गया है कि
के कल्पाः इति अत्र उच्यते	=कल्प कौन हैं यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्-प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा ॥ २३॥ = (सौधर्म आदय) प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा भवन्ति ॥ २३॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरि रचित) में केवल बारह स्वर्ग माने हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग मानेहैं। हमारे यहां किसी २ पुस्तक में

इद न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । तेनायमर्थो लभ्यते-सौधर्माद्य प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा इति पारिशेप्यादितरे कल्पातीता इति ॥

लौकान्तिका देवा वैमानिका सन्त क्व गृह्यन्ते? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थ—सौधर्म आदय॰ प्राग्॰ग्रैवेयकेभ्य॰ कल्पा॰	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व (पूर्व) कल्प हैं अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे लेकर अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प' कहेजाते हैं
पूर्वानुवाद —इदम्॰ न॰ ज्ञायते	=(सूत्रमें) यह नहीं बोध करायागया है अथवा जतायागया है कि
इत॰ आरम्भ-कल्पा॰ भवन्ति इति॰ सौधर्म आदि	=यहांस (=इत) कल्प आरम्भ होतेहैं (उन्नीसवां सूत्रसे) 'सौधर्म आदिका'
ग्रहणम्॰ अनुवर्तते	=(इससूत्रमें)ग्रहण प्रवर्तता है अर्थात् उन्नीसवां सूत्रसे सौधर्म आदि शब्दलियेगये हैं
तेन॰ अयम्॰ अर्थ॰ लभ्यते	=तिस (सौधर्म आदिके ग्रहण)से यह अर्थ प्राप्त कियागया है कि
सौधर्म-आदय॰ प्राग्॰ग्रैवेयकेभ्य॰ कल्पा॰	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग हैं ।
इति॰ पारिशेप्यात्॰ इतरे॰ कल्प-अतीता॰ इति॰	=ऐसे इन (कल्पों) से अवशेष (=पारिशेप्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात् प्रथम सौधर्म स्वर्गसे अच्युत सोलह स्वर्ग तक कल्प कहलातेहैं। सोलह स्वर्गों से भिन्न जे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत कहेजाते हैं॥
लौकान्तिका॰ देवा॰ वैमानिका॰ सन्त॰ क्व॰ गृह्यन्ते	=लौकान्तिकदेव वैमानिक हैं। कहां मानेगये हैं वा ग्रहण किये गये हैं ?
कल्प-उपपन्नेषु॰ कथम्॰ इति॰ चेत्॰ उच्यते	=(उत्तर) कल्प वासियोंमें (प्रश्न) कैसे ऐसा सदेह होनेपर कहाजाता है कि
(१)सूत्रम्—ब्रह्मलोकालयालौकान्तिका	= ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका (भवन्ति) ॥२४॥

जैन प्रभाकर प्रेस (लाहौर) मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र में तथा पं० सदासुखजी कृत लघुटीकामें कल्पाः शब्दके स्थानमें कल्प शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि कल्प सोलह हैं और कल्प शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है केवल एक स्वर्गका द्योतक है। अत कल्पाः बहुवचन होना चाहिये ॥

(१) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'लौकान्तिका' पाठ भी है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्वेताम्बरीयभाष्य) में "लौकान्तिका" पाठ है दोनों पाठ शुद्ध हैं (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५१ टिप्पणी पृष्ठ ५४० ५४१)॥ दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है ॥

एत्य तस्मिन् लीयन्त इति आलय आवास । ब्रह्मलोक आलयो येषा ते ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका देवा वेदितव्या । यद्येवं सर्वेषा ब्रह्मलोकालयाना देवाना लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं?। अन्वर्थसञ्ज्ञाग्रहणाददोष ॥ ब्रह्मलोको लोक तस्यान्तो लोकान्त तस्मिन्भवा लौकान्तिका इति न सर्वेषा ग्रहणम् ।

सूत्रार्थः–ब्रह्मलोक-आलयाः लौकान्तिकाः भवन्ति =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग है निवासस्थान जिनका वे लौकान्तिक देव हैं अर्थात् ब्रह्मलोकालय इस शब्दके साथ लौकान्तिक शब्दका सम्बन्ध है। ब्रह्मलोकके अंतका नाम लोकांत है और वहां पर रहनेवाले लौकान्तिक कहेजाते हैं॥ इस रीति से ब्रह्मलोकके अन्तमें रहनेवाले ही देव लौकान्तिक होसकते हैं सब ब्रह्मलोक निवासी नहीं अथवा जन्म जरा और मरण से व्याप्त स्थानका नाम लोक है; उसका अन्त लोकान्त है जिन्हें उस लोकांतका प्रयोजन होवे, वे लौकांतिक कहेजाते हैं। ये लौकांतिक देव परीतसंसार हैं। ब्रह्मलोकसे च्युत होकर एक गर्भवास अर्थात् नर भव पाकर नियमसे मोक्ष प्राप्त करलेते हैं ऐसे दोनों प्रकारसे सार्थक नाम वाले लौकान्तिक देव हैं॥

वृत्त्यनुवादः–एत्य तस्मिन् लीयन्ते इति आलयः =आनकरि जिसमें मिलते हैं, छिपते हैं, वा रहते हैं ऐसा आलय

आवासः ब्रह्मलोकः आलयः येषाम् ते =निवास स्थान है। ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) है निवासस्थान जिनका वे

ब्रह्मलोक आलयाः लौकान्तिकाः देवाः वेदितव्याः =ब्रह्मलोक आलयवाले(पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले) लौकांतिक देव जानने चाहिये

यदि एवम् सर्वेषाम् =(प्रश्न)जो ऐसे हैं अर्थात् पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले लौकान्तिक देव हैं तो समस्त

ब्रह्मलोक आलयानाम् देवानां लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं?=ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवोंके लौकान्तिक होना पाया जाता है

अन्वर्थ-सञ्ज्ञा =(उत्तर) (इन देवोंका) सार्थक नाम (अर्थात् जैसा नाम है वैसाही अर्थ

ग्रहणात् अदोषः ब्रह्मलोकः लोकः =ग्रहण करनेसे दूषण नहीं है। ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) सो लोक है

तस्य अन्तः लोक-अन्तः तस्मिन् भवाः लौकान्तिकाः =तिसका छोर सो लोकांत है तिस (पांचवां स्वर्गके अन्त)में (उत्पन्न)होनेवाले ये लौकांतिक हैं

इति न सर्वेषाम् ग्रहणम् =ऐसे समस्त (पांचवां स्वर्गके देवोंका) ग्रहण नहीं होता है॥

इदं न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । तेनायमर्थो लभ्यते-
सौधर्मादय प्राग्ग्रैवेयकेभ्य कल्पा इति पारिशेप्यादितरे कल्पातीता इति ॥

लौकान्तिका देवा वैमानिका सन्त क्व गृह्यन्ते? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

पूर्वार्थ—सौधर्म आदयः मागूग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व (पूर्व) कल्प हैं अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे लेकर अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प' कहेजाते हैं
पूर्वानुवादः—इदम् न ज्ञायते	=(सूत्रमें) यह नहीं बोध करायागया है अथवा जतायागया है कि
इत आरम्भ-कल्पाः भवन्ति इति सौधर्म आदि	=यहांसे (=इतः) कल्प आरम्भ होवे हैं (उन्नीसवां सूत्रसे) 'सौधर्म आदिका'
ग्रहणम् अनुवर्तते	=(इससूत्रमें)ग्रहण प्रवर्तता है अर्थात् उन्नीसवां सूत्रसे सौधर्म आदि शब्दलियेगये हैं
तन् अयम् अर्थः लभ्यते	=तिस (सौधर्म आदिके ग्रहण)से यह अर्थ प्राप्त कियागया है कि
सौधर्म-आदयः मागूग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग हैं ।
इति पारिशेष्यात् इतरे कल्प-अतीताः इति	=ऐसे इन (कल्पों) से अवशेष (=पारिशेष्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात् प्रथम सौधर्म स्वर्गसे अच्युत सोलह स्वर्ग तक कल्प कहवाते हैं। सोलह स्वर्गों से भिन्न जे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत कहेजाते हैं॥
लौकान्तिकाः देवाः वैमानिकाः सन्तः क्व गृह्यन्ते	=लौकान्तिकदेव वैमानिक हैं। कहां मानेगये हैं वा ग्रहण किये गये हैं?
कल्प-उपपन्नेषु कथम् इति चेत् उच्यते	=(उत्तर) कल्प वासियोंमें (प्रश्न) कैसे ऐसा सदेह होनेपर कहाजाता है कि
(1)सूत्रम्—ब्रह्मलोकालयालौकान्तिका	= ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका (भवन्ति) ॥२४॥

श्रीमं जमनार जी (लाहौर) मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र में तथा पं० सदा सुखजी कृत लघुटीकामें कल्पाः शब्दके स्थानमें कल्प शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि कल्प मोक्ष हैं और कल्प शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है केवल एक स्वर्गका द्योतक है। अत कल्पाः बहुवचन होना चाहिये ॥

(1) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'लौकांतिका' पाठ भी है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्वेताम्बरीयभाष्य) में "लोकान्तिका" पाठ है दोनों पाठ शुद्ध हैं (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५१ टिप्पणी पृष्ठ ५५० ५५१) दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है॥

क इमे सारस्वतादय । अष्टास्वपि पूर्वोत्तरादिषु दिक्षु यथाक्रममेते सारस्वतादयो देवगणा वेदितव्याः । तद्यथा-

हैं और सारस्वत भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव हैं भावार्थ अग्न्याभ, सूर्याभ, चन्द्राभ, सत्याभ, श्रेयस्कर, क्षेमंकर, वृषभेष्ठ, कामचर, निर्माणरज, दिगन्तरक्षित, आत्मरक्षित, सर्वरक्षित, मरुत्, वसु, अश्व, विश्व, ये सोलह प्रकारके लौकान्तिक देव हैं और सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अरिष्ट भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव ऐसे सब लौकान्तिक चौबीस प्रकारके हैं।

पृथगनुवादः क=इमे॥सारस्वत-आदय-॥,अष्टासु॥	=(प्रश्न) कहां हैं ये सारस्वतादिक (लौकान्तिक देव), आठों
अपि=पूर्व-उत्तर आदिषु॥	=ही पूर्व ईशान-उत्तर,वायव्य-पश्चिम-नैऋत्य (नैऋत)-दक्षिण-आग्नेय (=आदिषु)
दिक्षु॥यथाक्रमम्=एते॥सारस्वत-आदयः॥	=दिशाओंमें अनुक्रमसे ये सारस्वत आदिक (निम्न लिखित चौबीस प्रकारके)
देवगणाः॥वेदितव्याः॥तद्यथा=	=देवोंके समूह जानने चाहिये-जैसे

और मरुतः (अरिष्टाश्च) का अनुवाद यह किया है कि उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव रहते हैं। सभाष्य०में केवल आठ प्रकारके लौकान्तिक देवोंका कथन है इससे प्रगट है कि 'मरुत्' और 'अरिष्ट' एक ही प्रकार है। आठ दिशाओंमें रहनेकी अपेक्षासे हमारे यहांके कथनसे श्वेताम्बरसमाजका लेख मिलता है केवल इतना भेद है कि उत्तर दिशा में हमारे यहां अरिष्ट' देवोंका निवास है उनके यहां मरुत् देवों का, यदि मरुत् और अरिष्ट देवोंको अभेद रूपसे मानलें तो कुछभी अन्तर दोनोंमें नहीं रहता है जैसाकि निम्न लेखसे जो सभाष्य० के पृष्ठ ११३ और ११४ से लिया है विदित है

'जैसे पूर्वोत्तर दिशामें सारस्वत देव रहते हैं अर्थात् पूर्व और उत्तर दिशा के कोण (ऐशानकोण) में सारस्वत रहते हैं। पूर्व दिशामें आदित्य संज्ञक देव रहते हैं। इसी प्रकार अन्य देवोंके विषयमें भी जानलेना चाहिये अर्थात् पूर्व दक्षिण (आग्नेय कोण) में वह्नि, दक्षिणमें अरुण दक्षिणपश्चिम (नैऋत्यकोण) में गर्दतोय पश्चिम में तुषित, पश्चिमोत्तर(वायव्यकोण)में अव्याबाध और उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव' रहते हैं। सभाष्य०में'च' शब्द का कोई अर्थ नहीं किया है हमारे यहां चकार से सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देव लिये हैं। आठ प्रकार के देवोंमें 'अरिष्ट देव' उत्तर दिशामें रहने वाले हैं और सोलहप्रकार के देवोंमेंसे मरुत् देव हैं जो वायव्य और उत्तर दिशाओं के मध्यमें रहते हैं (देखो वृत्ताकार पृष्ठ ८५ में)।

श्वेताम्बर समाजके भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका के निम्नलेखसे प्रगट है कि कोई आठप्रकारके लौकान्तिक देव मानते हैं कोई कोई नव प्रकारके "न त्वेवमनेन नवभेदा भवंति। भाष्यकृताव्याबाधा इति मुद्रिता उच्यते। लोकांत वर्तिन एतेऽष्टभेदाः। सूरिश्रेयस्ता। अरिष्ट विमान प्रस्तार वर्तिभि नवधा भवतीत्यपरोक्तः" पृष्ठ २४२॥

तेषां हि विमानानि ब्रह्मलोकस्यान्तेषु स्थितानि ॥ अथवा जन्मजरामरणाकीर्णो लोकः संसारः तस्यान्तो लोकान्तः । लोकान्ते भवा लौकान्तिकाः ते सर्वे परीतसंसाराः । ततश्च्युता एकं गर्भावासं प्राप्य परिनिर्वास्यन्ति ॥ तेषां सामान्येनोपदिष्टानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

तेषाम् हि विमानानि ब्रह्म-लोकस्य अन्तेषु	=तिन (लौकान्तिक देवों)केही विमान ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) के अन्तमें
स्थितानि ॥ अथवा जन्म-जरा-मरण आकीर्णः लोकः	=स्थित हैं अथवा जन्म जरा और मृत्युकरि व्याप्त (=आकीर्ण)जो भुवन (=लोक)
संसारः तस्य अन्तः लोक अन्तः	=जो जगत् (=संसार) तिस (संसार)का अन्त वा छोर सो लोकान्त है
लोक अन्ते भवाः लौकान्तिकाः ते सर्वे	=संसारके अन्तमें हों वे लौकान्तिक हैं । वे समस्त (लौकान्तिकदेव)
परीत-संसाराः ततः	=संसारसे विरक्त वा उदासीन(=परीत)हैं वहां(ब्रह्मलोकके अंत अपने निवासस्थान)से
च्युताः एकम् गर्भ आवासम् प्राप्य परिनिर्वास्यन्ति(१)	=च्युत होकर एक गर्भवासस्थानको प्राप्त कर कर्मों के विरुद्ध अर्थात् कर्मोंको जीतकर निर्वाण पावे हैं
तेषाम् सामान्येन उपदिष्टानाम् भेद प्रदर्शन अर्थम् आह	=सामान्यकरि कहेहुये तिन (लौकान्तिकदेवों)के भेद दिखावनेके लिये कहते हैं कि

(३)सूत्रम्—सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

= सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च + (लौकान्तिकाः)(२) भवन्ति

सूत्रार्थ —सारस्वत आदित्य-वह्नि अरुण-गर्दतोय तुषित	=सारस्वत, आदित्य वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित
अव्याबाध अरिष्टाः च लौकान्तिकाः भवन्ति	=अव्याबाध, अरिष्ट भी (= च)लौकान्तिकदेव हैं अर्थात् अन्य लौकान्तिकदेव

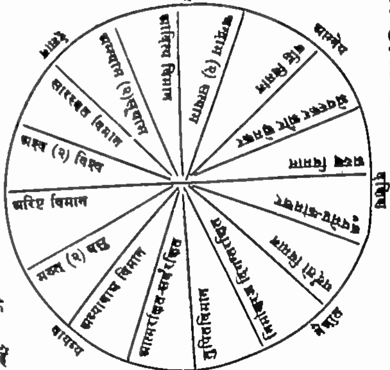
(१) 'परि' अव्यय जब क्रियाके साथ आताहै तब उसको उपसर्ग कहते हैं । इनके क्रियाके साथमें चारोंओर, अधिक,विरुद्ध प्रतिकूल,विपरीत, अतिशय अत्यन्त, इन चार अर्थोंमें आताहै यहां 'विरुद्ध' प्रतिकूल अर्थमेंहै अतः कर्मोंके विरुद्ध प्रतिकूल ऐसा अनुवादकियाहै पृष्ठ ८६में 'निर्वास्यन्ति' है।

(२) 'लौकान्तिकाः' पदकी अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्रसे है ॥ सूत्रमें 'च' शब्द अन्य सोलह प्रकारके लौकान्तिक देवोंके समुच्चय के लिये है ॥

(३) हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाका पाठ और हमारे यहां का पाठ 'सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाध'तक एक है हमारे यहां अव्याबाधके पश्चात् "अरिष्टाश्च" पाठ औरहै । भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'अव्याबाध'के पीछे 'मरुतः' शब्द अधिक है । सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें 'अव्याबाध'के पश्चात् मरुतः (अरिष्टाश्च)वाक्य अधिक है ॥

तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभा । वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचरा । गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिता । अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वा ॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् ॥

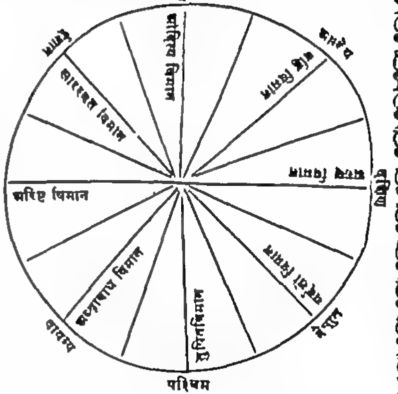
तद्यथा=सारस्वत-आदित्य-अन्तरे=अग्न्याभ-सूर्याभाः।	=जैसे सारस्वत आदित्य के अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं।
आदित्यस्य। च=वह्नेः। च=अन्तरे	=वहुरिआदित्य के और वह्निके बीच में
चन्द्राभ-सत्याभाः। वह्नि-अरुण अन्तराले। श्रेयस्कर क्षेमकराः।	=चन्द्राभ सत्याभ हैं। वह्नि और अरुण के मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं।
अरुण-गर्दतोय अन्तराले।	=अरुण गर्दतोय के अन्तर वा मध्य में
वृषभेष्ट-कामचराः।	=वृषभेष्ट और कामचर हैं।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये। निर्माणरजो-	=गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज (१)
दिगन्तरक्षिताः। तुषित-	=और दिगन्तर रक्षित हैं। तुषित और
अव्याबाध-मध्ये।	=अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिताः।	=आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं।
अव्याबाध अरिष्ट-अन्तराले।	=अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें
मरुत्-वसवः। अरिष्ट-सारस्वत अन्तराले। अश्व-विश्वाः। सर्वे।	=मरुत् और वसु हैं। अरिष्ट और सारस्वतके बीचमें अश्व और विश्व हैं। समस्त
एते। स्वतन्त्राः।	=ये (चौबीसप्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन अधिकत्व-अभावात्।	=क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौबीस प्रकारके देवोंमें कोई देव अन्य देवसे हीन अधिक नहीं है वरन् सब समान हैं।



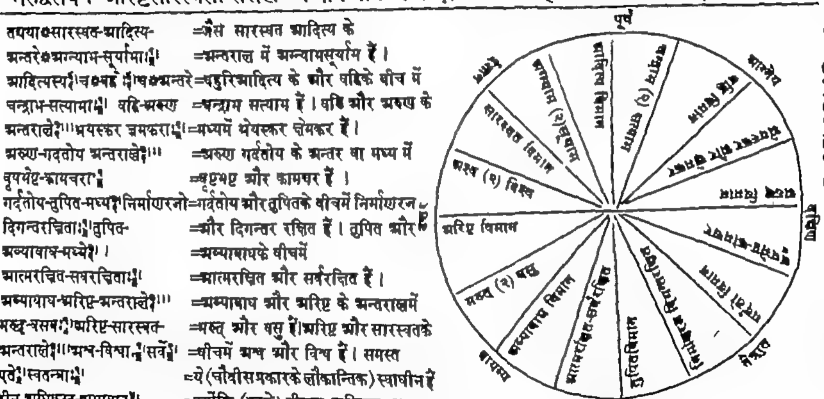
(१) हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ठ १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ१७७में अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविश्वाः' ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं।

पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानं, पूर्वस्या दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्या दिशि वह्नि विमान, दक्षिणस्या दिशि अरुणविमान, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमान, अपरस्या दिशि तुषितविमान, उत्तरापरस्या दिशि अव्याबाधविमान, उत्तरस्या दिशि अरिष्टविमानम्॥ चशब्दसमुच्चिता तेषामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ॥

पूर्व उत्तर-कोणे॥ =पूर्व उत्तर कोनमें अर्थात् ईशान दिशामें
सारस्वत-विमानम्॥ =सारस्वत (देवोंका) विमान है
पूर्वस्यां॥ दिशि॥ =पूर्व दिशामें
आदित्य-विमानम्॥ =आदित्य (देवोंका) विमान है
पूर्व-दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥ =पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
वह्नि-विमानम्॥ =वह्नि (देवोंका) विमान है
दक्षिणस्याम्॥ दिशि॥ =दक्षिण दिशामें
अरुण विमानम्॥ =अरुण (देवोंका) विमान है
दक्षिण अपर-कोणे॥ =दक्षिण पश्चिम कोनमें अर्थात् नैऋत्य दिशामें
गर्दतोय-विमानम्॥ =गर्दतोय (देवोंका) विमान है
अपरस्याम्॥ दिशि॥ =पश्चिम दिशामें
तुषित-विमानम्॥ =तुषित (देवों का) विमान है
उत्तर अपरस्याम् दिशि॥ =उत्तर पश्चिम दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
अव्याबाध-विमानम्॥ =अव्याबाध (देवोंका) विमान है
उत्तरस्याम्॥ दिशि॥ =उत्तरदिशामें
अरिष्ट विमानम्॥ च शब्द =अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
समुच्चिताः॥ =अन्यलौकान्तिक मिलायगये हैं
तेषाम्॥ अन्तरे॥ =तिन (सारस्वतादि आठ प्रकारके लौकान्तिक देवों) के मध्य में (क्रमसे)
द्वौ॥ द्वौ॥ देवगणौ॥ =दो दो (प्रकार के) देवों के समुदाय हैं अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूहऔर हैं।



तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभा । वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचरा । गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिता । अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वा ॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् ॥



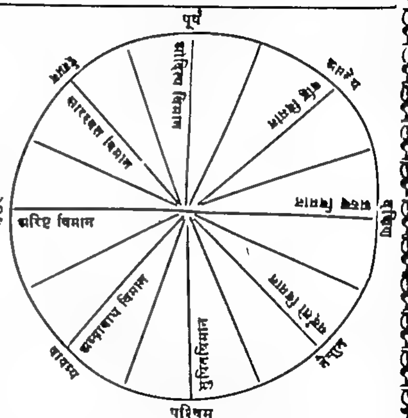
तद्यथा=सारस्वत-आदित्य- =जैसे सारस्वत आदित्य के
अन्तरे=अग्न्याभ-सूर्याभाः[१] =अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं ।
आदित्यस्य[१] च=और वह्नेः[१] च=अन्तरे=वहुरि आदित्य के और वह्निके बीच में
चन्द्राभ-सत्याभाः[१] वह्नि-अरुण =चन्द्राभ सत्याभ हैं । वह्नि और अरुण के
अन्तराले[१]।।श्रेयस्कर क्षेमकराः[१]=मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं ।
अरुण-गर्दतोय अन्तराले[१]।। =अरुण गर्दतोय के अन्तर वा मध्य में
वृषभेष्ट-कामचराः[१] =वृषभेष्ट और कामचर हैं ।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये[१] निर्माणरजो=गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज
दिगन्तरक्षिताः[१] तुषित- =और दिगन्तर रक्षित हैं । तुषित और
अव्याबाध-मध्ये[१] । =अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिताः[१] =आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं ।
अव्याबाध-अरिष्ट-अन्तराले[१]।। =अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें
मरुद्-वसवः[१] अरिष्ट-सारस्वत- =मरुत् और वसु हैं । अरिष्ट और सारस्वतके
अन्तराले[१]।।अश्व-विश्वाः[१] सर्वे[१] =बीचमें अश्व और विश्व हैं । समस्त
एते[१] स्वतन्त्राः[१] =ये (चौवीस प्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन अधिकत्व-अभावात्[१] =क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक
दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौबीस प्रकारके देवोंमें कोई देव अन्य देवसे हीन अधिक नहीं है वरन् सब समान हैं ।

---

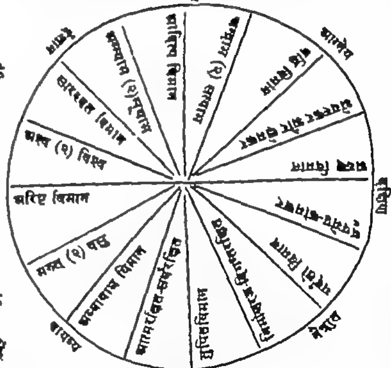
(१) हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ठ १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ १७४में अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविश्वाः ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं।

पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानं, पूर्वस्यां दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्यां दिशि वह्नि विमानं, दक्षिणस्यां दिशि अरुणविमानं, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमानं, अपरस्यां दिशि तुषितविमानं, उत्तरापरस्यां दिशि अव्याबाधविमानं, उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम्॥ चशब्दसमुच्चिता तेषामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ॥

पूर्व उत्तर-कोणे ॥ =पूर्व-उत्तरके कोनमें अर्थात् ईशान दिशामें
सारस्वत विमानम् ॥ =सारस्वत (देवोंका) विमान है
पूर्वस्यां दिशि ॥ =पूर्व दिशामें
आदित्य-विमानम् ॥ =आदित्य (देवोंका) विमान है
पूर्व-दक्षिणस्याम् दिशि =पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
वह्नि-विमानम् ॥ =वह्नि (देवोंका) विमान है
दक्षिणस्याम् दिशि ॥ =दक्षिण दिशामें
अरुण विमानम् ॥ =अरुण (देवोंका) विमान है
दक्षिण अपर-कोणे ॥ =दक्षिण पश्चिम कोनमें अर्थात् नैऋत्य दिशामें
गर्दतोय-विमानम् ॥ =गर्दतोय (देवोंका) विमान है
अपरस्याम् दिशि ॥ =पश्चिम दिशामें
तुषित-विमानम् ॥ =तुषित (देवों का) विमान है
उत्तर अपरस्याम् दिशि ॥ =उत्तर पश्चिम दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
अव्याबाध-विमानम् ॥ =अव्याबाध (देवोंका) विमान है
उत्तरस्याम् दिशि ॥ =उत्तरदिशामें
अरिष्ट-विमानम् ॥ चशब्द =अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
समुच्चिता ॥ =अन्यलौकान्तिक मिलायेगये हैं
तेषाम् अन्तरे ॥ =तिन (सारस्वतादि आठ प्रकारके लौकान्तिक देवों) के मध्य में (क्रमसे)
द्वौ द्वौ देवगणौ ॥ =दो दो (प्रकार के) देवों के समुदाय हैं अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूह और हैं।



तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभा । वह्न्यरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचरा । गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिता । अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वा ॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् ॥



तद्यथा॰सारस्वत आदित्य	=जैसे सारस्वत आदित्य के
अन्तरे॰अग्न्याभ-सूर्याभाः	=अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं ।
आदित्यस्य च वह्नेः च अन्तरे	=बहुरि आदित्य के और वह्निके बीच में
चन्द्राभ-सत्याभाः वह्नि अरुण	=चन्द्राभ सत्याभ हैं । वह्नि और अरुण के
अन्तराले श्रेयस्कर क्षेमकराः	=मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं ।
अरुण-गर्दतोय अन्तराले	=अरुण गर्दतोय के अन्तर या मध्य में
वृषभेष्ट-कामचराः	=वृषभेष्ट और कामचर हैं ।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये निर्माणरजा	=गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज हैं
दिगन्तरक्षिताः तुषित-	=और दिगन्तर रक्षित हैं । तुषित और
अव्याबाध-मध्ये	=अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिताः	=आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं ।
अव्याबाध-अरिष्ट-अन्तराले	=अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें
मरुद्-वसवः अरिष्ट-सारस्वत-	=मरुत् और वसु हैं अरिष्ट और सारस्वतके
अन्तराले अश्व-विश्वाः सर्वे	=बीचमें अश्व और विश्व हैं । समस्त
एते स्वतन्त्राः	=ये (चौबीस प्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन अधिकत्व-अभावात्	=क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक

दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौबीस प्रकारके देवोंमें कोई देव अन्य देवसे हीन अधिक नहीं है वरन् सब समान हैं ।

---

(१) हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ठ १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ१७७में 'अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविश्वाः' ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं।

विषयरतिविरहाद्देवर्षय इतरेषां देवानामर्च्चनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थंकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकगर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता । किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात्॥ (१)देव ऋषयः॥ =विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण)से देवऋषि अर्थात् देवोंमें ऋषि हैं

इतरेषाम्॥ देवानाम्॥ अर्चनीयाः॥ चतुर्दशपूर्वधराः॥ =अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अंग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी

(२)तीर्थंकरनिष्क्रमण प्रतिबोधनपराः॥ वेदितव्याः॥ =तीर्थंकरके तप कल्याण विषें समझानेमें तत्पर (लवलीन वा निपुण) जानने चाहिये

आह॥ उक्ताः॥ लौकान्तिकाः॥ ततः॥ (३)च्युताः॥ =(शिष्य) पूछता है कि लौकान्तिकदेव कहेगए। वहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर

एकम्॥ गर्भवासम्॥ अवाप्य॥ निर्वास्यन्ति इति उक्ताः॥ =एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते हैं ऐसे कहेगये हैं

किम्॥ एवम्॥ अन्येषु॥ अपि॥ निर्वाणप्राप्तिकालविभागः॥ =क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनके कालका विभाग अथवा पृथक्ता

(४)विद्यते॥ इति॥ अतः॥ आह॥ =वर्तमान है(=विद्यते) इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) पहिले कोई स्वर ए ऐ ओ औ को छोड़कर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार होतो ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहे उसको स्वरके साथ मिलादो चाहे न मिलाओ जैसे देव ऋषिः=देवऋषि अथवा देव ऋषि=देवर्षि । देवर्षयः बहुवचन'देवर्षि का है।
(२) तीर्थंकर-तीर्थं (जिनशासन-जिसको करनेहारा आगमं-शास्त्रउपदेशक)करोति तीर्थंकर, तीर्थंकुर तीर्थं कर इसी अर्थमें होताहै(पाइअसद्दकोश पृष्ठ१७३)
(३) 'च्युता —सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें च्युत्वा पाठ है परन्तु उनके सूत्र २७ २६ में तीन स्थानोंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में इस सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २७,२६ में और राजवार्तिकके सूत्र २७ में एक स्थानमें सूत्र २६ के पांच स्थानोंमें (च्युता) शब्द है हमने हस्तलिखित तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युता शब्द लिया है । 'च्यु'प्रथम भ्वादि पतन होना अर्थमें है च्युत्वा शब्द भी ठीक है(देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ १६की टिप्पणी दो)। तत्त्वार्थराजवार्तिकमें २७ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा शब्दका प्रयोग है।(४)विद् सत्तायां दिवादि चतुर्थगणका धातु है इस गणमें क्रियाका प्रत्यय जोड़नेके पहिले य विकरण आजाता है। अर्थ विद् धातुका होना सत्ता है जैसे विद् य ते=विद्यते=वर्तमान है)

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्द प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टानां ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ क पुनरत्र प्रकार ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्युपपाद ।

(१)सूत्रम्—विजयादिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥ = (वैमानिका(२)) विजयादिषु(१) द्विचरमा भवन्ति ॥

विजय आदिषु ॥ वैमानिका:	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित, नव अनुदिश विमानोंमें वैमानिक देव
द्विचरमा: भवन्ति	=दो अन्तिम देह धरनेवाले होते हैं वा इनके दो जन्म अन्तके रहजाते हैं ॥

अर्थात् पहले मनुष्यके होमव धारणकर मोक्षजाते हैं वा इनके दो मनुष्यभव सिद्धावस्था प्राप्त होनमें शेष रहजाते हैं भावार्थ ऐसा है कि नोअनुदिश और विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित इन तरह विमानोंसे चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराध कर फिर विजयादिक विमानों उपजें वहांसे चयकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष पाते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

आदिशब्द: प्रकार अर्थे वर्तते तेन	=सूत्रमें आदिशब्द सादृश्य (जनावन) के अर्थमें है । तिस (आदि शब्द)से
विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित-अनुदिश-विमानानाम्	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित और नव अनुदिश विमानोंका
इष्टानाम् ग्रहणम् सिद्धम् भवति	=जो वांछित अथवा मानित हैं ग्रहण सिद्ध होता है
क: पुन अत्र प्रकार: अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्टि उत्पाद	=पुनि यहां क्या सदृशता हुई (उत्तर) अहमिन्द्र होनमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद है

(१) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है । परन्तु उनके यहां नवअनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं है इसलिये हमारे यहां तेरह विमानोंके वासीदेव द्विचरमा हैं उनके यहां केवल विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजितवासी द्विचरमा हैं देखो समाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ११४ ।
(२) सोलहवां सूत्रसे 'वैमानिका' शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रमें लीगई है (३) अर विजयादिकनितैं आयजीव एक जन्मभी लेवें अरदो जन्मभी मनुष्यके लेवें हैं तातें ऐसो अर्थ है जो विजयादिकनितैं चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराधि फेर विजयादिकनिमें उपजैं तहांते चय मनुष्य होय मोक्ष जायहैं ऐसे द्विचरम देवपना है । ऐसे अनुदिश अर चार अनुत्तरके देव तो दाय भवभी धारें एक भी धारें । स्वर्गोंके आठ युगल हैं तिनमें बारह इन्द्र हैं छह इन्द्र दक्षिणके और छह इन्द्र उत्तरके इनमें उत्तरके छः इन्द्रोंको छोड़कर दक्षिणके जो छह इंद्र (१ सौधर्म २ सानत्कुमार ३ ब्रह्म ४शुक्र ५ आनत ६ आरण) और

विषयरतिविरहाद्देवर्षय इतरेषां देवानामर्च्चनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकं गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता। किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात्॥ (१)देव ऋषयः॥	=विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण) से देवऋषि अर्थात् देवोंमें ऋषि हैं
इतरेषाम्॥ देवानाम्॥ अर्चनीयाः॥ चतुर्दशपूर्वधराः॥	=अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं वे समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अंग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
(२)तीर्थंकरनिष्क्रमण प्रतिबोधनपराः॥ वेदितव्याः॥	=तीर्थंकरके तपकल्याण विषें सम्बोधनमें तत्पर (तल्लीन या निपुण) जानने चाहिये
आह॥ उक्ताः॥ लौकान्तिकाः॥ ततस्॥ (३)च्युताः॥	=(शिष्य) पूछता है कि लौकान्तिकदेव कहेगये। वहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर
एकम्॥ गर्भवासम्॥ अवाप्य + निर्वास्यन्ति इति उक्ताः॥	=एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते हैं ऐसे कहेगये हैं
किम्॥ एवम्॥ अन्येषु॥ अपि॥ निर्वाणप्राप्तिकालविभागः॥	=क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पानेके कालका विभाग अथवा पृथक्ता
(४)विद्यते इति॥ अतः॥ आह॥	=वर्तमान है (=विद्यते) इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) पहिले कोई स्वर ए ऐ ओ औ को छोड़कर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार होता ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहे उसको स्वरके साथ मिलावो चाहे न मिलावो जैसे देव ऋषि = देवऋषि अथवा देव ऋषि = देवर्षि। देवर्षयः बहुवचन देवर्षि का है। (२) तीर्थंकर-तीर्थ (जिनशासन-जिसको करनेहारा आगमें शास्त्रउपदेशक) करोति तीर्थंकरः तीर्थंकुर तीर्थंकर इसी अर्थमें होता है (पद्य प्रस्तोत्र पृष्ठ १७१) (३) 'च्युता —सर्वार्थसिद्धि दोनों संस्करणोंमें च्युत्वा पाठ है परन्तु उनके सूत्र २७ २६ में तीन व्याख्योंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में इस सूत्रमें) तथा तीन व्याख्योंमें सूत्र २७, २६ में और राजवार्तिकके सूत्र २७ में एक व्याख्यामें सूत्र २६ के नीचे व्याख्योंमें (च्युताः) शब्द है इससे हस्तलिखित तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युताः' शब्द लिया है। 'च्यु' गमन व्यापि पतन होना अर्थमें है 'च्युत्वा' शब्द भी ठीक है (देखो प्रथम अध्याय पद १६की टिप्पणी को) तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें २७ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा' शब्दका प्रयोग है। (४) विद्यु सत्तायां दिवादि आत्मनेपदका धातु है इस धातुमें दिवादि प्रत्यय जोड़नेसे पहिले य विकरण जोड़ा जाता है। अर्थ विद् धातुका होना रहता है जैसे विद् य ते = विद्यते = वर्तमान है)

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्द प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टाना ग्रहणं सिद्ध भवति ॥ क पुनरत्र प्रकार ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्टयुपपादः ।

[1]सूत्रम्—विजयादिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥ = (वैमानिका[2]) विजयादिषु[3] द्विचरमा भवन्ति ॥

विजय आदिषु॥ वैमानिकाः॥	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित, नव अनुदिश विमानोंमें वैमानिक देव
द्विचरमाः॥ भवन्ति॥	=दो अन्तिम देह धरनवाले होते हैं वा इनके दो जन्म अन्तके रहजाते हैं ॥

अर्थात् यदेव मनुष्यके दोभव धारणकर मोक्षजातेहैं वा इनके दो मनुष्यभव सिद्धावस्था प्राप्त होनमें शेष रहजातेहैं भावार्थ ऐसाहै कि नोअनुदिश और विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित इन तरह विमानोंसे चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराध कर फिर विजयादिक विमानों उपजै वहांसे चयकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष पावे हैं।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

आदिशब्दः॥ प्रकार अर्थे॥ वर्तते॥ तेन॥	=सूत्रमें आदिशब्द सादृश्य (बनावने) के अर्थमें है। तिस (आदि शब्द)से
विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित अनुदिश-विमानानाम्॥	=विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित और नव अनुदिश विमानोंका
इष्टानाम्॥ ग्रहणम्॥ सिद्धम्॥ भवति॥	=जो वांछित अथवा मानित हैं ग्रहण सिद्ध होता है
कः॥ पुनः॥ अत्र॥ प्रकारः॥ अहमिन्द्रत्वे॥ सति॥ सम्यग्दृष्टि उत्पादः	=पुनि यहां क्या सदृशता हुई (उत्तर) अहमिन्द्र होनमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद है

(१) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ परन्तु उनके यहां नवअनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं है इसलिये हमारे यहां तेरह विमानोंके वासीदेव द्विचरमा हैं उनके यहां केवल विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितवासी द्विचरमा हैं देखो सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ११४।
(२) सोलहवां सूत्रसे वैमानिकाः शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रमें लीगई है (३) "अर विजयादिकनिर्तें आयकीय एक जन्मभी लेवें अरको जन्मभी मनुष्यके लेवैहै तातें ऐसो अर्थ है जो विजयादिकनितें चयकर मनुष्य होय, बहुरि संयम आराधि फेर विजयादिकनिमें उपजें वहांतै चय मनुष्य होय मोक्ष जावैं ऐसे द्विचरम देवपना है। ऐसे अनुदिश अर चार अनुत्तरके देव तो दाय भवभी धारें एक भी धारें। स्वर्गके आठ युगल हैं तिनमें बारह इन्द्र हैं छह इन्द्र दक्षिणके और छह इन्द्र उत्तरके इनमें उत्तरके छः इन्द्रोंको छोड़कर दक्षिणके जो छह इंद्र (१ सौधर्म २ सानत्कुमार ३ ब्रह्म ४ शुक्र ५ आनत ६ आरण) और

विषयरतिविरहाद्देवर्षयः इतरेषां देवानामर्च्चनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थंकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकगर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता । किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात्॥ (१)देव-ऋषयः॥	=विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण)से देवऋषि अर्थात् देवोंमें ऋषि हैं
इतरेषाम्॥ देवानाम्॥ अर्चनीया॥ चतुर्दशपूर्वधरा॥	=अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अंग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
(२)तीर्थंकरनिष्क्रमण-प्रतिबोधनपरा॥ वेदितव्या॥	=तीर्थंकरके तपकल्याण विषें समझानमें तत्पर (लवलीन वा निपुण) जानने चाहिये
आह॥ उक्ता॥ लौकान्तिका॥ ततस्॥ (३)च्युता॥	=(शिष्य) पूछता है कि लौकान्तिकदेव कहेगये। वहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर
एकम्॥ गर्भवासम्॥ अवाप्य॥ निर्वास्यन्ति॥ इति॥ उक्ता॥	=एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते हैं ऐसे कहेगये हैं
किम्॥ एवम्॥ अन्येषु॥ अपि॥ निर्वाणप्राप्तिकालविभाग॥	=क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनके कालका विभाग अथवा पृथकता
(४)विद्यते॥ इति॥ अत॥ आह॥	=वर्तमान है(=विद्यते) इसलिये (आचार्य्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) यदि कोई स्वर य ऐ ओ औ को छोड़कर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार होतो ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहें उसको स्वरके साथ मिलादो चाहें न मिलाओ जैसे देव ऋषि=देवऋषि अथवा देव ऋषि=देवर्षि । देवर्षयः बहुवचन 'देवर्षि'का है। (२) तीर्थंकर-तीर्थं (हितशासन -हितको करनेहारा आगमें शास्त्रउपदेशक)करोति तीर्थंकर, तीर्थंकुर तीर्थं करः इसी अर्थमें होताहै(शब्दकल्पद्रुमकोश पृष्ठ१७१) (३) 'च्युता —सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें च्युत्वा पाठ है परन्तु उनके सूत्र २४ २६ में तीन स्थानोंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में,(इस सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २५,२६ में और राजवार्तिकके सूत्र २७ में एक स्थानमें सूत्र २६ के नीचे स्थानोंमें (च्युता) शब्द है हमने हस्तलिखित तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युता शब्द लिया है ॥ 'च्यु'प्रथम व्यादि पतन होना अर्थमें है च्युत्वा शब्द भी ठीक है(देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ १६की टिप्पणी दो)॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें २७ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा शब्दका प्रयोग है।(४)विद् धातुपर श्विदादि चतुर्थगणका धातु है [redacted] गणमें क्रियाका प्रत्यय आनेके पहिले य विकरण आजाता है। अर्थ विद् धातुका 'होना' ऐसा है जैसे विद् य ते=विद्यते=वर्तमान है)

चरमत्वं देहस्य । मनुष्यभवापेक्षया द्वौ चरमौ देहौ येषा ते द्विचरमा । विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येषूत्पद्य संयममाराध्य पुनर्विजयादिषूत्पद्य ततश्च्युता पुनर्मनुष्यभवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम्॥ आह जीवस्यौदयिकेषु भावेषु तिर्यग्योनिगतिरौदयिकीत्युक्त, पुनश्चस्थितौ

चरमत्वम्॥ (१)देहस्य — =(यहां एक चरमत्वसिद्धे। इस वाक्यमें) चरमत्व शब्द है सो देहका चरमत्व है अर्थात् देहका अवसानपना या अन्तपना ऐसा चरमत्व शब्दसे अभिप्राय है

मनुष्यभव अपेक्षया॥ द्वौ॥ चरमौ॥ देहौ॥ येषाम्॥ — =मनुष्य जन्मकी विवक्षासे दो अन्तिम शरीर जिनके हैं

ते॥ द्विचरमा॥ — =वे द्विचरमा हैं अर्थात् मनुष्यभवमें संयमको आराधनकर पुनः विजयादि विमानोंमें उत्पन्न होता है। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य होता है और वहांसे फिर मोक्ष चला जाता है किन्तु भव सामान्यकी अपेक्षा यहां पर द्विचरमपना नहीं है अन्यथा दो मनुष्यभव और एक देवभव इस प्रकार तीन चरम देहपना सिद्ध होगा दो चरम देहपना सिद्ध न होसकेगा।

विजयादिभ्य॥ च्युता॥ (२)अप्रतिपतितसम्यक्त्वा॥ — =विजयादिक (तेरह) विमानोंसे चयकर (निकलकर) अप्रतिपतित सम्यग् दर्शनवाले अर्थात् क्षायिकसम्यग् दर्शन सहित

मनुष्येषु॥ उत्पद्य + संयमम्॥ आराध्य(३) + पुनः॥ विजय — =मनुष्योंमें उत्पन्न होकर संयमको धारणकर फिर विजय

आदिषु॥ उत्पद्य(३) + ततः॥ च्युता॥ पुनः॥ मनुष्यभवम्॥ — =आदिक (विमानोंमें) उत्पन्न होकर वहांसे च्युत होते हैं। फिर मनुष्यजन्मको

(३)अवाप्य + सिद्ध्यन्ति॥ इति॥ द्विचरमदेहत्वम्॥ — =प्राप्त होकर मोक्ष जाते हैं। इस प्रकार दो चरम अर्थात् दो अन्तिम देहपना है

आह॥ जीवस्य॥ औदयिकेषु॥ भावेषु॥ तिर्यग्योनिगतिः॥ — =(शिष्य) पूछता है कि जीवके औदयिक भावोंमें तिर्यञ्चगति

औदयिकी॥ इति॥ उक्तम्॥ पुनः॥ च॥ स्थितौ॥ — =औदयिकीपनेसे(दूसराअध्याय सूत्र ६में)कथित वा वर्णित है बहुरि स्थितिमेंभी(=च)

(१) देहस्य षष्ठी विभक्तिका एक वचन पुल्लिंग वा नपुंसकलिंग दोनों होसकते हैं। (२) सर्वार्थसिद्धि हस्तलिखित तथा द्वितीयावृत्तिमें, तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें 'अप्रतिपतित' शब्द है, प्रथमावृत्तिमें 'अप्रतिपातित' शब्द है, ज्ञात होता है कि भूलसे छपगया है (३) उत्पद्य (= उत्पन्न होकर) आराध्य (= आराधनकर) और अवाप्य (= प्राप्त होकर) ये सम्बन्धसूचक भूत कृदन्त हैं। [४]'याभि' शब्द स्त्रीलिंग पुल्लिंग दोनोंमें अमरकोश वर्ग १६में आया है।

सर्वार्थसिद्धिप्रसंग इति चेन्न तेषा परमोत्कृष्टत्वात्। अन्वर्थसञ्ज्ञात एकचरमत्वसिद्धे ॥

सर्वार्थसिद्धि-प्रसंगः इति चेत् =सर्वार्थसिद्धि (विमानवासी) ग्रहण हुआ ऐसा सन्देह (शिष्यकी ओरसे) है अर्थात् आचार्यके उत्तर देने पर कि विजय आदिक चेरह विमानोंमें सम्यग् दृष्टिके अतिरिक्त कोई जीव जन्म धारण नहीं करता है शिष्यने यह संदेह किया कि ऐसा करनेमें सर्वार्थसिद्धि का विमान भी ग्रहण होजाता है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानमें बसनेवाले देव भी तो अहमिन्द्र ही हैं और सम्यग् दृष्टि ही हैं (उत्तर)

न तेषाम् परम उत्कृष्टत्वात् =नहीं तिन)सर्वार्थसिद्धिवासी देवों का(ग्रहण)परम उत्कृष्ट होने(के कारण)से (यहांपर) हुआ (क्योंकि सर्वार्थसिद्धि अर्थात् जहां सम्पूर्ण अभ्युदयके अर्थ सिद्धि होगये हैं ऐसी)

अन्वर्थ-सञ्ज्ञात =सार्थक संज्ञा या जैसा नाम है वैसा अर्थ वाची संज्ञा होनेसे

एकचरमत्वसिद्धेः॥ =एक (मनुष्य)देहके अन्तपनेसे (चरमत्व) सिद्ध होवे है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर मनुष्यका एक शरीर धारणकर मोक्ष पावें हैं। इस समस्त प्रश्न और उत्तरका भावार्थ यह है कि शङ्का करनेपर कि अहमिन्द्र और सम्यग्दृष्टी तो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी भी देव हैं। यदि यहां पर चकारका अर्थ यह कियाजायगा कि जो वैमानिकदेव अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टि हों वे द्विचरम (=दो भव धारणकर मोक्ष जाते) हैं तबतो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंको भी दो मनुष्य भव धारण करके पीछे मोक्ष माननी पड़ेगी क्योंकि अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टी वे भी हैं। परन्तु उ हे शास्त्रमें एक चरमी (=एक भव धारणकर मोक्ष जानेवाला माना) है इसलिये चकार शब्दका जो अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टि अर्थ माना है यह अयुक्त है)। उत्तरमें कहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव परमोत्कृष्ट हैं। जहां पर सर्व प्रयोजनोंकी सिद्धि हो वह सर्वार्थसिद्धि है। यह सर्वार्थसिद्धि शब्दका अन्वर्थरूपसे अभिप्राय है। सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके किसी प्रयोजनीय कार्य सम्पादन करनेवाला कर्म शेष नहीं रहता जिससे वे दो मनुष्य भव धारणकर मोक्ष जायं अतः भावार्थ वे एकही मनुष्य भव धारण करते हैं और वहांसे मोक्ष चले जाते हैं अत उनके एक चरमपनाही है द्विचरमपना नहीं है॥

सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणी (जो तीर्थंकरके जन्म समय प्रसूत गृहमेंसे लाय इन्द्रको सौंपे सो सची) सौधर्म स्वर्गके चारो लोकपाल(१ सोम २ यम ३ वरुण ४ कुबेर) और सब लौकान्तिक देव अर सर्वार्थसिद्धिविमानके सब अहमिन्द्रदेव एक भव अवतारी हैं ॥

तेषा तिरश्चा देवादीनामिव क्षेत्रविभाग पुनर्निर्देष्टव्य । सर्वलोकव्यापित्वात्तेषा क्षेत्रविभागो नोक्त ॥ आह स्थितिरुक्ता नारकाणा, मनुष्याणां तिरश्चा च। देवाना नोक्ता। तस्या वक्तव्यायामादावुद्दिष्टाना भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणा सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता॥

पुनः॥तेषाम्॥तिरश्चाम्॥देव-आदीनाम्॥इव॥	=और उन तिर्यञ्चोंका देवादिकों के समान (=इव)
क्षेत्रविभाग॥निर्देष्टव्य॥	=क्षेत्रविभाग अर्थात् जिस क्षेत्रमें तिर्यञ्च पाये जावें सो कहना चाहिये
सर्वलोक-व्यापित्वात्॥तेषाम्॥क्षेत्रविभाग॥न॥उक्त॥	=(परन्तु) सर्वलोकमें पायेजानेसे उन (तिर्यञ्चों) का क्षेत्रविभाग नहीं कहागया
आह॥स्थिति॥उक्ता॥नारकाणाम्॥मनुष्याणाम्॥	=(शिष्य) पूछता है कि आयु नारकोंकी कही गई, मनुष्योंकी
तिरश्चाम्॥च॥देवानाम्॥न॥उक्ता॥तस्याम्॥	=तिर्यञ्चोंकी भी (=च, कहीगई) देवोंकी नहीं कहीगई उसके
वक्तव्यायाम्॥आदौ॥उद्दिष्टानाम्॥भवनवासिनाम्॥	=कहनेकेआदिमें(इसअध्यायकासूत्र२,३,१०में)उपदेशकियेगयेभवनवासीदेवोंकी
स्थिति प्रतिपादन अर्थम्॥आह॥	=आयुके कहनेके लिये (आचार्य अगर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्[1]—स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणा सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥ २८ ॥

= (परा[2]) स्थिति —असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणाम्-सागरोपम त्रिपल्योपम-अर्द्धहीनं[3] इता भवति[3])

परा॥स्थिति॥असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणाम्॥	=उत्कृष्टआयु असुर कुमार, नाग कुमार, सुपर्ण कुमार, द्वीपकुमार, और
	=बचे हुए (अर्थात् विद्युत कुमार अग्नि कुमार-वातकुमार-स्तनितकुमार-उदधि कुमार दिक्कुमारों) की (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

(१) हमारे यहांके इससूत्रके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य में २९ ३० ३१ ३२ सूत्र दियेहै । उनमें 'स्थितिः' यह २९ वां सूत्र अधिकारसूत्रहै

(२) तेतीसवां सूत्रके 'अपरा' शब्दको देखनेसे जिस सूत्रसे अठ्ठतीसवां सूत्रतक जघन्य स्थितिका कथनहै और विशेषत ३७वां सूत्रपर दृष्टिकरनेसे जिसमें भवनवासी देवोंकी जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्षकी वर्णित है यह आशय झलकता है कि इस २८ वां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन है अतः मैंने इस सूत्रमें 'परा' (=उत्कृष्ट) शब्दको जोड़कर अर्थ किया है 'अपरा' का प्रतिकूल परा है ॥

(३) हीनमिता स्मरण रहे कि इता शब्द का अर्थ प्राप्त ऐसा है और मिता' शब्दका अर्थ परिमित' मापा हुआ (पद्मचन्द्रकोश ■ ८६) है ॥ यहां पर'हीनमिता'=हीनम् इता ऐसा पदच्छेदहै नकि हीन-मिता क्योंकि इताका प्रथमा विभक्ति-एकवचन स्त्रीलिंगहै उसका अन्वय'स्थिति'शब्दके साथहै।

तिर्यग्योनिजाना चेति । तत्र न ज्ञायते के [1]तिर्यग्योनय ? इत्यत्रोच्यते—

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

औपपादिका उक्ता देवनारका । मनुष्याश्च निर्दिष्टा । प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या इति । एभ्योऽन्ये संसारिणो जीवा शेषास्तिर्यग्योनयो वेदितव्या ॥

तिर्यग्योनिजानाम् च इति तत्र न ज्ञायते	='तिर्यग्योनिजानां च' ऐसे (अध्याय ३ सूत्र ३९ वांमें) यहां नहीं बतलायागया है कि
के तिर्यग्योनय इति अत्र उच्यते	=तिर्यग्योनिवाले कौन हैं इसलिये यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

सूत्रम्— [2]औपपादिकमनुष्येभ्य शेषास्तिर्यग्योनय ॥ २७ ॥

= औपपादिकमनुष्येभ्य शेषास्तिर्यग्योनय (भवन्ति) ॥ २७ ॥

सूत्रार्थ —औपपादिकमनुष्येभ्य शेषा	=उपपादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् अध्याय २ सूत्र ३४वां में उक्त देव तथा नारकीजीव और तीसराअध्यायके ३५वां सूत्रमें वर्णितमनुष्योंसेभिन्न अवशेष
तिर्यग्योनय भवन्ति	=तिर्यञ्च योनिज होते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इससत्ताईसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

औपपादिका उक्ता देवनारका	=उत्पादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले देव, व नारकी अध्यायदो सूत्र ३४में कहेगये हैं
मनुष्या च निर्दिष्टा प्राङ् मानुषोत्तरात् मनुष्या इति	=और मनुष्य भी कहेगये हैं कि मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले मनुष्य हैं (अध्याय तीसरेका सूत्र ३५ वां देखो)
एभ्य अन्ये संसारिण जीवा शेषा	=इन (देव नारकी तथा मनुष्यों) से भिन्न संसारी जीव शेष
तिर्यग्योनय वेदितव्या	=तिर्यञ्चयोनिवाले जानने चाहिये । (एभ्यः पंचमी बहु वचन पुल्लिंग इदम्का है)

[1] 'योनि' शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनोंमें "अमरकोश" वर्ग १९ श्लोक ३९ में है परन्तु यहां बहुवचन पुल्लिंग में है अतः 'योनयः' भी बहुवचन पुल्लिंगमें है । [2] श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में "औपपादिक" शब्दके स्थानमें औपपातिक है। शेषपाठ दोनों आम्नायोंमें एकही अर्थमें एकसा है।

शेषाणां पयणामध्यर्द्धपल्योपमम् ॥

आद्यदेवनिकायस्थित्यभिधानादनन्तर व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्ते सति तदुल्लंघ्य वैमानिकाना स्थितिरुच्यते। कुत ?तयोरुत्तरत्र लघुनोपायेन स्थितिवचनात् ॥ तेषु चादावुद्दिष्टयो कल्पयो स्थितिविधानार्थमाह—

शेषाणाम् पयणाम्	=बचे हुए छह (विद्युत कुमार अग्नि कुमार-वात कुमार-स्तनितकुमार-उदधिकुमार दिक्कुमारों) की (स्थिति)
अध्यर्द्धपल्योपमम्	=आधी अधिक सहित एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़ पल्य प्रमाण है
आद्य-देव-निकाय-स्थिति अभिधानात् अनन्तरम्	=प्रथम अर्थात् भवन वासी देवोंके समुदायकी स्थितिके कहनेसे अत्यन्त समीप
व्यन्तर-ज्योतिष्क स्थिति-वचने क्रमप्राप्ते सति	=व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी आयुके कथन (वचन) विषैं क्रम प्राप्त होने पर
तत् उल्लंघ्य वैमानिकानाम् स्थितिः उच्यते	=उस (क्रम)को छोड़कर वा त्यागकर वैमानिक देवोंकी आयु कही जाती है
कुतः ? तयोः उत्तरत्र	=(प्रश्न)क्योंकरउन(व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवों)की(स्थिति)यहांसेआगे(कहीजायगी)
लघुना-उपायेन	=(उत्तर) लघुकरणद्वारा वा लघुसाधनद्वारा (उन व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी)
स्थिति-वचनात्	=स्थितिका कथन होगा अर्थात् अग्रिमसूत्रोंमें वर्णन करेंगे जो सूत्र उनसे पहिले सूत्रोंसे अनुवृत्ति लेनेके निमित्तसे लघुहोंगेदेखो ३८ ३९ ४० ४१सूत्र जो कितने लघु हैं और जिनसे स्पष्ट है कि यदि व्यन्तर ज्योतिषियोंकी स्थिति २८वांसूत्र के अनन्तर कहते तो इन सूत्रोंकी इतनी लघु रचना कदापि नहीं होसकती थी
तेषु च आदौ उद्दिष्टयोः कल्पयोः	=और तिन (वैमानिक देवों) विषैं आदिमें कहे हुए (सौधर्म और ऐशान) स्वर्गोंमें
स्थिति-विधान अर्थम् आह	=आयुके नियम के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

भवनेषु दक्षिणार्धाधिपतीनां पल्योपममध्यर्धम् ॥ १० सूत्र ॥ (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ११५ से उद्धृत)

भवनेषु, दक्षिणार्धाधिपतीनाम्	=भवनवासी (देवों) में दक्षिणार्धाधिपति (देव) जिनका अर्थात् विद्युत अग्नि स्तनित और द्वीप कुमारों की
पल्योपमम् अध्यर्धम्	=अर्ध अधिक (साध) एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़पल्य प्रमाण[परा स्थिति-उत्कृष्ट स्थिति] है ॥१०सूत्र॥

असुरादीना सागरोपमादिभिर्यथाक्रममत्राभिसम्बन्धो वेदितव्य ॥ इय स्थितिरुत्कृष्टा । जघन्याऽप्युत्तरत्र वक्ष्यते ॥ तद्यथा-असुराणा सागरोपमा स्थिति । नागाना त्रिपल्योपमा स्थिति सुपर्णानामर्द्धतृतीयानि । द्वीपाना द्वे ।

सागरोपम-त्रिपल्योपम अर्धहीनम्॥ हता॥	=एक सागर प्रमाण-तीन पल्यप्रमाण उससे आधी आधी पल्य प्रमाण घाटि तीनस्थानमें =प्राप्त है (हीनम्-हता॥भवति) अर्थात् उत्कृष्ट आयु असुर कुमारों की एक सागर है, नाग कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यहै, सुपर्ण कुमारोंकी उत्कृष्ट आयु ढाई पल्य है, और द्वीप कुमारोंकीउत्कृष्ट आयु दो पल्यहै,शेष छह विद्युत्कुमारोंकी-अग्निकुमारोंकी-वात कुमारोंकी-स्तनित कुमारोंकी,उदधिकुमारोंकी दिक्कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति डेढ़ डेढ़पल्य है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवा[1] सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

असुरादीनाम्॥सागरोपमादिभि॥यथाक्रमम्॥अत्र॥	=असुरादिकोंका सागर प्रमाणादिक गणनाकरि क्रमसे यहां
अभिसम्बन्ध॥वेदितव्य॥इयम्॥स्थिति॥उत्कृष्टा॥	=सम्बन्ध जानना चाहिये । यह आयु उत्कर्ष है
जघन्या॥अपि॥उत्तरत्र॥वक्ष्यते तद्यथा॥असुराणाम्॥	=जघन्य (स्थिति) भी यहांसे आगे (सेतीसवांसूत्रमें) कहेंगे । जैसे असुर कुमारोंकी
सागरोपमा॥स्थिति॥नागानाम्॥त्रिपल्योपमा॥स्थिति॥	=सागर प्रमाण आयु है । नाग कुमारोंकी तीन पल्य प्रमाण आयु है
सुपर्णानाम्॥अर्द्धतृतीयानि॥द्वीपानाम्॥द्वे॥	=सुपर्ण कुमारोंकी ढाई (पल्यप्रमाण आयु)है द्वीप कुमारों की दो(पल्योपम) आयु है

---

(१)हमारे यहांके इस अट्ठाईस[२८]वां सूत्रमें स्थिति शब्द जो आदिमें आयाहै उसको श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें उन्तीसवांसूत्र माना है और उसका तात्पर्य यह है कि इस सूत्रसे अध्याय के अन्त [illegible] देवोंकी स्थिति का कथन करेंगे अर्थात् उनके यहां यह अधिकार सूत्र है और प्रयोजन यह है कि अग्रिमके सर्व सूत्रोंमें अध्यायके अन्ततक 'स्थिति' शब्दको प्रत्येक सूत्रमें लगाना। मेरी समझमें यह विधान ठीक है क्योंकि ऐसा माननेमें कोई अक्षर और शब्द अधिक नहीं होता और दो बातें प्रगट होजाती हैं प्रथम यह कि यहांसे इस अध्यायके अन्ततक सब आयुका ही प्रकरण है और दूसरी बात यह कि इस स्थिति शब्दकी अनुवृत्ति सर्व सूत्रोंमें इस सूत्रसे अध्याय पर्यंत लीजाती है। दिगम्बर आम्नायके इस अट्ठाईसवां सूत्रमें दश भवनवासी देवोंकी आयु वर्णित है वेही स्थितियें कुछ भेदके साथ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित तीन सूत्रोंमें उन्हीं दश भवन वासी देवोंकी आयुका कथन किया गया है।

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे [1]अधिके ॥ २९ ॥

सूत्रम्—सौधर्मैशानयो सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥
= (परा-स्थिति सूत्र २८वा से) सौधर्म-ऐशानयो सागरोपमे अधिके (भवति)

श्वेताम्बर आम्नायके समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके २९-३०-३१ ३२ और हमारे यहांके २८ वां सूत्रका मिलाकर विचार पूर्वक पढ़नेसे भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भेद दोनों सम्प्रदायोंमें निम्न सूचीसे भले प्रकार विदित होता है ॥ जैसे

भवन वासी देवका नाम ॥	श्वेताम्बरआम्नायके अनुसार उत्कृष्टस्थिति	दिगम्बरआम्नायके अनुकूल उत्कृष्ट आयु	सूचना
(१) असुर कुमार	एक सागर प्रमाण } समाप्य०	एक सागर प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	दोनों सम्प्रदायोंमें असुर कुमारकी आयु एक सागर प्रमाण है और विद्युत्कुमार अग्निकुमार स्तनितकुमार की आयु डेढ़ डेढ़ पल्यकी है अवशेष छह कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें दोनों सम्प्रदायोंमें भेद है जैसाकि सूची से प्रगट है ॥
(२) नाग कुमार	एकसागरप्रमाणसेकुछअधिक } सम०भाष्य	तीन पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(३) विद्युत्कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण समाप्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(४) सुपर्ण कुमार	पौने दोपल्य प्रमाण समाप्य०सूत्र३१देखो	ढाई पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(५) अग्नि कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण समाप्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(६) वात कुमार	पौने दोपल्य प्रमाणसमाप्य० सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(७) स्तनित कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण समाप्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(८) उदधि कुमार	पौने दोपल्य प्रमाण समाप्य०सूत्र३१ देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(९) द्वीप कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण समाप्य० सूत्र ३० देखो	दो पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(१०) दिक्कुमार	पौने दोपल्य प्रमाण समाप्य०सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	

(१) दिगम्बर आम्नायमें सर्वार्थसिद्धि पुस्तिके दोनों संस्करणोंमें 'अधिके' पाठ है हस्त लिखित प्रतिमें ऽधिके पाठ है अन्य अन्य पुस्तकोंमें कहीं कहीं पर अधिके पाठ है और कहीं कहीं पर ऽधिके पाठ भी है दोनों पाठ ठीक हैं देखो इस अनुवाद का अध्याय १ पृष्ठ १० की टिप्पणी (२) तेतीसवां सूत्रमें सौधर्म ऐशान स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति कही है और इस तेतीसवां सूत्रकी आदिमें 'अपरा' शब्द आये हैं इससे स्पष्ट है कि इस सूत्र में उपर्युक्त दोनों स्वर्गोंकी ही उत्कृष्ट स्थिति कही है और परा शब्द का आवश्यकता से अध्याहार करना योग्य है ॥ अतः हमने परा शब्द जोड़ा है ।

समाध्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ११ वां सूत्रमें (=हमारे यहांके इस १० वां सूत्रके) कथित दो दो भवनवासी इन्द्रोंमेंसे पर्व पूर्वका इन्द्र दक्षिणार्धाधिपति कहलाता है और दूसरा उत्तरार्धाधिपति है [समाध्य० पृष्ठ ११५ सेउद्धृत]। तात्पर्य ऐसा है कि इस भवनवासियोंमेंसे समाध्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित ३२ वां सूत्रमें वर्णित असुर कुमारेन्द्र और नाग कुमारेन्द्रको निकालकर जिनकी उत्कृष्टस्थिति अनुक्रमसे सागरोपम और कुछ अधिक सागरोपम है। समाध्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके तीसवां सूत्रके अनुकूल शेष चार विद्युत कुमार दक्षिणार्धाधिपति की डेढ़ पल्योपम परास्थिति है। अग्निकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है स्तनितकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है द्वीपकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है ॥

शेषाणा पादोने ॥ ३१ वा सूत्र ॥ (समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत)

शेषाणां।।पाद-ऊने।।। =(भवनवासियोंमेंसे) बचे हुए उत्तरार्धाधिपतियोंकी एक पाव से हीन दो अर्थात् पौन दो (पल्योपम परास्थिति है) भावार्थ ऐसा है कि चार सुपर्ण कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति है वात कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट आयु है उदधिकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट अवस्था है, दिक्कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौनदोपल्योपम अधिकसे अधिक स्थिति है ॥

असुरेन्द्रयो सागरोपममधिकं च ॥३२ वा सूत्र समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५सेउद्धृत

=असुरेन्द्रयोस्तु दक्षिणार्धाधिपत्युत्तरार्धाधिपत्यो सागरोपममधिकं च यथासरव्यं परास्थितिभवति

तु०दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपत्यो।।।असुरेन्द्रयो।।। =और दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपति दोनों असुरेन्द्रों की

सागरोपमम्।।अधिकं।।च०यथासंख्यम्०परा।।स्थिति।। =एक सागर प्रमाण और [च] कुछ अधिक सागर प्रमाण क्रम से उत्कृष्ट आयु

भवति। =होती है अर्थात् असुर कुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी उत्कृष्ट आयु एक सागर प्रमाण है औरनागकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी अधिकसे अधिकस्थिति कछअधिक एकसागर है ॥

ये सब दशों "कुमारोंके समान रमणीय दर्शन सुकुमार, मृदु मधुर तथा ललित गतिवाले भगार सहित सुन्दर रूप विक्रिया युक्त होते हैं। और कुमारोंके तुल्य उद्धतरूप वेष भाषा आभरण, प्रहरणावरणादि प्रहरण वस्त्र तथा यान वाहनादि युक्त होते हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त अर्थात् स्पष्टराग क्रीडामें तत्पर रहता है अतएव इन्हें कुमार कहते हैं। इनमें असुर कुमार असुर कुमारके आवासमें रहते हैं और शेष भवनोंमें निवास करते हैं। महामन्दरके दक्षिण और उत्तर दिग्विभागोंमें अनेक लाख योजन कोटी कोटीयोंमें असुर कुमारोंके आवास हैं और भवन भी दक्षिणार्धाधिपतियोंके और उत्तरार्धाधिपतियोंके यथार्थ हैं। वहां रत्नप्रभामें ऊपर भागके अर्ध मध्यमें प्रवेश करके मध्यमें भवन हैं। भवनोंमें जो रहते हैं उन्हें भवनवासी कहते हैं। समाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र के पृष्ठ ६९ से उद्धृत ॥

। इदं तु कुतोज्ञायते ? उत्तरत्र तुशब्दग्रहणात । तेन सौधर्मेशानयोर्देवाना द्वे सागरोपमे सातिरेके प्रत्येतव्ये ॥ उत्तरव्यो स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

(१ आ॰इदम्१।।। तु॰	=(प्रश्न) तो (=तु) यह 'आ' अर्थात् 'आ' सहस्रारात् आचार्य सहस्रार तक 'अधिके' का अधिकार है ॥
कुतः॰ज्ञायते। उत्तरत्र॰तुशब्दग्रहणात्५।।।	=क्योंकर जानाजाता है(उत्तर)यहांसे आगे (इकतीसवां सूत्रमें) 'तु' शब्दकेआनेसे
तेन३ सौधर्म-ऐशानयोः७ देवानाम्६ द्वे१।।। सागरोपमे१।।।	=तिससे सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें देवोंके दो सागर प्रमाण
सातिरेके१।।। प्रत्येतव्ये१।।।	=अधिक सहित जानना चाहिये अर्थात् 'सौधर्मैशान में दो सागरसे कुछअधिकहै
उत्तरयोः७ स्थिति-विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम्१।।। आह।	=(सौधर्म ऐशानसे)अगले दो (स्वर्गों)में आयुका विशेष जाननेके लिये कहतेहैंकि

सम्मे१।।। घाते१।।। ऊर्णं१।।। (=सम्यक्त्वे७।।। घाते७।।। ऊनम्१।।।)	=सम्यक्त्व (अवस्था) में घातायुष्क विषैं (अन्तर्मुहूर्त)न्यून
सागर-दलम्१।।। अहियम्१।।। (=सागर-दलम्१।।। अधिकम्१।।।)	=आधे (=दल) सागर (आयु प्रथम युगल से) अधिक
आ॰सहस्सारा१ [आ॰सहस्रारात्५।] इति॰वचनात्५।।।	=सहस्रार तक (कीपृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होतीहै। ऐसा(वाक्यउपयुक्तआया)है

इस सबका भावार्थ यह है कि पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयु का बंध अधिक किया था पश्चात् संक्लेश परिणामोंके वशसे आयु घटाय थोड़ी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दश सागर प्रमाण बंध किया। फिर उसही मनुष्यभवमें संक्लेश परिणामोंके बंधमेंसे आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ऐशानमें आय उपजा सो घातायुष्क है। सो अन्य देवोंकी अपेक्षा दो सागर प्रमाण आयुसे अंतमुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावे है ॥ आयु का घात दो प्रकार है एक अपवर्तन घात दूजा कदली घात तहां बध्यमान आयु का घटावना सो अपवर्तन घात है अर भुज्यमान आयुका घटावना कदली घात है। देवोंमें कदली घात संभव नहीं है ॥

[१] सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकीद्वितीयावृत्तिमें और हस्तलिखित पुस्तकोंमें'आ नहीं है प्रथमावृत्तिमें'आ'है दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि इदम् आ और इदम् का वोही अर्थ है ॥ कई संख्याओं (जैसे विंशति त्रिंशत् चत्वारिंशत् इत्यादि) के अतिरिक्त विशेष्य और विशेषणके कारक, वचन लिंग एकहीहोते हैं इसलिये 'इदम्' के साथ 'आ' की विभक्ति लिंग और वचन भी वही होना चाहिये। 'आ' अव्यय है और अव्यय वह शब्द है जो तीनों लिंग सातों विभक्ति और सब वचनोंमें विकार या रूप को परिवर्तन को प्राप्त न हो ॥ जैसा कि कहागया है कि सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम् =जो[शब्द] समान तीन लिंगोंमें, और (=च) सब [सातों] विभक्तियोंमें और (=च) सब [तीनों) वचनोंमें विकारको प्राप्त नहीं होता है वह अव्यय है ॥

सागरोपमे इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगतिः । अधिके इत्ययमधिकारः । आ कुतः ? आ सहस्रारात्

'सूत्रार्थ – परा॥स्थिति॥(सूत्र २८ वां से उद्धृत) =उत्कृष्ट स्थिति अथवा आयु
सौधर्म ऐशानयोः॥सागरोपमे॥अधिके॥ ॥२६॥ =सौधर्म ऐशान (स्वर्गों) में दो सागर प्रमाण और कुछ अधिक है ॥२६॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिन्दी अनुवाद

सागरोपमे॥इति॰द्वि-वचन-निर्देशात्॥द्वित्व-गतिः॥ =(इस २६ वां सूत्र में) 'सागरोपमे' ऐसे दो वचनके कथनसे दोकी प्राप्ति(=गति) है
अधिके॥इति॰अयम्॥अधिकारः॥आ॰कुतः॰? =(सूत्रमें) 'अधिके' ऐसा यह प्रकरण है ॥ कहां तक (=आ) ('अधिके' शब्दका विषय है)
आ॰[1]सहस्रारात्॥ =(उत्तर) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) तक (=आ) ('अधिके' शब्द का अधिकार है)

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में इस सूत्रका अलग अलग तात्पर्य नीचे के तीन सूत्रमें ऐसे दिया है कि सौधर्मादिषु यथाक्रमम् ॥३६॥ अर्थात् सौधर्मादिक (स्वर्गोमें) क्रमानुसार परा (उत्कृष्ट) स्थिति कहेंगे ॥ सागरोपमे ॥४०॥ अर्थात् सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो सागर प्रमाण है ॥ अधिके च ॥४१॥ अर्थात् और (=च) कुछ अधिक दो सागर प्रमाण ऐशान कल्पके देवोंकी स्थिति है। हमारे यहांके इस सूत्रके अर्थमें और श्वेताम्बर आम्नायके उक्त तीन सूत्रोंके तात्पर्यमें यह भेद हुआकि हमारे यहां सौधर्म स्वर्गके देवोंकी आयु कुछ अधिक दो सागर प्रमाण मानी है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें केवल दो सागर है ऐशान स्वर्गके देवोंकी स्थिति दोनों आम्नायों में एकसी है अर्थात् दो सागरसे कुछ अधिक है

(२) आङ् (=आ) अव्यय अव्ययप्रगृह्य (=व्याकरणमें स्वरसन्धि न होने योग्य पद जैसे आ एवं मन्यसे ओह तुम ऐसा मानते हो) यहां चार अर्थोंमें आता है (i) थोड़ा-जैसे-आ+उष्णम्=ओष्णम्=थोड़ा तप्त (ii) जब क्रिया के प्रथम आता है तब निकटके अर्थमें और चलना लेना देना इत्यादि क्रियापदोंके साथमें उक्त क्रियाओंके प्रतिकूल अर्थों का द्योतक होताहै जैसे गच्छति वह जाता है आगच्छति वह=आता है ददते=वह देता है आदत्ते वह लेता है ॥ (iii) मर्यादा (जो सीमा कहीजाय उसके बाहर बाहर) (iv) अभिविधि अर्थमें (जा सामा कही जाय उसको मिलाकर देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ७१ की टिप्पणी चार) जहां तक मेरा ज्ञान है उमास्वामीने इस चौथे अर्थमें सर्वत्र प्रयोग किया है यथा अध्याय १ सूत्र १० अध्याय २ सूत्र ४१, अध्याय ४ सूत्र ७, अध्याय ४ सूत्र ९ अध्याय ३ सूत्र १७, अध्याय ६ सूत्र २७, अध्याय १० सूत्र ४ इसी अर्थमें यहां आ सहस्रारात् वाक्यमें पूज्यपाद स्वामीने प्रयोग किया है अर्थात् सागरो से 'कुछ अधिक' आयुका सम्बन्ध 'सहस्रार स्वर्गको समावेश, वा अन्तर्गत करते हुये है ॥

घातायुष्कसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया किञ्चिदूनार्ध सागरोपममधिकंभवति सौधर्मकल्पात्सहस्रारपर्यन्तम् ॥ सम्यगुपादेऽरूपंसायरत्तममदियमायसहस्सारा इति वचनात् ॥

घात-आयुष्क-सम्यग्दृष्टि अपेक्षया॥ =सम्यग्दृष्टि जीवकी विवक्षासे घातायुष्क अर्थात् पूर्व भवमें विशुद्ध परिणामोंसे बंधीहुई आयुका पश्चात् संक्लेश परिणामोंसे घटिजाना अथवा न्यून हाजाना
किञ्चित्-ऊन अर्ध सागरोपमम्॥अधिकम्॥ =कुछकम (अर्थात् अन्तर्मुहूर्त आदि) आधे सागर प्रमाण अधिक
सौधर्म कल्पात्॥सहस्रारपर्यन्तम्॥भवति॥ =सौधर्मस्वर्गसे सहस्रार तक (की पृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होता है—(क्योंकि)

त्रि-सप्त-नव-एकादशभिः॥॥अधिकानि॥॥ (३१ सूत्रसे[१])=तीन-सात नौ-ग्यारह अधिक सहित (=अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)
सप्त॥सागरोपमाणि॥(३०वांसूत्रसे)अधिकानि(२९वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण और कुछ अधिक
परा॥।स्थिति॥' (२८ वां सूत्रसे) [२]ब्रह्मब्रह्मोत्तर =उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य या अनुक्रमसे) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर
लान्तवकापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र शतारसहस्रारेषु॥ =लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार (स्वर्गों) में है अर्थात्

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवें और छठवां स्वर्गोंमें उत्कृष्टआयु कुछ अधिक (सात+तीन) दश सागर प्रमाण (प्रत्येकमें) है। लान्तव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां कल्पमें उत्कर्ष आयु कुछ अधिक (सात+सात) चोदह सागर (प्रत्यकमें) है। शुक्र नववां स्वर्ग, महाशुक्र दशवां स्वर्गमें उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक (नव+सात) सोलह सागर (प्रत्यकमें) है। शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्गमें उत्कर्ष स्थिति कुछ अधिक (ग्यारह+सात) अठारह सागर प्रमाण प्रत्यक में है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र और शतार ये चार स्वर्ग नहीं हैं उनके यहां कवल १२ स्वर्ग मान हैं हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं ॥

[३]तु॥त्रयोदश-पञ्चदशभिः॥अधिकानि॥॥(३१वांसूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात् कुछअधिक स्थितिको छोड़कर तेरह पंद्रहकरि अधिक सहित
सप्त-सागरोपमाणि(३०वांसूत्रसे)परा॥।स्थिति॥॥(२८वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

सूत्रसे विदित है। माहेन्द्र कल्पमें दोनों आम्नायके अनुकूल एकसी स्थिति उत्कृष्ट है अर्थात् सात सागरसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक है॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायक 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इससूत्रके स्थानमें ऐसा सूत्र है 'विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि च' ३७ हमारे यहांके इकतीसवां सूत्रसे इस सैंतीसवां सूत्रमें विशेष शब्द अधिक है नव के स्थान में दश है 'तु' के स्थानमें 'च' है। शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है॥ दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रस इस सूत्रमें सप्त शब्द की अनुवृत्ति आती है। इसलिये 'विशेष' =विशेष+अधिकानि इसमें सप्त अनुवर्त मानाको जोड़कर विशेष+अधिक+सप्त इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अधिक माहेन्द्र स्वर्गके देवोंकी है सो हमारेयहांकी आयुसमिलती है॥

(२) ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र-शतार सहस्रारेषु ये शब्द (यह देखकर कि २९ वां सूत्रमें सौधर्मैशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें सानत्कुमार माहेन्द्रयोः इन स्वर्गोंके आचार्य ने नाम लिये हैं) अध्याहार किये गये हैं अथवा यों समझकि इस अध्यायके १९ वां सूत्र से ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ-शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारेषु अनुवर्तते हैं॥

(३) 'तु' शब्द अव्यय है यहांपर परन्तु किन्तु के अर्थात् भेद के अर्थमें प्रवर्तता है कभी वाक्यके पहिले नहीं आता है जिस अथवा जिन शब्दोंसे सम्बन्ध रखता है उसके अथवा उनके पश्चात् आता है जैसे यहां पर इस सूत्रके स्पष्टताके लिये मैंने 'तु' का उन शब्दोंसे (क) प्रथम रखदिया है जिनसे इसका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौधर्म स्वर्गसे सहस्रार तक उत्कृष्ट आयुसे कुछ अधिक आयु है आगे भेद (=तु) यह है कि पूरे पूरे सागरों की उत्कृष्ट स्थिति है 'स+अधिक नहीं है॥

॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अनयो कल्पयोर्देवाना सप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थिति ॥

ब्रह्मलोकादिष्वच्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

सूत्रम्—सानत्कुमार माहेन्द्रयो सप्त ॥३०॥ = सानत्कुमार-माहेन्द्रयो सप्त सागरोपमाणि (४ अध्याय-सूत्र २९ से) अधिकानि (४ अध्याय सूत्र-२९ से) परास्थिति (४ अध्याय सूत्र २८ से) भवति

---

(१)सानत्कुमार-माहेन्द्रयो सप्त सागरोपमाणि अधिकानि = सानत्कुमार (तीसरे) और (माहेन्द्र (चौथे स्वर्गों) में सात सागर प्रमाण
परा स्थिति = और कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है ॥
वृत्त्यनुवाद—अनयो कल्पयो देवानाम् = इन दो (सानत्कुमार और माहेन्द्र) स्वर्गों में देवों की
सप्त-सागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थिति = सात सागर प्रमाण अधिक सहित उत्कृष्ट आयु है (=सातसागरसे अधिक है)
ब्रह्म-लोकादिषु अच्युत-अवसानेषु स्थिति-विशेष = ब्रह्मलोकादिकमें (और) अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) पर्यन्तविषे आयुकाविशेष
प्रतिपत्ति-अर्थम् आह = जानने के लिये आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(२)सूत्रम्—त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

(यह सूत्र इतना सार गर्भित है कि बहुत सी अनुवृत्तियों अथवा अध्याहार द्वारा इसका अर्थ पूरा करनेके लिये पहिले पहिले इससूत्र के दो भाग करके अनुवाद शब्दश करना पड़ा है, दूसरे यह कि भले प्रकार समझाने के लिये इस सूत्रकी (में) पूर्ण रूप से अनुवृत्तियों को लाकर और शब्दोंका अध्याहार करके छह सूत्रोंमें इस सूत्रको बांट दिया है)

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायक समाप्यतस्वार्थाधिगम सूत्र में सप्तसानत्कुमारे ॥३६॥ यह सूत्र है —सानत्कुमार कल्पके देवोंकी सात सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है हमारे यहां इस तीसरा स्वर्ग सानत्कुमार स्वर्गमें उत्कृष्ट आयु सात सागरसे कुछ अधिक है। माहेन्द्र कल्पमें भी हमारे यहां उत्कृष्ट आयु सात सागर प्रमाणसे कुछ अधिक है। इतनी ही स्थिति माहेन्द्र स्वर्गमें श्वेताम्बरआम्नायक समाप्यतस्वार्थाधिगमसूत्रके ३७ वां

त्रि-सप्त-नव-एकादशभिः॥ अधिकानि॥ (३१ सूत्रसे[१])=तीन-सात-नौ-ग्यारह अधिक सहित (=अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)
सप्त॥सागरोपमाणि॥(३०वांसूत्रसे)अधिकानि(२९वांसूत्रसे) =सात सागर प्रमाण और कुछ अधिक
परा॥स्थितिः॥ (२८ वां सूत्रसे) [२]ब्रह्मब्रह्मोत्तर =उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य या अनुक्रमसे) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर
लान्तवकापिष्ठ शुक्रमहाशुक्र-शतारसहस्रारेषु॥ =लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार (स्वर्गों) में है अर्थात्

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवें और छठवां स्वर्गोंमें उत्कृष्टआयु कुछ अधिक (सात+तीन) दश सागर प्रमाण (प्रत्येकमें) है। लान्तव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां कल्पमें उत्कर्ष आयु कुछ अधिक (सात+सात) चौदह सागर (प्रत्येकमें) है। शुक्र नवमां स्वर्ग, महाशुक्र दशवां स्वर्गमें उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक (नव+सात) सोलह सागर (प्रत्येकमें) है। शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्गमें उत्कर्ष स्थिति कुछ अधिक (ग्यारह+सात) अठारह सागर प्रमाण प्रत्येक में है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र और शतार ये चार स्वर्ग नहीं हैं उनके यहां केवल १२ स्वर्ग माने हैं हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥

[३]तु॥त्रयोदश-पञ्चदशभिः॥अधिकानि॥(३१वांसूत्रसे) =पर तु(=तु)अर्थात् कुछअधिक स्थितिको छोड़कर तेरह पंद्रहकरि अधिक सहित
सप्त-सागरोपमाणि(३०वांसूत्रसे)परा॥स्थितिः॥(२८वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य या अनुक्रमसे)

सूत्रसे विदित है। माहेन्द्र स्वर्गमें दोनों आम्नायके अनुकूल एकसी स्थिति उत्कृष्ट है अर्थात् सात सागरसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक है॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में इससूत्रके स्थानमें ऐसा सूत्र है विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि च"३७ हमारे यहांके इकतीसवां सूत्रसे इस सैंतीसवां सूत्रमें विशेष शब्द अधिक है नव के स्थान में दश है 'तु' के स्थानमें 'च' है। शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है॥ दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रसे इस सूत्रमें सप्त शब्द की अनुवृत्ति आती है। इसलिये विशेष' =विशेष+अधिकानि इसमें सप्त अनुवर्ती मानाके जोड़कर विशेष+अधिक+सप्त इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अधिक माहेन्द्र स्वर्गके देवोंका है सो हमारेयहांकी आयुसेमिलती है॥

(२) ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र-शतार सहस्रारेषु च शब्द (यह इसकर कि २८ वां सूत्रमें सौधर्मैशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें सानत्कुमार माहेन्द्रयोः इन स्वर्गोंके आचार्य ने नाम लिए हैं) अध्याहार किये गये हैं अथवा यों समझनाकि इस अध्यायके १९ वां सूत्र से ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ-शुक्र महाशुक्र-शतार सहस्रारेषु अनुवृत्त हैं॥

(३) 'तु' शब्द अव्यय है यहांपर परन्तु किन्तु के अर्थात् भेद के अर्थमें प्रवर्तता है कभी वाक्यके पहिले नहीं आता है जिस अथवा जिन शब्दोंसे सम्बन्ध रखता है उसके अथवा उनके पश्चात् आता है जैसे यहां पर इस सूत्रके स्पष्टताके लिये मैंने 'तु' का उन शब्दोंसे (के) प्रथम रखदिया है जिनसे उसका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौधर्म स्वर्गसे सहस्रार तक उत्कृष्ट आयुसे कुछ अधिक आयु है आगे भेद (=तु) यह है कि पूरे पूरे सागरों की उत्कृष्ट स्थिति है'स+अधिक नहीं है॥

आनत प्राणत आरण अच्युतेषु॥ =आनत, प्राणत, आरण, अच्युत (स्वर्गों) में है अर्थात् आनत तेरहवांस्वर्ग, प्राणत चौदहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कृष्ट आयु(तेरह + सात)पूरे बीस सागरकी है और आरण पन्द्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह + सात) पूरे बाईस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'तु' शब्द लाये हैं ॥

(अ) (५) इस सूत्रको छह सूत्रोंमें विभाग करके अनुवृत्तियों और अध्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

(१) त्रिभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) (२) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२९ और ३० सूत्रोंसे) =तीनकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात् दशसागरप्रमाण

स (३) अधिकानि॥ (=सातिरेकानि सूत्र २९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥ कल्पयोः॥ भवति॥ =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्गमें औरब्रह्मोत्तर छठास्वर्गमेंहोतीहै

सारांश ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है

(२) सप्तभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (३०, २९ सूत्रोंसे) =सातकरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात् १४ सागर

स-अधिकानि॥ (=सातिरेकानि-सूत्र २९ और वृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =औरकुछअधिकअर्थात् १४ सागरसेभीकुछअधिकउत्कृष्टआयु

लान्तव-कापिष्ठयोः॥ कल्पयोः॥ भवति॥ =लान्तवस्वर्ग और कापिष्ठ (प्रत्येक) कल्पमें होती है

(३) नवभिः॥ अधिकानि॥ (इसीसूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२९ और ३० सूत्रोंसे) =नौ करि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्सोलहसागर

स अधिकानि॥ (=सातिरेकानि सूत्र २९ औरवृत्ति सूत्र २९ से) परा॥ स्थितिः॥ =कुछ अधिक (=स अधिकानि) उत्कृष्ट स्थिति

शुक्र-महाशुक्रयोः॥ कल्पयोः॥ भवति॥ =शुक्र नौवां में और महाशुक्र दशवां स्वर्गमें है भावार्थ

नवमा स्वर्गमें और दशवां स्वर्ग प्रत्येक में सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति है॥

---

(१) त्रिभिः॥ = त्रि-सागरोपमैः॥ क्योंकि सागरोपम शब्द नपुंसक लिंगी है और संख्याओंमें चारतक गणनाओंका लिंगभी वही होता है जो उसके सम्बन्धवाली संज्ञा का होता है अतः त्रिभिः को नपुंसक लिंगमें रक्खा है (२) सप्तभिः इत्यादि को त्रिलिंगी इस हेतुसे रक्खा है कि पांचसे उन्नीस तक संख्यायें विशेषण मानी जासकती हैं इन संख्याओंका वचन और कारक वही होताहै जो संज्ञाका परन्तु येसंख्यायें केवल बहुवचनमेंआती हैं और तीनों लिंगों में वही अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(३) सर्वार्थसिद्धि पंक्तिके पृष्ठ ४५में 'अधिके' शब्द जो सूत्रमें आयाहै उसकी वृत्ति पूज्यपादस्वामीने स अतिरेके की है अतिरेकका अर्थ अधिकहै इसलिये सूत्र में अधिके = स अधिके ॥

(भ्र) एकादशभिः॥ अधिकानि॥ (इसीसूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२६,३० सूत्रोंसे)	=ग्यारहकरि अधिक सातसागर प्रमाण अर्थात् अठारहसागर
स अधिकानि॥ (सातिरेकानि २६सूत्र और वृत्तिसूत्र २६से) परा॥ स्थितिः॥	=(और) कुछ अधिक (स-अधिकानि) उत्कृष्ट आयु
शतार-सहस्रारयोः॥ कल्पयोः॥	=शतार स्वर्गमें और सहस्रार (प्रत्येक) स्वर्गमें है
(लृ) तु॥ त्रयोदशभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे)	=किन्तु(पर) अर्थात् कुछ अधिक स्थितिके बिना तेरहकरि अधिक
सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२६ और ३० सूत्रोंसे) परा॥ स्थितिः॥ (२८सूत्रसे)	=सात सागर प्रमाण अर्थात् पूरे बीस सागर उत्कृष्ट आयु
आनत-प्राणतयोः॥ कल्पयोः॥	=आनत स्वर्ग और प्राणत (प्रत्येक) स्वर्गमें है
(ए) तु॥ पञ्चदशभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे)	=परन्तु(=तु) अर्थात् कुछ अधिक स्थितिके बिना पंद्रहकरि अधिक
सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (३० और २६सूत्रोंसे) परा॥ स्थितिः॥ (टिप्पणीसूत्र२८)	=सातसागर प्रमाण अर्थात् पूरे बाईस सागर, उत्कृष्ट स्थिति
आरण-अच्युतयोः॥ कल्पयोः॥	=आरण स्वर्ग और अच्युत स्वर्ग (प्रत्येक) में है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

सौधर्म स्वर्गसे अच्युत स्वर्ग तक श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोक्त देवोंकी समानता और अन्तरकी सूची निम्न प्रकार है। देखो सभाष्य

दिगम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम और उनकी उत्कृष्ट स्थिति सहित।	श्वेताम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम उन स्वर्गों की उत्कृष्ट आयुस्थिति
() दो सागर प्रमाणसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु सौधर्मस्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२६)	() सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर प्रमाण है (सूत्र ४)
() कुछ अधिक दो सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति ऐशान स्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२६)	() ऐशानस्वर्गके देवोंकी उत्कृष्टस्थिति कुछअधिक दोसागर है(सू०)
() कुछ अधिकसातसागर प्रमाण उत्कर्षआयु सानत्कुमारकल्पकेदेवोंकी है (सूत्र३०)	() सानत्कुमार स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु सात सागर है (सूत्र२६)
() कुछ अधिक सातसागर प्रमाण उत्कर्षआयु माहेन्द्र कल्पके देवोंकी है (सूत्र३०)	() माहेन्द्र कल्पकेदेवोंकी परास्थिति कुछअधिक सातसागरहै(सूत्र३७)
() कुछअधिकदशसागरोपमउत्कृष्टस्थितिब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरकल्पकेदेवोंकीहै(सूत्र३१	() ब्रह्मलोक स्वर्गके देवोंकीउत्कृष्ट स्थिति दशसागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिकचौदहसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिलान्तव कापिष्ठ स्वर्गोंके देवोंकी है	() लान्तक स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु चौदह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिक सोलहसागर प्रमाण उत्कर्षआयु शुक्र महाशुक्रस्वर्गोंके देवोंकी है	() महाशुक्र कल्पके देवोंकी उत्कर्षआयु सत्रहसागर प्रमाण है (सूत्र३७)
() कुछ अधिक अठारहसागरोपम उत्कृष्टस्थिति शतारसहस्रार स्वर्गोंकेदेवोंकी है	() सहस्रार स्वर्गकेदेवोंकी परास्थिति अठारह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आनत प्राणत स्वर्गोंके देवोंकी उत्कृष्ट आयु पूरेबीस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	() आनतप्राणतस्वर्गोंकेदेवोंकीउत्कृष्टआयुबीससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आरण अच्युतस्वर्गोंके देवोंकी उत्कर्षआयु पूरेबाईस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	()आरणअच्युतस्वर्गोंकेदेवोंकीपरास्थितिबाईससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)

आनत-प्राणत-आरण अच्युतेषु॥ =आनत, प्राणत, आरण, अच्युत (स्वर्गों) में है अर्थात् आनत तेरहवांस्वर्ग, प्राणत चौदहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कर्ष आयु(तेरह + सात)पूरे बीस सागरकी है और आरण पन्द्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह + सात) पूरे बाईस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'तु' शब्द लाये हैं ॥

(अ) (॥) इस सूत्रको छह सूत्रोंमें विभाग करके अनुवृत्तियों और अध्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

(१) त्रिभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) (२) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२८ और ३० सूत्रोंसे) =तीनकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्दशसागरप्रमाण

स-अधिकानि॥ (=सातिरेकानि सूत्र २६ और वृत्ति सूत्र २६ से) परा॥ स्थितिः॥ =और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्गमें औरब्रह्मोत्तर छठास्वर्गमेंहोती है

सारांश ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है

(इ) सप्तभिः॥ अधिकानि॥ (इसी सूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (३०,२८सूत्रोंसे) =सातकरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्१४सागर

स-अधिकानि॥ (=सातिरेकानि-सूत्र २६ और वृत्ति सूत्र २६ से) परा॥ स्थितिः॥ =औरकुछअधिकअर्थात्१४सागरसेभीकुछअधिकउत्कृष्टआयु

लान्तव-कापिष्ठयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =लान्तवस्वर्ग और कापिष्ठ (प्रत्येक) कल्पमें होती है

(उ) नवभिः॥ अधिकानि॥ (इसीसूत्रसे) सप्त॥ सागरोपमाणि॥ (२८ और ३० सूत्रोंसे) =नौ करि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्सोलहसागर

स अधिकानि॥ (=सातिरकानि सूत्र२६औरवृत्ति सूत्र२८से) परा॥ स्थितिः॥ =कुछ अधिक (=स अधिकानि) उत्कर्ष स्थिति

शुक्र-महाशुक्रयोः॥ कल्पयोः॥ भवति। =शुक्र नौवां में और महाशुक्र दशवां स्वर्गमें है भावार्थ

नवमा स्वर्गमें और दशवां स्वर्ग प्रत्येक में सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति है॥

---

(१) त्रिभिः॥ =त्रि-सागरोपमे॥ क्योंकि सागरोपम शब्द नपुंसक लिंगी है और संख्याओंमें कारक गणनाओंका लिंगसी यहां होता है जो उनके सम्बन्धवाली संज्ञा का होता है अतः त्रिभिः का नपुंसक लिंगमें रक्खा है (२) सप्तभिः इत्यादि को त्रिलिंगी इस हेतुसे रक्खा है कि पांचसे उन्नीस तक संख्यायें विशेषण मानी जासकती हैं इन संख्याओंका वचन और कारक वही होता है जो संज्ञाका परन्तु येसंख्यायें केवल बहुवचनमें आती हैं और तीनों लिंगों में एक अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(३) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके पृष्ठ ५५७में 'अधिके' शब्दजो सूत्रमें आयाहै उसकी वृत्ति पूज्यपादस्वामीने स अतिरेक की है अतिरेकका अर्थ अधिकहै इसलिये सूत्र में अधिके=स अधिके ॥

तेईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दूसरेमें चौबीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, तीसरेमें पच्चीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, बहुरि मध्य ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें छब्बीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु दूसरेमें सत्ताईस सागर प्रमाण परा स्थिति, तीसरेमें अट्ठाईस सागर प्रमाण परा स्थिति है और ऊपरके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें उनतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति, दूसरेमें तीससागर प्रमाण परास्थिति, तीसरेमें इकतीस सागरप्रमाण परास्थिति है

और विमानवासी हैं जिनकी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर होसकी है। हम उसको यहांपर संस्कृत भाष्य हिंदी अनुवाद और अपना टिप्पणी सहित तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११८ से शब्दशः उद्धृत करते हैं

॥ परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थ—"माहेन्द्र स्वर्गसे परे पूर्व अर्थात् पूर्व २ स्वर्गोंमें जो परास्थिति है वह पर २में जघन्या अर्थात् अपरा स्थिति होती है ॥"

भाष्यम्—"माहेन्द्रात्परतः पूर्वा परानन्तरा जघन्यास्थितिर्भवति । तद्यथा माहेन्द्रे परा स्थितिर्विशेषाधिकानि सप्त सागरोपमाणि सा ब्रह्मलोके जघ[illegible] भवति । ब्रह्मलोके दश सागरोपमाणि परास्थितिः सा लान्तके जघन्या । एवमासर्वार्थसिद्धादिति । (विजयादिषु चतुर्षु परा स्थितिस्त्रयस्त्रिंश-त्सागरोपमाणि सा त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्ध इति)"

विशेष व्याख्या—माहेन्द्र स्वर्गसे आगे पूर्व २ की जो परास्थिति है वह पर २ अर्थात् आगे २ के स्वर्गोंमें अपरा स्थिति होजाती है। जैसे माहेन्द्र स्वर्गमें परास्थिति विशेष अधिक सात सागरोपम है यह ब्रह्मलोकमें अपरा अर्थात् जघन्या है। ऐसेही ब्रह्मलोकमें परा स्थिति दश सागरोपम है वह लान्तकमें जघन्या वा अपरा स्थिति है। इसी प्रकार पूर्व २ की परा स्थिति पर २ की जघन्या स्थिति सर्वार्थसिद्धि (१) पर्यन्त जाननी चाहिये। (२) (विजयादि चार विमानों में परा स्थिति तेंतीस सागरोपम है वह सर्वार्थसिद्धमें अजघन्योत्कृष्टा है।) ॥" अपना टिप्पणी (१) (२) तत्त्वार्थ०में ऐसे हैं कि (१) यहां पर यह मानना उचित है कि विजय आदि चार विमानोंमें परास्थिति बत्तीस सागरोपम है और सर्वार्थसिद्धमें तेंतीस सागरोपम अजघन्योत्कृष्टा है अर्थात् वहां एकही स्थिति है परा अपरा भेद नहीं है। और भाष्यकार सर्वार्थसिद्धिमें भी जघन्या बत्तीस सागरोपम है ऐसा जो कहते हैं आसर्वार्थसिद्धात् उसका अभिप्राय नहीं ज्ञात होता है। कदाचित् यहां आङ् (आ) मर्यादावाचक हो अर्थात् सर्वार्थसिद्ध का छोड़के "तेन विना मर्यादा तत्सहितोऽभिविधिः ॥"

"४२॥ विजयादिककी परास्थिति तो बत्तीस की (३२) कही है यहां ३३ किस अभिप्राय से कहे गए नहीं जाना जाता। और कहीं २ कोष्ठका पाठ नहीं है क्योंकि अर्थ संगत नहीं है" आङ् मर्यादाभिविध्योः अष्टाध्यायी २।१।१३॥ आङ् (=आ) जिसके प्रथम आवे तिसको छोड़ कर (तेनविना) मर्यादा अर्थमें आता है जैसे आपाटलिपुत्रात् वृष्टोः देव=पटना को छोड़कर मेह बरसा ॥ तिस सहित (=तत्सहित) अभिविधि अर्थमें आता है=आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाशको लेते हुये या आकाश को समावेश करते हुये एक एक द्रव्य हैं ॥ अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य औरआकाश ये एक२ हैं।

सूत्रार्थ-आरण-अच्युतात्॥ ऊर्ध्वम्॥ एकैकेन॥	=आरण अच्युत (युगल) से ऊपर एक एक करि
(सागरोपमाणि॥) अधिकानि॥ परा॥ स्थितिः॥	=सागर प्रमाण) बढ़ती हुई उत्कृष्ट आयु
ग्रैवेयकेषु॥ नवसु॥ अनुदिशेषु॥	=(क्रमसे प्रत्येक) नौग्रैवेयकनिमें और नौ अनुदिशोंमें
विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु॥ सर्वार्थसिद्धौ॥ च॥	=विजय-वैजयन्त जयन्त-अपराजितमें है सर्वार्थसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट ही (=च) है जघन्य नहीं होती है अर्थात् नीचेके ग्रैवेयकनिमें प्रथम ग्रैवेयकमें

सूत्रमें 'च' शब्द निश्चयके अर्थमें है अर्थात् च=ही। आशय यह है कि जो नीचे नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर ऊपर में जघन्य जाननी है जैसे नौ अनुदिशमें बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयादिकमें जघन्य है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें एक उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक आयु नहीं होसकती जघन्यस्थिति श्वेताम्बर आम्नायमें सर्वार्थसिद्धिमें नहीं है विजय वैजयन्त जयंत अपराजित विमानोंमें भी उत्कृष्टआयु तेतीससागरहै

दिगम्बर आम्नायके कल्पातीतों के नाम स्थिति सहित

() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३ २४, २५ २६, २७, २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है। आनत तेरहवाँ स्वर्गसे नवग्रैवेयक पर्यन्त दोनों आम्नायकी स्थितिमें भेद नहीं है

() नौ अनुदिशोंके प्रत्येक अहमिन्द्रकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है हमारे यहां ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकमें ९१ विमान माने हैं और नौ अनुदिश एसे १०० विमान माने है

() विजय वैजयन्त-जयन्त-अपराजित चार विमानोंके अहमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है

() सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट तथा जघन्यआयु तेतीस ही सागर प्रमाण है।

श्वेताम्बर आम्नायके कल्पातीतोंके नाम स्थिति सहित

() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३ २४ २५ २६ २७ २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है। आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक तक दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा जघन्य स्थितिमें अन्तर नहीं है

() श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नामसे विमान नहीं माने हैं पर तीन ऊपर की ग्रैवेयकत्रिकमें १०० विमानोंमें हमारे यहांके नौ अनुदिशोंको भी समावेश करलिया है (देखो अध्याय ४ पृष्ठ ५६)

() विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित चार विमानोंके अहमिन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागरोपम है (तत्त्वार्थाधिगम सूत्र ८ पृष्ट११७)

() सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र ३८ ४२ पृष्ठ ११७ ११८)

इस टिप्पणी से प्रगट है कि श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में 'परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा' जो ४२ वां सूत्र है (हमारे यहां ३३वां है) वह इस बातका ज्ञापक है कि नवग्रैवेयकोंके और विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित विमानोंके मध्यमें कोई

बईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दूसरेमें चौबीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, तीसरेमें पचीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, बहुरि मध्य ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें छब्बीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु दूसरेमें सत्ताईस सागर प्रमाण परा स्थिति, तीसरेमें अट्ठाईस सागर प्रमाण परा स्थिति है और ऊपरके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें उनतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति, दूसरेमें तीससागर प्रमाण परास्थिति, तीसरेमें इकतीस सागरप्रमाण परास्थितिहै

और विमानवासी हैं जिनकी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर होसकी है। हम उसको यहांपर संस्कृत भाष्य [illegible] अनुवाद और स्वत टिप्पणी सहित तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११८ से अन्वयार्थ उद्धृत करते हैं

॥ परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—"माहेन्द्र स्वर्गके परे पूर्व अर्थात् पूर्व २ स्वर्गोंमें जो परास्थिति है वह पर २में जघन्या अर्थात् अपरा स्थिति होती है ॥"

भाष्यम्—"माहेन्द्रात्परतः पूर्वा परानन्तरा जघन्यास्थितिर्भवति। तद्यथा माहेन्द्रे परा स्थितिर्विशेषाधिकानि सप्त सागरोपमाणि सा ब्रह्मलोके जघन्या भवति। ब्रह्मलोके दश सागरोपमाणि परास्थिति सा लान्तके जघन्या। एवमासर्वार्थसिद्धादिति। (विजयादिषु चतुर्षु परा स्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सा त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्ध इति)"

विशेष व्याख्या—माहेन्द्र स्वर्गसे आगे पूर्व २ की जो परास्थिति है वह पर २ अर्थात् आगे २के स्वर्गोंमें अपरा स्थिति होजाती है। जैसे माहेन्द्र स्वर्गमें परास्थिति विशेष अधिक सात सागरोपम है वह ब्रह्मलोकमें अपरा अर्थात् जघन्या है। ऐसेही ब्रह्मलोकमें परा स्थिति दश सागरोपम है वह लान्तकमें जघन्या वा अपरा स्थिति है। इसी प्रकार पूर्व २ की परा स्थिति पर २ की जघन्या स्थिति सर्वार्थसिद्धि (१) पर्यन्त जाननी चाहिये। (२) (विजयादि चार विमानों में परा स्थिति तेंतीस सागरोपम है वह सर्वार्थसिद्धमें अजघन्योत्कृष्टा है।) ॥" स्वतटिप्पणी (१) (२) समाधानमें ऐसेहैं कि (१) यहां पर यह जानना उचित है कि विजय आदि चार विमानोंमें परास्थिति बत्तीस सागरोपम है और सर्वार्थसिद्धमें तेंतीस सागरोपम अज घन्योत्कृष्टा है अर्थात् वहां एकही स्थिति है परा अपरा भेद नहीं है। और भाष्यकार सर्वार्थसिद्धिमें भी जघन्या बत्तीस सागरोपम है ऐसा जो कहते हैं आसर्वार्थसिद्धात् उसका अभिप्राय नहीं ज्ञात होता है। कदाचित् यहां आङ् (आ) मर्यादाबोधक हो अर्थात् सर्वार्थसिद्ध को छोड़कर तेन विना मर्यादा तत्सहितोऽभिविधिः ॥"

"॥२॥ विजयादिककी परास्थिति तो बत्तीस की (३२) कही है यहां ३३ किस अभिप्राय से कहे यह नहीं जाना जाता। और कहीं २ कोष्ठका पाठ नहीं है क्योंकि अर्थ संगत नहीं है" आङ् मर्यादाभिविध्योः अष्टाध्यायी २ । १ । १३ ॥ आङ् (=आ) जिसके प्रथम आवै तिसको छोड़ कर (तेनविना) मर्यादा अर्थमें आता है जैसे आपाटलिपुत्रात् वृष्टो देव=पटना को छोड़कर मेह बरसा ॥ तिस सहित (=तत्सहित) अभिविधि अर्थमें आता है=आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाशको लेते हुये या आकाश को समावेश करते हुये एक एक द्रव्यें हैं ॥ अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य औरआकाश ये एक२ हैं।

सूत्रार्थ—आरण अच्युतात्¹ऊर्ध्वम्²एकैकेन³	=आरण अच्युत (युगल) से ऊपर एक एक करि
(सागरोपमाणि¹) अधिकानि²परा³स्थिति⁴	=सागर प्रमाण) बढ़ती हुई उत्कृष्ट आयु
ग्रैवेयकेषु¹नवसु²अनुदिशासु³	=(क्रमसे प्रत्येक) नौग्रैवेयकोंमें और नौ अनुदिशोंमें
विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजितेषु¹सर्वार्थसिद्धौ²च³	=विजय-वैजयन्त जयन्त-अपराजितमें है सर्वार्थसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट ही (=च) है जघन्य नहीं होती है अर्थात् नीचेके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथम ग्रैवेयकमें

सूत्रमें 'च' शब्द नियमक अर्थमें है अर्थात् च =ही । आशय यह है कि जो नीचे नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर ऊपर में जघन्य जानना है जैसे नौ अनुदिशमें बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयादिकमें जघन्य है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें एक उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक आयु नहीं इसलिये जघन्यस्थिति दोनों आम्नायमें सर्वार्थसिद्धिमें नहीं है। विजय वैजयन्त जयंत अपराजित विमानोंमें भी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है

दिगम्बर आम्नायके कल्पातीतों के नाम स्थिति सहित

0 प्रत्येक नवग्रैवेयकमें प्रथम अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३ २४, २५ २६, २७ २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है । आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक पर्यन्त दोनों आम्नायकी स्थितिमें भेद नहीं है

0 नौ अनुदिशोंके प्रत्येक अहमिन्द्रकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है हमारे यहां ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकमें ९१ विमान माने हैं और नौ अनुदिश इसे १० विमान माने हैं

0 विजय-वैजयन्त जयन्त-अपराजित चार विमानोंके अहमिन्द्रोंमें से प्रत्येकको उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है

0 सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट तथा जघन्य आयु तेतीस ही सागर प्रमाण है ॥

श्वेताम्बर आम्नायके कल्पातीतोंके नाम स्थिति सहित

0 प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३ २४ २५ २६ २७ २८, २९ ३० ३१ सागर प्रमाण है । आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक तक दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा जघन्य स्थितिमें अन्तर नहीं है

0 श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नामसे विमान नहीं माने हैं पर तीन ऊपर की ग्रैवेयकत्रिकमें १०० विमानोंमें हमारे यहांके नौ अनुदिशोंका भी समावेश करलिया है (देखो अध्याय ४ पृष्ठ ५६)

0 विजय वैजयन्त-जयन्त अपराजित चार विमानोंके अहमिन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागरोपम है (तत्त्वार्थाधिगम सूत्र ८ पृष्ठ११७)

0 सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र ३८ ४२ पृष्ठ ११७, ११८)

इस टिप्पणी से प्रगट है कि श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ओ ४२ वां सूत्र है (हमारे यहां ३४वां है) यह इस बातका ज्ञापक है कि नवग्रैवेयकोंके और विजय-वैजयन्त जयन्त-अपराजित विमानोंके मध्यमें कोई

तेनायमर्थ, अधोग्रैवेयकेषु प्रथमे त्रयोविंशतिः । द्वितीये चतुर्विंशति ॥ तृतीये पञ्चविंशति ॥ मध्यमग्रैवेयकेषु प्रथमे षड्विंशति ॥ द्वितीये सप्तविंसति ॥ तृतीयेऽष्टाविंशति ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत् ॥ द्वितीये त्रिंशत् ॥ तृतीये एकत्रिंशत ॥ अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत् ॥ विजयादिषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थिति । सर्वार्थसिद्धेस्त्रयस्त्रिंशदेवेति ॥ निर्दिष्टोत्कृष्ट-स्थितिकेषु देवेषु जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

तेन॥ अयम्॥ अर्थ॥ अधः (१) ग्रैवेयकेषु॥	=जिस (नवशब्दके ग्रहण) से यह अर्थ होता है कि नीचले ग्रैवेयक त्रिकमें
प्रथमे॥ त्रयोविंशतिः॥ द्वितीये॥ चतुर्विंशति॥	=पहिलेमें तेईस(सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है। दूसरेमें चौवीस(सागरप्रमाणउत्कृष्टआयु)है।
तृतीये॥ पञ्चविंशति॥ मध्यम-ग्रैवेयकेषु॥	=तीसरेमें पचीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। मध्यग्रैवेयकत्रिकमें
प्रथमे॥ षड्-विंशति॥ द्वितीये॥	=प्रथममें छब्बीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। दूसरेमें
सप्तविंशति॥ तृतीये॥ अष्टाविंशति॥	=सत्ताईस (सागरप्रमाणउत्कृष्ट आयु)है। तीसरेमें अट्ठाईस (सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है।
उपरिम ग्रैवेयकेषु॥ प्रथमे॥ एकोनत्रिंशत्॥	=ऊपरके ग्रैवेयक त्रिकमें प्रथममें उनतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है।
द्वितीये॥ त्रिंशत्॥ तृतीये॥	=दूसरेमें तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। तीसरेमें
एकत्रिंशत्॥ अनुदिश-विमानेषु॥	=इकतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। अनुदिश विमानोंमें
द्वा-त्रिंशत्॥ विजय-आदिषु॥	=बत्तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें
त्रयस्त्रिंशत्॥ सागरोपमाणि॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥	=तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है।
सर्वार्थसिद्धेः॥ त्रयस्त्रिंशत्॥ एव॥ इति॥	=सर्वार्थसिद्धिमें तेतीस ही (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है (जघन्यस्थिति नहींहोती है)
निर्दिष्ट उत्कृष्ट स्थितिकेषु॥ देवेषु॥	=वर्णित उत्कृष्ट स्थिति वाले देवोंमें
जघन्य-स्थिति प्रतिपादन अर्थम्॥ आह॥	=जघन्य आयुके कहने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) इस बत्तीसवां सूत्रमें नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु इस रूपसे पृथक् पृथक् उल्लेख क्यों किया है नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा समासांतपद पढ़ही मानना चाहिये था। ऐसा मानने में दो अक्षरों का लाघव भी होता। (उत्तर) ग्रैवेयकोंसे विजयादि विमानोंका जो पृथक् रूपसे ग्रहण कियागया है वह भी अनुदिश विमानोंके समझके लिये है यदि नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा उल्लेख करते तो नव अनुदिश विमानोंका ग्रहण नहीं होता वे ग्रहण करनेसे रहजाते हैं॥

अधिकग्रहणमनुवर्तते। तेनेहाभिसम्बन्धो वेदितव्य । एकैकेनाधिकानीति ॥ नवग्रहणं किमर्थम् ? प्रत्येकमेकैकमधिकमिति ज्ञापनार्थम् ॥ इतरथा हि ग्रैवेयकेष्वेकमेवाधिक स्यात् ॥ विजयादिष्विति आदिशब्दस्य प्रकारार्थत्वादनुदिशानामपि ग्रहणम्॥सर्वार्थसिद्धे पृथग्ग्रहण जघन्याभावप्रतिपादनार्थम्

तथा अनुदिश विमाननिर्विषें बत्तीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित प्रत्येक विमान में उत्कृष्ट स्थिति बत्तीस सागर है सर्वार्थसिद्धि विषें तेतीस सागर ही स्थिति है (-यहांजघन्य स्थितिनहींहैएक हीआयु है)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

अधिक ग्रहणम्॥१॥ अनुवर्तते ॥	=(इस सूत्रमें) अधिक शब्दका उपादान (पिछले ३१ वां सूत्रसे) प्रवर्तता है
तेन॥३॥ इह=अभिसम्बन्धः॥१॥ वेदितव्यः॥१॥ एक एकेन॥३॥	=तिस (अधिक शब्दके ग्रहण) से इह सम्बन्ध जानना चाहिये (कि) एक एक
अधिकानि॥१॥ इति=नव-ग्रहणम्॥१॥ किम्॥१॥ अर्थम्॥१॥	=(सागर प्रमाण)करि अधिक है(प्रश्न)(इस सूत्रमें) नौ(शब्द)काग्रहणकिसलियेहै
प्रत्यकम्॥ एकैकम्॥१॥ अधिकम्॥१॥ इति ज्ञापन अर्थम्॥१॥	=(उपर) पृथक् पृथक् (ग्रैवेयकमें) एकएक सागर बढ़ती(आयु)ऐसाजाननेकेलियेहै
इतरथा=हि=ग्रैवेयकेषु॥७॥ एकम्॥१॥ एव=	=क्योंकि (=हि) अन्यथा (सर्व) ग्रैवेयकोंमें एक (सागर प्रमाण) ही (स्थिति)
अधिकम्॥१॥ स्यात्॥	=अधिक होती अर्थात् सब नव ग्रैवेयकों की स्थिति तेईस सागर होती किसी की भी अधिक नहीं होती इसलिय इससूत्रमें नव शब्दका ग्रहण है
विजय आदिषु॥७॥ इति=आदिशब्दस्य॥६॥ प्रकार अर्थत्वात्॥५॥	=विजय आदिकमें ऐसे आदि शब्दके प्रकारार्थ होनेसे
अनुदिशानाम्॥६॥ अपि=ग्रहणम्॥१॥ सर्वार्थसिद्धे॥७॥	=अनुदिशोंका भी ग्रहण हुआ । सर्वार्थसिद्धि का (इस सूत्रमें)
पृथग्-ग्रहणम्॥१॥ जघन्य-अभाव-प्रतिपादन अर्थम्॥१॥	=भिन्न ग्रहण (यहां) जघन्य (स्थिति) का न होना जनावनेके लियेहै अर्थात्

विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-और सर्वार्थसिद्धि इन पांचों विमानों का सब एकही पटल है और सबमें उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है तोभी सूत्रमें 'सर्वार्थसिद्धौ' ऐसा पृथक् वाक्य क्योंलाये और भिन्न विभक्ति क्योंकी "विजयादिषु" इसमें गर्भित क्यों न रक्खा इसका कारण यह है कि अन्य चार विमानोंमें तो जघन्य स्थिति बत्तीस सागर प्रमाण है और उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें [illegible] ॥

तेनायमर्थ, अधोग्रैवेयकेषु प्रथमे त्रयोविंशति । द्वितीये चतुर्विंशति ॥ तृतीये पञ्चविंशति ॥ मध्यमग्रैवेयकेषु प्रथमे षड्विंशति ॥ द्वितीये सप्तविंसति ॥ तृतीयेऽष्टाविंशति ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत् ॥ द्वितीये त्रिंशत् ॥ तृतीये एकत्रिंशत् ॥ अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत् ॥ विजयादिषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थिति । सर्वार्थसिद्धेस्त्रयस्त्रिंशदेवेति ॥ निर्दिष्टोत्कृष्ट-स्थितिकेषु देवेषु जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

तेन॥अयम्॥अर्थः॥अध॥(1)ग्रैवेयकेषु॥	=तिस (नवशब्दके ग्रहण) से यह अर्थ होता है कि नीचले ग्रैवेयक त्रिकमें
प्रथमे॥त्रयोविंशति॥द्वितीये॥चतुर्विंशति॥	=पहिलेमें तेईस(सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है। दूसरेमें चौवीस(सागरप्रमाणउत्कृष्टआयु)है।
तृतीये॥पञ्चविंशति॥मध्यम-ग्रैवेयकेषु॥	=तीसरेमें पचीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। मध्यग्रैवेयकत्रिकमें
प्रथमे॥षड्-विंशति॥द्वितीये॥	=प्रथममें छब्बीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। दूसरेमें
सप्तविंशति॥तृतीये॥अष्टाविंशति॥	=सत्ताईस (सागरप्रमाणउत्कृष्ट आयु)है। तीसरेमें अट्ठाईस (सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है।
उपरिम॥ग्रैवेयकेषु॥प्रथमे॥एकोनत्रिंशत्॥	=ऊपरके ग्रैवेयक त्रिकमें प्रथममें उनतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है।
द्वितीये॥त्रिंशत्॥तृतीये॥	=दूसरेमें तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। तीसरेमें
एकत्रिंशत्॥अनुदिश-विमानेषु॥	=इकतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। अनुदिश विमानोंमें
द्वात्रिंशत्॥विजय-आदिषु॥	=बत्तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें
त्रयस्त्रिंशत्॥सागरोपमाणि॥उत्कृष्टा॥स्थिति॥	=तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है।
सर्वार्थसिद्धे॥त्रयस्त्रिंशत्॥एव॥इति॥	=सर्वार्थसिद्धिमें तेतीस ही (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है (जघन्यस्थिति नहींहोती है)
निर्दिष्ट उत्कृष्ट स्थितिकेषु॥देवेषु॥	=वर्णित उत्कर्ष स्थिति वाले देवोंमें
जघन्य-स्थिति प्रतिपादन अर्थम्॥आह॥	=जघन्य आयुके कहने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) इस बत्तीसवाँ सूत्रमें नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु इस रूपसे पृथक् पृथक् उल्लेख क्यों किया है नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा समासोत्पन्न पदही मानना चाहिये था। ऐसा मानने से दो अक्षरों का लाघव भी होता। (उत्तर) ग्रैवेयकोंसे विजयादि विमानोंका जो पृथक् रूपसे ग्रहण कियागया है वह भी अनुदिश विमानोंके समहके लिये है यदि नवग्रैवेयक विजयादिषु' ऐसा उल्लेख करते तो नव अनुदिश विमानोंका ग्रहण नहीं होता ये कथन करनेस रहजाते हैं ॥

॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

पल्योपम व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थिति ॥ पल्योपमं साधिकम् ॥ केषा ? सौधर्मैशानीयानाम् ॥ कथ गम्यते परत परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

(1)सूत्रम्—अपरापल्योपममधिकम्॥३३॥ =(सौधर्मैशानयो २९वां सूत्रसे) अपरा (स्थिति २८वा सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ —सौधर्म-ऐशानयो॥ अपरा॥ स्थिति॥ =सौधर्म ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें जघन्य आयु
पल्योपमम्॥ अधिकम्॥ भवति। =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसतेतीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

पल्य उपमम्॥ व्याख्यातम्॥ =पल्यका प्रमाण (तीसरे अध्याय के ३८ वां सूत्रमें) कहा जा चुका है
अपरा॥ जघन्य-स्थिति॥ पल्योपमम्॥ स-अधिकम्॥ =अपरा है सो निकृष्ट स्थिति है (सो) कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
केषाम्॥ ? =(प्रश्न) किनकी (जघन्य आयु कुछ अधिक-पल्य प्रमाण) है
सौधर्म-ऐशानीयानाम्॥ =(उत्तर) सौधर्म-ऐशानके देवोंकी निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
कथम् गम्यते। परत परत इति उत्तरत्र =(प्रश्न) कैसे जाना जाय है ॥ [उत्तर] आगसे आगसमें ऐसा यहांसे अग्रिम [सूत्रमें]
वक्ष्यमाणत्वात्॥ =कहेजानेसे सौधर्मऐशान स्वर्गोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण जानी जाती है
तत ऊर्ध्वम्॥ जघन्य स्थिति-प्रतिपादन अर्थम्॥ आह। =वहां [सौधर्म ऐशान युगल] से ऊपर निकृष्ट-आयुके कहनेके लिये कहते हैं कि

(1) श्वेताम्बर आम्नायमें अपरा पल्योपममधिकम् च' पाठ है अर्थात् हमारे यहांसे च अधिक है और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ ११७ पर यह भाष्य है कि तत्र सौधर्मेऽपरा स्थितिः पल्योपममैशाने पल्योपममधिकं च"=तहां सौधर्म (स्वर्ग) में जघन्य आयु पल्यप्रमाण है (और) ऐशान (स्वर्ग) में पल्य प्रमाण तथा कुछ अधिक है। हमारे यहां सौधर्म ऐशान प्रत्येकमें एक पल्यसे कुछ अधिक निकृष्ट आयु है यही अर्थभेद दोनों आम्नायोंमें है

परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥ ३४ ॥

सूत्रम्—परत परत पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥३४॥ = पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा परत परत ॥३४॥

=पूर्वा पूर्वा[१]अनन्तरा(साधिका ३३वां सूत्रसे)([२]परास्थिति' २८वां सूत्रसे)[३]परतः[४]परतः(अपरा ३३वां सूत्रसे)(स्थितिः २८वां सूत्रसे)भवति

(१)अट्ठाईसवां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा आयुका वर्णन है उनतीसवां सूत्रसे बत्तीसवां तक चार सूत्रोंमें समस्त कल्पवासी और कल्पातीत अहमिन्द्रोंकी उत्कृष्ट आयुका कथन है। तत्तीसवां सूत्रसे अड़तीसवां सूत्र तक और ४१वां सूत्रमें भी कल्पवासी देव कल्पातीत अहमिन्द्र (सर्वार्थसिद्धि को छोड़कर जहां उत्कृष्ट जघन्य तेतीस सागरकी एकही स्थिति है) नारकियों भवनवासी और व्यंतर देवोंकी जघन्य आयु का प्रकरण है। इस सूत्रमें कुछ अधिक=अधिका=साधिकाकी अनुवृत्ति ३०वां सूत्रसे आती है जैसाकि ३४वां सूत्रकी वृत्तिमें अधिक महणमनुवर्तते और तीन स्थानोंमें साधिका शब्दोंके प्रयोगसे प्रगट है नकि उक्त अनुवर्तन उनतीसवां सूत्रसे है क्योंकि वहां उनतीसवां सूत्रमें उत्कृष्ट आयुका कथन है।

(२) पूर्वा पूर्वा और अनन्तरा शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग हैं और स्थितिः शब्द जो प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग में है उसके विशेषण हैं नकि स्वर्ग कल्प वा युगल इत्यादि के (३)पर अर्थात् समसे ऊंचेमें जो रहे उसको 'परतः' कहते हैं 'परतः परतः' यहां पर वीप्सा वा बारम्बार अर्थमें द्वित्व(=दोबार)है 'पूर्वा पूर्वा' यहां पर भी वीप्सार्थमें द्वित्व है। (४)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके ३३वां और ३४वां सूत्रके मध्यमें उनके यहांका ४०वां सूत्र सागरोपमे=सानत्कुमार कल्पमें जघन्य स्थिति दो सागर प्रमाण है और ४१वां सूत्र अधिके=माहेन्द्र स्वर्गमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण वहती वा अधिक है। इन ४०वां वा ४१वां सूत्रोंके पश्चात् उनके यहां का ४२वां सूत्र 'परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा' हमारे यहांके उपर्युक्त ३४वां सूत्रके पाठसे अक्षरशः मिलता है परन्तु तात्पर्यमें अन्तर यह है कि सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके अनुसार इस सूत्रसे ब्रह्मलोककी जघन्य स्थिति का आरम्भ होता है और सर्वार्थ सिद्धिकी स्थिति तकका वर्णन है हमारे यहांके अनुकूल इस सूत्रसे सानत्कुमार माहेन्द्र युगल की जघन्य स्थिति का आरम्भ होता है और विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित विमानोंतककी जघन्य आयुका कथन है। दोनों आम्नायोंके अनुकूल सर्वार्थ सिद्धिमें एक तेतीस सागरकी अजघन्योत्कृष्टा स्थिति है यहां पर परा अपरा स्थितिका भेद नहीं है(सभाष्य० पृष्ठ ११७,११८)इसलिये हमारे यहां सौधर्म ऐशान दोनो स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति दो पल्य प्रमाणसे प्रत्येकमें कुछ अधिक है। श्वेताम्बर आम्नायके अनुसार सौधर्म स्वर्गमें यहां पर स्थिति एक पल्य प्रमाण है ऐशान स्वर्ग में एक पल्यसे निकट स्थिति कुछ अधिक है (सभाष्य सूत्र ३९)ऐसेही हमारे यहां सानत्कुमार माहेन्द्र प्रत्येक स्वर्गमें जघन्यस्थिति दोसागर प्रमाणसे कुछ अधिक है उनके यहां सानत्कुमार स्वर्गमें दोसागर प्रमाण जघन्य स्थिति है और माहेन्द्र कल्पमें अपरा स्थिति दो सागरसे कुछ अधिक है। जो टिप्पणी हमने पृष्ट १०१, १०४, १०५ में उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें दी हैं उनसे यद्यपि जघन्य स्थिति का भेद विदित होता है तो भी सरलताके लिए निम्न टिप्पणी भी देते हैं॥

दिगम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य आयु

() सौधर्म और एशान स्वर्गों की देवों की जघन्य स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक है(देखो सूत्र३३)

श्वेताम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य स्थिति

() सौधर्मस्वर्गमें जघन्य आयु एक पल्य है और ऐशानस्वर्गमें एक पल्यसे कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें सूत्र ३९)

॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

पल्योपमं व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थिति ॥ पल्योपमं साधिकम् ॥ केषा ? सौधर्मैशानीयानाम् ॥ कथं गम्यते परत परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

[1]सूत्रम्–अपरापल्योपममधिकम्॥३३॥ =(सौधर्मैशानयो २९वां सूत्रसे) अपरा (स्थिति २८वा सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थ –सौधर्म-ऐशानयो॥ अपरा॥ स्थितिः॥ =सौधर्म-ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें जघन्य आयु

पल्योपमम्॥ अधिकम्॥ भवति॥ =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसतेतीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

पल्य उपमम्॥ व्याख्यातम्॥ =पल्यका प्रमाण (तीसरे अध्याय के ३८ वां सूत्रमें) कहा जा चुका है

अपरा॥ जघन्य-स्थितिः॥ पल्योपमम्॥ स-अधिकम्॥ =अपरा है सो निकृष्ट स्थिति है (सो) कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

केषाम्॥? =(प्रश्न) किनकी (जघन्य आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण) है

सौधर्म-ऐशानीयानाम्॥ =(उत्तर) सौधर्म-ऐशानके देवोंकी निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

कथम् गम्यते। परतः परत इति उत्तरत्र =(प्रश्न) कैसे जाना जाय है ॥ [उत्तर] अगले अगलेमें-ऐसा यहांसे अग्रिम [सूत्रमें]

वक्ष्यमाणत्वात्॥ =कहे जानेसे सौधर्मऐशान स्वर्गोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण जानी जाती है

ततः ऊर्ध्वम्॥ जघन्य स्थिति-प्रतिपादन अर्थम्॥ आह। =यहां [सौधर्म ऐशान युगल] से ऊपर निकृष्ट-आयुके कहनेके लिये कहते हैं कि

(1) श्वेताम्बर आम्नायमें अपरा पल्योपममधिकम् च' पाठ है अर्थात् हमारे यहांसे च अधिक है और तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ ११७ पर यह भाष्य है कि तत्र सौधर्मेऽपरा स्थितिः पल्योपममैशाने पल्योपममधिकं च =तहां सौधर्म (स्वर्ग) में जघन्य आयु पल्यप्रमाण है (और) ऐशान (स्वर्ग) में पल्य प्रमाण तथा कुछ अधिक है। हमारे यहां सौधर्म ऐशान प्रत्येकमें एक पल्यसे कुछ अधिक निकृष्ट आयु है यही अर्थभेद दोनों आम्नायोंमें है

परस्मिन्देशे परत । वीप्साया द्वित्वम् । पूर्वशब्दस्याप्यधिकग्रहणमनुवर्तते ॥ तेनैवमभिसम्बन्ध क्रियते-सौधर्मैशानयोर्द्वे सागरोपमे साधिके उक्ते, ते साधिके सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्जघन्यस्थिति ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयो

सूत्रार्थ –पूर्वा॥ पूर्वा॥ अनन्तरा॥ साधिका॥ परा॥ स्थितिः॥ =पहिली पहिली अत्यन्त निकट (=अनन्तरा) कुछ अधिक सहित, उत्कृष्ट स्थिति
परतः परतः अपरा॥ स्थितिः॥ भवति। =अगले अगलेमें या ऊपर ऊपरमें (=परतःपरतः) जघन्य स्थिति होती है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिको छोड़कर जहां जघन्य और उत्कृष्ट एक स्थिति तेतीस सागरकी ही है। वैमानिकदेवोंमें नीचे नीचे युगलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है वही ऊपर ऊपर क्रमसे निकृष्ट स्थिति है जैसे सौधर्म ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें कुछ अधिक दोसागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है वही सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें जघन्य है॥

वृत्त्यनुवाद—परस्मिन्॥ देशे॥ 'परतः'॥ =ऊपर ऊपर या अगले स्थानमें जो रहे (या हो) सो 'परतः' है
वीप्सायाम्॥ द्वित्वम्॥ =अनेकवा या वार वारके (अर्थ)में दोबार (=द्वित्व) (इस सूत्रमें परतः और पूर्वा प्रत्यक शब्द आये) हैं अर्थात् इस सूत्रमें 'परतः परतः' दोवार आनेसे और 'पूर्वा पूर्वा' भी दोवार आनेसे बहुतवार अनेकवारके अर्थमें दोनोंही शब्दोंका प्रयोग सूत्रमें जानना चाहिये।
पूर्वशब्दस्य॥ अपि अधिक-ग्रहणम्॥ अनुवर्तते। =(इस सूत्रमें) 'पूर्व' शब्दके भी (=अपि) (तेतीसवां सूत्रसे) 'अधिक' शब्दका आदान आता है अर्थात् नीचले नीचले कल्प युगलोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति सागर प्रमाणोंसे कुछ अधिक है वह ऊपर ऊपरके शतारसहस्रार युगलों तक जघन्य स्थिति उतने सागर प्रमाण है और कुछ अधिक भी है परन्तु आनत प्राणत सातवां युगलमें पूरे बीस सागरकी आयु है और आरण अच्युत आठवां युगलमें बाईस सागरकी पूरी स्थिति है।
तेन॥ एवम् अभिसम्बन्धः॥ क्रियते। =तिस (अधिक ग्रहण) करि इसप्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि
सौधर्म-ऐशानयोः॥ द्वे॥ सागरोपमे॥ स अधिके॥ उक्ते॥ =सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें दो सागर प्रमाण कुछ अधिक (स्थिति) कही
ते॥ स-अधिके॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः॥ =वे (दो सागर प्रमाण स्थिति) किंचित् अधिक (स्थिति) सानत्कुमारमाहेन्द्रमें
जघन्यस्थितिः॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः॥ =निकृष्ट आयु है। सानत्कुमार माहेन्द्र (युगल) में

() सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंके (प्रत्येकके)देवों की जघन्य आयु दो सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र २९,३४)

() ब्रह्म ब्रह्मोत्तर(प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी जघन्य स्थिति सात सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३० ३४)

() लांतव—कापिष्ठ (प्रत्येक) स्वर्गके देवों की निकृष्ट आयु दश सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() शुक्र—महाशुक्र (प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी जघन्य स्थिति चौदह सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() शतार-सहस्रार (प्रत्येक) स्वर्गके देवोंकी जघन्य आयु सोलह सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() आनत—प्राणत(प्रत्येक) स्वर्गके देवोंकी निकृष्ट स्थिति पूरे अठारह सागर है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() आरण—अच्युत (प्रत्येक) स्वर्गके देवोंकी जघन्य आयु पूरे बीस सागर प्रमाण है (देखो सूत्र ३१ ३४)

() प्रत्येक नव ग्रैवेयकमें प्रथम एक एक वृद्धिसे प्राप्त बाईस सागर से ३० सागर तक जघन्य स्थिति है (देखो सूत्र ३२,३४)

() नव अनुदिश जिनका एक पटल है जघन्य स्थिति ३१ सागर है (देखो सूत्र ३२, ३४)

() विजय—वैजयन्त—जयन्त—अपराजितमें (प्रत्येकमें) जघन्य आयु ३२ सागर है (देखो सूत्र ३२,३४)

() सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ट एकही स्थिति तेतीससागर प्रमाणहै

() सानत्कुमार में जघन्य स्थिति दो सागर है (समाप्य० सूत्र ४०)माहेन्द्रमें दो सागर से अधिक है (देखो समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४१)

() ब्रह्मलोक (ब्रह्मोत्तर स्वर्ग समाप्य० सूत्रमें नहीं है) में सात सागर से कुछ अधिक है (देखो समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र ४२)

() लांतव (कापिष्ठ समाप्य०सूत्रमें नहीं माने है)में जघन्य स्थिति दस सागर है (देखो समाप्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() महाशुक्र कल्प (शुक्र कल्प समाप्य०सूत्र में नहीं है)में जघन्य स्थिति चौदह सागर है (देखो समाप्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() सहस्रार स्वर्ग (शतार समाप्य०में नहीं माना है)में जघन्य आयु सोलहसागर है (देखो समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)

() आनत प्राणत स्वर्गोंमें वही जघन्य स्थितिहै जो हमारे यहां है (समाप्य०सूत्र ३७, ४२)

() आरण अच्युत स्वर्गोंमें वही स्थितिहै जो हमारे यहां है(समाप्य०सूत्र३७ ४२)

[] समाप्य० के सूत्र ३८, ४२ से वही जघन्य स्थिति श्वेताम्बर आम्नाय में है

[] नव अनुदिश नहीं माने है इस लिये जघन्य और उत्कृष्ट कोई स्थिति नहीं हो सकती है।

[] विजय—वैजयन्त—जयन्त-अपराजित में समाप्य० के आरणाच्युत इत्यादि ३८वां सूत्र को पढ़ते परन्तु पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ४२वां सूत्रके साथ पढ़ने से यह बात निकलती है कि प्रत्येक उक्त चार विमानों में जघन्य आयु ३१ सागर है क्योंकि अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु ४२ सूत्रके कोष्टकका पाठ कि विजयादि चार विमानोंमें वरस्थिति तेतीस सागर है इस बात का ज्ञापक है कि जघन्य आयु ३२ सागर है क्योंकि विजयादिक की उत्कृष्ट स्थिति ३८,४२ सूत्रमें बत्तीस सागर है ४२वां सूत्रके कोष्टकमें ३३ सागर है

[] सर्वार्थसिद्धिमें जघन्योत्कृष्ट एक ही आयु तेतीस सागर है।

चशब्द किमर्थं ? । प्रकृतसमुच्चयार्थं ॥ किं च प्रकृतं ? । परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा अपरा स्थितिरिति ॥ तेनायमर्थो लभ्यते—रत्नप्रभायां नारकाणां परास्थितिरेकं सागरोपमम् । सा शर्कराप्रभायां जघन्या । शर्कराप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि । सा वालुकाप्रभायां जघन्येत्यादि ॥ एवं द्वितीयादिषु जघन्या स्थितिरुक्ता ॥ प्रथमायां का जघन्येति तत्प्रदर्शनार्थमाह—

सूत्रार्थ —पूर्वा पूर्वा अनन्तरा परा स्थितिः	=पहिली पहिली व्यवधान रहित वा लगतारी उत्कृष्ट स्थिति
नारकाणाम् च परत परत द्वितीयादिषु	=नारकियों के भी [=च] ऊपर ऊपर में दूसरी आदि
भूमिषु अपरा स्थितिः भवति	=भूमियोंमें जघन्य आयु है (जैसे प्रथम भूमिमें एक सागर उत्कृष्ट स्थिति है वही दूसरी पृथिवीमें जघन्य है दूसरीमें तीन सागर परा है वही तीसरीमें अपरा है) ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पैतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ॥

च-शब्दः किमर्थः प्रकृत-समुच्चय-अर्थः	=(इस सूत्रमें) च शब्द किसलिये है ? (उत्तर) प्रकरणके समुच्चय वा जोडनेको है
किम् च प्रकृतम् अनन्तरा	=(प्रश्न) बहुरि (=च) [redacted] प्रकरण वा विषय है (उत्तर) अत्यन्तनिकट वर्ती है
पूर्वा पूर्वा परास्थितिः परतःपरत अपरा स्थितिः	=पूर्व पूर्व की (उत्कृष्ट आयु) ऊपर ऊपरमें जघन्य आयु होती है ऐसा प्रकरण है
इति । तेन अयम् अर्थः लभ्यते रत्न-प्रभायाम्	=तिस (च शब्द) से यह अर्थ लियाजाता है कि रत्नप्रभा पृथिवीमें
नारकाणाम् परास्थितिः एकम् सागरोपमम्	=नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है ॥
सा शर्करा-प्रभायाम् जघन्या ; शर्कराप्रभायाम्	=वही (स्थिति) शर्करा प्रभा (दूसरी पृथिवी) में निकृष्ट स्थिति है । शर्कराप्रभामें
उत्कृष्टा स्थितिः त्रीणि सागरोपमाणि सा	=उत्कृष्ट आयु तीन सागर प्रमाण है । वही (तीन सागर प्रमाण स्थिति)
वालुकाप्रभायाम् जघन्या इति आदि एवम्	=वालुकाप्रभामें जघन्य (आयु) है । ऐसे आगे भी (सातवीं भूमि पर्यंत) है ॥ ऐसे
द्वितीय आदिषु जघन्या स्थितिः उक्ता प्रथमायाम्	=दूसरी आदिक (भूमि) में जघन्य आयु कही गई । पहली भूमिमें
का जघन्या इति तत्-प्रदर्शन अर्थम् आह	=क्या निकृष्ट (आयु) है । उस(प्रथम भूमिकी जघन्य आयु)केदिखानेको कहतेहैंकि

परा स्थिति सप्तसागरोपमाणि साधिकानि, तानि ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्जघन्या स्थितिरित्यादि ॥

नारकाणामुत्कृष्टा स्थितिरुक्ता । जघन्या सूत्रेऽनुपात्तामप्रकृतामपि लघुनोपायेन प्रतिपादयितुमिच्छन्नाह

नारकाणां च द्वितीयादिषु॥३५॥

परा॥ स्थितिः॥ स-अधिकानि॥ =उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक

सप्त-सागरोपमाणि॥ तानि॥ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥ =सात सागर प्रमाण है से (सात सागर और कुछ अधिक) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें

जघन्या॥ स्थितिः॥ । इति॰आदि॥ =निकृष्ट स्थिति है । ऐसेही आगे आगे है अर्थात् सागरोंसे कुछ अधिक है यह अधिकता बारहवां सहस्रार स्वर्गतक है । आनत प्राणत स्वर्गोंसे आगे पूरेपूरे सागरोंकी आयुहै नीचली नीचली उत्कृष्ट स्थिति ऊपर ऊपर विजयादिक तक जघन्य जघन्य है ॥

नारकाणाम्॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥ उक्ता॥ सूत्रे॥ =नारकियोंकी उत्कृष्ट आयु(तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें)कही । (इस) सूत्रमें

अनुपात्ताम्॥ अप्रकृताम्॥ अपि॥ जघन्याम्॥ =अप्राप्त(=अनुपात्ताम्) और अनधिकृत (नारकियोंकी) जघन्य (स्थिति) भी

लघुना॥ उपायेन॥ प्रतिपादयितुम्॰ इच्छन्॥ आह॥ =लघु साधन द्वारा अर्थात् थोड़े अक्षरों द्वारा कहनेको इच्छुक (आग दो सूत्रमें) कहतेहैं अर्थात् नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तो तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें कहदी और यहां वैमानिकोंकी स्थितिका प्रकरण किया है इसलिये नारकियोंकी जघन्यस्थितिकहने का कोई अवसर प्राप्त नहीं है और न नारकियोंका कथनका कोई प्रकरण वा विषयही है तो भी आचार्यकी इच्छा नारकियोंकी जघन्य स्थिति वर्णन करनेकी इस हेतुसे है कि अल्प शब्दोंमेंही इस सूत्रकी अनुवृत्ति होनेसे अभीष्ट स्थिति कही जासकती है ॥

[2]सूत्रम्—नारकाणां च द्वितीयादिषु = नारकाणाम् च द्वितीयादिषु (भूमिषु[1] अध्याय३ सूत्र १से) पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा परा स्थिति परत परत अपरा स्थिति भवति

(१)'भूमिषु' इस शब्दकी अनुवृत्ति तीसरे अध्यायके पहिले सूत्रसे लीगई है क्योंकि इस स्थिति का यहां विषय न था वरन् तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रके पश्चात् था, वहां लघु अक्षरोंमें यह स्थिति नहीं कही जासकती थी इस हेतुसे यहां कहीगई है तीसरा अध्याय सूत्र १से यह 'भूमिषु' शब्द अनुवृत्त है । चकारसे सबका उस सूत्र ३४वां की अनुवृत्ति आती है ।(२) श्वेताम्बर और दिगंबर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और नहीं बदला है॥

दशवर्षसहस्राणीत्यभिसम्बध्यते ॥ व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

चशब्द प्रकृतसमुच्चयार्थ ॥ तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते ॥ अथैषां परा स्थिति का इत्यत्रोच्यते ॥

॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

दशवर्षसहस्राणि ॥ इति अभिसम्बध्यते । व्यन्तराणाम् ॥ तर्हि = दश हजार वर्ष ऐसा वाक्य इस सूत्रमें) जोड़ा जाता है । तो व्यन्तरोंकी का ॥ जघन्या ॥ स्थिति ॥ इति अत आह । = क्या जघन्य आयु है । ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥ = व्यन्तराणाम् च दशवर्षसहस्राणि(३६ वा सूत्रसे) अपरा(३३वा सूत्रसे) स्थिति (२८वासूत्र से)भवति

व्यन्तराणाम् ॥ च ॥ दशवर्षसहस्राणि ॥ अपरा ॥ स्थिति ॥ भवति । = व्यन्तर देवोंकी भी (=च) दशहजार वर्ष जघन्य आयु है (यहां अनुवृत्तिलेने के लियेकि सूत्रजोयहां व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट स्थितिनकहकरपहिले जघन्य कही)

सूत्रानुवाद –चशब्द ॥ प्रकृत-समुच्चय अर्थ ॥ = (इस सूत्रमें) च शब्द (स्थितिरूप) प्रकरण के समुच्चके लिये है ॥

तेन ॥ व्यन्तराणाम ॥ अपरा ॥ स्थिति ॥ = तिस (च शब्द) करि व्यन्तर देवनिकी जघन्य आयु

दशवर्षसहस्राणि ॥ इति अवगम्यते । अथ एषाम् ॥ = दश हजार बरस ऐसे जानी जाती है । अब इन व्यन्तर देवोंकी

परा ॥ स्थिति ॥ का ॥ इति अत्र उच्यते । = उत्कृष्ट आयु क्या है ऐसे प्रश्न पर यहां कहाजाता है कि

[2]सूत्रम्—परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ = व्यन्तराणाम् (३८वा सूत्र से) परा स्थिति (२८वा सूत्र से) पल्योपमम् अधिकम् भवति

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी सख्या ४६ वी मानी है ॥

(२) श्वेताम्बर आम्नायमें इस सूत्रका पाठ "परापल्योपमम् ॥४७॥ ऐसा है हमारे यहां स्थिति पल्यसे अधिक है उनके यहां एकही पल्य है ॥

॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

ऽपरा स्थितिरित्यनुवर्त्तते । रत्नप्रभाया दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिर्वेदितव्या ॥

अथ भवनवासिना का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥

चशब्द किमर्थः ? प्रकृतसमुच्चयार्थ ॥ तेन भवनवासिनामपरास्थिति

---

(१) सूत्रम्–दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

= दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् (भूमौ अध्याय ३ सूत्र १ से) अपरा (३३ वा सूत्रसे) स्थिति (२८ वा सूत्रसे) नारकाणाम् (३५ वा सूत्रसे) भवति ॥ ३४ ॥

गुजार्थ—दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् भूमौ = दश हजार वर्ष प्रथम भूमियें (अर्थात् सीमंतक नाम पहिले पाथड़ेमें)
अपरा स्थिति नारकाणाम् = जघन्य आयु नारकी जीवोंकी है

वृत्त्यनुवाद–अपरा स्थितिः इति अनुवर्त्तते [रत्नप्रभायाम् = (इस सूत्रमें) 'अपरा' और 'स्थितिः' ऐसी अनुवृत्ति है । रत्नप्रभा (पहिली भूमि) में
दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिः वेदितव्या = दश हजार वर्ष निकृष्ट आयु जानना चाहिये
अथ भवनवासिनाम् का जघन्या स्थितिः इति = अब (=अथ) भवनवासी देवनिकी क्या जघन्य आयु है । इसलिये कहते हैं कि

(२) सूत्रम्–भवनेषु च ॥ ३७ ॥

= भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि (सूत्र ३६ से) अपरा (सूत्र ३३ से) स्थिति (सूत्र २८ वा से) भवति

भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिः भवति = भवनवासी देवनिमें भी (=च) दश हजार वर्ष जघन्य वा निकृष्ट आयु होती है
वृत्त्यनुवाद–चशब्दः किमर्थः प्रकृत-समुच्चय-अर्थः = इस सूत्रमें च शब्द किसलिये है । स्थितिके प्रकरणके समुच्चयके लिये है ॥
तेन भवनवासिनाम् अपरा स्थितिः = तिस (च शब्द) करि भवनवासी देवोंकी जघन्य आयु

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है । सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४४ वां है ॥
(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें एकसा है सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४५ वीं है ॥

दशवर्षसहस्राणीत्यभिसम्बध्यते ॥ व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते ॥
अथैषां परा स्थितिः का इत्यत्रोच्यते ॥

॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

दशवर्षसहस्राणि॥ इति अभिसम्बध्यते। व्यन्तराणाम्॥ तर्हि =दश हजार वर्ष ऐसा वाक्य इस सूत्रमें) जोड़ा जाता है। तो व्यन्तरोंकी
का॥ जघन्या॥ स्थितिः॥ इति अतः आह। =क्या जघन्य आयु है। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥ = व्यन्तराणाम् च दशवर्षसहस्राणि(३६ वा सूत्रसे) अपरा(३३वा सूत्रसे) स्थिति (२८वासूत्रसे)भवति

व्यन्तराणाम्॥ च दशवर्षसहस्राणि॥ अपरा॥ स्थितिः॥ भवति। =व्यन्तर देवोंकी भी (=च) दशहजार वर्ष जघन्य आयु है (यहां अनुवृत्तिसेने केलियेकि सूत्रछोटाहो व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट स्थितिनकहकरपहिले जघन्य कही)
वृत्त्यनुवादः–चशब्दः॥ प्रकृत-समुच्चय अर्थः॥ =(इस सूत्रमें) च शब्द (स्थितिरूप) प्रकरण के समुच्चय के लिये है ॥
तेन॥ व्यन्तराणाम्॥ अपरा॥ स्थितिः॥ =तिस (च शब्द) करि व्यन्तर देवनिकी जघन्य आयु
दशवर्षसहस्राणि॥ इति अवगम्यते। अथ एषाम्॥ =दश हजार बरस ऐसे जानी जाती है। अब इन व्यन्तर देवोंकी
परा॥ स्थितिः॥ का॥ इति अत्र उच्यते। =उत्कृष्ट आयु क्या है ऐसे प्रश्न पर यहां कहाजाता है कि

[2]सूत्रम्—परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ = व्यन्तराणाम् (३८वा सूत्रसे) परा स्थिति (२८वा सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति

---

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४८ वीं मानी है ॥
(२) श्वेताम्बर आम्नायमें इस सूत्रका पाठ "परापल्योपमम् ॥४९॥" ऐसा है हमारे यहां स्थिति पल्यसे अधिक है उनके यहां एकही पल्य है ॥

तेनैवमभिसम्बन्ध ।ज्योतिष्काणा परा स्थिति पल्योपममधिकमिति॥ अथापरा कियतीत्यतआह–

॥ तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

तस्य पल्योपमस्याष्टभागो ज्योतिष्काणामपरा स्थितिरित्यर्थ ॥

अथ लौकान्तिकाना विशेषोक्ताना स्थितिविशेषो नोक्त । स कियानित्यत्रोच्यते—

तेन॥ एवम्॥ अभिसम्बन्ध॥ ज्योतिष्काणाम्॥ परा॥	=तिस (च शब्द) करि ऐसे सम्बन्ध होता है कि ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट
स्थितिः॥ पल्योपमम्॥ अधिकम्॥ इति॥ अथ	=आयु कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है। आगें
अपरा॥ कियती॥ इति अतः आह	=(ज्योतिषी देवोंकी) जघन्य (स्थिति) कितनी है ऐसे प्रश्नपर इसलिये कहतेहैंकि

[1]तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

= तदष्टभाग ज्योतिष्काणाम् (४० वा सूत्रसे) अपरा, स्थिति (२८ वा सूत्रसे) भवति ॥

सूत्रार्थः–तद् अष्टभागः॥ ज्योतिष्काणाम्॥ अपरा॥ स्थितिः॥ =उस (पल्य प्रमाण) का आठवां भाग ज्योतिषियोंकी जघन्य आयु है।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस इकतालीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदीअनुवाद

तस्य॥ पल्योपमस्य॥ अष्टभाग॥	=तिस पल्यका आठवां भाग
ज्योतिष्काणाम्॥ अपरा॥ स्थितिः॥ इति अर्थः॥	=ज्योतिषी देवोंकी जघन्य आयु है ऐसा अभिप्राय है।
अथ लौकान्तिकानाम्॥ विशेषउक्तानाम्॥ स्थिति-विशेषः॥	=अब विशेष कथित लौकान्तिक देवोंकी स्थितिका प्रभेद
न उक्तः॥ सः॥ कियान्॥ इति अत्र उच्यते	=नहीं कहागयाहै। सो(=स्थिति विशेष)कितना है। ऐसे(प्रश्नपर)यहांकहाजाताहै कि

(१) इस सूत्रका हमारे यहां पाठ और अर्थ एक है। हमारे यहां सामान्यरूपसे वा अविशेष रूपसे (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८ में) ज्योतिषियोंकी यह जघन्य स्थिति है और इस सूत्रमें ४० वां सूत्रसे 'ज्योतिष्काणाम्' की अनुवृत्ति आई है। श्वेताम्बर आम्नायमें 'जघन्या त्वष्टभाग' ऐसा ४८ वां सूत्र सभाष्य० में है। उक्त सभाष्य० के अनुकूल परा पल्योपम् ४७ वां सूत्र से ५२ वां सूत्रमें पल्य शब्द अनु तता है और 'तारकाणाम्' शब्दकी अनुवृत्ति ५१ वां सूत्र 'तारकाणांचतुर्भाग' से आई है इसलिय ५२ वां सूत्र 'तारकाणां तु जघन्या (स्थिति २९ वां सूत्रसे) पल्योपमम् अष्टभाग' ऐसा हुवा अर्थमें दोनों आम्नायोंमें भेद यह हुआ कि श्वेताम्बर आम्नायमें तारकाओंकी जघन्यस्थिति पल्यका आठवां भाग हुई हमारे यहां सब ज्योतिषियोंकी सामान्यरूपसे पल्यका आठवां भाग जघन्य स्थिति हुई। हमारे यहां तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८, १७९ में चन्द्र सूर्य,

पराउत्कृष्टा स्थितिर्व्यन्तराणा पल्योपममधिकम् ॥ इदानीं ज्योतिष्काणा परा स्थितिर्वक्तव्येत्यत आह

॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

चशब्द प्रकृतसमुच्चयार्थ ॥

सूत्रार्थ व्यन्तराणाम्।परा।स्थितिः।पल्योपमम्।अधिकम्।भवति।=व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उनतालीसवा सूत्र पर शब्दश हिंदी अनुवाद

परा।उत्कृष्टा।स्थिति।। =उत्कृष्ट वा प्रकर्ष आयु
व्यन्तराणाम्।पल्योपमम्।अधिकम्।इदानीम्॥ =व्यन्तरोंकी कुछ अधिक पल्य प्रमाण है। अब
ज्योतिष्काणाम्।परा।स्थितिः।वक्तव्या।इति॥अतःआह=ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट आयु कहना चाहिये। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

(1)सूत्रम्—ज्योतिष्काणा च ॥ ४० ॥ =ज्योतिष्काणाम् च स्थिति (२८वा सूत्रसे) परा पल्योपममधिकम् (३९ वां सूत्रसे) भवति ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः-ज्योतिष्काणाम्।च।परा।स्थितिः। =ज्योतिषी देवनिकी उत्कृष्ट स्थिति
पल्योपमम्।अधिकम्।भवति। =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है अर्थात् चंद्रमाकी आयु एक पल्यसे एक लाखबरस अधिक है। सूर्य की आयु एक पल्यसे एक सहस्रबरस अधिक है शुक्रकी एकपल्यसे सौ बरस अधिक है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चालीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिका शब्दश हिंदी अनुवाद

चशब्दः।प्रकृत-समुच्चय-अर्थः। =(इस सूत्रमें) च शब्द प्रकरणके संग्रहके लिये है अर्थात् यहां स्थितिका विषय चलरहा है सो चकार से ३८ वां सूत्रमें वर्णित आयुको यहां जोडागया है

(1) श्वेताम्बरआम्नायमें पाठ "ज्योतिष्काणामधिकम्" ॥ ४८ वां सूत्रहै। हमारे यहां अधिकम् की अनुवृत्ति ३९ वां सूत्रसे आती है अर्थ एकहै ॥

॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

[1] सूत्रम्—लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

= सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा(३६वा सूत्रसे)अपरा (३३वा सूत्रसे)स्थिति (२८वा सूत्रसे) भवति॥

() जघन्या त्वष्टभागः (सूत्र ५२) =तारकाणांतु जघन्या स्थितिः पल्योपमाष्टभागः =और ताराओंकी जघन्य स्थिति पल्य के आठवां भाग प्रमाण है

() चतुर्भाग शेषाणाम्(सूत्र५३) =तारकाभ्यः शेषाणांज्योतिष्काणां चतुर्भागः पल्योपमस्यापरास्थिति

=ताराओंसे बचे हुए (सत्ताईस नक्षत्र सूर्य चन्द्र म ग्ल बुध, बृहस्पति शुक्र शनिश्चर राहु और केतु ये नौ ग्रह) ज्योतिषीदेवोंकी जघन्य आयु पल्यके चौथाई भाग प्रमाण है ॥

() तदष्टभागो जघन्योभयेषाम् (वार्तिक ८) =तस्य पल्योपमस्याष्टभागः जघन्या स्थिति उभयेषां तारकाणां नक्षत्राणां च भवति(राजवार्तिकपृष्ठ१७६)

=तिस पल्यके आठवां भाग प्रमाण जघन्य आयु दोनों ताराओं और नक्षत्रों की होती है (दोनों आम्नायोंमें ताराओंकी निकृष्ट स्थिति एक है परन्तु नक्षत्रोंकी जघन्यस्थिति श्वेताम्बरसमाजके समाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके५२वां सूत्रके अनुकूल चौथाई पल्य है हमारे यहांसे चूकी हुई)

() शेषाणां चतुर्भाग (वार्तिक ९) शेषाणां सूर्यादीनां पल्योपम चतुर्भागा जघन्य स्थितिर्वेदव्या (राजवार्तिक पृष्ठ १७७)

=बचेहुए सूर्य चन्द्र, मंगल, बुध बृहस्पति शुक्र, शनिश्चर राहु केतु ये नवग्रहोंकी जघन्य स्थिति पल्यके चौथाई भाग प्रमाण जानो ॥ इस सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है परन्तु हमारे यहां नक्षत्रोंकी जघन्य आयु पल्य के आठवां भाग है श्वेताम्बर समाज में पल्य का चौथाई भाग है

(१) इसके सम्बन्धमें पं० पन्नालाल वाकलीवालजीने यह लिखा है कि यह श्री पूज्यपाद स्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिका वार्तिक है । क्योंकि श्री महाकलंकदेवने 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिका कहा है । मेरी समझमें यह नहीं आया कि अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिकाः यह वाक्य कहांसे लिया है पं० पन्नालालजी दूनी पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर पं०गजाधरलालजी अनुवादित राजवार्तिकका पाठ कई हस्तलिखित राजवार्तिकप्रतियोंके पाठ और वाकली वालजीकी स्वयं मुद्रित कीहुई राजवार्तिकभी पाठ देखेगये परन्तु हमको यह सूत्ररूपमें राजवार्तिकमें अर्थप्रकाशिकामें सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकामें श्रुतसागरी टीकामें मिला है । कई प्रतियें श्लोकवार्तिक पं० सदासुखजी कृत सोलापुर जयपुरीका सं० १६१० और श्वेताम्बर आम्नायके समाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र श्री सिद्धसेनसूरिरचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका जिसमें ८२ सहस्र श्लोकसे अधिक हैं उपर्युक्त वाक्य न तो यह सूत्र रूपमेंही मिला और न वार्तिकरूपमेंही मिला ॥ कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह सूत्रपूज्यपाद स्वामी कृत वार्तिक है ॥ बहुधा भाष्यकारों और टीकाकारोंकी उत्थानिकाओं से कि सूत्रमाहुः (ऐसा श्रुतसागरी टीका) 'इत्याख्यत (ऐसा तत्त्वार्थ राजवार्तिक सर्वार्थसिद्धि) स्पष्ट है कि यह सूत्र है ॥



६ मह २७ (अभिजित सहित) २८ नक्षत्रों और तारकाओंकी पृथक पृथक् विशेष रूपसे जघन्य स्थिति वार्तिकोंमें दीगई है उसकी तुलनात्मक सूची श्वेताम्बरसमाजके तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके सूत्र४६ से ५१ तक नीचे दीजाती है कि विषय स्पष्ट होजावे। श्वेताम्बर आम्नायमें चतुर्भागः शेषाणाम् ५१' सूत्रमें यह चौथा अध्याय पूरा होता है। इनके यहां 'लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् सूत्र या वार्तिक नहीं है॥

श्वेताम्बर आम्नायके 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्रसे उद्धृत

() ग्रहाणामेकम् (सूत्र४६) =ग्रहाणामेक पल्योपमं परा स्थितिर्भवति =सूर्य चन्द्र मंगल बुध, बृहस्पति शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु इन नव ग्रहोंकी (उत्कृष्ट स्थिति) पल्य प्रमाण होती है

() नक्षत्राणामर्धम् (तत्त्वार्थ० सूत्र ५०) =नक्षत्राणां देवानां पल्योपमार्धं परा स्थितिर्भवति =(२७ या २८) नक्षत्रदेवोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्यकी होती है

() तारकाणां चतुर्भागः (सूत्र ५१) =तारकाणां पल्योपम चतुर्भागः परा स्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट आयु पल्यका चौथाई भाग प्रमाण है॥

दिगम्बर आम्नायके तत्त्वार्थराजवार्तिकालंकारसे उद्धृत

(क) चंद्राणां वर्षं शतसहस्राधिकम् (वार्तिक १) =चंद्राणां वर्षशतसहस्राधिकं पल्योपम परा स्थिति =चन्द्रमाओंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक लाख बरस अधिक होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)

() सूर्याणां वर्षसहस्राधिकम् (वार्तिक २) =वर्षसहस्राधिकं पल्योपम सूर्याणां परा स्थितिः =सूर्योंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक हजार बरस अधिक है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)

() शुक्राणां शताधिकम् (वार्तिक३) =शुक्राणां वर्षशताधिकं पल्योपम परा स्थितिः =शुक्रोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे एकसौ बरस अधिक है (राज०पृष्ठ१७८)

() बृहस्पतीनां पूर्णम् (वार्तिक ४) बृहस्पतीनाम् पूर्णपल्योपमम् परा स्थिति =बृहस्पतियोंकी उत्कृष्ट आयु पूरी एक पल्य प्रमाण है (राज० पृष्ठ १७८)

() शेषाणामर्धम्(वार्तिक ५) शेषाणां ग्रहाणांबुधादीनां पल्योपमस्यार्धंपरास्थितिः =बचे हुए अर्थात् चन्द्रमा सूर्य शुक्र बृहस्पतियोंके अतिरिक्त बुध मंगल शनिश्चर राहु और केतु ग्रहोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्य प्रमाण होती है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८)

() नक्षत्राणां च (वार्तिक ६) =नक्षत्राणाम् अर्धपल्योपम परा स्थिति भवति (राज० पृष्ठ १७८) =(सत्ताईस या अट्ठाईस) नक्षत्रोंकी उत्कृष्ट आयु आधेपल्य होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)

() तारकाणां चतुर्भागः (वार्तिक७) =पल्योपमस्यचतुर्भाग तारकाणांपरास्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट स्थिति पल्यके चौथाईभाग प्रमाणहै (राजवार्तिक पृष्ठ १७८)

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

इदानीं, सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातार्थः । अथाजीवपदार्थो विचारप्राप्तस्तस्य सञ्ज्ञाभेदसंकीर्तनार्थमिदमुच्यते ।

॥ (१) अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः । इहोपचाराद्ध्यारोप्यते । कुत उपचारः ? । यथा शरीरं पुद्गलद्रव्य

अथ॥पञ्चमः ॥, अध्यायः ॥ इदानीं॥सम्यग्दर्शनस्य ॥ = पाँचवा अध्याय प्रारम्भ (= अथ) है । अब सम्यग्दर्शनके विषय-भावेन ॥ उपक्षिप्तेषु ॥ जीवादिषु ॥ जीव पदार्थ ॥ = विषयभावकरि गर्भित (= उपक्षिप्तेषु) जीवादिकोंमें जीव पदार्थ है व्याख्यात-अर्थ ॥ = (सो) कहा हुआ विषय (= अर्थ) है (अर्थात् जीवका वर्णन कर चुके हैं)

भावार्थ—सम्यक्त्वके विषय निबन्धमें जीवादिक सात तत्त्व (अ० १ सूत्र ४) गर्भित हैं उनमेंसे जीव द्रव्यका व्याख्यान कर चुके हैं ।

अथ॥अजीव-पदार्थः ॥ विचार-प्राप्तः ॥ तस्य ॥ सञ्ज्ञा = अब (= अथ) अजीवपदार्थ विचारमें प्राप्त हुआ तिस (अजीवपदार्थ) के नाम भेद-संकीर्तन-अर्थम् ॥ इदम् ॥ उच्यते । = और भेद कहनेके लिये यह [illegible] जाता है कि—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला ॥ १ ॥

धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलाः ॥ अजीव-कायाः ॥ = धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुप्रदेशी (काय) हैं अर्थात् इन प्रत्येक प्रत्येक द्रव्यमें अचेतनपना और बहुप्रदेश या बहुत अवयवोंका होना पाया जाता है ।

कायशब्दः ॥ शरीरे ॥ व्युत्पादितः ॥ = (इस सूत्र में) काय शब्द शरीर (अर्थ) में व्याकरण की रीतिसे उत्पन्न हुआ है इह॥उपचारात् ॥ अध्यारोप्यते । यहां व्यवहारसे अध्यारोपण कियागया है अथवा संस्थापन या नियत किया गया है

कुतः॥ उपचारः ॥ यथा॥शरीरं ॥ पुद्गलद्रव्य— = (प्रश्न) कहांसे उपचार किया गया है । (उत्तर) जैसे शरीर पुद्गलद्रव्यके

---

(१) इस सूत्रका पाठ और [illegible] दोनों आम्नायोंमें एकसा है । धर्माधर्मा भी अचोपहाभ्याम् 'वा' ॥४।४६अष्टाध्यायी सूत्रसे ठीक है ।

अनिशिष्टा सर्वे ते शुक्ललेश्या पञ्चहस्तोत्सेधशरीरा

॥ चतुर्णिकायदेवानां । स्थानं भेदा सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिर्लेश्या। तुर्याध्याये निरूपितम्॥१॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां चतुर्थोऽध्याय ॥

सूत्रार्थः सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा अपरा	=सब लौकान्तिक (देव) निकी (देखो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जघन्य
स्थितिः अष्टौ सागरोपमाणि	=आयु आठ सागर प्रमाण है
पृथक्त्वाद् - अवशिष्टानाम्	=अवशेष या बचेहुये अर्थात् सर्व प्रकारके देवोंसे जिनकी स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य कही जो शेषरहे एस लौकान्तिकदेव
सर्वे ते शुक्ल लेश्या पञ्च हस्त उत्सेध शरीराः	=वे समस्त शुक्ललेश्याके धारक, पांच हाथकी ऊंचाईके शरीर सहित हैं अर्थात् सब लौकान्तिक देवोंके शुक्ल लेश्या है और पांच पांच हाथ ऊंचा शरीर है ॥
चतुर्णिकाय-देवानाम् स्थानम्	=चार समुदायके देवोंके निवास स्थान (सूत्र १३, १४, १५, १८, १९, २३, २४)
भेदाः	=तथा भेद (सूत्र १, ३, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, ४८, [illegible] २५, २६)
सुखादिकम्	=और सुखादिक (सूत्र ७, ८, ९, २०, २१, २७)
पर अपरा स्थितिः	=उत्कृष्ट और जघन्य आयु (देखो सूत्र ३४, ३५, ४२,)
(परा स्थिति)	=यहुरि परास्थिति (सूत्र २८ से ३२ तक ३९, ४०)
(अपरा स्थितिः) लेश्या	=और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा लेश्या (सूत्र२,२२)
तुर्याध्याये निरूपितम्	=चौथे अध्यायमें वर्णित हैं ।
इति तत्त्वार्थ-वृत्तौ	=इसप्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (=वृत्तौ)
सर्वार्थसिद्धि-साञ्ज्ञकायाम्	=सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें
चतुर्थः अध्यायः ॥	=चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥

अविशिष्टा सर्वे ते शुक्ललेश्या पञ्चहस्तोत्सेधशरीरा

॥ चतुर्णिकायदेवानां । स्थानं भेदा सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिर्लेश्या। तुर्याध्याये निरूपितम्॥१॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसाञ्ज्ञिकायां चतुर्थोऽध्याय ॥

सूत्रार्थ सर्वेषाम्[1] लौकान्तिकानाम्[1] परा[1] अपरा[1]	=सब लौकान्तिक (देव) निकी (देखो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जघन्य
स्थितिः[1] अष्टौ[1] सागर प्रमाणा[1]	=आयु आठ सागर प्रमाण है
अवशिष्टाः –अहमिन्द्राः[1]	=अवशेष वा बचेहुए अर्थात् सर्व प्रकारके देवोंसे जिनकी स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य कही जो शेषरहे एसे लौकान्तिकदेव
सर्वे[1] ते[1] शुक्ल लेश्या[1] पञ्च-हस्त उत्सेध शरीरा[1]	=वे समस्त शुक्ललेश्याके धारक, पांच हाथकी ऊंचाईके शरीर सहित हैं अर्थात् सब लौकान्तिक देवोंके शुक्ल लेश्या है और पांच पांच हाथ ऊंचा शरीर है ॥
चतुर्णिकाय-देवानाम्[1] स्थानम्[1]	=चार समुदायके देवोंके निवासस्थान (सूत्र १३, १४, १५, १८, १९, २३, २४)
भेदाः[1]	=तथा भेद (सूत्र १, २, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, १८, शाशाश २५, २६)
सुखादिकम्[1]	=और सुखादिक (सूत्र ७, ८, ९, २०, २१, २७)
पर अपरा- स्थिति[1]	=उत्कृष्ट और जघन्य आयु (देखो सूत्र ३४, ३५, ४२,)
(परा[1] स्थिति[1])	=यहुरि परास्थिति (सूत्र २८ से ३२ तक ३९, ४०)
(अपरा[1] स्थिति[1]) लेश्या[1]	=और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा लेश्या (सूत्र २, २२)
तुर्याध्याये[1] निरूपितम्[1]	=चौथे अध्यायमें वर्णित हैं।

इति[1] तत्त्वार्थ-वृत्तौ[1] =इसप्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (=वृत्तौ)

सर्वार्थसिद्धि-साञ्ज्ञिकायाम्[1] =सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें

चतुर्थः[1] अध्यायः[1] ॥ =चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥

ननु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोग । इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अजीव शब्दोऽकाये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे । किमर्थं कायशब्दः ? । प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थं । धर्मादीनां प्रदेशा बहव इति ॥ ननु च असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रदेशबहुत्वं ज्ञापितम् । सत्य-मिदम् । परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारणं विज्ञायते असंख्येयाः प्रदेशा न संख्येया नाप्यनन्ता इति ॥

ननु * च * नील—उत्पल—आदिषु । = पुनि प्रश्न । नील-कमल आदिक (कर्मधारयसमास) विषें

व्यभिचारे । सति । विशेषण—विशेष्य—योगः । = वही गुण दूसरी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेषण और विशेष्यका मेल होता है

अर्थात् प्रश्न यह है कि विशेष्य में जो गुण होता है वह दूसरी वस्तुओं में भी पाया जाता है तब विशेषण विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता यथासंभव पाई जाती है इनके अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुयें हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है तो यहां अजीव काय विषें क्या व्यभिचार है ।

इह * अपि * व्यभिचार—योगः । अस्ति = (उत्तर) यहां भी (इस 'अजीवकाय' कर्मधारय समास में) व्यभिचारका मेल वा जोड़ है

अजीव—शब्दः । अकाये । काले । अपि वर्तते = (क्योंकि) अजीवशब्द काय रहित वा अप्रदेशी कालद्रव्यमें भी वर्तता है

कायः । अपि * जीवे । किम् * अर्थः । = (और) बहुत प्रदेशोंका होना भी (अजीवत्व रहित) जीवद्रव्यमें वर्त है । कौन अर्थ है

कायशब्दः । प्रदेश—बहुत्व—ज्ञापन—अर्थः । = काय शब्द (उत्तर) प्रदेशोंका बहुतपना जनावनेके लिये है कि

धर्म—आदीनां । प्रदेशाः । बहवः । इति * = धर्म—अधर्म—आकाश—पुद्गल के प्रदेश बहुत हैं

ननु * च * असंख्येयाः । प्रदेशाः । धर्म—अधर्म— = पुनि प्रश्न असंख्यातअसंख्यात प्रदेश धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और

एक—जीवानाम् । इति * अनेन । एव * प्रदेश— = एक जीव के हैं इस (अगले आठवां सूत्र) करि ही प्रदेशोंकी

बहुत्वं । ज्ञापितम् । सत्यम् । इदम् । = बहुलता जनाई जाती है (उत्तर) यह सत्य है

परं किन्तु अस्मिन् । विधौ । सति । तद् अवधारणं । = किन्तु केवल (= परं) इस विधि (आठवां सूत्र) के होनेपर उस (प्रदेश बहुत्व) का नियम

विज्ञायते । असंख्येयाः । प्रदेशाः । न * संख्येयाः । = बतलाया गया है कि असंख्यात प्रदेश हैं, संख्यात नहीं हैं

न * अपि * अनन्ताः । इति ॥ = अनन्त भी नहीं हैं अर्थात् केवल असंख्यात ही हैं—भावार्थ इस सूत्र में कायशब्दसे

प्रचयात्मकं तथा धर्मादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया काया इव काया इति । अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः ॥ विशेषण विशेष्येणेति वृत्तिः ॥

प्रचय-आत्मकं ॥। तथा-धर्मादिषु ॥ अपि॰	= समूहरूप (= प्रचयात्मक) है तैसे धर्मादिकद्रव्योंमें भी
प्रदेश-प्रचय-अपेक्षया ॥ काया ॥ इव-इति॰	= प्रदेशोंके समूहरूप विवक्षासे कायासरीखा (व्यवहार) है इसप्रकार
कायाः ॥ च॰ अजीवाः ॥	= (ये धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल) काया हैं । और (= च) अजीव
च॰ कायाः ॥ ते ॥ अजीवकायाः ॥	= और (= च) काय हैं ते अजीव काया हैं अर्थात् ये चार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुत प्रदेशी हैं इसलिये ये अजीवकाय (अचेतन और बहुप्रदेशी) हैं । ये बहु प्रदेशी हैं इससे ये द्रव्य काय कहलाते हैं और चेतना रहित हैं इससे अजीव कहलाते हैं
विशेषण ॥ विशेष्येण ॥ इति॰ वृत्तिः ॥	= गुणवाचक(अजीव शब्द)विशेष्य(कायशब्द)से मिलकर ऐसें (कर्मधारय) समास हुआ

• वपर्यमिपानं वृत्ति—एकरूपसे अर्थ प्रकाश करनेकी शक्तिको वृत्ति कहते हैं । उस वृत्तिके पांच भेद हैं जैसे कृत्, 'तद्धित' समास एकशेष और सनाद्यन्त धातु हैं । यहां पर वृत्ति शब्दका अर्थ केवल समास है । अनेक पदोंको एकमें मिला देनेको समास कहते हैं । वह पांच प्रकार का है (i) जिसका कोई विशेष नाम नहीं है वह केवल समास कहाता है (ii) बहुधा जिसमें पूर्व पदका अर्थ प्रधान होता है वह अव्ययी भाव समास है (iii) प्रायः जिसमें उत्तर पदका अर्थ प्रधान हो वह तत्पुरुष समास है । तत्पुरुष समास का एक भेद कर्मधारय समास है । इसमें दोनों विभक्ति समान होती हैं और विशेषण विशेष्य भाव होता है । जैसे यहां अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः इसमें अजीवाः और कायाः दोनों समान विभक्ति (प्रथमाविभक्ति बहु वचन पुल्लिंग) हैं ॥ (प्रश्न) यहां पर ये काया कैसे गुण या विशेषण सहित हैं । (उत्तर) चेतना रहित उन कायाओंका गुण है ॥ ऐसे "अजीवाः" विशेषण हुआ और काया विशेष्य हुआ इसलिये विशेषण और विशेष्य भाव हुआ ॥ कर्मधारय का एक भेद द्विगु है । इसका प्रथम संख्या वाचक शब्द होता है (iv) जिसमें समासके पदोंको छोड़कर और ही पदका अर्थ प्रधान हो वह

ननु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोग । इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अजीव शब्दोऽकाये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे । किमर्थं कायशब्द ? । प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थं । धर्मादीना प्रदेशा बहव इति ॥ ननु च असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रदेशबहुत्वं ज्ञापितम्। सत्यमिदम्। परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारणं विज्ञायते असंख्येया प्रदेशा न संख्येया नाप्यनन्ता इति ॥

ननु * च * नील—उत्पल—आदिषु ॥ = पुनि प्रश्न । नील-कमल आदिक (कर्मधारयसमास) विषैं

व्यभिचारे ॥ सति ॥ विशेषण—विशेष्य—योगः ॥ = यदि गुण दूसरी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेषण और विशेष्यका मेल होता है अर्थात् प्रश्न यह है कि विशेष्य में जो गुण होता है वह दूसरी वस्तुओं में भी पाया जाता है तब विशेषण विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता अव्यभिचरित्व पाई जाती है इनके अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुएं हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है तो यहां अजीव काय विषैं क्या व्यभिचार है ।

इह * अपि * व्यभिचार—योगः ॥ अस्ति ॥ = (उत्तर) यहां भी(इस 'अजीवकाय' कर्मधारय समास में) व्यभिचारका मेल या जोड़ है

अजीव—शब्दः ॥ अकाये ॥ काले ॥ अपि*वर्तते ॥ = (क्योंकि) अजीवशब्द काय रहित वा अप्रदेशी कालद्रव्यमें भी वर्तता है

कायः ॥ अपि * जीवे ॥ किम् * अर्थः ॥ = (और) बहुत प्रदेशोंका होना भी (अजीवत्व रहित) जीवद्रव्यमें वर्त है। कौन अर्थ है

कायशब्दः ॥ ? प्रदेश—बहुत्व—ज्ञापन—अर्थं ॥ = काय शब्द (उत्तर) प्रदेशोंका बहुपना जनावनेके लिये है कि

धर्म—आदीनां ॥ प्रदेशाः ॥ बहव ॥ इति * = धर्म—अधर्म—आकाश—पुद्गल के प्रदेश बहुत हैं

ननु*च*असंख्येया ॥ प्रदेशाः ॥ धर्म—अधर्म— = पुनि प्रश्न असंख्यातअसंख्यात प्रदेश धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और

एक—जीवानाम् ॥ इति*अनेन ॥ एव* प्रदेश— = एक जीव के हैं इस (अगले आठवां सूत्र) करि ही प्रदेशोंकी

बहुत्वं ॥ ज्ञापितम् ॥ सत्यम् ॥ इदम् ॥ = प्रचुरता बताई जाती है (उत्तर) यह सत्य है

परं किन्तु—अस्मिन् ॥ विधौ ॥ सति ॥ तद्—अवधारणं ॥ = किन्तु केवल (= पर) इस विधि (आठवां सूत्र) के होनेपर उस (प्रदेश बहुत्व) का नियम

विज्ञायते ॥ असंख्येयाः ॥ प्रदेशा ॥ न*संख्येयाः ॥ = जतलाया गया है कि असंख्यात प्रदेश हैं, संख्यात नहीं हैं

न*अपि*अनन्ताः ॥ इति* ॥ = अनन्त भी नहीं है अर्थात् केवल असंख्यात ही हैं—आशय इस सूत्र में कायशब्दसे

कालस्य प्रदेशप्रचयाभावज्ञापनार्थं च इह कायग्रहणम् । कालो वक्ष्यते । तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह कायग्रहणम् ॥ यथाऽणोः प्रदेशमात्रत्वाद्द्वितीयादयोऽस्य न सन्तीत्यप्रदेशोऽणुः । तथा कालपरमाणुरप्येक प्रदेशत्वादप्रदेश इति ॥ तेषां धर्मादीनामजीव इति सामान्यसञ्ज्ञा जीवलक्षणाभावमुखेन प्रवृत्ता ॥ धर्माधर्माकाशपुद्गला इति विशेषसञ्ज्ञा सामयिक्य ॥

अत्राह सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्येत्येवमादिषु द्रव्याण्युक्तानि कानि तानीत्युच्यते—

पञ्चत्व सामान्य बताया है और आठवें सूत्रमें प्रदेशों की संख्या बताई है

कालस्य ॥ प्रदेश–प्रचय–अभाव–ज्ञापन–अर्थं ॥ च = कालके प्रदेशसमूहका अभाव बतानेके लिये भी (= च)

इह कायग्रहणम् ॥ कालः ॥ वक्ष्यते ॥ तस्य ॥ प्रदेश– = यहां सूत्रमें कायका ग्रहण है काल द्रव्य (३९, ४० वां सूत्रों में) कहेंगे तिसके प्रदेशोंके

प्रतिषेध–अर्थम् ॥ इह काय–ग्रहणम् ॥ यथा अणोः ॥ = निषेधके लिये यहां कायका ग्रहण है जैसे पुद्गलके अणुके

प्रदेश–मात्रत्वात् ॥ द्वितीय–आदयः ॥ अस्य ॥ = केवल एक प्रदेश होनेसे या एक प्रदेशपनासे दूसरा (प्रदेश) आदिक जिस (पुद्गल अणु) के

न सन्ति इति अप्रदेशः ॥ अणु ॥ तथा कालः– = नहीं है ऐसा अप्रदेश अर्थात् दूसरा प्रदेश रहित अणु है वैसे कालका

परमाणुः ॥ अपि एक–प्रदेशत्वात् ॥ अप्रदेशः ॥ इति = परमाणु भी एकप्रदेशमात्रसे अथवा एक प्रदेश होनेसे अप्रदेश है

तेषां ॥ धर्म–आदीनां ॥ अजीवः ॥ इति सामान्यसञ्ज्ञा ॥ = इन धर्म अधर्म–आकाश–पुद्गल की अजीव ऐसी सामान्य संज्ञा है अर्थात् ऐसा नाम है कि अचेतनपना इन चारोंमें साधारण या एकसा धर्म अथवा स्वभाव है

और–जीव–लक्षण–अभाव–मुखेन ॥ प्रवृत्ता ॥ = सो (यह सामान्य संज्ञा) चैतन्य स्वभावके अभावद्वाराकरि प्रवर्ते है अर्थात् सामान्यसंज्ञा के अस्तित्व को इन चारोंमें जो अचेतनपना है सो जताये है

धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः ॥ इति विशेषसञ्ज्ञा ॥ = धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल ऐसी भेद रूप संज्ञायें हैं

सामयिक्य ॥ = और शास्त्र सम्बन्धी है (= सामायिक्य) अर्थात् सिद्धान्त और आगम पठित हैं आचार्य सर्वज्ञ भाषित आगम (शास्त्र) में ये संज्ञायें रूढि हैं और प्रत्येक २ धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल अपने २ संकेत से प्रवर्तती हैं

अत्र आह ॥ सर्व–द्रव्य–पर्यायेषु ॥ केवलस्य ॥ = यहां शिष्य पूछता है कि समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों में केवल ज्ञान के

इति एवं आदिषु ॥ द्रव्याणि उक्तानि कानि तानि इति उच्यते = इत्यादिक (सूत्रों) में (देखो २९ वां सूत्र अ० १) द्रव्य कहे गये हैं वे कौन हैं ऐसा पूछा जावा कि

॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥

यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि॥ द्रव्यत्वयोगाद्रव्यमिति चेन्न। उभयासिद्धेः ॥यथा दण्डदण्डिनोर्योगो भवति पृथक्सिद्धयो न च तथाद्रव्यद्रव्यत्वे पृथक्सिद्धेस्त ॥यद्यपृथक्सिद्धयोरपियोग स्यात्

धर्मः—धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गला ,। द्रव्याणि ;॥। = धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल द्रव्य हैं। जीव, काल, (सूत्र २, ३९ में) कहेंगे ऐसे हैं(१)द्रव्य हैं
द्रव्यलुवाद (२) यथास्वं ॥। (३) पर्यायै ,। द्रूयन्ते T = स्वरूप (स्व) के अनुसार अथवा जैसा स्वरूप हो जिसकी पर्यायोंसे प्राप्त किये जाते हैं
द्रवन्ति T वा तानि॥। द्रव्याणि ;॥। द्रव्यत्वयोगात्। = अथवा (पर्यायोंको) प्राप्त होते हैं वे द्रव्य हैं। द्रव्यपनाके सम्बन्धसे
द्रव्यम् ॥इति#चेत्# = द्रव्य है ऐसी शंका या प्रश्न (= चेत्) है ॥
न# उभय—असिद्धेः ॥ = (उत्तर) (द्रव्यत्व के योग से द्रव्य) नहीं है (क्योंकि) (द्रव्यत्व तथा द्रव्य) दोनों असिद्ध हैं।
यथा#पृथक्सिद्धयो ॥। दंडदण्डिनोः ॥।योगः ;।भवतिT = जैसे (दंड और पुरुष) न्यारे सिद्ध होनेपर दंड और दंडी (पुरुष) में सम्बन्ध होता है
न#च#तथा#द्रव्य—द्रव्यत्वे ॥। पृथक्# सिद्ध ॥। स्तः T = पुनरि (च) नहीं है तैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे सिद्ध। तात्पर्य यह है कि शिष्य के प्रश्न करने पर कि द्रव्यपना के संयोगसे द्रव्य होता है। यदि उसमें द्रव्यत्वकी विद्यमानता न हो तो द्रव्यका अस्तित्व सम्भव नहीं है तिसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि जैसे दंड और पुरुष न्यारे न्यारे सिद्ध हैं और जब पुरुष दंड को धारण करे तब दंडी कहलावे, बिना दंडके सम्बन्धके उसको दंडी नहीं कह सक्ते। जैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे न्यारे नहीं दीखते हैं और न सिद्ध हैं तिस कारणसे द्रव्यपनाके योगसे द्रव्य हो सक्ती है यह तुम्हारी शंका ठीक नहीं है (फेरिआचार्य कहते हैं--
यदि#अपृथक् # सिद्धयोः ॥। अपि# योगः ॥ स्यात्T = जो (द्रव्यत्व और द्रव्यमें) भिन्न भिन्न सिद्ध न होनेपर भी सम्बन्ध हो तो

(१) हमारे यहां इस सूत्रका सर्वत्र एक अर्थ और एक ही पाठ है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "द्रव्याणि जीवाश्च" ऐसा दूसरा सूत्र है अर्थात् सभाष्य॰ में "धर्म अधर्म आकाश, पुद्गल और सपूर्ण जीव ये पांच द्रव्य हैं" ऐसा अर्थ है कालको द्रव्य नहीं माना है॥

(२) यथास्वं शब्द अव्ययीभावसमास है और अव्ययीभावसमास नपुंसक लिङ्ग ही होता है।

(३) इस वाक्यके गुप्त शब्दोंको प्रकट करनेसे ऐसे वाक्य स्पष्ट होजाता है कि—पर्यायैः द्रूयन्ते तानि द्रव्याणि वा = पर्यायोंसे प्राप्त किये जाय वे द्रव्य हैं अथवा (= वा। पर्यायान् ;। द्रवन्ति तानि ;॥ द्रव्याणि ॥ = पर्यायों को (जो) प्राप्त हों वे द्रव्य हैं।

आकाशकुसुमस्य प्रकृतिपुरुषस्य द्वितीयशिरसश्च योगः स्यादिति ॥ अथ पृथक्सिद्धिरभ्युपगम्यते, द्रव्यत्वकल्पना निरर्थिका । गुणसमुदायो द्रव्यमिति चेत्तत्रापि गुणानां समुदायस्य च भेदाभावे तद्द्रव्यव्यपदेशो नोपपद्यते । भेदाभ्युपगमे च पूर्वोक्त एव दोषः ॥ ननु गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्त इति ।

आकाश–कुसुमस्य ।।। (योगः स्यात्) प्रकृतिपुरुषस्य ।। च = (आकाशमोर) आकाश पुष्पके सम्बन्ध हो जाय और (= च) स्वाभाविक पुरुषके अर्थात् स्वभावसे एक मस्तकवाले पुरुषके

द्वितीय–शिरसः ।। योगः ।। स्यात् । इति — दूसरे मस्तकका सम्बन्ध हो जाय (इसी प्रकार द्रव्यतो द्रव्यत्वरूप है ही जिसके फिर दूसरे द्रव्यत्वका योग ठहरे)

अथ पृथक् सिद्धिः ।।। अभ्युपगम्यते — पक्षान्तरमें अथवा जब (द्रव्य और द्रव्यत्व) न्यारे सिद्ध मानेजाते हैं तो

द्रव्यत्व–कल्पना ।।। निरर्थिका ।।। = द्रव्यपनाकी कल्पना निष्प्रयोजन है अर्थात् हमको द्रव्य सिद्ध करना है और जब द्रव्यका अस्तित्व हमने भिन्न मान लिया पुनः यह कहना कि द्रव्य के द्रव्यत्व का योगसे तिस हेतुसे द्रव्य है निरर्थक है क्योंकि द्रव्यकी विद्यमानता तो हम मान ही बैठे हैं

गुण–समुदायः ।। द्रव्यम् ।।। इति चेत् तत्र अपि = गुणोंका समूह है सो द्रव्य है ऐसा प्रश्न अथवा शंका है (उत्तर) वहां भी

गुणानां ।। समुदायस्य ।। च भेद–अभावे ।। तत्द्रव्य = गुणोंके और समुदायके (सर्वथा) भेद न माननेमें उस द्रव्यका (पृथक्)

व्यपदेशः ।। न उपपद्यते । = नाम प्राप्त नहीं होता है (क्योंकि गुणोंका समुदाय कहा तब द्रव्य कहां)

भेद–अभ्युपगमे ।। च पूर्व–उक्त. ।। एव दोषः ।। = और (च) गुणनिके और समुदायके भेद माननेमें पहिले कहा हुआ ही दूषण आता है अर्थात् उस द्रव्य नामकी अप्राप्ति आती है (क्योंकि जब समुदाय गुणोंसे भिन्न ठहरा तब गुणोंका समुदाय क्यों कहना चाहिए उसको तो गुणोंसे पृथक् ही मान लिया है

ननु गुणान् ।। द्रवन्ति । गुणैः ।। वा द्रूयन्ते । इति = (इसी सम्बन्धमें पुनि) प्रश्न गुणोंको प्राप्त होता है अथवा गुणोंकरि प्राप्त किया जाता है (सो तुम्हारे कथनानुसार द्रव्य है) ऐसे

विग्रहेऽपि स एव दोष इति चेन्न । कथञ्चिद्भेदाभेदोपपत्तेस्तद्व्यपदेशसिद्धिः व्यतिरेकेणानुपलब्धेरभेदः सञ्ज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदाद्भेद इति ॥ प्रकृता धर्मादयो बहवस्तत्सामानाधिकरण्याद्बहुत्वनिर्देशः ॥

विग्रहे । * अपि ॥ सः ॥ एव * दोषः ॥ इति * चेत् *	= द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करनेवाले वाक्यमें भी वही दोष आता है। ऐसी शंका है अर्थात् द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति आती है ऐसा प्रश्न है।
न *	= (उत्तर) (द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति का दूषण) नहीं आता है
कथञ्चित् * भेद अभेद-उपपत्तेः ॥	= (क्योंकि गुणोंकि और समुदायके या द्रव्यके) कथंचित् भेद और कथंचित् उनमें अभेद माननेसे।
तद्-व्यपदेश-सिद्धिः ॥ व्यतिरेकेण ॥	= उस (द्रव्य) के नाम (= व्यपदेश) की सिद्धि होय है (गुण और द्रव्य में) भिन्नता सहित
अनुपलब्धेः ॥ अभेदः ॥ सञ्ज्ञा-लक्षण-प्रयोजनादि-	= न दीखने (के हेतु) से अभेद है (और) संज्ञा (संख्या) लक्षण और प्रयोजनादिक
भेदात् ॥ भेदः ॥ इति * प्रकृताः ॥ धर्मादयः ॥ बहवः ॥	= भेद करि भेद है । प्रकरणरूप धर्मादिक (द्रव्य) बहुत हैं
तद्-समान-अधिकरणत्वात् ॥ बहुत्व-निर्देशः ॥	= सो समान आधार के योग से (इस सूत्र में) बहु वचनता का निरूपण है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश पुद्गल पूर्व सूत्रमें ये चार द्रव्य हैं और बहुवचन हैं इसलिये इस सूत्रमें ('द्रव्याणि' ऐसा शब्द बहुवचन में आये हैं ।)

(१) कृत्, तद्धित, समास एकशेष, सनाद्यन्तधातु इन पाँच प्रकारकी वृत्तियोंमेंसे किसी भेदके अर्थको बोधन करनेवाले वाक्यको विग्रह कहते हैं । विग्रह लौकिक और अलौकिक दो प्रकारका है जैसे राजपुरुष का लौकिक विग्रह राज्ञः पुरुषः होगा और अलौकिक विग्रह राजन् अस्—पुरुष सु होगा ॥ इसलिये "गुणान् द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते" यह लौकिक विग्रह द्रव्य शब्दका (जो वृत्तिके पहिले भेदमें धातु से बना है ॥ इस हेतु से विग्रह वाक्य का अनुवाद साफ रूप से ये हुआ कि "द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करने वाले वाक्यमें भी" अर्थात् गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते में या इत्यादि ॥

स्यादेतत्संख्यानुवृत्तिवत्पुंलिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति। नैष दोषः। आविष्टलिंगाः शब्दा न कदाचिल्लिंगं व्यभिचरन्ति। अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति ॥

अनन्तरत्वाच्चतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थः ।

स्यात्-एतत् ।॥ संख्या अनुवृत्ति-वत्०	= यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके सदृश
पुंलिङ्ग-अनुवृत्तिः ।॥ अपि ० प्राप्नोति T	= पुंलिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमें) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म-अधर्म-आकाश पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमें बहुवचनमें लाये हैं

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुंलिंगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुंलिंगमें द्रव्या ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें 'द्रव्याणि' ऐसा क्यों लाये हैं

न ० एषः ।। दोषः ।। आविष्ट-लिंगाः ।। शब्दाः ।।	= (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दों को जो जो लिंग प्राप्त है
न० कदाचित्० लिंगं ।॥ व्यभिचरन्ति T	= कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि" ऐसाद्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)
अतः धर्म-आदयः ।। द्रव्याणि ।॥ भवन्ति T इति०	= इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है
चतुर्णाम् ।। एव ० अनन्तरत्वात् ।॥	= चारों (धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे
द्रव्य-व्यपदेश-प्रसंगे ।। अध्यारोपण-अर्थम् ।॥	= द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन वा नियत करनेके लिये
इदम् ।॥ उच्यते T	= यह (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि
सूत्रम् जीवाश्च ॥३॥	= जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवाः च द्रव्याणि भवन्ति T
पदार्थ— जीवाः ।। च ० द्रव्याणि ।॥ भवन्ति T	= जीव भी द्रव्य हैं
भाष्यानुवादः—जीव-शब्दः ।। व्याख्यात-अर्थः ।।	= जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थः । चशब्दः सञ्ज्ञानुकर्षणार्थः जीवाश्च द्रव्याणीति ॥ एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड्द्रव्याणि भवन्ति॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते 'गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति' तल्लक्षणयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थः परिगणनेन? ॥ परिगणनमवधारणार्थं, तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिः कृता भवति ॥ कथं? पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

बहुत्व-निर्देशः। व्याख्यात-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः। =(इस सूत्रमें 'जीवाः' ऐसा) बहुवचनका निरूपण या कथन वर्णित (जीवके) भेदोंके जनानेके लिये है

च-शब्दः। संज्ञा-अनुकर्षण-अर्थः। =(सूत्रमें) च शब्द (द्रव्य) संज्ञाके ग्रहण करनेके लिये या अनुवृत्तिके लिये है

जीवाः। च द्रव्याणि। इति। एवम् एतानि। =जीव भी द्रव्यें हैं ऐसा (अर्थ जाना) है इसप्रकार ये

वक्ष्यमाणेन। कालेन। सह षट्-द्रव्याणि। भवन्ति। =आगे कहे जानेवाले काल सहित छह द्रव्यें होती हैं

ननु गुण-पर्यय-वत् द्रव्यम्। इति द्रव्यस्य। =प्रश्न, गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है ऐसा द्रव्यका

लक्षणम्। वक्ष्यते। तत्-लक्षण-योगात्। धर्म-आदीनाम्। =लक्षण (सूत्र ३८ वा में) कहेंगे तिस लक्षणके सम्बन्धसे धर्मादिकोंके

द्रव्यत्व-व्यपदेशः। भवति, न अर्थः परि-गणनेन। =द्रव्यत्वनाम होजानेमें गणना (करने) से प्रयोजन नहीं (तो आपने छह द्रव्यें ऐसी गणना क्यों की)

परिगणनम्। अवधारण-अर्थम्। तेन। अन्यवादि- =(उत्तर) गिनती है सो नियम के लिये है तिस (गिनती) से[१] भिन्नवादीसे

परिकल्पितानाम्। पृथिवी-आदीनाम्। =मानेगये पृथिवी-जल-तेज वायु आकाश-काल-दिशा-आत्मा, मन की अर्थात् पृथिवी आदिक इन नौ द्रव्योंकी (देखो 'तर्कसंग्रह' दूसरा सूत्र)

निवृत्तिः। कृता। भवति। कथम्? पृथिवी-अप्- =निवृत्ति वा रोक पूरी-(=कृता) होती है (प्रश्न) कैसे पृथिवी, जल,

तेजो-वायु-मनांसि। पुद्गलद्रव्ये। अन्तर्भवन्ति। =अग्नि, वायु, मन, पुद्गल द्रव्यविषैं गर्भित हैं।

(१) इस प्रश्नकी योग्यता इसप्रकार है कि अन्यवादियोंने तर्कसंग्रहआदि न्यायके ग्रंथोंमें आत्मा काल आकाश दिशा पृथिवी जल तेज वायु और मन भी द्रव्य माने हैं हमारे यहां आत्मा काल आकाश पुद्गल धर्म और अधर्म ये छह द्रव्य माने हैं धर्म और अधर्म अन्यवादियों ने द्रव्य नहीं माने हैं ऊपर की गणनासे स्पष्ट है कि आत्मा काल और आकाश जिसमें दिशा भी गर्भित है (दिशा का आकाश में गर्भित होना इससूत्रकी वृत्ति के अन्तभागमें सिद्ध किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक से हैं। अब अन्यवादियोंकीशेष पांच द्रव्यें पृथिवी जल तेज वायु, और मन रह गये सो हमारे यहां के पुद्गल द्रव्यमें सब के सब आजाते हैं इसलिये प्रश्नकर्ताने उपर्युक्त तर्क संग्रह ग्रन्थमें वर्णित नौ द्रव्योंके कथन वा गणना को चित्त में धारण करके यह प्रश्न किया है कि पुद्गल द्रव्यमें ये पांचों कैसे गर्भित हैं ॥

स्यावेतरसंख्यानुवृत्तिवत्पुल्लिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति । नैष दोषः । आविष्टलिंगा शब्दा न कदाचिल्लिंग व्यभिचरन्ति । अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति ॥

अनन्तरस्यानुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थः ।

स्यात्-यतत् ।।।। संख्या अनुवृत्ति-वत् = यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके समान

पुल्लिंग-अनुवृत्तिः ।। अपि प्राप्नोति = पुल्लिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमें) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म अधर्म-आकाश पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमें बहुवचनमें लाये हैं

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म अधर्म-आकाश पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुल्लिंगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुल्लिंगमें द्रव्याः ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें "द्रव्याणि" ऐसा क्यों लाये हैं

न एषः ।। दोषः ।। आविष्ट-लिंगाः ।। शब्दाः ।। = (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दों को जो जो लिंग प्राप्त है

न कदाचित् लिंगं ।।।। व्यभिचरन्ति = कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि" ऐसा द्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)

अतः धर्म-आदयः ।। द्रव्याणि ।।।। भवन्ति इति = इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है

चतुर्णाम् ।। एव अनन्तरस्यात् ।।।। = चारों (धर्म अधर्म आकाश पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे

द्रव्य-व्यपदेशे प्रसंगे ।। अध्यारोपण-अर्थम् ।।।। = द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन या नियत करनेके लिये

इदम् ।।।। उच्यते = यह (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि

सूत्रम् जीवाश्च ।।३।। = जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवा च द्रव्याणि भवन्ति

पदार्थः— जीवाः ।। च द्रव्याणि ।।।। भवन्ति = जीव भी द्रव्य हैं

वाक्यार्थः—जीव शब्दः ।। व्याख्यात-अर्थः ।। = जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थं । चशब्दः सञ्ज्ञानुकर्षणार्थः जीवाश्च द्रव्याणीति ॥ एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड्द्रव्याणि भवन्ति॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते 'गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति' तल्लक्षणयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थः परिगणनेन? ॥ परिगणनमवधारणार्थं, तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिः कृता भवति ॥ कथं? पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

बहुत्व-निर्देशः। व्याख्यात-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः। =(इस सूत्रमें 'जीवा' ऐसा) बहुवचनका निरूपण या कथन वर्णित (जीवके) भेदोंके जनानेके लिये है
च-शब्दः। संज्ञा-अनुकर्षण-अर्थः। =(सूत्रमें) च शब्द (द्रव्य) संज्ञाके ग्रहण करनेके लिये या अनुवृत्तिके लिये है
जीवाः। च द्रव्याणि। इति एवम् एतानि। =जीव भी द्रव्यें हैं ऐसा (अर्थ होता) है इसप्रकार ये
वक्ष्यमाणेन। कालेन। सह षट्द्रव्याणि। भवन्ति। =आगेको आनेवाले काल सहित छह द्रव्यें होती हैं
ननु गुण-पर्यय-वत् द्रव्यम्। इति द्रव्यस्य। =प्रश्न, गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है ऐसा द्रव्यका
लक्षणम्। वक्ष्यते। तत्-लक्षणयोगात्। धर्मादीनाम्। =लक्षण (सूत्र ३८ वा में) कहेंगे तिस लक्षणके सम्बन्धसे धर्मादिकोंके
द्रव्यत्व-व्यपदेशः। भवति, न अर्थः। परि-गणनेन। =द्रव्यत्वनाम होता है गणना (करने) से प्रयोजन नहीं (तो आपने छह द्रव्यें ऐसी गणना क्यों की)
परिगणनम्। अवधारण अर्थम्। तेन। अन्यवादिन्- =(उत्तर) गिनती है सो नियम के लिये है तिस (गिनती) से[1] भिन्नवादीसे
परिकल्पितानाम्। पृथिवी-आदीनाम्। —माने गये पृथिवी-जल-तेज वायु आकाश काल-दिशा आत्मा, मन की अर्थात् पृथिवी आदिक इन नौ द्रव्योंकी (देखो 'तर्कसंग्रह' दूसरा सूत्र)
निवृत्तिः। कृता। भवति। कथम्। पृथिवी-अप् =निवृत्ति या रोक पूरी- (=कृता) होती है (प्रश्न) कैसे पृथिवी, जल,
तेजो-वायु-मनांसि। पुद्गलद्रव्ये। अन्तर्भवन्ति। =अग्नि, वायु, मन, पुद्गल द्रव्यविषैं गर्भित हैं।

(१) इस प्रश्नकी योग्यता इसप्रकार है कि अन्यवादियोंने तर्क संग्रहआदि न्यायके ग्रन्थोंमें आत्मा काल आकाश दिशा, पृथिवी जल तेज वायु व मन नौ द्रव्य माने हैं हमारे यहां आत्मा काल आकाश,पुद्गल धर्म और अधर्म ये छह द्रव्य माने हैं धर्म और अधर्म अन्यवादियों ने द्रव्य नहीं माने हैं ऊपर की गणनासे स्पष्ट है कि आत्मा काल और आकाश जिसमें दिशा भी गर्भित है (दिशा का आकाश में गर्भित होना इससूत्रकी वृत्ति के अन्तभागमें सिद्ध किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक से हैं। अब अन्यवादियोंकेशेष पांच द्रव्यें पृथिवी, जल तेज वायु, और मन रह गये सो हमारे यहां के पुद्गल द्रव्यमें सब के सब आजाते हैं इसलिये प्रश्नकर्ताने उपर्युक्त तर्क संग्रह ग्रन्थमें वर्णित नौ द्रव्योंके कथन या गणना को चित्त में धारण करके यह प्रश्न किया है कि पुद्गल द्रव्यमें ये पांचों कैसे गर्भित हैं ॥

स्यादेतत्संख्यानुवृत्तिवत्पुल्लिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति। नैष दोष । आविष्टलिंगा शब्दा न कदाचिल्लिंग व्यभिचरन्ति। अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति ॥

अनन्तरत्वाच्चतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसङ्गेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थ ।

स्यात् एतत् ॥ संख्या-अनुवृत्ति-वत् = यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके सदृश

पुल्लिंग-अनुवृत्ति अपि प्राप्नोति = पुल्लिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमें) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमें बहुवचनमें लाये हैं

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुल्लिंगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुल्लिंगमें द्रव्याः ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें "द्रव्याणि" ऐसा क्यों लाये हैं

न एष दोषः आविष्ट लिंगाः शब्दाः = (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दों को जो जो लिंग प्राप्त है

न कदाचित् लिंगं व्यभिचरन्ति = कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि" ऐसा द्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)

अतः धर्म-आदयः द्रव्याणि भवन्ति इति = इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है

चतुर्णाम् एव अनन्तरत्वात् = चारों (धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे

द्रव्य-व्यपदेश-प्रसंगे अध्यारोपण-अर्थम् = द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन या नियत करनेके लिये

इदम् उच्यते = यह (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि

सूत्रम् जीवाश्च ॥३॥ = जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवाश्च द्रव्याणि भवन्ति

पदार्थः— जीवाः च द्रव्याणि भवन्ति = जीव भी द्रव्य हैं

सम्पदुपादः— जीव-शब्दः व्याख्यात-अर्थः = जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

एतानिपासीमगवस्पसहाय

वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाद्घटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी,जल,अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप या वर्ण,रस,गंध,और स्पर्श सहित हैं और पुद्गल भी रूप,रस,गन्ध,और स्पर्शवान् हैं जिससे ये पांचों पुद्गल द्रव्यमें गर्भित हैं

वायु-मनसोः॥रूप-आदि-योग-अभावः॥इति॥चेत्॥=वायु और मनके रूपादिकका सम्बन्ध नहीं है ऐसा प्रश्न या शंका (=चेत्) है

अर्थात् अन्यवादियोंकी तर्कसंग्रहके सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अतःस्पर्शवान् तो हुआ) उसके रस,गन्ध,और वर्ण नहीं माने हैं और सूत्र २२ के अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और वर्ण-रस-गन्ध नहीं माने हैं (देखो तर्कसंग्रह सूत्र १९,२०, २१)

न॥वायुः॥तावत्॥स्पर्शवत्त्वात्॥घटादिवत्॥रूप-=(उत्तर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम तो स्पर्शवान् होनेसे घटादिके समान रूप =रस गन्ध वाला है अर्थात् जहां स्पर्श है वहां रूप रस गंध होय ही हों यह नियम है

(१)आदिमान्॥

जलमें गंधसिद्ध किया है अग्निमें रस और गंधसिद्ध किये हैं और वायु में रूप-रस-गंध-सिद्ध किये हैं और द्रव्यमनविषैं रस-रूप-गंध सिद्ध किये हैं जिनको अन्यवादियों ने नहींमाना है (२) समस्त पुद्गल परमाणुओंके एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है। जैसे पृथिवी से जल होता है उससे पृथिवी होती है अग्नि से पृथिवी होय है और पृथिवी आदिक से अग्निहातीहै इसप्रकार पृथिवी आदि से उपजे हुए और वायु तथा द्रव्यमनके न्यारे परमाणु नहीं है, ये समस्त ही पुद्गल के विकार हैं ॥

(१)संज्ञावाचक पुलिंग शब्द जिनके अन्त में'वत्'और'मत्'हो प्रथमा विभक्ति एक वचन द्विवचन बहुवचन और द्वितीया विभक्ति एक वचन और द्विवचन में अन्त के तकार के पहिले न् जोड़ते हैं फिर प्रत्यय लगाते हैं जैसे आदिमत्-और उससे पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमें 'त्' के पहिलेस्वर को दीर्घ करदेते हैं जैसे-आदिमत् से आदि-मात् हुआ पश्चात् न्-त् से प्रथम जोड़ा तो आदिमान् त् हुआ फिर स् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रत्यय जोड़ा तब आदिमान् त् स् ऐसा रूप बना जब पद के अन्त में एक व्यंजन से अधिक हो तो प्रथम रहजाता है शेषसब गिर जाते हैं(देखो-संयोगान्तस्यलोपःअष्टाध्यायी सूत्र ८-२-२३) ॥ शेषरूप आदिमन्तौ,आदिमन्तःऔर आदिमन्तम् और आदिमन्तौ(द्वितीया विभक्तिमें) होवे ॥ इसलिये आदिमान् यह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुलिंग में बना ॥

'संयोगान्तस्य लोपः'=संयोगान्तस्य॥ लोपः॥ =संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

संयोग-अन्तम्॥ यत्पदम्॥ =जिस पदके अन्तमें संयोग (व्यंजन)हो और

तद् अन्तस्य॥ लोपः॥ स्यात् ॥ =वह संयोग जिस समुदायके अन्तमें होय तिसका लोप होजावे अर्थात् जब पदके अन्तमें एक व्यंजनसे अधिक हों तो पहिला रहजाता है शेष सब गिरजाते हैं

रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ।

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्वात्-१ चक्षुरिन्द्रियवत्-(उत्तर)रूप-रस-गंध-और स्पर्शवान् होनेसे नेत्र इन्द्रियके सदृश(पुद्गलद्रव्यमें गर्भित)है

(१) यहांसे आगे इस वृत्तिके अर्थको भले प्रकार समझने के लिये इस टिप्पणी को चित्त लगाकर समझलेना चाहिये अन्य वादियोंके माने हुये चार गुणों में कौन कौन किस किस में है?

जैनियों ने स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वाले पुद्गल माने हैं

(तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ५ सूत्र २३ द्रव्यसंग्रह प्रथमकी गाथा १५)

(१)रूप—पृथिवी जल और तेजमें रहताहै (तर्कसंग्रह १-१९) (१) रूप अर्थात् कृष्ण नील रक्त पीत, श्वेत ये पांच रूप वा वर्ण वा रंग हैं ।

(२) रस—पृथिवी और जल में रहता है (तर्कसंग्रह १-२०) (२) रस अर्थात् खाटा मीठा कडूआ (कटुक) कषायला चिरपरा (तिक्त) ये पांच हैं

(३)गंध—पृथिवी मात्रमें ही रहताहै (तर्कसंग्रह १-२१) (३) गन्ध अर्थात् सुगन्ध (सुरभि) दुर्गन्ध (असुरभि) भेदरूप हैं

(४)स्पर्श-पृथिवी,जल,तेज और वायुमेंरहताहै(तर्कसंग्रह१-२२)(४)स्पर्श-कोमल(मृदु) कठोर,हलका भारी,शीत उष्ण,सचिक्कन(स्निग्ध) (रूक्ष) रूखा),

—ये आठभेद स्पर्शकेहैंयेसेसामान्यतासेचारगुणऔरविशेषरूपसे२०गुणवालेपुद्गलहैं

(५)नित्य औरपरमाणुरूपमनहैअर्थात्पौद्गलिकनहीमनहै (५) मन अर्थात् द्रव्यमन जो पुद्गलद्रव्यका विकारहै, भावमन जो ज्ञानहै आत्मामेंगर्भितहै

(वैशेषिकसंग्रह।।१८)

इन दोनों चीजों के पढ़ने से यह प्रकार निकलता है कि अन्य वादियोंने वायुको रूपवान् नहीं माना है जैनियों ने रूपवान् माना है, रस गुणको अग्नि और वायु में नहीं माना है हमने माना है गन्ध को जल अग्नि वायु में नहीं माना है जैनियों ने माना है । स्पर्श अन्यवादियोंने पृथिवी जल तेज और वायु सब में माना है सो हम जैनियों ने भी माना है । पूज्यपाद स्वामीने 'कथं .. व्यवहारोपपत्तः' तक वृत्तिके पृष्ठ२०३औरर०४की १५ पंक्तियोंमें तीन बातें सिद्ध की हैं (१) जो प्रतिवादी नौ द्रव्यें मानते हैं वे सर्व द्रव्य आत्मा-काल-आकाश और पुद्गलद्रव्य में अन्तर्भाव हैं इसलिये नौ द्रव्योंके माननेकी आवश्यकता नहीं है वरन् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य को मिलाकर केवल छह द्रव्य मानना चाहिये-(२)रूप रस-गन्ध-स्पर्श ये पृथिवी,जल अग्नि और वायु और द्रव्यमन में भी(जो पुद्गल द्रव्यका विकार है)विद्यमान हैं और पुद्गलोंके गुण हैं और उनमें पाये जाते हैं अर्थात् मिथ्यावादियों ने वायु में रूप(वर्ण)नहीं मानाहै उसका खण्डन होताहै । अग्नि और वायु में रस गुण नहीं माना हैउसका भी खण्डन होता है और इसी प्रकार जल अग्नि-वायुमें गन्ध नहीं माना है उसकाभी खंडन होता है । इसी स्पर्शवाला है [illegible]

[illegible]

वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाद्घटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी,जल,अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप या वर्ण,रस,गंध,और स्पर्श सहित हैं और पुद्गल भी रूप,रस,गन्ध,और स्पर्शवान् हैं जिससे ये पांचों पुद्गल द्रव्यमें गर्भित हैं

वायु-मनसोः॥।रूप आदि-योग-अभावः॥इति॥चेत्॥=वायु और मनके रूपादिकका सम्बन्ध नहीं है ऐसा प्रश्न या शंका (=चेत्) है

अर्थात् अन्यवादियोंकी तर्कसंग्रहके सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अतःस्पर्शवान् तो हुआ) उसके रस,गन्ध,और वर्ण नहीं माने हैं और सूत्र २२ के अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और वर्ण-रस-गन्ध नहीं माने हैं (देखो तर्कसंग्रह सूत्र १९,२०, २१)

न॥वायुः॥तावत्॥स्पर्शवत्त्वात्॥।घटादिवत्॥रूप--=(उत्तर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम तो स्पर्शवान् होनेसे घटादिके समान रूप

(१)आदिमान्॥ =रस गन्ध वाला है अर्थात् जहां स्पर्श है वहां रूप रस गंध होय ही हो यह नियम है

जलमें गंधसिद्ध किया है अग्निमें रस और गंधसिद्ध किये हैंऔर वायु में रूप-रस-गंध-सिद्ध किये हैं और द्रव्यमनविषैं रस-रूप-गंध सिद्ध किये हैं जिनको अन्यवादियों ने नहींमाना है (१) समस्त पुद्गल परमाणुओंके एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है। जैसे पृथिवी से जल होता है जलसे पृथिवी होती है अग्नि से पृथिवी होय है और पृथिवी आदिक से अग्निहातीहै इसप्रकार पृथिवी आदि से उपजे हुए और वायु तथा द्रव्यमनरूप न्यारे पदार्थ नहीं हैं, ये समस्त ही पुद्गल के विकार हैं ॥

'१'संज्ञावाचक पुल्लिंग शब्द जिनके अन्त में'वत्'और'मत्'हो प्रथमा विभक्ति एक वचन द्विवचन बहुवचन और द्वितीया विभक्ति एक वचन और द्विवचन में अन्त के तकार के पहिले न् जोड़ते हैं फिर प्रत्यय लगाते हैं जैसे आदिमत्-और सबसे पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमें 'त्' के पहिलेस्वर को दीर्घ करते हैं जैसे आदिमत् से आदि-मात् हुआ पश्चात् म-त् के मध्य जोड़ा तो आदिमान् त् हुआ फिर स् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रत्यय जोड़ा तब आदिमान् त् स् ऐसा रूप बना अब पद के अन्त में एक व्यंजन से अधिक हो तो प्रथम रहजाता है शेषसब गिर जाते हैं(देखो-संयोगान्तस्यलोपःअष्टाध्यायी सूत्र ८-२-२३) ॥ शेषरूप आदिमन्तौ आदिमन्तःऔर आदिमन्तम् और आदिमन्तौ(द्वितीया विभक्तिमें) होंगे ॥ इसलिये आदिमान् यह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग में बना ॥

संयोगान्तस्य लोप =संयोगान्तस्य॥। लोपः॥। =संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

संयोग-अन्तम्,॥यत्पदम्॥ =जिस पदके अन्तमें संयोग (व्यंजन)हो और

तद् अन्तस्य॥। लोपः॥ स्यात् T =वह संयोग जिस समुदायके अन्तमें होय तिसका लोप होजाये अर्थात् जब पदके अन्तमें एक व्यंजनसे अधिक हो तो पहिला रहजाता है शेष सब गिरजाते हैं

चक्षुरादिकरणग्राह्यत्वाभावाद्रूपाद्यभाव इति चेत्परमाण्वादिष्वतिप्रसङ्ग स्यात्॥आपो गन्धवत्य स्पर्शवत्त्वात्पृथिवीवत् ॥ तेजोऽपि रसगन्धवत् रूपवत्त्वात्॥तद्वदेव मनोऽपि द्विविध द्रव्यमनो भावमनश्चेति । तत्र भावमनो ज्ञानम्, तस्य जीवगुणत्वादात्मन्यन्तर्भाव । द्रव्यमनश्च रूपादियोगात्पुद्गलद्रव्यविकार ॥

चक्षुर्-आदि-करण-ग्राह्यत्व-अभावात्॥ =नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहणयोग्य न होनेसे वा न आकर्षित कियेजासकनेसे
रूप-आदि-अभाव ॥ इति॰ चेत्॰ =(वायुके) रूप,रस गंधआदिका अस्तित्व नहीं है । ऐसी शंका या प्रश्न है
परमाणु-आदिषु॥ =(उत्तर)तो परमाणु आदिक द्रव्यमें (जो नेत्रोंकरि नहीं दीखते हैं)
अतिप्रसंगः॥स्यात् ।,आपः॥॥स्पर्शवत्त्वात्॥॥पृथिवीवत् =(स्पर्शादिक)लक्षणकोभी अतिप्रसंग होगा ॥ जल स्पर्शवान् होनेसे पृथिवीके समान
गन्धवत्यः॥, =गंधवान्है (अन्यवादियोंनेजलमेंरूपरसस्पर्शहीमाने हैंइसलियेयहांगंधत्वसिद्धकिया है)
तेजः॥॥ अपि॰रूपवत्त्वात्॥॥ रस-गन्धवत्॰ =अग्नि भी रूपवान् होनेसे रस और गन्धवानहै(क्योंकि अन्यवादियोंने अग्निमें रूप और स्पर्शमाने हैं इसलिये यहांपर रसत्व और गंधत्व सिद्ध किये हैं)।
तद्-वत्॰एव॰मनः॥॥ अपि॰द्विविधम्॥॥ =उस (जल)के सदृश ही है ॥ मन भी दो प्रकार है ।
द्रव्यमनः॥॥ भावमनः॥॥च॰इति,तत्र॰भावमनः॥॥ =द्रव्यमन और भावमन । तहां भावमन है
ज्ञानम्॥॥तस्य॥॥जीवगुणत्वात्॥॥आत्मनि॥ =सो ज्ञान है । तिस (भावमन) के चेतनका गुणहोनेसे,आत्मा (द्रव्य) में
अन्तर्भाव॥, द्रव्यमनः॥॥ च॰रूप- =गर्भित है । बहुरि द्रव्यमन अर्थात् सूक्ष्म पुद्गलका मवय रूप आठ पांखुरी के फूले कमलके आकार हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ है सो रूप
आदि-योगात्॥पुद्गलद्रव्य-विकारः॥, =रस-गंध-स्पर्शके संयोगसे पुद्गलद्रव्य का परिणाम है ।

अति प्रसङ्ग=अति प्रसक्ति, प्रसंग को छोड़ने वाला लक्ष्यमें वा अलक्ष्यका सम्बन्ध होताहै उसको प्रसंग कहते हैं जो इसके विपरीत हो वह अति प्रसंग है अर्थात् लक्ष्यमें लक्षण के समानताका अभाव (१) वायु और मन इन दोनों सबंध में रूपादिक के अभाव होने का प्रश्न किया गया था सो वायु को रूपादिक का होनासिद्ध करदिया वायु के समान ही जलमें गंध और अग्नि में रस और गंध सिद्धि करनेके पश्चात् शेष रह हुए मनके दो भेद करते हुये द्रव्यमनमें रूप रस गंध-स्पर्शकी सिद्धि करते हैं।

रूपादिवन्मन ज्ञानोपयोगकारणत्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ॥ ननु अमूर्तेऽपि शब्दे ज्ञानोपयोगकारण त्वदर्शनाद्व्यभिचारी हेतुरिति चेन्न। तस्य पौद्गलिकत्वान्मूर्तिमत्वोपपत्ते ॥ ननु यथा परमाणूनां रूपादिमत्कार्यत्वदर्शनाद्रूपादिमत्त्वम्, न तथा वायुमनसो रूपादिमत्कार्यं दृश्यते इति चेन्न । तेषामपि तदुत्पत्ते । सर्वेषा परमाणूना सर्वरूपादिमत्कार्यत्वप्राप्तियोग्यत्वाभ्युपगमात् ॥ न च केचित्पार्थिवादिजातिविशेषयुक्ता परमाणव सन्ति, जातिसङ्करेणारम्भदर्शनात् ॥

ज्ञानोपयोग-कारणत्वात्॥ चक्षुःइन्द्रियवत्॰ =ज्ञानोपयोग का निमित्तहोनेसे नेत्र इन्द्रियके समान

रूप आदिवत्॰मन ॥ ननु॰अमूर्ते॰ अपि॰ =मन रूपरस-गंध-स्पर्शवान् (=रूपादि) है । प्रश्न । मूर्तिशून्यहोनेपर भी

शब्दे॰ ज्ञानोपयोग-कारणत्व-दर्शनात्व्यभिचारी॰हेतुः॰ =शब्दविषैं ज्ञानोपयोग कारणभावदीखनसे व्यभिचारीहेतुहैअर्थात्शब्दअमूर्तिकहोनेपर भीज्ञानोपयोगकीप्राप्तिकाकारणदेखेजानेसेहेतुपक्ष,सपक्ष,विपक्षमेंरहनेवालाव्यभिचारी

इति॰चेत्॰ =हुआ ऐसी शंका है(भावार्थ॰ अथवा मन रूपादि सहित हैसा ज्ञानके प्राप्तिविषैं कारण कहा है और अमूर्तिक शब्द भी ज्ञान करानमें कारण है तो ऐसे ज्ञानकी उपलब्धिमें मूर्तिक द्रव्यमन और अमूर्तिक शब्द दोनों ही कारण हुये इसलिये यह नियम नहीं होसकता किया ज्ञान करानेमें कारण है वह रूप—रस—गन्ध—स्पर्शवाला (=मूर्तिक) ही होता है ॥

न॰;तस्य॰ पौद्गलिकत्वात्॥ मूर्तिमत्व- =(उत्तर) नहीं; क्योंकि तिस (शब्द)के पुद्गल जन्य होनेसे मूर्तिपना

उपपत्ते ॥ ननु॰यथा॰परमाणूनाम्॰ रूपादिमत्- =सिद्धि (=उपपत्ति) है। प्रश्न । जैसे परमाणुओं के रूपादिवाला

कार्यत्व-दर्शनात्॥ रूपादि-मत्त्वम्॥ नतथावायु =कार्यपना दीखनसे रूपादिकवान् पना है,नहीं तैसे वायु

मनसो॥ रूप आदिमत्-कार्यम्॥ दृश्यते ? =और मनके रूपादिकमान् कार्य देखा जाता है

इति॰चेत्॰न॰;तेषाम्॰ अपि॰तत्॰ ॥ =ऐसी शंका है (उत्तर) नहीं, क्योंकि तिन (वायु और मनके) भी वह

उत्पत्ते ॥ सर्वेषाम्॰परमाणूनाम्॰सर्व-रूप आदिमत् =(रूपादिवान्कार्य)उत्पन्न होताहैक्योंकि सब परमाणुओंके समस्त रूपादिक

कार्यत्व प्राप्ति-योग्यत्व-अभ्युपगमात्॥ =कार्यपनाकी प्राप्ति होनेकी शक्ति, सामर्थ्य वा योग्यता मानी गई है

न॰च॰केचित्॰पार्थिव आदि-जाति-विशेष-युक्ता॥ =बहुरि नहीं कोई पृथिवी आदिक अन्य जाति विभेद सहित

परमाणव॥ सन्ति ? जाति-सङ्करेण॥ आरम्भ-दर्शनात्॥ =परमाणु हैंक्योंकि(समस्त पुद्गल परमाणुओं के)जातिके पलटन करि आरम्भदीखरै

दिशोऽप्याकाशेऽन्तर्भाव । आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदेश पंक्तिषु इत इदमिति व्यवहारोपपत्ते ॥ उक्तानां द्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अर्थात् समस्त पुद्गल परमाणुओं के एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है जैसे पृथिवी परमाणुओं से जल होजाते जल परमाणुओंसे पृथिवी होय है, अग्निसे पृथिवी होती है, और पृथिवी काष्ठादिकसे अग्नि होय है इस प्रकार पृथिवी आदिकसे उत्पन्न हुए वायु मनके न्यारे न्यारे परमाणु नहीं हैं ये समस्त ही पुद्गलके विकार हैं?

दिशः॥अपि॰आकाशे॥अन्तर्भावः॥आदित्य-उदय-आदि—=दिशोंका भी आकाश (द्रव्य) में समावेश है। सूर्यके उदय आदिके अपेक्षया॥आकाश-प्रदेश-पंक्तिषु॥इत इदम्॥ =अपेक्षासे आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंमें यहांसे यह (इधर) है इति॰व्यवहार उपपत्तः॥ =इस प्रकार (पूर्वादिक दिशाओंके)व्यवहारकी सिद्धि है अर्थात् जहां सूर्य उगता है उसओरके आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंको पूर्वदिशा कहते हैं जहां सूर्य अस्त होता है उस ओरके आकाशके प्रदेशकी पंक्तियोंको पश्चिम दिशा कहते हैं इस प्रकार शेष दिशाओं को जानना

उक्तानाम्॥द्रव्याणाम्॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह॥ =वर्णित द्रव्योंके विशेषज्ञानके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

=((२)धर्मादीनि,(३)काल,(४)जीवाश्च,(५)द्रव्याणि)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४॥

सूत्रार्थ–धर्म आदीनि॥काल॥जीवा॥च॰द्रव्याणि॥ =धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गल–काल–और जीव द्रव्यें
नित्य– ध्रुव वा नित्य हैंअर्थात् द्रव्यार्थिके अनेक धर्म हैं वे(धर्म)द्रव्यपनाकी अपेक्षा (न कि पर्यायकी अपेक्षा) अविनाशी हैं अथवा सदा विद्यमान है ।

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ सर्वसम्मत है?(२)'धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गल'पद प्रथम सूत्र में लिया है(३) 'काल' इस अध्यायके उनतालीसवां सूत्रसे अध्याहार किया है(४) 'जीवाश्च' इस अध्यायके तीसरे सूत्रमेंसे अनुवृत्ति लीगई है(५) 'द्रव्याणि' इस अध्यायके दूसरे सूत्र से अनुवृत्ति ली

नित्य ध्रुवमित्यर्थ । ने ध्रुवे त्य इति निष्पादितत्वात् ॥ धर्मादीनि द्रव्याणि गति हेतुत्वादिविशेषलक्षणद्रव्यार्थादेशादस्तित्वादिसामान्यलक्षणद्रव्यार्थादेशाच्च

अवस्थित— =अवस्थित हैं अथवा ज्यों के त्यों रहते हैं अर्थात् द्रव्योंमें अपने अपने जो जो विशेष[१] लक्षण हैं उनको नहीं छोड़ते हैं जैसे जो द्रव्य चेतन है वह अचेतन नहीं हो सक्ती जो द्रव्य मूर्तिक है वह अमूर्तिक नहीं हो सक्ती और जो अमूर्तिक है वह मूर्तिक नहीं हो सक्ती इत्यादि जिससे द्रव्योंकी संख्याकी व्यवस्था है और वह द्रव्योंकी संख्या १,२,३,४,५,वा ७,इत्यादि नहीं हो सक्ती है

अरूपाणि ॥ =(पुद्गल द्रव्यके अतिरिक्त) अरूपी हैं अर्थात् अमूर्तिक हैं

इत्यनुवाद'-नित्यम् ॥ध्रुवम् ॥ इति॰ अर्थः॥ने॥ ध्रुवे ॥ =नित्य है सो ध्रुव अथवा अविनाशी ऐसा अर्थ है(नि)धातु से स्थिर अर्थमें

त्य॥ इति॰ =त्यप् अर्थात् (त्य) प्रत्ययलगाकर (नित्य) ऐसा(शब्द)

निष्पादितत्वात् ॥,धर्म–आदीनि ॥ =सिद्ध वा निष्पन्न होता है ॥ धर्म–अधर्म–आकाश-पुद्गल–जीव-काल

द्रव्याणि॥गति-हेतुत्व–आदि-विशेषलक्षण =द्रव्यहैंगति-हेतुत्व आदिकसबद्रव्योंमें न व्यापने वाले गुणोंसे(=विशेष लक्षण)

द्रव्यार्थ–आदेशात्॥च॰अस्तित्व–आदि– =द्रव्यस्वरूपके आदेशकरि और (=च) अस्तित्वादिक (=सामान्य लक्षण)

सामान्य-लक्षण-द्रव्य अर्थ–आदेशात् ॥ च॰ =सब द्रव्योंमें व्यापनेवाले गुणोंसे द्रव्यार्थिक नयके नियमसे

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके प्रथम संस्करण में' द्रव्यत्व–आदेशात् पाठ है हमने 'द्वितीयावृत्ति' का पाठ 'द्रव्यार्थादेशात् लिया है क्योंकि यह पिछला पाठ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी मिलता है। दोनों पाठों का अर्थ लग भग एक है। (२) गुण अथवा लक्षण के दो भेद हैं (i)सामान्य और (ii) विशेष (i)जो सब द्रव्योंमें व्यापें वे सामान्य अथवा साधारण हैं वे गुण अनेक हैं परन्तु उनमें अस्तित्व–वस्तुत्व–द्रव्यत्व प्रमेयत्व-अगुरुलघुत्व प्रदेशत्व-ये मुख्य हैं(देखो अध्याय २ पृष्ठ २६)॥जो सब द्रव्योंमें न व्यापें उनको विशेष गुण कहते हैं जैसे जीवका चिद्रूपगुण आदि ॥ नित्य और अवस्थित शब्दोंमें क्या भेद अथवा अन्तर है। देखो पं० जयचंदरायजी वचनिका पृष्ठ ४११) द्रव्यार्थिक नयके आदेशकरि द्रव्योंका अपने गति हेतुत्व स्थितिहेतुत्व आदि विशेष गुण तथा अस्तित्व आदि सामान्य लक्षणका किसी समयमें न छोड़ना सो नित्य है। धर्मादिक छह द्रव्योंकी कही गई संख्या तथा उनके प्रदेशोंकी कथित इयत्ता (संख्या) कभी भी न्यून वा बढ़ती नहीं होता उसे अवस्थित कहते हैं। भावार्थ अवस्थित विशेषण द्रव्यों तथा उनके प्रदेशोंकी संख्याका क्रम कभी घटेगा बढ़ेगा नहीं ज्योंका त्यों अथवा वैसाही क्रम रहेगा ॥

कदाचिदपि न व्ययन्तीति नित्यानि। वक्ष्यते हि तद्भावाव्ययं नित्यमिति इयत्तां व्यभिचारादवास्थ-तानि धर्मादीनि षडपि द्रव्याणि कदाचिदपि षडिति इयत्त्वं नातिवर्तन्ते। ततोऽवस्थितानीत्युच्यन्ते॥ न विद्यते रूपमेषामित्यरूपाणि, रूपप्रतिषेधेन तत्सहचारिणां रसादीनामपि प्रतिषेध । तेन अरूपाण्यमूर्तानीत्यर्थः ॥

यथा सर्वेषां द्रव्याणां नित्यावस्थितानीत्येतत्साधारणं लक्षणं तथा अरूपित्वं पुद्गलानामपि प्राप्तम्।

कदाचित्॰अपि॰न॰व्ययन्ति। इति॰नित्यानि॥ =कभी भी नाश वा नष्ट नहीं होती हैं इसप्रकार नित्य हैं वा अविनाशी हैं

वक्ष्यते। हि॰तद्भाव-अव्ययम्॥ =क्योंकि(=हि) (इस अध्यायके इकतीसवें सूत्रमें) कहेंगे कि "तद्भावाव्ययं नित्यम्" अर्थात् जो (तद्भाव) रूपसे या सत्स्वभावसे(=तद्भाव)अविनाशी (=अव्यय) है

नित्यम्॥ इति॰इयत्ता-अव्यभिचारात्॥ अवस्थितानि॥ =सोनित्य है; इतनेका होना परिमाण वा गिनतीके न छोड़ने(के हेतु)सेअवस्थित हैं

धर्म आदीनि॥ षट्॥ अपि॰द्रव्याणि॥ कदाचित्॰अपि॰षट् =धर्मादिक छह ही(=अपि) द्रव्य हैं किसीकाल में भी(=अपि)छह हैं

इति॰इयत्त्वम्॥ न॰अतिवर्तन्ते। =इस प्रकार परिमाण को वा सख्याको नहीं उलंघे हैं, नहीं त्यागे हैं

ततः॰अवस्थितानि॥ इति॰उच्यन्ते॥ न॰विद्यते। =तिसलिये(ये छहो द्रव्य) अवस्थित कही जाती हैं। नहीं है

रूपम्॥ एषाम्॥ इति॰अरूपाणि॥ रूप-प्रतिषेधेन॥ =रूप वा वर्ण जिनके इस प्रकार(येद्रव्य)अरूपी हैं। रूपके निषेधसे

तत्-सहचारिणाम्॥ रसादीनाम्॥ अपि॰ =उस(रूप=वर्ण=रंग)केसहचारी अर्थात्एकसाथरहनेवालेरस-स्पर्श गंधकीभी(=अपि)

प्रतिषेधः॥ तेन॥ अरूपाणि॥ अमूर्तानि॥ =निवृत्ति है। तिस(रूपके प्रतिषेध) से अरूपी हैं अमूर्ती हैं

इति॰अर्थः॥ यथा॰सर्वेषाम्॥ द्रव्याणाम्॥ नित्य- =ऐसा अभिप्राय है। जैसे समस्त द्रव्योंके नित्य

अवस्थितानि॥ इति॰एतत्॥ साधारणम्॥ =अवस्थित ऐसा यह(=एतत्)सामान्य

लक्षणम्॥ तथा॰अरूपित्वम्॥ पुद्गलानाम्॥ अपि॰प्राप्तम्॥ =लक्षण है। तैसे अरूपीपना पुद्गलोंके भी सिद्ध है।

(१)'विद्यते'—यह रूप विद् धातुसे बनाहै'विद्'संज्ञा और धातु दोनों अर्थोंमें आताहै जब संज्ञा होताहै तब ज्ञान पंडित,और बुधगए ये तीन अर्थ देताहै। ( ) विद् धातु है द्वितीय गणका धातु परस्मैपद सकर्मक जानना अर्थमें गुण संज्ञाहोकर वेद् रूपहुआ अन्यपुरुष एक वचन परस्मैपद,वर्तमान काल की क्रिया का ति लगानेसे वेद्+ति=वेत्ति हुआ ( ) विद्=होना दिवादि चतुर्थगण आत्मनेपद अकर्मक धातु यहांपर है। चतुर्थगणका विकरण 'य और वर्तमान काल अन्यपुरुष [illegible] वचन आत्मने पदका'ते'जोड़नेसे विद्+य+ते=विद्यते हुआ ( ) विद्=पाना तुदादि उभय पदी सकर्मक धातुहै विकरण'अ लगानेसे प्रथम न् लगाया जाताहै विन्द्+अ हुआ ति प्रत्यय लगानेसे विन्दति=पाताहै विन्दते=अपने लिये पाताहै दो रूप बनेंगे

अतस्तदपवादार्थमाह—

॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

रूपं मूर्तिरित्यर्थ ॥ का मूर्ति? रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्ति ॥ रूपमेषामस्तीति रूपिण । मूर्तिमन्त इत्यर्थ ॥ अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनशब्दस्तदेषामस्तीति रूपिण ॥ रसाद्यग्रहणमिति चेत्

अतः॥अत्‌-अपवाद-अर्थम्॥ आह ।	=इसलिये उस (अरूपित्व) के विराध या भिन्नताके लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि
[1]रूपिण पुद्गला ॥ ५ ॥	=रूपिण पुद्गला भवन्ति ॥ ५ ॥
सूत्रार्थः—रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ।	=(सूत्रार्थ) (स्कन्धरूप अर्थोंमेंसे केवल) पुद्गल रूपी हैं, पुद्गल मूर्तिमान हैं अर्थात् पुद्गलोंके रूप अथवा मूर्ति है और नेत्रोंसे देखेजासकते हैं और स्पर्श जासकते हैं
इत्यनुवाद रूपम्॥मूर्ति॥इति॥अर्थः॥का॥मूर्तिः॥	=रूप है सो मूर्ति है ऐसा अर्थ है(प्रश्न) मूर्ति क्या है ? ।
रूप-आदि-संस्थान-	=(उत्तर)रूप-रस-गन्ध-स्पर्शका गोल, तिकोना, चौकोना लंबा आकार(=संस्थान) का
परिणामः॥मूर्तिः॥;रूपम्॥एषाम्॥अस्ति॥इति॥	=परिणमन है सो मूर्ति है। रूप जिनके है एस
रूपिण ॥; मूर्तिमन्तः॥इति॥अर्थः॥अथवा॥रूपम्॥इति	=रूपी हैं॥आकारवान् ऐसा अर्थ है अथवा रूप ऐसा
गुण-विशेष-वचन शब्द॥तद्॥एषाम्॥अस्ति॥इति॥रूपिण	—गुणका आदि(=रस-गंध-स्पर्श भी)वाची शब्द है। वह(रूपगुण)जिनकेहै ऐसे रूपी हैं
रस-आदि-अग्रहणम्॥ इति॥चेत्॥	=(इससूत्रमें रूपमें) रस गंध-स्पर्शका ग्रहण नहीं होता है ऐसी शंका है ?

( ) विद् = विचारकरना रुधादि सातवेंगणका आत्मनेपदी सकर्मक धातुहै। इसका विकरण'न' को धातुके स्वर और अन्तके व्यंजनके मध्य लगाते हैं अतःविद् = विनद् । यदि क्रियाका क्ति प्रत्यय लगाना हो तो इस विकरण का 'अ' गिरजाता है इसलिये विन्द् + ते 'ते'के कारण'द्' त् में बदलगया (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ११ में भरि भला वरा सु' सूत्रका अर्थ) इसलिये अब वित्त = वह विचार (अपने लिये) करता है रूप बनगया ॥

( ) विद् चुरादिदसवेंगणका आत्मनेपदी अकर्मक और सकर्मक कहना प्रसिद्धकरना अनुभव करना रहना चार अर्थोंमें आता है॥ इसके विकरण 'अय'के पहिले धातुके उपान्तिक ह्रस्व स्वरकी प्रायःगुण संज्ञा होजातीहै जैसे विद् = वेद् + अय)उक्त तके ओकमसे वेदयते रूप बनताहै,प्रसिद्ध करताहै अनुभवकरता है रहता है अर्थोंमें बनता है॥ सहेतुक सकर्मक रूप वेदयति-वेदयते हैं॥ (१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है ? रूपमेषामस्त्येषु वास्तीतिरूपिणः = रूपम् एषाम् अस्ति वा एषु(रूपम्, अस्ति इति रूपिणः = जिनके रूपहै या जिनमेंरूप हैऐसा' रूपिणः'शब्दका विग्रह है

न। तदविनाभावात्तदन्तर्भावः ॥ पुद्गला इति बहुवचनं भेदप्रतिपादनार्थम् ॥ भिन्ना हि पुद्गला। स्कन्धपरमाणुभेदात्तद्विकल्प उपरिष्टाद्वक्ष्यते॥ यदि प्रधानवदरूपत्वमेकत्वं चेष्टं स्यात् विश्वरूपकार्यदर्शनविरोधः स्यात्॥आह किं पुद्गलवद्धर्मादीन्यपि द्रव्याणि प्रत्येकं भिन्नानीत्यत्रोच्यते-

न॰	=(उत्तर) सो नहीं है अर्थात् रूपमें रस–गन्ध–स्पर्शका ग्रहण है
तद्–अविनाभावात् ॥	=उस (रूप) के अविनाभावकरि अथवा उस (रूप) से व्याप्त होने (केकारण)स या उस (रूप) के बिना उनकी स्थिति न रहने से
तद्–अन्तर्भावः ॥ पुद्गलाः ॥ इति॰बहुवचनम् ॥	=उस (रूप) में (रस-गंध-स्पर्श) गर्भितहैं। (सूत्रमें) पुद्गलाः ऐसा बहुवचन है
भेद प्रतिपादन अर्थम् ॥ भिन्नाः ॥ हि॰पुद्गलाः ॥	=सो (पुद्गलोंके) भेदोंके जनावनेके लिये है। क्योंकि(=हि) पुद्गल भिन्न भिन्न हैं
स्कन्ध-परमाणु-भेदात् ॥ तद्–विकल्पः ॥	=स्कन्ध परमाणु के भेदसे उन (पुद्गलों) के भेद
उपरिष्टात्॰वक्ष्यते। यदि॰प्रधानवत् ॰	=आगे कहेंगे। जो सांख्य मतकी सत्वरजस्तमोरूप तीनों गुणोंवाली प्रकृतिके सदृश
अरूपित्वम् ॥ एकत्वम् ॥ च॰इष्टम् ॥ स्यात् T	=अरूपता और (=च) एकता (पुद्गलोंके) मानीजाय (=इष्ट स्यात्) तो
विश्व-रूप कार्य-दर्शन-विरोधः ॥ स्यात् T	=संसार में मूर्तिक कार्य के देखनमें विरोध होजाय अर्थात् यदि सांख्य मतके अनुसार प्रकृतिको अरूपी और एक माने तो जगतमें बहुतसे कार्य मूर्तिक दीखते हैंसो न दीखें भावार्थ प्रकृतिरूपाहै,मूर्तिकहै,उसके बहुत भेदहैं,और विशेष अवस्थाओंमें दीखतेभी हैं।
आह॰ किम् ॰पुद्गलवत्॰धर्म–आदीनि ॥	= (शिष्य) पूछता है कि क्या पुद्गल द्रव्यके समान धर्म अधर्म आकाश
अपि॰द्रव्याणि ॥ प्रत्येकम्॰भिन्नानि ॥ इति॰अत्र॰उच्यते	=भी प्रत्येक द्रव्य भिन्न भिन्न(=भिन्नानि) हैं यहां (अग्रिमसूत्रमें)कहा जाता है कि

रूप शब्दके अनेक अर्थ होते हैं जैसे गोरूपाणि गोद्रव्याणि अर्थात् गौ द्रव्य हैं। यहां रूप शब्दका अर्थ द्रव्य है। 'चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं स्वभाव इत्यर्थः' अर्थात् चैतन्य पुरुषका स्वभाव है। यहां रूप शब्दका अर्थ स्वभाव है। गुणरूपमध्ययनं कार्य–[illegible] कार्यः अर्थात् दश बार अभ्यास करना चाहिये। यहां रूप शब्दका अर्थ अभ्यास है। स्वरूप शब्दस्य [illegible] भूतिरित्यर्थ शब्दका स्वरूप अर्थात् शब्दका अपना अवयव है। यहां रूप शब्दका अर्थ अवयव है। 'रूप–चत्वारि महाभूतानि [illegible] रूप चेति' रूप अर्थात् चार महाभूतोंको ग्रहण कर, यहां रूप शब्दका अर्थ चार महाभूत है। 'चक्षुर्ग्रहणयोग्यः योऽर्थस्तद्रूपमिति' अर्थात् नेत्र इंद्रियके ग्रहण करने योग्य जो पदार्थ हो वह रूप है, यहां रूप शब्दका अर्थ गुणविशेष है। कहीं कहीं पर रूप शब्दका मूर्ति भी अर्थ है जिस प्रकार रूपिद्रव्यं मूर्तिमद् द्रव्यं अर्थात् यह द्रव्य मूर्तिमान है यहां रूप शब्द का अर्थ मूर्ति है। परंतु उपर्युक्त अनेक अर्थोंके रहते भी शास्त्रकी सामर्थ्यसे यहां पर रूप शब्दका अर्थ मूर्ति ही लिया गया है

॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥

आङ् अयमभिविध्यर्थः । सौत्रीमानुपूर्वीमनुसृत्यैतदुक्तं, तेन धर्माऽधर्माकाशानि गृह्यन्ते । एकशब्दः संख्यावचनस्तेन द्रव्यं विशिष्यते,

(१)आ आकाशादेक(२)द्रव्याणि ॥६॥ = आ आकाशात्-एकद्रव्याणि भवन्ति ॥६॥

सूत्रार्थ —[i]आ [ii]आकाशात्[iii]एकद्रव्याणि[iv]भवन्ति I =(प्रथम सूत्रके धर्म द्रव्यसे लेकर) आकाश पर्यंत एक एक द्रव्य हैं अर्थात् धर्मद्रव्य–अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य अखंड रूप हैं बहुत या अनेक नहीं हैं

वृत्त्यनुवाद:—आङ्[i]अयम्[ii]अभिविधि–अर्थः[iii] =आङ् उपसर्ग अर्थात् आ शब्द है सो यह अभिविधि, अभिव्याप्ति या पर्यंत के अर्थ है

सौत्रीम्[i]आनुपूर्वीम्[ii] =(इस अध्याय के प्रथम) सूत्र द्वारा पठित (=सौत्रीम्) क्रमके (=आनुपूर्वीम्)

अनुसृत्य—एतद्[i]उक्तम्[ii], तेन[iii] =अनुसार (=अनुसृत्य) यह कथन हुआ कि जिस (आङ् या पर्यंत) करि

धर्म–अधर्म–आकाशानि[i] गृह्यन्ते I =धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य लिये जाते हैं अथवा ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् इस अध्याय का प्रथम सूत्र ऐसा है कि "धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः अजीव–कायाः" आकाश द्रव्य पर्यंत सूत्रके आरम्भिक क्रमानुसारमें धर्म–अधर्म आकाश तक गर्भित होगये हैं शेष द्रव्य छूटगये)

एक शब्दः[i]संख्या-वचन[ii]तेन[iii]द्रव्यम्[iv]विशिष्यते I =(इस सूत्र में)एक शब्द है सो संख्यावाची है जिस(एकशब्द) से द्रव्य विशेषित है —अर्थात् एक शब्द द्रव्यका विशेषण अथवा द्रव्यके गुणका वाचक है

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सबमपक है । श्वेताम्बर आम्नायके समाप्य०में "आ आकाशादेकद्रव्याणि" और "आकाशादेक द्रव्याणि" ऐसे दोपाठ हैं पिछले पाठमें आङ् की (=अर्थात् आ की) आकाश शब्द के साथ संधि करलीगई है ऐसा समाप्य० की चरण टिप्पणीमें लिखा है

(२) जब ये तीनों एक एक द्रव्य हैं तो जीव पुद्गल और काल इन तीनों द्रव्योंमें बिना कहे भी अनेकता सिद्ध होजाती है सो आगमानुसार जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं पुद्गल परमाणु जीवों से अनन्त गुण हैं और काल द्रव्य के अणु असंख्यात हैं ।

(३) आआकाशादेकद्रव्याणि (=आ आकाशात्-एक-द्रव्याणि) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में उपर्युक्त पाठ है यहां प्रथम "आ" शब्द अभिव्याप्ति (पर्यंत) रूप अर्थका बोधक है पूर्वोक्त पाठमें भी आकाश शब्दके पूर्व "आ" पद है परन्तु दीर्घ रूप संधि होगई है ॥

एक द्रव्य एकद्रव्यमिति ॥ यद्येवं बहुवचनमयुक्त, धर्माद्यपेक्षया बहुत्वसिद्धिर्भवति ॥ ननु एकस्याने कार्थप्रत्यायनशक्तियोगादेकैकमित्यस्तु लघुत्वाद् द्रव्यग्रहणमनर्थकं, तत्क्रियते द्रव्यापेक्षया एकत्वख्यापनार्थं द्रव्यग्रहणम॥ क्षेत्रभावापेक्षया असंख्येयत्वानन्तत्वविकल्पस्येष्टत्वात् न जीवपुद्गलवत्

एकम्॥ द्रव्यम्॥ एकद्रव्यम्॥ इति॰ =‘एक द्रव्यं’ समासरूपमें “एकद्रव्य” ऐसा होता है अर्थात् टुकडे रूप नहीं है न दो, तीन, चार पांच इत्यादि संख्या रूप हैं एक ही द्रव्य हैं बहुत नहीं हैं ऐसी-धर्म अधर्म आकाश तीन ही द्रव्य हैं

यदि॰एवम्॰ =(प्रश्न)जो ऐसा है अर्थात् धर्म-अधर्म आकाश एकएक द्रव्य हैं वा अभेदरूप द्रव्य हैं

बहुवचनम्॥ अयुक्तम्॥ =तो (सूत्रमें द्रव्याणि ऐसा) बहुवचन (का प्रयोग) ठीक नहीं है

धर्म आदि-अपेक्षया॥ बहुत्वसिद्धिः॥ भवति। =(उत्तर) धर्म अधर्म-आकाशकी अपेक्षासे बहुपनाकी प्राप्ति होती है अर्थात् धर्म अधर्म-आकाश ये तीन द्रव्यें पृथक् पृथक् हैं परन्तु एक एक हैं टुकडे रूपमें नहीं हैं तीन होनेके कारण “द्रव्याणि” इस बहुवचन शब्दकी प्राप्ति है यदि एक द्रव्य होती तो सूत्रमें एक वचन ‘द्रव्य” ऐसा आता और दो द्रव्यें अभेद रूप वा एकएक होतीं तो “द्रव्ये” ऐसा द्विवचनसूत्रमें आते क्यों कि तीनद्रव्यें धर्म-अधर्म और आकाश पृथक् पृथक् टुकडे रहित हैं इसलिये सूत्रमें “द्रव्याणि” ऐसा बहुवचन आये हैं

ननु॰एकस्य॥ अनेक अर्थ प्रत्यायन-शक्ति-योगात्॥ =प्रश्न एक (शब्द) के अनेक अर्थोंके उपजावनेकी सामर्थ्यके प्रसंगसे

एक एकम्॥ इति॰अस्तु। =(यदि सूत्रमें“एक द्रव्याणि”इस वाक्यके स्थानमें)एक एक(=एकैक)ऐसा होता

लघुत्वात्॥ द्रव्य-ग्रहणम्॥ अनर्थकम्॥ =तो(सूत्र)छोटा होजाता द्रव्य शब्दके ग्रहण की आवश्यकता (इससूत्रमें) न होती

तत्-क्रियते। द्रव्य-अपेक्षया॥ =(उत्तर अतः)ऐसा किया गया है कि द्रव्यकी अपेक्षासे(न कि क्षेत्र,भावकीअपेक्षासे)

एकत्वख्यापन अर्थम्॥ द्रव्य-ग्रहणम्॥ =एकपन (धर्म अधर्म-आकाश के) कहनेके लिये द्रव्य(शब्द)का(सूत्रमें) आदान है

क्षेत्र भाव अपेक्षया॥ असंख्येयत्व अनन्तत्व =क्योंकि क्षेत्र,भावकी अपेक्षासे(धर्म अधर्म-आकाशके)असंख्यातपना अनन्तपनाके

विकल्पस्य॥ इष्टत्वात्॥ न॰जीव-पुद्गलवत्॰ =भेद माने हैं । न जीव और पुद्गल के समान

---

१ सवार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें ‘तत्क्रियते’ के स्थान में ‘तथापि’ पाठ है किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें ‘तज्ज्ञायते’ ऐसा पाठ है परन्तु बहुधा हस्तलिखित प्रतियामें ‘तत्क्रियते’ पाठ है इसलिये यह पाठ लिया गया है ॥

एषा बहुत्वमित्येतदनेन ख्याप्यते ॥ अधिकृतानामेव एकद्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते

॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

एषाम्॥बहुत्वम्॥इति॰, एतद्॥ =इन (धर्म अधर्म आकाश) के (द्रव्यकी अपेक्षासे) बहुतपन है ॥ यह (=एतद्)
अनेन॥ख्याप्यते।; अधिकृतानाम्॥एव॰ =इस (सूत्र) करि प्रसिद्ध है ॥ प्रकरणरूप कियेगये ही
एक-द्रव्याणाम्॥विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम्॥इदम्॥उच्यते=अभेदरूप (धर्म अधर्म आकाश) द्रव्योंके विशेष जाननेके लिये यह कहाजाता है कि

सूत्रम् "निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ =(आ आकाशात्) निष्क्रियाणि च (भवन्ति) ॥७॥

सूत्रार्थ-आ॰आकाशात्॥निष्क्रियाणि॥च॰भवन्ति। =और(=च)आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं। अथवा आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलन चलन रूप क्रियासे भी(=च) रहित हैं अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य नित्य-अवस्थित-अरूपी-एकएक द्रव्य होनेके अतिरिक्त(=च)अपने अपने स्थानसे कदाचित् चलायमान नहीं होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र का तथा हमारे यहां का शुद्ध पाठ 'निष्क्रियाणि च' एक है उनके यहां की भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके पृष्ठ ३५६ में नि: क्रियाणि च अथवा यह पाठ है। हमारे यहां भी कितनीही पुस्तकोंमें जैसे तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६६ पर और लालचन्द्रजी लाहोर के मुद्रित 'तत्त्वार्थ सूत्राणि' के पृष्ठ १५ पर नि: क्रियाणि च' पाठ है सो अशुद्ध है क्योंकि दुस्-दुर् वा अव्यय दुःख कल्पितता अर्थमें एकार्थ वाची हैं और निस् निर ये दो अव्यय निषेध नहि, निश्चय रहित, अर्थमें समानार्थक शब्द हैं जिसके स' को 'ससजुषो रुः (८-२-६६ सूत्र से) = पदान्त सकार और सजुष शब्दके षकार को रु हो रु हुआ 'रु' में उ इत्संज्ञक है इस उ' का लोप होगया फिर केवल निर रहगया अब निस् और निर दोनोंका निर् रूप रहा। "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" (८।३।१५ सूत्र से) खर् परे हो या अवसानमें पदान्तरफको विसर्जनीय आदेशहो 'निर्' का निः हुआ। निः+क्रिया+जस (=जस प्रथमा बहुवचनका चिन्ह है) ॥

कुप्वोः ≍क ≍पौ च (८-३-३७ सूत्र से) कवर्ग पवर्ग परे हो तो विसर्जनीयको यथासंख्य जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हो और विसर्जनीय भी(=च)हो। इस सूत्रने विसर्जनीय का स् नहीं होने दिया क्योंकि यह सूत्र'विसर्जनीयस्य सः ८।३।३४(=खर् परे हो तो विसर्जनीयको सकार आदेश हो) सूत्र के प्रयोग को रोकता है ॥ इसने विसर्जनीय का विसर्जनीयही नियत रक्खा ॥ अब 'इदुदुपधस्य चा ऽप्रत्ययस्य ८।३।४१ सूत्र (कवर्ग पवर्ग परे हो तो इकार और उकार हैं उपधामें जिसके ऐसे प्रत्ययभिन्न के विसर्जनीयको षकारादेश हो ॥ इसलिये निष्+क्रिया+अस् रूप हुआ ॥ यदि यहांपर कोइ तर्क करे कि हम संधि नहीं करते हैं निर+क्रियाणि अथवा निः क्रियाणि ही रक्खाजाय तो क्या हानि है ॥ (उत्तर) एकपदमें अर्थात् अखंड पदमें जैसे राम+नाम्=रामाणाम्, धातुके साथ उपसर्गमें जैसे प्र+भवति=प्रभवति=अधिक मान्य करता है और समासमें जैसे यहां निः+क्रिया+जस=निष्क्रियाणि नित्य या आवश्यकतासे संधि होती है। यहां पर यदि संधि न की जाती तो 'क्रिया' शब्द तो स्त्रीलिंग है नपुंसकलिंग नहीं होसकता यहांपर निष्क्रियाणि प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंगी है परन्तु अन्य प्रकारके वाक्योंमें वक्ताकी इच्छा है संधि करे या न करे इसलिये निःक्रियाणि' शब्द अशुद्ध है और विना 'समास के क्रिया शब्द का कदापि क्रियाणि नहीं बनसकता है ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमान पर्यायो द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतु क्रिया, तस्या निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि॥ अत्र चोद्यते- धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि ततस्तेषामुत्पादो न भवेत्। क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्ट। उत्पादाभावाच्च व्ययाभाव इति॥ अत सर्वद्रव्याणामुत्पादादित्रयकल्पनाव्याघात इति॥ तन्न॥ किं कारणम् ?

---

(१) उभय-निमित्त-वशात् द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्ति-हेतु उत्पद्यमानः पर्याय क्रिया॥ =दोनों (बाह्य, अभ्यन्तर) निमित्तके वशसे द्रव्यके (एकक्षेत्र से) अन्य क्षेत्रमें गमन करनेका कारणरूप उपजी जो पर्याय अथवा विशेष अवस्था सो क्रिया है अर्थात् पदार्थोंका क्षेत्रांतरमें गमन तथा प्रदेशोंका सकंपपनारूप क्रिया होती है

तस्याः निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि॥ अत्र च उद्यते =तिस (क्रिया) से पृथक् होनेसे ये क्रिया रहित हैं। यहां तक की जाती है कि

धर्म (२) आदीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि =धर्म अधर्म आकाश द्रव्यें यदि हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं

ततस् तेषाम् उत्पादः न भवेत्। =तो (=ततः) तिनके उत्पाद न होना चाहिये

क्रिया-पूर्वकः हि घटादीनाम् उत्पादः दृष्टः। =क्योंकि (=हि) क्रिया है कारण जिसको ऐसी उत्पत्ति घटादिकोंकी देखीजाती है

उत्पाद अभावात् च व्यय अभाव इति॥ =और (=च) उत्पत्तिके न होनेसे नाशका अभाव है

अतस् सर्व-द्रव्याणाम् उत्पाद आदि-त्रय-कल्पना-व्याघात इति तत् न॥ किं कारणम्? =इसलिये समस्त द्रव्योंके उत्पत्ति, विनाश, ध्रौव्य वा स्थिरपना तीनों कल्पनाओंमें बाधा अथवा विघ्न आता है। (उत्तर)सो (व्याघात)नहीं है।(प्रश्न)क्या कारण है

---

(१) 'क्रिया' शब्द पुलिंग और नपुसकलिंग दोनों है (२) क्रियापरिणामशक्तियुक्त द्रव्यमभ्यन्तरनिमित्तं प्रेरणादिकं बाह्यनिमित्तं तद्वशादित्यर्थः॥

क्रिया-परिणाम-शक्ति-युक्तं द्रव्यम् अभ्यन्तर-निमित्तम्॥ =क्रियारूप परिणमन शक्ति सहित द्रव्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है अर्थात् द्रव्यमें क्रियारूप परिणमनकी सामर्थ्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है।

प्रेरण आदिकम् बाह्यनिमित्तम्॥ =(और पर द्रव्यकी) प्रेरणा प्रेषण वा संयोजन आदिक हैं सो बाह्य कारण है

तद्-वशात् इति अर्थः। =तिन (दोनों निमित्तों) के वशसे (द्रव्यके क्रियाउत्पन्न होती है) ऐसा तात्पर्य है

(३) धर्मादीनि—धर्मास्तिक धर्मास्तिकायमें कालका उपदेश नहीं किया है इसमें अस्तिकायपनेमें आदि शब्दमें कालको नहीं लिया है यद्यपि कालभी निष्क्रिय है

अन्यथोपपत्ते ॥ क्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यथोत्पादः कल्प्यते॥ तद्यथा-द्विविध उत्पादः स्वनिमित्तः परप्रत्ययश्च ॥ स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्यादभ्युपगम्यमानानां षट्स्थानपतितया वृद्ध्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च॥ परप्रत्ययोऽपि अश्वादिगतिस्थित्यवगाहनहेतुत्वात्क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्धेतुत्वमपि भिन्नमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च व्यवह्रियते ॥ ननु यदि निष्क्रियाणि

अन्यथा॰उपपत्तेः॥ क्रियानिमित्त-उत्पाद-अभावे॥ =क्योंकि दूसरे प्रकारसे भी सिद्ध होती है। क्रियानिमित्तक उत्पादके न होनेपर
अपि एषाम्॥ धर्म-आदीनाम्॥ अन्यथा॰उत्पादः कल्प्यते॥ =भी इन धर्म-अधर्म-आकाशके औरप्रकार उत्पाद मानाजाता है
तद्॥ यथा॰द्वि-विधः॥ उत्पादः॥ स्वनिमित्तः॥ च॰ =वह ऐसे है-उत्पाद दो प्रकार है स्वनिमित्त और (=च)
परप्रत्ययः॥ स्वनिमित्तः॥ तावत्॰अनन्तानाम्॥ अगुरुलघु =परनिमित्त। स्वनिमित्त तो (=तावत्) अनन्त अगुरुलघु
गुणानाम्॥ आगम-प्रामाण्यात्॥ अभ्युपगम्यमानानाम्॥ =गुणोंके जो शास्त्र प्रमाणकरि माने हुये हैं
षट्-स्थानपतितया॥ वृद्ध्या॥ हान्या॥ च॰ =छह स्थानोंमें पड़ने वाली वृद्धि और हानिकरि
प्रवर्तमानानाम्॥ स्वभावात्॥ एतेषाम्॥ =प्रवर्तनवाले (अगुरुलघुगुणोंके) स्वभावसे अर्थात् परिणमनसे इन (धर्म अधर्म आकाश)के
उत्पादः॥ व्ययः॥ च॰; =उत्पाद होता है। और (=च) (इसी प्रकार) व्यय होता है
पर-प्रत्ययः॥ अपि॰अश्वादि-गति-स्थिति =और (=अपि) पर निमित्त (उत्पाद व्यय) है सो अश्वादिकका गमन स्थिति
अवगाहन हेतुत्वात्॥ क्षणे॰ क्षणे॰ =अवगाहनका कारण (धर्म अधर्म आकाशके यथासंख्य) होनेसे क्षण क्षणमें
तेषाम्॥ भेदात्॥ तद् हेतुत्वम्॥ अपि॰भिन्नम्॥ इति॰ =तिन(गति स्थिति-अवगाहन)के भेद होनेसे उन(गति आदिकके) हेतुपनाभी भिन्न है
अर्थात् मनुष्य,गाय, अश्वादिकको गमनका निमित्त धर्म द्रव्य है। स्थितिका
कारण अधर्मद्रव्य है और अवकाशदान अथवा स्थान दानकाहेतु आकाश द्रव्य है और क्षण क्षणमें उन
गति स्थिति अवगाहनके भेद हैं इसलिये उन गति-स्थिति-स्थान दानके कारणभी पृथक् पृथक् हैं
परप्रत्यय अपेक्षः॥ उत्पादः॥ विनाशः॥ च॰ =परनिमित्त अपेक्षा उत्पाद, व्यय भी (=च)
व्यवह्रियते॥ ननु॰। यदि॰निष्क्रियाणि॥ =माना जाता है। प्रश्न। यदि हलन चलन रूप क्रियासे रहित

धर्मादीनि, जीवपुद्गलानां गत्यादिहेतुत्वं नोपपद्यते । जलादीनि हि क्रियावन्ति मत्स्यादीनां गत्यादिनिमित्तानि दृष्टानीति ॥ नैष दोषः ॥ बलाधाननिमित्तत्वाच्चक्षुर्वत् । यथारूपोपलब्धौ चक्षुर्निमित्तमपि न व्याक्षिप्तमनस्कस्यापि भवति॥ अधिकृतानां धर्माधर्माकाशाना-

धर्म आदीनि ॥ जीव पुद्गलानाम् ॥ गति आदि हेतुत्वम् ॥ न•उपपद्यते ॥ जलादीनि ॥ हि•क्रियावन्ति ॥ मत्स्य आदीनाम् ॥ गत्यादि-निमित्तानि ॥ दृष्टानि ॥ इति•, न•एष ॥ दोष ॥ बलाधान निमित्तत्वात् ॥ चक्षुवत्•

=धर्म अधर्म आकाश द्रव्य हैं वो जीव और पुद्गलोंके गति स्थिति अवगाहनाका =निमित्तपना प्राप्त नहीं होता है । क्योंकि (हि) क्रियावान् जलादिक =मीन आदिकोंके गमनादिकके कारण इसप्रकार देखे जाते हैं =(उत्तर)यह दूषण नहीं है। क्योंकि नत्रेन्द्रियके समान अप्रेरक निमित्त है अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य जीव तथा पुद्गलोंकी यथासंख्य गति, स्थिति, अवगाहनके लिये प्रेरणा नहीं करते हैं किन्तु यदि जीव और पुद्गल गमन करें तो धर्मद्रव्य गमन में अप्रेरक निमित्त होती है। अधर्मद्रव्य स्थितिमें उदासीनतासे कारण होती है और इसी प्रकार आकाश द्रव्य अवगाहनमें बलाधान या उदासीनतासे निमित्त होती है ॥

यथा•रूप-उपलब्धौ ॥ चक्षु: ॥ निमित्तम् ॥ अपि• व्याक्षिप्त-मनस्कस्य ॥ अपि• न•भवति ।

=जैसे—रूपके देखनमें (=उपलब्धौ) नेत्र निमित्त है तौभी (=अपि) =न लगेहुये (मनुष्यके) मनके भी वा मनुष्यके अनाकर्षित चित्तकेभी =(रूपकी उपलब्धि)नहीं होती हैअर्थात् यदि पुरुषका चित्त अन्य पदार्थमें लगाहो तब रूपको नहीं देखसकता है । जब नेत्र और पुरुषका चित्त दोनों एकही कालमें किसी पदार्थको ओर होवें तब पुरुषके नेत्र रूपके देखनमें निमित्त हैं नहीं तो निमित्त नहीं हैं

अधिकृतानाम् ॥ धर्म अधर्म—आकाशानाम् ॥

=प्रकरण प्राप्त जो धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके, और आकाशद्रव्यके

(१) गत्यादि परिणतस्य बलाधानं कुर्वन्ति न तु स्वयं प्रेरयन्तीति भाव: ॥
गत्यादि-परिणतस्य ॥ बलाधानम् ॥ कुर्वन्ति । =(धर्मादिक द्रव्य) गमनादिक अवस्थाके अप्रेरक निमित्तको करती है
न•तु•स्वयम्•प्रेरयन्ति । इति•भाव: । =किन्तु स्वयं (गति स्थिति—अवगाहनकी) प्रेरक नहीं हैं ऐसा तात्पर्य है
इसके पश्चात् [illegible] भाषाका वाक्य है "[illegible]" ॥ [illegible] ॥

निष्क्रियत्वेऽभ्युपगते जीवपुद्गलाना सक्रियत्वमर्थादापन्नम् ॥ कालस्यापि सक्रियत्वमितिचेन्न । अनधिकारात् अत एवासावेतै सह नाधिक्रियते ॥ अजीवकाया इत्यत्र कायग्रहणेन प्रदेशास्तित्वमात्र निर्ज्ञातं नत्वियत्तावधारिता प्रदेशानामतस्तांवधारणार्थमिदमुच्यते—

॥ असङ्ख्येयः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

निष्क्रियत्वे अभ्युपगते जीव = निष्क्रियपना माननेमें जीव और
पुद्गलानाम् सक्रियत्वम् अर्थात् आपन्नम् = पुद्गलोंके सक्रियपन अथवा क्रियावानपन अर्थसे या विषयसे प्राप्त होता है
कालस्य अपि सक्रियत्वम् इति चेत् न = कालद्रव्यके भी क्रियावानपन (आता) है ऐसी शंका (=चेत्) है (उत्तर) सो नहीं है
अन्-अधिकारात् अत एव असौ = क्योंकि कालद्रव्यका (यहां) विषय वा प्रकरण नहीं है। इसलिये ही वह (कालद्रव्य)
एतैः सह न, अधिक्रियते = इन (जीव, पुद्गल) के साथ (=एतै सह) प्रकरणरूप नहीं कियागया है
"अजीव कायाः" इति अत्र कायग्रहणेन = 'अजीव काया' ऐसे यहां (प्रथम सूत्रमें) कायके ग्रहण करनेसे
प्रदेश-अस्तित्वमात्रम् निर्ज्ञातम् न तु प्रदेशानाम् = प्रदेशोंकी केवल (=मात्र) विद्यमानता जानीजाती है। परन्तु प्रदेशोंका
इयत्ता अवधारिता अतः = परिमाण वा संख्या (=इयत्ता) निश्चित नहीं की गई है (=अवधारिता)। इसलिये
तद् निर्धारण-अर्थम् इदम् उच्यते = उन (प्रदेशोंकी गिनती) का निश्चय करने केलिये यह (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् = धर्म-अधर्म-एक जीवानाम् असंख्येया प्रदेशा भवन्ति।८।

सूत्रार्थः—धर्म अधर्म एक जीवनाम् = धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके और एक जीवके

(१) निष्क्रियाणि च' सूत्र में 'च' शब्दका अर्थ यहां पर और अथवा भी दोनों होसकते हैं जैसाकि भिन्नभिन्न उपर्युक्त अनुवादसे प्रगट है यदि 'च' शब्द 'और' के अर्थमें लेवें तो तीन ही द्रव्य जो सूत्रमें कहीं हैं उनके सम्बन्धके अर्थ हैं अर्थात् धर्म अधर्म आकाश तीनको आकर्षण करता है प्रगट करता है वा ग्रहण करता है क्योंकि 'कालद्रव्य का अभी तक आचार्य ने उपदेश नहीं किया है। कालद्रव्य भी निष्क्रिय है। यदि 'च' शब्दका 'भी' अर्थ लेवे तो उसका सम्बन्ध द्रव्यों के गुणोंसे होजाता है नकि उनकी संख्यासे अर्थात् ये तीन द्रव्य एक एक हैं दूसरा गुण उनमें यह है कि क्रिया रहित हैं तब दोनों सूत्रोंको अर्थ अत्यन्त सरलतासे यह होता है कि धर्म अधर्म आकाश एक एक द्रव्य हैं और क्रिया रहित भी हैं॥

(२) इयत्ता (स्त्री०) = 'इतनेका होना। सीमा। परिमाण। माप। संख्या। गिनती पाषण्डकोश पृष्ठ ९७॥ अतः "इयत्ता" का अनुवाद 'संख्या' किया गया है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें इस सूत्रके स्थानमें नीचे लिखे हुये दो सूत्र हैं जिनसे विदित है कि दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका एकसा तात्पर्य है। असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मयोः ॥७॥ जीवस्य च ॥८॥ देखो उक्त सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १२२

संख्यामतीता असंख्येया ॥ असंख्येयस्त्रिविध । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥ तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंख्येय परिगृह्यते॥ प्रदिश्यन्त इति प्रदेशा ॥वक्ष्य माणलक्षण परमाणु स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इतिव्यवह्रियते॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासंख्येयप्रदेशा तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रियौ लोकाकाश व्याप्य स्थितौ ।

असंख्येया ॥ प्रदेशा ॥ =(क्रमसे) असंख्यात, असंख्यात, और असंख्यात(प्रत्येकके)प्रदेश हैं अर्थात् धर्म द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं,अधर्मद्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं और एक जीवके भी असंख्यातप्रदेश हैं

शब्दानुवाद –संख्याम्॥ अतीता॥ असंख्येया॥ =संख्याको उल्लंघगये हैं वे असंख्येया है अर्थात् जो गणनामें न आसकें वे असंख्यात हैं

असंख्येय॥ त्रिविध॥ जघन्य॥ उत्कृष्ट॥ च॥ =असंख्येय तीन प्रकार है, जघन्य वा निकृष्ट, उत्कृष्ट वा प्रकर्ष और (–च)

अजघन्य उत्कृष्ट॥ इति,तत्र इह॥ अजघन्योत्कृष्ट =मध्यम ॥ तहां यह(=इह) मध्यम वा बीचका

असंख्येय॥ परिगृह्यते। प्रदिश्यन्ते॥ इति॥ =असंख्यात लियागया है ॥ (जिनकरि आकाशके) विभाग किये गये हैं ऐसे

प्रदेशा॥। =(आकाशके विभाग) प्रदेश हैं । अर्थात् परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे आकाशके विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशके प्रदेशोंको प्रदेश कहते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि आकाश अखंड, निरंश,सर्वगत और एक द्रव्य है तौभी परमाणुओंकरि मापिये तो अनंत परमाणु होते हैं और इसप्रकार आकाशके अनंत अंश मानेजाते हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनंतप्रदेशी पर्यायनयकरि कहते हैं परन्तु द्रव्यार्थिकनय अथवा द्रव्य अपेक्षासे अखंड, निरंश,सर्वगत, एक, और भिन्नता रहित आकाश है

वक्ष्यमाणलक्षण॥ परमाणु॥ =आगे कथन किये जान लक्षण रूप वा आगामि कहेजाने लक्षणवाला परमाणु है

स॥ यावति॥ क्षेत्रे॥ व्यवतिष्ठते॥ स॥ प्रदेश॥ =वह (परमाणु)जितने क्षेत्रमें निश्चल ठहरती है वा समाजाती है सो प्रदेश है

इति॥ व्यवह्रियते॥ धर्म-अधर्म एकजीवा॥ तुल्य– =ऐसा मानागया है ॥ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एकजीव समान

असंख्येय प्रदेशा॥, तत्र॥ धर्म अधर्मौ॥ निष्क्रियौ॥ =असंख्यात (असंख्यात) प्रदेशी है। तहां धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य क्रिया रहित

लोक–आकाशम्,व्याप्य—स्थितौ॥ =लोकाकाशको व्याप्त कर स्थित हैं अर्थात् समस्त लोकाकाशमें ऊपर नीचे मध्यमें और

जीवस्तावत्प्रदेशोऽपि सन् संहरणविसर्पण स्वभावत्वात्कर्मनिर्वर्तितं शरीरमणुमहद्वाऽधितिष्ठं स्तावदवगाह्य वर्तते यदा तु लोकपूरणं भवति मन्दरस्याधश्चित्र वज्रपटलमध्ये जीवस्याष्टौ मध्य प्रदेशा व्यवतिष्ठन्ते। इतरे प्रदेशा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् कृत्स्नं लोकाकाशं व्यश्नुवते ॥

अथाकाशस्य कति प्रदेशा इत्यत आह—

इधर उधर सर्वत्र पूर्णरूपसे धर्म और अधर्म द्रव्य का हलन चलन रूप क्रियासे वर्जित है भरी हुई हैं

जीवः।तावत्॰प्रदेशः।अपि॰सन्।	=जीव इतने(=यावत्) अर्थात् असंख्यात प्रदेशी होते हुयेभी (= अपि सन्)
संहरण-विसर्पण-स्वभावत्वात्।कर्मनिर्वर्तितम्।	=संकोच और फैलावरूप स्वभावके होनेसे कर्मरचित (अथवा कर्मजनित)
शरीरम्।अणु-महत्-वा॰[1]अधितिष्ठन्।तावत्॰	=छोटा अथवा बड़ा शरीर पाते हुए(=अधितिष्ठन्) जिसमात्र (=यावत्)
[2]अवगाह्य—वर्तते।यदा॰तु[3]लोकपूरणम्।भवति।	=विस्तरित होकर प्रवर्तता है परन्तु जब(केवलि समुद्घात करि)लोक पूरण होताहै
मन्दरस्य।अधस्॰चित्र-वज्र-पटल-मध्ये।	=तब सुमेरु पर्वतके नीचे चित्रा पृथिवीके वज्रमयी पटलके मध्यमें
जीवस्य।अष्टौ।मध्यप्रदेशाः।व्यवतिष्ठन्ते।	=जीवके आठ मध्यके प्रदेश निश्चल तिष्ठते हैं अर्थात् जिस अवसरमें केवली हो लोकपूरण समुद्घात करते हैं तब सुमेरु की जड़ जो चित्रापृथिवीकी मोटाईके बराबर एक सहस्रयोजन मोटी है। चित्रा और वज्रा पृथिवीके पटलोंके बीच केवली भगवान् केआत्माके आठमध्यके प्रदेश निश्चल ठहरते हैं
इतरे।प्रदेशाः।ऊर्ध्वम्॰अधस॰तिर्यक्॰	=(और केवली भगवानके)अन्य प्रदेश ऊपर नीचे इधर उधर (=दायें बायें)
कृत्स्नम्।लोकाकाशम्।व्यश्नुवते।	=समस्त लोकाकाशको व्याप्त करलेते हैं। केवलिसमुद्घातका विस्तारसे कथन जाननेके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११५से १२१ तक
अथ॰आकाशस्य।[4]कति।प्रदेशाः।इति॰अतः॰आह	=अब आकाशके कितने प्रदेश हैं इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) अधितिष्ठन् वर्तमान कृदन्त है ॥ (२) अवगाह्य सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त है (३) कषाय वेदनादिक सातप्रकारोंसे जो जीवके प्रदेश मूल शरीर को न छोड़कर शरीरसे बाहर होते हैं उसको समुद्घात कहते हैं। वे समुद्घात सातप्रकारके हैं ॥ मूल शरीर छूटे नाहि इत्यादि कवित्तके लिये जिसमें सातप्रकारका समुद्घात वर्णितहै देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११५ से १२१ तक ॥ (४) कति सर्वनाम है केवल बहुवचनमें आता है ॥

संख्यामतीता असंख्येया ॥ असंख्येयस्त्रिविध । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥ तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंख्येय परिगृह्यते। प्रदिश्यन्त इति प्रदेशा ॥वक्ष्य माणलक्षण परमाणु स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इतिव्यवह्रियते॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासंख्येयप्रदेशा तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रियौ लोकाकाशं व्याप्य स्थितौ ।

असंख्येया॥ प्रदेशा॥

=(क्रमसे) असंख्यात, असंख्यात, और असंख्यात(प्रत्येकके)प्रदेश हैं अर्थात् धर्म द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं,अधर्मद्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं और एक जीवके भी असंख्यातप्रदेश हैं

इत्यनुवाद —संख्याम्॥ अतीता॥ असंख्येया॥ असंख्येय॥ त्रिविध॥ जघन्य॥ उत्कृष्ट॥ च॥ अजघन्य-उत्कृष्ट॥ इति,तत्र इह॥ अजघन्योत्कृष्ट असंख्येय॥ परिगृह्यते॥ प्रदिश्यन्ते॥ इति॥ प्रदेशा॥

=संख्याको उलंघगये हैं वे असंख्येया हैं अर्थात् जो गणनामें न आसकें वे असंख्यात हैं
=असंख्येय तीन प्रकार है, जघन्य या निकृष्ट, उत्कृष्ट या प्रकर्ष और (=च)
=मध्यम ॥ वहां यह(=इह) मध्यम या बीचका
=असंख्यात लियागया है ॥ (जिनकरि आकाशके) विभाग किये गये हैं ऐसे
=(आकाशके विभाग) प्रदेश हैं । अर्थात् परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे आकाशके विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशके प्रदेशोंका प्रदेश

कहते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि आकाश अखंड निरंश,सर्वगत और एक द्रव्य है तोभी परमाणुओंकरि मापिये तो अनंत परमाणु होते हैं और इसप्रकार आकाशके अनंत अंश मानेजाते हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनंतप्रदेशी पर्यायनयकरि कहते हैं परन्तु द्रव्यार्थिकनय अथवा द्रव्य अपेक्षासे अखंड, निरंश,सर्वगत, एक, और भिन्नता रहित आकाश है

वक्ष्यमाणलक्षण॥ परमाणु॥ स॥ यावति॥ क्षेत्रे॥ व्यवतिष्ठते॥ स॥ प्रदेश॥ इति॥ व्यवह्रियते॥ धर्म-अधर्म एकजीव॥ तुल्य-असंख्येय प्रदेशा॥, तत्र॥ धर्म-अधर्मौ॥ निष्क्रियौ॥ लोक-आकाशम्॥ व्याप्य—स्थितौ॥

=आगे कथन किये जाने लक्षण रूप या आगामी कहेजाने लक्षणवाला परमाणु है
=वह (परमाणु)जितने क्षेत्रमें निश्चल ठहरता है या समाजाता है सो प्रदेश है
=ऐसा मानागया है ॥ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एकजीव समान
=असंख्यात (असंख्यात) प्रदेशी हैं। तहां धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य क्रिया रहित
=लोकाकाशको व्याप्त कर स्थित हैं अर्थात् समस्त लोकाकाशमें ऊपर नीचे मध्यमें और

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणो प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेष ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात्। यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः॥किं च ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति। यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥एषामवधृत

सूत्रम्—नाणोः॥११॥	= नाणो (प्रदेशा भवन्ति)॥११॥
सूत्रार्थ—न॰ अणो॰ प्रदेशा॰ भवन्ति।	= अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभावसे एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है
वृत्त्यनुवाद—अणोः॰ प्रदेशा॰ न॰ सन्ति। इति॰	= अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा
(१)वाक्यशेषः॰	= वाक्य शेष है अर्थात् 'न अणो' यह वचन अपूर्ण है। उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है
कुतः॰ न॰ सन्ति। इति॰ चेत्॰	= क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं है। ऐसी शंका है।
प्रदेश-मात्रत्वात्॰	= (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)
यथा॰ आकाश-प्रदेशस्य॰ एकस्य॰ प्रदेश-भेद-	= जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद
अभावात्॰ अप्रदेशत्वम्॰। एवम्॰ अणोः॰ अपि॰	= न होनेसे अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी
प्रदेशमात्रत्वात्॰ प्रदेश-भेद-अभावः॰	= प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है॥
किम्॰ च॰ ततः॰ अल्प-परिमाण-अभावात्॰	= और क्योंकि(किस लियेकि)तिस (परमाणु) से लघु परिमाण न होने(के हेतु)से
नहि॰ अणोः॰ (३)अल्पीयान्॰ अन्यः॰ अस्ति। यतः॰	= अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं(= न हि) है। जिससे
अस्य॰ प्रदेशाः॰ (२)भिद्येरन्। एषाम्॰ अवधृत	= इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे जावें॥ इन निश्चय किये हुये या निर्णीत किये हुये

(१)वाक्यशेष = वाक्य या वचनका छूटा हुआ या अवशेष भाग(॥)पद आकांक्षा वाक्य आकांक्षा समर्थपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिङ (बतायें)(३)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैं तीन श्रेणी होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण का प्रगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था वह है जो दो विशेष्योंमें से एकके गुण या दूषण को दूसरे पर लघुता प्रभुता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग)अतिशय्य बोधक अवस्था वह है जिससे केवल एक विशेष्यका

नानन्त्यमिति ॥ नैष दोषः । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाण्वादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थानं न विरुध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसङ्गे तत्प्रतिषेधार्थमाह—

न–अनन्त्यम्॥इति = अन्तरहित अर्थात् असंख्यात प्रदेश हैं पनका भावार्थ यह है कि लोक तो असंख्यात प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध किस प्रकार समासकते हैं

न एषः दोषः = (उत्तर) यह दूषण नहीं है

सूक्ष्म–परिणाम–अवगाहन–शक्ति–योगात् परमाणु–आदयः हि = क्योंकि (पुद्गल परमाणु आदिका) सूक्ष्म वा लघु परिणमन (और आकाशके प्रदेशों का) स्थानदान देनेकी सामर्थ्यके योगसे परमाणु आदि ही

सूक्ष्म–भावेन परिणताः एक एकस्मिन् अपि = लघुरूपाकार परिणत हो रहे हैं (और) एक एक भी

आकाश प्रदेशे अनन्तानन्ताः अवतिष्ठन्ते च = आकाशके प्रदेशमें अनन्तानन्त (परमाणु) तिष्ठते हैं और (=च)

एषाम् अवगाहन–शक्तिः अव्याहता अस्ति = इन (आकाशके प्रदेशों) के स्थानदान देनेकी सामर्थ्य अरोक है (=अव्याहता अस्ति)

तस्मात् एकस्मिन् अपि प्रदेशे = तिससे एक भी (आकाशके) प्रदेशमें

अनन्तानन्तानाम् अवस्थानम् न विरुध्यते = अनन्तानन्त (परमाणुओं) का ठहरना नहीं विरोधा जाता है

पुद्गलानाम् इति अविशेष–वचनात् = (सूत्रमें) पुद्गलोंके (संख्यात–असंख्यात–अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेश हैं) ऐसे सामान्य वाक्यसे

परमाणोः अपि प्रदेशत्व–प्रसङ्गे = (पुद्गल) परमाणु औरके भी प्रदेशपनाका प्रसंग आने पर

तत् प्रतिषेध अर्थम् आह = उस (परिमाणु) के (बहुप्रदेशपनाके) निषेधके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

---

(१) जैसे एक चंपाकी कली किसी तिष्ठे हुये सुगन्ध पुद्गल परमाणु सूक्ष्म रूप परिणमनसे संकोच रूप तिष्ठते हैं बहुरि वही सुगन्ध परमाणु जब फैले तब सर्व दिशाओंमें व्यापक हो जाते हैं तैसे सूक्ष्म परिणमनसे लोकाकाशके एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु बादर वा स्थूलरूप परिणमें तब बहुत प्रदेशोंमें तिष्ठते हैं ॥ इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि बड़े वा गाढ़ काष्ठमें प्रकाश [illegible] स्कन्ध हैं यदि अग्निसे जलाये जावें तो धूम रूपमें होकर सब दिशाओंमें भटकते हैं [illegible] लोकाकाशमें [illegible] जगत पुद्गल का असंख्यात [illegible] रहित पाया जाता है।

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणो प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेष ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात्। यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः॥ किं च ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति। यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥एषामवधृत

सूत्रम्—नाणोः॥११॥	= नाणो (प्रदेशा भवन्ति)॥११॥
सूत्रार्थ —न॰अणो ॥ प्रदेशाः॥ भवन्ति।	= अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभावसे एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है
वृत्त्यनुवाद—अणोः॥ प्रदेशाः॥ न॰सन्ति। इति॰	= अणुके प्रदेश नहीं हैं ऐसा
(१)वाक्यशेषः॥	= वाक्य शेष है अर्थात् 'न अणो' य वाक्य अपूर्ण है। उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है
कुतः॰ न॰ सन्ति। इति॰ चेत्॰	= क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं हैं। ऐसी शंका है।
प्रदेश-मात्रत्वात् ॥	= (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)
यथा॰आकाश-प्रदेशस्य ॥ एकस्य॥प्रदेश-भेद-	= जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद
अभावात् ॥ अप्रदेशत्वम् ॥एवम्॰अणोः॥अपि॰	= न होनेसे अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी
प्रदेशमात्रत्वात् ॥ प्रदेश-भेद-अभावः॥	= प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है ॥
किम्॰च॰ ततः॰ अल्प-परिमाण-अभावात्॥	= और क्योंकि(किस लियेकि)तिस (परमाणु) से लघु परिमाण न होन(के हेतु)से
नहि॰अणोः॥(१)अल्पीयान्॥अन्यः॥अस्ति।,यतः॰	= अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं(= न हि) है। जिससे
अस्य॥ प्रदेशाः॥(२)भिद्येरन्। एषाम्॥ अवधृत	= इस (परमाणु)के प्रदेश भेदे जावें ॥ इन निश्चय किये हुये वा निर्णीत किये हुये

(१)वाक्यशेष = वाक्य का वचनका छूटा हुआ वा अवशेष भाग(।।)पद आकांक्षा वाक्य आकांक्षा समयपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिंग (प्रत्यादि १)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीन श्रेणी होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण प्रगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था यह है जो दो विशेष्योंमें से एकके गुण वा दूषण कोदूसरे पर लघुता महत्ता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है।मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग)अतिशय्य बोधक अवस्था यह है जिससे अनेकमेंसे एक विशेष्यका

नानन्त्यमिति ॥ नैष दोष । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाण्वादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थान न विरुध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसगे तत्प्रतिषेधार्थमाह—

न—अनन्त्यम् इति	=अन्त्य रहित अर्थात् असंख्यात प्रदेश हैं इनका भावार्थ यह है कि लोक तो असंख्यात प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध किस प्रकार समासकते हैं
न एष दोषः सूक्ष्म-परिणाम-	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि (पुद्गल परमाणुओंका) सूक्ष्म वा लघु परिणमन
अवगाहन-शक्ति-योगात् परमाणु-आदयः हि	=(और आकाशके प्रदेशों का) स्थानदानदेनेकी सामर्थ्यके योगसे परमाणु आदि ही
सूक्ष्म-भावेन परिणताः एक-एकस्मिन् अपि	=लघुरूपहोकर परिणत हो रहे हैं (और) एक एक भी
आकाश-प्रदेशे अनन्तानन्ताः अवतिष्ठन्ते च	=आकाशके प्रदेशमें अनन्तानन्त(परमाणु) तिष्ठते हैं और (=च)
एषाम् अवगाहन शक्तिः अव्याहता अस्ति	=इन (आकाशके प्रदेशों) के स्थानदानदेनेकी सामर्थ्य अरोक है (=अव्याहता अस्ति)
तस्मात् एकस्मिन् अपि प्रदेशे	=तिससे एक भी (आकाशके) प्रदेशमें
अनन्तानन्तानाम् अवस्थानम् न विरुध्यते	=अनन्तानन्त (परमाणुओं) का ठहराव नहीं विरोधा जाता है
पुद्गलानाम् इति अविशेष-वचनात्	= (सूत्रमें) पुद्गलोंके (संख्यात-असंख्यात-अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेश हैं) ऐसे सामान्य वाक्यसे
परमाणोः अपि प्रदेशत्व प्रसंगे	=(पुद्गल) परमाणुओंके भी प्रदेशपनाका प्रसंग आने पर
तत् प्रतिषेध अर्थम् आह	=उस (परमाणु) के (बहुप्रदेशपनाके) निषेधके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) जैसे एक चंपाकी कली खिलें तिष्ठे हुये सुगन्ध पुद्गल परमाणु सूक्ष्म रूप परिणमनसे संकोच रूप तिष्ठते हैं बहुरि वही सुगन्ध परमाणु कली फैले तब सर्व दिशाओंमें व्यापक हो जाते हैं तैसे सूक्ष्म परिणमनसे लोकाकाशके एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु बादर वा स्थूलरूप परिणमें तब बहुत प्रदेशोंमें तिष्ठते हैं ॥ इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि कड़े वा गीले काष्ठमें प्रबल विशेषसे स्वल्प पुद्गल स्कन्ध हैं यदि अग्निसे जलाये जावें तो घन रूपमें होकर सब दिशाओंमें भरजाते हैं सर्व प्रकार लोकाकाशमें अनन्तानन्त और अनन्तानन्त पुद्गल का अवस्थान विरुद्ध रहित पाया जाता है॥

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणो प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेष ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात्। यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभाव ॥किंच ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति । यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥एषामवधृत

सूत्रम्—नाणो ॥११॥	= नाणो (प्रदेशा भवन्ति)॥११॥
सूत्रार्थ —न॰ अणो ॥ प्रदेशा ॥ भवन्ति ॥	= अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभाव है एक प्रदेशपनाभी ही कहा है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है
शब्दानुवाद—अणो ॥ प्रदेशाः ॥ न॰ सन्ति ॥ इति॰	= अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा
(१)वाक्यशेषः ॥	= वाक्य शेष है अर्थात् 'न-अणो' यह पदअपूर्ण है। उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है
कुतः॰ न॰ सन्ति ॥ इति॰ चेत्॰	= क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं है। ऐसी शंका है।
प्रदेश–मात्रत्वात् ॥	= (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)
यथा॰ आकाश–प्रदेशस्य ॥ एकस्य ॥ प्रदेश–भेद–	= जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद
अभावात् ॥ अप्रदेशत्वम् ॥ एवम्॰ अणोः ॥ अपि॰	= न होनेसे अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी
प्रदेशमात्रत्वात् ॥ प्रदेश–भेद–अभावः ॥	= प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है ॥
किम्॰ च॰ ततः॰ अल्प–परिमाण–अभावात् ॥	= और क्योंकि (किस लियेकि) तिस (परमाणु) से लघु परिमाण न होने(के हेतु)से
नहि॰ अणोः ॥ अल्पीयान् ॥ अन्यः ॥ अस्ति ॥ यतः॰	= अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं (= न हि) है, जिससे
अस्य ॥ प्रदेशाः ॥ (२)भिद्येरन् ॥ एषाम् ॥ अवधृत	= इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे जावें ॥ इन निश्चय किये हुये या निर्णीत किये हुये

(१)वाक्यशेष = वाक्य या वचनका छूटा हुआ या अवशेष भाग(।)पद आकांक्षा वाक्य आकांक्षा समयपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिङ् क्रियाहै (३)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीन श्रेणी होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण का प्रगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था वह है जो दो विशेष्योंमें से एकके गुण वा दूषण को दूसरे पर लघुता अधिकता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग) अतिशय्य बोधक अवस्था वह है जिससे केवल एक विशेष्यका

प्रदेशाना धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

उक्तानां धर्मादीनां द्रव्याणां लोकाकाशेऽवगाहो न बहिरित्यर्थः ॥ यदि धर्मादीनां लोकाकाशमाधारः । आकाशस्य क आधार इति ? ॥ आकाशस्य नास्त्यन्य आधारः । स्वप्रतिष्ठमाकाशम् ॥

प्रदेशानां धर्मादीनां आधारप्रतिपत्ति अर्थम् इदम् उच्यते = प्रदेशवाले धर्मादिक (द्रव्यों) के अधिकरण जाननेके लिये यह कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्—लोकाकाशेऽवगाह ॥१२॥ = (धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्(३)) लोकाकाशेअवगाह ॥१२॥

अन्वयः धर्मादीनाम् द्रव्याणाम् लोकाकाशे अवगाहः = धर्म, अधर्म, जीव और पुद्गल द्रव्योंकी लोकाकाशमें स्थिति है

वृत्त्यनुवादः उक्तानाम् धर्मादीनाम् द्रव्याणाम् = कथित धर्मादिक द्रव्योंकी

लोकाकाशे अवगाहः न बहिः इति अर्थः = लोकाकाश में स्थिति है न कि (लोकाकाशके) बाहिर ऐसा तात्पर्य है

यदि धर्मादीनाम् लोकाकाशम् आधारः = (प्रश्न) जो धर्मादिक द्रव्योंका लोकाकाश आधार है तो

आकाशस्य कः आधारः इति आकाशस्य = आकाशका क्या आधार है ॥ आकाशका

न अस्ति अन्य आधारः स्वप्रतिष्ठम् आकाशम् ॥ = और या भिन्न (=अन्य) अधिकरण नहीं है । आकाश अपने आधार है

गुण अथवा अवगुण लघुता अथवा गुरुता वाले व्यापक पर प्राप्य करें जैसे माहान सर्व कालों में व्यापक है ॥

ईयस् प्रत्यय आधिक्यवाचक अवस्था के विशेषणका चिन्ह है और इष्ठ प्रत्यय आतिशय्य बोधक अवस्थाके विशेषणका चिन्ह है । इन प्रत्ययोंके लगाने के प्रथम शब्द अथ त् प्रातिपदिकके अन्तिम स्वर और यदि शब्दके अन्तमें व्यंजन होतो अन्तिम व्यंजन उसके समीपके स्वरसहित भी गिरादेते हैं जैसे अल्प = अल्प + ईयस् = अल्पीयस्) महत् = मह + अत्, अत् गिराकर (अर्थात् महत्के अत् स्वर और व्यंजन दोनों गिराकर) और ईयस् जोड़कर महीयस् बना लिया ॥

महार्थ जिनके अन्तमें वस् और ईयस् अथवा यस् हो तो पुल्लिंगमें शब्दके अन्तिम स् के पूर्व न् प्रथम कारकके एक वचन द्विवचन बहुवचन और कर्म कारकके एक वचन और दो वचनमें आदेश है २ न स् वालोंका उपान्तिम अकार दीर्घ होजाता है । प्रथमा एक वचनके अन्तमें 'वान् या यान्' आते हैं ॥ जैसे विद्वस् = विद्वन् स् + स् = विद्वान् स् स् (जब शब्दके अन्तमें दो अथवा दोसे अधिक व्यंजन हों तो केवल एक रहजाता है शेष गिरजाते हैं) अतः विद्वान्। बनगया शेषरूप विद्वांसौ। विद्वांसः। विद्वांसम्। विद्वांसौ। () अल्पीयस् = अल्पीयन् स् + स = अल्पीयान् स् स् = अल्पीयान् ।

(१) इसमें सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायों में एकसा है ॥ (२) 'धर्मादीनां द्रव्याणां' इस वाक्यका अध्याहार किया गया है (३) काल द्रव्यका आधार न यहां कथन नहीं किया है क्योंकि उसका कथन उनतालीसवां सूत्रमें है इससे अनवादमें काल द्रव्यको गर्भित नहीं किया है यद्यपि काल द्रव्यकी भी स्थिति लोकाकाश में ही है ॥

यद्याकाशं स्वप्रतिष्ठं, धर्मादीन्यपि स्वप्रतिष्ठान्येव । अथ धर्मादीनामन्य आधार कल्प्यते, आकाशस्याप्यन्य आधार कल्प्य । तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्ग इति चेन्नैष दोष ॥ नाकाशादन्यदधिकपरिमाणं द्रव्यमस्ति । यत्राकाशं स्थितमित्युच्यते । सर्वतोऽनन्त हि तत् । ततो धर्मादीना पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात् । एवम्भूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव ॥ तथा चोक्त

यदि • आकाशम् स्वप्रतिष्ठम् धर्मादीनि अपि •	=(यदि)जो आकाश अपने आधार है तो धर्मादिक(द्रव्यें)भी
स्वप्रतिष्ठानि एव • ;अथ • धर्मादीनाम् अन्य	=अपने आश्रय ही हैं । जो(=अथ)धर्मादिक(द्रव्यों)का और (=अन्य)
आधार कल्प्यते,आकाशस्य अपि • अन्य आधार	=आधार माना जाता है । तो आकाशका भी अन्य आधार
कल्प्य ;तथा • सति	=मानना चाहिये। ऐसा(=तथा होनेपर अर्थात्)आकाशका अन्य आधार माननेमें
अनवस्था प्रसङ्ग इति • चेत् • न • एष दोष ॥	=अनवस्थाके अभावका प्रसंग होता है, ऐसी शंका है । (उत्तर) यह दूषण नहीं है
न आकाशात् अन्य अधिक-परिमाणम्	=क्योंकि आकाशसे अन्य विशेष परिमाण वाली
द्रव्यम् अस्ति ।	=द्रव्य नहीं है अर्थात् आकाश से कोई दूसरी द्रव्य महान् बड़ी नहीं है ।
यत्र • आकाशम् स्थितम् इति • उच्यते ।	=जिसमें(=यत्र)आकाश स्थित हो ऐसा कहा गया है ।
सर्वत • अनन्तम् हि • तत् ;तत • धर्मादीनाम् पुन •	=सो(=तत्,सबओर(आकाश)ही अनन्त है । बहुरि तिससे धर्मादिकों का
अधिकरणम् आकाशम् व्यवहारनय-वशात्	=आधार(आकाश)है । व्यवहारनयके आश्रयसे
इति • उच्यते । एवम्भूतनय अपेक्षया तु (१) •	=ऐसा कहा जाता है, और(=च)एवम्भूतनयकी अपेक्षासे अर्थात् जिस स्वरूपकरिके पदार्थ हो,तिस स्वरूपकरिकेही निश्चयकरनेवाली नयकी अपेक्षासे
सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठानि एव • ॥तथाच • उक्तम्	=सब द्रव्यें अपने (अपने)आधार ही हैं और (=च)जैसेही(तथा=,कहा जाता है

(१) 'तु' सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्ति में तु के स्थान में 'च' है कई हस्तलिखित प्रतियोंमें और द्वितीय संस्करणमें 'तु' शब्द है इसलिये हमने भी 'तु' पाठ लिया है ॥

क भवानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहिः सन्तीति एतावत् अत्राधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क॰भवान्॥(१)आस्ते॥आत्मनि॥इति॰,धर्मादीनि॥। लोकाकाशात्॥न॰बहिः॰सन्ति॥इति॰एतावत्॰ अत्र॰(२)आधार आधेय-कल्पना-साध्यम्॥ फलम्॥। (३)ननु॰च॰लोके॥ पूर्व-उत्तर-काल-भाविनाम्॥। आधार-आधेयभावः॥ दृष्टः॥ यथा॰कुण्डे॥ बदर आदीनाम्॥ न॰तथा॰आकाशम्॥पूर्वम्॥,धर्मादीनि॥ उत्तर काल-भावीनि॥

=कि आप कहां बैठे हैं (उत्तर)आत्माविषैं (बैठा हूं) धर्मादिक (द्रव्यें)
=लोकाकाशसे बाहिर नहीं हैं इतनाही
=यहां आधार आधेयके माननेका साधनीय अथवा सिद्ध करने योग्य फल है
=बहुरि प्रश्न, लोकमें पहिले पिछले(पश्चात्)कालमें होनेवाली वस्तुओंके
=आधार आधेयभाव देखाजाता है अर्थात् आधार पहिले पश्चात् आधेय देखाजाताहै
=जैसे गड्ढा(आधार)में बेरके वृक्ष आदिकें या कपासके पौदा आदिकें(आधेयभाव) हैं
=वैसे आकाश पहिले नहीं है और धर्मादिक (द्रव्यें) पश्चात्
=कालवाली (नहीं) है अर्थात् प्रश्न यह है कि गड्ढा पहिले होता है उसमें बेर या कपासादिका वृक्ष पीछे होता है । ऐसा आधार आधेयभाव होता है वैसे आकाश पहिले हो पीछे जिसमें धर्मादिक द्रव्य धरे होंय, तब आधार आधेयभाव होना चाहिये सो इस प्रकार है नहीं । क्योंकि आकाश और धर्मादिक द्रव्योंके अनादि परिणामिक यौगपद्यकी सिद्धि है । पूर्वमें होना या पीछेहोना ऐसा भेद नहीं है ॥

(१) आस =बैठना अदादि (दूसरे)गणका धातु है । आत्मनेपदी सकर्मक है इसलिये आस् + ते = आस्ते = वह बैठा है ॥

(२) जिसके आश्रय या आसरेसे कोई वस्तु तिष्ठी हो उसे आधार कहते हैं । वह वस्तु जो किसीके आश्रित तिष्ठी हो उस वस्तुको आधेय कहतेहैं जैसे चौकी पर पुस्तक है यहां चौकी आधार है और पुस्तक आधेय है ।

(३) पाठकोंको ध्यान रहे कि"ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावोदृष्टः । यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि । अतो व्यवहारनयापेक्षयापि [illegible]तथानुपपत्तिरिति ॥ ऐसा और इतना प्रश्न छिपाणया है ॥

अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोष ॥ युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादय शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोक ? । धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाश द्विधा विभक्त । लोकाकाशमलोकाकाशं चेति ॥ लोक उक्त । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहि सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावात्,

अत • व्यवहारनय अपेक्षया • अपि • आधार-आधेय	=इसलिये व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी आधार आधेयके
कल्पना अनुपपत्ति • इति • ॥	=माननकी सिद्धि नहीं होती है (क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके हैं कि एवम्भूतनय की अपेक्षासे सब द्रव्य अपने अपने आधार हैं और व्यवहारनयसे आश्रय आश्रयी (=आधेय) भाव है
न • एष • दोष • युगपद् भाविनाम् • अपि •	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) एक कालमें होनेवालोंके भी
आधार आधेय-भाव • दृश्यते • घटे • रूपादय •	=आधार आश्रय भाव देखा जाता है । (जैसे) घड़ा में रूपादिक हैं
शरीरे • हस्त-आदय • इति • । लोक • इति • उच्यते ।	=शरीर में हस्तादिक हैं ॥ 'लोक' ऐसा कहा जाता है ॥
क • लोक • ? धर्म अधर्म-आदीनि • द्रव्याणि • यत्र •	=(प्रश्न) लोक क्या है ? (उत्तर,धर्म, अधर्म आदिक द्रव्यें जहां
लोक्यन्ते • स • लोक • इति • अधिकरणसाधने •	=देखी जाती हैं सो लोक है ऐसे (लोक शब्द के) अधिकरण या आधार सिद्ध करनेमें
(१)घञ् • आकाश • द्विधा • विभक्तम् •	=घञ् (=अ) प्रत्यय लगाया है, जोड़ा है । आकाश दो प्रकारसे बटा हुआ है
लोकाकाशम् • अलोकाकाशम् • च • इति • लोक • उक्त •,	=लोकाकाश और अलोकाकाश हैं । लोक (जहां धर्मादिक द्रव्यें देखी जाती हैं ऐसा) कहा गया है
स • यत्र • तत् • लोकाकाशम् • तत • बहि •	=वह (लोक) जहां (=यत्र) है सो (=तत्) लोकाकाश है, जिस (लोक) से बाहिर
सर्वत • अनन्तम् • अलोकाकाशम् • च • लोक-	=चारोंओर अन्तरहित अलोकाकाश है और लोक
अलोक-विभाग • धर्म-अधर्म-अस्तिकाय-सद्भावात् •	=अलोक का विभाग धर्मास्तिकायकी, अधर्मास्तिकाय की विद्यमानता से

(१) लोक् धातु का अर्थ देखना है घञ् प्रत्ययने घञ् रूप होनेसे लोक होनेमें अ शेष रहा, तब लोक्+अ ऐसा रूप हुआ अर्थात् 'लोक' शब्द बनगया ।

क्व भवानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहिः सन्तीति एतावत् अत्राधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः यथा कुण्डे बदरादीनाम् न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क्व॰भवान्॥(१)आस्ते।आत्मनि॥इति॰,धर्मादीनि॥ लोकाकाशात्॥न॰बहिः॰सन्ति॥इति॰एतावत्॰ अत्र॰(२)आधार आधेय-कल्पना-साध्यम्॥ फलम्॥ (३)ननु॰च॰लोके॥ पूर्व-उत्तर-काल-भाविनाम्॥ आधार-आधेयभाव॥ दृष्टः॥ यथा॰कुण्डे॥ बदर आदीनाम्॥ न॰तथा॰आकाशम्॥पूर्वम्॥,धर्मादीनि॥ उत्तर काल-भावीनि॥

=कि आप कहां बैठे हैं (उत्तर)आत्मामें (बैठा हूं) धर्मादिक (द्रव्यें)
=लोकाकाशसे बाहिर नहीं हैं इतनाही
=यहां आधार आधेयके मानने का साधनीय अथवा सिद्ध करने योग्य फल है
=बहुरि प्रश्न, लोकमें पहिले पिछले(पश्चात्)कालमें होनेवाली वस्तुओंके
=आधार आधेयभाव देखाजाता है अर्थात् आधार पहिले पश्चात् आधेय देखाजाता है
=जैसे गड्डा(आधार)में बेरके वृक्ष आदिकें वा कपासके पौदा आदिकें(आधेयभाव) हैं
=तैसे आकाश पहिले नहीं है और धर्मादिक (द्रव्यें) पश्चात्
=कालभावी (नहीं) हैं अर्थात् प्रश्न यह है कि गड्डा पहिले होता है उसमें बेर वा कपासादिका वृक्ष पीछे होता है । तब आधार आधेयभाव होता है तैसे आकाश पहिले हो पीछे तिसमें धर्मादिक द्रव्य धरे होंय, तब आधार आधेयभाव होना चाहिये सो इस प्रकार है नहीं । क्योंकि आकाश और धर्मादिक द्रव्योंके अनादि पारिणामिक यौगपद्यकी सिद्धि है । पूर्वमें होना वा पीछे होना ऐसा भेद नहीं है ॥

(१) आस = बैठना अदादि (दूसरे)गणका धातु है । आत्मनेपदी अकर्मक है इसलिये आस् + ते = आस्ते = वह बैठा है ॥

(२) जिसके आश्रय वा आसरेसे कोई वस्तु तिष्ठी हो उसे आधार कहते हैं । वह वस्तु जो किसीके आश्रित तिष्ठी हो उस वस्तुको आधेय कहते हैं जैसे चौकी पर पुस्तक है यहां चौकी आधार है और पुस्तक आधेय है ।

(३) पाठकोंको ध्यान रहे कि "ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः । यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि । अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ ऐसा और इतना प्रश्न लियागया है ॥

अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोष ॥ युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादय शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोक ? । धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाश द्विधा विभक्त । लोकाकाशमलोकाकाशं चेति ॥ लोक उक्त । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहि सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावात्,

अतः व्यवहारनय अपेक्षया अपि आधार-आधेय कल्पना अनुपपत्तिः इति ॥	=इसलिये व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी आधार आधेयके माननेकी सिद्धि नहीं(होती)है(क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके हैं कि एवम्भूतनय की अपेक्षासे सर्व द्रव्य अपने अपने आधार हैं और व्यवहारनयसे आश्रय आश्रयी (=आधेय)भाव है
न एषः दोषः युगपद् भाविनाम् अपि	=(उत्तर)यह दूषण नहीं है(क्योंकि)एक कालमें होनेवालोंके भी
आधार आधेय-भावः दृश्यते । घटे रूपादयः	=आधार आधेय भाव देखा जाता है ।(जैसे)घड़ा में रूपादिक हैं
शरीरे हस्त आदयः इति । लोकः इति उच्यते ।	=शरीर में हस्तादिक हैं ॥ 'लोक' ऐसा कहा जाता है ॥
कः लोकः ? धर्म अधर्म आदीनि द्रव्याणि यत्र	=(प्रश्न)लोक क्या है ? (उत्तर)धर्म, अधर्म आदिक द्रव्यें जहां
लोक्यन्ते सः लोकः इति अधिकरणसाधने	=देखी जाती हैं सो लोक है।ऐसे(लोक शब्द के)अधिकरण या आधार सिद्ध करनेमें
(1)घञ् । आकाशम् द्विधा विभक्तम् ।	=घञ् (=अ) प्रत्यय लगाया है, जोड़ा है । आकाश दो प्रकारसे बटा हुआ है
लोकाकाशम् अलोकाकाशम् च इति । लोकः उक्तः,	=लोकाकाश और अलोकाकाश हैं । लोक (जहां धर्मादिक द्रव्यें देखी जाती हैं ऐसा) कहा गया है
सः यत्र तत् लोकाकाशम् । ततः बहिः	=वह (लोक) जहां (=यत्र) है सो (=तत्) लोकाकाश है, तिस (लोक) से बाहिर
सर्वतः अनन्तम् अलोकाकाशम् । च लोक	=चारोंओर अन्तरहित अलोकाकाश है और लोक
अलोक-विभागः धर्म-अधर्म अस्तिकाय-सद्भावात्	=अलोक का विभाग धर्मास्तिकायकी, अधर्मास्तिकाय की विद्यमानता से

(1) लोक् धातु का अर्थ देखना है घञ् प्रत्ययमें घ्, ञ् इन् होनेसे लोप होगये अ शेष रहा, तब लोक् + अ ऐसा रूप हुआ, अर्थात् 'लोक' शब्द बनगया ॥

विज्ञेय ॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलाना गतिनियमहेत्वभावाद्विभागो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात स्थितेरभाव । तस्या अभावे लोकालोकविभागाभावो वा स्यात् । तस्मादुभयसद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धि ॥

तत्रावध्रियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

ज्ञेयः ॥ =जानना योग्य है (अर्थात्, जहांपर धर्म, अधर्म द्रव्योंका अस्तित्व है वहांतक लोकाकाश है)

असति हि तस्मिन् धर्मास्तिकाये =क्योंकि (=हि) तिस धर्मास्तिकायके न होनेपर

जीव-पुद्गलानाम् गति-नियम-हेतु-अभावात् विभाग =जीव पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे लोक और लोकका विभाग

न स्यात्, च असति अधर्मास्तिकाये स्थितेः =नहीं होसकता है और (=च) अधर्मास्तिकाय न होनेपर स्थितिके

आश्रय-निमित्त अभावात् स्थितेः अभावः, तस्याः =आश्रयके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है । तिस (स्थिति)के

अभावे लोक-अलोक-विभाग-अभावः वा स्यात् । =न होनेपर लोक अलोकका विभाग निश्चयसे(=वा) नहीं होगा(अभावः स्यात्)

तस्मात् उभय-सद्भावात् लोक-अलोक-विभाग-सिद्धिः ॥ =तिससे दोनों(धर्म, अधर्म द्रव्यों)के अस्तित्वसे लोक अलोकके विभागकी सिद्धि है

तत्र अवध्रियमाणानाम् अवस्थान =वहां निर्धारितकियेगये अथवा अवधारणकियेगयेके अवस्थानके

भेद-सम्भवात् विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह =भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम् धर्माधर्मयो कृत्स्ने ॥ १३ ॥ = धर्माधर्मयो कृत्स्ने(लोकाकाशे अवगाह भवति)।१३।

सूत्रार्थ—धर्म-अधर्मयोः कृत्स्ने लोकाकाशे =धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकाशमें

अवगाहः भवति । =स्थिति है अर्थात् जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाशके समस्त प्रदेशों में धर्म अधर्म द्रव्योंके प्रदेश पूर्णरूपसे व्याप्त हैं ।

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है । कहींपर "धर्माधर्मयोः कृत्स्ने" पाठ है दोनों पाठ "यथा रुचि" है(पा)" महात्माकी ५-५-४५ सूत्रकी टीका है ।

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् ।

अगारेऽवस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशेऽवगाहो न भवति किं तर्हि ?। कृत्स्ने, तिलेषु तैलवदिति ॥ अन्योऽन्यप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्वेदितव्य ॥

अतो विपरीतानां मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

वृत्त्यनुवाद—कृत्स्न-वचनम्॥ अशेष-व्याप्ति-प्रदर्शन अर्थं	=(इस सूत्रमें) कृत्स्न शब्द सर्व(लोकमें) व्याप्ति अथवा फैलावटके दिखानेके लिये है,
अगारे॥ अवस्थितः॥ घटः॥ इति॰ यथा॰, तथा॰	=जैसे घरमें घड़ा अवस्थित या रक्खा हुआ है तैसे
धर्म-अधर्मयोः॥ लोकाकाशे॥ अवगाहः॥ न॰ भवति।	=धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनोंका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है
किं॰ तर्हि॰ ।	=(प्रश्न) तो कैसे हैं ? प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर कि घरमें रक्खे हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकाशमें रक्खेहुये नहीं हैं शिष्यने अचम्भित,उत्सुक और अधीर होकर तत्काल ही प्रश्न करदियाकि तो कैसे हैं
कृत्स्ने॥ तिलेषु॥ तैलवत्॰ इति॰ ॥	(=उत्तर) सम्पूर्णमें अर्थात् तिलोंमें तेलके सदृश भावार्थ जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है तैसे लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंमें सर्वत्र धर्म अधर्मद्रव्योंकेप्रदेश पूर्णतया व्याप्त हैं
अन्योऽन्य प्रदेश-प्रवेश-व्याघात-अभावः॥	=(धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके प्रवेशमें व्याघात या रुकावट नहीं है
अवगाहन शक्ति-योगात्॥	=(सो रुकावटका अभाव धर्म अधर्मद्रव्योंकी) अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे
वेदितव्यः॥	=जानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश अधर्मद्रव्यके एक२ प्रदेशमें व्याघात रहित प्रवेश है और अधर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश धर्मद्रव्यके पृथक् पृथक् प्रदेशमें बिना रोकटोक प्रवेशहै सो यह परस्पर प्रवेशता धर्म अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसेहै
अतः॰ विपरीतानाम्॥ मूर्तिमताम्॥ एकप्रदेश-संख्येय असंख्येय अनन्त-प्रदेशानाम्॥ पुद्गलानाम्॥	=इसलिये,इन अमूर्तीक धर्म-अधर्मद्रव्योंके)विरुद्ध मूर्तिमान् एकप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी =असंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलोंकी
अवगाह-विशेष-प्रतिपत्ति- अर्थम्॥ आह॥	=अवगाहको विशेष जाननेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

विज्ञेय ॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलाना गतिनियमहेत्वभावाद्विभागो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात स्थितेरभाव । तस्या अभावे लोकालोकविभागाभावो वा स्यात् । तस्मादुभयसद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धि ॥

तत्रावध्रियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

विज्ञेयम्॥	=जानना योग्य है (जहांतक, जहांपरधर्म, अधर्मद्रव्योंका अस्तित्व है वहांतक लोकाकाश है
असति॥ हि=वस्मिन्॥ धर्मास्तिकाये॥	=क्योंकि (=हि) तिस धर्मास्तिकायके न होनेपर
जीव-पुद्गलानाम्॥ गति-नियम-हेतु-अभावात्॥ विभागः॥	=जीव पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे लोक और लोकका विभाग
न=स्यात्॥ च=असति॥ अधर्मास्तिकाये॥ स्थितेः॥	=नहीं होसकता है और (=च) अधर्मास्तिकाय न होनेपर स्थितिके
आश्रय-निमित्त-अभावात्॥ स्थितेः॥ अभावः॥ तस्याः॥	=आश्रयके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है । तिस (स्थिति)के
अभावे॥ लोक-अलोक-विभाग अभावः॥ वा=स्यात्॥	=न होनेपर लोक अलोकका विभाग निश्चयसे (=वा) नहीं होगा (अभावः स्यात्)
तस्मात्=उभय-सद्भावात्॥ लोक-अलोक-विभाग-सिद्धिः॥	=तिससे दोनों (धर्म, अधर्म द्रव्यों)के अस्तित्वसे लोक अलोकके विभागकी सिद्धि है
तत्र=अवध्रियमाणानाम्॥ अवस्थान	=वहां निर्णयकियेगये अथवा अवधारणकियेगयेके अवस्थानके
भेद-सम्भवात्॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह	=भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
[1]सूत्रम् धर्माधर्मयो कृत्स्ने ॥ १३ ॥	= धर्माधर्मयो कृत्स्ने (लोकाकाशे अवगाह भवति)।१३।
सूत्रार्थ —धर्म-अधर्मयोः॥ कृत्स्ने॥ लोकाकाशे॥	=धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकाशमें
अवगाहः॥ भवति।	=स्थिति है अर्थात् जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाशके समस्त प्रदेशों में धर्म अधर्म द्रव्योंके प्रदेश पूर्णरूपसे व्याप्त हैं ।

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है । कहींपर "धर्माधर्मयोः कृत्स्ने" पाठ है दोनों पाठ "धर्मो दृश्यो हे(चा)" सहाध्यायी अभ्यन्तर सूत्रके ठीक हैं ।

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् ।

अगारेऽवस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशेऽवगाहो न भवति किं तर्हि ?। कृत्स्ने, तिलेषु तैलवदिति ॥ अन्योऽन्यप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्वेदितव्य ॥

अतो विपरीताना मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासख्येयानन्तप्रदेशाना पुद्गलानामवगाहविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

वृत्त्यनुवाद—कृत्स्न-वचनम्॥ अशेष-व्याप्ति प्रदर्शन-अर्थम्=(इस सूत्रमें)कृत्स्न शब्द सर्व(लोकमें)व्याप्ति अथवा फैलावटके दिखानेके लिये है,

अगारे॥ अवस्थितः॥ घटः॥ इति॰यथा॰,तथा॰ =जैसे घरमें घड़ा अवस्थित या रक्खा हुआ है तैसे

धर्म-अधर्मयोः॥ लोकाकाशे॥ अवगाहः॥ न॰भवति =धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनोंका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है

किं॰ तर्हि॰ । = प्रश्न) तो कैसे हैं ? प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर कि घरमें रक्खे हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकाशमें रक्खेहुये नहीं हैं शिष्यने अचम्भित,उत्सुक और अधीर होकर तत्कालही प्रश्न करदियाकि तो कैसे हैं

कृत्स्ने॥ तिलेषु॥ तैलवत्॰इति॰ ॥ (=उत्तर)सम्पूर्णमें अर्थात् तिलोंमें तेलके सदृश भावार्थ जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है तैसे लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंमें सर्वत्र धर्म अधर्मद्रव्योंकेप्रदेश पूर्णतया व्याप्त हैं

अन्योऽन्य प्रदेश-प्रवेश-व्याघात-अभावः॥ =(धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके प्रवेशमें व्याघात या रुकावट नहीं है

अवगाहन शक्ति-योगात्॥ =(सो रुकावटका अभाव धर्म अधर्मद्रव्योंकी)अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे

वेदितव्यः॥ =जानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश अधर्मद्रव्यके एकर प्रदेशमें व्याघात रहित प्रवेश है और अधर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश धर्मद्रव्यके पृथक् पृथक् प्रदेशमें बिना रोकटोक प्रवेशहै सो यह परस्पर प्रवेशता धर्म अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसेहै

अतः॰ विपरीतानाम्॥ मूर्तिमताम्॥ एकप्रदेश-संख्येय =इसलिये(इन अमूर्तीक धर्म-अधर्मद्रव्योंके)विरुद्ध मूर्तिमान् एकप्रदेशी, सख्यातप्रदेशी

असंख्येय अनन्त-प्रदेशानाम्॥ पुद्गलानाम्॥ =असंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलोंकी

अवगाह-विशेष-प्रतिपत्ति- अर्थम्॥ आह ॥ =अवगाहको विशेष जाननेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

(१)सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु (४) भाज्य पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥
= (२ लोकाकाशे)एकप्रदेशादिषु (४)भाज्य (एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां)
पुद्गलाना (३)अवगाह)

सूत्रार्थ —लोकाकाशे॥॥एकप्रदेश' आदिषु॥' =लोकाकाशके एक प्रदेशादिकनिमें

एकप्रदेश-संख्येय असंख्येय अनन्त-अनन्तान नप्रदेशानां॥पुद्गलानां॥अवगाह॥भवति =एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और अनन्तप्रदेशी, अनन्तानन्तप्रदेशी पुद्गलोंका अवगाह-स्थिति-अवस्थान-ठहराव-टिकाव

भाज्य॥ =विभाग करने योग्य है, विकल्पनीय है वा बांटेजाने योग्य है अर्थात् लोकाकाशके एक दो-तीन-चार-पांच इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशों तकमें पुद्गलद्रव्य के एकपरमाणु, दोपरमाणु, तीनपरमाणु, चारपरमाणु, पांचपरमाणु, छहपरमाणु इत्यादिक संख्यात परमाणु,असंख्यात परमाणु, अनन्त परमाणु, और अनन्तानन्त परमाणुओंका अवगाह विभाग करने योग्य है,बांटेजाने योग्य है भावार्थ कि लोकाकाशके एकप्रदेशमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु,दोपरमाणुके(जो सूक्ष्मपरिणये)स्कंधका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ सभी भाष्यप्रतियोंमें एकसा है ॥ पुद्गलानाम् के स्थानमें कहीं कहीं 'पुद्गलानां' ऐसा पाठ है [illegible] व्याकरणसे छोड़कर अशुद्ध है ॥ (२) 'लोकाकाश और 'अवगाह की बारहवां सूत्रसे अनुवृत्ति है॥ 'एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त प्रदेशानां पुद्गलानाम् यह समस्त यदि ... इसीसे बनाजावे तो दशवां सूत्रकी अनुवृत्ति है क्योंकि उक्त सूत्रमें प्रदेशशब्दकी अनुवृत्ति आठवां सूत्रसे लीगई है अतः यहांभी प्रदेश शब्द आठवां सूत्रसे अनुवर्तता है ॥ दशवां सूत्रके संख्येय' शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेश आजाते हैं ॥ दशवां सूत्रके अनन्त शब्दमें 'अनन्तानन्त भी गर्भित है जैसाकि उक्त सूत्रकी वृत्तिके निम्न वाक्योंसे प्रगट है अनन्त सामान्यात् ॥ अनन्त प्रमाणं त्रिविधमुक्त परीतानन्त युक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति । तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते ॥ इन वाक्योंके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २८ ॥ (३) यह अनुवाद दशवां सूत्रके आधारपर है। (४) "भाज्य" विभजनीय विभाग करने योग्य विभाज्य विकल्प करने योग्य विकल्पनीय बांटने योग्य [illegible] ये सर्व एकार्थवाची हैं ॥(५) पुद्गल द्रव्यका अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेश में लगाय असंख्यात प्रदेश तांई अनेक प्रकार हैं ॥ पं० [illegible] अर्थप्रकाशिका ॥

तीन परमाणुके(जो सूक्ष्मरूपमें पलटगये हैं)स्कंधका चार परमाणुके(जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका इत्यादि संख्यात परमाणुके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणमें हैं) स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंध का, तथा सूक्ष्मरूप परिणमें अनन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिणत अनन्तानंत पुद्गल परमाणुके स्कंधका भी अवगाह या अवस्थान (लोकाकाशके एक प्रदेशमें) है ;

लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दोपरमाणु खुलेहुओंका अथवा दो परमाणु बन्धे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं स्थिति है, तीन परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप विकारको प्राप्त हुई है) स्कंधका, चार परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका और ऐसाही परिवर्तित पांच परमाणुके स्कंधका तथा ऐसाही परिणत छह परमाणुओंके स्कंधका, इत्यादिक ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित संख्यात पुद्गल परमाणुके स्कंधका, ऐसाही स्कंध असंख्यात परमाणुओंकेका, ऐसाही स्कंध अनन्त परमाणुओंकेका और पुद्गलके अनन्तानंत परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणये हैं) स्कंधकाभी अवगाह या ठहराव या स्थिति (लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें) है ;

लोकाकाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणु खुले हुओंका अथवा तीन परमाणु बंधे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं, चार परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप परिणमें हैं) स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिणत पांच परमाणुके स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिवर्तित छह परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश संख्यात सूक्ष्मरूप परिणत परमाणुओंके स्कंधकी स्थिति, ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका अवस्थान अनन्त परमाणुके ऐसेही स्कंधकी स्थिति, और ऐसेही सूक्ष्म परिणत अनन्तानंत परमाणुओंकी स्थिति तीन प्रदेशोंमें है।

इसही प्रकार लोकाकाशके चार पांच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतोंमें चार पांच-छह-सात-आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओंके स्कंध का जो लोकाकाशके प्रदेशोंकी यथायोग्य गणनानुसार खुले हुये होसकते हैं वा बंधे हुए (सूक्ष्मरूपमें नहीं) अथवा उक्त नियमकी गणनानुसार सूक्ष्मरूपमें परिणतभी होसकते हैं, अवस्थान आधेयरूप जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका लोकाकाशके एक,दो,तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उसी समय, अवस्थान या अवगाह होसकता है जब वे अनन्त परमाणु या अनन्तानन्त परमाणु सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं क्योंकि लोकाकाशके तो असंख्यात ही प्रदेश हैं। स्मरण रहे कि जितनी खुली हुई परमाणु हैं

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

(¹)सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु (⁴)भाज्य पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

= (²लोकाकाशे) एकप्रदेशादिषु (⁴)भाज्य (एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां) पुद्गलाना (²अवगाह)

सूत्रार्थ—लोकाकाशे। एकप्रदेश' आदिषु। =लोकाकाशके एक प्रदेशादिकनिमें

एकप्रदेश-संख्येय असंख्येय =एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और

अनन्त-अनन्तान प्रदेशानां। पुद्गलानां। अवगाहः। भवति=अनन्तप्रदेशी, अनन्तानन्तप्रदेशी पुद्गलोंका अवगाह-स्थिति अवस्थान-ठहराव-टिकाव

भाज्यः। =विभाग करने योग्य है, विकल्पनीय है या बांटेजाने योग्य है अर्थात् लोकाकाशके एक दो-तीन-चार-पांच इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशों तकमें पुद्गलद्रव्य के एकपरमाणु, दोपरमाणु, तीनपरमाणु, चारपरमाणु, पांचपरमाणु, छहपरमाणु इत्यादिक संख्यात परमाणु, असंख्यात परमाणु, अनन्त परमाणु, और अनन्तानन्त परमाणुओंका अवगाह विभाग करने योग्य है, बांटेजाने योग्य है भावार्थ कि लोकाकाशके एकप्रदेशमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु, दोपरमाणुके (जो सूक्ष्मपरिणये) एकका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ सभी सम्प्रदायोंमें एकसा है। पुद्गलानाम् के स्थानमें जहां कहीं 'पुद्गलानां' ऐसा पाठ है वह काशरूपमाला व्याकरणसे छपकर अशुद्ध है। (२) 'लोकाकाश' और 'अवगाह' की बारहवां सूत्रसे अनुवृत्ति है। 'एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त प्रदेशानां पुद्गलानाम्' यह समस्त यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखाजावे तो दशवां सूत्रकी अनुवृत्ति है क्योंकि उक्त सूत्रमें प्रदेशशब्दकी अनुवृत्ति आठवां सूत्रसे लीगई है अतः यहांभी प्रदेश शब्द आठवां सूत्रसे अनुवर्तता है। दशवां सूत्रके संख्येय शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेशका ज्ञान है। दशवां सूत्रके अनन्त शब्दमें 'अनन्तानन्त'भी गर्भित है जैसाकि उक्त सूत्रकी वृत्तिके निम्न वाक्योंसे प्रगट है अनन्त सामान्यात् । अनन्त प्रमाण त्रिविधमुक्तं परीतानन्त युक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति । तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते । इन वाक्योंके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २५ । (३) यह अनुवाद दशवां सूत्रके आधारपर है। (४) "भाज्य" विभजनीय विभाग करने योग्य विभाज्य विकल्प करने योग्य विकल्पनीय बांटने योग्य वर्तनीय ये सर्व एकार्थवाची हैं। (५) पुद्गल द्रव्यका अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेश से लगाय असंख्यात प्रदेश ताईं अनेक प्रकार है। पं० सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका।

तीन परमाणुक(जो सूक्ष्मरूपमें पलटगये हैं)स्कंधका चार परमाणुक(जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका इत्यादि संख्यात परमाणुके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणमें हैं) स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंध का, तथा सूक्ष्मरूप परिणमें अनन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिणत अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुक स्कंधका भी अवगाह या अवस्थान (लोकाकाशके एक प्रदेशमें) है ;

लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दोपरमाणु खुलेहुओंका अथवा दो परमाणु बन्धे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं स्थिति है, तीन परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप विकारको प्राप्त हुई है) स्कंधका, चार परमाणुओंक (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका और ऐसाही परिवर्तित पांच परमाणुके स्कंधका तथा ऐसाही परिणत छह परमाणुओंके स्कंधका, इत्यादिक ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित संख्यात पुद्गल परमाणुके स्कंधका, ऐसाही स्कंध असंख्यात परमाणुओंकेका, ऐसाही स्कंध अनन्त परमाणुओंकेका और पुद्गलके अनन्तानंत परमाणुओंके (जो,सूक्ष्मरूपमें परिणये हैं) स्कंधकाभी अवगाह या ठहराव या स्थिति (लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें) है ;

लोकाकाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणु खुले हुओंका अथवा तीन परमाणु बंधे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं, चार परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप परिणमें हैं) स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिणत पांच परमाणुके स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिवर्तित छह परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश संख्यात सूक्ष्मरूप परिणत परमाणुओंके स्कंधकी स्थिति, ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका अवस्थान अनन्त परमाणुके ऐसेही स्कंधकी स्थिति, और ऐसेही सूक्ष्म परिणत अनन्तानंत परमाणुओंकी स्थिति तीन प्रदेशोंमें है ।

इसही प्रकार लोकाकाशके चार-पांच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतोंमें चार पांच-छह-सात आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओंके स्कंध का जो लोकाकाशके प्रदेशोंकी यथायोग्य गणनानुसार खुले हुये होसकते हैं या बंधे हुये (सूक्ष्मरूपमें नहीं) अथवा उक्त नियमकी गणनानुसार सूक्ष्मरूपमें परिणतभी होसकते हैं, अवस्थान भाज्यरूप जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका लोकाकाशके एक,दो,तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उसी समय, अवस्थान या अवगाह होसक्ता है जब वे अनन्त परमाणु या अनन्तानन्त परमाणु सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं क्योंकि लोकाकाशके तो असंख्यात ही प्रदेश हैं । स्मरण रहे कि जितनी खुली हुई परमाणु हैं

एक एव प्रदेशः एकप्रदेशः । एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्यः ॥ अवयवेन विग्रहः

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती हैं । अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह या टिकाव होसकता है जितनी उनकी सूक्ष्म रूपमें संख्या है ॥

वृत्त्यनुवादः—एकः[1] एव[1] प्रदेशः[1] एकप्रदेशः[1] । =एकही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है

एकप्रदेशः[1] आदिः[1] येषाम्[1] ते[1] इमे[1] एकप्रदेशादयः[1] । =एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने "एक प्रदेशादय" हैं

तेषु[1] =तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे, असंख्यात प्रदेशोंतक)में

पुद्गलानाम्[1] =पुद्गलों (की एकपरमाणु,दो परमाणु,तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की

अवगाहः[1] भाज्यः[1] विकल्प्यः[1] =स्थिति विभाग करनेयोग्य(=भाज्य)है । विकल्पनीय है अंशनीय है ॥

अवयवेन[1] =(एकप्रदेशादिषु इस बहुवचनांतसमासका) टुकडेटुकडेरूपसे वा अंशअंशकरि

विग्रहः[1] =व्याकरणानुसार व्यवच्छेद(=विग्रह ऽसार (विग्रह)वा विस्तार [किया]गया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु" समासके अवयव इसप्रकार होसकते हैं कि = लोकाकाशे एकप्रदेशे (पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः) ऐसे एकप्रदेशभी लियागया है ॥ () लोकाकाशे द्विप्रदेशयोः पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे चतुष्प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे पञ्चप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे षट्प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशेऽष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे नवप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () एवमेव लोकाकाशे सङ्ख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे असङ्ख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाहः भाज्यस्त्व ॥

(२) दोनों वाक्यों करीहुई संस्कृत सर्वार्थसिद्धिमें विग्रहसमुदायः समासार्थ ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है सो बहुत बडी चोकके वास्ते

समुदायः समासार्थ इति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते ॥

समास-अर्थः॥	=सो(उक्त 'एकप्रदेशादिषु') समासका भाव, अभिप्राय, वा तात्पर्य (=अर्थः)
समुदायः॥	=संचयरूपमें ग्रहण करनेका है (=समुदाय),अथवा एकदेशरूपमें लियजानेका है(=समुदाय) कि
इति॥एक-प्रदेशः॥अपि॥गृह्यते॥	=इस प्रकारसे(=इति)एकप्रदेश भी लेलियागया है भावार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशादिषु'

निम्नलिखित हेतुओंसे ज्ञात होताहै कि उक्त पाठ अशुद्ध है (क) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पत्रे १११ ६२ ५१ परक्रमसे अवयवेन विग्रहस्समुदायः समासार्थ इति' पाठ है । यदि विसर्गके पश्चात् श-ष-स आवें तो विसर्गका विसर्ग बना रहभीरहो जावें क्रमसे श-ष-स में पलटजो इसलिये विग्रहस्समुदाय =विग्रहः समुदाय (वाक्य)के ।

(ख)तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २०७ पर कलकत्तेकी संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित अनुवादके अध्याय ५ पृष्ठ १५६ पर और पं० पन्नालालजी दूनी अनुवादित राजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ० १७ पर और पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ०४५ पर प्रथमवार्तिक यह है "एकप्रदेशादिष्विति अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः" ॥१॥ जहांपर'वृत्ति'शब्दकाअर्थ समास है । तत्त्वार्थ राजवार्तिकके सूत्र 'असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥ पर प्रथमवार्तिक यह है कि 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ' इति"

(ग) श्रुतसागरि सूरि कृत 'श्रुतसागरीटीका' हस्तलिखितप्रतिके पत्रे १५३ पर 'यथा व्याकरणेऽवयवेन विग्रहो भवति समुदायः समासार्थो भवति तथा एकप्रदेशोऽपि गृह्यते बहवश्च प्रदेशा गृह्यते=जब व्याकरणमें अवयव सहित विग्रह होता है समासका अर्थ समुदाय होता है तब एक प्रदेश भी ग्रहण कियागया है और बहुत प्रदेश भी लियेगये है अथवा ग्रहण किये गये हैं । इस सम्बन्धमें हमको तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उसकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें कुछभी नहीं प्राप्त हुआ है ॥

(घ) पं० जयचन्द्ररायजीने इसी सूत्रकेनीचे ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु समास अवयवकरि कियाहै तातैं समुदाय जानना" ॥

(ङ)पं० पन्नालालजी दूनीका अनुवाद इस प्रकार है जिन एकप्रदेशादिकनिविषैं जैसो समास होई सो समुदायरूपवृत्तिके अर्थ सर्वार्थसिद्धिके समानहै इन दूनीजीने राजवार्तिक १५वां सूत्रकी प्रथमवार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का यह अनुवाद किया है कि'अवयवकरिविग्रहहोवाहै अरवृत्तिका अर्थ समुदाय है जहापरभी वृत्तिका अर्थ समास है ।

(च) पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवाद करते हैं 'एक प्रदेशादिकके विषैं समुदायवृत्तिरूप जो अर्थ है सो सर्वार्थसिद्धिके समान है । ताकरि एकप्रदेशभी ग्रहण होय है ऐसा जानना" ॥ यह अनुवाद 'एकप्रदेशादिषु इति विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः । सर्वार्थवत् । तेनैकप्रदेशोऽपि ग्रहणमिति' वृत्तिका है ॥ प्रथम वार्तिक 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः' का अनुवाद ऐसे किया है कि यहां एकप्रदेशादिषु या बहुवचनांत वाक्यका विग्रह अवयवकरि है तातैं समुदाय वृत्ति जानना' ॥ 'असंख्येयभागादिषु जीवानाम्'॥ १५वां सूत्रकी प्रथम वार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का अनुवाद ऐसा किया है कि "अवयवकरि विग्रह है सो समासमें समुदायरूप अर्थ कू कहै है"

यदि हम ऊपरोक्त सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिकी पाठ मानलेतो अवयवेन विग्रहस्समुदायःसमासार्थइति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होगा

अवयवेन॥ विग्रह-समुदाय ॥।	=दुकड़े २ रूपसे या अंश २ रूपसे विग्रह (अर्थात् समासार्थबोधक वाक्यों)का(यहां) संग्रह [illegible] समुच्चय है
समास-अर्थः॥ इति॥एकप्रदेशः॥अपि॥गृह्यते॥	=सो (एकप्रदेशादिषु) समासके अर्थ के (स्पष्ट करनेके लिये) है ऐसे (आकाशका) एक प्रदेशभी
	=ग्रहण किया गया है भावार्थ यह है कि (एकप्रदेशादिषु)यह समास है इस समासके अंश या अवयवका भाग

एक एव प्रदेश· एकप्रदेश । एकप्रदेश आदिर्येषा त इमे एकप्रदेशादय । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्य ॥ अवयवेन विग्रह

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती हैं । अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह या टिकाव होसकता है जितनी उनकी सुखे रूपमें संख्या है ॥

पृथग्नुवाद·—एक·। एव॰प्रदेश·।एकप्रदेश·। । =एकही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है

एकप्रदेश·।आदि·। येषाम्·।ते·।इमे·।एकप्रदेशादय·। । =एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने "एक प्रदेशादय" हैं

तेषु· =तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे, असंख्यात प्रदेशोंतक)में

पुद्गलानाम्· =पुद्गलों (की एकपरमाणु,दो परमाणु,तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की

अवगाह·।भाज्य·।विकल्प्य·। =स्थिति विभाग करनेयोग्य(=भाज्य)है । विकल्पनीय है अंशनीय है ॥

अवयवेन· =(एकप्रदेशादिषु इस बहुवचनांतसमासका) टुकडे टुकडे रूपसे वा अंशअंशकरि

विग्रह· =व्याकरणानुसार व्यवच्छेद(=विग्रह)[illegible] सार (विग्रह)या विस्तार किया गया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु"समासके अवयव इसप्रकार हासकते हैं कि — लोकाकाशे)एकप्रदेशे (पुद्गलानां अवगाह भाज्य·)ऐसे एकप्रदेशमी लियाजाता है।
() लोकाकाशे द्विप्रदेशयो· पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य· । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य· ।
() लोकाकाशे चतुःप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह· भाज्य । () लोकाकाशे पञ्चप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य·।
() लोकाकाशे षट् प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह· भाज्य· । ()
() लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह· भाज्य· । () लोकाकाशेषु अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह· भाज्य· ।
() लोकाकाशे नवप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह· भाज्य · । () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्य ।
() एवमेवम् लोकाकाशे संख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्य । () लोकाकाशे असंख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाह· भाज्यश्च ।

(२) [illegible] छपीहुई संस्कृत सर्वार्थसिद्धिमें विग्रहसमुदाय· समासार्थ ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है सो बहुत बड़ी भारी [illegible]

समुदाय समासार्थे इति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते ॥

समास अर्थः॥	=सो(उक्त 'एकप्रदेशादिषु') समासका भाव, अभिप्राय, या तात्पर्य (=अर्थ।)
समुदायः॥	=संचयरूपमें ग्रहण करनेका है (=समुदाय),अथवा इकट्ठेरूपमें लियजानेका है(=समुदाय) कि
इति॰एक प्रदेशः॥अपि॰गृह्यते॥	=इस प्रकारसे(=इति)एकप्रदेश भी लेलियागया है भावार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशादिषु'

निम्नलिखित हेतुओंसे ज्ञात होता है कि उक्त पाठ अशुद्ध है (क) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पत्रे १११ ६२ ५१ परक्रमसे अवयवेन विग्रहस्समुदायः समासार्थं इति' पाठ है ॥ यदि विसर्गके पश्चात् श-ष-स आवें तो विसर्गका विसर्ग बना रहनेसे चाहें क्रमसे श ष स में पलटदो इसलिये विग्रहस्समुदाय =विग्रहः समुदाय (वाक्य)के ॥

(ख)तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ २०७ पर कलकत्तेकी संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित अनुवादके अध्याय ५ पृष्ठ १४६ पर और पं॰ पन्नालालजी दूनी अनुवादित राजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पु॰ ३७ पर और पं॰ पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पु॰५५ पर प्रथमवार्तिक यह है'एकप्रदेशादिष्विस्त्ववयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः"॥१॥यहांपर'वृत्ति'शब्दका अर्थ समास है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकके सूत्र'असंख्येयभागादिषु जीवानाम्' ॥ १५ ॥ पर प्रथमवार्तिक यह है कि 'अवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थ' इति"

(ग) श्रुतसागरि सूरि कृता 'श्रुतसागरीटीका' हस्तलिखितप्रतिके पत्रे १५३ पर 'यथा व्याकरणेऽवयवेन विग्रहो भवति समुदायः समासार्थो भवति तथा एकप्रदेशोऽपि गृह्यते बहवश्च प्रदेशा गृह्यन्ते=जब व्याकरणमें अवयव सहित विग्रह होता है समासका अर्थ समुदाय होता है तब एक प्रदेश भी ग्रहण कियागया है और बहुत प्रदेश भी लियेगये है अथवा ग्रहण किये गये हैं॥ इस सम्बन्धमें हमको तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें कुछभी नहीं प्राप्त हुआ है ॥

(घ) पं॰ जयचन्द्ररायजीने इसी सूत्रकेनीचे ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु समास अवयवकरि कियाहै तातैं समुदाय जानना" ॥

(ङ)पं॰ पन्नालालजी दूनीका अनुवाद इस प्रकारहै जिन एकप्रदेशादिकनिविषैं ऐसो समास जोहै सो समुदायरूपवृत्तिके अर्थ सर्वार्थके समानहै उक्त दूनीजीने राजवार्तिक १५वां सूत्रकी प्रथमवार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति का यह अनुवाद किया है कि'अवयवकरिविग्रहहोयहै अरवृत्तिका अर्थ समुदाय है' यहांपरभी वृत्तिका अर्थ समास है ॥

(च) पं॰ पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवाद करते हैं 'एक प्रदेशादिकके विषैं समुदायवृत्तिरूप जो अर्थ है सो सर्वार्थसिद्धिके समान है। तातैं एकप्रदेशभी ग्रहण होय है ऐसा जानना" ॥ यह अनुवाद 'एकप्रदेशादिषु इति विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः सर्वार्थवत् । तेनैकप्रदेशोऽपि अंतर्भवति' वृत्तिका है ॥ प्रथम वार्तिक 'एकप्रदेशादिष्विस्त्ववयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः' का अनुवाद ऐसे किया है कि यहां एकप्रदेशादिषु या बहुवचनांत वाक्यका विग्रह अवयवकरि है तातैं समुदाय वृत्ति जानना' ॥ 'असंख्येयभागादिषु जीवानाम्'॥ १५वां सूत्रकी प्रथम वार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थ इति' का अनुवाद ऐसा किया है कि "अवयवकरि विग्रह है सो समासमें समुदायरूप अर्थ कू कहै है"

यदि हम पूर्वोक्त सर्वार्थ सिद्धिवृत्तियोंका पाठ मानलेंतो अवयवेन विग्रहस्समुदाय-समासार्थइति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होगा

अवयवेन॥ विग्रह-समुदाय॥	=टुकडे २ रूपसे या अंश २ रूपसे विग्रह (अर्थात् समासार्थ बोधक वाक्यों)का(यहां) संग्रह व समुदय है
समास-अर्थ॥ इति॰एकप्रदेशः॥अपि॰	=सो (एकप्रदेशादिषु) समासके अर्थ के (स्पष्ट करनेके लिये) है ऐसे (आकाशका) एक प्रदेशभी
गृह्यते	=ग्रहण किया गया है भावार्थ यह है कि (एकप्रदेशादिषु)यह समास है इस समासके अंश या अवयवका भाव

एक एव प्रदेशः एकप्रदेशः । एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्यः ॥ अवयवेन विग्रहः

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती हैं । अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह या टिकाव होसकता है जितनी उनकी खुले रूपमें संख्या है ॥

पृथगनुवाद—एकः एव प्रदेशः एकप्रदेशः । =एकही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है

एकप्रदेशः आदिः येषाम् ते इमे एकप्रदेशादयः । =एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने "एक प्रदेशादयः" हैं

तेषु =तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे, असंख्यात प्रदेशोंतक)में

पुद्गलानाम् =पुद्गलों (की एकपरमाणु,दो परमाणु,तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की

अवगाहः भाज्यः विकल्प्यः =स्थिति विभाग करनेयोग्य(=भाज्य)है । विकल्पनीय है अंशनीय है ॥

अवयवेन =(एकप्रदेशादिषु इस बहुवचनांतसमासका) टुकड़ेटुकड़ेरूपसे या अंशअंशकरि

विग्रहः =व्याकरणानुसार व्यवच्छेद(=विग्रह ?सार (विग्रह)वा विस्तार [?]ियागया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु समासके अवयव इसप्रकार होसकते हैं कि— लोकाकाशे एकप्रदेशे पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः)ऐसे एकप्रदेशमें विभागया है।

() लोकाकाशे द्विप्रदेशयो पुद्गलानाम् अवगाह भाज्य । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्यः ।

() लोकाकाशे चतुःप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्य । () लोकाकाशे पंचप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाह भाज्यः।

() लोकाकाशे षट् प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । ()

() लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशेषु अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः ।

() लोकाकाशे नवप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्यः ।

() एवमेवम् लोकाकाशे संख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाह भाज्यः । () लोकाकाशे असंख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाहः भाज्यस्त ।

(२) यामें बारकी छपीहुई संस्कृत सर्वार्थसिद्धिमें विग्रहसमुदाय समासार्थः ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है सो बहुत भारी भोलके कारणसे

तद्यथा–एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाहः द्वयोरेकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च त्रयाणामेकत्र द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामबद्धानां च ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामेकसंख्येयासंख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम् ॥

तद्यथा एकस्मिन् आकाशप्रदेशे परमाणोः =जैसे एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका

अवगाहः द्वयोः एकत्र उभयत्र च =अवस्थान है। दो(परमाणु)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=उभयत्र)

बद्धयोः अबद्धयोः च =बंधी हुई का तथा (=च)खुलीहुई का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु, बंधीहुईकी जो सूक्ष्मरूपमें परिणमी हैं लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है और दो परमाणु खुली हुईका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणमी हैं तथा दो परमाणु, बंधीका भी जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणमी हैं लोकाकाशके दो प्रदेशमें अवगाह है।

च त्रयाणाम् एकत्र बद्धानाम् =और (=च)तीन(परमाणुओं)का एकप्रदेशमें(=एकत्र)बंधेहुओंका(सूक्ष्मरूपपरवर्तितका)

(त्रयाणाम्) द्वयोः बद्धानाम् च अबद्धानाम् =(तीन परमाणुओंका) दो प्रदेशोंमें (=द्वयोः)बंधेहुए और(=च) खुलेहुओंका अर्थात् दो परमाणु(सूक्ष्मरूप परिणत)और एक खुलीहुईका या तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका(अवगाह)है।

(त्रयाणाम्) त्रिषु अबद्धानाम् =(तीन परमाणुका) तीन प्रदेशोंमें खुले हुओंका (अवस्थान या अवगाह) है

एवं संख्येय असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् स्कन्धानाम् =इस प्रकार संख्यात-असंख्यात अनन्त और अनंतानन्त प्रदेशोंके स्कन्धोंका (क्योंकियहां अनन्तमें अनन्त और अनन्तानन्त दोनो जैसा पूर्व कहाहै आजाते हैं)

एक-संख्येय-असंख्येय-प्रदेशेषु लोकाकाशे =एक ,दो,तीन,चार,पांच,छह इत्यादि संख्यात और असंख्यात लोकाकाशप्रदेशोंमें

अवस्थानम् प्रत्येतव्यम् =अवगाह अथवा स्थिति प्रतीति करनी चाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पांच आदिक संख्यात,असंख्यात,अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके जो (सूक्ष्मरूपमें परिणामी हैं)स्कन्धका अवगाह लोकाकाशके एकप्रदेशमेंभी है। संख्यात असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमेंभी है और असंख्यात अनन्त तथाअनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें भी है। यहांपर स्मरण रहे कि जितनी खुलीहुई परमाणुएं उतनेआकाशके

प्रदेश नहीं। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी जो बहुव्रीहि समास माना है वह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है इसलिये यहांपर एकप्रदेशसहित अन्य प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन माना है। यदि यहांपर अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि यह समास माना जाता तो एकप्रदेशका ग्रहण नहीं होता,फिर एकप्रदेशमें भी किन्हीं किन्हीं पुद्गलोंका अवगाह है यह अर्थ नहीं होसकता।

यह बहुवचनांत समास है, इस समासके भाग अथवा अवयव 'एकप्रदेशे' 'एकप्रदेश-आदिषु' हैं अर्थात् एकप्रदेशमें, दोप्रदेशोंमें, तीन प्रदेशोंमें, चारप्रदेशोंमें इत्यादिक संख्यात प्रदेशोंमें और असंख्यात प्रदेशोंमें इसप्रकार उक्त समासका अवयव सहित अथवा टुकड़े २ रूपमें, अंश २ रूपमें विग्रह वा व्याकरणानुसार व्यवच्छेद, प्रसार, वा विस्तार हुआ सो यह विग्रह इस बातका द्योतक है कि उक्त (एकप्रदेशादिषु) समासका अर्थ तात्पर्य वा भाव समुदाय है। यदि इस समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता और एकप्रदेश छूट जाता, समासका समुदाय अर्थ माननेमें ग्रहण करनेमें लोकाकाशका एक प्रदेशभी पुद्गलके अवगाहके लिये ग्रहणमें आगया है

विग्रहका समूह है सो (यह अवयवरूपसे विग्रहका समुदाय) 'एक प्रदेशादिषु' समासके (स्पष्ट करनेके) अर्थ है ऐसे लोकाकाशका एकप्रदेशभी (पुद्गलके) अवगाहके लिये लिया है। पं० सदासुखदासजीने तत्त्वार्थराजवार्तिककी 'एकप्रदेशादिषु विभक्त्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः' का भावार्थ ऐसा किया है कि 'एकप्रदेशो प्रदेशद्वयमेकप्रदेश एकप्रदेशमादिर्येषां ते इमे एकप्रदेशादयः तेषु एकप्रदेशादिषु' यह यहांपर अवयवके साथ समास है। 'एकप्रदेश आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यह यहांपर 'एकप्रदेशादिषु' पदका अर्थ है। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर बहुव्रीहिसमास रहनेसे अन्य पदार्थ प्रदेश लिया गया है और यह विशेष्य और एक प्रदेशादि पदार्थके विशेषण माना गया है। यदि यहांपर यह तर्क किया जाय कि अन्यपदार्थ प्रदेश ही क्यों लिया गया और कोई पदार्थ क्यों नहीं लिया गया ? तो इसका समाधान यह है कि जहांपर उपलक्षण और उपलक्ष्यभाव रहता है वहांपर समान जातीयपदार्थका ही ग्रहण होता है जिसप्रकार ब्राह्मणोंको निमंत्रण आदिके समय कहा जाता है—सोमशर्मा आदिका निमंत्रण है यहांपर आदिशब्दसे सोमशर्माके समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ही ग्रहण होता है। यहांपर सोमशर्मा उपलक्षण है क्योंकि जो अपना और अपने समानजातीयका ग्राहक होता है वह उपलक्षण माना जाता है। यहांपर सोमशर्मा अपना और अपने सजातीय ब्राह्मणोंका ग्रहण करनेवाला है इसलिये वह उपलक्षण है और जो ग्रहण किये जाय वे उपलक्ष्य कहे जाते हैं यहांपर सोमशर्मासे भिन्न अन्य ब्राह्मण उपलक्ष्य हैं इसलिये उपलक्षण उपलक्ष्य भावके होनेसे जिसप्रकार यहांपर समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ग्रहण है उसीप्रकार 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी उपलक्षण उपलक्ष्य भाव है क्योंकि बहुव्रीहि समासांत एकप्रदेशादि शब्द अन्य पदार्थका ग्राहक है इसलिये यहांपर भी समानजातीय पदार्थका ही ग्रहण होसकता है विजातीय पदार्थका नहीं। प्रदेशका समानजातीय पदार्थ प्रदेशही है इस लिये यहांपर अन्य पदार्थ प्रदेशही ग्रहण किया जासकता है अन्य नहीं। इस रीतिसे 'एक प्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ ठीक है। अथवा ऊपर से प्रदेश शब्दकी अनुवृत्ति आ रही है इसलिये भी 'एकप्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ न्याय्य है।

'एकप्रदेशादिषु' यहांपर जो समास मानागया है उसका अर्थ समुदाय है इसलिये 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर यद्यपि एकप्रदेश शब्द उपलक्षणस्वरूप है तो भी उसका ग्रहण है। यदि समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता, तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें द्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता, तथा होनेसे एक प्रदेशमें अवगाहन न सिद्ध होता। खुलासा तात्पर्य यह है—

बहुव्रीहि समास तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि और अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिके भेदसे दो प्रकारका मानागया है। जहांपर विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण हो वह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार "लंबकर्णमानय" अर्थात् जिसके लंबे कान हों उस पुरुषको लेआओ यहांपर लंबे कान सहित पुरुषके लानेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण है तथा जहांपर विशेषणयुक्त पदार्थ का ग्रहण न हो वह अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार 'चित्रगुमानय' अर्थात् जिस पुरुषने चितकबरी गाय देखी है उसे लेआओ, यहांपर चितकबरी गाय सहित पुरुषका लाना न होनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थ का

तद्यथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाहः द्वयोरेकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च त्रयाणामेकत्र द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामबद्धानां च ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामेकसंख्येयासंख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम् ॥

तद्यथा=एकस्मिन् आकाशप्रदेशे परमाणोः	=जैसे एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका
अवगाहः द्वयोः एकत्र=उभयत्र=च=	=अवस्थान है। दो(परमाणु)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=उभयत्र)
बद्धयोः अबद्धयोः च=	=बंधी हुई का तथा (=च) खुलीहुई का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु बंधीहुईकी जो सूक्ष्मरूपमें परिणमी हैं लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है और दो परमाणु खुली हुईका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणमी हैं तथा दो परमाणु बंधीका भी जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणमी हैं लोकाकाशके दो प्रदेशमें अवगाह है।
च=त्रयाणाम् एकत्र=बद्धानाम्	=और (=च) तीन(परमाणुओं)का एकप्रदेशमें(=एकत्र) बंधेहुओंका(सूक्ष्मरूपपरवर्तितका)
(त्रयाणाम्) द्वयोः बद्धानाम् च=अबद्धानाम्	=(तीन परमाणुओंका) दो प्रदेशोंमें (=द्वयो) बंधेहुए और(=च) खुलेहुओंका अर्थात् दो परमाणु (सूक्ष्मरूप परिणत) और एक खुलीहुईका वा तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका(अवगाह)है।
(त्रयाणाम्) त्रिषु अबद्धानाम्	=(तीन परमाणुका) तीन प्रदेशोंमें खुले हुओंका (अवस्थान या अवगाह) है
एवं=संख्येय-असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् स्कन्धानाम्	=इस प्रकार संख्यात-असंख्यात अनन्त और अनंतानन्त प्रदेशोंके स्कन्धोंका (क्योंकियहां अनन्तमें अनन्त और अनन्तानन्त दोनो जैसा पूयम कहाहै मानावेहैं)
एक-संख्येय असंख्येय-प्रदेशेषु लोकाकाशे	=एक, दो, तीन, चार, पांच, छह इत्यादि संख्यात और असंख्यात लोकाकाशप्रदेशोंमें
अवस्थानम् प्रत्येतव्यम्	=अवगाह अथवा स्थिति प्रतीति करनी चाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पांच आदिक संख्यात, असंख्यात, अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके जो (सूक्ष्मरूपमें परणामी हैं)स्कन्धकाअवगाह लोकाकाशके एकप्रदेशमेंभी है। संख्यात-असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंकाअवगाह लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमेंभी है और असंख्यात अनन्त तथाअनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें भी है। यहांपर स्मरण रहे कि जितनी खुलीहुई परमाणुएं उतनेआकाशके

महत्व नहीं। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी जो बहुव्रीहि समास माना है वह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है इसलिये यहांपर एकप्रदेशसहित अन्य प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन माना है। यदि यहांपर अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि यह समास माना जाता तो एकप्रदेशका महत्व नहीं होता फिर एकप्रदेशमें भी [illegible]

ननु युक्त तावदमूर्त्तयाधर्माधर्मयोरेकत्राविरोधनावरोध इति।मूर्त्तिमतां पुद्गलानां कथमित्यत्रोच्यते—अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते । एकापवरके अनेकदीपप्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥तदुक्तम्—ओगाढगाढणिचिओ

प्रदेशोंसे अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती है। अधिकसे अधिक उतनेही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा स्थिति हो सकती है जितनी उनकी सूक्ष्मरूपमें संख्या है। जैसे पचास सूक्ष्मरूप परमाणु हैं तो ये परमाणु पचास ही आकाशके प्रदेशोंको अवगाहेंगे नहिं अधिक प्रदेशोंको

ननु॰युक्तम् ।।।तावत्॰अमूर्त्तयोः।धर्म अधर्मयोः। एकत्र॰अविरोधेन।।अवरोधः।।इति॰मूर्तिमताम्। पुद्गलानाम्।।कथम्॰इति॰अत्र॰उच्यते। अवगाहन-स्वभावत्वात्।।।च॰सूक्ष्मपरिणामात्। मूर्तिमताम्।।अपि॰अवगाहः।।न॰विरुध्यते।

=यह इतना (=तावत्) ठीक (=युक्त) है कि अमूर्तीक धर्मद्रव्यका और अधर्मद्रव्यका =एकक्षेत्रमें विरोधकरि रहित अवगाह वा अवस्थान(=अवरोध) है। रूपी अथवा मूर्तीक =पुद्गलोंके कैसे इस प्रकार (परस्पर अविरोधरूप एकक्षेत्रमें अवगाह) यहां कहागया है =(उत्तर) अवगाहनके स्वभावपणासे तथा(=च)सूक्ष्म परिणमनसे

=रूपी(पुद्गल)निकेंभी अवगाह नहीं विरोधाजाता है अर्थात् मूर्तीकपदार्थोंकी अवगाहन स्वभाव वा शक्तिकरि(=अवकाशदान अथवा स्थानदान देनकी शक्तिसे)और सूक्ष्म रूप विकारकोप्राप्त होनेसे एक क्षेत्रविषैं अवस्थान वा स्थिति अविरोधरूप है ॥ भावार्थ द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत हैं और वे भिन्नभिन्न हैं इसलिये उनके स्वभावके विषयमें यह आक्षेपही नहीं होसकता कि ऐसा होना चाहिये वा ऐसा न होना चाहिये जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव जलानेआदिकाहै वहां पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि इनका स्वभाव जलाने आदिका क्यों है जलने आदिका क्यों नहीं तथा तृण काष्ठादि पदार्थोंका स्वभाव जलनेआदिका क्यों है जलानेआदिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव रहेगा वह पलट नहीं सकता वैसेही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ में तथापि अपनेसमानजातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना उनका स्वभाव है अतः एक आकाशके प्रदेशमेंभी अनन्त रह सकते हैं ॥

एकअपवरके।।।अनेकदीपप्रकाश-अवस्थान-वत्॰

=एक घरविषैं (=अपवरके) अनेक दीपकोंके उजालोंकी स्थितिके =समान(मूर्तीक द्रव्योंके भी एकक्षेत्रविषैं परस्पर अवगाह अविरोधरूपसे होता है)

च॰आगम प्रामाण्यात्।।। तथा अध्यवसेयम्।।।तदुक्तं।।। =तथा(=च)आगमके प्रमाणपनेसे उसी प्रकार जानना चाहिये। कहाभीहै कि

ओगाढ-गाढ-णिचिओ। (अवगाढ-गाढ-निचयः)

अवगाहनाढ भरा हुआ है ॥ ("णिचिओ" भी पाठ है) ॥

अथ जीवाना कथमवगाहनमित्यत्रोच्यते—

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

लोकाकाशे इत्यनुवर्तते। तस्यासंख्येयभागीकृतस्यैको भागोऽसंख्येयभाग इत्युच्यते। स आदिर्येषां ते

पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः (पुद्गलकायैः सर्वत लोकः) = चारोंओर यह लोक पुद्गलकायोंसे
सूक्ष्मैः बादरैः (सूक्ष्मैः बादरैः) = जो (पुद्गलकाय) सूक्ष्मबादर (बादरैः बादरैः प्राकृतमें तृतीयाके दोनोंरूप हैं)
अनन्तानन्तैः विविधैः (अनन्तानन्तैः विविधैः) = अनन्तानन्त नानाप्रकारसे हैं अर्थात् सबओर यहलोक सूक्ष्म और बादरअनंतानंत नाना प्रकार पुद्गलकायोंकरि गाढागाढ ठसाठस, वा खचाखच भराहुआहै

अथ जीवानाम् कथम् अवगाहनम् इति अत्र उच्यते = आगें जीवोंका कैसे अवस्थान वा अवगाह है ऐसे यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाता है कि

सूत्रम्—[1]असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

= (लोकाकाशे) असंख्येयभागादिषु जीवानाम् (अवगाह) भवति ॥ १५ ॥

सभाष्य —लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु = लोकाकाशके असंख्येयभागादिकोंमें
जीवानाम् अवगाह भवति ॥ १५ ॥ = जीवोंका अवस्थान है। अर्थात् लोकाकाशके असंख्यातवांभाग और असंख्यातवेंभागोंको आदिलेकर लोकपर्यन्त जीवों की स्थिति है। भावार्थ यह है कि लोकाकाशके एक असंख्यातवां भागमें एक जीव तिष्ठता है, दो असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है, तीन असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है चार असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवकी स्थिति वा अवगाह है औरऐसेही एक जीव का अवगाह पांच आदि संख्यातभागोंमे और असंख्यात भागोंमें समस्त लोकपर्यन्त है; जब केवली समुद्घात करते हैं तब लोकपूर्ण समुद्घातमें सबलोक एक जीवका अवगाह होता है। नाना जीवका अवगाह तो सर्वलोकमें है ही। कोई प्रदेश लोकाकाशका जीवबिना नहींहै। दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ और अर्थ एकसाहै।

सूत्रानुसारः—लोकाकाशे इति अनुवर्तते। तस्य = (इस सूत्रमें) लोकाकाशमें ऐसी अनुवृत्ति (पिछलेमें सूत्रसे) है। तिस (लोकाकाश)के
असंख्येयभागीकृतस्य एकः भागः असंख्येयभागः = असंख्यातभाग करके एक भाग है सो असंख्यातवांभाग है।
इति उच्यते। सः आदिः येषाम् ते = ऐसा कहाजाता है। सो (असंख्यातवां भाग आदिमें वा प्रथममें जिनके है ते

ननु युक्त तावदमूर्त्तयाधर्माधर्मयोरेकत्राविरोधेनावरोध इति। मूर्त्तिमता पुद्गलाना कथमित्यत्रोच्यते—अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते । एकापवरके अनेकदीप-प्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥ तदुक्तम्—ओगाढगाढणिचिओ

प्रदेशोंसे अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती है। अधिकसे अधिक उतनेही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह या स्थिति हो सकती है जितनी उनकी स्कंधरूपमें संख्या है। जैसे पचास सत्तीहुई परमाणु हैं तो ये परमाणु पचास ही आकाशके प्रदेशोंको अवगाहेंगी नकि अधिक प्रदेशोंको

ननु॰युक्तम् ३॥ तावत्॰अमूर्त्तयो ३। धर्म अधर्मयो ३। एकत्र॰अविरोधेन ३। अवरोधः ३। इति॰मूर्तिमताम् ३। पुद्गलानाम् ३। कथम्॰इति॰अत्र॰उच्यते। अवगाहन-स्वभावत्वात् ३॥ च॰सूक्ष्मपरिणामात् ३। मूर्तिमताम् ३। अपि॰अवगाहः ३। न॰विरुध्यते।

=यह इतना (=तावत्) ठीक (=युक्त) है कि अमूर्तीक धर्मद्रव्यका और अधर्मद्रव्यका =एकक्षेत्रमें विरोधकरि रहित अवगाह या अवस्थान(=अवरोध) है। रूपी अथवा मूर्तीक =पुद्गलोंके कैसे इस प्रकार (परस्पर अविरोधरूप एकक्षेत्रमें अवगाह) यहां कहागया है =(उत्तर) अवगाहनके स्वभावपणासे तथा(=च)सूक्ष्म परिणमनसे =रूपी(पुद्गल)निर्केभी अवगाह नहीं विरोधाभावाहै अर्थात् मूर्तीकपदार्थोंकी अवगाहन स्वभाव वा शक्तिकरि(=अवकाशदान अथवा स्थानदान देनेकी शक्तिस)और सूक्ष्म

रूप विकारकोमाप्त होनेसे एक क्षेत्रविषैं अवस्थान वा स्थिति अविरोधरूप है ॥ भावार्थ द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत हैं और वे भिन्नभिन्न हैं इसलिये उनके स्वभावके विषयमें यह आक्षेप नहीं होसकता कि ऐसा होना चाहिये वा ऐसा न होना चाहिये जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव जलानेआदिकाहै वहां पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि इनका स्वभाव जलाने आदिका क्यों है जलने आदिका क्यों नहीं तथा तृण काष्ठादि पदार्थोंका स्वभाव जलनआदिका क्यों है जलानेआदिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव रहेगा वह पलट नहीं जासकता वैसेही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ हैं तथापि अपनेसमानजातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना इनका स्वभाव है अत एक आकाशके प्रदेशमेंभी अनन्त रह सकते हैं ॥

एकअपवरके ३॥ अनेकदीपप्रकाश-अवस्थान-वत्॰

=एक घरविषैं (=अपवरके) अनेक दीपकोंके प्रकाशोंकी स्थितिके

च॰आगम प्रामाण्यात् ३॥ तथा अध्यवसेयम् ३॥ तदुक्तम् ३॥

=समान(मूर्तीक द्रव्योंके भी एकक्षेत्रविषैं परस्पर अवगाह अविरोधरूपसे होता है) =तदुक्ति(=च)आगमके प्रमाणपनेसे वसी प्रकार जानना चाहिये। कहाभीहै कि

ओगाढ-गाढ-णिचिओ ३। (अवगाढ-गाढ-निचित ३)

अवगाढ भरा हुआ है ॥ (णिचिओ भी पाठ है) ॥

अनन्तानन्ता वसन्ति ॥ न ते परस्परेण बादरैश्च व्याहन्यन्त इति नास्त्यवगाहविरोध ॥

अत्राह_लोकाकाशतुल्यप्रदेशो एकजीव इत्युक्तं, तस्य कथं लोकस्यासंख्येयभागादिषु वृत्ति । ननु सर्वलोकव्याप्त्यैव भवितव्यमित्यत्रोच्यते—

॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अनन्तानन्ताः वसन्ति । न वे परस्परेण	=अनन्तानन्त रहते हैं । न वे (सूक्ष्म सशरीर जीव) परस्परकरि
च बादरैः व्याहन्यन्ते । इति न अस्ति अवगाह	=तथा बादर(जीवों)से व्याघातेजाते हैं । ऐसे नहीं है अवगाहनामें
विरोधः	=विरोध अर्थात्‌एकही स्थानमेंबहुत जीवोंका अवगाह,विना परस्पर रोकटोककेहोताहै
अत्र आह लोकाकाश-तुल्यप्रदेशो एकजीवः	=यहां पूछता है कि लोकाकाशके बराबर प्रदेश एक जीवमें है
इति उक्तम् । तस्य कथम् लोकस्य असंख्येय	=ऐसा कहागया है । तिस (जीव)का कैसे लोकके असंख्यातवां
भागादिषु वृत्तिः । ननु सर्वलोक	=भागादिकोंमें स्थिति है (=वृत्ति) ॥ सचमुच (=ननु) (वह तो) सब लोक
व्याप्त्या एव भवितव्यम् । इति अत्र उच्यते	=व्याप्तिकरि ही होना चाहिये । ऐसे यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम् प्रदेशसंहारविसर्पाभ्या प्रदीपवत् = प्रदेशसंहारविसर्पाभ्या प्रदीपवत् (लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानाम् अवगाह भवति) ॥ १६

सूत्रार्थः—प्रदेश-संहारविसर्पाभ्याम् । प्रदीपवत्	=प्रदेशोंके सकोच और विस्तार होनेसे दीपकके प्रकाशके सदृश
लोकाकाशे । असंख्येयभागादिषु जीवानाम् । अवगाहः	=लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें जीवोंका अवगाह या स्थिति है अर्थात्

(१) परस्पर—यह शब्द त्रिलिंगी है। (२) लोक—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग है। (३) आकाश—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंगमें आता है। (४) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र"में विसर्पेभ्यां' शब्दके स्थानमें 'विसर्पाभ्यां' पाठ है और विसर्ग शब्दका अर्थ'विस्तार किया है (देखो पृष्ठ १२१) अब पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है अर्थ भी एक है॥ हमारे यहां किसी किसी पुस्तकमें विसर्पाभ्यां वाक्यके स्थानमें विसर्प्पाभ्यां पाठ है॥ दोनोंही पाठ "अपोरद्वाभ्यां हे (वा)" ८-४ ४८वां सूत्रसे शुद्ध है॥ पन्द्रहवां सूत्र अनुवृत्तियो सहित सब का सब १६ (सत्र)में अध्याहार किया गया है॥

ऽसख्येयभागादय ।तेपु जीवानामवगाहो वेदितव्य ॥तद्यथा-एकस्मिन्नसख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते। एवद्वित्रिचतुरादिष्वपि असख्येयभागेषु आ सर्वलोकादवगाह प्रत्येतव्य ।नानाजीवाना तु सर्वलोक एव ॥ यद्येकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते, कथं द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्तो जीवराशि सशरीरोऽवतिष्ठते ? । लोकाकाशे सूक्ष्मबादरभेदादवस्थानं प्रत्येतव्यम् । बादरास्तावत्सप्रतिघातशरीरा । सूक्ष्मास्तु सशरीरा अपि सूक्ष्मभावादेकैकनिगोदजीवावगाह्येऽपि प्रदेशे साधारणशरीरा

असंख्येय-भागआदय ॥	=असख्येयभाग आदयः (तद्गुणसंविज्ञानरूप बहुव्रीहिसमासरूपमें) है अर्थात् असख्यातवाँ भाग सेलेकर लोकपर्यन्त समस्त भाग हैं वे असंख्येयभागआदि हैं ॥
तेपु॥ जीवानाम्॥ अवगाह॥	=तिन(असंख्येय भाग आदि लोक पर्यन्त) में जीवोंका अवस्थान
वेदितव्य॥ तद्यथा=एकस्मिन्॥ असंख्येयभागे॥ एक॥	=जानना चाहिये । जैसे एक असंख्यातवेंभागमें एक
जीव॥ अवतिष्ठते॥ एवम्॥ द्वि-त्रि-चतुर आदिपु॥	=जीव तिष्ठता है । इस प्रकार दो-तीन चार आदिक
असंख्येयभागेपु॥ अपि = आ॥ सर्वलोकात्॥ अवगाह॥	=असंख्यात भागोंमें भी समस्त लोक पर्यंतन (एक जीव)का अवगाह
प्रत्येतव्य॥ ॥	=प्रतीति करना चाहिये अथवा जानना चाहिये । (असंख्यात के असंख्यात भेद हैं) जिससे लोकाकाशके असख्यातवाँ भागके भी प्रदेश असंख्यातही जानना ।
नानाजीवानाम्॥ तु = सर्वलोके॥ एव = यदि = एकस्मिन्॥	=नानाजीवों का तो(अवगाह) सर्वलोकमें ही है (प्रश्न) जो एक
असंख्येयभागे॥ एक॥ जीव॥ अवतिष्ठते	=असख्यातवाँभाग में एक जीव तिष्ठता है तो
कथम् = द्रव्यप्रमाणेन॥ अनन्तानन्त॥ जीवराशि॥	=कैसे द्रव्यपर्यादासे अनन्तानन्त जीवराशि है
सशरीर॥ अवतिष्ठते॥ लोकाकाशे॥ सूक्ष्मबादर	=सो शरीर सहित (लोकमें) तिष्ठती है (उत्तर) लोकाकाशमें सूक्ष्मबादरके
भेदात्॥ अवस्थानम्॥ प्रत्येतव्यम्॥ बादरा॥ तावत्	=भेदसे (जीवोंका अवस्थान या अवगाह) जानना चाहिये । बादर(जीव)तो(=तावत्)
सप्रतिघात-शरीरा॥	=सप्रतिघात शरीर हैं अर्थात् बादर शरीर परस्पर एक दूसरेसे रुके हैं और रोकें भी हैं
तु = सूक्ष्मा॥ सशरीरा॥ अपि = सूक्ष्मभावात्॥ एक =	=परन्तु सूक्ष्मजीव शरीर सहित हैं तो भी सूक्ष्मपना से ही (=एक)
एक-निगोदजीव-अवगाह्ये॥ अपि = प्रदेशे॥	=एक निगोद जीवकरि अवगाहने योग्य क्षेत्रमें (नकि परमाणु से रोके हुये प्रदेशमें)
साधारणशरीरा ॥	=साधारण शरीर अर्थात् वे जीव जिनके आहार श्वासोच्छ्वास आयु और काय ये समान या एक ही जैसे हैं सूक्ष्मभि

अनवधृतप्रकाशपरिमाणस्य प्रदीपस्य शरावमानिकापवरकाद्यावरणवशात्तत्परिमाणतेति ॥ अत्राह धर्मादीनामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्सङ्करे सति, एकत्वं प्राप्नोतीति ॥ तन्न । परस्परमत्यन्तसंश्लेषे सत्यपि स्वभाव न जहति ॥ उक्तं च । अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ॥

अनवधृत प्रकाश-परिमाणस्य प्रदीपस्य शराव-मानिका-	=अमर्यादित प्रकाश परिमाणवाले दीपकका सकोरा(=शराव)माणिका वा पतीली
अपवरक-आदि आवरण-वशात् तत्-	=घरादिकमें (=अपवरक)आवरणके वशसे उन(शराव-मानिका-अपवरकादि)के
परिमाणता इति॥	=बराबरि(=परिमाण)होता है अर्थात् दीपक जब खुले स्थानमें रक्खा जाता है तब उसका प्रकाश मर्यादारहित फैलता है और वही दीपक किसी भाजन वा घर आदिकमें धराजाता है तब उसका प्रकाशभी उस भाजनादिकके बराबरही परिमित वा सीमामें होजाता है
अत्र॥ आह धर्मादीनाम् अन्योन्य प्रदेश-	=यहां पूछता है कि धर्मादि द्रव्योंके परस्पर प्रदेशोंके
अनुप्रवेशात् सङ्करे सति, एकत्वम् प्राप्नोति इति॥	=मिलजानेसे एकमेक (=संकर) होजानेपर (दोनोंकी)एकता प्राप्त होती है
तत् न॥ । परस्परम् अत्यन्तसंश्लेषे सति	=(उत्तर)वह(एकता)नहीं(होती) है । परस्पर अत्यन्त मिलाव होनेपर
अपि॥ स्वभावम् न॥ । (१)जहति ॥ उक्तम् च॥	=भी (द्रव्यें अपने अपने)स्वभावको नहीं छोड़ती हैं । कहाभया भी है कि
अण्णोण्णं पविसंता (अन्योन्यम् प्रविशन्ता)	=(ये छह द्रव्य) परस्पर प्रवेश करते हुये
(२ दिंता ओगासं अण्णमण्णस्स ददन्ति (वा ददति) अवकाशम् अन्यमन्यस्य	=आपसका (=आपसमें)अवकाश देते हैं

(१) हा—तीसरे जुहोत्यादिगणका धातु है जिसका अर्थ परस्मैपदमें त्यागना वा छोड़ना है और आत्मनेपदमें जानेके अर्थ में आता है। यहांपर छोड़नेके अर्थ परस्मैपदमें लाये हैं। तीसरे गणका धातु जिसमें एक स्वर हो तो उसको दुहरादेते हैं अर्थात् यदि स्वर आदिमें हो तो स्वरको दुहरादेते हैं जैसे इण् धातुसे इयण् होगया यदि आदिमें व्यंजन हो (जैसाकि यहां है) तो आदिके व्यंजनको उसके पश्चात्के स्वरके साथ दुहराते हैं जैसे हा धातुका 'हाहा' रूप होगया, दुहरे रूप किये हुये स्वरको ह्रस्व करदेते हैं(देखो अष्टाध्यायी ७-४-५९)और 'ह'को 'ज'से पलटदेते हैं (देखो अष्टाध्यायी ७-४-६२सूत्र) तब 'जहा' ऐसा रूप हुआ ॥ इस 'जहा' के दीर्घ 'आ' को वर्तमानकाल (लट्)के अनद्यतन भूतकाल (=लङ्)के, लोट कालके और विधिलिङ् कालके उन ङित् व्यंजन प्रत्ययोंके साथ गिरा देते हैं जिनके आदिमें स्वर होता है 'जहा' से 'जह्' रूप बना और अति (बहुवचनका प्रत्यय) जोड़कर 'जहति' रूप बना जिसका अर्थ 'छोड़ते हैं त्यागते हैं' हुआ। और पित् सार्वक प्रत्यय जैसे मि-सि-ति इत्यादिके साथ 'जहा' रूप रहता है जैसे जहामि-मैं छोड़ता हूं जहासि तू छोड़ता है जहाति=वह छोड़ता है ॥ (२) 'ददत्' नपुंसकलिंग, प्रथमा और द्वितीया विभक्ति बहुवचनके 'ददन्ति' और ददति दो रूप हैं और पुंल्लिंगमें दोनो विभक्तियोंका 'ददतः' है यहां प्रथमा विभक्ति नपुंसकलिंगमें मेरी समझमें प्रयोग किया गया है ॥

अमूर्तस्वभावस्यात्मनोऽनादिबन्धंप्रत्येकत्वात् कथञ्चिन्मूर्ततां बिभ्रत कार्मणशरीरवशान्महदणु च शरीरमधितिष्ठतस्तद्वशात्प्रदेशसंहरणविसर्पणस्वभावस्य तावत्प्रमाणतायां सत्या असंख्येय-भागादिषु वृत्तिरुपपद्यते, प्रदीपवत् ॥ यथा निरावरणव्योमप्रदेशे

यद्यपि एक जीवके प्रदेश लोकाकाशके समान हैं सो यह जीव सर्व लोकाकाशमें व्याप्त होना चाहिये तथापि वे प्रदेश दीपकके प्रकाश के समान संकोच विस्ताररूप होजाते हैं और जैसा आधार(आश्रय-शरीर) जीव पाता है वैसाही उस (जीव)के प्रदेश संकोच विस्ताररूप होकर लोकाकाशके असंख्यात भागादिकमें उस जीव)का अवगाह होताहै। परन्तु केवलि समुद्घातकी अवस्थामें आत्माके मध्यके आठप्रदेश मेरु मंदिरके नीचे चित्रा पृथ्वीका वज्रमयी पटलके मध्यके आठप्रदेशोंमें निश्चल तिष्ठते हैं और केवलि भगवानके अन्यप्रदेश ऊर्ध्व अधः तिर्यक्(दायें बायें-इधर-उधर)सर्वत्र सर्वलोकमें पूर्णतया व्याप्त होजाते हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—अमूर्त-स्वभावस्य आत्मनः अनादिबन्धम्	=मूर्ति शून्य स्वभाववाले आत्माके(कर्मके) अनादिबंध
प्रति एकत्वात् कथञ्चित् मूर्तताम्	=प्रति एकता रूप होनेसे या एक क्षेत्ररूप अवगाह होनेसे कथञ्चित् मूर्तिपनाको
बिभ्रत कार्मणशरीर वशात् महत् च अणु	=धारण करनेवाले(=बिभ्रतः)कार्मण शरीरके वशसे बड़ा और छोटा
शरीरं अधितिष्ठतः तद्-वशात् प्रदेश-	=शरीरको ग्रहण करनेवाले और उस(महत् वा अणु शरीर)के वशसे प्रदेशोंके
संहरण-विसर्पण-स्वभावस्य तावत्	=संकोचन और फैलाव स्वरूपवाले (ऐसी आत्माके उतने(देहके)
प्रमाणतायाम् सत्याम् असंख्येयभागादिषु	=प्रमाण होते(=प्रमाणतायां)सते(=सत्यां)(लोकाकाशके)असंख्यातवां भागादिकमें
प्रदीपवत् वृत्तिः उपपद्यते	=दीपकके प्रकाश सदृश अवगाह (=वृत्ति) होता है अर्थात् यद्यपि स्वभावसे आत्मा अमूर्तीक है तौभी कर्मके अनादि सम्बन्धसे एक क्षेत्ररूप अवगाह होने

से कथंचित् मूर्तिमान होजाता है और कार्मण शरीरके वशसे छोटा अथवा बड़ा शरीर पाता है उस प्राप्त किये हुये शरीरके अनुसार प्रदेशोंको संकोच अथवा विस्ताररूपमें दीपकके प्रकाशवत् लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें इस जीवका अवगाह होता है ॥

यथा निरावरण-व्योम-प्रदेशे	=जैसे खुले हुवे आकाश क्षेत्रमें

इसी प्रकारसे धर्मद्रव्य बाह्य और अप्रेरकनिमित्त है जैसे जलपानरूप और उदासीनतासे मछलीके गमनकरनेमें सहकारी वा सहायक है और स्थितिमें परिवर्तन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको अधर्मद्रव्य उसी प्रकार बाह्य और बलाधान(अविनाभावी) कारण है जैसे छाया पथिक जनोंके ठहरानेमें सहायक वा सहकारी है,न तो जल मछलीको प्रेरणा करता है कि वह गमन करे और न छाया पथिक जनको स्वयम् ठहरनेकी प्रेरणा करती है यदि वे गमनस्थिति करें तो उनको उदासीनतासे सहायता प्रदान करती हैं,परन्तु स्मरण रहे कि उक्त बाह्य और अप्रेरक कारण गमन और स्थितिके लिये अविनाभावी है कि जिसके बिना गमन और स्थिति नहीं होसकते हैं ॥

अर्थ भलाई वा सहायताका है जैसे उपकुर्वन्ति=उपकार अथवा सहायता करते हैं (देखो तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२०) इसलिये उपकार शब्दका अर्थ यहां भलाई सहायता कीजाय ऐसा है। इस अर्थ का समर्थन सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७के 'उपक्रियत इत्युपकारः=उपक्रियते इति उपकारः=उपकार किया जाता है वा सहायता कीजाती है इस वाक्यसे होता है ॥ उपग्रह शब्दका अर्थ भलाई अथवा सहायता ग्रही(ग्रहण की)जाती है ऐसा है जैसे 'उपगृह्यत इत्युपग्रह' =उपगृह्यते इति उपग्रह अर्थात् भलाई वा सहायता ग्रहण कीजाती है (देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७) ॥ दोनों उपग्रह और उपकार शब्दोंके ये व्युत्पत्त्यर्थ हैं, अर्थात् ये अर्थ व्याकरणकी रीतिसे निकलते हैं ॥

उपकार =कियेहुये पुण्यादि()नौकरी सेवा()साहाय्यभाव()अलंकार, भूषण (देखो शब्दकल्पद्रुम पृष्ठ ७६ और मेघ संस्कृत आप्टेकोष पृष्ठ १३५)
उपग्रह =राहु धूम केतु आदि ग्रह()कारागृहबन्धन()कारागृहमेंडालना()बंधुआ-कारागारस्थ()जोड़ना-लगाना-संयोग(उक्तकोषोंके पृ०७६ १३५में क्रमसे है)इत्यादि और भी अर्थोंमें आते हैं उन समस्तको छोड़कर यह शास्त्रानुकूल तीन बात सिद्ध करती है(क)यह कि उपकार तो सामान्यवचन है अर उपग्रह विशेष वचन है अर्थात् उपग्रहोंका समुदाय उपकार है जैसे कोई व्यक्ति किसीको पढ़ावे, पोषण करे,उसका विवाह करे-उसे व्यापारके लिये धन दे तो अवसर आने पर कहसकता है कि मैंने तुम्हारे साथ पाठन उपग्रह, पोषणकरणउपगूह, विवाहकरणउपगूह, धान्यउपगूह, धनउपग्रह, इतना उपकार किया तिसपर भी तुम मेरे प्रति कृतघ्नता प्रगट करते हो। उपगूहका अर्थ अनुगूहभी है। (ख)यह कि उपगूह और उपकार शब्द()सहायता-सहारा()अनुगूह अनुकूलता-भलाई()आदि भिन्न-तथा प्रत्यय अर्थोंमें पाये जाते हैं ॥ (ग) यह कि जब पहली बातके सम्बन्धमें उपगूह किया जाय तब और अन्य अवसरोंपर भी उपकार और उपगूह शब्द अभेदरूपसे एक दूसरेके अर्थ में जहां जैसी आवश्यकता हो काममें आयेजाते हैं ॥

(क) (१) जो इस प्रकार है अर्थात् गतिका उपगूह है और स्थितिका भी उपगूह है तो दो(वचन)का निरूपण वा कथन उपकार शब्दके प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें आना योग्य था तब सूत्रका अभिप्राय भाव ऐसा होता "धर्माधर्मयोरुपकारौ" (उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि सामान्यकरि कहा हुआ गृहीत संख्यावाला (उपकार शब्द)अन्य शब्द (उपगूहों)के साथ संबन्ध होनेपर भी प्रथम गृहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है (देखो संस्कृतसर्वार्थ सिद्धिवृत्ति पृ० २७७) ॥(२) "न चैवमुपकारशब्दस्य द्विवचनप्रसङ्गः सामान्योपक्रमाद्येकवचनोपपत्तेः"=न एवम् उपकार शब्दस्य द्विवचनप्रसङ्गः न सामान्यउपक्रमात् एक वचन उपपत्तेः और इस प्रकार उपकार शब्दभी दो वचनमें स्थिति होवे (स्थिति होना चाहिये) ॥ (उत्तर)नहीं(होना चाहिये) क्योंकि सामान्यमें आरम्भ करनेसे वा सामान्य कहनेसे एक वचन की प्राप्ति है ॥(३)"तत्किमिदानीमुपगूहवचनं? न कर्तव्यं। कर्तव्यमेवोपकारशब्देन कार्यसामान्यस्याभिधानात् गतिस्थित्युपग्रहाविति कार्यविशेषकथनात्"। श्लोकवार्तिकपृ०४१०=तो अब(=इदानीं)उपगूहवचन (सूत्रमें) क्यों है, नहीं लाना चाहिये (उत्तर) (उपगूह शब्द सूत्रमें)लानाही चाहिये क्योंकि उपकार शब्दकरि सामान्य कार्यनिरूपण कियागया है(और) गति उपगूह,स्थिति उपग्रहसे विशेष कार्यका कथन होता है अर्थात् उपकार सामान्यवचन है और उपगूह विशेष वचन है ॥(४) (श्लोक) 'सुखादुपगूहश्चोपग्रहे जीवितमरणम्'=सुखादि उपगूहाः च उपकाराः जीवितमरणम् ॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४१२ और सुखदुःख,जीवित, मरण उपगूह हैं

मेलता त्रिय णिच्च सग सम्भावं ण जहंति ॥ १ ॥ यद्येवं धर्मादीना स्वभावभेद उच्यतामित्यत आह—

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

मेलंता[1] पि • य • णिचं • (मिलन्तः[1] अपि • च • नित्यम् •) =और(=य)नित्य =णिचं=सदा)मिलते हुये होनेपर भी(=पि=अपि)
सग • सम्भावं[1] ण • जहंति (स्व • स्वभावं[1] न • जहति ।)॥ १॥ =अपने (अपने) स्वभावको नहीं छोड़ते हैं(=जहति—देखो टिप्पणी(१) पृष्ठ ४६)
यदि • एवम् • =जो ऐसे हैं अर्थात् यदि ये छहों द्रव्यें अपने अपन स्वभावको नहीं छोड़ते हैं तो
धर्मादीनाम्[1] ॥ स्वभावभेदः[1] उच्यताम् । इति • अतः • आह । =धर्मादिक (द्रव्यों)के स्वभावका भेद कहाजाना चाहिये इसलिये(उत्तर सूत्रमें)कहते हैं कि

(1)सूत्रम्—गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

= ((2)जीवानाम् पुद्गलानाम् च)(3)गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकार भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थ—जीवानाम्[1] पुद्गलानाम्[1] च • गति-स्थिति-उपग्रहौ[1] =जीवोंके और पुद्गलोंके गमन और स्थितिका कारण अथवा कार्य(=उपग्रह) (बाह्य)प्रेरक वशाधीन वा उदासीनरूपसे परन्तु अविनाभावी अर्थात् जिस बिना गमन और स्थिति न होसके ऐसा

धर्म-अधर्मयोः[1] ॥ उपकारः[1] भवति[1] =(क्रमसे)धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सहायता सहकारता वा उपकार होता है अर्थात् गमनमें परिणमन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको

(१) श्वेताम्बर आम्नायके समाध्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "उपग्रहौ" के स्थानमें "उपग्रहो" ऐसा पाठ है और उपग्रहो तीन स्थानमें आनेसे प्रगट है कि उनके वहांका पाठ यही है इसकी प्रवृत्ति नहीं है अर्थ और शेषपाठ दोनोंसम्प्रदायोंमें एक है "धर्माधर्मयो "भी अधोदयाम्यां द्वैधा" सूत्रसे युक्त है।
(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पंद्रहवां सूत्रसे और पुद्गलानां शब्द की चौदहवां सूत्रसे (अनुवृत्ति) लीगई है ॥
(३) उपग्रह और उपकार दोनों शब्द कर्मसाधन कर्मप्रधान अथवा कर्मणि प्रयोग में हैं (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकमें वार्तिक १० ११ १२, १३ पं० प्रथमजी की वचनिका पृष्ठ४२६) । कर्मसाधन वह है जिसकी क्रियाका कर्ता ज्ञात नहीं पड़ता हो तात्पर्य यह है कि अपनी अवस्थामें विद्यमान नहीं है और जो दोनों ना करणकी अवस्थामें हो और जिसमें कर्मके जानलिजेजानेकी आवश्यकता प्रधानसे और यहीं कर्मकर्ताका निमित्त गिनाजावे जैसे फल खाया जाता है यहां कर्ता अपनी स्थितिमें विद्यमान नहीं है और जैसे लड़केसे रोटी खाईजाती है यहां कर्मकर्ताके स्थानमें है और लड़का कर्ता की अवस्थामें न होकर करणकी अवस्थामें है इसीप्रकार गमन (कर्म)का उपकार कियाजाता है धर्मद्रव्यसे और स्थितिका उपकार किया जाता है अधर्मद्रव्यसे । उपकारका अर्थ उपकारके विरुद्ध है अपकार शब्दमें 'अप' उपसर्गका अर्थ दुराईका है और उपकार तथा उपग्रह शब्दोंमें 'उप' उपसर्गका

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गति । तद्विपरीता स्थिति । उपगृह्यत इत्युपग्रह । गतिश्च स्थितिश्च गति-स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ [1]धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देश ॥

वृत्त्यनुवाद:—देशान्तर-प्राप्ति हेतु है गति है॥	=(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद्-विपरीता है स्थिति है॥	=उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना या ठहरना)सो स्थिति है
उपगृह्यत। इति॰उपग्रह है, गति है॥च॰स्थिति है॥च॰	=सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती है॥, गति-स्थिती है एव॰उपग्रहौ है	=सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है। गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थिति-उपग्रहौ है ॥	=ये गति-स्थिति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)हैं अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
(१)धर्म-अधर्मयो है इति॰कर्तृ निर्देश है	=(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयो ऐसा (वाक्य)कर्ताके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारके करनेवाले हैं भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है वरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली प्रेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है।

() यस्य अर्थस्य लिंगं वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व उपकारा स काल इति अनुमीयते(राजवार्तिक २७) = जिस द्रव्यका (अथ स्य) लक्षण (=लिंग) कहेहुये वर्तना परिणाम क्रिया, परत्व अपरत्व हैं सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है। यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकार:' अनुवर्तता है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्तना उपग्रह परिणाम उपग्रह क्रिया उपग्रह परत्वउपग्रह अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचो उपग्रहोंके लिये "उपकारा:"ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं।

() जीवपुद्गलानां गतिउपग्रहे कर्तव्ये साधारण आश्रय धर्मास्तिकाय = गमन करते जो जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषैं साधारण आश्रय धर्मद्रव्य है" अध० वा० ४२६ 'उपग्रह का अनुवाद उपकार विषैं ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयो:' वाक्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है। (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अत:'धर्माधर्मयो:' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पदके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होता है धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता मान लिया जावै। (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति'अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है। सूत्रमें'उपकार शब्द भाव साधन है 'उपकरणं उपकार:' यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह। —समासके अर्थ का प्रगट करनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(=व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि'उपकरणं उपकार:' ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है। इस रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया तो कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया तो धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहेगी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

५) जीव विपाकी प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपगृह दुःख उपगृह जीवित उपगृह मरण उपगृह यहां उपगृह विशेष वचन है) पुद्गलोंका जीवोंके उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (४) कालस्योपग्रहाः प्रोक्ता येपूनयसंनादयः। स्यात् पर्योपकारो तस् तस्यानुमितिरिष्यते ॥

=पुनि ये वर्तनादय कालस्य उपग्रहाः प्रोक्ता स्यात् ते एव उपकार अतः तस्य अनुमिति इष्यते (२८वां श्लोकतत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ०४१४)

=पुनि जे वर्तना-परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं। वेही उपकारहैं इसलियेउस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)का निर्णय होजाताहै

(ख)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें -जैसे आकाशस्य उपकारःअवगाह =आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिवृत्तिपृ०२०६

भृत्यानाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंकी(धनाढ्यसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८१

बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा विना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७

स्व उपग्रह प्रदर्शनार्थम् इदम्-पुद्गलानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखानेकेलियेकि पुद्गलोंकापुद्गलकृत उपकारहै उपगृहकायेहैं

परस्परस्य उपग्रहः =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतहैं

(२) अनुग्रह अनुकूलता-भलाईकेअर्थमें जैसे जीवकृत उपकारप्रदर्शनार्थम्सूत्र=जीवकाकियाहुआ(परस्पर)अनुगृह-भलाईवाअनुकूलता दिखानेकेलिये

किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः=क्या इतनाही पुद्गलका कियाहुआ अनुगृह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)

परस्परस्य-उपग्रह =आपसकीभलाई वा अनुग्रह (सर्वार्थ० पृ० २८१)

उपग्रहः =अनुग्रहहै(देखो तत्वार्थराजवार्तिकपृ०२१० वार्तिक१ श्लो०वा०पृ०४१०)

(३) कारण-निमित्त-हेतु प्रत्ययके अर्थ में-जैसे जीवानां सुख दुःख-जीवित-मरण-उपगृहाश्च पुद्गलानां उपकारः (सूत्र २०)

=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण-दुःखका निमित्त-जीवनका हेतु मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (सरकृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २८४)

(ग) उपगृह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुगृहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहे आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थसिद्धि पृ०२८१)

आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तते हैं (सर्वार्थ सिद्धि पृ० २८१)

() "उपगृह कहिये उपकार वर्ते हैं अर्थ०प्र०पृ०४१६ ()"शरीर वाक् मन तथा प्राण अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपगृह है

"()विष शस्त्र अग्नि आदानि मरणस्य अपवर्तन आयुष्कस्य" उपकार =तथा विष,शस्त्र,और अग्निआदि मरणके अर्थात्आयुके अपवर्तन होनेके उपगृह

हैं"यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है। देखो सभाष्य०पृ०१९६)

()उपगृहो निमित्त अपेक्षा कारणं-हेतुरित्यनर्थान्तरम् ।" =उपगृह निमित्त अपेक्षा कारण ये [illegible] समानार्थक हैं (देखो सभाष्य० पृ०१९५)

और उपकारका अर्थ भी निमित्त कारण वचनिका और अर्थप्रकाशिकामें

लिखा है— "कि द्रव्यनिकू निमित्त होय ताकूं उपकार कहिये है" वचनिका पृष्ठ ४४७ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०१ सूत्र १९)

()हमारे पास एक कोष बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसके ऊपरकेपृष्ठ और ग्रन्थ संरनामा भी नहीं है जिसके पृष्ठ२६में पंद्रहवां शब्द उपकारका अर्थ

तथा सहायता लिखा है और इसीसे शब्द उपगृहका अर्थ यथा सहायता (अंगुला भी लिखा है जिसको छोड़देते हैं) लिखा है।

() तेन शरीरादि परिणामैरात्मनो पुद्गला उपग्रहीतारः इत्युक्तं भवति=तेन शरीरादि परिणामैः आत्मनां पुद्गला उपगृहीतारःइति उक्तं भवति

(अर्थ)आकारवकरि शरीरादि परिणामकरि आत्माका उपकार करने वारे पुद्गल हैं ऐसैं कहनी होयहै" उपगृहीतृ शब्द है जिसका प्रथमा विभक्ति

बहुवचन उपगृहीतारः बनता है जिसका अर्थ उपगृह करनेवाले होता है पं पन्नालालजी दूनीवालोंने इस तत्त्वार्थ राजवार्तिककी टब्बाटीकावार्तिकमें

भाषेहूर इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा किया है अर्थात् उपगृहीतृ=उपकर्ता

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । तद्विपरीता स्थितिः । उपगृह्यत इत्युपग्रहः । गतिश्च स्थितिश्च गतिस्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ [1]धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देशः ॥

वृत्त्यनुवाद—देशान्तर-प्राप्ति हेतुः गतिः॥	=(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद् विपरीता स्थितिः॥	=उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना या थमना)सो स्थिति है
उपगृह्यते। इति॰उपग्रहः ; गतिः च स्थितिः च॰	=सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती ; गति-स्थिती एव॰उपग्रहौ	=सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है । गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थिति-उपग्रहौ ॥	=ये गति-स्थिति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
(1)धर्म-अधर्मयोः इति॰कर्तृ निर्देशः	=(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयोः ऐसा (वाक्य)कर्ताके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारक करनेवाले हैं भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है वरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली प्रेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है।

() यस्य अर्थस्य लिंगं वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व उपकारा स कालः इति अनुमीयते(राजवार्तिक १९७) =जिस द्रव्यका (अर्थ रूप) लक्षण (=लिंग) करके हुये वर्तना परिणाम क्रिया, परत्व अपरत्व उपकार है सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है । यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकारः' अनुवर्तता है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्तना उपग्रह परिणाम उपग्रह क्रिया उपग्रह परत्वउपग्रह, अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचों उपग्रहोंके लिये उपकाराः ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं ।

() जीवपुद्गलानां गतिउपग्रहे कर्तव्ये साधारण-आश्रय धर्मास्तिकाय = गमन करते जो जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विर्षे साधारण आश्रय धर्मद्रव्य है" सर्व॰ सि॰ ४२६ 'उपग्रहे'का अनुवाद 'उपकार विर्षे' ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयोः' वाक्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है । (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अतः 'धर्माधर्मयोः' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पदके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होता है धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता मान लिया जावे । (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति' अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है । सूत्रमें 'उपकार' शब्द भाव साधन है 'उपकरणं' उपकारः यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह(=समासके अर्थ को प्रगट करनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(=व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि 'उपकरणं उपकारः' ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है । इस रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया तो कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया तो धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहेगी तथा उपग्रहमात्र अर्थात्

से) भाव जिनको प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपगृह दुःख उपगृह जीवित उपगृह मरण उपगृह यहां उपगृह विशेष वचन है) पुद्गलोंका प्राणोंके उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (४) कालस्योपग्रहः प्रोक्तो येपूर्ववर्तनादयः। स्यात् पर्योपकारो तस् तस्यानुमितिरिष्यते ॥
=पुनि वे वर्तनादय कालस्य उपग्रहाः प्रोक्ताः स्यात् ते एव उपकार. अतः तस्य अनुमिति इष्यते (२८वां श्लोकतत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ०४१४)
=पुनि जे वर्तना-परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं। वेही उपकार हैं इसलियेउस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)का निर्णय होजाताहै
(घ)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें-जैसे आकाशस्य उपकारःअवगाहः = आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिवृत्तिपृ०२०६
भृत्यानाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंकी(धनादिसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८१
बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा विना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७
स्व उपग्रह प्रदर्शनमर्थम् इदम्-प्रद्गलानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखानेकेलिये है पुद्गलोंकापुद्गलकृत उपकारहै उपगृह्यते है
परस्परस्य-उपग्रहः =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतेहैं
(२) अनुग्रह अनुकूलता-भलाईकेअर्थमें:-जैसे जीवकृत-उपकारप्रदर्शनार्थम्आह=जीवकाकियाहुआ(परस्पर)अनुग्रह-भलाईयाअनुकूलता दिखानेकेलिये
किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः=क्या इतनाही पुद्गलका कियाहुआ अनुग्रह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)
परस्परस्य-उपग्रह =आपसकीभलाई वा अनुग्रह (सर्वार्थ० पृ० २८९)
उपग्रहः =अनुग्रहहै(देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकपृ०२१० वार्तिक४,रा०वा०पृ०४१०)
(३) कारण-निमित्त हेतु प्रत्ययके अर्थ में-जैसे जीवानां सुख दुःख-जीवित-मरण-उपगृहाश्च पुद्गलानां उपकारः (सूत्र २०)
=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण दुःखका निमित्त-जीवनका [illegible] मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २८४)
(ग) उपगृह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुगृहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहमें आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थसिद्धि पृ०२८९)
आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तते हैं (सर्वार्थ सिद्धि पृ० २८९)
() "उपगृह कहिये उपकार वर्ते हैं" अप०प्र०पृ०४१४ () "शरीर वाक् मन तथा प्राण अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपगृह है
"()विष शस्त्र अग्नि आदानि मरणस्य अपवर्तनं आयुष्कस्य" उपकार =तथा विष शस्त्र और अग्निआदि मरणके अर्थात्आयुके अपवर्तन होनेके उपगृह
है"यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है। देखो समाप्य०पृ०१२६)
()उपगृहो निमित्त अपेक्षा-कारण हेतुरित्यनर्थान्तरम् =उपगृह निमित्त अपेक्षा कारण ये सब समानार्थक हैं (देखो समाप्य० पृ०१२५)
लिखा है— "कि सूत्रार्थकूं निमित्त होय ताकूं उपकार कहिये है" वचनिका पृष्ठ ४१४ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०२ सूत्र १९) और उपकारका अर्थ भी निमित्त कारण वचनिका और अर्थ प्रकाशिकामें
()हमारे पास एक अर्थ बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसके ऊपरकेपृष्ठ और अन्य सरनामा भी नहीं है जिसके पत्र५१में पंद्रहवां शब्द उपकारका अर्थ
इसका सहायता लिखा है और इसीसे शब्द उपगृहका अर्थ सूपां सहायता (संयुक्ता भी लिखा है जिसको छोड़देते हैं। लिखा है।
() तत् शरीरादि परिणामैरात्मनां पुद्गलाः उपगृहीतारः इत्युक्तं भवति=तेन शरीरादि परिणामैः आत्मनां पुद्गलाः उपगृहीतारः इति उक्तं भवति
(भा०)भाषाटीकाकरि शरीरादि परिणामकरि आत्माको उपकार करन वारे पुद्गल हैं ऐसैं कह्या होयहै" उपगृहीतृ शब्द है जिसका प्रथमा विभक्ति
बहुवचन उपगृहीतारः बनता है जिसका अर्थ उपगृह करनेवाले होता है पं पन्नालालजी दूनीवालोंने इस तत्त्वार्थ राजवार्तिककी टकासीसभावार्तिकमें
भावेपूर्ण इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा किया है अर्थात् उपगृहीतृ=उपकर्तृ

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गति । तद्विपरीता स्थिति । उपगृह्यत इत्युपग्रह । गतिश्च स्थितिश्च गति-स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ (१)धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देश ॥

शब्दानुवाद—देशान्तर-प्राप्ति हेतु गति	=(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद्-विपरीता स्थिति	=उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना या थमना)सो स्थिति है
उपगृह्यते । इति उपग्रह , गति च स्थिति च	=सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती ; गति-स्थिती एव उपग्रहौ	=सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है । गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थित्युपग्रहौ ॥	=वे गति-स्थिति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)हैं अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
( )धर्म-अधर्मयो इति कर्तृ-निर्देश	=(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयो ऐसा (वाक्य)कर्ताके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारके करनेवाले हैं भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है वरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली प्रेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है ।

() यस्य अर्थस्य क्रियाः वर्तनाः = जिस द्रव्यका (अथ रूप) वर्तन (=क्रिया) करतेहुये वर्तना परिणाम क्रिया, परत्व अपरत्व उपकारः स कालः इति अनुमीयते(राजवार्तिक ५२८) = उपकार हैं सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है । यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकारः' अनुवर्तता है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्तना उपग्रह परिणाम उपग्रह क्रिया उपग्रह परत्वउपग्रह, अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचों उपग्रहोंके लिये 'उपकाराः' ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं ।

() जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे कर्तव्ये साधारण- = गमन करते जु जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषें साधारण आश्रय धर्मास्तिकाय = आश्रय धर्मद्रव्य है" अष० प्र० ५४६ 'उपग्रहे'का अनुवाद 'उपकार विषें' ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयोः' वाक्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है । (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अतः 'धर्माधर्मयोः' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पदके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होता है धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म अधर्म)को कर्ता मान लिया जावे । (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति'अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है । सूत्रमें'उपकार' शब्द भाव साधन है 'उपकरण उपकारः' यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह(= समासके अर्थ को प्रगट करनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(= व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि'उपकरण उपकारः' ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है । इस रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया तो कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया तो धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहैगी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

स) जीव विनाकी प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपग्रह दुःख उपग्रह जीवित उपग्रह मरण उपग्रह यहां उपग्रह विशेष वचन है) पुद्गलोंका जीवोंके उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (५) कालस्योपग्रहो मोक्ता येपुनर्वर्तनादयः । स्यात्तु पर्यायोपकारो तस्य तस्यानुमितिरिष्यते ॥

=पुनि जे वर्तनादय कालस्य उपग्रहो मोक्ता स्यात् ते एव उपकार. तस्मात् तस्य अनुमिति इष्यते (२८वां श्लोकतत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४१४)

=पुनि जे वर्तना-परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं । वेही उपकारहैं इसलियेइस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)कानिर्णय होजाताहै

(ख)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें -जैसे आकाशस्य उपकार:अवगाह =आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिवचनिकापृ०२०६

मस्वामाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंकी(धनादिसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८६

बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा विना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७

एव उपग्रह-प्रदर्शनपरम् इदम् पदुगलानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखानेकेलियेकि पुद्गलोंकापुद्गलकृत उपकारहै उपग्रहकायेहैं

परस्परस्य उपग्रहः =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतेहैं

(२) अनुग्रह अनुकूलता भलाईकेअर्थमें-जैसे जीवकृत उपकारप्रदर्शनार्थमाह=जीवकाकियाहुआ(परस्पर)अनुग्रह भलाईवाअनुकूलता दिखानेकेलिये

किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः=क्या इतनाही पुद्गलका कियाहुआ अनुग्रह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)

परस्परस्य-उपग्रह =आपसकीभलाई वा अनुग्रह (सर्वार्थ० पृ० २८६)

उपग्रहः =अनुग्रहहै(देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकपृ०२१० वार्तिक१,श्लो०वा०पृ०४१०)

(१) कारण-निमित्त हेतु प्रत्ययके अर्थ में-जैसे जीवानां सुख दुःख-जीवित-मरण-उपग्रहाश्च पुद्गलानां उपकारः (सूत्र २०)

=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण दुःखका निमित्त-जीवनका हेतु-मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति प० २८४)

(ग) उपग्रह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुग्रहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहमें आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थसिद्धि पृ०२८६)

आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तते हैं (सर्वार्थ सिद्धि प० २८६)

() "उपग्रह कहिये उपकार वर्ते हैं" अर्थप्रका०पृ०४१४ () 'शरीर वाक् मन तथा प्राण अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपग्रह है

"()विष शस्त्र अग्नि आदीनि मरणस्य अपवर्तन कायुष्कस्य" उपकार =तथा विष,शस्त्र और अग्निआदि मरणके अर्थात्आयुके अपवर्तन होनेके उपग्रह

हैं"यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है । देखो समाप्य०पृ०१२६)

()उपग्रहो निमित्त अपेक्षा-कारणं-हेतुरित्यनर्थान्तरम्।" =उपग्रह निमित्ति अपेक्षा कारण ये सब समानार्थक हैं (देखो समाप्य० पृ०१२५)

और उपकारका अर्थ भी निमित्त कारण पचमिका और अर्थ प्रकाशिकामें

लिखा है—"कि सूत्रार्थकूं निमित्त होय ताकूं उपकार कहिये है पचमिका पृष्ठ ४१४ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १०१ सूत्र १९)

()हमारे पास एक अत्यन्त बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसमें ऊपरकेपृष्ठ और अन्य संख्यामा भी नहीं है जिसके पत्र२६में पंद्रहवां शब्द उपकारका अर्थ

इस सहायता लिखा है और इसीसे शब्द उपग्रहका अर्थ तथा सहायता (बंधुता भी लिखा है जिसको छोड़देते हैं) लिखा है।

() तत शरीरादि परिणामैरमनां पुद्गलाः उपग्रहीतारः इत्युक्तं भवति=तेन शरीरादि परिणामैः आत्मनां पुद्गलाः उपग्रहीतारःइति उक्तं भवति

(अर्थ)आकारमकरि शरीरादि परिणामकरि आत्माका उपकार करने वाले पुद्गल हैं ऐसैं कह्यौ होयहै" उपग्रहीतृ शब्द है जिसका प्रथमा विभक्ति बहुवचन उपग्रहीतारः बनता है जिसका अर्थ उपग्रह करनेवाले होता है पं०पन्नालालजी दूनीवालोंने इस तत्त्वार्थ राजवार्तिककी टब्बाकीसवार्तिकमें भाषेरूप इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा लिखा है अर्थात् उपग्रहीतृ=उपकर्ता

उपक्रियत इत्युपकार । क पुनरसौ? गत्युपग्रह स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देश प्राप्नोति? नैष दोष । सामा येन व्युत्पादित उपात्तसंख्य शब्दान्तरसम्बधे सत्यपि न पूर्वोपात्ता सख्या जहाति ॥ यथा-साधो कार्य तप श्रुते इति ॥

उपक्रियते।इति॥उपकारः॥पुन॥असौ॥कः॥ =उपकार कियाजाता है या सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है। और यह(उपकार)क्याहै

गति उपग्रहः॥च॥स्थिति-उपग्रहः॥यदि॥एवम्॥ =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है। (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देशः॥ प्राप्नोति॥ =दो वचनका निरूपण या कथन(उपकार शब्दके)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें आना था तब'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होता ॥

न॥एषः॥दोष॥सामान्येन॥व्युत्पादितः॥ =(ऊपर)यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्यः॥शब्दान्तर-सम्बन्धे॥सति॥अपि॥ =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहो के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

न॥पूर्व-उपात्ताम्॥संख्याम्॥जहाति॥ =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रहे' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्म,द्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तो भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहो शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारो (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन् उपकार ऐसाही रहता है ॥ ('हा' धातु पर देखो टिपणी पृष्ठ ४६)

यथा॥साधोः॥कार्यम्॥तपःश्रुते॥इति॥ =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढ़ना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम्' शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्य शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै। जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्य शब्द) द्विवचन नहीं हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और वह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो बातोंका द्योतक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है॥

धर्म और अधर्मके द्वारा जिसका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहेगी अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पड़ेगा और कर्म साधन उपग्रहका आधार जीव और पुद्गल पड़ेंगे इसलिये उपकार और उपग्रह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें वृत्ति रहनेसे उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जायगा कि 'उपक्रियते इत्युपकारः' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपर्युक्त दोष नहीं होसकता ? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपग्रह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण सा हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी समान रहते हैं। यदि उपग्रह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध माना जायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपग्रह पदका उल्लेख कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दकाही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधनभी नहीं मानाजासकता इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं ? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे ग्रहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनांत ग्रहण करनेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधोः कार्यं तपःश्रुते' वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो अर्थ साधुके हैं। यहां तप और श्रुतदोनोंको कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्य का आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और 'तपःश्रुते' शब्दका द्विवचनमें ग्रहण है इसलिये यहांपर भी यह शंका रहती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य संबन्ध है तब जिस प्रकार 'तपःश्रुत' शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दभी द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एक वचनांत कार्यका उल्लेख यहां असंगतहित है। उसका समाधान यहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका प्रयाग उपर्युक्त वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एक वचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही तीन आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्य रूपसे कहगये पदके वचनके पलटनेकी आवश्यकता पड़े तो भी वहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता'कार्यं तप श्रुते' यहांपर एक वचनान्त कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तप श्रुत शब्द उसका विशेषणहोनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे ग्रहण होनेके कारण वहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहींहोता उसीप्रकार उपकार शब्दकाभीसामान्यरूपसे एकवचनमें उल्लेखकियागयाहै इसलिये पीछेसेउसकाउपग्रहविशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दके एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अतःसूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द आया यथार्थ होहै।अथवा जिस प्रकार 'उपकरणं उपकारः' इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी।प्रकार उपग्रहणं उपग्रहः इस प्रकार उपग्रहशब्द भी भाव साधन है इसलिये गतिस्थित्योरुपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहाविति जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कह आये हैं उसके माननेमें भी कोई दोषनहीं तथा उपग्रह और उपकार शब्दका भावसाधन मानने पर गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपग्रहअधर्मद्रव्यकाउपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपग्रह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है। (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपग्रह' शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपग्रहौ के स्थानमें उपग्रह एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्यें भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपग्रह करना भी भिन्नभिन्न हैं। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकारहै और स्थितिमेंउपग्रहकरना अधर्मद्रव्यका उपकारहैइसकारणसेउपग्रहौद्विवचन हैदोनो जैसे पृथिवी आदि [illegible] अधर्मद्रव्य दोनोंही जीवपुद्गल गमन और स्थितिमें उपकारी पड़ती।

उपक्रियत इत्युपकार । क पुनरसौ? गत्युपग्रह स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येव द्वित्वनिर्देश प्राप्नोति? नैष दोष । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्य शब्दान्तरसम्बधे सत्यपि न पूर्वोपात्ता सख्या जहाति ॥ यथा-साधो कार्यं तप श्रुते इति ॥

उपक्रियते। इति॰उपकार॥ पुन॰असौ॥ कः॥ =उपकार कियाजाता है या सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है। और यह(उपकार)क्या है

गति-उपग्रह॥ च॰स्थिति-उपग्रह॥ यदि॰एवम्॰ =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है। (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देश॥ प्राप्नोति? =दो वचनका निरूपण या कथन(उपकार शब्दको)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना था यह 'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होता ॥

न॰एष॥ दोष॥ सामान्येन॥ व्युत्पादित॥ =(उत्तर)यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्य॥ शब्दान्तर-सम्बन्धे॥ सति॥ अपि॰ =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहों के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

न॰पूर्व-उपात्ताम्॥ संख्याम्॥ जहाति॥ =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तो भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहो शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारौ (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन् उपकार ऐसाही रहता है ॥ ('हा' धातु पर देखो टिप्पणी पृष्ठ ५६)

यथा॰साधो॥ कार्यम्॥ तप॥ श्रुते॥ इति॰ =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढ़ना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम्' शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्य शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै। जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्य शब्द) द्विवचन नहीं हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और वह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो बातोंका बोधक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है॥

धर्म और अधर्मके द्वारा जिसका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहेगी अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पड़ेगा और कर्म साधन उपग्रहका आधार जीव और पुद्गल पड़ेंगे इसलिये उपकार और उपग्रह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें वृत्तिरहनेसे उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जायगा कि 'उपक्रियते इत्युपकारः' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपर्युक्त दोष नहीं होसकता ? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपग्रह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण तो हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी समान रहते हैं। यदि उपग्रह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध मानाजायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपग्रह पदका उल्लेख कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दकाही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधनभी नहीं मानाजासका इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं ? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे ग्रहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनांत ग्रहण करनेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधो-कार्यं तपःश्रुते' वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो कार्य साधुके हैं। यहां तप और श्रुतदोको कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्य का आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और'तपःश्रुते शब्दका द्विवचनमें ग्रहण है इसलिये यहांपर भी यह शंका उठती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य संबन्ध है तब जिस प्रकार 'तपःश्रुते शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दभी द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एक वचनांत कार्यका उल्लेख यहां असंगतरहित है। उसका समाधान वहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका प्रयोग उपर्युक्त वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एक वचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही दोय आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्य रूपसे कहनेमें पदके वचनके पलटनेकी आवश्यकता पड़े तो भी वहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता'कार्य तपःश्रुते यहांपर एक वचनांत कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तप श्रुत शब्द उसका विशेषणहोनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे उल्लेख होनेके कारण वहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीहोता उसीप्रकार उपकार शब्दकाभीसामान्यरूपसे एकवचनमें उल्लेखकियागयाहै इसलिये पीछेसेउसकाउपग्रहविशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दके एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अतःसूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द आया यथार्थहा होहै।अथवा जिस प्रकार 'उपकरणं उपकारः' इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी।प्रकार उपग्रहणं उपग्रहः इस प्रकार उपग्रहशब्द भी भाव साधन है इसलिये गतिस्थित्योरुपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहाविति' जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कह आये हैं उसके माननेमें भी कोई दोषनहीं तथा उपग्रह और उपकार शब्दका भावसाधन मानने पर गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपग्रहअधर्मद्रव्यकाउपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपग्रह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है। (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपग्रह शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपग्रहौ के स्थानमें उपग्रह एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्य भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपग्रह करना भी भिन्नभिन्न हैं। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकारहै और स्थितिमेंउपग्रहकरना अधर्मद्रव्यका उपकारहैइसभेदकोबतानेकेलिये उपग्रहौ द्विवचन दियाहै जैसे पृथिवी आदि वैभाविक गमनस्थितिमें सहकारी है वैसेही धर्मका अधर्मद्रव्य दोनोंके स्वाभाविक गमन और स्थितिमें उपकारी जानना।

उपक्रियत इत्युपकार । क पुनरसौ? गत्युपग्रह स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देश प्राप्नोति? नैप दोप । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्य शब्दान्तरसम्बधे सत्यपि न पूर्वोपात्तां संख्यां जहाति ॥ यथा-साधो कार्यं तप श्रुते इति ॥

उपक्रियते।इति॰उपकार॰।पुन॰असौ॰कः॰ =उपकार कियाजाता है या सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है। और यह(उपकार)क्याहै

गति-उपग्रह॰।च॰स्थिति-उपग्रह॰।यदि॰एवम्॰ =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है। (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देश॰। प्राप्नोति ! =दो वचनका निरूपण या कथन(उपकार शब्दको)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें जाना था तब'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होता ॥

न॰एप॰।दोप॰।सामान्येन॰।व्युत्पादित॰। =(उत्तर)यह दूपण नहीं है। (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्य॰।शब्दान्तर-सम्बन्धे॰।सति॰।अपि॰ =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहो के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

न॰पूर्व-उपात्ताम्॰।संख्याम्॰।जहाति॰ =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्म-द्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तो भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहो शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारो (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन उपकार ऐसाही रहता है ॥ ('हा' धातु पर देखो टिपणी पृष्ठ ४६)

यथा॰साधो॰।कार्यम्॰।तप॰श्रुते॰।इति॰ =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम् शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्यं शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै। जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्यं शब्द) द्विवचन नहीं हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और यह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो बातोंका द्योतक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है॥

धर्म और अधर्मके द्वारा जिनका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहती अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पड़ेगा और कर्म साधन उपग्रहका आधार जीव और पुद्गल पड़ेंगे इसलिये उपकार और उपग्रह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें वृत्तिरहनेसे उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जायगा कि 'उपक्रियते इत्युपकारः' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपर्युक्त दोष नहीं होसकता? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपग्रह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण तो हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी समान रहते हैं। यदि उपग्रह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध मानाजायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपग्रह पदका उल्लेख कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दकाही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधनभी नहीं मानाजासकता इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे ग्रहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनांत ग्रहण करलेनेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधोः कार्यं तपःश्रुते' वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो कार्य साधुके हैं। यहां तप और शास्त्रोंको कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्य का आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और 'तपःश्रुते' शब्दका द्विवचनमें ग्रहण है इसलिये यहांपर भी यह शंका उठती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य संबन्ध है तब जिस प्रकार 'तपःश्रुते' शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दभी द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एक वचनांत कार्यका उल्लेख यहां असंबन्धित है। इसका समाधान यहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका प्रधान रूपसे वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एक वचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही लीन आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्य रूपसे कहेगये पदके वचनके पलटनेकी आवश्यकता पड़े तो भी यहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता 'कार्यं तपःश्रुते' यहांपर एक वचनान्त कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तपःश्रुत शब्द उसका विशेषण होनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे उल्लेख होनेके कारण यहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होता उसीप्रकार उपकार शब्दकाभीसामान्यरूपसे एकवचनमें ग्रहणकियागया है इसलिये पीछेसेउसकाउपग्रहविशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दमें एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अतःसूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द आया वह ठीक है। अथवा जिस प्रकार उपकरणं उपकारः इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी प्रकार 'उपग्रहणं उपग्रहः' इस प्रकार उपग्रहशब्द भी भाव साधन है इसलिये गतिस्थित्योरुपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहाविति' जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कह आये हैं उसके माननेमें भी कोई दोषनहीं तथा उपग्रह और उपकार शब्दका भावसाधन माननेपर गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपग्रहअधर्मद्रव्यकाउपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपग्रह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है। (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपग्रह' शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपग्रहौ के स्थानमें उपग्रहः एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्यें भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपकार करना भी भिन्नभिन्न है। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकारहै और स्थितिमेंउपग्रहकरना अधर्मद्रव्यका उपकारहैइसभेदजतानेकोउपग्रहौद्विवचन दियाहै जैसे पृथिवी, जल वैशेषिकके मतानुसार गति और स्थितिमें सहकारी हैं वैसेही धर्म और अधर्मद्रव्य दोनोंसे कोईएक गमन और स्थितिमें सहकारी नहीं।

निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनम् । धर्माधर्मयोर्गतिस्थित्योश्च यथासंख्यं भवति, एवं जीवपुद्गलाना यथासंख्यं प्राप्नोति धर्मस्योपकारो जीवानां गति अधर्मस्योपकार पुद्गलानां स्थितिरिति । तन्निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनं क्रियते ॥ आह धर्माधर्मयोर्य उपकार स आकाशस्य युक्त सर्वगतत्वादिति चेत्—तदयुक्त, तस्यान्योपकारसद्भावात् सर्वेषा धर्मादीना द्रव्याणामवगाहन यत्प्रयोजनम् । एकस्यानेकप्रयोजनकल्पनाया लोकालोकविभागाभाव ॥

निवृत्ति-अर्थम् उपग्रह-वचनम् धर्म	=निषेधके लिये उपग्रहका कथन (इस सूत्रमें) है धर्मद्रव्य
अधर्मयोः गति-स्थित्योः च यथासंख्यम् भवति	=अधर्मद्रव्यमें और गतिस्थितिमें यथासंख्य सम्बन्ध होजाता है अर्थात् धर्मद्रव्य का गमनसे सम्बन्ध होजाता है और अधर्मद्रव्यका स्थितिसे सम्बन्ध होजाता है
एवम् जीव-पुद्गलानाम् यथासंख्यम् प्राप्नोति	=इस प्रकार जीवों और पुद्गलोंका(भी) यथासंख्य(क्रम)प्राप्त होता है
धर्मस्य उपकारः जीवानाम् गतिः अधर्मस्य	=(तब)धर्मद्रव्यका उपकार जीवोंका गमन अधर्मद्रव्यका
उपकारः पुद्गलानाम् स्थितिः इति तत् निवृत्ति-अर्थम्	=उपकार पुद्गलोंकी स्थिति ऐसा अर्थ होजाता है, उसके निषेधके लिये (इस सूत्रमें)
उपग्रह-वचनम् क्रियते; आह धर्म अधर्मयोः यः	=उपग्रह वचन किया है (शिष्य) कहता है कि धर्म अधर्म द्रव्योंका जो
उपकारः सः आकाशस्य युक्तः सर्व-गतत्वात्	=उपकार है सो(उपकार)आकाशके युक्त है क्योंकि (आकाश) सर्वत्र व्यापी है
इति चेत् तत् अयुक्तम् तस्य अन्य-उपकार	ऐसी शंका है(उत्तर)सो ठीक नहीं है क्योंकि तिस (आकाशके) दूसरे उपकारकी
सद्भावात्, सर्वेषाम् धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्	=विद्यमानता है (अर्थात्) समस्त धर्मादिक द्रव्योंको
अवगाहनम् तत् प्रयोजनम्	=स्थान दान देना वा अवकाश दान देना उस(आकाश)का प्रयोजन है
एकस्य अनेक प्रयोजन-कल्पनायाम्	=एक (आकाश)के अनेक प्रयोजन माननेमें
लोक-अलोक विभाग अभावः	=लोक अलोकके विभागका अभाव होता है । भावार्थ—यह है कि इस प्रश्नके होनेपर कि गमन और ठहरावका उपकार धर्म अधर्म द्रव्योंका न होना चाहिये

किन्तु आकाश जो सर्वत्र व्यापक है गतिस्थितिका उपकारी है उधर में आचार्य्य कहते हैं कि आकाशका असाधारण गुण द्रव्योंको स्थान दान देनेका है यदि उसका कोई दूसरा उपकार कल्पना करते हैं तो लोक अलोक का विभाग

एतदुक्तं भवति—गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे कर्तव्ये धर्मास्तिकायः साधारणाश्रयो जलवत् मत्स्यगमने ॥ तथा स्थितिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां स्थित्युपग्रहे कर्तव्ये अधर्मास्तिकायः साधारणाश्रयः पृथिवीधातुरिवाश्वादिस्थिताविति ॥ ननु च उपग्रहवचनमनर्थकमुपकार इत्येव सिद्धत्वात् । गतिस्थिती धर्माधर्मयोरुपकार इति ॥ नैष दोषः याथासंख्य-

एतत्¹ उक्तम्² भवति³ गतिपरिणामिनाम्⁴ जीवपुद्गलानाम्⁵ गति उपग्रहे⁶ कर्तव्ये⁷ धर्म	=यह कथन का अर्थ होता है कि गमनमें परिणमन होनेवाले, गमनकरनेवाले =जीव पुद्गलोंके गमनके उपकार करनेमें धर्म
अस्तिकायः⁸ साधारण-आश्रयः⁹	(जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-पांच अस्तिकायोंमेंसे एक है) =बहुत प्रदेशवाली या बहु प्रदेशीद्रव्य(=अस्तिकाय)है साधारण आधार है
जलवत् मत्स्य-गमने¹⁰ तथा स्थिति-परिणामिनाम्¹¹ जीव-पुद्गलानाम्¹² स्थिति-उपग्रहे¹³ कर्तव्ये¹⁴(१) अधर्म	=जैसे जल मछलीके चलनेमें है वैसेही =(तथा)ठहरनेमें परिणमन होनेवाले =जीव पुद्गलोंके स्थितिके कारण कर्तव्यमें अधर्मद्रव्य
अस्तिकायः¹ साधारण आश्रयः² पृथिवी³ धातुः⁴ इव अश्वादिस्थितौ⁵ इति ॥ ननु च उपग्रह-वचनम्¹ अनर्थकम्² उपकार इति एवम् सिद्धत्वात्³ गतिस्थिती⁴ धर्म अधर्मयोः⁵ उपकारः⁶ इति ॥ न एषः दोषः याथासंख्य-	(जो जीव-पुद्गल-धर्म अधर्म-आकाश पांच आस्तिकायोंमें से एक है) =अस्तिकाय अर्थात् बहुप्रदेशी द्रव्य है साधारण या सामान्य आश्रय है =जैसे(=इव)पृथिवी आधार घोड़ा आदिकके ठहरनेमें है ॥ =पुनि प्रश्न (इस सूत्रमें)उपग्रह शब्द)का कथन(=वचन)निष्प्रयोजन है =क्योंकि (धर्म-अधर्मका) उपकार या सहायता सूत्रकी रचनासे सिद्ध होजाती है कि =गति-स्थिति धर्म अधर्मका उपकार है । ऐसा(अर्थ) हुआ ॥ =(उत्तर)यह दोष नहीं है(क्योंकि)यथासंख्यपनाके (=यहिलेको पहला दूसरेको दूसरा)

(१) (अश्वादि स्थिती, इत्यपि साधारणम् इति अर्थ =घोड़ा आदिकके ठहरनेमें पृथिवीके आधारके सदृश है ऐसा तात्पर्य है (२,अश्वादि स्थिताविति ३)= जो (अपने ऊपर) रखता है या धारण करता है ऐसा धातु है आधार ऐसा अभिप्राय (धातु शब्दका) है । अर्थात् जो धारण करता है या धारण करके रखता वह अर्थ "पृथिवीधातुरिवाश्वादि" [illegible] (२) "आधारांतर्गत"का यही अर्थ है और "अश्वादिस्थित" [illegible] है ॥

अनुपलब्धेर्न तौ स्त खरविषाणवदिति चेन्न—सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्ते । सर्वे हि प्रवादिन प्रत्यक्षाप्रत्यक्षानर्थानभिगाञ्छन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च ।

अनुपलब्धेः॥ तौ॥ स्त खरविषाणवत्॥ इति॥ चेत्॥	=क्या आंखकरि न दीखनेसे धर्म-अधर्म)ये दोनों(द्रव्यें)गधाके सींगके सदृश नहीं है =ऐसी शंका है अर्थात् जैसे संसारमें गधा(वा शश-खरहा)के सींगोंकी कल्पना है विद्यमानता नहीं है क्योंकि किसीने अपनी आंखोंसे नहीं देखे हैं वैसही धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य केवल कल्पनामात्रमें वास्तविक वा यथार्थमें उनका कोई अस्तित्व नहीं है ऐसी शंका है ॥
न॥	=(उत्तर) (ऐसा संदेह कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नत्रोंसे न दीखनेसे गधाके सींगके तुल्य कल्पित द्रव्य हैं) नहीं (होना चाहिये)
सर्व (२)प्रवादि अविप्रतिपत्ते ॥	=क्योंकि(एसे अस्तित्वमें)सब प्रतिवादियोंको (हमारे साथ) अविरोध (=विवाद नहीं) है
सर्वे॥ हि॥ (२)प्रवादिन॥ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षान्॥	=समस्त ही (=हि) अन्य मातावलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष
अर्थान्॥ अभिगच्छन्ति॥ अस्मान्॥ प्रति॥	=पदार्थोंको मानते हैं हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर
हेतो॥ असिद्धे॥ च॥	=(तुम्हारे इस) साधनकी (कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं) सिद्ध भी नहीं है ॥ भावार्थ यह है कि हम स्याद्वादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि धर्म,अधर्मद्रव्यें अनुपलब्ध हैं उनका अस्तित्व गधेके सींग सदृश है निम्नलिखित कारणसे लागू नहीं है

(१) संसारमें चार वस्तुयें (क) खर अथवा शशविषाण (ख) बांझ स्त्रीका पुत्र (ग) मृगतृष्णा (घ) आकाशका फूल ये विद्यमान नहीं हैं । जब किसी वस्तुके अभावको प्रगट करना होता है तब इन चार पदार्थोंसे प्रायः एक वा दोका नाम लेते हैं । ये चारों वस्तुयें निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट हैं

एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखर । मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः ॥ १ ॥

एष ॥ वन्ध्यासुत ॥ याति ॥ (एषः) ख पुष्प-कृत-शेखर ॥ =यह बांझ स्त्रीका पुत्र आता है । यह आकाशके फूलोंकी बनाई हुई शिखा वा चोटी है (एष) मृगतृष्णा अम्भसि ॥ स्नात ॥ (एषः) शशशृङ्ग-धनुर्धर ॥ =यह मृगतृष्णाके नीर(धूपमें जलभ्रान्ति)में नहाया हुआ है यह खरके सींगके धनुषका धारी है

(२) प्रथम वारकी छपी हुई सर्वार्थसिद्धिमें प्रतिवादिन्' शब्द इन दो स्थानोंपर है परन्तु द्वितीय संस्करणमें और तीन हस्तलिखित प्रतियों में 'प्रवादिन' शब्दका दोनों स्थानोंमें प्रयोग किया गया है । दोनों शब्दोंका लगभग एकही अर्थ है हमने प्रवादिन्'का' प्रयोग किया है क्योंकि ये पाठ बहुतसी प्रतियोंमें पाये जाते हैं ॥

भूमिजलादीन्येव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्माधर्माभ्यामिति चेन्न—साधारणाश्रय इति विशिष्योक्तत्वात् । अनेककारणसाध्यत्वाच्चैकस्य कार्यस्य ॥ तुल्यबलत्वात्तयोर्गतिस्थितिप्रतिबन्ध इति चेन्न—अप्रेरकत्वात् ॥

नहीं होसकता है क्योंकि ठहराने और गमन करने में सहायक होना यदि ये कार्य आकाशके माने जावेंगे तो आकाश तो अलोकाकाशमें भी है सो वहांपरभी जीवपुद्गल गति और स्थिति करसकेंगे अतः लोक अलोकके विभागका लोप होजावेगा ॥

भूमि जलादीनि।। एव।। तत्-प्रयोजन समर्थानि।। = भूमि जलादिक ही उस (गति स्थिति) के प्रयोजनके लिये समर्थ हैं तो
न अर्थः।। धर्म-अधर्माभ्याम्।। इति।। चेत्।। न।। = धर्म, अधर्म द्रव्योंसे प्रयोजन नहीं ऐसी शंका है। यह शंका नहीं होनी चाहिये
साधारण = (धर्म अधर्म द्रव्यें सब जीव पुद्गलोंको एक कालमें गतिस्थितिका) साधारण
आश्रयः।। इति।। = आश्रय हैं (क्योंकि किसी किसी द्रव्यके एक एक प्रयोजनके सम्बन्धमें जल पृथिवी आदि गमन स्थिति आदि उपकार करनेमें)
विशिष्य उक्तत्वात्।।। च।। एकस्य।।। कार्यस्य।।। अनेक = विशेष आश्रयरूप कहे जाते हैं। और (=च) एक कार्यको अनेक
कारण-साध्यत्वात्।।, = कारण सिद्धि करने योग्य या साधनीय हैं अर्थात् एक कार्यको अनेक कारण साधते हैं सो यहां स्थितिमें पृथिवी भी कारण है और अधर्मद्रव्य भी कारण है
तुल्य-बलत्वात्।।। तयोः।। गति-स्थिति प्रतिबन्धः।। = (धर्म अधर्मद्रव्यें) समान बलवान होनेसे तिन दोनोंमें गतिस्थितिका विरोध होगा
इति।। चेत्।। = ऐसी शंका है अर्थात् जब धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनों समान बलवाले हैं सो जिस काल धर्मद्रव्य जीव पुद्गलोंको गमन कराती होगी उसीसमय अधर्मद्रव्य स्थिति कराती होगी तब गमन स्थिति दोनोंकी रोक होती होगी ॥
न।। = सो नहीं ।(धर्मद्रव्य जीवपुद्गलोंके गतिके निमित्त अधर्मद्रव्य उनकी स्थितिकेहैंसो)
अप्रेरकत्वात्।।। = अप्रेरक या बलाधान मात्रसे है अर्थात् यदि जीव पुद्गल चलें तो धर्मद्रव्य उदासीनतासे चलनेमें निमित्त होती है और यदि ठहरें तो ऐसेही अधर्म द्रव्य स्थितिमें कभी प्रेरणा न करें कि अमुक जीव पुद्गल चलें अमुक ठहर रहें ॥

अनुपलब्धेर्न तौ स्तः खरविषाणवदिति चेन्न—सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्तेः । सर्वे हि प्रवादिनः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षानर्थानभिवाञ्छन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च ।

अनुपलब्धेः । न । तौ । (१) खरविषाणवत् । न । स्तः । इति । चेत् ।	=क्या आंखकरि न दीखनेसे धर्म-अधर्म) ये दोनों (द्रव्य) गधाके सींगके सदृश नहीं है =ऐसी शंका है अर्थात् जैसे संसारमें गधा (वा शशा-खरहा)के सींगोंकी कल्पना है विद्यमानता नहीं है क्योंकि किसीने अपनी आंखोंसे नहीं देखे हैं वैसेही धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य केवल कल्पनामात्र हैं वास्तविक वा यथार्थमें उनका कोई अस्तित्व नहीं है ऐसी शंका है ॥
न ।	=(उत्तर) (ऐसा संदेह कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नेत्रोंसे न दीखनेसे गधाके सींगके तुल्य कल्पित द्रव्य हैं) नहीं (होना चाहिये)
सर्व (२) प्रवादि अविप्रतिपत्तेः ।	=क्योंकि (ऐसे अस्तित्वमें) सब प्रतिवादियोंको (हमारे साथ) अविरोध (=विवाद नहीं) है
सर्वे । हि । (२) प्रवादिनः । प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षान् ।	=समस्त ही (=हि) अन्य मतावलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष
अर्थान् । अभिवाञ्छन्ति । अस्मान् । प्रति ।	=पदार्थोंको मानते हैं हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर
हेतोः । असिद्धेः । च ।	=(तुम्हारे इस) साधनकी (कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं) सिद्ध भी नहीं है ॥ भावार्थ यह है कि हम स्याद्वादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि धर्म, अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं उनका अस्तित्व गधेके सींग सदृश है निम्नलिखित कारणसे लागू नहीं हैं

(१) संसारमें चार वस्तुयें (क) खर अथवा शशविषाण (ख) बांझ स्त्रीका पुत्र (ग) मृगतृष्णा (घ) आकाशका फूल ये विद्यमान नहीं हैं । जब किसी वस्तुके अभावको प्रगट करना होता है तब इन चार पदार्थोंसे प्रायः एक या दोका नाम लेते हैं । ये चारों वस्तुयें निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट हैं

"एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखरः । मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः ॥ १ ॥

एष । वन्ध्यासुतः । याति । (एषः) । ख पुष्प-कृत-शेखरः । =यह बांझ स्त्रीका पुत्र जाता है । यह आकाशके फूलोंकी बनाई हुई शिखा वा चोटी है (एष) मृगतृष्णा अम्भसि । स्नातः । (एषः) शशशृङ्ग-धनुर्धरः । =यह मृगतृष्णाके नीर (मृगमें जलभ्रान्ति) में नहायाहुआहै यह खरके सींगका धनुषधारी है

(२) प्रथम बारकी छपी हुई सर्वार्थसिद्धिमें प्रतिवादिन् शब्द इन दो स्थानोंपर है परन्तु द्वितीय संस्करणमें और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'प्रवादिन्' शब्दका दोनों स्थानोंमें प्रयोग किया गया है । दोनों शब्दोंका लगभग एकही अर्थ है हमने प्रवादिन्का प्रयोग किया है क्योंकि ये पाठ बहुतसी प्रतियोंमें पाये जाते हैं ॥

सर्वज्ञेन निरतिशयप्रत्यक्षज्ञानचक्षुषा धर्मादयः सर्वे उपलभ्यन्ते। तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि॥ अत्राह यद्यतीन्द्रिययोर्धर्माधर्मयोरुपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवधार्यते, तदनन्तरमुद्दिष्टस्य नभसोऽतीन्द्रियस्याधिगमे क उपकार इत्युच्यते—

॥ आकाशस्यवगाह ॥ १८ ॥

सर्वज्ञेन। निरतिशय प्रत्यक्षज्ञान-चक्षुषा।	=सर्वज्ञके परमोत्कृष्ट (=निरतिशय) प्रत्यक्ष(केवल)ज्ञानरूपी नेत्रेन्द्रियकरि
धर्मादयः। सर्वे। उपलभ्यन्ते। च तद्	=धर्मादिक समस्त (द्रव्यों) जानी गई हैं और उस (सर्वज्ञ) के
उपदेशात्। श्रुतज्ञानिभिः। अपि। अत्र आह।	=उपदेशसे श्रुतज्ञानियोंकरिभी (जानी गई) हैं। यहां पूछता है कि
यदि अतीन्द्रिययोः। धर्म-अधर्मयोः। उपकार	=यदि धर्म अधर्मद्रव्योंकी (जो इन्द्रियोंसे नहीं जानेजासकते हैं) उपकारके
सम्बन्धेन। अस्तित्वम्। अवधार्यते। तदनन्तरम्	=संयोगसे विद्यमानता निश्चय कीजाती है तो उन(धर्म अधर्म)के अत्यन्त समीप
उद्दिष्टस्य। नभसः। अतीन्द्रियस्य। अधिगमे	=कथित इन्द्रिय अगोचर आकाशके जानने में
कः। उपकारः। इति। उच्यते।	=क्या उपकार वा सहायता है इस हेतुसे(=इति)(उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रम्—(2) आकाशस्यावगाह ॥१८॥ = (जीवानाम्-अजीवानाम् च)आकाशस्य(उपकार)अवगाह

सूत्रार्थ —जीवानाम्। च अजीवानाम्। आकाशस्य।	=जीवोंको और अजीवोंको आकाश द्रव्यका
उपकारः। अवगाहः।	=उपकार, सहारा, अथवा सहायता, अवकाशदान देना वा स्थानदान देना है अर्थात् समस्त जीव और अचेतन द्रव्योंको स्थानदान देना आकाशका उपकार है

(1) "अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः" इस प्रथम सूत्रमें धर्मअधर्मके समीपही आकाश द्रव्यका कथन है इसलिये अग्रिम सूत्रमें आकाशका उपकार कहते हैं।

(2) "इति हेतु प्रकरण प्रकाशादि-समाप्तिषु" अमरकोश नानार्थ वर्ग श्लोक [illegible] 'इति' यह पद नाम हेतु प्रकरण-प्रकाश निदर्शन समाप्ति इत्यादि अर्थ है यहां पर हेतु अथवा कारणके अर्थमें लिया है इससे 'इति'का अनुवाद 'इस हेतुसे' ऐसा किया गया है।

(3) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। "अजीवानाम्" शब्दका अध्याहार कियागया है। 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति इस अध्यायके [illegible] सूत्रसे कीगई है और 'च' शब्दकी [illegible] सूत्रसे कीगई है। उपकार शब्दकी [illegible] सूत्रसे अनुवृत्ति है।

उपकार इत्यनुवर्तते ॥ जीवपुद्गलादीनामवगाहिनामवकाशदानमवगाह आकाशस्योपकारो वेदितव्य ॥ आह जीवपुद्गलाना क्रियावतामवगाहिनामवकाशदानं युक्तम् । धर्मास्तिकायादय पुनर्निष्क्रिया नित्यसम्बन्धास्तेषां कथमवगाह इति चेन्न–उपचारतस्तत्सिद्धे । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् एवं धर्माधर्मावपि अवगाहक्रियाभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनादवगाहिनावित्युपचर्येते ॥ आह यद्यवकाशदानमस्य स्वभाव वज्रादिभिर्लोष्टादीनां-

---

उपकार। इति॰अनुवर्तते। अवगाहिनाम्। =(इस सूत्रमें) उपकार (शब्द सत्रहवां सूत्रसे) आता है रहनेवाले या अवगाही
जीव-पुद्गलादीनाम्। अवकाशदानम्।।। अवगाह। =जीव पुद्गलों, धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य कालद्रव्यको स्थानदान देना है सो अवगाह
आकाशस्य।।।उपकार। वेदितव्य। आह।जीव-पुद्गलानां=आकाशद्रव्यका उपकार जानना चाहिये। पूछता है कि जीव पुद्गल
क्रियावतां। अवगाहिनां। अवकाशदानम्।।।युक्तम्।।। =क्रियावाले और अवगाह करनेवालोंके अवकाशदान देना (तो) ठीक है
पुन धर्मास्तिकाय आदय। निष्क्रिया। नित्यसम्बन्धा। =किन्तु(=पुन)धर्मास्तिकायआदिक अर्थात् धर्म अधर्म और आकाश जो क्रियारहित और आपसमें नित्य सम्बन्धवाले हैं अथवा जो क्रियारहित तथा नित्य सम्बन्धरूप हैं
तेषाम्। कथम्॰ अवगाह। इति॰चेत्॰ न॰ =तिनकों कैसे आकाशका स्थानदान है ऐसी शंका है। यह शंका नहीं होनी चाहिये
उपचारत ॰तत्-सिद्धे।।यथा॰गमन-अभावे। अपि॰ =क्योंकि उपचारसे या कल्पनासे(अवकाशदानकी)सिद्धि है जैसे गतिके अभाव होनेपरभी
सर्वगतम्।।।आकाशम्।।।इति-उच्यते।सर्वत्र॰ सद्भावात्। =सर्वगत आकाश है ऐसा कहागया है क्योंकि आकाशका सर्व स्थानमें अस्तित्व है अर्थात् आकाश है सो सदा गमनरहित है और कहींभी उसका हलनचलन आना जाना नहीं होसकता है निष्क्रिय है तोभी उसको सर्वगत कल्पनासे कहते हैं।
एवम्॰धर्म अधर्मौ।अपि॰अवगाह-क्रिया अभावे। =इसी प्रकार धर्म अधर्म दोनोंभी अवगाहरूप क्रियाके न होनेपर
अपि॰सर्वत्र-व्याप्ति-दर्शनात्। अवगाहिनौ। इति॰ =भी(लोकाकाशके) सर्वस्थानमें व्यवहारके उपलब्धसे अवगाह करनेवाली
उपचर्येते।आह।यदि॰अवकाशदानम्।।। =कही जाती हैं वा मानी जाती हैं। पूछता है कि जो स्थान दान देना
अस्य।।। स्वभाव। वज्रादिभि। लोष्ट-आदीनाम्। =इस(आकाश)का गुण और लक्षण होता तो वज्रादिसे ढेला या गोलादिका

(१) उपचर्येते = उप + चर्य + इत = चर धातुमें उप उपसर्ग लगाकर कर्मणिप्रधान अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान क्रियाका रूप प्रत्यय लगाकर बनाया है
( ) आदय 'यह शब्द दोसे अधिक संख्याका बोधक है और वह ग्रन्थोंमें इस अध्यायके सातवां सूत्रके अनुकूल धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाश [illegible]

मित्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो न प्राप्नोति । दृश्यते च व्याघात । तस्मादस्यावकाशदानं हीयते इति ॥ नैष दोष । वज्रलोष्टादीनां स्थूलानां परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यं हीयते- तत्रावगाहिनामेव व्याघातात् । वज्रादय पुन स्थूलत्वात्परस्पर प्रत्यवकाशदान न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोष । ये खलु पुद्गला सूक्ष्मास्ते परस्पर प्रत्यवकाशदान कुर्वन्ति ॥ यद्येवं नेदमा- काशस्यासाधारण लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति ॥ तन्न । सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतु- त्वमस्यासाधारण लक्षणमिति नास्ति दोष ॥

मिति आदिभि । गो-आदीनां । च व्याघात न प्राप्नोति
दृश्यते । च व्याघात । तस्मात् । अस्य ।
अवकाशदानं । हीयते इति । न एष । दोष ।
वज्र-लोष्ट आदीनाम् । स्थूलानां । परस्पर-व्याघात ।
इति न अस्य । अवकाशदान सामर्थ्यम् । हीयते
तत्र अवगाहिनाम् । एव व्याघातात् । पुन वज्र
आदय । स्थूलत्वात् । परस्पर । प्रति अवकाश-
दानम् । न कुर्वन्ति इति न असौ ।
आकाश-दोष । खलु पुद्गला । सूक्ष्मा । ते ।
परस्पर । प्रति अवकाशदानं । कुर्वन्ति, यदि एवम्
न इदम् । आकाशस्य । असाधारणम् । लक्षणं ।
इतरेषाम् । अपि तत्-सद्भावात् । इति
तत् । न सर्वपदार्थानाम् । साधारण-अवगाहन
हेतुत्वम् । अस्य । असाधारणम् । लक्षणम् ।

=और(=च)भीत आदिकरि गऊ आदिका रुकाव नहीं प्राप्त होता है
=और(इत्यादिकतथा गऊ आदिका) रोका जाना देखा जाता है तिस कारणसे इस आकाशका
=स्थानदान देना चलाजाता है अथवा बाधा जाता है । यह दूषण नहीं है
=वज्र ढेलादिक स्थूल अथवा मोटे (पदार्थ) तिनका आपसमें रुकाव है
=इस (आकाश)की अवकाशदानकी शक्ति नहीं बांधी जाती है
=क्योंकि तहां(आकाशमें अवगाह करनेवालोंकेही(परस्पर)व्याघात है और वज्र
=आदिक स्थूल होनेसे एक दूसरेको (=प्रति) स्थान
=दान नहीं करते हैं । न यह(अर्थात् स्थूल पदार्थोंका एक दूसरेसे रुकना)
=आकाशका दूषण है । निश्चयसे जो सूक्ष्म पुद्गल हैं । ते
=एक दूसरेको (=प्रति) अवकाशदान करते हैं । (प्रश्न) जो इस प्रकार है
(अर्थात् जो सूक्ष्म पुद्गल आपसमें अवकाशदान करते हैं । तो)
=यह (अवकाशदान) आकाशका असाधारण स्वभाव नहीं है
=क्योंकि दूसरोंकेभी उस(अवकाशदानकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व है
=(उत्तर)सो =सत्) नहीं है क्योंकि सब पदार्थोंके साधारण(युगपत्)अवकाशदानका
=कारण होना इस आकाशका अनूठा या अपूर्व स्वभाव है

अलोकाकाशे तदभावादभाव इति चेन्न–स्वभावापरित्यागात् ॥

उक्त आकाशस्योपकार । अथ तदन्तरोद्दिष्टाना पुद्गलाना क उपकार इत्यतोच्यते—

॥ शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

जो सूक्ष्म पदार्थ आपसमें अवकाशदान देते हैं तो आकाशका अवकाशदान देना कोई असाधारण लक्षण(वह स्वभाव या गुण जो किसी दूसरेमें न हो) न ठहरा इसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि आकाश सर्व पदार्थोंको एकही कालमें अवकाशदान देता है कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसको आकाश स्थान दान न देता हो इससे आकाशका यह अवकाशदान देना असाधारण लक्षण है और सूक्ष्म पदार्थमें अवकाशदान देनेका सामर्थ्य अथवा असाधारण लक्षण इस हेतुसे नहीं है कि ष(सूक्ष्मपदार्थ)आपसमें एक दूसरेको अवकाशदान देते हैं सर्व पदार्थोंको एकही कालमें स्थानदान नहीं देसकते हैं

अलोकाकाशे॥ तद् अभावात्॥	= अलोकाकाशमें उन (अवगाह करनेवालों)के विद्यमान न होनेसे
अभावः॥ इति॰चेत्॰ ; न॰	=(अवकाशदानका) अभाव है ऐसी शंका है । (उत्तर) (ऐसी शंका) नहीं होनी चाहिये
स्वभाव अपरित्यागात्॥ ;	= क्योंकि (कोईभी पदार्थ) स्वभाव नहीं छोड़ता है अर्थात् आकाशमें अवगाहन (=अवकाश दान देनेका) की शक्ति और स्वभाव है सो चाहे अवगाह करने वाले उसमें हों या न हों ।जैसे अलोकाकाशमें अवगाह करनेवाले नहीं हैं)तौभी वह पदार्थ(अलोकाकाश) अपना स्वभाव नहीं त्यागता है
उक्तः॥ आकाशस्य॥ उपकारः॥ अथ॰तदन्तर	= आकाशका उपकार कहागया अब उस (आकाश)के अत्यन्त समीप वा लगताही
उद्दिष्टानाम्॥ पुद्गलानाम्॥	= वर्णित पुद्गलोंका (देखो प्रथम सूत्रमें आकाश शब्दके पश्चात् "पुद्गलानां" शब्द)
कः॥ उपकारः॥ इति॰अतः॰उच्यते ।	= क्या उपकार है इस कारण (=इति) यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्— शरीरवाङ्मन प्राणापाना पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

= शरीर-वाङ्-मनस्-प्राण-अपाना (जीवानाम्)पुद्गलानाम् (उपकार)

(१)दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। हमारे यहां कहीं २ पर 'पुद्गलानामके स्थानमें पुद्गलानां' पाठहै वह बहुमतमें अशुद्ध है इस सूत्रमें 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पहले सूत्रसे होगई है । अथवा यों समझना कि "जीवानाम्" शब्दका अध्याहार किया गया है ॥

भित्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो न प्राप्नोति । दृश्यते च व्याघातः । तस्मादस्यावकाशदानं हीयते इति ॥ नैष दोषः । वज्रलोष्टादीनां स्थूलानां परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यं हीयते- तत्रावगाहिनामेव व्याघातात् । वज्रादयः पुनः स्थूलत्वात्परस्परं प्रत्यवकाशदानं न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोषः । ये खलु पुद्गलाः सूक्ष्मास्ते परस्परं प्रत्यवकाशदानं कुर्वन्ति ॥ यद्येवं नेदमाकाशस्यासाधारणं लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति ॥ तन्न । सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतुत्वमस्यासाधारणं लक्षणमिति नास्ति दोषः ॥

भित्ति आदिभिः। गो आदीनां। च व्याघातः नप्राप्नोति। =और(=च)भीत आदिकरि गऊ आदिका रुकाव नहीं प्राप्त होता है
दृश्यते च व्याघातः। तस्मात्। अस्य। =और(वज्रादिकतथागऊआदिका)रोकानानादेखाजाताहैतिसकारणसेइसआकाशके
अवकाशदानं। हीयते। न एषः। दोषः। =स्थानदान देना चलाजाता है अथवा बाधा जाता है। यह दूषण नहीं है
वज्र-लोष्ट-आदीनाम्। स्थूलानां। परस्पर-व्याघातः। =वज्र ढेलादिक स्थूल अथवा मोटे (पदार्थ) तिनका आपसमें रुकाव है
इति न अस्य। अवकाशदान सामर्थ्यम्। हीयते। =इस (आकाश)की अवकाशदानकी शक्ति नहीं बाधी जाती है
तत्र अवगाहिनाम्। एव व्याघातात्। पुनः वज्र =क्योंकितहां(आकाशमें अवगाह करनवालोंकेही(परस्पर)व्याघात है और वज्र
आदयः। स्थूलत्वात्। परस्परं। प्रति अवकाश- =आदिक स्थूल होनेसे एक दूसरको (=प्रति) स्थान
दानम्। न कुर्वन्ति। इति नअसौ। =दान नहीं करते हैं। न यह(अर्थात् स्थूल पदार्थोंका एक दूसरेसे रुकना)
आकाशदोषः। ये। खलु पुद्गलाः। सूक्ष्माः। ते। =आकाशका दूषण है। निश्चयसे जो सूक्ष्म पुद्गल हैं। वे
परस्परं। प्रति अवकाशदानं। कुर्वन्ति, यदि एवम् =एक दूसरको (=प्रति) अवकाशदान करते हैं। (प्रश्न) जो इस प्रकार है
(अर्थात् जो सूक्ष्म पुद्गल आपसमें अवकाशदान करते हैं। तो)
न इदम्। आकाशस्य। असाधारणम्। लक्षणम्। =यह (अवकाशदान) आकाशका असाधारण स्वभाव नहीं है
इतरेषाम्। अपि तत-सद्भावात्। इति =क्योंकि दूसरोंकेभी उस(अवकाशदानकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व है
तत्। न सर्वपदार्थानाम्। साधारण अवगाहन =(उत्तर)सो (ऐसा) नहीं है क्योंकि सब पदार्थोंके साधारण(युगपत्)अवकाशदानका
हेतुत्वम्। अस्य। असाधारणम्। लक्षणम्। =कारण होना इस आकाशका असाधारण या अपूर्व स्वभाव है
[illegible] भावार्थ यह है कि [illegible]

तदभावे तद्वृत्त्यभावात् ॥ तत्सामर्थ्योपेतेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणाः पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात् ॥ इतरेन्द्रियविषया कस्मान्न भवति? तद्ग्रहणायोग्यत्वात् ॥ घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धिवत् ॥ अमूर्ता वागिति चेन्न- मूर्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनान्मूर्तिमत्त्वसिद्धेः ॥ मनो द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति भावमनस्तावल्लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् ॥

तद् अभावे तद्-वृत्ति-अभावात्	=उस(भाववाक्)के अभाव होनेपर, उस (भाववाक्)की चेष्टा(व्यवसाय का) =अभाव होजाता है अर्थात् भाववचनके न होनेपर आत्मा बोल नहीं सकता है ॥
तत्-सामर्थ्य-उपेतेन क्रियावता आत्मना	=जिस (भाववाक्)की शक्तिको प्राप्त हुआ (=उपेतेन क्रियावान् आत्माकरि
प्रेर्यमाणाः पुद्गलाः वाक्त्वेन विपरिणमन्ते	=प्रेरे हुये पुद्गल वचनरूप होकर परिणमते हैं (वह द्रव्य वचन है)
इति द्रव्यवाक् अपि पौद्गलिकी, श्रोत्र-इन्द्रिय-	=ऐसे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उपजी है, क्योंकि(द्रव्यवचन) कान इंद्रियका
विषयत्वात्, इतरेन्द्रिय-विषया कस्मात् न भवति	=विषय है । किस कारणसे(=कस्मात्)कि(द्रव्यवाक्)दूसरी इन्द्रियका विषय नहीं है।
तद्-ग्रहण अयोग्यत्वात्, घ्राण-ग्राह्ये	=क्योंकि उस(दूसरी इन्द्रिय)के ग्रहण योग्य नहीं है। नाक इन्द्रियके ग्रहणयोग्य(=ग्राह्य)
गन्ध-द्रव्ये रसादि-अनुपलब्धिवत्	=गंध द्रव्य है । (वह घ्राण इन्द्रिय) रसादिक ग्रहण करने योग्य नहीं है
अमूर्ता वाक् इति चेत् न	=वचन अमूर्तीक है ऐसी शंका है । (उत्तर)(वाणी अमूर्तीक) नहीं है
मूर्तिमत्-ग्रहण-अवरोध-व्याघात-	=क्योंकि मूर्तीकके ग्रहणसे,(मूर्तीककरि)रुकजानेसे(मूर्तीकसे) प्रहारको प्राप्त होनेसे
अभिभवादि-दर्शनात् मूर्तिमत्त्वसिद्धेः	=(मूर्तीक द्वारा) तिरस्कारादिक देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तीक द्वारा एक दिशासे दूसरी दिशाको चलेजाना आदि देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है
[1]मनः द्विविधम् द्रव्यमनः च भावमनः इति	=मन दोप्रकारका है । द्रव्यमन और(=च)भावमन। (दोनोंप्रकारका मन पुद्गल स्वरूप है)
भावमनः तावत् लब्धि-उपयोग-लक्षणम्	=भावमन सो (तावत्) लब्धि तथा उपयोग स्वरूप है
पुद्गल-अवलम्बनत्वात् पौद्गलिकम्	=और पुद्गलके आश्रयपानेसे पुद्गलजन्य है अर्थात्

(१)(क)मनस्(ख)वचस्=मन,वच (ग)यशस्=पुत्रोंकी प्रशस्ता कीर्तिकम् सकारान्त नपुंसकलिंग है जिनके प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग मनः,वचः यशः है

तद्विपाकस्य मूर्तिमत्सम्बन्धनिमित्तत्वात् ॥ दृश्यतेहि व्रीह्यादीनामुदकादिद्रव्यसम्बन्धप्राप्तिपरिपाकाना पौद्गलिकत्वम् । तथा कार्मणमपि गुडकण्टकादिमूर्तिमद्द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वात्पौद्गलिकमित्यवसेयम् ॥ वाक् द्विविधा । द्रव्यवाग्भाववागिति ॥ तत्र भाववाक् तावद्वीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी ।

तद्-विपाकस्य॥ मूर्तिमत्-सम्बन्ध निमित्तत्वात्॥, =क्योंकि उस (कार्मण शरीर) के उदयका कारण मूर्तिवान्के संयोगसे है अर्थात् मूर्तिमान वस्तुका सम्बन्ध उस कार्मणके उदयका कारण है

दृश्यते। हि॰व्रीहि-आदीनाम्॥ उदक-आदि-द्रव्य =जैसे (=ही) देखागया है कि चांवल आदिकोंके जल आदिक द्रव्योंके

सम्बन्ध प्राप्ति-परिपाकानाम्॥ =संयोग प्राप्त कर भले प्रकारसे पकनेरूप वा उत्तम पाकरूप होना है उनके

पौद्गलिकत्वम्॥ तथा॰कार्मणम्॥ अपि॰गुड =ये दोनों व्रीहि उदक पुद्गलमयी वा पुद्गलजन्य हैं। पुद्गल)। तैसे कार्मण(शरीर)भी गुड

कण्टकादि-मूर्तिमत्-द्रव्य उपनिपाते॥ सति॥ =कांटे आदि मूर्तिक द्रव्योंके संयोग होनेपर

विपच्यमानत्वात्॥ पौद्गलिकम्॥ इति॰अवसेयम्॥ =भले प्रकार पकनेसे पुद्गलमयी है ऐसे जानना चाहिये भावार्थ गुड-चोर-जड़ी आदिकसे मदिरा बनती है जिस मदिराके पीनेसे चित्त विभ्रमरूप होजाता है उस समय ज्ञानावरण दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तरायकर्मका उदय जानना चाहिये। कांटा अथवा चोट लगनेसे जो दुःख होता है तहां असाता वेदनीयकर्मकाउदय जानो इत्यादि बाह्यमूर्तीक द्रव्योंके सम्बन्धसे पचकरि कार्मण उदय आवाहै जिससे कार्मण पुद्गलमयीहै॥

वाक्॥ द्वि-विधा॥ द्रव्यवाक्॥ भाववाक्॥ इति॰॥ =वचन दो प्रकार द्रव्य वचन भाव वचन ऐसे हैं

तत्र॰भाववाक्॥ तावत्॰वीर्यान्तराय-मति =तहां भाव वचन तो (=तावत्) वीर्यान्तराय, मति

श्रुत-ज्ञानावरण-क्षयोपशम अंगोपांग =श्रुत ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे और अंगोपांग नामक (आंगोपांगनामा)

नाम-लाभनिमित्तत्वात्॥ (आत्मना॥ वाक्सामर्थ्यम्) =नाम कर्मके लाभ (=उदय)का निमित्त होनेसे (आत्माके बोलनेकी शक्ति)

पौद्गलिकी॥ =पुद्गलमय है अर्थात् उपरोक्त कर्मोंके कारणसे आत्माके बोलनेकी शक्ति अथवा सामर्थ्य है सो भाव वचन है

तदभावे तद्वृत्त्यभावात् ॥ तत्सामर्थ्योपेतेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणा पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात् ॥ इतरेन्द्रियविषया कस्मान्न भवति? तद्ग्रहणायोग्यत्वात् ॥ घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धिवत् ॥ अमूर्ता वागिति चेन्न- मूर्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनान्मूर्तिमत्वसिद्धे ॥ मनो द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति भावमनस्तावल्लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् ॥

तद् अभावे तद्-वृत्ति अभावात्	=उस(भाववाक्)के अभाव होनेपर, उस(भाववाक्)की चेष्टा(व्यवसाय) का =अभाव होजाता है अर्थात् भाववचनके न होनेपर आत्मा बोल नहीं सकता है ॥
तत्-सामर्थ्य-उपेतेन क्रियावता आत्मना	=तिस (भाववाक्)की शक्तिको प्राप्त हुआ (=उपेतेन) क्रियावान् आत्माकरि
प्रेर्यमाणाः पुद्गलाः वाक्त्वेन विपरिणमन्ते	=प्रेरे हुये पुद्गल वचनरूप होकर परिणमते हैं (वह द्रव्य वचन है)
इति द्रव्यवाक् अपि पौद्गलिकी, श्रोत्र-इन्द्रिय-विषयत्वात्	=ऐसे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उपजी है, क्योंकि द्रव्यवचन) कान इन्द्रियका =विषय है।
इतरेन्द्रिय-विषया कस्मात् न भवति	किस कारणसे(=कस्मात्)कि(द्रव्यवाक्)दूसरी इन्द्रियका विषय नहीं है?
तद्-ग्रहण अयोग्यत्वात्, घ्राण-ग्राह्ये	=क्योंकि उस(दूसरी इन्द्रिय)के ग्रहण योग्य नहीं है। नाक इन्द्रियके ग्रहणयोग्य(=ग्राह्य)
गन्ध-द्रव्ये रसादि-अनुपलब्धिवत्	=गंध द्रव्य है। (वह घ्राण इन्द्रिय) रसादिक ग्रहण करने योग्य नहीं है
अमूर्ता वाक् इति चेत् न	=वचन अमूर्तीक है ऐसी शंका है। (उत्तर)(वाणी अमूर्तीक) नहीं है
मूर्तिमत्-ग्रहण-अवरोध-व्याघात-	=क्योंकि मूर्तीकके ग्रहणसे,(मूर्तीककरि)रुकजानेसे(मूर्तीकसे) प्रहारको प्राप्त होनेसे
अभिभवादि-दर्शनात् मूर्तिमत्वसिद्धेः	=(मूर्तीक द्वारा) तिरस्कारादिक देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तीक द्वारा एक दिशासे दूसरी दिशाको चलेजाना आदि देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है
(१)मनः द्विविधम् द्रव्यमनः च भावमनः इति	=मन दोप्रकारका है। द्रव्यमन और(=च)भावमन। (दोनोंप्रकारका मन पुद्गल स्वरूप है)
भावमनः तावत् लब्धि-उपयोग-लक्षणम्	=भावमन सो (तावत्) लब्धि तथा उपयोग स्वरूप है
पुद्गल अवलम्बनत्वात् पौद्गलिकम्	=और पुद्गलके आश्रयभावसे पुद्गलजन्य है अर्थात्

(१)(क)मनस्(ख)पयस् = जल,दूध (ग)यशस् = गुणोंकी प्रशंसा,तीनोंशब्द सकारान्त नपुंसकलिंगी हैं जिनके प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग मनः, पयः यशः हैं

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपागनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहका पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥

द्रव्यमनः ॥ च=ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय क्षयोपशम-अंगोपांगनाम-लाभ-प्रत्ययाः ॥ गुण दोष-विचार स्मरणादि प्रणिधान-अभिमुखस्य ॥ आत्मनः ॥ अनुग्राहकाः ॥ पुद्गलाः ॥ मनस्त्वेन ॥ परिणताः ॥

=और(च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका
=तथा आंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार
=स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसके
=उपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि
=परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म पुद्गलोंका अष्टपत्र अष्टपांखुरीके फूले हुये कमलके आकार =मनपनाकरि परिणये पुद्गल) हैं सो द्रव्य मन है

इति=पौद्गलिकम् ॥

=इस प्रकार (यह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शवान् है ॥

कश्चित्=आह ॥ मनः ॥ द्रव्यान्तरम् ॥ रूपादि परिणाम-रहितम् ॥ अणु-मात्रम् ॥ तस्य ॥ पौद्गलिकत्वम् ॥ अयुक्तम् ॥ इति=तत् ॥ अयुक्तम् ॥ कथम्= उच्यते तत्

=कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि
=परिणाम वा विकार वर्जित है, अणुमात्र है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना
=ठीक नहीं है(उत्तर)सो(मनको रूपादिपरिणामवर्जित और अणुमात्र कहना)अयुक्त है।कैसे?
=(उत्तरमें)कहा जाता है कि जस तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का

इन्द्रियेण ॥ आत्मना ॥ च=सम्बद्धम् ॥ वा=स्यात्

=इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध न रखता होगा अथवा

असम्बद्धं वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावान्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम् ॥ वा ॥ यदि असम्बद्धम् ॥ तत् ॥ आत्मनः ॥	=असंबन्ध होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
उपकारकम् ॥ भवितुम् ॥ न अर्हति ॥ च इन्द्रियस्य ॥	=सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
साचिव्यम् ॥ न करोति ॥ अथ	=संचीपना नहीं करता है । पक्षान्तरमें(=अथ)अर्थात् इन्द्रियसे और आत्मासे मनका
सम्बद्धम् ॥ सत् ॥ तत् ॥ अणु ॥ एकस्मिन् ॥ प्रदेशे ॥	=संबंध है तो वह (मन) अणु होनेसंते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
सम्बद्धम् ॥ इतरेषु ॥ प्रदेशेषु ॥ उपकारम् ॥	=संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
न कुर्यात् । अदृष्ट-वशात् ॥	=नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके)न दीखनेवालेके वशसे वा अदृष्ट गुणहोनेसे
अस्य ॥ अलात-चक्रवत्	=इस (मनका) अर्द्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सदृश
परिभ्रमणम् ॥	=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है
इति चेत् न	=ऐसा अन्यमती आग्रह करता है(=इतिचेत्)(उत्तर सो नहीं है)
तत्-सामर्थ्य अभावात् ॥	=क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
अमूर्तस्य ॥ आत्मनः ॥ निष्क्रियस्य ॥ अदृष्टः ॥ गुणः ॥	=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
सः ॥ निष्क्रियः ॥ सत् ॥ अन्यत्र क्रिया-आरम्भे ॥	=सो निष्क्रय होकर अन्यवस्तुविषैं क्रियाके आरम्भमें
न समर्थः ॥	=सामर्थ्यरहित है अर्थात आत्माका अदृष्ट गुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहित है
दृष्टः ॥ हि वायुद्रव्य विशेषः ॥ क्रियावान् ॥	=जैसे(=हि)देखाजाता है कि वायुद्रव्य वा गुण क्रियावान् और
स्पर्शवान् ॥ प्राप्त-वनस्पतौ ॥	स्पर्शवान् है सो प्राप्त कीहुई(अर्थात् पवन जिनमें धूमाती है उन)वनस्पितियोंमें

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहका पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

द्रव्यमनः॥ च॥ ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय क्षयोपशम आंगोपांगनाम-लाभ-प्रत्ययाः॥ गुण-दोष-विचार स्मरणादि प्रणिधान अभिमुखस्य॥ आत्मनः॥ अनुग्राहकाः॥ पुद्गलाः॥ मनस्त्वेन॥ परिणताः॥

इति॥ पौद्गलिकम्॥

कश्चित्॥ आह॥ मनः॥ द्रव्यान्तरम्॥ रूपादि-परिणाम-रहितम्॥ अणु-मात्रम्॥ तस्य॥ पौद्गलिकत्वम्॥ अयुक्तम्॥ इति॥ यत्॥ अयुक्तम्॥ कथम्॥ उच्यते॥ तत् इन्द्रियेण॥ आत्मना॥ च॥ सम्बद्धम्॥ वा॥ स्यात्॥

पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥

=और(=च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका =तथा आंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार =स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसकें =उपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि =परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म पुद्गलोंका प्रचयरूप अष्टपांखुरीके फूले हुये कमलके आकार =मनपनाकरि परिणये पुद्गल) है सो द्रव्य मन है

=इस प्रकार (यह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शवान् है ॥

=कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि =परिणाम वा विकार रहित है, अणुमात्र है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना =ठीक नहीं है(उत्तर)सो(मनकोरूपादिपरिणामरहितऔरअणुमात्रकहना)अयुक्त है।कैसे? =(उत्तरमें)कहाजाता है कि वह तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का =इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध रखता होगा अथवा

असम्बद्ध वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च सान्निध्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावान्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम् । वा ? । यदि असम्बद्धम् तत् आत्मनः	=असंबन्ध होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
उपकारकम् भवितुम् न अर्हति, च इन्द्रियस्य	=सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
सान्निध्यम् न करोति । अथ	=समीपपना नहीं करताहै । पक्षान्तरमें(=अथ)अर्थात्इन्द्रियसेऔरआत्मासे मनका
सम्बद्धम् सत् तत् अणु एकस्मिन् प्रदेशे	=संबंध है तो वह (मन)अणु होवेसंवे इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
सम्बद्धम् इतरेषु प्रदेशेषु उपकारम्	=संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
न कुर्यात् । अदृष्ट-वशात्	=नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके)न दीखेजानेके वशसे वा अदृष्टगुणहोनेसे
अस्य अलात-चक्रवत्	=इस (मनका) अर्द्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सदृश
परिभ्रमणम्	=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है
इति चेत् न	=ऐसा अन्यमती)आग्रह करता है(=इतिचेत्)(उत्तर सो नहीं है)
तत्-सामर्थ्य अभावात्	=क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
अमूर्तस्य आत्मनः निष्क्रियस्य अदृष्टः गुणः	=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
सः निष्क्रियः सन् अन्यत्र क्रिया-आरम्भे	=सो निष्क्रय होकर अन्यवस्तुविषैं क्रियाके आरम्भमें
न समर्थः ।	=सामर्थ्यरहित है अर्थात आत्माका अदृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहितहै
दृष्टः हि वायुद्रव्य विशेषः क्रियावान्	=जैसे(=हि)देखाजाता है कि वायुद्रव्य या गुण क्रियावान् और
स्पर्शवान् प्राप्त-वनस्पतौ	स्पर्शवान् है सो प्राप्त कीहुई(अर्थात् पवन जिनमें छूजातीहै उन)वनस्पितियोंमें

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहका पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

द्रव्यमनः च ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय-क्षयोपशम अंगोपांगनाम-लाभ-प्रत्ययाः गुण-दोष-विचार स्मरणादि-प्रणिधान-अभिमुखस्य आत्मनः अनुग्राहकाः पुद्गलाः मनस्त्वेन परिणताः

पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥
=और(च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका
=तथा आंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार
=स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसके
=उपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि
=परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म पुद्गलोंका प्रचयरूप अष्टपांखुरीके फूले हुये कमलके आकार =मनपनाकरि परिणये पुद्गल) हैं सो द्रव्य मन है

इति पौद्गलिकम्

=इस प्रकार (यह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शमान् है ॥

कश्चित् आह मनः द्रव्यान्तरम् रूपादि परिणाम-रहितम् अणु-मात्रम् तस्य पौद्गलिकत्वम् अयुक्तम् इति तत् अयुक्तम् कथम् उच्यते तत् इन्द्रियेण आत्मना च सम्बद्धम् वा स्यात्

=कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि
=परिणाम वा विकार वर्जित है, अणुमात्र है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना
=ठीक नहीं है(उत्तर)सो(मनको रूपादिपरिणामवर्जित और अणुमात्र कहना) अयुक्त है।कैसे?
=(उत्तरमें)कहा जाता है कि जब तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का
=इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध रखता होगा अथवा

असम्बद्ध वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रिय-स्यादृष्टो गुण , स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावा-न्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम् ॥ वा ? ॥ यदि॥ असम्बद्धम् ॥ तत् ॥ आत्मनः ॥	=असंबन्ध होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
उपकारकम् ॥ भवितुम् ॥ न॥ अर्हति । च॥ इन्द्रियस्य ॥	=सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
साचिव्यम् ॥ न॥ करोति । अथ॥	=समीपपना नहीं करणा है । पक्षान्तरमें(=अथ)अर्थात् इन्द्रियसे और आत्मासे मनका
सम्बद्धम् ॥ सत् ॥ तत् ॥ अणु ॥ एकस्मिन् ॥ प्रदेशे ॥	=संबंध है तो वह (मन)अणु होतेसंते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
सम्बद्धम् ॥ इतरेषु ॥ प्रदेशेषु ॥ उपकारम् ॥	=संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
न॥ कुर्यात् । अदृष्ट-वशात् ॥	=नहीं [redacted] सकता है ॥ (आत्माके)न दीखेजानेके वशसे वा अदृष्ट गुणहोनेसे
अस्य ॥ अलात-चक्रवत् ॥	=इस (मनका) अर्द्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सदृश
परिभ्रमणम् ॥	=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है
इति॥ चेत् ॥ न॥	=ऐसा अन्यमती)आग्रह करता है(=इतिचेत्)(उत्तर सो नहीं है)
तत्-सामर्थ्य अभावात् ॥	=क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
अमूर्तस्य ॥ आत्मनः ॥ निष्क्रियस्य ॥ अदृष्टः ॥ गुणः ॥	=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
सः ॥ निष्क्रयः ॥ सन् ॥ अन्यत्र॥ क्रिया-आरम्भे ॥	=सो निष्क्रय होकर अन्यवस्तुविषैं क्रियाके आरम्भमें
न॥ समर्थः ॥	=सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अदृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहित है
दृष्टः ॥ हि॥ वायुद्रव्य-विशेषः ॥ क्रियावान् ॥	=जैसे(=हि)देखाजाता है कि वायुद्रव्य का गुण क्रियावान् और
स्पर्शवान् ॥ प्राप्त-वनस्पतौ ॥	स्पर्शवान् है सो प्राप्तकीहुई(अर्थात् पवन जिनमें घूमती है उन)वनस्पतियोंमें

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकाः पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

	पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥
द्रव्यमनः ॥ च ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय-क्षयोपशम-	=और(=च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका
अंगोपांगनाम-लाभ-प्रत्ययाः ॥ गुण-दोष विचार	=तथा अंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार
स्मरणादि प्रणिधान-अभिमुखस्य ॥ आत्मनः ॥	=स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसके
अनुग्राहकाः ॥ पुद्गलाः ॥ मनस्त्वेन ॥	=उपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि
परिणताः ॥	=परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म पुद्गलोंका प्रचयरूप अष्टपांखुरीके फूले हुये कमलके आकार =मनपनाकरि परिणये पुद्गल) हैं सो द्रव्य मन है
इति ॥ पौद्गलिकम् ॥	=इस प्रकार (वह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके सयोगसे पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शवान् है ॥
कश्चित् ॥ आह ॥ मनः ॥ द्रव्यान्तरम् ॥ रूपादि	=कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि
परिणाम-रहितम् ॥ अणु-मात्रम् ॥ तस्य ॥ पौद्गलिकत्वम् ॥	=परिणाम वा विकार वर्जित है, अणुमात्र है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना
अयुक्तम् ॥ इति ॥ यद् ॥ अयुक्तम् ॥ कथम् ॥	=ठीक नहीं है(उत्तर)सो(मनको रूपादिपरिणामवर्जित और अणुमात्र कहना)अयुक्त है। कैसे?
उच्यते ॥ तद्	=(उत्तरमें)कहा जाता है कि वह तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का
इन्द्रियेण ॥ आत्मना ॥ च ॥ सम्बद्धम् ॥ वा ॥ स्यात् ॥	=इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध रखता होगा अथवा

असम्बद्धं वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारक भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुण, स निष्क्रिय सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावा-
=स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम् ।।। वा ।॥यदि॥असम्बद्धम् ।।तत्।।।आत्मनः।	=असंबंध होगा । जो संबंध नहीं है वो वह (मन) आत्माका
उपकारकम् ।भवितुम् ।।न॥अर्हति, च॥इन्द्रियस्य।।।	=सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
साचिव्यम् ।।न॥करोति। अथ॥	=मंत्रीपना नहीं करता है । पक्षान्तरमें(=अथ)अर्थात्इन्द्रियसेऔरआत्मासे मनका
सम्बद्धम् ।।सत्।।तत्।।अणुः।।एकस्मिन्।प्रदेशे।	=संबंध है तो वह (मन)अणु होतेसते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
सम्बद्धम् ।।इतरेषु।प्रदेशेषु।उपकारम् ।	=संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
न॥कुर्यात् । अदृष्ट-वशात् ।	=नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके)न दीखनेजानेके वशसे वा अदृष्टगुणहोनेसे
अस्य।।अलात-चक्रवत्॥	=इस (मनका) अर्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सदृश
परिभ्रमणम् ।।।	=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है
इति॥चेत्॥न॥	=ऐसा अन्यमती)आग्रह करता है(=इतिचेत्)(उत्तर सोनहीं है)
तत्-सामर्थ्य अभावात्।	=क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
अमूर्तस्य।आत्मनः।निष्क्रियस्य।अदृष्टः।गुणः।	=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
सः।निष्क्रय ।सत् ।अन्यत्र॥क्रिया-आरम्भे।	=सो निष्क्रय होकर अन्यवस्तुविषैं क्रियाके आरम्भमें
न॥समर्थः ।	=सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अदृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहित है
दृष्टः।हि॥वायुद्रव्य-विशेषः। क्रियावान् ।	=जैसे(=हि)देखाजाता है कि वायुद्रव्य का गुण क्रियावान् और
स्पर्शवान् ।। प्राप्त-वनस्पतौ।।	स्पर्शवान् है सो प्राप्त कीहुई(अर्थात् पवन जिनमें छूजाती है उन)वनस्पतिविषैं

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रह परस्परोपग्रह । जीवानामुपकार. ॥ कः पुनरसौ ? । स्वामी भृत्य, आचार्य शिष्य, इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्परोपग्रह ॥

[1]सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकार)भवति॥ २१॥

सूत्रार्थः—परस्पर-उपग्रह-[2]जीवानाम्	=परस्पर उपकार जीवोंको
जीवानाम् [3]उपकार भवति	=जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणपश्चात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख का निमित्त, दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूसा आदिका हेतुभी होते हैं
वृत्त्यनुवादः—परस्परशब्द कर्म-व्यतिहारे वर्तते	=(इस सूत्रमें)परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के भलटन पलटन(=व्यतिहार)केअर्थविषैं वर्तता है
कर्मव्यतिहार च क्रियाव्यतिहार	=और(=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह यह करता है
परस्परस्य उपग्रह परस्पर-उपग्रह	=आपसका उपग्रह या अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है
जीवानाम् उपकार	=(यह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है
क पुन असौ स्वामी भृत्य	= प्रश्न) फिर(=पुनः)यह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर
आचार्य शिष्य इत्येवम् आदि भावेन	=आचार्य शिष्य इत्यादिककी हृदयकी अवस्थासे(=भावेन)
वृत्ति परस्पर-उपग्रह	=जो चेष्टा-उद्योग-उपाय व्यवसायरूप =वृत्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

(१) हमारी सम्मतिमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । हमारे यहां किसी २ पुस्तकमें जीवानाम् के स्थान पर 'जीवानां' पाठ है वह व्याकरणका भाषा व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो ... टिप्पणी पृष्ठ ५ ९, और पृष्ठ ५३५, ५४०)
(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति २१वें सूत्रसे जीवनी है (३) 'उपकार' इस शब्दकी अनुवृत्ति ... सूत्रसे जीवनी है ।

· स्वामी तानहितत्यागादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठापनेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्त्या आचार्याणामुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥ सुखादीन्यपि जीवाना जीवकृत उपकार इति ॥ आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं सश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

स्वामी, तावत् विषत्याग आदिना, भृत्यानाम्, उपकारे, वर्तते, भृत्याः, च हितम विपादनेन, अहित प्रतिषेधेन, आचार्य, उभय-लोक-फल प्रद उपदेश-दर्शनेन, च तद् उपदेश-विहित क्रिया अनुष्ठापनेन, शिष्याणाम्, अनुग्रहे, वर्तते शिष्या अपि तद् आनुकूल्यवृत्त्या, आचार्याणाम्, उपकार अधिकारे, पुनर् उपग्रह-वचनम्, किम्, अर्थम्, ? पूर्व उक्त-सुख आदि-चतुष्टय प्रदर्शन अर्थम्, पुनर् उपग्रहवचनम्, क्रियते, सुख-आदीनि, अपि जीवानाम्, जीवकृतः, उपकार, इति आह। यदि अवश्यम् सता, उपकारिणा, भवितव्यम्, सन्, च कालम्, अभिमतः, तस्य, कः, उपकारः।

=स्वामी तौ(=तावत्)धन(=विष)देने आदिसे(=त्यागादिना) सेवकोंकी
=सहायता करनेमें प्रवर्तता है और(=च)चाकर हितकी वार्ता कहिकरि और अहितका
=निषेधकरि स्वामियोंकेउपकारमेंप्रवर्तता है) आचार्य दोनों लोकका फलदेनेवाला(प्रद)
=उपदेशको दिखावनेकरि और(=च)उस उपदेशके अनुकूल उचित अथवा योग्य
=क्रियाका आचरण करावनेकरि शिष्योंके उपकार (=अनुग्रह में
=प्रवर्तता है । ऐसेभी उस आचार्य के अनुकूलपना(=आनुकूल्य)में प्रवृत्ति होकर
=आचार्योंके उपकार विषयमें अधिकारमें(प्रवर्ततेहैं)(प्रश्न)पुरि
=उपग्रह शब्द(इस सूत्रमें)किसलिये है । पहिले(सूत्र अर्थात् इस अध्यायके२०वां सूत्रमें)
=कहे हुए सुखदुःख जीवित-मरण चारअवयवोंके दिखावनेके लिये फिर (=पुनः)
=उपग्रहवाक्य(=इससूत्रमें)कियागया है सुख-दुःख-जीवित-मरणभी
=जीवोंके जीवकृत उपकार है कोई पूछता है कि जो (=यदि)
=सत्तारूपवस्तु(=सत्)अवश्य उपकार सहित होनेयोग्य (=भवितव्यम्) है
=और काल सत्तारूप या सत्स्वरूप (=सन)मानागयाहै तोतिस(काल)कालका उपकार है

(१) सत यहांपर प्रथमा विभक्ति एकवचन पुलिंग सत शब्दका है । इसकाअर्थ सत्तरूप अथवा सत्स्वरूपहै।()तत्वार्थराजवार्तिकमें आईसे इत्यत्राक्षयत' तक यह वाक्य ऐसा ही है जैसाकि सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है 'तस्य क उपकारः' के स्थानमें सन्निवुपकारः राजवार्तिकमें है उससे अर्थ भेद नहीं होताहै। इस वाक्यका अनुवाद पंडित पन्नालालजी दूनीवाले और पंडित पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने क्रमसे ऐसे किया है "ऊ शिष्य कहे है जो अवश्य

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रह परस्परोपग्रह । जीवानामुपकार. ॥ क पुनरसौ ? । स्वामी भृत्य, आचार्य शिष्य, इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्परोपग्रह ॥

(1)सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकार)भवति॥२१॥

सूत्रार्थ—परस्पर-उपग्रह-(2)जीवानाम्। =परस्पर उपकार जीवोंको

जीवानाम्। (3)उपकारः। भवति। =जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख का निमित्त, दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूसा आदिका हेतुभी होते हैं

वृत्त्यनुवादः—परस्परशब्दः। कर्म-व्यतिहारे। वर्तते। =(इस सूत्रमें)परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के अलटन पलटन(=व्यतिहार)केअर्थविषें वर्तता है

कर्मव्यतिहारः। च। क्रियाव्यतिहारः। =और(=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है

परस्परस्य। उपग्रहः। परस्पर-उपग्रहः। =आपसका उपग्रह या अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है

जीवानाम्। उपकारः। =(यह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है

कः। पुनः। असौ। स्वामी। भृत्यः। = अब)बहुरि(=पुनः)वह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर

आचार्यः। शिष्यः। इत्येवम्। आदि। भावेन। =आचार्य शिष्य इत्यादिककी इनकी अवस्थासे(=भावेन)

वृत्तिः। परस्पर-उपग्रहः। =जो चेष्टा-प्रयोग-उपाय व्यवसायय =वृत्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

(१) दोनो सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहाँ किसी २ पुस्तकमें जीवानाम् के स्थान पर 'जीवानां' पाठ है वह कातन्त्ररूप मात्रा व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ४ ५, और पृष्ठ ११४ ११०)

(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति २१वें सूत्रसे चीजई है। (३) 'उपकार' इस शब्दकी अनुवृत्ति उपरवाले सूत्रसे चीजई है।

स्वामी तावद्वित्तत्यागादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठापनेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्त्या आचार्याणामुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥ सुखादीन्यपि जीवानां जीवकृत उपकार इति ॥ आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं सश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

स्वामी॰ तावत्॰ वित्तत्याग आदिना॰ भृत्यानाम्॰	=स्वामी तौ(=तावत्)धन(=वित्त)देने आदिसे(=त्यागादिना) सेवकोंकी
उपकारे॰ वर्तते भृत्या ,॰ च॰ हितप्रतिपादनेन॰॥ अहित	=सहायता करनेमें प्रवर्तता है और(=च)चाकर हितकी वार्ता कहिकरि और अहितका
प्रतिषेधेन॰, आचार्य्य॰ उभय-लोक फल प्रद	=निषेधकरि स्वामियोंकेउपकारमेंप्रवर्तता है) आचार्य दोनों लोकका फलदेनेवाला(प्रद)
उपदेश-दर्शनेन॰ च॰ तद् उपदेश-विहित-	=उपदेशका दिखावनेकरि और(=च)उस उपदेशके अनुकूल उचित अथवा योग्य
क्रिया अनुष्ठापनेन॰॥ शिष्याणाम्॰ अनुग्रहे॰	=क्रियाका आचरण करावनेकरि शिष्योंके उपकार (=अनुग्रह में
वर्तते शिष्या अपि॰ तद् आनुकूल्यवृत्त्या॰॥	=प्रवर्तता है । चेलाभी उस(आचार्य के अनुकूलपना(=आनुकूल्य)में प्रवृत्ति होकर
आचार्याणाम्॰ उपकार अधिकारे॰, पुनर्	=आचार्योंके उपकार विषयमें अधिकारमें(प्रवर्तते)(प्रश्न)बहुरि
उपग्रह-वचनम्॰॥ किम्॰॥ अर्थम्॰॥ ? पूर्व	=उपग्रह शब्द(इस सूत्रमें)किसलिये है । पहिला (सूत्र अर्थात् इस अध्यायके२०वां सूत्रमें)
उक्त-सुख आदि-चतुष्टय प्रदर्शन अर्थम्॰॥ पुनर्	=कहे हुए सुखदुःख जीवित-मरण चारअवयवोंके दिखावनेके लिये फिर (=पुनः)
उपग्रहवचनम्॰॥ क्रियते॰; सुख आदीनि॰ ॥ अपि	=उपग्रहवाक्य(=इससूत्रमें)कियागया है सुख-दुःख जीवित मरणभी
जीवानाम्॰ जीवकृत॰ उपकार॰ इति॰ आह । यदि	=जीवोंके जीवकृत उपकार है कोई पूछता है कि जो (=यदि)
अवश्यम्॰ सता॰-उपकारिणा॰ भवितव्यम्॰॥,	=सत्तारूपवस्तु(=सत्)अवश्य उपकार सहित होनेयोग्य (=भवितव्यम्) है
सन्॰ च॰ कालम्॰ अभिमत॰ तस्य॰ क॰ उपकार॰	=और काल सत्तारूप वा सत्स्वरूप (=सन)मानागयाहै वोतिस(काल)काक्या उपकार है

(१) सत यहांपर प्रथमा विभक्ति एकवचन पुलिंग 'सत' शब्दका है । इसकाअर्थ सतरूप अथवा सत्स्वरूपहै।()तत्त्वार्थराजवार्तिकमें आईस इत्याभ्यंत तक यह वाक्य ऐसा ही है जैसाकि सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है 'तस्य क उपकारः' के स्थानमें सत्क्रिमुपकारः राजवार्तिकमें है उससे अर्थभेद नहीं होताहै। इस वाक्यका अनुवाद पंडित पन्नालालजी दूनीवाले और पंडित पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने क्रमसे ऐसे किया है चाऊ शिष्य कहे है जो अवश्य

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्द कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रह परस्परोपग्रह । जीवानामुपकार ॥ कः पुनरसौ ? । स्वामी भृत्य, आचार्य शिष्य, इत्येवमादि भावेन वृत्ति परस्परोपग्रह ॥

[1]सूत्रम्—परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकार)भवति॥२१॥

सूत्रार्थ—परस्पर उपग्रह-[2]जीवानाम् =परस्पर उपकार जीवोंको

जीवानाम् [3]उपकार भवति =जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूषा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुख का निमित्त, दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूषा आदिका हेतुभी होते हैं

वृत्त्यनुवाद—परस्परशब्द कर्म-व्यतिहारे वर्तते =(इस सूत्रमें)परस्परशब्द क्रिया(=कर्म)के अलटन पलटन(=व्यतिहार)के अर्थविषै वर्तता है

कर्मव्यतिहार च क्रियाव्यतिहार =और(=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह यह करता है और उसको उपग्रह यह करता है

परस्परस्य उपग्रह परस्पर-उपग्रह =आपसका उपग्रह या अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है

जीवानाम् उपकार =(यह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार अवर्तता है

कः पुन असौ स्वामी भृत्य =(प्रश्न)बहुरि(=पुनः)यह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर

आचार्य शिष्य इत्येवम् आदि भावेन =आचार्य शिष्य इत्यादिककी हृदयकी अवस्थासे(=भावेन)

वृत्ति परस्पर-उपग्रह =जो चेष्टा-प्रयोग-उपाय व्यवसायरूप =वृत्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां किसी २ पुस्तकमें जीवानाम् के स्थान पर 'जीवानां' पाठ है वह वास्तवरूप भाषा व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५ ६, और पृष्ठ ५३३, ५४०)

(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति १५वें सूत्रसे आती है । (३) 'उपकार' इस शब्दकी अनुवृत्ति सत्तरवां सूत्रसे आती है ।

= वर्तना-परिणाम-क्रिया-[1]परत्वापरत्वेच(जीवानाम् पुद्गलानाम्) कालस्य(उपकार)भवति॥ २२॥

"और तथा और वर्तीनो चके अर्थवाची होसकते हैं परन्तु चकार को कोष्ठकमें लानेके पश्चात् और" शब्द लाये हैं। इससे जानपड़ता है कि उपकार का प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रसे पिछले सूत्रसे मिलादिया है अर्थात् जीवोंके परस्पर उपकार है (सूत्र २१) और (=च) कालके वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ये पांच उपकार हैं। सूत्र २२ ॥ ऐसे दोनों सूत्रोंको मिलासकते हैं। 'तथा' शब्द अधिक जान पड़ता है अंतिम और शब्द 'परत्वापरत्व' समासका तोड़नेसे 'परत्व अपरत्व च' ऐसा होजाता है सो इस चकारका भावानुवाद है। पंडित सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका और पंडित जयचंदजीकृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका में चकारका भावानुवाद नहीं है अर्थात् दोनोंमें यथाक्रम ऐसा अर्थ किया है कि वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालकृत उपकार हैं। वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्व ए कालके उपकार हैं ॥

(ii) द्विवचनान्त क्यों है (उत्तर) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ५८७ का पाठ है कि 'ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु =ऐसा सूत्रमें वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये 'तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्' इस वर्तनाके भेद परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व है तिन भेदोंका भिन्न ग्रहण निःप्रयोजन है नानर्थकम् = निष्प्रयोजन परिणामादयका ग्रहण नहीं है। कालद्वय सूचनार्थत्वात्प्रपंचस्य = क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके लिए विस्तारका कथन है। कालोहि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च = काल दो प्रकार है परमार्थकाल और व्यवहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लक्षण = वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थकाल है। परिणामादि लक्षणो व्यवहारकालः = परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो व्यवहारकाल है। अब वर्तना निश्चयकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं तब वर्तना शब्दको एक वचन मानकर और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व इन सबको एक मानकर दोनोंको मिलाकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे ऐसा द्विवचन किया है। इन दोनों शंकाओंका समाधान ऐसा होसकता है कि यदि चकारको समुच्चयके अर्थ में लेवें अर्थात् उपकारका प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रको पूर्व २१ वां सूत्रसे मिलादिया जावे 'वर्तना' को निश्चयकालका लक्षण मानकर और परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्वको व्यवहारकालका लक्षण मानकर दोनोंप्रकारके लक्षणोंको एक एक मानकर मिला देवें समास करदेवें तो च वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे कालस्य ऐसा सूत्र होजाता है

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें "वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य" ऐसे सूत्रका यह हेतु दिया है कि 'परत्वापरत्वे (= परत्व अपरत्वे च) सापेक्ष होनेसे 'परत्व अपरत्व' को दो शब्द पृथक् पृथक् समझकर नपुंसकलिंगमें द्विवचनमें लाये और वर्तना-परिणाम क्रिया इतनेका एकसमास करके "वर्तना परिणाम-क्रिया ऐसा स्त्रीलिंग बहुवचनमें लाये क्योंकि क्रियाशब्द स्त्रीलिंग है। परत्व अपरत्व दोनों नपुंसकलिंगी हैं और "च 'वर्तना परिणाम क्रिया' और परत्वापरत्वे दोनों समासोंको मिलाता है। अब अर्थ ऐसा हुआ कि 'वर्तना परिणाम क्रिया और परत्वापरत्व कालके उपकार हैं। यहांपर स्मरण रहै कि इस सूत्रमें कालस्य शब्दका प्रयोग सामान्यरूपमें किया है कालशब्द निश्चयकाल और व्यवहारकाल अर्थात् समय आवली मुहूर्त पहर दिन इत्यादि दोनों का वाचक है इसलिये यह अर्थ हुआ कि 'वर्तना निश्चय वा परमार्थकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व और अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं ॥

इत्यत्रोच्यते—

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेचकालस्य ॥ २२ ॥

भावार्थ ऐसा है कि जब यह बात सुनिश्चितरूपसे मानी जाचुकी है कि जो सत्स्वरूप होगा वह अवश्य उपकारी होगा जैसे धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इत्यादि पदार्थ सत्स्वरूप हैं इसलिये वे उपकारी मानेगये हैं तब काल द्रव्यभी सत्स्वरूप पदार्थ है उसका उपकार है। कालद्रव्यका लक्षण विशदरूपसे आगे सूत्र ३९में कहाजायगा और वह अमूर्तीक स्वरूप और निष्कर्म है सब द्रव्योंका यहां उपकार प्रकरण है इसलिये

इति प्रश्नः उच्यते । =इस प्रकार यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाता है कि—

सूत्रम्—वर्तनापरिणामक्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

उपकारीहू मत दोनों मालम है जो सबका काल अभिमत है सो कहा उपकारवान है" । तत्त्वार्थराजवार्तिक अध्याय५ पृष्ठ १६ भागों जो सत्तारूप वस्तु है कोई उपकारकरि परिणमन करे ताव है। काल द्रव्य भी सत्ता स्वरूप है" सो कालद्रव्य कहीं उपकाररूप है तत्त्वार्थरत्नमाला अध्याय ५ पृष्ठ ६९ ।

(१) इस सूत्रके दर पाठ हैं। मुद्रितसंस्कृत सर्वार्थसिद्धि की और पन्नालालजी बाकलीवाल मुद्रित मोक्षशास्त्रकी दोनों दोनों आवृत्तियोंमें उपर्युक्त पाठ है क्योंकि अनुवाद संस्कृत सर्वार्थसिद्धिसे किया है। अतः पूर्वोक्त पाठ लिया है (२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२७में वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वेचकालस्य' ऐसा पाठ है। यहांपर तत्त्वभाष्यमें यह टिप्पणी भी है कि 'यहां पर वर्तना परिणाम और क्रिया इन तीनों पदोंका विरोध न होनेसे समास करके पढ़ना चाहिये कोई असमस्त ही पढ़ते हैं। ज्ञापक होनेसे परत्वापरत्वका तो समास है ही' । और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक(मुद्रित) पृष्ठ ४१२में वर्तनया समाप्यका ही पाठ है अर्थात् दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एकप्रकारसे एकसा' वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य हुआ।२१। और दोनों आम्नायोंमें अर्थभी एकसा है। (३) पण्डित सदासुखजी कृत 'अर्थप्रकाशिका' के पृष्ठ २०८ और पण्डित सदासुखजीकृत लघु भाषाटीका के पृष्ठ २१ में पण्डित जयचन्द्रजीकृत सर्वार्थसिद्धि वचनिकाके पृष्ठ १५० में निर्णयसागर मुद्रित बम्बई के तीन नित्यपाठसंग्रहके ११६ दोनों आवृत्तियोंमें (जहां तत्त्वार्थसूत्र मुद्रित है) और श्रीयुत [illegible] मुद्रित तत्त्वार्थसूत्रादि के पृष्ठ १६में और सनातन जैनग्रन्थमालाके पृष्ठ ९० में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक के पृष्ठ २२१ में निम्नलिखित पाठ है। "वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वेच कालस्य" इस पाठमें दो शंकायें उत्पन्न होती हैं। प्रथम इस स्थान पर क्यों आई दूसरी शंका यह कि जब वर्तना शब्दसे परत्वे शब्दपर्यन्त एकसमासहै तो फिर लोकिकवचनमें समासान्त क्यों किया? बहुवचन करके ऐसा सूत्र क्यों न किया कि वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वानि च कालस्य (क) चकारके सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामीने वृत्तिमें भी कुछ नहीं लिखा कि क्यों लाए और अकलंक [illegible] लिखागया है किसी भाषाके अनुवादक महाशय ने भी नहीं लिखा कि "च"शब्द सूत्रमें इस कारणसे लाए हैं हो पन्नालाल [illegible] मोक्षशास्त्र [illegible] भाषाटीका सहित द्वितीयावृत्ति के पृष्ठ १६ में ऐसा अर्थ किया है "(च)और (कालस्य) कालके (वर्तना परिणामक्रिया) वर्तना, परिणामः क्रिया तथा (परत्वा परत्वे) परत्व और अपरत्व ये पांच उपकार हैं इस अनुवादमें

= वर्तना-परिणाम-क्रियाः-[1]परत्वापरत्वेच(जीवानाम् पुद्गलानाम्) कालस्य(उपकार)भवति॥ २२॥

और तथा और येतोनो शब्द अर्थवाची होसकते हैं परन्तु चकार को कोष्ठकमें लानेके पश्चात् और शब्द लाये हैं। इससे जानपड़ता है कि उपकार का प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रसे पिछले सूत्रसे मिलादिया है अर्थात् जीवोंके परस्पर उपकार है (सूत्र २१) और (= च) कालके वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ये पांच उपकार हैं। सूत्र २२ ॥ ऐसे दोनों सूत्रोंको मिलासकते हैं। तथा 'शब्द अधिक जान पड़ताहै अंतिम 'और' शब्द परत्वापरत्व समासका तोड़नसे "परत्व अपरत्वंच ऐसा होजाता है सो इस चकारका भावानुवाद है। पंडित सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका और पंडित जयचंद्रजीकृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका में चकारका भावानुवाद नहीं है अर्थात् दोनोंमें यथाक्रम ऐसा अर्थ किया है कि "वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालकृत उपकार हैं। वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्व ए कालके उपकार हैं ॥

(ii) द्विवचनान्त क्यों है (उत्तर) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १८८ का पाठ है कि नन वर्तनाग्रहणमेवास्तु = इस सूत्रमें वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम् = इस वर्तनाके भेद परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व है तिन भेदोंका भिन्न ग्रहण निःप्रयोजन है नानर्थकम् = निःप्रयोजन परिणामादिका ग्रहण नहीं है ॥ कालद्वय सूचनार्थत्वात्प्रपञ्चस्य = क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके लिये विस्तारकर कथन है। कालोहि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च = काल दो प्रकार है परमार्थकाल और व्यवहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लक्षण = वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थकाल है ॥ परिणामादि लक्षणो व्यवहारकालः = परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व है लक्षण जिसका सो व्यवहारकाल है ॥ अब वर्तना निश्चयकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं तब वर्तना शब्दको एक वचन मानकर और परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व इन सबको एक मानकर दोनोंको मिलाकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे ऐसा द्विवचन किया है। दोनों शंकाओंका समाधान ऐसा होसकता है कि यदि चकारको समुच्चयके अर्थ में लेलें अर्थात् उपकारका प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रको पूर्व २१ वां सूत्रमें मिलादिया जावे 'वर्तना'को निश्चयकालका लक्षण मानकर और परिणाम क्रिया परत्वअपरत्वको व्यवहारकालका लक्षण मानकर दोनोंप्रकारके लक्षणोंको एक एक मानकर मिला देवें समास करदेवें तो ये वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे कालस्य ऐसा सूत्र होजाता है

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें ।वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य" इस सूत्रका यह हेतु दिया है कि 'परत्वापरत्वे (= परत्व अपरत्वं च) साधन होनेसे परत्व अपरत्व' का दो शब्द पृथक् पृथक् समझकर नपुंसकलिंगमें द्विवचनमें लाये और वर्तना-परिणाम क्रिया इतनेका एकसमास करके 'वर्तना परिणाम क्रिया' ऐसा स्त्रीलिंग बहुवचनमें लाये क्योंकि क्रियाशब्द स्त्रीलिंग है ॥ परत्व अपरत्व दोनों नपुंसकलिंगी हैं और "च" 'वर्तना परिणाम क्रियाः और परत्वा परत्व दोनों समासोंको मिलाता है। अब अर्थ ऐसा हुआ कि वर्तना परिणाम क्रिया और परत्वापरत्व कालके उपकार हैं॥ यहांपर स्मरण रहे कि इस सूत्रमें कालस्य शब्दका प्रयोग सामान्यरूपमें किया है कालद्रव्य निश्चयकाल और व्यवहारकाल अर्थात् समय आवली मुहूर्त पहर दिन इत्यादि दोनों का द्योतक है इसलिये यह अर्थ हुआ कि 'वर्तना निश्चय या परमार्थकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व और अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं ॥

= (1) वर्तना-परिणाम-क्रिया —च परत्वम् अपरत्वम् च (=परत्वापरत्वे) जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकार भवति॥ २२॥

सूत्रार्थ—वर्तना =वर्तना =पदार्थोंकी पर्यायोंके पूरणकरनेमें बाह्य सहकारता)
परिणाम =परिणाम(=द्रव्यका अपने स्वभावको न छोड़कर पहिली अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना)
क्रिया =क्रिया (=हलनचलनादिरूप होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसर क्षेत्र तक जाना)
च=परत्वम् =और परत्व (=एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें बड़ापन अथवा पहिले होना या पूर्वता)
अपरत्वम् च =तथा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामें छोटा होना अथवा पिछलापन या छोटापन)
जीवानाम् पुद्गलानाम् =(ये पांच) जीवोंको और पुद्गलोंको
कालस्य उपकार =काल(द्रव्य का उपकार है अर्थात् वर्तना लक्षण निश्चय या परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व व्यवहार कालके लक्षण हैं भावार्थ यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है।(१) निश्चयकाल या परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अन्तस रहित है अमूर्त है, नित्य है समय घंटा आदिका उपादानकारण भूत है तो भी समय आदि भेदोंसे रहित है और कालाणुद्रव्यरूप है यह तो निश्चयकाल है बृहद्द्रव्यसंग्रह (पृष्ठ ५४) (२)जो आदि तथा अन्तसे सहित है समय घड़िका तथा महः आदि विभक्तित व्यवहारके विकल्पोंसे युक्त है यह उसी द्रव्यकालका पर्यायभूत व्यवहारकाल है (बृहद्द्रव्य संग्रह पृष्ठ ५४) अथवा यों कहिये ।क जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जो नूतन तथा जीर्ण

(१) धर्मादिक द्रव्यें अपनी अपनी पर्यायोंके पूर्वार्थ (=पूर्णार्थ) अपने अपने उपादान कारणकरि स्वभावसही वर्तें हैं तीनां (=तथापि) जैसे कुम्हारके चाकके भूमकमें उसके नीचेकी शिलाकीसी सहकारिणी है तैसे जो इस अन्तरंग परिणतिमें अथवा वर्तनेमें बाह्यकारण है जा सब पदार्थोंकी परिणतिमें सहकारी है उसीका "वर्तना" कहत हैं ॥

(२) वर्तें तो सर्वद्रव्योंके पर्याय हैं इन द्रव्योंका प्रवर्तानेवाला अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है तिस समय स्वरूप वर्तनाको कालका बतना कहिये (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ५४१) यहां भावार्थ ऐसा है जो धर्मादि द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटाने कूं समय है सोही निमित्त मात्र है। तिस समय ही कू कालकी वर्तना कहिये है। यह वर्तना हो कालाणु द्रव्यका अस्तित्व जनावे है। बहुरि इस वर्तनाकू जेती [illegible] लगी ताका नाम काल कहिये। सा यह व्यवहारकालसंज्ञा है। सो तिस निश्चयकालकी अपेक्षा ही है कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यनिकू कालका उपकार है। सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ ५४५

वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा [1]युट् स्त्रीलिङ्गे वर्तते । तेनेति भवति ।

पर्याय है उस पर्यायकी जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वही जिसका स्वरूप है वह द्रव्यपर्यायरूप व्यवहारकाल है सोही संस्कृत प्राभृतमें कहागी है कि "स्थिति जो है सो कालसंज्ञक है" तात्पर्य यह है कि उस द्रव्यके पर्यायसे संबन्ध रखनेवाली जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वह स्थितिही 'व्यवहारकाल' इस संज्ञाकी धारक होतीहै ॥ निश्चयकालका वर्तनालक्षण है और व्यवहारकालके परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व लक्षण हैं ये पांचों निश्चयकालके निमित्तसे होते हैं और अन्य द्रव्योंको यह (निश्चय)कालद्रव्यका उपकार है और उसी परमार्थकालका अस्तित्व बताते हैं । क्योंकि व्यवहारकाल गौण निश्चय मुख्यकाल के बिना नहीं होसकता है ॥ व्यवहारकाल अन्यपदार्थों करि जाना जाता है जैसे दिनरात आदिक व्यवहारकाल सूर्यादिकके उदय अस्तसे जाने जाते हैं और व्यवहारकाल ही अन्य पदार्थों के जतलानेका कारण है जैसे यह पुत्र शतवर्षका है ॥ यातें (व्यवहारकालसे)निश्चयकाल जाना जाता है । (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ४४३देखो) 'जीवपुद्गलोंकेपरिणमनकरि व्यवहारकाल प्रगट होय है सो यह व्यवहारकाल तीनप्रकार है' (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ३०६) अतीत(=भूत) वर्तमान अनागत(=भविष्यत्) ॥ निश्चयकालविषैं एक एक लोकाकाशके प्रदेशविषैं आपसमें परस्पर भिन्न २ रत्नकी राशिके सदृश तिष्ठते असंख्यातकालाणु तिनकों काल कहना सो तो मुख्य है और भूत वर्तमान भविष्यत् नाम कहना गौणहै और व्यवहारकालविषैं अतीत वर्तमान अनागतनाम है सो तो मुख्य है और काल कहना गौण है ।

वृत्त्यनुवाद—(१)वृतेः[1] णिच्-अन्तात्[2]	=वृत्(=होना)(धातु)से(परें)णिच्(प्रत्यय)के अन्तमें आनेसे (वृत् धातुका) प्रेरक(प्रयोजक हेतुकर्ता या काममें लगानेद्वारा)अर्थ होजाता है अर्थात् वृत् धातु अकर्मकसे सहेतुक सकर्मक क्रिया होजातीहै
कर्मणि[3]॥ भावे[4] वा युट्[5]	=(सो वृत् धातु)कर्मविषैं(कर्मणि प्रयोगमें)वर्तता है अथवा भावमें युट्(=अन) प्रत्यय सहित
स्त्रीलिङ्गे[6] वर्तते[7] तेन[8] इति भवति[9]	=स्त्रीलिंगमें वर्तता है । तिस (कर्मणि वा भावे) करि ऐसा होता है

(१) पूज्यपाद स्वामीके 'युट' औपाधिकके "ल्युट्" और श्रीअकलंकदेवके वार्तिकके रचयिताके युट् प्रत्ययोंके स्थानमें 'अन' होजाता है सूत्रमें 'काल'शब्द सामान्यतासे निश्चय और व्यवहार कालका वाचक है । (२)(क) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तते । तेनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ ऐसा पाठ सर्वार्थसिद्धिकी वृत्तिकी प्रथमा वृत्तिमें है । (ख) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिमें है । द्वितीयावृत्तिके पाठमें 'वर्त्यते'के पश्चात् 'वर्तते' शब्द नहीं होना चाहिये शेष पाठमें यद्यपि दोनों संस्करणों में कुछ अन्तर है परन्तु अर्थ दोनों पाठोंका एकसा बनजाता है जैसे प्रथमके अर्थके लिये देखो इस पृष्ठको और पृष्ठ.. को । दूसरेके स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति वाक्यका अर्थ है कि 'स्त्रीलिंगमें वर्तना शब्द ऐसा होता है' ॥ दूसरे पाठमें 'वर्तते' शब्द इस हेतुसे ठीक नहीं है कि यह 'वर्तते' प्रथम "वृत" धातुका है और यहां पर केवल कर्मणि प्रयोग' और भावे प्रयोगमें' वृत्में णिच् प्रत्यय लगाया है ॥ तीन

= [1]वर्तना-परिणाम-क्रिया —च परत्वम् अपरत्वम् च(=परत्वापरत्वे)जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकार भवति॥२२॥

सूत्रार्थ —वर्तना	=वर्तना =पदार्थोंकी पर्यायोंके पूरणकरनेमें [illegible] सहकारता)
परिणाम-	=परिणाम(=द्रव्यका अपने स्वभावको न छोड़कर पहिली अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना)
क्रिया॥	=क्रिया (=हलनचलनादिरूप होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना)
च-परत्वम्॥	=और परत्व (=एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें बड़ापन अथवा पहिले होना या पूर्वता)
अपरत्वम्॥ च	=तथा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामें छोटा होना अथवा पिछलापन या छोटापन)
जीवानाम्॥ पुद्गलानाम्॥	=(ये पांच) जीवोंको और पुद्गलोंको
कालस्य॥ उपकारः॥	=काल(द्रव्य कृत उपकार है अर्थात् वर्तना लक्षण निश्चय या परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व व्यवहार कालके लक्षण हैं भावार्थ यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है ।(१) निश्चयकाल या परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अन्तस रहित है अमूर्त है, नित्य है समय घड़ी आदिका उपादानकारण भूत है तो भी समय आदि भेदोंसे रहित है और कालाणुद्रव्यरूप है यह तो निश्चयकाल है बृहद्द्रव्यसग्रह (पृष्ठ ५४) (२)जो आदि तथा अन्तसे सहित है समय घटिका तथा प्रहर आदि विभक्षित व्यवहारके विकल्पोंसे युक्त है वह उसी द्रव्यकालका पर्यायभूत व्यवहारकाल है (बृहद्द्रव्य सग्रह पृष्ठ ५४) अथवा यों कहिये कि जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जो नूतन तथा जीर्ण

(१)धर्मादिक द्रव्यें अपनी अपनी पर्यायोंके पूर्णार्थ (=पुरुषार्थ)आपने अपने उपादान कारणकरि स्वभावसही वर्ते हैं तीनां(=तथापि)जैसे कुम्हारके चाकके भ्रमणमें उसके नीचेकी शिलाकीली सहकारिणी है तैसे जो उस अन्तरंग परिणतिमें अथवा वर्तनेमें बाह्य कारण है जो सब पदार्थोंकी परिणतिमें सहकारी है उसीका "वर्तना" कहते हैं ॥

(२) वर्ते जो सर्वद्रव्योंके पर्याय हैं उन द्रव्योंका प्रवर्तनेवाला अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है जिस समय स्वरूप वर्तनाको कालका वर्तना कहिये (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ४८१) यहां भावार्थ ऐसा है जो धर्मादि द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटाने कूं समय है सोही निमित्त मात्र है । तिस समय ही कूं कालकी वर्तना कहिये है । यह वर्तना तो कालाणु द्रव्यका अस्तित्व जनावे है । बहुरि [illegible] पलटनाकू जेती बार लगी ताका नाम काल कहिये । सो यह व्यवहारकालका है । सो तिस निश्चयकालकी अपेक्षा ही तो कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यनिकू कालका उपकार है । सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ ४८५

स्वात्मनैव वर्तमानाना बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षितः कालः

स्व आत्मना॑ एव०(१) वर्तमानानाम्॥ बाह्-	=आपसे स्व आत्मना॑)ही वर्तमानरूप हैं या वर्तनेशाली हैं (तौभी) बाह्य
उपग्रहात्॑ विना०|	=निमित्त विना (सहायता विना या सहारा विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की
(२)वृत्ति-अभावात्॑	=अन्तरंग परणति (=वृत्ति) या वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे
तत्-प्रवर्तना-उपलक्षितः॑ कालः॑	=उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेमें या प्रवर्तावनेमें काल जाना जाता है-निश्चय किया जाता है या पहचाना जाता है(=उपलक्षित)अर्थात् धर्मादिक द्रव्यें हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके

लिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्य निमित्त विना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है ॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमें लेजाकर पदार्थ दिखाये जावें तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य सहकारी कारण अर्थात् उजेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल या निश्चयकालकी सहायता विना वे द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ हैं। इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेमेंही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है॥

(१) 'धर्मादीनां' और वर्तमानानां येदोनों शब्द 'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और 'द्रव्याणां' शब्दके विशेषणहैं, अत नपुंसकलिंगमें रक्खेगये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ११७ में 'वृत्ति'शब्दका अर्थ 'अन्तःकरणका परिणामविशेष' और 'वर्तन' लिखाहै।इसलिये अन्तरंग परणति(पं०सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (पं० जयचन्द्रजीके अनुकूल) यहां पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद कियागया है॥

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है। यदि यहां पर 'वृतु॑ वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर एवं 'वर्तते अनया अस्यामिति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा वा जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जायगा तो यह नियम है कि प्रत्ययोंका ट् इत्संज्ञक चलाजाता है उससे ङी प्रत्यय होता है। यहांपरभी युट्में ट् इत्संज्ञक जानेसे ङी प्रत्यय होगा अतः 'वर्तनी' ऐसारूप सिद्ध होगा 'वर्तना' नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना' शब्दका ग्रहण अशुद्ध है।(उत्तर) यहांपर णिच्प्रत्ययांत 'वृतु॑' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थ के विवक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई संभावना नहीं॥ वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ॥ अथवा "अनुदात्तेतश्च हलादेः" जिसका अनुदात्त इत् जाता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतु॑' धातुका अनुदात्त इत्संज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुई है॥ वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है॥

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति

वर्त्यते । =वर्ताया जाता है (यह वाक्य कर्मणिप्रयोगमें वा कर्मप्रधानमें न कि कर्तरिप्रयोग वा कर्तृप्रधानमें है)

वर्तनमात्रं।।।वा॥वर्तना॥।। इति॥ =अथवा वर्तनमात्र वा वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा (भावेप्रयोग=भावमें काम लायागया) है । सो वर्तनाशब्द ऐसे बनाहै कि वृत् + णिच् + युट + आ (=स्त्रीलिंगका चिन्ह)=वर्त् + अन + आ=वर्तना णिच् के लगानेसे ऋको गुणसंज्ञा होकर वर्त् होगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया होगई ॥ वर्तना=दूसरोंको प्रवर्तावना अर्थात् पदार्थोंमें परिणमनमें सहकारिता । भावार्थ यह है कि वृत् धातुके अन्तमें णिच्प्रत्यय लगाया जिस णिच् प्रत्ययका यह फल होताहै कि वृत् धातुके ऋको गुणसंज्ञाहोकर वर्त् शब्द बनजाताहै और वृत् अकर्मक धातुको (णिच् प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है अर्थात् वृत् धातुका अर्थ (दूसरोंको) वर्तावना ऐसा होजाता है फिर युट् प्रत्यय जिसके स्थानमें अन होजाता है जोड़ा जाता है तब वर्त् + अन=वर्तन शब्द बना पश्चात् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह जोड़नेसे वर्त् + अन + आ होजाता है इसलिये वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भाव प्रयोगमें बना और उपर्युक्त कथित 'वर्त्' धातुमें य कर्मप्रधानका चिन्ह जोड़कर फिर अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपद वर्तमान क्रियाका चिन्ह 'ते' लगाते हैं तब वर्त् + य + ते=वर्त्यते (कर्मप्रधानमें) बनगया इस 'वर्त्यते' का अर्थ वर्तायाजाताहै इसलिये 'वर्तना' भावप्रयोग स्त्रीलिंगमें बना और 'वर्त्यते' कर्मप्रधान, एकवचन, अन्यपुरुष वर्तमानक्रियाका रूप बना॥

धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्याय-निर्वृत्तिं॥। प्रति॥ =धर्मादिक द्रव्यें अपने अपने पर्यायोंके निर्वृत्तिके लिये (=निर्वृत्ति प्रति)

प्रति हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिमें 'धर्मि स्वादिनो वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तमानमात्रं वा वर्तनेति' ऐसा पाठ है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकका पाठ 'णिजन्तात् (कर्मणि भावे वा लिङ्ग्यमान्) युचि कृते वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तनेति' ऐसा है ॥ इसलिये हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है ॥

(१) प० जयचन्द्रजीने वचनिका (पृष्ठ ४७१)में उत्पत्ति लिखा है सम्भव है कि जिस पाठपर उन्होंने वचनिका की हो उस पाठमें निवृत्ति'के स्थानमें उत्पत्ति वृत्ति वा निर्वृत्तिमेंसे कोई शब्द हो क्योंकि इन तीन शब्दोंमेंसे कोईभी उत्पत्तिके अर्थमें आसकता है परन्तु निवृत्ति"का अर्थ उत्पत्ति नहीं होसकता है राजवार्तिक और श्लोकवार्तिककी अवलोकन कियेगये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई । "निर्वृत्ति शब्द सर्वार्थसिद्धि व लिखी हस्तलिखित तीन प्रतियोंमें पायाजाता है परन्तु सर्वार्थसिद्धिकी दोनों मुद्रित प्रतियोंमें 'निवृत्ति' छपा हुआ है । इससे मैंने उस शब्दको लेकर अनुवाद किया है और मेरी समझमें एक प्रकारसे दोनोंही शब्दोंसे एकही भाव प्रगट होसकता है क्योंकि किसी द्रव्यकी एक पर्यायकी जिस समय निवृत्ति होती है उसी समयमें दूसरी पर्यायकी उत्पत्ति वा निर्वृत्ति होती है अथवा यों कहसकते हैं किसी द्रव्यकी जिस समय एक पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समय उस द्रव्यकी दूसरी पर्यायकी निर्वृत्ति होती है जैसे जिस समयमें आंगुलिरूप द्रव्यके वक्र (बांके) प्रायकी उत्पत्ति होती है उसी समयमें उसके सरल प्रायकी निवृत्ति होती है और अंगुलीरूपसे उस अंगुलीमें ध्रौव्य है अथवा यों दृष्टान्त लीजिये कि जिससमयमें अंगुलिरूप द्रव्यके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है उसी समयमें उसकी वक्र पर्यायकी उत्पत्ति होती है ॥ वृत=उत्पन्न (पद्मचन्द्रकोशपृष्ठ ११४ तक 'वृत्ति' स्त्रीलिंगमें उत्पत्ति के अर्थमें आसकता है ॥

स्व आत्मना॰। एव॰(१) वर्तमानानाम्॰।।। बाह्य-	=आपसे स्व आत्मना॰।)ही वर्तमानरूप हैं या वर्तनेवाली हैं (तौभी) बाह्य
उपग्रहात्॰। विना॰॰	=निमित्त बिना (सहायता बिना या सहारा बिना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की
(२) वृत्ति-अभावात्॰।	=अन्तरंग परणति (=वृत्ति) या वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे
तत् प्रवर्तना-उपलक्षित॰। कालः॰।	=उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेमें या प्रवर्तावनेमें काल माना जाता है-निश्चय क्रियाजाता है या पहचाना जाता है(=उपलक्षित')अर्थात् धर्मादिक द्रव्यें हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके

लिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्य निमित्त बिना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमें लेजाकर पदार्थ दिखाये जावें तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य सहकारी कारण अर्थात् उजेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल या निश्चयकालकी सहायता बिना ये द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ हैं। इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेसेही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है॥

(१) 'धर्मादीनां' और 'वर्तमानानां' येदोनों शब्द'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और'द्रव्याणां' शब्दके विशेषणहैं अत नपुंसकलिंगमें रक्खेगये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ ११५ में 'वृत्ति'शब्दका अर्थ'अन्तःकरणका परिणामविशेष'और 'वर्तन' लिखाहै।इसलिये अन्तरंग परणति(पं॰सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (पं॰ जयचन्द्ररायजीके अनुकूल) यहां पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद कियागया है॥

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है। यदि यहां पर 'वर्तोङ् वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर एवं 'वर्तते अनया अस्यांवेति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा या जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जावगा तो यह नियम है जिन प्रत्ययोंका ट् इत्संज्ञक बतलाता है उनसे ङी प्रत्यय होता है। यहांपरभी युट्में ट् इत्संज्ञक जानेसे ङी प्रत्यय होगा अतः 'वर्तनी'ऐसारूप सिद्ध होगा'वर्तना'नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना शब्दका उल्लेख अनुचित है।(उत्तर)यहांपर णिच्प्रत्ययांत'वृतोङ्' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थ'में विविक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई सम्भावना नहीं॥ 'वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ॥ अथवा "अनुदात्तेत्याच्छ्लीलिको वा जिसका अनुदात्त इत् जाता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतोङ्' धातुका अनुदात्त इत्संज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुई है॥ वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है॥

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति

वर्त्यते । =वर्ताया जाता है (यह वाक्य कर्मणिप्रयोगमें वा कर्मप्रधानमें न कि कर्तरिप्रयोग वा कर्तृप्रधानमें है)

वर्तनमात्रं ।¹ वा ॥ वर्तना ॥ इति ॥ =प्रवर्तावनेमात्र वा वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा (भावप्रयोग=भावमें काम लायागया) है। सो वर्तनाशब्द ऐसे बनाहै कि वृत् + णिच् + युट + आ (=स्त्रीलिंगका चिन्ह)=वर्त् + अन + आ=वर्तना णिच्के लगानेसे ऋको गुणसंज्ञा होकर वर्त् होगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया होगई ॥ वर्तना=दूसरोंको प्रवर्तावना अर्थात् पदार्थोंमें परिणमन में सहकारिता। भावार्थ यह है कि वृत् धातुके अन्तमें णिच्प्रत्यय लगाया जिस णिच् प्रत्ययका यह फल होता है कि वृत् धातुके ऋको गुणसंज्ञा होकर वर्त् शब्द बनजाता है और वृत् अकर्मक धातुको (णिच्प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है अर्थात् वृत् धातुका अर्थ (दूसरोंको) वर्तावना ऐसा होजाता है फिर युट् प्रत्यय जिसके स्थानमें अन होजाता है जोड़ा जाता है तब वर्त् + अन=वर्तन शब्द बना पश्चात् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह जोड़नेसे वर्त् + अन + आ होजाता है इसलिये वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भाव प्रयोगमें बना और उपर्युक्त कथित 'वर्त्' धातुमें य कर्मप्रधानका चिन्ह जोड़कर फिर अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपद वर्तमान क्रियाका चिन्ह 'ते' लगाते हैं तब वर्त् + य + ते=वर्त्यते (कर्मप्रधानमें) बनगया इस 'वर्त्यते' का अर्थ वर्ताया जाता है इसलिये 'वर्तना' भावप्रयोग स्त्रीलिंगमें बना और 'वर्त्यते' कर्मप्रधान, एकवचन, अन्यपुरुष वर्तमान क्रियाका रूप बना॥

धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्याय-निर्वृत्तिं ॥ प्रति ॥ =धर्मादिक द्रव्यों अपने अपने पर्यायोंके निर्वृत्तिके लिये (=निर्वृत्ति प्रति)

प्राप्त हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिमें 'धर्मि स्वात्मिको वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तमानमात्रं वा वर्तनेति' ऐसा पाठ है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकका पाठ 'णिचो (कर्मविभाव वा विभ्रमात्) वृत्ति सति वर्तनेति भवति । वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तनेति' ऐसा है ॥ इसलिये हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है ॥

(१) प॰ जयचन्द्ररायजी न वचनिका (पृष्ठ ४४१)में उत्पत्ति लिखा है सम्भव है कि जिस पाठसे उन्होंने वचनिका की हो उस पाठमें निर्वृत्ति के स्थानमें उत्पत्ति वृत्ति वा निर्वृत्ति इनमेंसे कोई शब्द हो क्योंकि इन तीन शब्दोंमेंसे कोईभी उत्पत्तिके अर्थमें आसकता है परन्तु निर्वृत्ति"का अर्थ उत्पत्ति नहीं होसकता है राजवार्तिक और श्लोकवार्तिककी अप्राप्तावस्था जितनाये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई ॥ "निर्वृत्ति" शब्द सर्वार्थसिद्धि व लिखी हस्तलिखित तीन प्रतियोंमें पायाजाता है परन्तु सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें 'निवृत्ति' छपा हुआ है ॥ इससे मैंने उस शब्दको लेकर अनुवाद किया है और मेरी समझमें एक प्रकारसे दोनोंही शब्दोंसे एकही भाव प्रगट होसकता है क्योंकि किसी द्रव्यकी एक पर्यायकी जिस समय निवृत्ति होती है उसी समयमें दूसरी पर्यायकी उत्पत्ति वा निर्वृत्ति होती है अथवा यों कहसकते हैं किसी द्रव्यकी जिस समय एक पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समय उस द्रव्यकी दूसरी पर्यायकी निर्वृत्ति होती है जैसे जिस समयमें अंगुलिरूप द्रव्यका वक्र (बांके) आकारकी उत्पत्ति होती है उसी समयमें उसके सरल आकारकी निवृत्ति होती है और अंगुलीपनेसे उस अंगुलीमें ध्रौव्य है अथवा यों कहना चाहिये कि जिससमयमें अंगुलिरूप द्रव्यके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है उसी समयमें उसकी वक्र पर्यायकी उत्पत्ति होती है ॥ वृत्=उत्पन्न (पद्यचन्द्रकोशपृष्ठ २९४ तथा 'वृत्ति' स्त्रीलिंगमें उत्पत्ति के अर्थमें आसकता है ॥

स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षित कालः

स्व आत्मना[1] एव॰(१) वर्तमानानाम्[1] बाह्य-उपग्रहात्[1] विना॰वद् (२)वृत्ति-अभावात्[1] तत् प्रवर्तना-उपलक्षितः[1] कालः[1]

=आपसे स्व-आत्मना[1]ही वर्तमानरूप हैं या वर्तनेवाली हैं (तौभी) बाह्य =निमित्त विना (सहायता विना या सहारा विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की =अन्तरंग परणति (=वृत्ति) या वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे =उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेमें या प्रवर्तावनेमें काल जाना जाता है-निश्चय क्रियाजाता है या पहचाना जाता है(=उपलक्षितः)अर्थात् धर्मादिक द्रव्यें हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तती हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके लिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्यनिमित्त विना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमें लेजाकर पदार्थ दिखाये जावें तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य सहकारी कारण अर्थात् उपेक्षा नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल या निश्चयकालकी सहायता विना ये द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ हैं। इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेमेंही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है॥

(१) 'धर्मादीनां' और 'वर्तमानानां' येदोनों शब्द 'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और'द्रव्याणां' शब्दके लिंग पलटें अतःनपुंसकलिंगमें रक्खेगये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३६७ में 'वृत्ति'शब्दका अर्थ "अन्तःकरणका परिणामविशेष"और 'वर्तन' लिखाहै।इसलिये अन्तरंग परणति(पं॰सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (पं॰ जयचन्द्ररायजीके अनुकूल) यहां पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद कियागया है॥

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है। यदि यहां पर 'वर्तङ् वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर एवं 'वर्तते अनया अस्यांवेति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा वा जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जायगा तो यह नियम है जिन प्रत्ययोंका ट् इत्संज्ञक बताजाता है उनसे ङी प्रत्यय होता है। यहांपरभी युट्में ट् इत्संज्ञक होनेसे ङी प्रत्यय होगा अतः 'वर्तनी'ऐसारूप सिद्ध होगा'वर्तना'नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना'शब्दका उल्लेख क्यों हुआ?(उत्तर)यहांपर णिच्प्रत्ययांत'वृतङ्' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थ के विविक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई संभावना नहीं॥ 'वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ॥ अथवा "अनुदात्तेत्वाच्च हलादेः" जिसका अनुदात्त इत् जाता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतङ्' धातुका अनुदात्त इत्संज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुई है॥ वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकार ॥ को णिजर्थ ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता काल ॥ यद्येव कालस्य क्रियावत्त्वं प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोष । निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्ट । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति। एव कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्य उपकार ; =इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है ।

क णिच् अर्थ ? वर्तते द्रव्य =(वृत्धातुमें)णिच् (प्रत्यय जो लगाया है,किसलिये है(उत्तर)वर्तती है द्रव्यकी

पर्याय तस्य (१)वर्तयिता काल ॥ =पर्याय, तिस(द्रव्यकी पर्याय)का वर्तावनेवाला काल है अर्थात् 'णिच्' प्रत्यय प्रयोजनके हेतुकर्ता विषें (जो कुछ हमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके प्रेरणा करनेवालेके अर्थ विषें यहां द्रव्यके वर्तावनेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक विषें आया है भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटनेका समय जो काल सोही (इस पलटनेकों) निमित्त है अतः इस प्रकार कहते है कि द्रव्योंकी पर्यायें वर्तती हैं तिन पर्यायोंका वर्तावनेवाला द्रव्यकाल अथवा निश्चयकाल है ॥

यदि एवम् कालस्य क्रियावत्त्वम् प्राप्नोति । =जो ऐसे है(कि काल वर्तावनेवाला है)तो कालके क्रियावान्पना प्राप्त होता है

यथा शिष्य अधीते, उपाध्याय अध्यापयति इति=जैसे शिष्य पढता है गुरु पढाता है ऐसा (होता है

न एष दोष , निमित्तमात्रे अपि =(उत्तर)यह दूषण नहीं है । निमित्त कारणमात्रमेंभी(नकि उपादान कारणमात्रमें)

हेतुकर्तृव्यपदेश दृष्ट , यथा कारीष =हेतु कर्ताका कथन वा नाम देखाजाता है जैसे कारीष अथवा कंडेकी

अग्नि अध्यापयति । =आग (शीतकालमें) पढाती है अर्थात् शीतकालमें शिष्य कंडेकी आगके सहारेसे स्वयं पढते हैं परन्तु संसार में ऐसेभी कहते हैं कि जाडेकी ऋतुमें अथवा अदृकालमें कंडेकी आग शिष्यको पढाती है ।

एवम् कालस्य हेतुकर्तृता ॥ =ऐसे कालके (पदार्थों के वर्तावनेमें) हेतुकर्तापना वा प्रेरकपना है ॥

---

(१) जैसे पितृ शब्दकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग 'पिता' बनै है तैसे 'वर्तयितृ पुल्लिंग शब्दका वर्तयिता एकवचन प्रथमाविभक्तिपुल्लिंग बनताहै ।

स कथं काल इत्यवसीयते ? समयादीनां क्रियाविशेषाणां समयादिभिर्निर्वर्त्यमानानां च पाकादीनां समय पाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढिसद्भावेऽपि समय कालः, ओदनपाककाल इति अध्यारोप्यमाणः कालव्यपदेशः ।

सः कथम् कालः इति अवसीयते ? =(प्रश्न)सो(करीपाके आगके दृष्टान्तवत्) कैसे काल जाना जाता है ? या निश्चय किया जाता है ?
समय-आदीनाम् (१) क्रियाविशेषाणाम् =समय आदिक क्रियाके विशेषोंके
(किसी विशेष क्रिया या अमुक क्रिया करनेमें जो समयादिक व्यतीत होते हैं सो)
समय आदिभिः निर्वर्त्यमानानाम् च पाक-आदीनाम् =तथा (=च)समय आदिकरि कियेहुए पाकआदिकोंका
समयः, पाकः इत्येवम् आदि (१) स्वसंज्ञारूढि =समय पाक इत्यादिमें स्वसंज्ञारूढि
सद्भावे अपि =होनेपर भी अर्थात् अपनी अपनी समय और पाककी संज्ञा प्रसिद्ध होनेपर भी
समयः कालः ओदनपाककालः इति अध्यारोप्यमाणः =समयकाल तथा भातका पाककाल(अनक्रमसे)ऐसा आरोपणकरि
काल-व्यपदेशः =(व्यवहार)कालका कथन होता है भावार्थ यह है कि किसी क्रिया करनेमें जो समय आवली, घंटा, वा दिन आदि लगता है तथा किसी कार्य जैसे भात ओषधि रसोई आदि करनेमें जो समय, आवली, घंटा वा दिन आदि व्यतीत होता है उसको(क्रमसे)समयकाल-आवलीकाल-घंटाकाल-दिवसकाल कहते हैं तथा ओदन(भात)पाककाल, ओषधि पाककाल, रसोई पाककाल कहते हैं सो यह समय, आवली तथा घंटा आदि व्यवहारकालका कथन है अर्थात् समय, आवली, घंटा तथा दिन आदि व्यवहारकाल है ।

(१) 'असंज्ञारूढि'-सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें 'स्वसंज्ञारूढि' के स्थानमें 'असंज्ञारूढि' अशुद्ध छपगया है । असंज्ञारूढि शब्दका कुछभी यौगिकअर्थ नहीं बनता है असंज्ञारूढि होनेपर असंज्ञा कैसे रूढि या प्रसिद्ध होसकती है अतः पाठ शुद्ध करदियागया है । सर्वार्थसिद्धि तीन हस्तलिखितप्रतियोंमें भी तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके "समयपाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढि सद्भावेऽपि" वाक्यमें जो शब्द या सर्वार्थसिद्धिके पाठसे मिलता है 'स्वसंज्ञारूढि' शब्द पाया जाता है ।

(२) पुद्गल परमाणुका आकाशकी एक प्रदेशसे दूसरी अणुतक मंदगति जानेमें अथवा लोकाकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक मंदगति जानेमें जोकाल व्यतीत होता है उसको समय कहते हैं । ऐसा करनेमें पुद्गल परमाणुकी जाने रूपक्रियाको विशेष किया कहसकते हैं । 'एक काल अणुसेती दूजी-अणु प्रमाण पुद्गलकी परवान तहां समय होत है । असंख्य कोरी घरी मूहर्तसों दिन होय मास रितु वर्ष, ऐसे कालिक कहोत है । नई वस्तु जोपी करे परावर्त चाल धरे सोई व्यवहारकाल विनासीक पोत है । अतीत अनागत वरतमान परजाय कालानु वर्ण सबी आकेवर बोध देशयामतविलास ॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकार ॥ को णिजर्थ ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता काल ॥ यद्येवं कालस्य क्रियावत्त्वं प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोष । निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्ट । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति । एव कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्य उपकार ; =इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है ।

क णिच् अर्थ ? वर्तते द्रव्य =(वृत् धातुमें) णिच् प्रत्यय जो लगाया है, किसलिये है (उत्तर) वर्तती है द्रव्यकी

पर्याय तस्य वर्तयिता काल ॥ =पर्याय, तिस (द्रव्यकी पर्याय) का वर्तावनेवाला काल है अर्थात् 'णिच्' प्रत्यय प्रयोजनके हेतुकर्ता विषैं (जो कुछ हमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके प्रेरणा करनेवालेके अर्थ विषैं यहां द्रव्यके वर्तावनेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक विषैं आया है भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटनेका समय जो काल सोही (इस पलटनेकों) निमित्त है अतः इस प्रकार कहते है कि द्रव्योंकी पर्यायें वर्तती हैं तिन पर्यायोंका वर्तावनेवाला द्रव्यकाल अथवा निश्चयकाल है ॥

यदि एवम् कालस्य क्रियावत्त्वम् प्राप्नोति । =जो ऐसे है (कि काल वर्तावनेवाला है) तो कालके क्रियावान्पना प्राप्त होता है

यथा शिष्य अधीते, उपाध्याय अध्यापयति इति =जैसे शिष्य पढ़ता है गुरु पढ़ाता है ऐसा (होता है

न एष दोष, निमित्तमात्रे अपि =(उत्तर) यह दूषण नहीं है । निमित्त कारणमात्रमेंभी (नहिं उपादान कारणमात्रमें)

हेतुकर्तृ-व्यपदेश दृष्ट, यथा कारीष =हेतु कर्ताका कथन वा नाम देखाजाता है जैसे कारीष अथवा कंडेकी

अग्नि अध्यापयति । =आग (शीतकालमें) पढ़ाती है अर्थात् शीतकालमें शिष्य कंडेकी आगके सहारेसे स्वयं पढ़ते हैं परन्तु संसार में ऐसेभी कहते हैं कि जाडेकी ऋतुमें अथवा जड़कालमें कंडेकी आग शिष्यको पढ़ाती है ।

एवम् कालस्य हेतुकर्तृता ॥ =ऐसे कालके (पदार्थों के वर्तावनेमें) हेतुकर्तापना वा प्रेरकपना है ॥

---

(१) जैसे पितृ शब्दकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग 'पिता' शब्द है तैसे 'वर्तयितृ' पुल्लिंग शब्दका वर्तयिता एकवचन प्रथमाविभक्तिपुल्लिंग बनता है ।

वृद्धिहानिकृत ॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका । सा द्विविधा । प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात् । तत्र प्रयोगिकी शकटादीनां, वैस्रसिकी मेघादीनाम् ॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्त । तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते ॥ त एते वर्तनादय उपकारा कालस्यास्तित्वं गमयन्ति ॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदा परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्। नानर्थकम्। कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि-कृतः, क्रिया, परिस्पन्द-आत्मिका, प्रायोगिक =वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है। हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है ॥ प्रायोगिक
वैस्रसिक भेदात्, सा, द्विविधा, तत्र प्रयोगिकी =तथा वैस्रसिक भेदसे यह(क्रिया) दो प्रकार है। तहां प्रायोगकी क्रिया अर्थात्
शकटादीनाम् =(अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)
वैस्रसिकी =वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं या निजस्वभावसे विना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली
मेघादीनाम्, परत्व अपरत्वे, क्षेत्रकृते =(जैसे)बादलादिका (=मेघादीनाम्) ॥ परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृत
कालकृते, स्तः, ते, अत्र कालउपकरणात् =(और)कालकृत(दोनों प्रकारके) हैं, वे यहां कालका प्रधान साधन होनेसे
काल कृते, गृह्येते ॥ =कालकृत या कालसंबंधीय (जो परत्व अपरत्व विषयभूत होनसे)लियेगये हैं
ते, एते, वर्तना आदयः, उपकाराः, कालस्य =वे एते वर्तनादिक उपकार(निश्चय-मुख्य-या परमार्थ)कालकी
अस्तित्वम्, गमयन्ति ॥ =विद्यमानताको जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते हैं और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल या असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है ॥
ननु, वर्तना-ग्रहणम्, एव, अस्तु, तद् भेदाः =प्रश्न (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये, उस (वर्तना)के भेद
परिणाम-आदयः, तेषां, पृथग्-ग्रहणम्, अनर्थकं =परिणाम-क्रिया-परत्व अपरत्व हैं। उन भेदोंका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है
न, अनर्थकम्, =उत्तर (परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व वर्तनाके भेदोंकासूत्रमेंग्रहणकरना)निष्प्रयोजन नहीं है
कालद्वय सूचन अर्थत्वात् =क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ अर्थात् कालके दो भेद जतलानेके लिये

---

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारसे हैं (क) प्रशंसाकृत जैसे धर्म 'पर' है ज्ञान 'पर' है तथा अधर्म 'अपर' है अज्ञान 'अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकदेश या कालमें स्थित दो पदार्थोंके बिचमें जो दूरहै वहतो पर है और जो समीप है वह अपर है (ग)कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षासे

तद्व्यपदेशनिमित्तस्य मुख्यस्य कालस्यास्तित्वं गमयति। कुतः ? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् ॥ द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूप अपरिस्पन्दात्मक परिणामो, जीवस्य क्रोधादि । पुद्गलस्य वर्णादि । धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुण-

तद्-व्यपदेश-निमित्तस्य = उस(व्यवहारकाल)का(उपर्युक्त)कथन(अपने)निमित्तक अथवा हेतुकर्ता

मुख्यस्य कालस्य अस्तित्वम् गमयति । =निश्चय(=मुख्य)या परमार्थ (=मुख्य)कालकी विद्यमानताको जताता है भावार्थ समय आवली घटिका इत्यादिरूप जो व्यवहारकाल है जिस(समय आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकाल) नामको निमित्त ऐसा जो निश्चयकाल (=असंख्यातरूपकालाणु) विन असंख्यात कालाणुओंका अस्तित्व या विद्यमानता इस(समय-आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकालसे जानी जाती है

कुतः ? = प्रश्न)(व्यवहारकालसे निश्चयकालका ज्ञान)क्योंकर होता है।

गौणस्य मुख्य अपेक्षत्वात् । गौणकी(विद्यमानता) =मुख्यकी अपेक्षासे होती है अर्थात् क्योंकि गौण मुख्यके बिना कभीभी नहीं होसक्ता है भावार्थ व्यवहारकाल गौण है, निश्चयकाल मुख्य है, ओदनपाकादि जो प्रसिद्ध व्यवहारकाल है वह निश्चयकालसे उत्पन्न होने वाले समय आदिका समूह है बिना निश्चयकालके व्यवहारकाल उत्पन्न नहीं होसकता इसलिये व्यवहारकालसे निश्चयकाल जाना जाता है ॥

द्रव्यस्य पर्यायः धर्मान्तर-निवृत्ति-(१ धर्मान्तर उपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणामः =द्रव्यकी पर्याय(अर्थात्)अन्य अवस्थाको(=धर्मान्तर)छोड़कर दूसरी अवस्था =रूप होना तथा क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें चलनरूप न होना सो परिणाम या परणति है

जीवस्य क्रोधादिः, पुद्गलस्य वर्ण-आदिः =जीवके क्रोधादिक (परिणाम) है पुद्गल के वर्णादिक(परिणाम) है ।

धर्माधर्म-आकाशानाम् (२ अगुरुलघुगुण =धर्माधर्म आकाशके अगुरुलघुगुण अथवा द्रव्यकीद्रव्यताररखनेवाले गुणकी

(१) यह हस्तलिखित प्रतिके पृष्ठ ४४ पर 'निवृत्ति' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि निवृत्तिका अर्थ छोड़ना निश्चित होजाता है जिसे त्तिका अर्थ रचना प्रगट करता है। यहां पर पहिले अर्थमें है ॥

(२) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता स्थिर रहै अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमे और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्तगुण बिखरकर जुदे २ न होजावैं उसको अगुरुलघुगुण कहते हैं ॥

(३) यहां २ पर क्रिया तीन प्रकारकी मानी है प्रथम प्रायोगकि द्वितीय विस्रसा और तृतीय मिश्र...।

वृद्धिहानिकृत ॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका । सा द्विविधा । प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात् । तत्र प्रयोगिकी शकटादीना, वैस्रसिकी मेघादीनाम् ॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्त । तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते ॥ त एते वर्तनादय उपकारा कालस्यास्तित्वं गमयन्ति ॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदा परिणामादयस्तेषा पृथग्ग्रहणमनर्थकम्। नानर्थकम् । कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि-कृता॥ क्रिया॥ परिस्पन्द आत्मिका॥ प्रायोगिक	=वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है । हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है ॥ प्रायोगिक
वैस्रसिक भेदात्॥ सा॥ द्विविधा॥ तत्रप्रयोगिकी॥	=तथा वैस्रसिक भेदसे वह(क्रिया) दो प्रकार है । तहां प्रायोगकी क्रिया अर्थात्
शकटादीनाम्॥	=(अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)
वैस्रसिकी॥	=वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं या निजस्वभावसे बिना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली
मेघादीनाम्॥ परत्व-अपरत्वे॥ क्षेत्रकृते॥	=(जैसे)बादलादिका (=मेघादीनाम्) ॥ परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृत
कालकृते॥ स्त। ते॥ अत्र कालउपकरणात्॥	=(और)कालकृत(दोनो प्रकारके) हैं,वे यहां कालका प्रधान साधन होनेसे
काल कृते॥ गृह्यते ॥	=कालकृत या कालसंबंधीय (जो परत्व अपरत्व विषयभूत होनेसे)लियेगये हैं
ते॥ एते॥ वर्तना आदय॥ उपकारा॥ कालस्य॥	=वे एते वर्तनादिक उपकार(निश्चय-मुख्य-वा परमार्थ)कालकी
अस्तित्वम्॥ गमयन्ति ॥	=विद्यमानताको जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते हैं और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल या असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है ॥
ननु वर्तना-ग्रहणम्॥ एव अस्तु, तत् भेदा॥	=अब (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये, उस (वर्तना)के भेद
परिणाम-आदय॥ तेषां॥ पृथग्-ग्रहणम्॥ अनर्थक॥	=परिणाम-क्रिया-परत्व अपरत्व हैं । उन भेदोंका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है
न अनर्थकम्॥	= उत्तर)(परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व वर्तनाके भेदोंकासूत्रमेंग्रहणकरना)निष्प्रयोजन नहीं है
कालद्वय-सूचन अर्थत्वात्॥	=क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ अर्थात् कालके दो भेद जतलानेके लिये

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारसे हैं (क) प्रशंसाकृत जैसे धर्म 'पर है याने पर' है तथा अधर्म 'अपर' है प्रधान अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकदेश या कालमें स्थितदूरवर्ती पदार्थोंके विषय जो दूर है वहती पर है और जो समीप है वह अपर है (ग)कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षा

तद्व्यपदेशनिमित्तस्य मुख्यस्य कालस्यास्तित्वं गमयति। कुत ? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् ॥ द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूप अपरिस्पन्दात्मक परिणामो, जीवस्य क्रोधादि । पुद्गलस्य वर्णादि । धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुण-

तद्-व्यपदश-निमित्तस्य[1]	=उस(व्यवहारकाल)का(उपर्युक्त)कथन(अपने)निमित्तक अथवा हेतुकर्ता
मुख्यस्य[1] कालस्य[1] अस्तित्वम्[1] गमयति[1] ।	=निश्चय(=मुख्य)वा परमार्थ (=मुख्य)कालकी विद्यमानताको जताता है भावार्थ समय आवली घटिका इत्यादिरूप जो व्यवहारकाल है तिस(समय आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकाल) नामको निमित्त ऐसा जो निश्चयकाल (=असंख्यातरूपकालाणु) तिन असंख्यात कालाणुओंका अस्तित्व वा विद्यमानता इस(समय-आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकालसे जानी जाती है
कुत ? गौणस्य[1]	= प्रश्न)(व्यवहारकालसे निश्चयकालका ज्ञान)क्योंकर होता है। गौणकी(विद्यमानता)
मुख्य अपेक्षत्वात्[1]	=मुख्यकी अपेक्षासे होती है अर्थात् क्योंकि गौण मुख्यके बिना कभीभी नहीं होसक्ता है भावार्थ व्यवहारकाल गौण है, निश्चयकाल मुख्य है, ओदनपाकादि जो प्रसिद्ध व्यवहारकाल है वह निश्चयकालसे उत्पन्न होने वाले समय आदिका समूह है बिना निश्चयकालके व्यवहारकाल उत्पन्न नहीं होसकता इसलिये व्यवहारकालसे निश्चयकाल जाना जाता है ॥
द्रव्यस्य[1] पर्यायः[1] धर्मान्तर निवृत्ति-[1] धर्मान्तर	=द्रव्यकी पर्याय(अर्थात्)अन्य अवस्थाको(=धर्मान्तर)छोड़कर दूसरी अवस्था
उपजननरूपः[1] अपरिस्पन्दात्मकः[1] परिणामः[1]	=रूप होना तथा क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें चलनरूप न होना सो परिणाम वा परणति है
जीवस्य[1] क्रोधादिः[1] पुद्गलस्य[1] वर्ण-आदिः[1]	=जीवके क्रोधादिक (परिणाम) है पुद्गल के वर्णादिक(परिणाम) है ।
धर्माधर्म आकाशानाम्[1] (२ अगुरुलघुगुण	=धर्माधर्म आकाशके अगुरुलघुगुण अथवा द्रव्यकीद्रव्यतारखनेवाले गुणकी

(१) यह हस्तलेखित प्रतिके पृष्ठ ५४ पर 'निव त्ति' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि निवृत्तिका अर्थ छोड़ना,निश्चित होजाना है जिसे तिका अर्थ रचना उत्पन्न करना है । यहां पर पहिले अर्थ में है ॥

(२) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता स्थिर रहै अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमे और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्तगुण बिखरकर जुदे २ न होजावें उसको अगुरुलघुगुण कहते हैं ॥

(३) यहां २ पर क्रिया तीन प्रकारकी मानी हैं प्रथम प्रायोगगति द्वितीय विस्रसागति और तृतीय मिश्रकागति इनमें प्रायोगगति पुरुषप्रयत्नजन्य है। विस्रसागति = स्वयं परिणामसेजन्य है और मिश्रिका(=मिश्रका)उभयजन्य है अर्थात् पुरुषप्रयत्न और स्वयंपरिणामसे उत्पन्न होनेवाली क्रियाको मिश्रिका कहते हैं

वृद्धिहानिकृत ॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका । सा द्विविधा । प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात् । तत्र प्रयोगिकी शकटादीना, वैस्रसिकी मेघादीनाम् ॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्त । तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते ॥ त एते वर्तनादय उपकारा कालस्यास्तित्वं गमयन्ति ॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदा परिणामादयस्तेषा पृथग्ग्रहणमनर्थकम्। नानर्थकम् । कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि-कृत ; क्रिया परिस्पन्द-आत्मिका प्रायोगिक =वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है । हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है ॥ प्रायोगिक वैस्रसिक-भेदात् सा द्विविधा, तत्रप्रयोगिकी =तथा वैस्रसिक भेदसे वह(क्रिया) दो प्रकार है । तहां प्रायोगकी क्रिया अर्थात्
शकटादीनाम् =(अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)
वैस्रसिकी =वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं वा निजस्वभावसे विना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली
मेघादीनाम् ; परत्व-अपरत्वे क्षेत्रकृते =(जैसे)बादलादिका (=मेघादीनाम्) ॥ परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृत
कालकृते स्तः । ते अत्र कालउपकरणात् =(और)कालकृत(दोनों प्रकारके) हैं, व यहां कालका प्रधान साधन होनसे
काल-कृते गृह्यते ॥ =कालकृत या कालसंबधीय (दो परत्व अपरत्व विषयभूत होनेसे)लियेगये हैं
ते एते वर्तना-आदयः उपकाराः कालस्य =वे एते वर्तनादिक उपकार(निश्चय मुख्य-वा परमार्थ)कालकी
अस्तित्वम् गमयन्ति ॥ =विद्यमानताको जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते हैं और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल वा असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है ॥
ननु वर्तना-ग्रहणम् एव अस्तु, तद्-भेदाः =प्रश्न (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये, उस (वर्तना)के भेद
परिणाम-आदयः तेषां पृथग्-ग्रहणम् अनर्थकं =परिणाम-क्रिया-परत्व अपरत्व हैं । इन भेदोंका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है
न अनर्थकम् ; = उत्तर।(परिणाम क्रिया-परत्व अपरत्व वर्तनाके भेदोंकासूत्रमेंग्रहणकरना)निष्प्रयोजन नहीं है
कालद्वय-सूचन अर्थत्वात् =क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ अर्थात् कालके दो भेद जतलानेके लिये

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारभी हैं (क) प्रशसाकृत जैसे धर्म 'पर' है ज्ञान 'पर' है तथा अधर्म 'अपर' है अज्ञान 'अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकदेश या कालमें स्थितदूरवर्ती पदार्थोंके विषय जो दूरदेशवर्ती पर है और जो समीप है वह अपर है (ग)कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षा

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविध परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षण । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकाल ॥अन्येन परिच्छिन्न अन्यस्य परिच्छेदहेतु क्रियाविशेष काल इति व्यवह्रियते। स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानोभविष्यन्निति॥तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्य । भूतादिव्यपदेशो गौण ॥ व्यवहारकालेभूतादिव्यपदेशो मुख्य । कालव्यपदेशो गौण ।

प्रपञ्चस्य॥ कालः॥ हि॥ द्विविधः॥ परमार्थकालः॥	=विस्ताररूप(पूर्वोक्त कथन)है । जैसे(=हि)काल दो प्रकार है, परमार्थकाल
व्यवहारकालः॥ वर्तनालक्षणः॥ परमार्थ	=और(=च)व्यवहारकाल; वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थ या निश्चय
परिणामादि-लक्षणः॥	=काल है । परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो
...॥ अन्येन॥ परिच्छिन्नः॥	=व्यवहारकाल है । (वह व्यवहारकाल)अन्य(पदार्थ)करि जाना जाता है (जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन रात्रि जाने जाते हैं सो व्यवहार काल है जीव और पुद्गलके परिणमनसभी व्यवहारकाल प्रगट होताहै)
अन्यस्य॥ परिच्छेद-हेतुः॥	=(व्यवहारकाल)दूसरी(वस्तु)के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (क) इस कालसे निश्चयकाल जानाजाताहै(इसअध्यायका पृष्ठ—४)(ख) यह पुत्र सौवर्षकाहै-ऐसीअवस्थापुत्रकीहै
क्रिया-विशेषः॥ कालः॥ इति॥ व्यवह्रियते।	=क्रिया विशेष है सो कालहै ऐसा व्यवहार कियाजाताहै (क्रियाका विशेष व्यवहारकालहै)
सः॥ त्रिधा॥ भूतः॥ वर्तमानः॥ भविष्यत्॥ इति॥	=वह(व्यवहारकाल)तीन प्रकार अतीत-वर्तमान-अनागत ऐसे
व्यवतिष्ठते। तत्र॥ परमार्थकाले॥ काल-व्यपदेशः॥	=व्यवस्थित है । (तहां परमार्थकाल(की अपेक्षा) विषै कालका नाम या कथन (अर्थात् लोकाकाशके एकएकप्रदेशपरएकएककालाणुभिन्नभिन्न तिष्ठतेहुओंकोकालकहना)
मुख्यः॥ भूतादि-व्यपदेशः॥	=मुख्य या प्रधान है,भूत,वर्तमान,भविष्यत्का कथन(निश्चयकालकी अपेक्षासे)
गौणः॥ व्यवहारकाले॥ भूत आदि-व्यपदेशः॥	=गौण या अप्रधान है । व्यवहारकाल विषै अतीत वर्तमान अनागतका कथन
मुख्यः॥ काल-व्यपदेशः॥ गौणः॥	=प्रधान है और काल कहना गौण या अप्रधान है अर्थात् निश्चयकाल या परमार्थकाल

तन(म्मो) वर्षवाला पर है और तनवर्षवालेकी अपेक्षासे सोलह वर्षवाला अपर है । यहां प्रशंसा तथा क्षेत्रकृत परत्वापरत्वको छोड़कर वर्तनादि [illegible] है [illegible] ॥

क्रियावद्द्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ॥

अत्राह धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ता । लक्षणं चोक्तम् "उपयोगो लक्षण-मित्येवमादि" पुद्गलाना तु सामान्यलक्षणमुक्तं "अजीवकाया इति" विशेषलक्षणं नोक्तम् । तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

कहना गौण है नहि समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन, रात्रि, पक्ष मास, ऋतु, अयन, वरस इत्यादिको कहना गौण है क्योंकि कथन करते समय ये सब (समय, आवली, घटिका इत्यादि) यातो भूतकालमें वा वर्तमान कालमें वा भविष्यत्कालमें आजावेंगे, गर्भित हो जावेंगे और सम्बन्ध रक्खेंगे ॥ फिर भूतादिको मुख्य कहना, समय घटिकादिको गौण कहना एकही वस्तुको मुख्य गौण कहदेना है सो ठीक नहीं ॥

(१)क्रियावत्॰ द्रव्य अपेक्षत्वात्॥ च॰ =क्रियावान् (अन्य) द्रव्योंकी अपेक्षाभावसे(व्यवहारकालनाम पायाहै)और(=च)
काल-कृतत्वात्॥ =निश्चयकाल(=काल)द्वारा कियेजानेसे(उत्पन्न होनेसे)(व्यवहारकाल नाम पाया है)
अत्र॰आह॰धर्म अधर्म आकाश-पुद्गल-जीव-कालानाम्॥ =यहां पूछता है कि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल द्रव्योंके
उपकाराः॥ उक्ताः॥ लक्षणम्॥ च॰उक्तम्॥ "उपयोगः॥ =उपकार कहेगये(और) लक्षणभी(=च)(इनके)कहेगये। उपयोग(अध्याय२सूत्र८)
लक्षणम्॥ इत्येवम् आदि॥" पुद्गलानाम्॥ तु॰ =(जीवका लक्षण है इत्येवादिक (कहेगये) और (=तु) पुद्गलोंका
"अजीव-कायाः॥ इति" सामान्य लक्षणम्॥ उक्तम्॥ ="अजीवकाया" ऐसा(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें) साधारण लक्षण कहागया
विशेष-लक्षणम्॥ न॰ उक्तम्॥ तत्॥ किम्॥ =(किन्तु)(पुद्गलोंका)विशेष लक्षणनहीं कहागया है। वह विशेष लक्षण क्या है
इति॰अत्र॰उच्यते। =इस हेतुसे(=इति)(पुद्गलोंका विशेष लक्षण अग्रिम सूत्रमें)कहाजाता है कि

सूत्रम् [२]स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गलाः२३ = स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्त पुद्गला "(भवन्ति)॥ २३॥

(१) (प्रश्न) समय आवली घटिका प्रहर दिन इत्यादि ने व्यवहार काल नाम कैसे पाया है। (उत्तर) क्रियावान् जो अन्य द्रव्य तिनकी अपेक्षासे व्यवहारकाल नाम पाया है तथा निश्चय कालकरि कियेगये हैं जो समय आवली घटिका प्रहर, दिन रात्रि तिससे (व्यवहार)काल नाम पाया है ॥
(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है।

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविध परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षण । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकाल ॥अ येन परिच्छिन्न अन्यस्य परिच्छेदहेतु क्रियाविशेष काल इति व्यवह्रियते। स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानोभविष्यन्निति॥तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्य । भूतादिव्यपदेशो गौण ॥ व्यवहारकालेभूतादिव्यपदेशो मुख्य । कालव्यपदेशो गौण ।

प्रपञ्चस्य; कालः हि द्विविध परमार्थकालः =विस्ताररूप(पूर्वोक्त कथन)है । जैसे(=हि)काल दो प्रकार है, परमार्थकाल

च व्यवहारकाल; वर्तनालक्षण परमार्थ =और(=च)व्यवहारकाल; वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थ वा निश्चय

काल; परिणामादि-लक्षण =काल है । परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो

व्यवहारकाल; अन्येन परिच्छिन्न =व्यवहारकाल है । (वह व्यवहारकाल)अन्य(पदार्थ) करि जाना जाता है (जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन रात्रि जाने जाते हैं जो व्यवहार काल है जीव और पुद्गलके परिणमनसेभी व्यवहारकाल प्रगट होताहै)

अन्यस्य परिच्छेद-हेतु =(व्यवहारकाल)दूसरी(वस्तु)के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (क) इस कालसे निर्मंथ-काल जानाजाताहै(इसअध्यायका पृष्ठ=४)(ख) यह पुत्र सोवर्षकाहै-ऐसीअवस्थापुत्रकीहै

क्रिया-विशेष काल इति व्यवह्रियते =क्रिया विशेष है सो कालहै ऐसा व्यवहार कियाजाताहै (क्रियाका विशेष व्यवहारकालहै)

स त्रिधा भूत वर्तमान भविष्यत् इति =वह(व्यवहारकाल)तीन प्रकार अतीत-वर्तमान-अनागत ऐसे

व्यवतिष्ठते । तत्र परमार्थकाले काल-व्यपदेश =व्यवस्थित है । (तहाँ परमार्थकाल(की अपेक्षा) विषैं कालका नाम वा कथन (अर्थात् लोकाकाशके एकएकप्रदेशपरएकएककालाणुभिन्नभिन्न तिष्ठतेहुओंकोकालकहना)

मुख्य; भूतादि-व्यपदेश =मुख्य वा प्रधान है, भूत, वर्तमान, भविष्यत्का कथन(निश्चयकालकी अपेक्षासे)

गौण; व्यवहारकाले भूत-आदि-व्यपदेश =गौण वा अप्रधान है । व्यवहारकाल विषैं अतीत वर्तमान अनागतका कथन

मुख्य; काल-व्यपदेश गौण =प्रधान है और काल कहना गौण वा अप्रधान है अर्थात् निश्चयकाल वा परमार्थकाल

[illegible](मा) वर्षवाला पर है और [illegible] वर्षवालेकी अपेक्षासे सोलह वर्षवाला अपर है ॥ [illegible] [illegible] वर्तनादि [illegible] [illegible] है [illegible] वर्तना परिणाम क्रिया [illegible] [illegible] कालके उपकारहैं ॥

क्रियावद्द्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ॥

अत्राह धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ता । लक्षणं चोक्तम् "उपयोगो लक्षण-मित्येवमादि" पुद्गलानां तु सामान्यलक्षणमुक्तं "अजीवकाया इति" विशेषलक्षणं नोक्तम् । तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

कहना गौण है नकि समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन, रात्रि, पक्ष मास, ऋतु, अयन, वरस इत्यादिको कहना गौण है क्योंकि कथन करते समय ये सब (समय, आवली, घटिका इत्यादि) यातो भूतकालमें वा वर्तमान कालमें वा भविष्यत्कालमें आजावेंगे, गर्भित हो जावेंगे और सम्बन्ध रक्खेंगे ॥ फिर भूतादिको मुख्य कहना, समय घटिकादिको गौण कहना एकही वस्तुको मुख्य गौण करदेना है सो ठीक नहीं ॥

(१)क्रियावत्॰ द्रव्य-अपेक्षत्वात्॥ च॰	=क्रियावान् (अन्य) द्रव्योंकी अपेक्षाभावसे(व्यवहारकालनाम पायाहै)और(=च)
काल-कृतत्वात्॥	=निश्चयकाल(=काल)द्वारा कियेजानेसे(उत्पन्न होनेसे)(व्यवहारकाल नाम पाया है)
अत्र॰आह॰धर्म-अधर्म आकाश-पुद्गल-जीव-कालानाम्	=यहां पूछता है कि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल द्रव्योंके
उपकाराः उक्ताः, लक्षणम् च॰उक्तम्॥ "उपयोगः	=उपकार कहेगये(और) लक्षणभी(=च)(इनके)कहेगये। उपयोग(अध्याय२सूत्र८)
लक्षणम्॥ इत्येवम्-आदि॥" पुद्गलानाम् तु॰	=(भ यिका लक्षण है इत्यवादिक (कहेगये) और (=तु) पुद्गलोंका
"अजीव-कायाः इति" सामान्य-लक्षणम्॥ उक्तम्॥	="अजीवकाया" ऐसा(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें) साधारण लक्षण कहागया
विशेष-लक्षणम्॥ न॰ उक्तम्॥ तत्॥ किम्॥	=(किन्तु)(पुद्गलोंका)विशेष लक्षणनहीं कहागया है। वह विशेष लक्षण क्या है
इति॰अत्र॰उच्यते।	=इस हेतुसे(=इति)(पुद्गलोंका विशेष लक्षण अग्रिम सूत्रमें)कहाजाता है कि

सूत्रम् (२)स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गला २३ = स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्त पुद्गला,(भवन्ति)॥ २३॥

(१) (प्रश्न) समय आवली घटिका प्रहर दिन इत्यादि में व्यवहार काल नाम कैसे पाया है। (उत्तर) क्रियावान् जो अन्य द्रव्य तिनकी अपेक्षासे व्यवहारकाल नाम पाया है तथा निश्चय कालकरि कियेगये हैं जे समय आवली घटिका प्रहर,दिन रात्रादि तिससे (व्यवहार)काल नाम पाया है।

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है।

इति । नित्ययोगे [1]मन्निर्देश ॥ यथा चीरिणो न्यग्रोधा इति ॥ ननु च "रूपिणः पुद्गला" इत्यत्र पुद्गलाना रूपवत्त्वमुक्तं तदविनाभाविनश्च रसादयस्तत्रैव परिगृहीता इति व्याख्यातं तस्मात्तेनैव पुद्गलानां रूपादिमत्त्वसिद्धे सूत्रमिदमनर्थकमिति ॥ नैष दोष । नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्यत्र धर्मादीना नित्यत्वादिनिरूपणेन

इति॰नित्य-योगे॰ मत्-निर्देशः ॥ =इस प्रकार सदैव संयोगमें मतुप् (= मत्) प्रत्ययका निरूपण है भावार्थ "स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः" इस वाक्यको जब पृथक् पृथक् करदेते हैं तब स्पर्शवान्-रसवान्-गंधवान्-वर्णवान्-ऐसे चार शब्द होते हैं स्पर्शका नित्य है संयोग जिसमें अथवा स्पर्शगुण सदैव जिसमें रहता है वह स्पर्शवान् (पुद्गल) है इसप्रकार मतुप् (=मत्) प्रत्यय स्पर्शगुणके सदैव विद्यमान रहनेके अर्थमें लगाया गया है ऐसेही रसवान्-गंधवान्-वर्णवान् मानना ॥ स्मरण रहे कि इस सूत्रके दो प्रकारसे विभाग होसकते हैं

(क) स्पर्शवन्तः पुद्गलाः ; रसवन्तः पुद्गलाः, गंधवन्तः पुद्गलाः, वर्णवन्तः पुद्गलाः, अथवा

(ख) स्पर्शवान् पुद्गलः, रसवान् पुद्गलः, गंधवान् पुद्गलः वर्णवान् पुद्गलः ॥

यथा॰चीरिणः॰न्यग्रोधाः॰इति॰ननु॰च॰रूपिणः॰ =जैसे दूधवाले अथवा दूधयुक्त बड़वृक्ष (=वटवृक्ष)। पुनि प्रश्न, रूपी या मूर्तीक

पुद्गलाः॰इति॰अत्र॰पुद्गलानाम्॰रूपवत्त्वम्॰उक्तम्॰ =पुद्गल हैं ऐसे यहां (अध्याय ५ सूत्र५में) पुद्गलोंके रूपपना कहागया है

तद्-अविनाभाविनः॰ च॰रस आदयः॰ तत्र॰ =और (=च) उस (रूप) का अविनाभावी तथा भिन्न न रहनेवाले रस-स्पर्श गंध वहां

एव॰परिगृहीताः॰ इति॰ व्याख्यातम्॰ =(उस पांचवां सूत्रसे) ही ग्रहण कियेगये ऐसा वर्णन कियागया है

तस्मात्॰ तेन॰ एव॰पुद्गलानाम्॰ =तिस कारणसे (=तस्मात्) उस (इस अध्यायके पांचवां सूत्र) करिही पुद्गलोंके

रूप आदिमत्त्वसिद्धे॰ सूत्रम्॰ इदम्॰ अनर्थकम्॰ इति॰॥ =रूपपना, स्पर्शपना, रसपना, गंधपना सिद्ध होनेसे यह सूत्र निष्प्रयोजन है ॥

न॰एषः॰ दोषः॰; नित्य अवस्थानि॰ अरूपाणि॰ =(उत्तर) यह दूषण नहीं है नित्य, अवस्थानि और अरूपाणि,

इति॰अत्र॰धर्मादीनाम्॰ नित्यत्वादि-निरूपणेन॰ =ऐसे यहां धर्मादिकोंका ध्रुवपनादिकका कथन करनेसे

---

(१) प्रथमापृत्तिमर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'मन्निर्देशः' पाठ है द्वितीयावृत्तिमें और एकहस्तलिखितमें 'वन्निर्देशः' पाठहै दोअन्यहस्तलिखितप्रतियोंमें 'मत्निर्देशः' पाठहै 'वन्निर्देश' और 'मत्निर्देशः' एकही है क्योंकि प्रथम वाक्य सन्धिरूपमें है दूसरेमें सन्धि नहीं कीगई है । यहांपर समास करना है सन्धि अवश्य होनी चाहिये इसलिये 'मन्निर्देश' पाठ वन्निर्देशकी अपेक्षा अशुद्ध है । द्वितीया वृत्तिमें और जहां कहीं भी 'मत्निर्देशः' और 'वन्निर्देशः' पाठहैं ये अशुद्ध हैं।

स्पृश्यते स्पर्शनमात्रं वा स्पर्शः । सोऽष्टविधः । मृदुकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात् ॥ रस्यते रसनमात्रं वा रसः । स पञ्चविधः । तिक्ताम्लकटुमधुरकषायभेदात् ॥ गन्ध्यते गन्धनमात्रं वा गन्धः । स द्वेधा । सुरभिरसुरभिरिति ॥ वर्ण्यते वर्णनमात्रं वा वर्णः । स पञ्चविधः । कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् ॥ त एते मूलभेदाः प्रत्येकं सङ्ख्येयासङ्ख्येयानन्तभेदाश्च भवन्ति॥ स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्त एतेषां सन्तीति स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः

सूत्रार्थः—स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः

वृत्त्यनुवाद—स्पृश्यते वा स्पर्शनमात्रम् स्पर्शः, सः अष्टविधः, मृदु-कठिन-गुरु-लघु-शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष भेदात्, रस्यते रसनमात्रम् वा रसः, स पञ्चविधः, तिक्त-अम्ल-कटु-मधुर कषाय भेदात्, गन्ध्यते वा गन्धनमात्रम् गन्धः सः द्वेधा सुरभिः असुरभिः इति। वर्ण्यते वा वर्णमात्रम् वर्णः, सः पञ्चविधः, कृष्ण-नील-पीत शुक्ल-लोहित-भेदात्, ते एते मूलभेदाः प्रत्येकम् सङ्ख्येय असङ्ख्येय अनन्तभेदाः च भवन्ति।

स्पर्शः च रसः च गन्धः च वर्णाः च स्पर्शरसगन्धवर्णाः ते।

[illegible] स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः

=स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाले पुद्गल होते हैं अर्थात् स्पर्श रस, गन्ध, वर्ण ये चार गुणोंकरि सहित अथवा लक्षणोंकरि युक्त पुद्गल होते हैं ॥

=(वृत्तिका अनुवाद)जो स्पर्शा या छूआ जाता है अथवा छूनेमात्र सो स्पर्श है सो 'स्पर्श' आठ प्रकार, कोमल मुलायम(मृदु)कठोर(कड़ा)भारी, हलका, ठंडा, =गरम, सचिक्कन(=चिकना) रूखा भेदसे है । स्वाद लियाजाता है वा स्वादमात्र =रस है सो पांच प्रकार चिरपर(चरपरा)खट्टा(आम्लि) कड़वा(कटुक) मीठा, =कषायला(कसैला) भेदसे है । जो सूंघा जाता है अथवा वासमात्र है सो गंध है =वह(गन्ध)दो प्रकार सुगन्ध दुर्गन्ध होती है । जो वर्ण स्वरूप देखाजाता है =वा रूपमात्र सो वर्ण है । सो पांच प्रकार काला, नीला, पीला =श्वेत, लाल(रक्त-अरुण)भेदसे है। ये इतने मूलभेद हैं ।(इन बीस भेदोंमेंसे) एक-एकके =संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं अर्थात् इन बीस (८ स्पर्श ५ वर्ण ५ रस-दो गन्धके) भेदोंमेंसे प्रत्येक भेदके स्थानकोंकी अपेक्षासे(एक-दो-तीन-चार इत्यादि) संख्यातभेद, असंख्यातभेद हैं, अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे अनंतभेद हैं =और(=च, स्पर्श और(=च)रस और(=च)गन्ध और(=च) वर्ण हैं =सो द्वन्द्वसमासमें) स्पर्शरसगन्धवर्णाः (ऐसा वाक्य) होता है । वे (स्पर्शरसगन्धवर्ण =जिनके होते हैं वे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाले हैं अर्थात् वे पुद्गल हैं

शब्दो द्विविधो भाषालक्षणो विपरीतश्चेति ॥ भाषालक्षणोद्विविधः। साक्षरोऽनक्षरश्चेति ॥ अक्षरीकृतः शास्त्राभिव्यञ्जक संस्कृतविपरीतभेदादार्यम्लेच्छव्यवहारहेतु ॥ अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादीनामतिशय-ज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतु स एष सर्वप्रायोगिक ।अभाषात्मकोद्विविध ।प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति॥

तमोवन्तः (पुद्गलाः) वा तमोवान् (पुद्गलः),	=अंधकारवाले पुद्गल हैं अथवा अंधकारसंयुक्त पुद्गल है
छायावन्तः (पुद्गलाः) वा छायावान् (पुद्गलः),	=छायासहित पुद्गल हैं अथवा छायावान् पुद्गल है
आतपवन्तः (पुद्गलाः) वा आतपवान् (पुद्गलः),	=उष्णप्रकाशसंयुक्त पुद्गल हैं अथवा उष्णस्वरूपमाज्ञासहित पुद्गल है
च उद्योतवन्तः (पुद्गलाः)	=और शीतल प्रकाश जैसेचांदनी(=चंद्रमाकी पटबीजनाकीचमक)वाले पुद्गल हैं
वा उद्योतवान् (पुद्गलः)	=वा इसे उजालेवान् जैसे चांदनीवान् पुद्गलहै अर्थात् येसबपुद्गल द्रव्यके पर्याय, परिणाम, विकार वा अवस्थाविशेष हैं ॥
पुनः अनुवादः- शब्दः द्विविधः भाषालक्षणः च	=शब्द दोप्रकार है भाषास्वरूप वा भाषात्मक और (=च)
विपरीतः इति॥ भाषालक्षणः द्विविधः ।	=प्रतिकूल अर्थात् अभाषास्वरूप वा अभाषात्मक; भाषात्मकशब्द दो प्रकारहै
स-अक्षरः च अनक्षरः इति॥	=अक्षररूप(अक्षरसहित,अक्षरीकृत)और(=च अनक्षररूप(अक्षररहित)
अक्षरीकृतः शास्त्र-अभिव्यञ्जकः संस्कृत	=अक्षररूपभाषा(भाषात्मक शब्द)शास्त्रके प्रगटकरनेवाली संस्कृत और
विपरीत	=(संस्कृतसे)प्रतिकूल वा विरोधीभाषा अर्थात् देशभाषा, प्राकृत, पैशाचीआदि
भेदात् आर्य-म्लेच्छ-व्यवहारहेतुः, अनक्षरात्मकः	=भेदसे आर्य और म्लेच्छ(मनुष्यों)के व्यवहारका कारणहै । अनक्षररूप भाषा
द्वि-इन्द्रिय-आदीनाम्, अतिशय ज्ञान-स्वरूप-प्रतिपादनहेतुः	=दोइन्द्रियादिजीवोंके है,औरसर्वोत्कृष्टज्ञानस्वरूपकहनेकाकारणहै अर्थात् अक्षररहित भाषा है सो दोइन्द्रियवाले जीवोंमें, तीन इन्द्रियवाले जीवोंमें, चारइन्द्रिय वाले जीवोंमें, औरकितनेही पांचइन्द्रियवालेजीवोंमेंभीपाईजातीहैऔर(अक्षररहितभाषाही) अतिशयरूप अथवा महान्ज्ञानके प्रकाशनेके कारण सर्वज्ञके दिव्यध्वनिमेंभी है ॥
सः एषः सर्व-प्रायोगिकः	=सो यह (भाषास्वरूपशब्द) समस्त प्रायोगिक है अर्थात् पुरुषके प्रयत्नसे होताहै ॥
अभाषा-आत्मकः द्वि-विधः, प्रायोगिकः	=अभाषास्वरूप (शब्द) दोप्रकारहै,प्रायोगिकअर्थात्पुरुषकेनिमित्तसे उपजाऊ
च वैस्रसिकः इति॥	=और वैस्रसिक (वैभसिक) पुरुषके प्रयत्नकी अपेक्षारहित स्वभावसे उपजनेवाला ॥

पुद्गलानामरूपत्वप्रसंगे तदपाकरणार्थं तदुक्तम्॥ इदं तु तेषां स्वरूपविशेषप्रतिपत्त्यर्थमुच्यते॥
अवशिष्टपुद्गलविकारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च॥

पुद्गलानाम् अरूपत्व प्रसंगे तद्	=पुद्गलोंके अमूर्तीकपनेका अवसर आनेपर उस (अरूपत्व)के
अपाकरण अर्थम् तद् उक्तम् इदम् तु	=निराकरणके लिये वह (रूपिणः पुद्गलाः) कहागया है ॥ यह(सूत्र) तो
तेषाम् स्वरूपविशेष प्रतिपत्ति-अर्थम् उच्यते	=तिन(पुद्गलों)के विशेष स्वरूप जाननके लिये कहागया है ॥
अवशिष्ट-पुद्गल-विकार-प्रतिपत्ति अर्थम्	=शेष पुद्गलके परिणाम (=विकार = पर्याय) जाननेके लिये
इदम् उच्यते	=यह (उत्तर सूत्र)कहाजाता है कि

सूत्रम्—शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥

=शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद तमः—छाया-आतपः—उद्योतवन्तः—च पुद्गलाः भवन्ति ॥२४॥

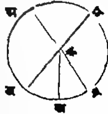
पदच्छेदः—शब्दवन्तः पुद्गलाः, वा शब्दवान् पुद्गलः। बन्धवन्तः पुद्गलाः वा बन्धवान् पुद्गलः सौक्ष्म्यवन्तः पुद्गलाः वा सौक्ष्म्यवान् पुद्गलः॥ स्थौल्यवन्तः पुद्गलाः वा स्थौल्यवान् पुद्गलः। संस्थानवन्तः पुद्गलाः वा संस्थानवान् पुद्गलः। भेदवन्तः पुद्गलाः वा भेदवान् पुद्गलः॥ तमोवन्तः पुद्गलाः वा तमोवान् पुद्गलः। छायावन्तः पुद्गलाः वा छायावान् पुद्गलः। आतपवन्तः पुद्गलाः वा आतपवान् पुद्गलः। च उद्योतवन्तः पुद्गलाः वा च उद्योतवान् पुद्गलः।

सूत्रार्थ —शब्दवन्तः पुद्गलाः वा शब्दवान् पुद्गलः	=शब्दयुक्त पुद्गल हैं अथवा शब्द सहित पुद्गल है
बन्धवन्तः पुद्गलाः वा बन्धवान् पुद्गलः	=बंधसहित पुद्गल हैं वा बंधयुक्त पुद्गल है।
सौक्ष्म्यवन्तः पुद्गलाः वा सौक्ष्म्यवान् पुद्गलः	=सूक्ष्मतावान् पुद्गल हैं अथवा सूक्ष्मतासहित पुद्गल है
स्थौल्यवन्तः पुद्गलाः वा स्थौल्यवान् पुद्गलः	=स्थूलतासहित पुद्गल हैं अथवा स्थूलतावान् पुद्गल है
संस्थानवन्तः पुद्गलाः वा संस्थानवान् पुद्गलः	=आकारसहित पुद्गल हैं अथवा आकारसंयुक्त पुद्गल है।
भेदवन्तः पुद्गलाः भेदवान् पुद्गलः	=खंडवाले पुद्गल हैं अथवा खंडसहित पुद्गल है

क्योंकि 'मत्' प्रत्यय महत् अथवा तुच्छ अर्थमें आताहै और मतुप् (मत्) प्रत्यय 'नित्ययोग' अर्थमें आताहै यहांपर अर्थ ऐसा है कि 'वे' (स्पर्श
रस-गन्ध-वर्ण) जिनके होतेहैं (वे) स्पर्श-रस-गंध-वर्णवाले हैं इनकी नित्ययोगमें मतुप(मत्) प्रत्यय होनाचाहिये

तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं बिल्वामलकबदरादीनाम् ॥ स्थौल्यमपि द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु ॥ संस्थानमाकृति । तद्द्विविधं, इत्थंलक्षणमनित्थंलक्षणं चेति ॥ वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रायत-

तत्र अन्त्यम् परमाणूनाम्, आपेक्षिकम् बिल्व आमलक-बदर आदीनाम् ॥	=वहां परमाणुओंकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है। आपेक्षिक सूक्ष्मता बेल(=बिल्व) =आमलेके फलकी(=आमलक)और बेरआदिककीसूक्ष्मताहै अर्थात् बेलकेफलसे आमलेकाफल सूक्ष्म है औरआमलेकेफलसे झरबेरीके बेरआदि छोटे होतेहैं
स्थौल्यम् अपि द्वि-विधम् अन्त्यम् आपेक्षिकम् चइति	=स्थूलताभी दोप्रकारहै अन्त्य और(=च)आपेक्षिकअर्थात्किसीकीअपेक्षासे।
तत्र अन्त्यम् जगद्व्यापिनि महास्कन्धे,	=वहां अन्तिम (स्थूलता)जगतमें व्याप्त होनेवाला वा सर्वलोकव्यापीमहास्कंधमेंहै
आपेक्षिकम् बदर-आमलक-बिल्व-ताल आदिषु ,	=आपेक्षिक(स्थूलता)बेर, आमलेकेफल,बेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात् झरबेरीकेबेरकी अपेक्षा आमला स्थूल होताहै आमलेसे बेल बड़ा होताहै और बेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥
संस्थानम् आकृतिः,	=संस्थान है सो आकृति अथवा आकारहै अर्थात् अवयव रचनाविशेष है।
तत् द्विविधम् इत्थम् लक्षणम्	=वह(आकार)दोप्रकारहै इत्थंलक्षण अर्थात् आकार जिसकालक्षणकथनयोग्यहै
अनित्थम् लक्षणम् च इति ॥	=और(=च) अनित्थं लक्षणअर्थात् वहआकारजिसकालक्षण कथनयोग्य नहींहै
वृत्त-त्र्यस्र, चतुरस्र-आयत-	=गोलवा वर्तुल(=वृत्त) तिकोना(=त्र्यस्र) चतुष्कोण(चतुरस्र) आयत, जारयायत अर्थात् समानान्तर चतुर्भुज जिसके सबकोन समकोन हों किंतु सबभुज बराबर नहीं परंतु आमनेसामनेके भुज बराबर हों ॥



[1]वृत्त वह सम धरातल क्षेत्र है जो एक रेखासे जिसको परिधि कहते हैं घिरा हो और ऐसा हो कि उसके अन्दर एक विशेष बिन्दुसे परिधि तक जितनी रेखा खींची जांय वह सब आपसमें बराबर हों और इस बिन्दुको उसवृत्तका केन्द्र कहतेहैं। वृत्त यह गोल क्षेत्र है जिसकी अ ब ज रेखा परिधि है क केन्द्र है और जिसकी कअ कब [illegible] कग और कम सब रेखायें आपसमें बराबर हैं ॥

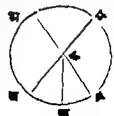
वैस्रसिको वलाहकादिप्रभव । प्रायोगिकश्चतुर्धा, ततविततघनसौषिरभेदात् ॥ तत्र चर्मतनननिमित्त पुष्करभेरीदर्दुरादिप्रभवस्तत । तन्त्रीकृतवीणासुघोषादिसमुद्भवो वितत । तालघण्टालालनाद्यभिघातजो घन । वंशशंखादिनिमित्त सौषिर ॥बन्धो द्विविधो वैस्रसिक प्रायोगिकश्च ॥ पुरुषप्रयोगानपेक्षो वैस्रसिक । तद्यथा—स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधाराग्नीन्द्रधनुरादिविषय ॥ पुरुषप्रयोगनिमित्त प्रायोगिक, अजीवविषयो जीवाजीव विषयश्चेति द्विधाभिन्न । तत्राजीवविषयो जतुकाष्ठादिलक्षणः । जीवाजीवविषयः कर्मनोकर्मबन्ध ॥ सौक्ष्म्यं द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिक च ॥

वैस्रसिकः|वलाहक-आदि-प्रभवः|, =वैस्रसिक (अभाषात्मकशब्द) जैसे मेघ(=बलाहक)आदिसे उपजनेवाला ॥
प्रायोगिकः|चतुर्धा|तत-वितत-घन-सौषिर-भेदात्|, =प्रायोगिक(अभाषात्मकशब्द) चारप्रकार, तत-वितत-घन-सौषिर भेदसे है
तत्र चर्मतनन-निमित्तः|पुष्कर भेरी (=भेरि) =वहां चमड़ेके तननेके कारण या हेतुसे खंजरी (=पुष्कर) दुंदुभि-ढोल-नगारा
दर्दुर आदि-प्रभवः|ततः|, =दर्दुर (एकप्रकारका) बाजा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द तत है ।
तन्त्रीकृत-वीणा-सुघोष =तांत अथवा ताररचित बीन (=वीणा) सुघोष अर्थात् एकप्रकारका सितार
आदि समुद्भवः|विततः|, ताल-घण्टा-लालन-आदि =आदिसे उपजाऊ (शब्द) वितत है ॥ ताल-घंटाका हिलावना (=लालन, आदिके
अभिघातजः|घनः| । वंश-शंख-आदि-निमित्तः| =चोटसे उपजाऊ (=अभिघातज) शब्द घन है । बंसुरी-शंख आदिके कारण जिसको
सौषिरः|, बन्धः|द्विविधः|वैस्रसिकः|प्रायोगिकः|च॰॥ =(ऐसा शब्द) सौषिर है । बन्ध दो प्रकार है । वैस्रसिक और प्रायोगिक
पुरुष प्रयोग-अनपेक्षः|वैस्रसिकः|, तद्यथा॰ =पुरुषके प्रयोग या प्रयत्नकी अपेक्षारहित वैस्रसिक है ॥ जैसे
स्निग्ध-रूक्षत्व-गुण-निमित्तः| विद्युत् उल्का जलधार =चिकनापन, रूखापन गुणोंके कारणसे बिजली, उल्कापात, बादल
अग्नि-इन्द्रधनुष आदि-विषयः|, पुरुषप्रयोगनिमित्तः| =आग, इन्द्र धनुषादि सम्बन्धी है ॥ पुरुषके प्रयत्न हेतुक या कारणक है सो
प्रायोगिकः|अजीवविषयः|च॰जीवाजीवविषयः|इति॰ =प्रायोगिक है । (प्रायोगिकबन्ध) अजीव सम्बंधी और (=च) जड़चेतनसबंधी
द्विधा॰भिन्नः|, तत्र॰अजीवविषयः|जतु-काष्ठादि =दोप्रकारमें (द्विधा) विभाजित है । वहां अचेतनसंबंधी लाख(जतु) और काठ आदिका
लक्षणः|, जीव-अजीव विषय |कर्म-नोकर्म बन्धः|, =सम्बंध होता है । चेतनअचेतनसम्बंधी कर्म-नोकर्मका (जीवके साथ) बंधहै;
सौक्ष्म्यम्|द्विविधम्|, अन्त्यम्|आपेक्षिकम्|च॥ =सूक्ष्मता दो प्रकार है अन्त्य और (=च) आपेक्षिक

तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं बिल्वामलकबदरादीनाम् ॥ स्थौल्यमपि द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु ॥ संस्थानमाकृतिः । तद्द्विविधं, इत्थंलक्षणमनित्थंलक्षणं चेति ॥ वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रायत-

तत्र॰अन्त्यम्॥ परमाणूनाम्॥ आपेक्षिकम्॥ बिल्व-आमलक-बदर-आदीनाम्॥ ॥	=वहां परमाणुओंकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है । आपेक्षिक सूक्ष्मता बेल (=बिल्व) =आमलेके फलकी(=आमलक) और बेरआदिककी सूक्ष्मता है अर्थात् बेलकेफलसे आमलेकाफल सूक्ष्म है और आमलेकेफलसे झरबेरीके बेरआदि छोटे होते हैं
स्थौल्यम्॥ अपि॥ द्वि-विधम्॥ अन्त्यम्॥ आपेक्षिकम्॥ च॰इति	=स्थूलता भी दोप्रकारहै अन्त्य और(=च) आपेक्षिक अर्थात् किसीकी अपेक्षासे
तत्र॰अन्त्यम्॥ जगद्व्यापिनि॥ महास्कंधे॥ ;	=वहां अन्तिम (स्थूलता) जगतमें व्याप्त होनेवाला वा सर्वलोकव्यापी महास्कंधमें है
आपेक्षिकम्॥ बदर-आमलक-बिल्व-ताल-आदिषु॥ ;	=आपेक्षिक(स्थूलता) बेर, आमलेकेफल, बेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात् झरबेरीकेबेरकी अपेक्षा आमला स्थूल होताहै आमलेसे बेल बड़ा होताहै और बेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥
संस्थानम्॥ आकृति॥ ;	=संस्थान है सो आकृति अथवा आकारहै अर्थात् अवयव रचनाविशेष है।
तत्॥ द्विविधम्॥ इत्थम्॥ लक्षणम्॥	=वह(आकार)दोप्रकारहै इत्थंलक्षण अर्थात् आकार जिसकालक्षणकथनयोग्यहै
अनित्थम्॥ लक्षणम्॥ च॰इति॰॥	=और(=च) अनित्थं लक्षणअर्थात् वहआकारजिसकालक्षण कथनयोग्य नहीं है
वृत्त-त्र्यस्र, चतुरस्र-आयत-	=गोलवा वर्तुल(=वृत्त) त्रिकोना(=त्र्यस्र) चतुष्कोण(चतुरस्र) आयत, जात्यायत अर्थात् समानान्तर चतुर्भुज जिसके सबकोन समकोन हों किंतु सबभुज बराबर नहीं परंतु आमनेसामनेके भुज बराबर हों ॥

'वृत्त' वह सम धरातल क्षेत्र है जो एक रेखासे जिसको परिधि कहते हैं घिरा हो और ऐसा हो कि उसके अन्दर एक विशेष बिन्दुसे परिधि तक जितनी रेखा खींची जांय वह सब आपसमें बराबर हों और उस बिन्दुको उसवृत्तका केन्द्र कहते हैं। वृत्त वह गोल क्षेत्र है जिसकी क ख ग रेखा परिधि है 'क' केन्द्र है और जिसकी कअ, कख कघ कग और कड सब रेखायें आपसमें बराबर हैं ॥



परिमण्डलादीनामित्थंलक्षणम् । ततोऽन्यन्मेघादीनां संस्थानमनेकविधमित्थमिदमिति निरूपणाभावादनित्थंलक्षणम् ॥ भेदाः षोढा, उत्करचूर्णखण्डचूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात् ॥ तत्रोत्करः काष्ठादीनां करपत्रादिभिरुत्करणम् । चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादि । खण्डो घटादीनां कपालशर्करादि । चूर्णिका माषमुद्गादीनां । प्रतरोऽभ्रपटलादीनाम् । अणुचटनं सन्तप्ताय पिण्डादिषु अयोघनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिर्गमः ॥ तमो दृष्टिप्रतिबन्धकारणं प्रकाशविरोधि ॥ छाया प्रकाशावरणनिमित्ता । सा द्वेधा, वर्णादिविकारपरिणता

परिमण्डल आदीनाम् इत्थंलक्षणम् । इथम् इदम् इति
तत अन्यत् मेघ आदीनाम् संस्थानम् अनेकविधम्
निरूपण अभावात्
अनित्थंलक्षणम् । भेदाः षोढा उत्कर-चूर्ण
खण्ड चूर्णिका-प्रतर अणुचटन-विकल्पात् ॥
तत्र उत्करः काष्ठ आदीनाम् करपत्र-आदिभिः
उत्करणम् । चूर्णः यव गोधूम-आदीनाम्
सक्तु-कणिकादि । खण्डः घटादीनां कपाल-शर्करादिः ।
चूर्णिका माष मुद्ग आदीनाम् । प्रतरः अभ्र
पटल आदीनाम् । अणुचटनम् सन्तप्त अयस्-
पिण्डादिषु अयस्-घन आदिभिः अभिहन्यमानेषु
स्फुलिङ्ग-निर्गमः । तमः दृष्टि-प्रतिबन्धकारणम्
प्रकाश-विरोधि । छाया प्रकाश आवरणनिमित्ता
सा द्वेधा वर्णादिविकार-परिणता ॥

=चारोंओर गोलआदिकके इत्थंलक्षण(संस्थान) है ऐसे यह इत्थम् है
=तिस (इत्थंलक्षणसंस्थान)से अन्यबादल-आदिकका आकार बहुतप्रकारहै।
=सो परिमाणका अथवा कथनकियेजानेके अभावसे
=अनित्थ लक्षण(संस्थान)है॥भेद छ प्रकार (=षोढा)अर्थात् उत्कर-चूर्ण-
=खण्ड-चूर्णिका-प्रतर अणुचटन विकल्पसे है
=वहां उत्कर भेद काठादिका आरा (=करपत्र-क्रकच) आदिकसे
=चिरावण है। चूर्ण जौ गेहूं(=गोधूम) आदिकोंका
=सतुआ आटा या चून आदिक है।खंड घड़ादिकोंके टुकड़ा रोड़ादिक है।
=चूर्णिका उरद (माष) मूंग (=मुद्ग) आदिकी दाल है। प्रतर अभ्रकके
=पत्रादिकोंका (उपाटना) है। अणुचटन या अनुतर अतिगरमलोहेके
=पिंडादिक विषें जोरके घनादिककरि चोटदेनेपर या पीटनेपर
=फुलिंगोंका निर्गमन, उछलनाबानिकलनाहै।तमअन्धकार दृष्टिकारोकनेवाला
=उजालेका विरोध या प्रतिकूल है। छाया उजालेके रुकनेकाकारण है।
=वह छाया दो प्रकार है वर्णादि विकार परिणत अथवा तद्वर्ण परिणत
(अर्थात् कांचादिमें इसके) वर्णादिकका परिणमन होजाना

प्रतिबिम्बमात्रात्मिका चेति ॥ आतप आदित्यादिनिमित्तः उष्णप्रकाशलक्षणः ॥ उद्योतश्चन्द्रमणि-खद्योतादिप्रभवः प्रकाशः॥त एते शब्दादय पुद्गलद्रव्यविकारास्त एषा सन्तीति शब्दबन्धसौक्ष्म्य स्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्त पुद्गला इत्यभिसम्बध्यते॥ च शब्देन नोदनाभिघाता-दय पुद्गलपरिणामा आगमे प्रसिद्धा समुच्चीयन्ते ॥ उक्तानां पुद्गलाना भेदप्रदर्शनार्थमाह—

प्रतिबिम्बमात्र-आत्मिका॥ च॥ इति॥ ।	=और (=च) प्रतिबिम्बस्वरूप भी (=छाया)
उष्ण प्रकाश-लक्षणः॥ आतपः॥	=ताप (=उष्ण-सहित) रूप है स्वभाव (=लक्षण) जिसका ऐसा प्रकाश या उजाला है सो आतप है
आदित्य-आदि-निमित्तः॥	=वह आतप सूर्य, अग्नि, इत्यादिके निमित्तसे उत्पन्न होता है जैसे धूप, घाम, जो सहित अग्नि का प्रकाश
उद्योतः॥ चन्द्रमणि	=ठंडा (शीतल) प्रकाश या उजाला सो उद्योत है यह चन्द्रकान्ति
खद्योत-आदि प्रभवः॥ प्रकाशः॥ । ते॥ एते॥ शब्दादयः॥	=जुगनू (पटबीजना) आदिकसे उपजनेवाला प्रकाश है । ये इतने शब्दादिक
पुद्गलद्रव्य विकाराः॥ ते॥	=पुद्गलद्रव्यके विकार, पर्याय, परिणाम या परिणत हैं । वे (शब्दादिक)
एषाम्॥ सन्ति॥ इति॥ शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य	=जिनके (विद्यमान) हैं ऐसे शब्द-बन्धान-सूक्ष्मता-स्थूलतावाले
संस्थान भेद-तमस्-छाया-आतप-उद्योतवन्तः॥	=आकार, भेद, अन्धकार, छाया, तप्त उजाला, शीतल प्रकाश
पुद्गलाः॥ इति॥ अभिसम्बध्यते ॥ च-शब्देन॥	=पुद्गल हैं ऐसा सम्बन्ध किया जाता है (इस सूत्रमें) चशब्दकरि
नोदन-अभिघात-आदयः॥ पुद्गल परिणामाः॥	=प्रेरणा (नोदन) अभिघात (=मारना) आदिक पुद्गलद्रव्यके विकार या पर्याय
आगमे॥ प्रसिद्धाः॥ समुच्चीयन्ते ॥	=(जो परिणाम) शास्त्रमें विख्यात या व्यक्त हैं इकट्ठे जाये गये हैं अर्थात् ग्रहण कियेगये हैं ॥
उक्तानाम्॥ पुद्गलानाम्॥ भेद-प्रदर्शन-अर्थम्॥ आह॥	=कथित पुद्गलोंके भेद दिखावने के लिये (उपर सूत्रमें) कहते हैं कि

नुद् इत्यर्थ तुदादिगणका धातु है जो प्रेरण अर्थमें (=प्रेरने) आता है । (प्रश्न) यदि स्पर्श रसादि तथा शब्दबन्धादि पुद्गलोंहीमें होते हैं तो स्पर्शादिक तथा शब्दादिकके लिये पृथक २ दो सूत्र क्यों किये । अर्थात् स्पर्श रस गन्ध इत्यादि (२३) तथा शब्द-बन्ध इत्यादि (२४) दो सूत्र क्यों किये एकही सूत्रसे कार्य चलजाता (उत्तर) स्पर्श रस आदि जो हैं वे परमाणुओंमें तथा स्कन्धोंमें स्वभावसेही होते हैं और शब्द-बन्ध-आदि तो स्कन्धोंहीमें होते हैं और अनेक निमित्तोंसे होते हैं न कि केवल परिणाम जन्य इसलिये पृथक् पृथक् सूत्र किये गये हैं ॥

परिमण्डलादीनामित्थंलक्षणम् । ततोऽन्यन्मेघादीनां संस्थानमनेकविधमित्थमिदमिति निरूपणाभावादनित्थंलक्षणम् ॥ भेदाः षोढा, उत्करचूर्णखण्डचूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात् ॥ तत्रोत्करः काष्ठादीनां करपत्रादिभिरुत्करणम् । चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादि । खण्डो घटादीनां कपालशर्करादि । चूर्णिका माषमुद्गादीनां । प्रतरोऽभ्रपटलादीनाम् । अणुचटनं सन्तप्तायःपिण्डादिषु अयोघनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिर्गमः ॥ तमो दृष्टिप्रतिबन्धकारणं प्रकाशविरोधि ॥ छाया प्रकाशावरणनिमित्ता । सा द्वेधा, वर्णादिविकारपरिणता

परिमण्डल-आदीनाम् इत्थंलक्षणम् । इत्थम् इदम् इति = चारों ओर गोल आदिकके इत्थंलक्षण(संस्थान) है ऐसे यह इत्थम् है

ततः अन्यत् मेघ आदीनाम् संस्थानम् अनेकविधम् = तिस (इत्थंलक्षणसंस्थान)से अन्य बादल आदिकका आकार बहुप्रकार है।

निरूपण अभावात् = ऐसो परिमापण अथवा कथनक्रियेके अभावसे

अनित्थंलक्षणम् । भेदाः षोढा उत्कर-चूर्ण = अनित्थं लक्षण(संस्थान)है॥ भेद छ प्रकार (=षोढा) अर्थात् उत्कर-चूर्ण-

खण्ड-चूर्णिका प्रतर अणुचटन-विकल्पात् ॥ = खण्ड-चूर्णिका प्रतर अणुचटन विकल्पसे है

तत्र उत्करः काष्ठ आदीनाम् करपत्र-आदिभिः = तहां उत्कर भेद काठादिका आरा (=करपत्र-क्रकच) आदिकसे

उत्करणम् । चूर्णः यव गोधूम आदीनाम् = विदारण है । चूर्ण जौ गेहूं(=गोधूम) आदिकोंका

सक्तु कणिका आदिः । खण्डः घट आदीनां कपाल शर्करा आदिः । = सतुआ आटा वा चून आदिक है खंड घड़ादिकोंके टुकड़ा रोड़ादिक हैं।

चूर्णिका माष मुद्ग-आदीनाम् । प्रतरः अभ्र = चूर्णिका उड़द (माष) मूंग (=मुद्ग) आदिकी दाल है । प्रतर अभ्रकके

पटल आदीनाम् । अणुचटनम् सन्तप्त अयस् = पत्रादिकोंका (उपाड़ना) है । अणुचटन या अणुचर अग्निमें तपाये लोहेके

पिण्ड आदिषु अयस्-घन आदिभिः अभिहन्यमानेषु = पिंडादिक विषें लोहेके घनादिककरि चोटदेनेपर वा पीटनेपर

स्फुलिङ्ग-निर्गमः । तमः दृष्टि प्रतिबन्धकारणम् = स्फुलिंगोंका निर्गमन, चमचमानानिकलना है।तमअन्धकार दृष्टिकारोकनेवाला

प्रकाश-विरोधि । छाया प्रकाश आवरणनिमित्ता = उजालेका विरोध या प्रतिकूल है । छाया उजालेके रुकनेकाकारण है।

सा द्वेधा वर्ण आदि विकार-परिणता ॥ = वह छाया दो प्रकार है वर्णादि विकार परिणत अथवा तद्वर्ण परिणत (अर्थात् कांचविषें इत्यादि) वर्णादिकका परिणमन होजाना

संघातानां द्वितयनिमित्तवशाद्विदारणं भेद । पृथग्भूतानामेकत्वापत्तिः संघात ॥ ननु च द्वित्वाद्द्विवचनेन भवितव्यम् ॥ बहुवचननिर्देशस्तृतीयसंग्रहार्थ । भेदात्संघाताद्भेदसंघाताभ्यां च उत्पद्यन्त इति ॥ तद्यथा—द्वयो परमाण्वो संघाताद्द्विप्रदेश स्कन्ध उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणां वा अणूनां संघातात्त्रिप्रदेश । द्वयोर्द्विप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्चतुर्णां वा अणूनां संघाताच्चतु प्रदेश

पृष्ठानुपाद।—संघातानाम्॥ द्वितयनिमित्त-वशात्॥ विदारणम्॥ भेद॥ पृथक्भूतानाम्॥ एकत्व आपत्ति॥ संघात॥ ननु च द्वित्वात्॥

द्विवचनेन॥
भवितव्यम्॥ । बहुवचन-निर्देश॥
तृतीय-संग्रह अर्थं॥, भेदात्॥
संघातात्॥ भेद-संघाताभ्याम्॥ च
उत्पद्यन्त इति तद्यथा द्वयो॥ परमाण्वो॥
संघातात्॥ द्विप्रदेश॥ स्कंध॥ उत्पद्यते द्विप्रदेशस्य॥ च
अणो॥ त्रयाणाम्॥ वा अणूनाम्॥ संघातात्॥
त्रिप्रदेश॥, द्वयो॥ द्विप्रदेशयो॥
त्रिप्रदेशस्य॥ अणो॥ चतुर्णाम्॥ वा
अणूनाम्॥ संघातात्॥ चतु प्रदेश॥

तथा ऐसेही किसी स्कन्धके भेद होनेसे अथवा बिदारे जानेसे और उसी समयमें अन्य स्कन्धोंके संघातके जुड़नेसे स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है
=संघातोंके दोनों (बाह्य और अभ्यन्तर) निमित्तोंके वशसे
=जुदा(न्यारा न्यारा या भिन्न २ होना) है सो भेद है। न्यारीन्यारी द्रव्योंके एकपनाकी
=प्राप्ति है सो संघात है। पुनि प्रश्न द्वित्वसे अर्थात् भेदपना और संघातपना के निमित्तोंसे (इस सूत्रमें)
=दो वचन युक्त(भेदसंघाताभ्याम् ऐसा न कि बहुवचन भेद संघातेभ्य ऐसा)
=होना चाहिये। (उत्तर इससूत्रमें) बहुवचनका निरूपण वा वर्णन
=तीसरे(भेदसंघाताभ्याम्)के समुच्चय के लिये है।(पुद्गलोंके स्कन्ध) बिछुड़नेसे
=मिलने(जुड़ने)से और(=च) मिलने बिछुड़ने (दोनोंसे)
=उत्पन्न होते हैं(भेदसंघातेभ्य ऐसा बहुवचन है)। जैसकि दो परमाणुओंके
=जुड़नेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो प्रदेशवाले (स्कन्ध)के और(=च)
=अणुके (=अणो)(संघातसे) अथवा तीन (जुड़ीहुई)परमाणुके मिलनेसे,=संघातात्)
=तीन प्रदेशवाला(स्कंध उपजता)है। दो दो प्रदेशवाले दो (स्कन्धों)के (संघातसे),
=तीन प्रदेशवाले(स्कन्ध) के और अणुके संघातसे, अथवा चार (जुड़ीहुई)
=परमाणुओंके संघातसे चार प्रदेशी(स्कंध उत्पन्न) होता है

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च स्पर्शादिमन्तश्चेति ॥ आह किमेषां पुद्गलानामणुस्कन्धलक्षण परिणामोऽनादिरुत आदिमानित्युच्यते। स खलूत्पत्तिमत्त्वादादिमान्प्रतिज्ञायते ॥ यद्येवं तस्मादभिधीयतां कस्मान्निमित्तादुत्पद्यन्त इति ॥ तत्र स्कन्धानां तावदुत्पत्तिहेतुप्रतिपादनार्थमुच्यते—

॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

शब्द-बन्ध सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद तमस्-छाया-आतप-	=शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खंड, अन्धकार, छांह, तप्त प्रकाश
उद्योतवन्तः। च स्पर्श-आदिमन्तः। च इति	=और (=च) शीतल प्रकाश संयुक्त हैं। (और) स्पर्श रस गंध-वर्णवान् भी (च) हैं
आह किम् एषाम्। पुद्गलानाम्। अणुस्कन्धलक्षणः।	=शिष्य पूछता है कि क्या इन पुद्गलोंके अणुस्कन्ध लक्षणरूप
परिणामः। अनादिः। उत आदिमान्। इति उच्यते।	=विकार अनादि है अथवा (=उत) आदिमान् है (उत्तरमें ऐसा कहाजाता है कि
सः। खलु उत्पत्तिमत्त्वात्। आदिमान्। प्रतिज्ञायते।	=वह (परिणाम) निश्चयसे उत्पत्तिमान होनेसे आदिमान् कहागया है
यदि एवम् तस्मात्। अभिधीयताम्। कस्मात्।	=जो ऐसा है अर्थात् आदिमान् है तो (=तस्मात्) कहाजाना चाहिये कि किस
निमित्तात्। उत्पद्यन्ते इति। तत्र स्कन्धानाम्। तावत्	=निमित्तसे वा किस कारणसे उत्पन्न होते हैं। तहां प्रथम (=तावत्) स्कंधोंकी
उत्पत्ति-हेतु-प्रतिपादन अर्थम्। उच्यते	=उत्पत्तिका कारण कहनेके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ [1]भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥ = (पुद्गलाना स्कधा) भेदसघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

= पुद्गलाना स्कधा भेदात्-संघातात् भेदसघाताभ्याम् च* उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

सूत्रार्थ —पुद्गलानाम्। स्कंधाः। भेदात्। संघातात्।	=पुद्गलोंके स्कंध भेदसे और संघातसे
भेद-संघाताभ्याम्। च उत्पद्यन्ते	=और (एकही कालमें) भेद संघात (दोनोंसे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् (१) बाह्य या अभ्यन्तरिक निमित्तसे स्कंधोंके टूट जानेसे दो परमाणुओं तकके अनेक स्कंध उत्पन्न होते हैं (२) और बाह्य वा अभ्यन्तरिक कारणसे अन्य अन्य स्कंधोंके संघातसेभी स्कंध होते हैं

(1) श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते" ऐसा पाठ उपर्युक्त सूत्रका है परन्तु अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है।

एव संख्येयासंख्येयानन्तानामनन्तानन्ताना च संघातात्तावत्प्रदेशा। एषामेव भेदात्तावद्द्विप्रदेश-पर्यन्ता स्कन्धा उत्पद्यन्ते ॥ एवं भेदसंघाताभ्यामेकसामयिकाभ्या द्विप्रदेशादय स्कन्धाउत्पद्यन्ते। अन्यतो भेदेनान्यस्य संघातेनेति॥ एवं स्कन्धानामुत्पत्तिहेतुरुक्त ॥ अणोरुत्पत्तिहेतुप्रदर्शनर्थमाह—

॥ भेदादणुः ॥ २७ ॥

एवम्॥संख्येय असंख्येय-अनन्तानाम्॥ अनन्तानन्तानाम्॥ च॥	=इसप्रकार संख्यात असंख्यात-अनन्त-और(=च) अनन्तानन्तके
संघातात्॥ तावत्॥ प्रदेशाः॥, एषाम्॥ एव॥ भेदात्॥	=संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कंध(उपजतेहैं),इन(स्कन्धों)के ही विदारणसे
तावत्॥ द्वि-देश पर्यन्ताः॥ स्कंधाः॥ उत्पद्यन्ते॥	=(तावत्–'वाक्यके भूषके लिये है')दो प्रदेशीतक स्कंध उपजते हैं अर्थात् अन्य बहुत प्रदेशवाले स्कंध यदि विदारे जांये तो वे स्कंध टूट टूटकर छोटेसे छोटे स्कंधको प्रदेश तकके होसकते हैं। इससे छोटा स्कंध नहीं होसकता है
एवम्॥ भेद-संघाताभ्याम्॥ एकसामयिकाभ्याम्॥	=इस प्रकार एक समयकरि॥ =सामयिक॥ भेद संघात दोनोंसे
द्विप्रदेशादयः॥ स्कन्धाः॥ उत्पद्यन्ते॥	=दो प्रदेशादिक वाले स्कंध उत्पन्न होते हैं अर्थात् किसी स्कन्धका विदारण हो और उसी समय में किसी दूसरे स्कन्धसे उसका संघात होतो इसप्रकारभेद संघात दोनों से एक ही समय में स्कंध उपजते हैं
अन्यत॥ भेदेन॥ अन्यस्य॥ संघातेन॥ इति॥ ॥	=अन्यसे भेदकरि (और) अन्यका संघात करि (ये स्कंध उत्पन्न होते हैं) अर्थात् य भेद संघात (दोनों) सेएक ही समयमें उत्पन्न होनेवाले स्कंध इस प्रकार होसहैं कि किसीएक स्कंधकी जिस समय टूटन हुई उसी समय किसी दूसरेस्कंधके साथ उसका जुड़नाहोतो कहेंगेकि अमुकस्कन्धभेद संघातसेउपजाहै
एवम्॥ स्कन्धानाम्॥ उत्पत्ति हेतुः॥ उक्तः॥ ॥	=इस प्रकार स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण कहा गया
अणोः॥ उत्पत्ति हेतु प्रदर्शन-अर्थम्॥ आह॥	=अणु की उत्पत्तिका कारण दिखावनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि
सूत्रम्–भेदादणु ॥२७॥	=भेदात अणु (उत्पद्यते) ॥२७॥

(१) [illegible]

सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थो भवति। अणोरुत्पत्तिर्भेदादेव, न संघातान्नापि भेदसंघाताभ्यामिति॥

आह संघातादेव स्कन्धानामात्मलाभे सिद्धे भेदग्रहणमनर्थकमिति ॥ तद्ग्रहणप्रयोजनप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते—

सूत्रार्थः—भेदात् ।। अणुः ।। उत्पद्यते । =भेद से अणु उत्पन्न होता है अर्थात् अणु किसी वस्तुके खण्ड से उपजता है न कि किसी वस्तु के जुड़ने अथवा मिलने से ॥

वृत्त्यनुवादः-सिद्धे।। विधिः।। आरभ्यमाणः।। नियम-अर्थः।। =सिद्ध होनेपर अर्थात् सिद्ध होनेके पश्चात् विधि सूत्रका आरम्भ नियमके लिये

भवति। =होता है अर्थात् जो पहले विधि सूत्रसे अर्थ सिद्ध होनेपर फिर विधि सूत्र कहा जाता है वह नियमके लिये होता है और उसको नियम सूत्र(सीमाबंधक सूत्र) कहते हैं जैसे पचीसवां सूत्रमें कहा है कि पुद्गलके अणु और स्कंध दो भेद होते हैं और छब्बीसवां सूत्रमें कहते हैं कि (१)भेदसे (२) संघातसे और (३) भेद संघात दोनोंसे स्कंध उत्पन्न होते हैं यह विधि सूत्र अथवा एक बातको साधारण वर्णन करनेवाला सूत्र है, पचीसवां सूत्रसे इस २६वां सूत्रमें अणवः स्कंधाः दोनोंकी अनुवृत्तियां यदि लीजावें तो यह अर्थ होगा कि अणु और स्कंध (१) भेदसे (२) संघातसे और (३) एकही समयमें भेद संघात दोनोंसेही उत्पन्न होते हैं, यथार्थमें यह अर्थ है नहीं इसलिये ऊपरके अर्थको नियमित वा रोकनेके लिये पूर्वोक्त विधि सूत्र २६वां के पश्चात्ही दूसरा विधि सूत्र अर्थात् २७वां सूत्र कि अणु भेदसेही उपजते हैं (नकि संघातसे और भेद संघात दोनोंसे उपजते हैं) दिया है ॥

अणोः।। उत्पत्तिः।। भेदात्।। एव॰, न॰ संघातात्।। अपि॰ =अणुकी उत्पत्ति भेदसेही है नकि संघातसे भी ॥

भेद-संघाताभ्याम्।। इति॰। आह। संघातात्।। एव॰ =(और नकि एकसमयमें)भेदसंघात दोनोंसे(होतीहै)(शिष्य)तर्क करताहैकि संघातसेही

स्कंधानाम्।। आत्म-लाभे।। सिद्धे।। भेदग्रहणम्।।। =स्कंधोंके स्वरूप लाभ सिद्ध होने पर(संघातके साथ) भेदको ग्रहण करना

अनर्थकम्।।। इति॰ =निष्प्रयोजन है अर्थात् संघातसे स्कंध उत्पन्न होते हैं फिर भेद संघातसे उत्पत्ति कहना निरर्थक है

तद्-ग्रहण प्रयोजन प्रतिपादन अर्थम्।।। =उस संघातके साथ भेद(शब्द)के लानेके प्रयोजन कहनेके लिये

इदम्।।। उच्यते। =यह(अग्रिम सूत्र)कहाजाता है कि

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुपः ॥ २८ ॥

ग्रनन्तान तपरमाणुमसुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुष कश्चिदचाक्षुष ॥ तत्र योऽचाक्षुष

सूत्रम्–भेदसघाताभ्या चाक्षुप(१)॥ २८ ॥ = भेदसघाताभ्याम्चाक्षुष (स्कध उत्पद्यते)॥ २८॥

सूत्रार्थ —भेदसघाताभ्याम्, चाक्षुप, स्कध, उत्पद्यते =भेद सघात(दोनों)सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता)

अर्थात् जो सूक्ष्म परिणामनरूप स्कंध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर भी सूक्ष्म परिणामको नहीं छोडता है इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद)रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कधमें सघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोडकर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इंद्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते हैं कि भेद सघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कध पैदा होता है

सूत्रानुवादः—अन तानन्त-परमाणु-समुदय-निष्पाद्य, अपि =अन तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य(स्कंधों)में भी

कश्चित् चाक्षुषः, कश्चित् अचाक्षुषः =कोई एक(स्कंध)नेत्र इन्द्रियकरि ग्राह्य है,कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

तत्र यः, अचाक्षुषः =वहां जो स्कंध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुपः) है

(1) नेत्र इन्द्रियगोचर =नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेवाला नेत्रइन्द्रियकर ग्राह्य नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी बहुतसी सुत्रग्रन्थकी छपाई तथा हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पूर्वोक्त लेखानुसार है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा श्रीसिद्धसेनसूरि (श्वेताम्बर)की टीका पृष्ठ ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" ॥ अर्थात् चाक्षुषाः बहुवचन चाक्षुष (नेत्र ...) [illegible] ... और सूत्रमता यह भास पड़ती है कि स्कन्धाः शब्दकी अनुवृत्ति पच्चीसवां सूत्रसे और उत्पद्यन्ते शब्दकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लेकर ... "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते" यह अनुवृत्तियोंसहित सूत्र होजाता है । इसमें सन्देह नहीं कि ... "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" होजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाके स्थानमें स्कन्धाः की मानली पड़ती है और इसी प्रकार उत्पद्यते के स्थानमें उत्पद्यन्तेकी । अर्थ इसप्रकार समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें किया है कि

भेद-संघाताभ्यां, चाक्षुषाः, स्कन्धाः ॥ =भेद-संघात (दोनों)से ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेवाले स्कन्ध

उत्पद्यन्ते अचाक्षुषाः सूक्ष्मपरिणामात् ॥ =उत्पन्न होते हैं और (=तु) अचाक्षुष इन्द्रियगोचर नहीं है वे भेदादि (छब्बीसवां सूत्रमें कहागया है कि)

संघातात्, भेदात्, संघातभेदात्, उत्पद्यन्ते =संघातसे भेदसे तथा(=च) संघातभेद(दोनों)से(ही)(उत्पन्न होते हैं)। अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥

स कथं चाक्षुषो भवतीति चेदुच्यते । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत्‌ब्रूम । सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागादचाक्षुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपरः सत्यपि तद्भेदेऽन्यसंघातान्तरसंयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चाक्षुषो भवति॥ आह धर्मादीनां द्रव्याणां विशेषलक्षणान्युक्तानि, सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम्॥ उच्यते—

॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

सः । कथम् । चाक्षुषः । भवति । इति । चेत् । उच्यते ।	=सो कैसे नेत्र इन्द्रियगोचर होता है । ऐसी शंका होनेपर कहाजाता है कि
भेदसंघाताभ्याम् । चाक्षुषः । न । भेदात् । इति ।	=भेदसंघात दोनों से नेत्र इन्द्रियगोचर(स्कन्ध)होता है न भेद या खंडसे केवल ।
का । तत्र । उपपत्तिः । इति । चेत् । ब्रूमः ।	=क्योंकर वहां चाक्षुषकी)उत्पत्ति है ऐसा संदेह है(उत्तरमें) हम कहते हैं कि
सूक्ष्म-परिणामस्य । स्कन्धस्य । भेदे । सौक्ष्म्य-	=सूक्ष्म परिणमनरूप स्कन्धके भेद या खंड होनेपर सूक्ष्मताके
अपरित्यागात् । अचाक्षुषत्वम् । एव ।	=न छोड़ने(के कारण)से नेत्र इन्द्रियके अगोचरही रहता है ।
सौक्ष्म्य-परिणतः । पुनः । अपरः । सति । अपि । तद्-भेदे ।	=बहुरि कोई एक(=अपर)सूक्ष्मतारूप परिणमा(स्कन्ध)जो उस(स्कन्ध)के भेद होनेपर
अन्य-संघात-अन्तर-संयोगात् । सौक्ष्म्य	=अन्य(स्कन्ध)का संघात विशेषके(अन्तर)मिलनेसे सूक्ष्मपनाके
परिणाम-उपरमे । स्थौल्य-उत्पत्तौ । चाक्षुषः । भवति ॥	=परिणमनको छोड़नेपर और(=च)स्थूलताके उत्पन्न होनेपर नेत्र इन्द्रियगोचर होता है
आह । धर्मादीनाम् । द्रव्याणाम्-विशेष-लक्षणानि । उक्तानि ।	=शिष्य पूछता है कि धर्मादिक द्रव्योंके विशेष लक्षण कहेगये
सामान्य-लक्षणम् । न । उक्तम् । तत्-वक्तव्यम् । उच्यते	=सामान्यलक्षण नहीं कहागया, उस सामान्यलक्षणको कहना चाहिये-कहाजाताहैकि
सद्द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥	= सत्-द्रव्य-लक्षणम् (भवति) ॥२९॥
सूत्रार्थ- सत् । द्रव्य-लक्षणम् । भवति	=द्रव्यका लक्षण सत् है वही द्रव्य है अथवा जो सत्‌रूप है वही द्रव्य है

श्वेताम्बराम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसका सूत्र नहीं माना है वार्तिक और वृत्तिरूपमें दिया है ॥

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुपः ॥ २८ ॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुप कश्चिदचाक्षुष ॥ तत्र योऽचाक्षुष

सूत्रम्–भेदसघाताभ्या चाक्षुप(१)॥ २८ ॥ = भेदसघाताभ्याम्चाक्षुप (स्कध उत्पद्यते)॥ २८॥

सूत्रार्थ —भेदसघाताभ्याम्॥ चाक्षुप॥ (स्कधः)॥ उत्पद्यते॥=भेद सघात(दोनों)सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कंध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणमनरूप स्कध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर भी सूक्ष्म परिणामको नहीं छोडता है इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद)रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कधमें सघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोडकर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इन्द्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते हैं कि भेद सघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कध पैदा होता है

सूत्रानुवाद —अनन्तानन्त-परमाणु-समुदय-निष्पाद्य॥अपि॥=अनन्तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य(स्कंधों)में भी

कश्चित्॥चाक्षुपः॥ कश्चित्॥अचाक्षुपः॥ =कोई एक(स्कंध)नेत्र इन्द्रियकरि ग्राह्य है,कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

तत्र यः॥ अचाक्षुपः॥ =तहां जो स्कंध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुप) है

(१) नेत्र इन्द्रियगोचर=नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेवाला नेत्रइन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी अनुसारी सुप्रसिद्ध ग्रन्थ तथा हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पूर्वोक्त लेखानुसार है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पृष्ठ ३०९ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि "भेदसघाताभ्यां चाक्षुषाः ॥ अर्थात् चाक्षुषाः बहुवचन चाक्षुष (नेत्र इन्द्रियगोचर) है इसका कारण गाथा और सुगमता यह जान पडती है कि स्कन्धाः शब्दकी अनुवृत्ति पचीसवां सूत्रसे और उत्पद्यन्ते शब्दकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लेकर ऐसा [illegible] किया हुआ "भेदसघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते ऐसा अनुवृत्तिपूर्वक सूत्र होजाता है। इसमें संदेह नहीं कि एक प्रकारके गुरुसूत्र बोध होजाता है अर्थात् "भेदसघाताभ्यां चाक्षुषाः होजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाः स्थानमें स्कन्धः की मानली पडती है और इसी प्रकार उत्पद्यन्तेके स्थानमें उत्पद्यतेकी। अर्थ इसप्रकार समाप्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें लिखा है कि

भेद-संघाताभ्यां,॥ चाक्षुषाः॥स्कन्धाः॥ =भेद-सघात (दोनों)से ही नेत्र इन्द्रियके प्रत्यक्ष [illegible] स्कन्ध

उत्पद्यन्ते अचाक्षुषाः [illegible] =उत्पन्न होते हैं और (=तु)जोनेत्र इन्द्रियगोचर नहीं है वे जैसाकि (छब्बीसवांसूत्रमें कहागया है कि)

सघातात्[illegible] । संघातभेदात् [illegible] =संघातसे भेदसे तथा(=च) संघातभेद(दोनों)से(ही)(उत्पन्न होते हैं)।अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसाहै।

स कथं चाक्षुषो भवतीति चेदुच्यते । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत्-ब्रूमः । सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागादचाक्षुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपरः सत्यपि तद्भेदेऽन्यसंघातान्तरसंयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चाक्षुषो भवति ॥ आह धर्मादीनां द्रव्याणां विशेषलक्षणान्युक्तानि, सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम् ॥ उच्यते—

॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

सः । कथम् । चाक्षुषः । भवति । इति । चेत् । उच्यते ।	=सो कैसे नेत्र इन्द्रियगोचर होता है । ऐसी शंका होनेपर कहाजाता है कि
भेदसंघाताभ्याम् । चाक्षुषः । न । भेदात् । इति ।	=भेदसंघात दोनों से नेत्र इन्द्रियगोचर (स्कन्ध) होता है न भेद या खंडसे केवल ।
का । तत्र । उपपत्तिः । इति । चेत् । ब्रूमः ।	=क्योंकर वहां चाक्षुषस्कन्धकी उत्पत्ति है ऐसा संदेह है (उत्तरमें) हम कहते हैं कि
सूक्ष्म-परिणामस्य । स्कन्धस्य । भेदे । सौक्ष्म्य	=सूक्ष्म परिणमनरूप स्कन्धके भेद या खंड होनेपर सूक्ष्मताके
अपरित्यागात् । अचाक्षुषत्वम् । एव ।	=न छोड़ने (के कारण) से नेत्र इन्द्रियके अगोचरही रहता है ।
सौक्ष्म्य-परिणतः । पुनः । अपरः । सति । अपि । तद्-भेदे ।	=बहुरि कोई एक (=अपर) सूक्ष्मतारूप परिणमा (स्कन्ध) हो उस (स्कन्ध) के भेद होनेपर
अन्य-संघात-अन्तर-संयोगात् । सौक्ष्म्य	=अन्य (स्कन्ध) का संघात विशेषके (अन्तर) मिलनेसे सूक्ष्मपनाके
परिणाम उपरमे । स्थौल्य-उत्पत्तौ । चाक्षुषः । भवति ॥	=परिणमनको छोड़नेपर और (=च) स्थूलताके उत्पन्न होनेपर नेत्र इन्द्रियगोचर होता है
आह । धर्मादीनाम् । द्रव्याणाम्-विशेष-लक्षणानि । उक्तानि ।	=शिष्य पूछता है कि धर्मादिक द्रव्योंके विशेष लक्षण कहेगये
सामान्य-लक्षणम् । न । उक्तम् । तद्-वक्तव्यम् । उच्यते	=सामान्यलक्षण नहीं कहागया, उस सामान्यलक्षणको कहना चाहिये-कहाजाता है कि
सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥	= सत्-द्रव्य-लक्षणम् (भवति) ॥ २९ ॥
सूत्रार्थः-सत् । द्रव्य-लक्षणम् । भवति	=द्रव्यका लक्षण सत् है यही द्रव्य है अथवा जो सत्रूप है यही द्रव्य है

श्वेताम्बराम्नायके समाज्यमत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है वार्तिक और वृत्तिरूपमें लिया है ॥

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुष कश्चिदचाक्षुष ॥ तत्र योऽचाक्षुष

सूत्रम्–भेदसंघाताभ्यां चाक्षुष[1]॥ २८ ॥ = भेदसंघाताभ्याम्चाक्षुष (स्कंध उत्पद्यते)॥ २८॥

सूत्रार्थ —भेदसंघाताभ्याम्॥ चाक्षुषः॥ स्कंधः॥ उत्पद्यते॥=भेद संघात(दोनों)सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कंध उत्पन्न होता है(भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणमनरूप स्कंध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर वो सूक्ष्म परिणामको नहीं छोड़ता है इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम(=भेद)रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कंधमें संघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोड़कर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इंद्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते हैं कि भेद संघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कंध पैदा होता है

सूत्रानुसार—अनन्तानन्त-परमाणु-समुदय-निष्पाद्य॥ अपि॥ =अनन्तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य(स्कंधों)में भी

कश्चित्॥ चाक्षुषः॥ कश्चित्॥ अचाक्षुषः॥ =कोई एक(स्कंध)नेत्र इन्द्रियकरि ग्राह्य है,कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

तत्र॥ यः॥ अचाक्षुषः॥ =वहां जो स्कंध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुषः) है

(1) नेत्र इन्द्रियगोचर=नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेवाला नेत्रइन्द्रियके ग्राह्य नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी बहुतसी मुद्रितग्रन्थकी तथा कई हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पर्वोक्त लेखअनुसार है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पृष्ठ ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" ॥ अर्थात् चाक्षुषा बहुवचन चाक्षुष'(नेत्र इन्द्रियगोचर)का है [illegible] और सूक्ष्मता यह ज्ञात पड़ती है कि'स्कन्धाः शब्दकी अनुवृत्ति पचीसवां सूत्रसे और उत्पद्यन्ते शब्दकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लेकर [illegible] लौगाताली [illegible] "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते" यह अनुवृत्तियोंसहित सूत्र होजाता है। इसमें संदेह नहीं कि एक प्रकारके [illegible] होजाता है अर्थात् "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" होजाता है अनुवृत्ति स्कन्धाके स्थानमें'स्कन्धः की मानसी पड़ती है और इसी प्रकार उत्पद्यन्ते [illegible] उत्पद्यते की। अर्थ इसप्रकार सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें किया है कि

भेदसंघाताभ्यां॥ चाक्षुषाः॥ स्कन्धाः॥ =भेद संघात (दोनों)से ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष [illegible] स्कन्ध

उत्पद्यन्ते॥ अचाक्षुषाः, तु [illegible] ॥ =उत्पन्न होते हैं और (=तु) जोकि इन्द्रियगोचर नहीं है वे जैसाकि (छब्बीसवां सूत्रमें कहागया है कि)

[illegible] भेदात्॥ संघातभेदात् [illegible] =संघातसे भेदसे तथा(=च) संघातभेद(दोनों)से(ही)(उत्पन्न होते हैं)।अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसा है।

तथा पूर्वभावविगमनं व्यय । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृते ॥ अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुव ।

	नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद मानना
तथा=पूर्वभावविगमनम्=व्यय ।	=जैसेही (=तथा) पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है
यथा=घट उत्पत्तौ=पिण्ड आकृतेः=, अनादि पारिणामिक-स्वभावेन= व्यय-उदय अभावात्=	=जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना) अनादिकालसे =परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके अभावसे रहित
(१)ध्रुवति= स्थिरीभवति=इति=ध्रुव=	=स्थिर रहता है वा अवस्थित रहता है (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नहीं छोड़ता है

सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजती हैं और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नहीं है ध्रुव है ही ॥

कुण्डलरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतत्व भारीपन आदि अपनी सोनेकी जातिको लिये हुए दोनो अवस्थाओंमे विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है। और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट बनना सो उत्पाद है। और पिंडपर्यायका अभाव सो व्यय है और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनो पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है ॥

(१) श्वेताम्बराम्नायमें [illegible] सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसत्" (ख)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येणच युक्तमेकसमयम् (उत्पादसे व्ययसे तथा ध्रौव्यसे युक्त होना यह सत्का लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितययुक्तं सत् (घ) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं च सतो लक्षणम् (ङ)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पडे हैं । सर्वथा सूत्रका यह अर्थहै कि उत्पाद, व्यय ध्रौव्य सहित सत् है ॥

(२)अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी अंशरूप तो गुण है और व्यतिरेकी पर्याय है जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुणहैं और पिंड घट कपाल खंड शर्करादिक पर्याय हैं । स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के साथही घट कपाल खंडादिक सर्वपर्यायोंमें पाये जात हैं तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं। और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं। जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नहीं हैं और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायात्मकही द्रव्य है । गुण हैं ते तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते हैं और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं तिससे गुणपर्यायहैं ते द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना का धारण करती है । इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कहेगये हैं ।

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थः ॥ यद्येवं तदेव तावद्वक्तव्यं किं सत् ? इत्यत आह—

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वां जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादन-मुत्पादः । मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् ॥

सूत्रानुवाद—यत्॥सत्॥तत्॥द्रव्यम्॥इति॰अर्थः॥ =जो सत् है वह द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है
यदि॥एवम्॰तावत्॰तत्॥ एव॰ =जो ऐसे है अर्थात् जो सत् है सो द्रव्य है तो(=तावत्)सोही (तदेव)
वक्तव्यम्॥किम्॥सत्॥ इति॰अत आह =कहना चाहिये सत् क्या है इसलिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(1) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं (2) सत् ॥३०॥ = भवति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ ३०

सूत्रार्थ—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्॥सत्॥भवति॥ =उत्पत्ति-नाश-स्थिरता स्वरूप (=युक्त) सत् है या उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षणवाला (=युक्त) सत् है अर्थात् (3) उत्तर पर्यायका उपजना सोही पूर्व पर्यायका नाश होना है और जो पूर्व पर्यायका नाश होना सोही उत्तर पर्यायका उत्पाद है और द्रव्य है सो उत्पादमेंभी वही द्रव्य है और व्यय में भी वही द्रव्य है अन्य द्रव्य नहीं होगई है और उत्पाद-व्ययद्रव्यमें समय समय होता है इससे सर्वद्रव्य परिणामी हैं परिणमन विना किसी समयमेंभी कोई द्रव्य नहीं रहती है। ये(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) तीनों) गुण द्रव्यमें एक साथ निरन्तर रहते हैं।

सूत्रानुवाद—स्वाम्॥जातिम्॥अजहत॥चेतनस्य॥ =जिसने अपनी जातिको नहीं छोड़ा है चेतन
अचेतनस्य॥वा॰द्रव्यस्य॥उभय-निमित्त-वशात्॥ =अथवा अचेतन द्रव्यके (बाह्य, अभ्यन्तर) दोनों कारणोंके वशसे
भावान्तर अवाप्तिः॥उत्पादनम्॥उत्पादः॥ =(एक अवस्थासे)अन्य अवस्था या परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है
मृत्॥ पिण्डस्य॥ घट-पर्यायवत्॰ =माटीके पिंडके घट पर्याय होने सदृश है अर्थात् मृतिका द्रव्य विषें पिंड पर्यायका

(1) इस सूत्रका पाठ और अर्थ [illegible] सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें कई पाठ हैं उनमेंसे एक पाठ मिलता है (देखो पृष्ठ १०१)॥
(2) (प्रश्न) जब उनतीसवां सूत्रमें 'सत्' शब्द है तो यहां तीसवां सूत्रमें 'सत्' शब्द क्यों लाये हैं, उनतीसवां सूत्रसे अनुवृत्ति लेकर ऐसा सूत्र क्यों नहीं किया कि "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं" [illegible] (उत्तर) यह संदेह रहता कि सत् शब्दकी अनुवृत्ति है [illegible] 'द्रव्यलक्षणम्' की क्योंकि उत्पाद व्यय ध्रौव्य [illegible] [illegible] इन दोनोंका [illegible] है (3) [illegible] [illegible] होना [illegible] उत्पाद है और

तथा पूर्वभावविगमनं व्यय । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृतेः॥ अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुव ।

नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद मानना

तथा पूर्वभावविगमनम् व्ययः । =वैसेही (=तथा) पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है

यथा घट उत्पत्तौ पिण्ड-आकृतेः, अनादि =जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना) अनादिकालसे

पारिणामिक-स्वभावेन व्यय-उदय-अभावात् =परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके वशसे रहित

(२)ध्रुवति स्थिरीभवति इति ध्रुवः =स्थिर रहता है वा अवस्थितमान रहता है (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नहीं छोड़ता है सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजती हैं और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नहीं है ध्रुव है ही ॥

कुण्डलरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीलापन भारीपन आदि अपनी सोनकी जातिको लिये हुए दोनों अवस्थाओंमें विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है। और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट करना सो उत्पाद है। और पिंडपर्यायका अभाव सो व्यय है और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनों पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है॥

(१) श्वेताम्बराम्नायमें इस सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसत्" (ख)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येणच युक्तस्तोलक्षणम् (उत्पादसे व्ययसे तथा ध्रौव्यसे युक्त होना यह सतका लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितययुक्तं सत् (घ) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं च सतो लक्षणम् (ङ)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पढे हैं। सर्वका सूत्रका यह अर्थ है कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित सत् है॥

(२)अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी ओइकरु ती गुण है और व्यतिरेकी पर्याय हैं जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुण हैं और पिंड घट कपाल खंड शर्करादिक पर्याय हैं। स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के साथही घट कपाल खंडादिक सर्वपर्यायोंमें पाये जाते हैं तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं। और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं। जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नहीं हैं और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायात्मक ही द्रव्य है। गुण हैं ये तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते हैं और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं तिससे गुणपर्यायही ते द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना को धारण करती है। इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कहेगये हैं।

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थ ॥ यद्येव तदेव तावद्वक्तव्यं किं सत्? इत्यत आह—

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वां जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादन-मुत्पाद । मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् ॥

शब्दार्थ —यत्॥ सत्॥ तत्॥ द्रव्यम्॥ इति अर्थः॥ =जो सत् है वह द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है
यदि॥ एवम् तावत् तत्॥ एव =जो ऐसे हैं अर्थात् जो सत् है सो द्रव्य है तो(=तावत्) सोही (तदेव)
वक्तव्यम्॥ किम्॥ सत्॥ इति अत आह =कहना चाहिये सत् क्या है इसलिये(आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

[1] उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त [2]सत् ॥३०॥ = भवति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ ३०

सूत्रार्थ —उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्॥ सत्॥ भवति। =उत्पत्ति-नाश-स्थिरता स्वरूप (=युक्त) सत् है या उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षणवाला (=युक्त) सत् है अर्थात् [3] उत्तर पर्यायका उपजना सोही पूर्व पर्यायका नाश होना है और जो पूर्व पर्यायका नाश होना सोही उत्तर पर्यायका उत्पाद है और ध्रव्य है सो उत्पादमेंभी वही द्रव्य है और व्यय में भी वही द्रव्य है अन्य द्रव्य नहीं होगई है और उत्पाद-व्ययद्रव्यमें समय समय होता है इससे सर्वद्रव्य परिणामी हैं परिणमन बिना किसी समयमेंभी कोई द्रव्य नहीं रहती है। ये(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) तीनों गुण द्रव्यमें एक साथ निरन्तर रहते हैं।

शब्दानुवाद— स्वाम्॥ जातिम्॥ अजहत॥ चेतनस्य॥ =जिसने अपनी जातिको नहीं छोड़ा है चेतन
अचेतनस्य॥ वा द्रव्यस्य॥ उभय-निमित्त-वशात्॥ =अथवा अचेतन द्रव्यके (बाह्य, अभ्यन्तर) दोनों कारणोंके वशसे
भावान्तर-अवाप्ति॥ उत्पादनम्॥ उत्पाद॥ =(एक अवस्थासे) अन्य अवस्था या परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है
मृत्॥ पिण्डस्य॥ घट-पर्यायवत् =माटीके पिंडके घट पर्याय होने सदृश है अर्थात् मृत्तिका द्रव्य विषै पिंड पर्यायका

(1) इस सूत्रका पाठ और अर्थ [illegible] है। श्वेताम्बर आम्नायमें कई पाठ हैं उनमेंसे एक पाठ मिलता है (देखो पृष्ठ १०१)।
(2) (सत्) [illegible] [illegible] "उत्पाद-व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्" [illegible] 'सत्' शब्दकी अनुवृत्ति है [illegible] उत्पाद व्यय ध्रौव्य [illegible] (3) जैसे [illegible] होना उत्पाद है और

तथा पूर्वभावविगमनं व्यय । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृते ॥अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुव ।

	नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना
तथा=पूर्वभावविगमनम्॥व्ययः॥ ।	=जैसाही (=तथा) पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है
यथा=घट-उत्पत्तौ॥पिण्ड आकृतेः॥; अनादि	=जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना) अनादिकालसे
पारिणामिक-स्वभावेन॥ १)व्यय-उदय अभावात्॥	=परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके वशसे रहित
(२)ध्रुवति॥ स्थिरीभवति॥इति=ध्रुवः॥	=स्थिर रहता है वा अवस्थित रहता है (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नहीं छोड़ता है सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजतीहैं और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नहीं है ध्रुव है ही ॥

कुपडस्वरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतरंग आदिक आदि अपनी सोनेकी जातिको लिए हुए दोनो अवस्थाओंमें विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है। और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट करना सो उत्पाद है ॥और पिंडपर्यायका अभाव सो व्यय है और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनों पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है ॥

(१) श्वेताम्बराम्नायमें इस सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसत्' (ख)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येणच युक्तसत्लक्षणम् (उत्पादसे व्ययसे तथा ध्रौव्यसे युक्त होना यह सतका लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितयपूर्वं सत् (घ) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं च सतो लक्षणम् (ङ)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पढे हैं ॥ सर्वथा सूत्रका यह अर्थहै कि उत्पाद, व्यय ध्रौव्य सहित सत् है ॥

(२)अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी ओहरुप तो गुण है और व्यतिरेकी पर्याय हैं जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुणहैं और पिंड घट कपाल खंड, शर्करादिक पर्याय हैं ॥ स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के साथही घट कपाल खंडादिक सर्वपर्यायोंमें पाये जात हैं तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं। और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं। जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नहीं हैं और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायात्मक ही द्रव्य है ॥ गुण हैं ते तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते हैं और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं तिसंघ गुणपर्यायहैं ते द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना को धारण करती है ॥ इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कहेगये हैं।

ध्रुवस्य भाव कर्म वा ध्रौव्यम्। यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्य वय ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्तं सदिति॥ आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः। यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सतितेषा त्रयाणा

ध्रुवस्य॥ भाव॥ कर्म॥ वा॥ ध्रौव्यम्॥ ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
यथा॰[1] मृत् पिण्ड-घटादि अवस्थासु॥ मृद् आदि	=जैसे मिट्टीका ढेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है
अन्वय॥ ॥	=सो जोड़ रूप या सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमें थी वही घटमें
तैः॥ उत्पाद-व्यय ध्रौव्यैः॥ युक्तम्॥ सत्॥ इति॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह॥ भेदे॥ सति॥ युक्तशब्द॥ दृष्टः॥ ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द लावे हैं
यथा॰ दण्डेन॥ युक्तः॥ देवदत्तः॥ इति॰ ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है। देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा॰ सति॥ तेषाम्॥ त्रयाणाम्॥	=इस भांति (=तथा) होने में (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) कै

(१) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय" ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृदाद्य वय' के स्थानमें 'मृदाद्यन्वय' हो तो पिण्डका अर्थ लोंदा (देखो शब्दकल्पद्रुम पृष्ठ ११६) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगा कि जैसे मिट्टी और लोंदा (= पिण्ड) घट आदिक [illegible] अवस्थाओंमें मिट्टी और [illegible] का सम्बन्ध रूप है (२) द्रव्यका एक लक्षण सत् कहा एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तपणा कहा। एक गुण पर्यायवान् (देखो सूत्र ३८) [illegible] आजाते हैं। [illegible] उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् [illegible] पर्यायवान् [illegible] आजाते हैं। और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् कहने पर सत्पना और गुणपर्यायवान् [illegible] गर्भित होजाता है और गुण पर्यायवान् [illegible] उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना [illegible] आजाते हैं॥

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभाव प्राप्नोति ॥ नैष दोष । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्त-शब्दो दृष्ट । यथा सारयुक्त स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्त ॥ समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्त समाहित तदात्मक इत्यर्थ । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्

च॥तैः॥युक्तस्य॥द्रव्यस्य॥अभाव॥प्राप्नोति ॥	=और(=च)तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीन भाव पृथक् पृथक्करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आवता है
न॥एषः॥दोषः॥, (१)भेदे॥अपि॥कथञ्चित्॥	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है, भेद होनेपरभी कभी कभी
अभेद-नय-अपेक्षया॥युक्तशब्द॥ दृष्ट॥	=अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखा गया है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द आवे ही है परन्तु कभी कभी अभेदपनाके अर्थमेंभी युक्त शब्द आता है।
यथा॥सारयुक्तः॥स्तम्भः॥इति॥ तथा॥सति॥तेषाम्॥	=जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, तैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के
अविनाभावात्॥सत्-व्यपदेशः॥युक्तः॥	=अविनाभाव होनेसे(=एकविना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सत्का कथन है
समाधिवचनः॥वा॥युक्तशब्दः॥।युक्तः॥समाहितः॥	=अथवा युक्त शब्दएकमेकतारूप वचन (=समाधिवचन) है। युक्त है सो समाहित
तदात्मकः॥इति॥अर्थः॥उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं॥सत्	=तदात्मक या तत्स्वरूप ऐसा अर्थ है। उत्पत्ति,नाश,स्थिरता,मिलित(=युक्त)सत् है,

(१) सर्वार्थसिद्धकी प्रथमावृत्तिमें "अभेदेऽपि कथञ्चिद्भेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है इस पर फुटनोटमें ऐसे है कि "अभेदेऽपिकथञ्चिद्भेदापेक्षया इत्यपि पाठान्तरम् द्वितीयावृत्तिमेंभी वही फुटनोट है परन्तु "अभेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया इत्यादि पाठ है यह छापेकी अशुद्धि है अथवा सम्भव है कि अन्य प्रकारकी अशुद्धि हो क्योंकि कोईभी पाठ हम लें यदि आरंभमें 'अभेद' शब्द है तो मध्यमें भेद शब्द होना चाहिये यदि प्रारम्भमें 'भेद' शब्द हो तो दूसरा शब्द अभेद होना चाहिये ॥ दो हस्तलिखित प्रतियोंमें "अभेदेऽपिकथंचिद्भेदनयापेक्षया" पाठ है एक अन्य हस्त लिखित पुस्तकमें "अभेदेन कथंचित् नयापेक्षया" ऐसा पाठ है। इन समस्त पाठोंको छोड़कर हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है क्योंकि शिष्यके प्रश्नके शब्दोंके अनुकूल उत्तर प्राप्त होजाता है जैसाकि नीचेके हिन्दी अनुवादसे प्रगट है। प्रश्न करता है कि "भेद होनेमें युक्तशब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तु भिन्न दिखानी होतीहै वहां युक्तशब्द आताहै जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो चेतन है और दंड अचेतन अन्य वस्तु है देवदत्त और दंड एकही नहीं है इस भांति होनेपर तिन तीन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)के और उन(उत्पाद व्यय ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होताहै अर्थात् जो ऐसे तीनभाव भिन्नकरि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आताहै।(उत्तर)यह दूषण नहीं है। भेद होनेपरभी कभीकभी अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखाजाता है अर्थात् जहां एक वस्तुसे दूसरी वस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्तशब्द आवेही है परन्तु कभीकभी अभेदपनाके अर्थमें भी युक्तशब्द आता है। जैसे सार युक्त स्तम्भ है ऐसे होनेपर तिन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)केअविनाभावसे सत् का कथनहै

ध्रुवस्य भाव कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्त सदिति॥ आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्ट. । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सति तेषां त्रयाणा

ध्रुवस्य॥भाव॥कर्म॥वा॰ध्रौव्यम्॥ ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
यथा॰[1] मृत् पिण्ड-घटादि अवस्थासु॥मृत् आदि	=जैसे मिट्टीका ढेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है
अन्वय॥ ॥	=सो जोड़ रूप वा सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमें थी वही घटमें
तैः॥उत्पाद-व्यय ध्रौव्यैः॥युक्तम्॥सत्॥ इति॰॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह॥भेदे॥सति॥युक्तशब्द॥दृष्ट॥ ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द लाते हैं
यथा॰दण्डेन॥युक्त॥ देवदत्त॥इति॰ ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा॰सति॥ तेषाम्॥ त्रयाणाम् ॥	=इस भांति (=तथा) होने में (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) के

(१) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय" ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृदन्वय'के स्थानमें 'मृदाद्यन्वय' हो तो 'पिण्डका अर्थ' ढेला (देखो [illegible] पृष्ठ ११६) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगाकि जैसे मिट्टी और लोहा (= पिंड,) घट आदिक लोटा [illegible] अवस्थाओंमें मिट्टी और [illegible] है (२) [illegible] सत् कहा [illegible] उत्पाद व्यय ध्रौव्य [illegible] कहा । [illegible] पर्यायवान् (देखो सूत्र३८) [illegible] आजाते हैं । सत् [illegible] कहनेमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् [illegible] और [illegible] पर्यायवान् [illegible] आजाते हैं । और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् कहने पर सत्पना और गुणपर्यायवान् [illegible] गर्भित होजाता है और गुण पर्यायवान् [illegible] कहनेमें सत्पना और उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्वयमेव आजाते हैं ॥

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभाव प्राप्नोति ॥ नैष दोष । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्तशब्दो दृष्ट । यथा सारयुक्त स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्त ॥ समाधिवचनो वा युक्तशब्द । युक्त समाहित तदात्मक इत्यर्थ । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

च=तैः॥युक्तस्य॥द्रव्यस्य॥अभावः॥प्राप्नोति ॥	=और(=च)तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीन भाव पृथक् पृथक्करि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आवता है
न=एषः॥दोषः॥; (१ भेदे॥अपि=कथंचित्=	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है, भेद होनेपरभी कभी कभी
अभेद-नय-अपेक्षया॥युक्तशब्दः॥ दृष्टः॥	=अभेदनयकी अपेक्षासेयुक्त शब्द देखागयाहै अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द आवे ही है परन्तु कभी कभी अभेदपनाके अर्थमेंभी युक्त शब्द आता है।
यथा=सारयुक्तः॥स्तम्भः॥इति=॥ तथा=सति॥तेषाम्॥	=जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, वैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के
अविनाभावात्॥सत्-व्यपदेशः॥युक्तः॥	=अविनाभाव होनेसे(=एकविना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सत्का कथन है
समाधिवचनः॥वा=युक्तशब्दः॥।युक्तः॥समाहितः॥	=अथवा युक्त शब्दएकमेकतारूप वचन (=समाधिवचन) है। युक्त है सो समाहित
तदात्मकः॥इति=अर्थः॥,उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-युक्तं॥सत्	=तदात्मक वा तत्स्वरूप ऐसा अर्थ है। उत्पत्ति,नाश, स्थिरता,मिलित(=युक्त)सत् है,

(१) सर्वार्थसिद्धका प्रथमावृत्तिमें "भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है इस पर चरणटिप्पणी ऐसे है कि 'अभेदेऽपिकथञ्चिद्भेदापेक्षया इत्यपि पाठान्तरम्' द्वितीयावृत्तिमेंभी यही चरणटिप्पणी है परन्तु "अभेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया इत्यादि पाठ है यह छापेकी अशुद्धि है अथवा सम्भव है कि अन्य प्रकारकी अशुद्धि हो क्योंकि दोनोंमी पाठ हम लें यदि आरम्भमें 'अभेद' शब्द है तो मध्यमें भेद शब्द होना चाहिये यदि आरम्भमें 'भेद' शब्द हो तो दूसरा शब्द अभेद होना चाहिये। दो हस्तलिखित प्रतियोंमें 'अभेदेऽपिकथंचिद्भेदनयापेक्षया" पाठ है एक अन्य हस्तलिखित पुस्तकमें "अभेदेन कथञ्चिद् द्नयापेक्षया ऐसा पाठ है। इन समस्त पाठोंको छोड़कर हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है क्योंकि शिष्यके प्रश्नके शब्दोंके क्रमानकूल उत्तर प्राप्त होजाता है जैसाकि नीचेके हिन्दी अनुवादसे प्रगट है। प्रश्न करता है कि "भेद होनेमें युक्तशब्द देखा आता है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तु भिन्न दिखाली होतीहै वहां युक्तशब्द आतेहैं जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो चेतन है और दंड अचेतन अन्य वस्तु है देवदत्त और दंड एकही नहीं है इस भांति होनेपर तिन तीन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)के और इन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होताहै अर्थात् जो ऐसे तीनभाव भिन्नकरि युक्त है तो द्रव्यका अभाव आताहै।(उत्तर)यह दूषण नहीहै। भेद होनेपरभी कभीकभी अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखाजाता है अर्थात् जहां एक वस्तुसे दूसरी वस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्तशब्द आतेही हैं परन्तु कभीकभी अभेदपनाके अर्थमें भी युक्तशब्द आता है। जैसे सार युक्त स्तम्भ है ऐसे होनेपर तिन(उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)केअविनाभावसे सत् का कथनहै।

ध्रुवस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्तं सदिति ॥ आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सति तेषां त्रयाणा

ध्रुवस्य। भावः। कर्म। वा। ध्रौव्यम्। ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
यथा। मृत्पिण्ड-घटादि अवस्थासु। मृत्-आदि	=जैसे मिट्टीका डेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है
अन्वयः ॥	=सो जोड़ रूप या सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमें थी वही घटमें
तैः। उत्पाद-व्यय ध्रौव्यैः। युक्तम्। सत्। इति॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह। भेदे। सति। युक्तशब्दः। दृष्टः। ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द लाते हैं
यथा। दण्डेन। युक्तः। देवदत्तः। इति ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है। देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा। सति। तेषाम्। त्रयाणाम्।	=इस भांति (=तथा) होने में (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य) के

(१) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वय" ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृदाद्यन्वय' के स्थानमें 'मृदाद्यन्वय' हो तो पिण्डका अर्थ' लोहा (देखो शब्दकल्पद्रुम पत्र ११६) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगा कि जैसे मिट्टी और लोहा (=पिण्ड) घट आदिक लोटा करवा अवस्थाओंमें मिट्टी और लोहेका आकार या सम्बन्ध रूप है (२) द्रव्यका एक लक्षण सत् कहा एक उत्पाद व्यय ध्रौव्य सत्पना कहा। एक गुण पर्यायवान् " (देखो सूत्र ३८) यहां इन तीन लक्षणोंके [illegible] कहने पर अन्य दो लक्षण स्वय होही जाजात हैं। सत् लक्षणके कहनेमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् पना और गुण पर्यायवान् पना स्वयमेव आजाते हैं। और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् कहने पर सत्पना और गुणपर्यायवान् पना स्वयमेव गर्भित होजाता है और गुण पर्यायवान् कहनेसे सत्पना और उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्वयमेव आजाते हैं।

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्तं भवति—उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि । द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्थान्तरभाव ॥ द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धि ॥

आह नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

उत्पाद-व्यय ध्रौव्य आत्मकम् इति यावत् • एतद् ॥ उक्तं भवति ।	=उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता स्वरूप होना इतना(=यावत्) अर्थ है अर्थात् यह सिद्ध होता है कि
उत्पाद आदीनि ॥ त्रीणि ॥ द्रव्यस्य ॥ लक्षणानि ॥	=उत्पादादिक तीनों द्रव्यके लक्षण हैं
द्रव्यम् ॥ लक्ष्यम् ॥ तत्-पर्यायार्थिक-नय	=द्रव्य लक्ष्य है वे(=तद्=उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पर्यायार्थिकनयकी
अपेक्षया ॥ परस्परतः • द्रव्यात् ॥ च • अर्थ अन्तर भाव ॥	=अपेक्षासे आपसमें तथा (=च)द्रव्यसे अन्य अन्य पदार्थ हैं अर्थात् विशेषकी अपेक्षा समस्त पर्याय क्रमवर्ती भिन्नभिन्न हैं, परस्पर मिलें नहीं तिसकरि भिन्न हैं
द्रव्यार्थिक-नय-अपेक्षया ॥ व्यतिरेकेण ॥	=द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पृथक् पृथक् (=व्यतिरेकेण)
अनुपलब्धेः ॥ अनर्थ अन्तर भाव ॥ इति •	=न प्राप्ति होनेसे अन्य अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् ये उत्पाद-व्यय ध्रौव्य सामान्य तो अभिन्न हैं योंही एक द्रव्य है द्रव्यसे भिन्न नहीं है (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३२२) (इस प्रकार भेद अभेदनयकी अथवा (पर्यायार्थिक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे)
लक्ष्य लक्षणभाव सिद्धि ॥ आह ॥ नित्य अवस्थितानि ॥ अरूपाणि ॥ इति • उक्तम् ॥	=लक्ष्य लक्षणभावकी सिद्धि है । (शिष्य) पूछता है कि "नित्यावस्थितान्य =रूपाणि" (इस प्रकार इस अध्यायका चौथा सूत्र) कहागया है
तत्र • न • ज्ञायते • किम् • नित्यम् ॥ इति • अतः • आह	=वहां नहीं बतायागया है कि नित्य क्या है, इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)तद्भावाऽव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

सूत्र—तद् भाव अव्ययम् ॥ नित्यम् ॥	=भाव(सत्)जो स्वभावसे विनाशरहित या अविनाशी(=अव्यय)है सो नित्य है

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंसे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है हमारे यहां 'नित्यम्' शब्दके स्थानमें किसी किसी पुस्तकमें 'नित्यं' पाठ है वह व्याकरणकी व्याख्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ५ २,१५० ५५१)

तद्भाव इत्युच्यते । कस्तद्भाव ? । प्रत्यभिज्ञानहेतुता । तदेवेदमिति स्मरणं प्रत्यभिज्ञानम् । तदकस्मान्न भवतीति योऽस्य हेतु स तद्भाव । तस्य भावस्तद्भाव ॥ येनात्मना प्राग्दृष्टं वस्तु तेनैवात्मना पुनरपि भावात्तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञायते ॥ यद्यत्यन्तविरोधोऽभिनवप्रादुर्भावमात्रमेव वा स्यात्तत

अर्थात्-तद्-भाव जो पहिले समयमें था सोही दूसरे समयमें था उसका नाश न होना सोही नित्य है भावार्थ यह है कि पहिले कहा हुआ (तद्)अथवा २६वां सूत्रमें कथित सत् जो स्वभावसे अविनाशी वा विनाशरहित है सोही नित्य है अर्थात् जिस स्वरूपकरि वस्तु पूर्वमें देखाथा उसी स्वरूपकरि वर्तमानमें देखिये है ऐसा जोड़रूप वस्तु में भाव वही तद्भाव है, उस जोड़रूप भाव द्वारा विनाश रहित (=अव्यय)को उसीको नित्य कहतेहैं। सर्वथा नित्य अर्थात् कूटस्थ कोई वस्तु नहीं है कूटस्थके पर्याय पलटनेका अभाव है तब संसार तथा संसारके अभावके कारण विधानमें विरोध आता है।

वृत्त्यनुवाद-तद्भावः इति उच्यते। कः तद्भावः प्रत्यभिज्ञान-	=(सूत्रमें) तद्भाव ऐसा कहागया है। तद्भाव क्या है। प्रत्यभिज्ञानका
हेतुता तद् एव इदम् इति	=हेतुपन या कारणपना है। यह (=इदम्)वही है(=तद्-एव) ऐसी
स्मरणम् प्रत्यभिज्ञानम् तद् अकस्मात्	=स्मृति प्रत्यभिज्ञान है, वह(प्रत्यभिज्ञान)अकस्मात्(विना हेतु वस्तुमें)
न भवति इति यः अस्य हेतुः सः तद्भावः तस्य	=नहीं होता है, जो इस(प्रत्यभिज्ञान)का कारण सो तद्भाव है तिस (सत्)का
भावः तद्भावः येन आत्मना प्राग्दृष्टम् वस्तु	=भाव अथवा होना सो तद्भावहै। जिस स्वरूपकरि पहिले देखा हुआ पदार्थ है
तेन एव आत्मना पुनः अपि भावात्	=तिसही स्वरूपकरि फिरभी विद्यमान होनेसे (स्वभावात्)
तद् एव इदम् इति प्रत्यभिज्ञायते ॥	=कि यह वही है इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान कियाजाता है
यदि अत्यन्त-विरोधः	=जो(पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञानके अस्तित्वके)अतिशय विपरीत हो अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो
अभिनव प्रादुर्भावमात्रम् एव वा स्यात् तत्	=अथवा नवीन आविर्भावमात्रही हो, तहां

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्त भवति—उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि । द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्थान्तरभाव ॥ द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धि ॥

आह नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्युक्त तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य आत्मकम् इति यावत् एतद् उक्तं भवति	=उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता स्वरूप होना इतना(=यावत्)अर्थ है अर्थात् यह सिद्ध होता है कि
उत्पाद आदीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि	=उत्पादादिक तीनों द्रव्यके लक्षण हैं
द्रव्यम् लक्ष्यम् तत्-पर्यायार्थिक-नय	=द्रव्य लक्ष्य है वे(=तद्=उत्पाद-व्यय ध्रौव्य)पर्यायार्थिकनयकी
अपेक्षया परस्परतः द्रव्यात् च अर्थ अन्तर-भाव	=अपेक्षासे आपसमें तथा (=च)द्रव्यसे अन्य अन्य पदार्थ हैं अर्थात् विशेषकी अपेक्षा समस्त पर्याय क्रमवर्ती भिन्नभिन्न हैं, परस्पर मिलें नहीं तिसकरि भिन्न हैं
द्रव्यार्थिक-नय-अपेक्षया व्यतिरेकेण	=द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पृथक् पृथक् (=व्यतिरेकेण)
अनुपलब्धेः अनर्थ अन्तर भाव इति	=न प्राप्ति होनेसे अन्य अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् ये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सामान्य तो अभिन्न हैं योंही एक द्रव्य व द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३२२) (इस प्रकार भेद अभेदनयकी अथवा (पर्यायार्थिक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे)
लक्ष्य-लक्षणभाव सिद्धि आह नित्य अवस्थितानि	=लक्ष्य लक्षणभावकी सिद्धि है । (शिष्य) पूछता है कि "नित्यावस्थितान्य-
अरूपाणि इति उक्तम्	=रूपाणि" (इस प्रकार इस अध्यायका चौथा सूत्र) कहागया है
तत्र न ज्ञायते किम् नित्यम् इति अत आह	=वहां नहीं बतायागया है कि नित्य क्या है,इसलिये (उपर सूत्रमें) कहते हैं कि

[1]तद्भावाऽव्यय नित्यम् ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थ—तद्-भाव अव्ययम् नित्यम्	=भाव(सत्)जो स्वभावसे विनाशरहित या अविनाशी(=अव्यय)है सो नित्य है

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंसे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है हमारे यहां 'नित्यम्' शब्दके स्थानमें किसी किसी पुस्तकमें 'नित्यं' पाठ है वह व्यवहारसमाधानस्यासत्के अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ५ २,५५०-५५१)

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवतः॥अत्राहसतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्य सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं,किं संघातः संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति?।उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां,कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

विशेष अर्पणया॥अनित्यम्॥ =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति॰न॰अस्ति।विरोधः॥तौ॥च॰सामान्यविशेषौ॥ =इस प्रकार विरोध नहीं है। बहुरि(=च)ते(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित्॰भेद-अभेदाभ्याम्॥व्यवहार-हेतू॥भवतः। =कथंचित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं।

अत्र॰आह।सतः॥अनेक-नय-व्यवहार-त-त्रत्वात्॥ =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना॥भेद संघातेभ्यः॥सताम्॥स्कंध आत्मना उत्पत्तिः॥ =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जहे तिनकी(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्ना:)है सारांश सत् है तातें अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातें सत्रूप पुद्गलस्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्॥तु॰सन्दिग्धम्॥किम्॥द्वि अणुक आदि-लक्षणः॥संघातः॥ =परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात्॥एव॰भवति उत॰कश्चित्॰विशेषः॥अवध्रियते।इति। =संयोगमात्रसेही होताहै वा(=उत)कोईऔर(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै वा कुछ और बात है ॥

उच्यते।बन्धात्॥एकत्वपरिणाम-आत्मकात्॥सति॥संयोगे॥ =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः॥निष्पद्यते। ॥ यदि॰एवम्॰उच्यताम्। =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहते हैंकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है

कुतः॰(१)नु, खलु ॰पुद्गलजाति-अपरित्यागे॥ =तौ(=नु)कहांसे(ऐसाहोता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तेसंते

---

(१) नु = वितर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पद्यचन्द्रकोष पृ॰ २६१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्यां सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोधः । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादयः सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्यं

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सतः। अपि॰अविवक्षा।। भवति। इति॰	=सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती हैं जिस से सत् रूप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है
उपसर्जनीभूतम्।।।अनर्पितम्।।।इति॰उच्यते।	=अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है
अर्पितम्।।।च॰अनर्पितम्।।।च॰अर्पितानर्पिते।।।	=और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)
ताभ्याम्।।।सिद्धेः। अर्पित अनर्पित सिद्धेः।।।	=तिन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)
न॰अस्ति।विरोधः।।तद्यथा॰एकस्य।।देवदत्तस्य।।	=विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका
पिता।।पुत्रः।।भ्राता।।भागिनेयः।।इत्येवम्॰आदयः।।	=पिता-पुत्र-भाई भानजा-इत्यादिक
सम्बन्धाः।। जनकत्व जन्यत्व आदि-निमित्ताः।।	=सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिक निमित्त
अर्पणा-भेदात्।।न॰विरुध्यन्ते।।पुत्र अपेक्षया।।।	=अर्पणा या मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है। बेटेकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)
पिता।।॰पितृ अपेक्षया।।पुत्रः।। इत्येवम्॰आदि।।	=बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥
तथा॰द्रव्यम्।।अपि॰सामान्यअर्पणया।।।नित्यम्	=वैसेही (=तथा) द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

---

(1) सर्वार्थसिद्धिकी प्रस्तावनायुक्तिमें भ्राताशब्द नहीं है। तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है पं० जयचन्द्रजी का वचनिकामें भी नहीं है देवकीनंदन सम्पादक संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है इससे हमने भ्राता शब्द नहीं रक्खा है यह भ्राता शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है।
(2) यहां पर ऋके स्थानमें र् आगम है अनेकाचार्य ने यहां अर्थात् पितृ = पितर् (ऋके स्थानमें र् आदेश) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवतः॥ अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्कन्धात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं, किं संघातः संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति?। उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यताम्, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

विशेष अर्पणया। अनित्यम्॥ — और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

=विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति न अस्ति। विरोध ॥ तौ। च सामान्यविशेषौ। — =इस प्रकार विरोध नहीं है। बहुरि(=च)ते(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित् भेद-अभेदाभ्याम्। व्यवहार-हेतू। भवतः। — =कथंचित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं।

अत्र आह। सतः। अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्॥ — =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना। भेद संघातेभ्यः। सताम्। स्कंध आत्मन-उत्पत्तिः॥ — =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जहैं तिनकूं(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्ना)है सारांश सत् है ताकूं अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्। तु सन्दिग्धम्। किम्। द्वि-अणुक आदि-लक्षणः। संघातः। — =परन्तु या संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात्। एव भवति. उत कश्चित् विशेषः। अवध्रियते। इति। — =संयोगमात्रसेही होताहै या(=उत)कोई और(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् या परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै या कुछ और बात है॥

उच्यते। बन्धात्। एकत्वपरिणाम-आत्मकात्। सति। संयोगे। — =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः। निष्पद्यते ॥ यदि एवम् उच्यताम्। — =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहते हैं कि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है

कुतः (१)नु, खलु पुद्गलजाति अपरित्यागे। — =तौ(=नु)कहांसे(ऐसाहोता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नहीं छोड़तेसंते

---

(१) नु = वितर्क = (विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पद्यचन्द्रकोष पृ॰ २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्या सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोध । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादय सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है । इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सत‹अपि॰अविवक्षा›‹भवति।इति॰	=सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती हैं तिस से सत् रूप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित।दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है
उपसर्जनीभूतम्॥अनर्पितम्॥इति॰उच्यते ।	=अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है
अर्पितम्॥च॰अनर्पितम्॥च॰अर्पितानर्पिते॥	=और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)
ताभ्याम्॥सिद्धेः अर्पित अनर्पित-सिद्धेः॥	=तिन (अर्पित-अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)
न॰अस्ति विरोध॥तद्यथा॰एकस्य॥देवदत्तस्य॥	=विरोध रहित है । जैसे कि एक देवदत्तका
पिता॥पुत्र॥भ्राता॥भागिनेय॥इत्येवम्॰आदय॥	=पिता-पुत्र-भाई भानजा-इत्यादिक
सम्बन्धा॥जनकत्व जन्यत्व आदि निमित्ता॥	=सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिक निमित्त
अर्पणा-भेदात्॥न॰विरुध्यन्ते॥पुत्र-अपेक्षया॥	=अर्पणा या मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है । बेटेकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)
पिता॥ पितृ-अपेक्षया॥पुत्र॥ इत्येवम्॰आदि॥	=बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥
तथा॰द्रव्यम्॥अपि॰सामान्य-अर्पणया॥नित्यम्	=वैसेही(=तथा)द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्तिमें भ्राता शब्द नहीं है ॥ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है प०जयचन्द्रजी की वचनिकामें भी नहीं है वेस्टर्नमीय संस्करण संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है इसने इसमें भ्राता शब्द नहीं रक्खा है यह भ्राता शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है॥
(२) यहां पर ऋके स्थानमें र् होगया है अपेक्षाका अ यहाँ कर्णीय पितृ = पितर् (ऋके स्थानमें र् आदेश) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवतः॥ अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं, किं संघातः संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति? उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

विशेष अर्पणया॥ अनित्यम्॥ =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(प्राप्त) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति न अस्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ॥ =इस प्रकार विरोध नहीं है । बहुरि(=च)वे(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित् भेद अभेदाभ्याम्॥ व्यवहार-हेतू॥ भवतः॥ =कथंचित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होवे हैं ।

अत्र आह सतः॥ अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्॥ =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना॥ भेद संघातेभ्यः॥ सताम्॥ स्कंध आत्मना उत्पत्तिः॥ =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जहैं तिनकी(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्नाः)है सारांश सत् है ताकै अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्॥ तु सन्दिग्धम्॥ किम्॥ द्वि-अणुक आदि-लक्षणः॥ संघातः॥ =परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात्॥ एव भवति उत कश्चित् विशेषः॥ अवध्रियते इति॥ =संयोगमात्रसेही होताहैवा(=उत)कोईऔर(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहैवा कुछ और बात है ॥

उच्यते॥ च यातः॥ एकत्वपरिणाम आत्मकात्॥ सति॥ संयोगे॥ =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः॥ निष्पद्यते॥ यदि एवम् उच्यताम्॥ =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहतेहैंकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है

कुतः (१)नु, खलु पुद्गलजाति-अपरित्यागे॥ =तौ(=नु)कहांसे(ऐसाहोता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तेसते

(१) नु = वितर्क = (विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पञ्चप्रकाश पृ० २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पित चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्या सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोध । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादय सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के बिना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सत॰।"अपि॰अविवक्षा॥ भवति। इति॰	=सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती हैं तिस से सत् रूप होय तिसहूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित।दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है
उपसर्जनीभूतम्॥"अनर्पितम्॥"इति॰उच्यते।	=अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है
अर्पितम्॥"च॰अनर्पितम्॥"च॰ अर्पितानर्पिते॥	=और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वंद्व समास रूपमें है)
ताभ्याम्॥"सिद्धे॥ अर्पित-अनर्पित सिद्धेः॥	=तिन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)
न॰अस्ति विरोध॥तद्यथा॰एकस्य॥देवदत्तस्य॥	=विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका
पिता॥ पुत्र॥ भ्राता॥भागिनेय॥इत्येवम्॰आदय॥	=पिता-पुत्र भाई भानजा-इत्यादिक
सम्बन्धा॥ जनकत्व जन्यत्व आदि-निमित्ता॥	=सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिक निमित्त
अर्पणा भेदात्॥न॰विरुध्यन्ते।पुत्र अपेक्षया॥	=अर्पणा या मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है। बेटेकी अपेक्षाकरि (यह पुरुष)
पिता॥ पितृ अपेक्षया॥पुत्र॥ इत्येवम्॰आदि॥	=बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥
तथा॰द्रव्यम्॥"अपि॰सामान्यअर्पणया॥नित्यम्	=वैसेही(=तथा)द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्तिमें भ्राता शब्द नहीं है॥ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है प०जयचन्द्रजीकी वचनिकामें भी नहीं है देवकीनंदन संस्करण वाहन सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है इसने इसमें भ्राता शब्द नहीं रक्खा है यह भ्राता शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है॥
(२) यहां पर ऋके स्थानमें र् होता है सर्वत्र सन्धि का वर्ण अर्थात् पितृ=पितर् (ऋके स्थानमें र् करनेसे) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवत ॥ अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्य सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं, किं संघात संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति? । उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

विशेष अर्पणयाः। अनित्यम्॥ — और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥ =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति न अस्ति विरोधः। तौ च सामान्यविशेषौ — =इस प्रकार विरोध नहीं है । बहुरि(=च)वे(दोनों)सामान्य-विशेष

कथंचित् भेद-अभेदाभ्याम् व्यवहार-हेतू भवतः। — =कथंचित् भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं ।

अत्र आह सतः अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्॥ — =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना भेद संघातेभ्यः सताम् स्कंध-आत्मन उत्पत्तिः॥ — =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जहैं तिनकी(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्नाः)है सारांश सत् है तातैं अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गल स्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्॥ तु सन्दिग्धम्॥ किम्॥ द्वि-अणुक आदि-लक्षणः संघातः — =परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात् एव भवति । उत कश्चित् विशेषः अवध्रियते इति । — =संयोगमात्रसेही होता है या(=उत)कोई और(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होता है या कुछ और बात है ॥

उच्यते । बन्धात् एकत्वपरिणाम आत्मकात् सति संयोगे — =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः निष्पद्यते ॥ यदि एवम् उच्यताम् — =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहते हैंकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है

कुतः (१)नु, खलु पुद्गलजाति अपरित्यागे — =तो(=नु)काहेसे(ऐसा होता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नछोड़तेसंते

(१) नु = वितर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो शब्दकल्पद्रुमकोष पृ० २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्यां सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोधः । तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादयः सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्य

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित है और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सतः। अपि॰अविवक्षा।। भवति। इति॰ =सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती हैं तिस से सत् रूप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित।दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है

उपसर्जनीभूतम्।।।अनर्पितम्।।।इति॰उच्यते । =अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है

अर्पितम्।।।च॰अनर्पितम्।।।च॰ अर्पितानर्पिते।।।। =और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)

ताभ्याम्।।।सिद्धेः। अर्पित अनर्पित सिद्धेः।। =तिन (अर्पित अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)

न॰अस्ति।विरोधः।।तद्यथा॰एकस्य।।देवदत्तस्य। =विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका

पिता।। पुत्रः। भ्राता।।भागिनेयः।।इत्येवम्॰आदयः।। =पिता-पुत्र-भाई भानजा-इत्यादिक

सम्बन्धाः। जनकत्व जन्यत्व आदि-निमित्ताः।। =सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिके निमित्त

अर्पणाभेदात्।।न॰विरुध्यन्ते।पुत्र अपेक्षया।।। =अर्पणा या मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है। बेटेकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)

पिता।। पितृ अपेक्षया।।पुत्रः।। इत्येवम्॰आदि।। =बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥

तथा॰द्रव्यम्।। अपि॰सामान्यअर्पणया।।नित्यम् =वैसाही(=तथा) द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया

---

(१) सर्वार्थसिद्धिवचनिकी प्रथमावृत्तिमें भ्राताशब्द नहीं है। तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है पं० जयचंदजीकी वचनिकामें भी नहीं है वैसाहिबोध सम्बन्ध संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है इससे हमने 'भाता' शब्द नहीं रक्खा है यह 'भाता' शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है।

(२) यहां पर पहले स्थानमें र् होनता है अपेक्षाका अ यहाँ अर्थात् पितृ = पितर् (पहले स्थानमें ऋ आनेसे) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

संयोगे च सति भवति केषाचिद्बन्धोऽन्येषां च नेति । उच्यते यस्मात्तेषां पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्त-पर्यायाणां परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्याद्भवन्प्रतीत

॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

(1)संयोगे च सति भवति	=और संयोग होते सते यह होगा कि
केषांचित् बन्धः (अन्येषाम्) (च न) इति	=कितने परमाणुओंको बन्ध और (=च) दूसरी परमाणुओंका (बन्ध) नहीं (होता) है
उच्यते यस्मात् तेषाम् (पुद्गल आत्म अविशेषे) अपि	=इसका उत्तर कहा जाता है कि विन (परमाणुओं) के पुद्गलस्वरूपकरि विशेषता न होने पर भी
अनन्त पर्यायाणाम् (परस्पर विलक्षण-परिणामात्) आहित	=अनन्त पर्यायोंके परस्पर विलक्षण परिणमनकरि ग्रहणकरी भई (=आहित)
सामर्थ्यात् (भवन्) प्रतीत	=सामर्थ्यसे बन्धका होना प्रतीत है। (भवन् वर्तमानकृदन्त प्रथमा एकवचन पुल्लिंगहै)

(1)सूत्रम्–(1)स्निग्धरूक्षत्वात् बन्धः ॥ ३३ ॥ = (पुद्गलानां) स्निग्धरूक्षत्वात् बन्धः (भवति) ॥ ३३ ॥

(1) [illegible] सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें "संयोगे च सति भवति" वाक्य छपनेसे रहगया है क्योंकि यह वाक्य तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें विद्यमान है और तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृ० २४०पर तथा हस्तलिखित राजवार्तिकोंमेंभी यह वाक्य 'सति' शब्दके अतिरिक्त पाया जाता है [illegible] सम्बन्ध मिल सकता है।

(२) [illegible] पाठ और [illegible] है। कहीं [illegible] पाठहै कहीं [illegible] पाठ है दोनों पाठ ठीक है (१अध्याय ५४० ।४१)

(३) इन तीनों सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य भिन्न है अपने प्रथम ढंगसे हमारे यहां भाष्यकारों तथा हिंदी टीकाकारोंने उक्त सूत्रोंका तात्पर्य लिखाहै [illegible] हमारे यहां मत भेद नहीं है। श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में प्रथम चार सूत्रोंका पाठ हमारे यहांके पाठसे [illegible] मिलता है। [illegible] परिणामिकौ के स्थानमें हमारे यहां बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च सूत्र है अर्थात् हमारे यहां 'च' है उनके यहां 'सम' शब्द है। दोनों आम्नायोंके पाठमें इतनी समानता होनेपर भी पिछले तीन सूत्रोंके अर्थों में भेद पाया जाता है जिसका उल्लेख हम प्रसंगानुसार आगे करेंगे। उक्त [illegible] सूत्रोंके समाधानमें [illegible] किया गया है प्रथम इसके कि हम प्रत्येक पृथक् सूत्रका अर्थ करें यह उचित है कि दोनों आम्नायोंमें जो अर्थ भेद है उसका संक्षेपसे कुछ उल्लेख किया जावे। स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण (=अविभागप्रतिच्छेद) अधिककरि बन्ध होताहै और रूक्षका रूक्षद्वारा [illegible] अधिककरि बन्ध होता है और [illegible] द्वारा [illegible] अधिककरि बन्ध होता है और स्निग्धका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है [illegible] दोगुण अधिक सम (प्रमाण ४ ६ = १० १२ इत्यादि) हो अथवा विषम (अर्थात् । ३,५ ११ १३ इत्यादि) हो दोगुण अधिककरिही [illegible] है [illegible] नहीं है। श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रका [illegible] यह अर्थ करते हैं कि गुणसाम्ये सति [illegible] बन्धो न भवति [illegible] समान होनेपर [illegible] पुद्गलोंका बन्ध नहीं होता हमारे यहांके प्रथम भागको मानाहै और दूसरे भागको नहीं माना है [illegible] द्वारा [illegible] अधिककरि बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और इससे सहमत हैं और कहते हैं कि रूक्षका स्निग्धद्वारा बन्ध होनेमें और स्निग्धका रूक्षद्वारा बन्ध होनेमें दोगुणोंकी अधिकताकी आवश्यकता नहीं है [illegible] समानगुणोंमेंभी है॥

सूत्रार्थ — १)पुद्गलानाम् ।स्निग्धत्वात्॥॥ =पुद्गलोंके(परस्पर छूजानेपर स्पृष्ट वा स्पर्श होनेपर) स्निग्धपनासे वा चिकनाईसे
रूक्षत्वात्॥॥बन्धः।भवति। =(और)रूखपनासे रूक्षपनसे, वा खरखरेपनसे बन्ध होता है अर्थात्
दो पृथक्पृथक् परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक्पृथक् स्कन्धोंका

इसी हेतुसे उन्होंने "द्वि अधिकादिगुणानांतु सदृशानां बन्धो भवति" इस सूत्रमें केवल'सदृशानां'की अनुवृत्ति कीहै और यह अर्थ किया है कि सदृशोंके बन्धके लिये दोगुण अधिक होनेकी आवश्यकता है असदृशोंके बन्धके लिये अधिक गुणोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस मत को पुष्ट करनेकेलिये कि असदृशोंका बन्ध बिना गुणोंकी अधिकताके होजाता है हमारे यहांके "बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च"के स्थानमें बन्धे समाधिकौ परिणामकौ' सूत्र दिया है और यह अर्थ किया है कि 'बन्धे सति समगुणस्य समगुणः परिणामको भवति अधिकगुणो हीनस्येति' बन्ध होनेपर यदि समगुण है तब तो समगुण का समगुणवालाही परिणाम होगा और हीन गुणका अधिक गुणवान् परिणाम होगा अर्थात्' असदृशोंके बन्धमें जहां गुणोंकी समता है वहां समगुणवाला परिणाम होगा और सदृशोंके बन्धमें जहां दोगुण अधिकहैं वहां अधिक गुणवान् परिणाम होगा। "जघन्यगुणवालोंका बन्ध नहीं होता" इस अन्तिम सिद्धान्तमें दोनों आम्नाय सहमत हैं।

(१) यहां यह शंका होसकती है कि 'पुद्गलानां' शब्दका अथवा "अणूनां' शब्दका अध्याहार करना चाहिये अर्थात् यहसूत्र केवल अणुओंसे सबंध रखताहै अथवा अणुओं और स्कन्धों दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै।इसही सूत्रमें यह निर्देश है कि स्कंध भदसे संघातसे और भेदसंघातसे उत्पन्न होतेहैं। यहांपर संघात शब्द और बन्ध शब्दका एकही अर्थ जान पड़ता है जैसाकि आगे बन्ध संघात एकत्वऔर संयोगके अनन्तर दिखानेमें सिद्ध करते। बन्ध संघात एकत्वएव संयोगके भेद इसलिये इस अध्यायका पृष्ठ १५०,१५१ देखो।(उत्तर)यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै क्योंकि

(क) दो पृथक् २ परमाणुओं के बन्ध वा संघातसे स्कन्ध होता है। एक परमाणु और स्कन्धके संघातसे स्कन्ध उत्पन्न होता है दो तीन आदिक स्कन्धोंके बन्धसे स्कन्ध होता है और बन्धका कारण स्निग्धत्व रूक्षत्वही कहा है। परमाणुओंके स्निग्धत्व और रूक्षत्वसेही बन्ध होता है। अब स्कन्धोंके भी आपस के बन्धके लिये स्निग्धता और रूक्षता हेतु है और पुद्गलके "अणवः स्कन्धाः" ये दोही भेद हैं तो प्रगट है कि तेतीसवां सूत्रमें "पुद्गलानां" शब्दका अध्याहार होना चाहिये (नकि केवल अणूनां शब्दका) जैसा कि निम्न लिखित उदाहरण सूत्र२६(देखो इसअध्यायका ९९,१००)में दिखाहै जैसेकि दो परमाणुओंके जुड़नेसे दोप्रदेशवाला स्कन्ध उपजताहै दोप्रदेशवाले स्कन्धके और एकअणुके संघातसे वा तीन जुडीहुई परमाणुओंके मिलनेसे तीनप्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके संघातसे तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा चार जुडी हुई परमाणुके संघातसे चार प्रदेशी स्कन्ध उपजता हैं। इस प्रकार संख्यात असंख्यात,अनन्त अनन्तानन्तक संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कन्ध उपजतेहैं इससे प्रगट है कि एक स्कन्धका दूसरे स्कन्धके साथ परस्पर संघातसे स्निग्ध रूक्षताके हेतुसे बन्ध होताहै और परमाणुका परमाणुकरि बन्धहोताहै। अतः यह सूत्र परमाणुओं और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्धरखता है नकि केवल परमाणुओंसेही।

(ख) "ऐसे स्निग्धरूक्षपणातैं पुद्गलनिकैं परस्पर बन्ध जानना" पं०सदासुखजीकृतार्थप्रकाशिकाके तेतीसवांसूत्रका उपांत्य(उपान्तिक)वाक्यदेखो।

(ग) "व रूक्षगुणाक तथा स्निग्धताके अविभागपरिच्छेदके निमित्ततैं एक परमाणु तथा द्वि-अणुकादि स्कन्धकै परस्पर बन्ध होयहै भ्यासुखजी कृत तत्वार्थ सूत्रकी लघु टीका पृष्ठ ४३। उपर्युक्त वाक्यका,यह अर्थ है कि स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे एक परमाणु तथा दोपरमाणुका स्कंधके परस्पर बन्ध होता है। एक परमाणु तथा तीन परमाणु वाले स्कन्धके परस्पर बन्ध होता है एक परमाणु तथा चार अणुका स्कन्धके परस्पर बन्ध होता है इसी प्रकार एक परमाणु तथा चार आदिक अणुवाले स्कन्धके परस्पर बन्ध जानना।

सयोगे च सति भवति केषाचिद्बन्धोऽन्येषा च नेति । उच्यते यस्मात्तेषा पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्तपर्यायाणा परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्याद्भवन्प्रतीत

॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

(१)सयोगे च सति भवति	=और संयोग होते संते यह होगा कि
केषाचित् बन्ध अन्येषाम् च न इति	=कितने परमाणुओंको बन्ध और(=च)दूसरी परमाणुओंका(बन्ध)नहीं (होता) है
उच्यते-यस्मात् तेषाम् पुद्गल आत्म अविशेषे अपि	=इससे कहाजाता है कि तिन(परमाणुओं)के पुद्गलस्वरूपकरि विशेषता न होने पर भी
अनन्त पर्यायाणाम् परस्पर-विलक्षण परिणामात् आहित	=अनन्त पर्यायोंके परस्पर विलक्षण परिणमनकरि प्रकटकरीभई(=आहित)
सामर्थ्यात् भवन् प्रतीत	=सामर्थ्यसे बन्धका होना प्रतीत है ।(भवन् वर्तमानकृदन्त प्रथमा एकवचन पुल्लिंग है)

(२)सूत्रम्—(३)स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध ॥३३॥ = (पुद्गलाना)स्निग्धरूक्षत्वात् बन्ध (भवति)॥३३॥

(१) [illegible] सर्वार्थसिद्धिमें "सयोगे च सति भवति" वाक्य छूटनेसे रहगया है क्योंकि यहवाक्य [illegible] सर्वार्थसिद्धिकी [illegible] विद्यमान है और तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृ० २३० पर तथा हस्तलिखित राजवार्तिकोंमेंभी उक्त वाक्य 'सति' शब्दके अतिरिक्त पाया जाता है [illegible] वाक्य [illegible] नहीं होसकता है न वाक्योंका परस्पर सम्बन्ध मिल सकता है ।

(२) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और [illegible] एकसा है । कहीं 'बन्ध' पाठ है कहीं पर 'बध' पाठ है दोनों पाठ ठीक है (१अध्याय ५४० ।४१)

(३) इस आगेके सूत्रोंके अर्थ और तात्पर्य [illegible] है अपने अपने ढंगसे हमारे यहां भाष्यकारों तथा हिंदी टीकाकारोंने उक्त सूत्रोंका तात्पर्य लिखा है [illegible] हमारे यहां मतभेद नहीं है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में प्रथम चार सूत्रोंका पाठ हमारे यहांके पाठसे प्रायःकरके मिलता है । [illegible] परिणामके [illegible] हमारे यहां बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च सूत्र है अर्थात् हमारे यहां 'च' है उनके यहां 'सम' शब्द है । दोनों आम्नायोंके पाठमें इतनी समानता होनेपर भी [illegible] तीन सूत्रोंके अर्थों में भेद पाया जाता है जिसका उल्लेख हम प्रसगानुसार आगे करेंगे । उक्त पांचों सूत्रोंके सम्बन्धमें [illegible] किया गया है प्रथम इसके कि हम प्रत्येक पृथक् सूत्रका अर्थ करें यह उचित है कि दोनों आम्नायोंमें जो अर्थ भेद है उसका [illegible] किया जावे । स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण(=अविभागपरिच्छेद) अधिककरि बन्ध होताहै और रूक्षका रूक्षद्वारा [illegible] अधिककरि बंध होता है और रूक्षका स्निग्धद्वारा [illegible] अधिककरि बन्ध होता है और स्निग्धका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है [illegible] दोहकर [illegible] सम(अर्थात् ४ ६ ८ १० १२ इत्यादि) हो अथवा विषम(अर्थात् ३,५,९ ११ १३ इत्यादि)हो दोगुण अधिककरि [illegible] है [illegible] नहीं है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वा [illegible] सूत्र में 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रका सम्बन्ध यह अर्थ करके कि [illegible] [illegible] गुणकी समता होनेपर सदृश परमाणुओंका बन्ध नहीं होता हमारे यहांकि प्रथम भागको मानाहै और दूसरे भागको नहीं मानाहै [illegible] स्निग्धका स्निग्धद्वारा [illegible] अधिककरि बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होताहै और इससे सहमत हैं और कहते हैं कि रूक्षका स्निग्धद्वारा बन्ध होनेमें और स्निग्धका रूक्षद्वारा बन्ध होनेमें दोगुणोंकी अधिकताकी आवश्यकता नहीं है [illegible]

स्निग्ध-रूक्षत्वात्=चिकनापन रूखापनसे, इति=यह, हेतु निर्देश=हेतुका कथन है अर्थात् बंधका कारण जो पुद्गलोंमें है वह चिकनाई रूखापन है। तद् कृत=उन (स्निग्धपन-रूखापन) का किया हुआ, बन्ध=बंध, द्वि अणुक आदि-परिणाम=दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) स्निग्ध रूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें स्निग्ध रूक्षत्वात् क्यों आये केवल पुद्गलोंका बन्ध इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु हो जाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका। दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त या हेतु सूत्रके शब्दानुकूल (न कि सिद्धान्तके अनुकूल) 'स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुए हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थके अनुसार स्निग्धपन और रूखापन अथवा यों कहिये कि रूखापन चिकनापन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु है या स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्व पृथक् भी बंधके कारण हैं।

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके दो भेद अणुरूप दो भेद हैं। अणुस्कन्ध स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं। वर्ण पांच (श्वेत पीत नील अरुण कृष्ण)। रस पांच (तिक्त कटुक कषायला खट्टा मीठा)। गन्ध दो (सुगंध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी)। अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धोंमेंसे एक स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कविवर पं० द्यानतिरायजीने "द्रव्यसंग्रह" की भाषामें कहा भी है कि एक प्रदेश शुद्ध धारी (=वर्ण अवर्ण आकार बिन काल) जिनके कभी विभाव न होय। पुद्गल [illegible] अणुरूप विराजे शुद्ध अणु गुण पांचा जाय ॥ सीत ताप रूक्ष चिकने(में)से दो रस गन्ध वरन इकभाय। पंच अणुरूपी गुण परगट इकवेशमें बन्ध साय ॥ कवित्त ११॥ भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्व और रूक्षत्व ही है इसलिये इस सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व आये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गन्धमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्व रूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त भी यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु भिन्न भिन्न हेतुओंसे सूत्रका तात्पर्य यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका (सिद्धान्तके अनुकूल) यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता है तो सूत्रकी रचना यह होती कि (स्निग्धरूक्षत्वेभ्योबन्धः) अर्थात् स्निग्धपनसे और रूखापनसे और स्निग्धपन रूखापनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध) भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसभी उपजता है॥ दूसरे यह कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व) का भी बन्ध नहीं होता है और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे हम पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे॥ (तीसरे यह कि अद्यावधि हमने इसका कोई संस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलंक स्वामी श्रीधरसागर सूरि सभाष्य०के रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारोंने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रके अर्थमें यह नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे' बन्ध होता है। हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही ग्रहण किया है कि स्निग्धरूक्षत्व से बन्ध होता है परन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त दर्शाया है 'स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धरूक्षत्व । स्निग्धत्व चिक्कणगुणलक्षण पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्व ॥

आपसमें बन्ध अर्थ स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुस होता है ॥

[illegible] -बाह्य अभ्यन्तर कारणवशात् स्नेह-पर्याय	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे चिक्कण पर्यायके
आविर्भावात् स्निह्यते अस्मिन् इति स्निग्ध, तथा	=प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निग्धत्व) ऐसा स्निग्ध है । वैसही
रूक्षणात् रूक्ष	=रूखेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूक्षता है सो रूक्ष है
स्निग्ध च रूक्ष च स्निग्ध-रूक्षौ	=और स्निग्ध और रूक्ष है उनका रूप सो (द्वन्द्वसमासमें) स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।
तयो भाव स्निग्ध रूक्षत्वम्	=उन दोनों (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षण पर्याय स्निग्धत्वम्	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्विपरीत-परिणाम रूक्षत्वम्	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रूखापन है

[illegible] स्निग्धरूक्षगुणयोगात् [illegible] पुद्गलानां बन्धः स्यात् =स्नेहगुणयोगात् स्निग्धाः रूक्षगुणयोगात् रूक्षाः तद्भावात् पुद्गलानां बन्ध स्यात् =चिकनापन ... स्निग्ध है रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष है उनके भाव (=होनेसे) पुद्गलोंका बन्ध होता है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो ॥ [illegible] स्निग्धरूक्षत्वयोगात् । पुद्गलानामिति व्यस्ता सूत्रेऽस्मिंस्तत्प्रवृत्तता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३ । देखो

= [illegible] बन्धात् स [illegible] स्निग्ध रूक्षत्वयोगत । पुद्गलानां इति [illegible] सूत्रे अस्मिन् [illegible] =बन्धसे स्कंध होता है और (वह) [illegible] स्निग्धरूक्षत्वके संयोगसे होता है, (पुद्गलोंका) ... होजाता है ... कि पुद्गल ... होजाता है, ... है ॥ [illegible] स्निग्धाः [illegible] पुद्गलाः । बन्धं गमासते स्कन्धसिद्धं बोधयन्ति ॥ २ ॥

=स्निग्धाः [illegible] यथा रूक्षाः रूक्षैः स्निग्धाः च पुद्गलाः । बन्धं वा आसते स्कन्धसिद्धं बोधयन्ति ॥

=स्निग्ध पुद्गल [illegible] पुद्गल, रूक्षकरि और (च) स्निग्ध पुद्गल (रूक्षकरि, यथायोग्य (बन्ध) बन्धको प्राप्त होते हैं स्कन्धकी सिद्धि बाधारहित है

(२) "स्निग्धरूक्षाः पुद्गलाः परस्परं संयुक्तो बन्धो भवतीति" =स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें छूजाने पर बन्ध होता है । तत्त्वार्थराजवार्तिक पृ० १६३ । [illegible] लाभसे बन्ध है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(३ 'बन्ध' शब्द से स्कन्धोंके बन्धका ग्रहण आता है और यह नियम होजाता है कि संसारमें केवल अणुओंकाही बन्ध होता है स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और अनुभवके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होता है ... उपयुक्त हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र ... अणु और स्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखता है ... इसी 'पुद्गलानां' शब्दको अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखा है कि या पृथक् २ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और या कि पृथक् २ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके द्वारा है ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणाम ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात् [illegible] हेतु निर्देश [illegible] =स्निग्धपन रूक्षपनसे बंधहेतुका कथन है अर्थात् बंधका कारण पुद्गलोंमें है यह स्निग्धपना रूक्षपना है। तद् कृत [illegible] द्वि अणुक आदि-परिणाम [illegible] उन (स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनस होता है ॥

(१) स्निग्ध-रूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें स्निग्ध रूक्षत्वात् क्यों लाये रूक्षत्वपुद्गलानाम्‌ इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु होजाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका । दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त या हेतु सूत्रके शब्दानुकूल (न कि सिद्धान्तके अनुकूल) स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुए हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थ के अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु है या स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्वपृथक् भी बंधक कारण हैं

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके दुइ अणुरूप दो भेद हैं । अणुरूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं । वर्ण पांच (श्वेत पीत नील अरुण कृष्ण) । रस पांच (तिक्त, कटुक कषायला खट्टा मीठा) । गन्ध दो (सुगन्ध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी) । अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धोंमेंसे एक स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कविवर पन्नालालजीने "द्रव्यसंग्रह की भाषामें कहाभी है कि पंच अजीव गुनहैं चारो (धर्म अधर्म आकाश काल) जिनके कभी विभाव न होय । पुद्गल शुद्ध अशुद्ध विराजै शुद्ध अनू गुन पांचो जोय । सीत ताप रूक्ष चिकनै (में)स दो रस गन्ध वरन इकसाय । पर अशुद्धबीस गुन परगट देखेजाने चलन साय । कवित्त १।। भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत । इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्वऔररूक्षत्वही है इसलिये इन तेतीसवें सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व लाये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गंधमें से कोई गुण और स्पर्शके [illegible] गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त भी यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु भिन्न भिन्न हेतुओंसे सूत्रका तात्पर्य यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका (सिद्धान्तके अनुकूल) यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता है तो सूत्रकी रचना एस होती कि "स्निग्धरूक्षत्वस्निग्धरूक्षत्वाभ्या" अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध) भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसेभी उपजता है। दूसरे यह कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावै कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होता है और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे। (तीसरे यहकि जहांतक हमने देखा कोई सस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलंक स्वामी श्रीश्रुतसागर सूरिन तत्त्वार्थ॰ के रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रकेअर्थ में यह नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे बन्ध होता है । हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही प्रगट किया है कि स्निग्धरूक्षत्व से बन्ध होता है परन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त देदिया है 'स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धरूक्षत्व । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षण पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्क न्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

मूलार्थ – बाह्य अभ्यन्तर कारणवशात् स्नेह-पर्याय =बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके

आविर्भावात् स्निह्यते अस्मिन् इति स्निग्ध तथा=प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते)ऐसा स्निग्ध है । वैसेही

रूक्षणात् रूक्ष =रूखेपनसे रूखा है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायक होनेसे जिसमें रूखाई है सो रूक्ष है

स्निग्ध च रूक्ष च स्निग्ध रूक्षौ =और स्निग्धऔररूक्ष है उनका रूप सो(द्वंद्वसमासमें)स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।

तयो भाव स्निग्ध-रूक्षत्वम् =उन दोनों(स्निग्धरूक्ष)का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥

चिक्कणगुणलक्षण पर्याय स्निग्धत्वम् =चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है

तद्-विपरीत-परिणाम रूक्षत्वम् =उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम या पर्याय सो रूखापन है

(च) स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगात्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् = स्नेहगुणयोगात्स्निग्धाः रूक्षगुणयोगात्रूक्षाः तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् = चिकनाईके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावसे (=होनेकरि) व द्रव्योंका बन्ध होता है । तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो । १६।६—रूक्षता स्निग्धता बन्धोऽस्ति स्निग्धरूक्षत्वयोगतः । पुद्गलानामिति व्यक्ता सूत्रेऽस्मिन्नन्वया मता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो = बन्ध स्यात् सः च प्रसिद्ध एवं स्निग्धरूक्षत्वयोगतः । पुद्गलानां इति व्यक्ता सूत्रे अस्मिन् नद् अन्वयता ॥ = बन्धसे स्कंध होता है और(च) स्निग्ध रूक्षत्वपने होनेसे होता है,(पुद्गलोंका)नाश होजाता है इस सूत्रमें इस सिद्धान्तका कि पुद्गलनाशको प्राप्त होजाता है, अभाव है ॥ (श्लोक) स्निग्धाः स्निग्धैस्तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धाश्च पुद्गलाः । बध्यं यथा आसते स्कन्धसिद्धं बाधवर्जितम् ॥ २ ॥

= स्निग्धाः स्निग्धैः तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धा च पुद्गलाः । बन्धं यथा आसते स्कन्धसिद्धं बाधवर्जितम् ॥

= स्निग्ध(पुद्गल स्निग्धकरि,तथा रूक्ष(पुद्गल,रूक्षकरि)और(च)स्निग्ध पुद्गल(रूक्षकरि,यथायोग्य(बन्ध)बन्धको प्राप्त होतहैं स्कन्धकी सिद्धि बाधारहित है

(ज) "स्निग्धरूक्षयोः पुद्गलयोः परस्परयोः स्पृष्टयो बन्धो भवतीति" – स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके)पुद्गलोंका आपसमें छूजाने पर बन्ध होता है । समाप्ततत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० १६७ । पुद्गलयोः शब्दक मानस स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(घ,'पुद्गल) बन्ध में स्कन्धोंके बन्धका अभाव आता है और यह भ्रमसा होजाताहै कि संभवमें केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै स्कन्धोंका नहीं और यह बात तत्त्वार्थता और मान्यताके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होता है। अतः उपर के सूत्रोंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र अणु औरस्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखताहै अत हमने 'पुद्गलानां' शब्दको अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखाहै कि दो पृथक् २ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक् २ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होताहै ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणाम ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात् = इति हेतु निर्देश है	= चिकनापन रूखापनसे यह हेतुका कथन है अर्थात् बन्धका कारण जो पुद्गलोंमें है वह चिकनाई रूखापन है।
तत्कृत बन्ध है द्व्यणुक आदि-परिणाम है	= उन (स्निग्धपन-रूक्षपन) का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) स्निग्ध-रूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध रूक्षत्वात्' क्यों आये केवल 'पुद्गलबन्ध' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु हो जाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि मन्त्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका। दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धको निमित्त या हेतु सूत्रके शब्दानुकूल (न कि सिद्धान्तके अनुकूल) स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुए हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थ के अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु है या स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक और रूक्षत्वरूक्षत्व पृथक् भी बंधके कारण हैं।

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके दो भेद अणु और स्कन्ध हैं। अणुस्वरूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं। वर्ण पांच (श्वेत पीत नील, अरुण कृष्ण)। रस पांच (तिक्त कटुक कषायला खट्टा मीठा)। गन्ध दो (सुगन्ध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी)। अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धोंमेंसे एक स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कवित्त पञ्चास्तिकायकी द्रव्यसंग्रह की भाषामें कहा भी है कि एक प्रदेश शुद्ध है न्यारो (= धर्म अधर्म आकाश काल) जिनके कभी विभाव न होय। पुद्गल शुद्ध अणुरूप विराजै शुद्ध चनू गुन पांचो जोय ॥ सीत ताप रूक्ष चिकने(में) से दो रस गन्ध वरन स्वभाव। पंच अणुरवीस गुन परतक्ष देखे आवे चतन साथ ॥ कवित्त ३ ॥ भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्वरूक्षत्व ही है इसलिये इस सेतीसवां सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व आये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गंधमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त भी यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु भिन्न भिन्न हेतुओंसे सूत्रका तात्पर्य यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथमें बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथमें बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका (सिद्धान्तके अनुकूल) यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता है तो सूत्रकी रचना यह होती कि "स्निग्धरूक्षत्वाभ्यां बन्धः" अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने "भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते" सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध) भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसेभी उपजता है। दूसरे यह कि "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व) का भी बन्ध नहीं होता है और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे हम पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे। (तीसरे यह कि अद्यावधि हमने इतना कोई सम्प्रदायके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलंक स्वामी श्रीधनसागर सूरि सभाष्यके रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रके अर्थमें यह नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे बन्ध होता है। हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थ करनेमें तो यही प्रकट किया है कि 'स्निग्धरूक्षत्व' से बन्ध होता है परन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त दर्शाया है 'स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धरूक्षत्वं । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षण पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

शब्दार्थ—बाह्य अभ्यन्तर कारणवशात् ॥ स्नेह-पर्याय	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके
अविर्भावात् ॥ स्निह्यते । अस्मिन् ॥ इति • स्निग्ध ॥ तथा	=प्रगट होनसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते) ऐसा स्निग्ध है । वैसेही
रूक्षणात् ॥ रूक्ष ॥	=रूखेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूक्षता है सो रूक्ष है
स्निग्ध ॥ च • रूक्ष ॥ च • स्निग्ध-रूक्षौ ॥	=और स्निग्ध और रूक्ष है उनका रूप सो (द्वन्द्वसमासमें) स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।
तयो ॥ भाव ॥ स्निग्ध-रूक्षत्वम् ॥	=उन दोनों (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षण ॥ पर्याय ॥ स्निग्धत्वम् ॥	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्-विपरीत-परिणाम ॥ रूक्षत्वम् ॥	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रूखापन है

(ध) स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् = स्नेहगुणयोगात्स्निग्धाः रूक्षगुणयोगाद्रूक्षाः तद्भावात् पुद्गलानांबन्ध स्यात् = चिकनेगुणके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावस (=होनेकरि) पुद्गलोंका बन्ध होता है । तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो।

(क)—रूक्षा बन्धस्तु तास्येषां स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानामिति व्यस्ता सूत्रस्मिंस्तदप्रावता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो

=(उस बन्धसे स्कंध होता है) बन्धात् स च अस्ति एषां स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानां इति व्यस्ता सूत्रे अस्मिन् तद् अभावता ॥ =बन्धसे स्कंध होता है और (वह) स्निग्धरूक्षपनके संयोगसे होता है (पुद्गलोंका) सम्बन्धी है इस सूत्रमें इस सिद्धान्तका कि पुद्गलनामको मात होजाता है, अभावहै।

(ख) स्निग्धास्निग्धैस्तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धाश्च पुद्गला । बन्ध यथासते स्कन्धसिद्धे बाधकवर्जित ॥ २ ॥

=स्निग्धाः स्निग्धैः तथा रूक्षाः रूक्षैः स्निग्धाः च पुद्गलाः । बन्धं यथा आसते स्कन्धसिद्धे बाधकवर्जितः ॥

=स्निग्ध (पुद्गल स्निग्धकरि, तथा रूक्ष (पुद्गल) रूक्षकरि और (च) स्निग्ध पुद्गल (रूक्षकरि, यथायोग्य (यथा) बन्धको प्राप्त होतहैं स्कन्धकीसिद्धिबाधारहितहै

(ग) "स्निग्धरूक्षयो पुद्गलयोः परस्परयो स्पृष्टयो बन्धो भवतीति" — स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें छूजाने पर बन्ध होता है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० ११७। पुद्गलाः शब्दके आनेसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है।

(घ) 'अपूर्व बन्ध में स्कन्धोंके बन्धका अभाव माना है और यह नियमसा होजाताहैकि संसारमें केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और सत्यताके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै। अतः अपूर्व न हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखताहै अतः हमने 'पुद्गलानां' शब्दकी अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखाहै कि दो पृथक्२ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक्२ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होताहै।

स्निग्ध-रूक्षत्वात्॥ इति॰हेतु निर्देशः॥ =चिकनापन रूखापनसे ऐसा हेतुका कथन है अर्थात् बन्धका कारण जो पुद्गलोंमें है सो चिकनाई रूखापन है। तद् कृतः बन्धः द्वि अणुक-आदि-परिणामः॥ =उन(स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) स्निग्ध-रूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्धरूक्षत्वात्' क्यों लाये केवल 'पुद्गलानाम्' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु हो जाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका । दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त या [illegible] सूत्रके शब्दानुकूल(न कि सिद्धान्तके अनुकूल) स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुवे हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुवे और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थके अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु है या स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्वपृथक् भी बंधके कारण हैं

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके दुव्य अणुव दो भेद हैं । अणुरूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं । वर्ण पांच (श्वेत पीत नील अरुण कृष्ण), रस पांच (तिक्त कटुक कषायला खट्टा मीठा) । गन्ध दो (सुगंध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी) । अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धमेंसे एक, स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कविवर प॰ द्यानतरायजीने "द्रव्यसंग्रह" की भाषामें कहाभी है कि एक अजीव शुद्ध है धारो (=धर्म अधर्म आकाश काल) जिनके कभी विभाव न होय । पुद्गल शुद्ध अशुद्ध विराजै शुद्ध अनू गुन पांचों जाय ॥ सीत ताप रूख चिकनै(में)स दो [illegible] बरन हरखाय । पंच अशुद्धबीस गुन परमट दरबेधामें बनत साय ॥ कवित्त ३॥ भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्वऔररूक्षत्वही है इसलिये इस तेतीसवां सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व लाये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गन्धमें से कोई गुन और स्पर्शके आठ गुणोंमें [illegible] स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त तो यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु निम्न लिखित हेतुओंसे सूत्रका शब्दार्थ यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका(सिद्धान्तके अनुकूल)यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता है तो सूत्रकी रचना इस प्रकार होती कि "स्निग्धरूक्षत्वयोश्च" अर्थात् [illegible] चिकनपनसे और रूखपनसे और स्निग्धपन रूखपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध)भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसभी उपजता है। दूसरे यह कि "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होताहै और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस विषयमें कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे।(तीसरे यहकि अद्यावधि हमने दराज कोई संस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलङ्क स्वामी श्रीधवलाग सहित सभाष्य॰के रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारों न इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रका अर्थ नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे बन्ध होता है । हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थ करनेमें तो यही प्रगट कियाहै कि स्निग्धरूक्षत्व से बन्ध होताहैपरन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त दर्शायाहै स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धरूक्षत्वं । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षण पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

बाह्य-अभ्यन्तर कारणवशात् स्नेह-पर्याय आविर्भावात् स्निह्यते अस्मिन् इति स्निग्धः तथा	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निग्धते) ऐसा स्निग्ध है । वैसेही
रूक्षणात् रूक्षः	=रूखेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूखपना है सो रूक्ष है
स्निग्धः च रूक्षः च स्निग्ध-रूक्षौ	=और स्निग्ध और रूक्ष है उनका रूप सो (द्वन्द्वसमासमें) स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।
तयोः भाव स्निग्ध-रूक्षत्वम्	=इन दोनों (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षण पर्याय स्निग्धत्वम्	=चिकनागुणलक्षणवाली पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्-विपरीत-परिणामः रूक्षत्वम्	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम या पर्याय सो रूखापन है

(ग) स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् =स्नेहगुणयोगात्स्निग्धाः रूक्षगुणयोगाद्रूक्षाः तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् =चिक्कणगुणके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावसे (=होनेकरि) पुद्गलोंका बन्ध होता है ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४१५ देखो ॥ ११६—रूक्षा बन्धस्य वास्त्येषां स्निग्धरूक्षत्वयोगतः । पुद्गलानामिति व्यक्ता सूत्रेऽस्मिंस्तत्प्रभावता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४ । देखो =[illegible] बन्धात् स च अस्ति एषां स्निग्ध रूक्षत्वयोगतः । पुद्गलानां इति व्यक्ता सूत्रे अस्मिन् तद् प्रभावता ॥ =बन्धसे स्कंध होता है और (वह) [illegible] स्निग्धत्व और रूक्षत्वके संयोगसे होता है, (पुद्गलोंका) बन्ध होता है [illegible] कि पुद्गलोंका ही बन्ध होता है, प्रभावसे ॥ (स्याद्) स्निग्धास्निग्धैस्तथा रूक्षैः स्निग्धास्तु पुद्गलाः । बन्धं यान्ति स्कन्धसिद्धिं प्रतिपादितं ॥ २ ॥ =स्निग्धाः स्निग्धैः तथा रूक्षाः रूक्षैः स्निग्धाः च पुद्गलाः । बन्धं यान्ति स्कन्धसिद्धेः प्रतिपादिताः ॥ =स्निग्ध (पुद्गल स्निग्धकरि, तथा रूक्ष पुद्गल रूक्षकरि और (च) स्निग्ध पुद्गल (रूक्षकरि) यथायोग्य (बन्ध) बन्धको प्राप्त होते हैं स्कन्धकी सिद्धि बाधारहित है

(घ) "स्निग्धरूक्षयोः पुद्गलयोः परस्परतो लग्नयोः बन्धो भवतीति" —स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें छूजाने पर बन्ध होता है । समाप्यतत्वार्थाधिगमसूत्र पृ० ११३ । पुद्गलानां शब्दके आनेसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(च) 'अथवा बन्ध में स्कन्धोंके बन्धका अभाव आता है और यह नियमसा होजाता है कि सम्भवतः केवल अणुओंकाही बन्ध होता है स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और मान्यताके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होता है । अतः उपर्युक्त हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखता है अत इसमें 'पुद्गलानां' शब्दको अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखा है कि दो पृथक् परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपसे और दो आदि पृथक् स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होता है ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणाम ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात् ।।इति हेतु निर्देश ।	=चिकनापन रूखापनसे यह हेतुका कथन है अर्थात् बंधका कारण जो पुद्गलोंमें है वह चिकनाई रूखापन है
तत् कृत ।।बन्धः ।। द्वि अणुक-आदि-परिणाम ।। =उन(स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥	

(१) स्निग्ध-रूक्षत्वात् इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध रूक्षत्वात्' क्यों लाये केवल 'पुद्गलानां' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु होजाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावे अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका । दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त वा हेतु सूत्रके शब्दानुकूल (न कि सिद्धान्तके अनुकूल) 'स्निग्धत्व रूक्षत्व मिले हुये हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थ के अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु है वा स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्व पृथक् भी बंधके कारण हैं

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके दो अणु स्कन्ध दो भेद हैं । अणुस्कन्ध स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं । वर्ण पांच (श्वेत पीत नील अरुण कृष्ण) । रस पांच (तिक्त कटुक कषायला खट्टा मीठा) । गंध दो (सुगंध दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष मृदु कठोर हलका भारी) । अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक पांच वर्णोंमेंसे एक दो गन्धोंमेंसे एक स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध कविवर प० द्यानतिरायजीने "द्रव्यसंग्रह" की भाषामें कहाभी है कि "पद अजीव शुद्धै धारी (=धर्म अधर्म आकाश काल) जिनके कभी विभाव न होय । पुद्गल शुद्ध अशुद्ध विराजै शुद्ध अणु गुन पांचो जोय ॥ सीत ताप रूख चिकनी (मे)स दो रस गन्ध बरन इकसाय । अब अशुद्धबीस गुन परगट देखें जाने चतन साय ॥ कवित्त ३।। भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्वऔररूक्षत्वही है इसलिये इस तेतीसवां सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व लाये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण रस गन्धमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें स स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है ।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त भी यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व बन्धके हेतु हैं परन्तु निम्न लिखित हेतुओंसे सूत्रका अभिप्राय यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका (सिद्धान्तके अनुकूल) यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्वरूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता है तोसूत्रकी रचना ऐसे होती कि 'स्निग्धरूक्षत्वयोर्बन्धः' अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध) भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसभी उपजता है॥ दूसरे यह कि 'गुणसाम्येसदृशानां' सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावे कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होताहै और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आग इस पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे॥ (३)तीसरे यहकि अबतक हमने उदाहरण कीई संस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी अकलंक स्वामी श्रीधनराज सूरि समाप्य०के रचयिता इत्यादिमें और भाषाके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रकेअर्थ मेंयह नहीं लिखा कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व रूक्षत्व रूक्षत्वसे बन्ध होता है । हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही प्रगट कियाहै कि स्निग्धरूक्षत्व से बन्ध होताहैपरन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त देदियाहै'स्निग्धा

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्ध । तथा रूक्षणाद्रूक्ष । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भाव स्निग्धरूक्षत्व । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षण पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्व ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

बाह्य—बाह्य अभ्यन्तर कारणवशात् स्नेह-पर्याय	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके
आविर्भावात् स्निह्यते । अस्मिन् इति • स्निग्ध, तथा	=प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निग्धने) ऐसा स्निग्ध है । वैसेही
रूक्षणात् रूक्ष	=रूखेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूखताई सो रूक्ष है
स्निग्ध च रूक्ष च स्निग्ध-रूक्षौ	=और स्निग्ध और रूक्ष है उनका रूप सो (द्वन्द्वसमासमें) स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।
तयो भाव स्निग्ध-रूक्षत्वम्	=उन दोनों (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षण पर्याय स्निग्धत्वम्	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्-विपरीत-परिणाम रूक्षत्वम्	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रूखापन है

(ग) स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् = स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्ध स्यात् = चिकनापनके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावसे (=होनेकरि) पुद्गलोंका बन्ध होता है ॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो ॥ [illegible]—स्कन्ध बन्धस्य कारणेषां स्निग्धरूक्षत्वयोगत । पुद्गलानामिति व्यक्ता सूत्रेऽस्मिंस्तत्प्रमाणता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४२५ देखो

= [illegible] बन्धात् स च अस्ति [illegible] स्निग्ध रूक्षत्वयोगत । पुद्गलानां इति व्यक्ता सूत्रे अस्मिन् तद् प्रमाणता ॥ = बन्धसे स्कंध होता है और (घ) [illegible] स्निग्धरूक्षपनके संयोगसे होता है, (पुद्गलोंका) नाम होनेसे इस सूत्रमें इस सिद्धान्तका कि पुद्गलका ही बन्ध होता है, प्रमाण है ॥

(श्लोक) स्निग्धास्निग्धैस्तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धाश्च पुद्गला । बध्यं यथासते स्कन्धसिद्ध र्वाधकवर्जित ॥ २ ॥

= स्निग्धाः स्निग्धैः तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धा च पुद्गला । बन्ध यथा आसते स्कन्धसिद्ध बाधकवर्जिता ॥

= स्निग्ध (पुद्गल स्निग्धकरि, तथा रूक्ष (पुद्गल) रूक्षकरि और (च) स्निग्ध पुद्गल (रूक्षकरि, यथायोग्य (यथा) बन्धको प्राप्त होतहैं स्कन्धकी सिद्धि बाधारहित है

(ङ) 'स्निग्धरूक्षयोः पुद्गलयोः परस्परयो रूपयुता बन्धो भवतीति' = स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें सूत्रमें पर बन्ध होता है । समाप्ततत्त्वार्थाधिगमस्य पृ० १२७ । पुद्गलाः शब्दके आनेसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(च) 'अथवा बन्ध में स्कन्धोंके बन्धका अभाव आताहै और यह नियमसा होजाताहैकि संसारमें केवल अणुओंकाही बन्ध होताहै स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और अत्यन्तके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहो । अतः उपर के हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंके बन्धमें सम्बन्ध रखताहै अत हमने पुद्गलानां शब्दको अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखाहै कि दो पृथक् परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक् स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होताहै ॥

तथा रूक्षगुणोऽपि॥ तद्गुणाः परमाणवः सन्ति। यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुण प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्तिः प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह-

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा रूक्षगुणः अपि ॥	=वैसेही(=तथा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच छह इत्यादि संख्यात, असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं
तद्-गुणाः परमाणवः सन्ति। यथा तोय-अजा	=पूर्वकथित(=तद्)चिकणे रूखेगुणवाली परमाणुऐं। जैसे जल(=तोय)बकरी(अजा)
गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु स्नेहगुणः	=गऊ(=गो)भैंस(=महिषि)ऊटनी(=उष्ट्री)के दूध घी विषैं सचिक्कणगुण
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण प्रवर्तते। च पांशु-कणिका	=अधिकताकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है। और (=च)धूलि(=पांशु)बालु(=कणिका)
शर्करादिषु रूक्षगुणः दृष्टः। तथा	=कंकरादिकमें रूक्षगुण(बढता घटता क्रमसे) देखा जाता है। तैसे
परमाणुषु अपि स्निग्ध-रूक्षगुणयोः वृत्तिः	=परमाणुओंमेंभी चिकने रूखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्तिः)
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्षत्व	=बढताई घटताईसे अनुमान कीजाती है। सचिक्कनता और रूखापन
गुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते	=गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर
अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम् आह	=अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे बन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिक्कणता और रूखापन परमाणुओंमें वर्तमान वा विद्यमान है तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता रहित होही जावैगा इस अनिष्ट अनुमानको दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहते हैं कि

(1) सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४॥ = न जघन्यगुणानाम्(परमाणूनां बन्धः भवति) ॥ ३४॥

स्निग्धरूक्षत्वात् न जघन्य गुणानां परमाणूनां बन्धः भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बन्ध नहीं होता है अर्थात् जिस परमाणुमें

इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहां कहीं कहींपर .... पाठ है यह .... व्याकरणके प्रतिरिक्त प्रयुक्त है(प्र० पृ० ५४०,५४१) इस सूत्रमें 'परमाणूनां और भवति' शब्दोंका अध्याहार कियागयाहै और बन्धशब्दकी अनुवृत्ति ३३वांसूत्रसेहै।

द्वयो स्निग्धरूक्षयोरण्वो परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुकस्कन्धो भवति ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेश स्कन्धो योज्य । तत्र स्नेहगुण एकद्वित्रिचतु संख्येयासंख्येयानन्तविकल्प ॥

द्वयो ' स्निग्ध-रूक्षयो अण्वो परस्पर-श्लेष-लक्षणे =दो चिकनी रूखी अणुओंमें आपसके एकमेक(=श्लेष)स्वरूपविषें(=लक्षणे) बन्धे सति द्वि अणुक-स्कन्ध भवति ॥ =बन्ध होनेपर(=सति)दो अणुवाला स्कन्ध होता है अर्थात् दो परमाणु स्निग्ध और रूक्षगुणोंसहित हों उनके परस्पर सर्वांसभावकरि प्रदेशानुप्रवेशात्मक बन्ध होनेपर दो अणुवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है

एवम् ' संख्येय असंख्येय अनन्तप्रदेश स्कन्ध योज्य ॥ =इस प्रकार संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला स्कन्ध जुड़जाता है

तत्र स्नेहगुण एक द्वि-त्रि-चतुर् -संख्येय-असंख्येय-अनन्तविकल्प ॥ =वहां स्निग्धगुण एक,दो,तीन,चार संख्यात =असंख्यात और अनन्तपर्यन्त हैं अर्थात् एकगुण स्निग्ध, दोगुण स्निग्ध, तीन गुण स्निग्ध,चारगुण स्निग्ध,पांचगुण स्निग्ध,छहगुण स्निग्ध इत्यादि ऐसे संख्यातगुण स्निग्ध, असंख्यातगुणस्निग्ध और अनन्तगुण स्निग्ध तक एक परमाणुमें होसकते हैं ॥

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः स्निग्धत्व रूक्षत्व [illegible] स्वामीजीके गुणसाम्ये सदृशानां [illegible] यह बात [illegible] कि 'स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः' यह [illegible] (बहोत उत्तम सम्प्रान है) [illegible] है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथ बन्ध और रूक्षका रूक्षके साथ बन्ध हो । और यह कि उपर्युक्त [illegible] से [illegible] और [illegible] महत्त्व प्रगट होता है सो कैसे? इस प्रकार कि [illegible] सूत्र बन्धका केवल हेतु प्रगट करता है और [illegible] सामान्यरूपसे [illegible] अपवाद है [illegible] गुणोंकी समानतामें [illegible] अपवाद होतेहुयेभी विषमगुणोंकी [illegible] सूत्र विधान करता है [illegible] सूत्र इस विधानकी त्रुटिको पूरा करता है कि दो अधिक आदिगुणोंके होनेपरही [illegible] और [illegible] बन्ध होता है [illegible] सूत्रमें [illegible] होनेपर [illegible] अवस्था या तीसरा स्वरूप होजाता है न प्रथम रूप रहै न दूसरा [illegible]

(१) "[illegible] अविभागपरिच्छेद [illegible] है [illegible] परमाणुमें [illegible] अविभागपरिच्छेदसे [illegible] परमाणु [illegible] परमाणु [illegible] समय समय परिणमन है [illegible] परिणमे है।ऐसे [illegible] पं० [illegible] पृ० [illegible] तत्त्वार्थकी भाषा से उद्धृत)

(२ [illegible] प्रदेशी स्कन्ध इस प्रकार उत्पन्न होता है कि [illegible] तथा [illegible] अविभाग परिच्छेदके निमित्तसे [illegible] परमाणुके [illegible] दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है । [illegible] स्कन्धके और [illegible] मिलनेसे अथवा तीन जुदी हुई परमाणु मिलनेसे तीन प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है [illegible] दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके [illegible] तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके [illegible] अथवा चार जुदी हुई परमाणुओंके [illegible] चारप्रदेशी स्कन्ध उपजता है इसी प्रकार [illegible] प्रदेशी [illegible] क्रमानुसार [illegible] हुई और जुदी हुई परमाणुसे उपजता है ऐसाही [illegible] प्रदेशी स्कन्धकी अनन्त प्रदेशी स्कन्धकी और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धकी उत्पत्ति जानो ॥

तथा रूक्षगुणोऽपि॥तद्गुणा परमाणवः सन्ति।यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुण प्रकर्षा-प्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्ति प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते वन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह -

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा॰रूक्षगुणः॥अपि॰ ॥	=वैसेही(=तथा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच छह इत्यादि संख्यात,असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं
तद्-गुणाः॥परमाणवः॥सन्ति। यथा॰तोय अजा	=पूर्वकथित(=तद्)चिकणे रूखेगुणवाली परमाणुएं हैं।जैसे जल(=तोय)बकरी(अजा)
गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु॥स्नेहगुणः॥	=गऊ(=गो)भैंस(=महिषि)ऊटनी(=उष्ट्री)के दूध घी विषैं सचिक्कणगुण
प्रकर्ष-अप्रकर्षेण॥ प्रवर्तते। च॰पांशु-कणिका	=प्रकर्षकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है। और(=च)धूलि(=पांशु)बालु(=कणिका)
शर्करादिषु॥रूक्षगुणः॥दृष्टः। तथा॰	=कंकरादिकमें रूक्षगुण(बढता घटता क्रमसे) देखा आता है। तैसे
परमाणुषु॥अपि॰स्निग्ध-रूक्षगुणयोः॥वृत्तिः॥	=परमाणुओंमेंभी चिकने रूखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्तिः)
प्रकर्ष अप्रकर्षेण॥अनुमीयते ॥ स्निग्धरूक्षत्व	=बढताई घटताईसे अनुमान कीजाती है। सचिक्कनता और रूखापन
गुणनिमित्ते॥बन्धे॥अविशेषेण॥प्रसक्ते॥	=गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर
अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम्॥आह	=अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे बन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिक्कणता और रूखापन परमाणुओंमें वर्तमान या विद्यमान है तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता रहित होही जाताहोगा इस अनिष्ठित अनुमानके दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहतेहैं कि

(१)सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४॥ = न जघन्यगुणानाम(परमाणूना वन्ध भवति) ॥३४॥

स्निग्धरूक्षत्वात्॥न जघन्य गुणानाम्॥परमाणूनाम्॥बन्धः॥भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बन्ध नहीं होताहै अर्थात् जिस परमाणुमें

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहां कहीं कहींपर 'मजघन्यगुणानां' पाठ है वह कातन्त्ररूपमाला व्याकरणके प्रतिकूल अशुद्ध है(भ०१ पृ० ५४० ५४१) इस सूत्रमें परमाणूनां और 'भवति' शब्दोंका अध्याहार क्रियागयाहै और पञ्चम्यन्त्रकी अनुवृत्ति ३२वांसूत्रसेहै।

द्वयो स्निग्धरूक्षयोरण्वो परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुकस्कन्धो भवति ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेश स्कन्धो योज्य । तत्र स्नेहगुण एकद्वित्रिचतु सख्येयासंख्येयानन्तविकल्प ॥

द्वयोः¹ स्निग्ध-रूक्षयोः अण्वोः परस्पर-श्लेष-लक्षणे =दो चिकनी रूखी अणुओंमें आपसके एकमेक(=श्लेष)स्वरूपविषें(=लक्षणे)

बन्धे सति द्वि अणुक-स्कन्ध भवति ॥ =बन्ध होनेपर(=सति)दो अणुवाला स्कंध होता है अर्थात् दो परमाणु स्निग्ध और रूक्षगुणोंसहित हों उनके परस्पर सर्वात्मभावकरि प्रदेशानुप्रवेशात्मक बन्ध होनेपर दो अणुवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है

एवम्² संख्येय-असंख्येय अनन्तप्रदेश स्कंधः योज्यः ॥ =इस प्रकार संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला स्कन्ध जुड़जाता है

तत्र स्नेहगुण एक द्वि त्रि चतुर् संख्येय =वहां स्निग्धगुण एक,दो,तीन,चार संख्यात

असंख्येय-अनन्तविकल्प ॥ =असंख्यात और अनन्तपर्यन्त हैं अर्थात् एकगुण स्निग्ध, दोगुण स्निग्ध, तीन गुण स्निग्ध,चारगुण स्निग्ध,पांचगुण स्निग्ध,छहगुण स्निग्ध इत्यादि ऐसे संख्यातगुण स्निग्ध, असंख्यातगुणस्निग्ध और अनन्तगुण स्निग्ध तक एक परमाणुमें होसकते हैं ॥

[illegible]

(१) "[illegible]

(२ [illegible] पृ० ३३७ [illegible] से उद्धृत)

[illegible]

तथा रूक्षगुणोऽपि॥तद्गुणा परमाणवः सन्ति।यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुण प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्ट। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्ति प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते वन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाह -

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा=रूक्षगुणः॥ अपि= ॥ =जैसेही(=तथा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच वा इत्यादि संख्यात,असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं

तद्-गुणाः॥परमाणवः॥सन्ति। यथा=तोय अजा =पूर्वकथित(=तद्)चिकणे रूखेगुणवाली परमाणुयें।जैसे जल(=तोय)बकरी(अजा)

गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु॥स्नेहगुणः॥ =गाऊ(=गो)भैंस(=महिषि)ऊटनी(=उष्ट्री)के दूध घी विषैं सचिक्कणगुण

प्रकर्ष-अप्रकर्षेण॥ प्रवर्तते। च=पांशु-कणिका- =प्रकर्षकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है। और (=च)धूलि(=पांशु)बालु(=कणिका)

शर्करादिषु॥रूक्षगुणः॥दृष्टः॥। तथा= =कंकरादिकमें रूक्षगुण(बढता घटता क्रमसे) देखा जाता है। जैसे

परमाणुषु॥अपि= स्निग्ध-रूक्षगुणयोः॥वृत्तिः॥ =परमाणुओंमेंभी चिकने रूखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्तिः)

प्रकर्ष-अप्रकर्षेण॥अनुमीयते॥ स्निग्धरूक्ष =बढताई घटताईसे अनुमान कीजाती है। सचिक्कनता और रूक्षापन

गुणनिमित्ते॥ वन्धे॥अविशेषेण॥प्रसक्ते॥ =गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर

अनिष्ट-गुण-निवृत्ति अर्थम्॥आह =अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे बन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिक्कणता और रूखापन परमाणुओंमें वर्तमान या विद्यमान है तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता रहित होही जावेगा इस अनिश्चित अनुमानके दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥३४॥ = न जघन्यगुणानाम्(परमाणूनां वन्ध भवति) ॥३४॥

स्निग्धरूक्षत्वात्॥न जघन्य-गुणानाम्॥परमाणूनाम्॥बन्धः॥भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बन्ध नहीं होताहै अर्थात् जिस परमाणुमें

इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहां कहीं कहींपर 'नजघन्यगुणानां' पाठ है वह कातन्त्ररूपमाला व्याकरणके अतिरिक्त प्रयुक्त है(भ०१ पृ०५४०,५४१) इस सूत्रमें परमाणूनां और 'भवति' पदोंका अध्याहार कियागया है और बन्धशब्दकी अनुवृत्ति ३३वां सूत्रसे है।

जघन्यो निकृष्ट गुणो भाग । जघन्यो गुणो येषा ते जघन्यगुणा । तेषा जघन्यगुणाना नास्ति बन्ध । तद्यथा-एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्वयादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति बन्ध तस्यैवैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेणद्वयादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति बन्ध । तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति ॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वा अन्येषा स्निग्धाना रूक्षाणा च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसक्ते तत्रापि प्रतिषेध-

---

रूक्षत्वका वा स्निग्धता का एक अविभाग परिच्छेद(=जघन्यगुण) रहजाय सो बंधको प्राप्त नहीं होता है

सूत्रानुसार—जघन्य=निकृष्ट=गुण=भाग= =जघन्य वा घटिसे घटि है सो निकृष्ट है। गुण है सो गुणका अविभाग परिच्छेद है

जघन्य=गुण=येषाम्=ते=जघन्यगुणा= =घटिस घटि है अविभाग परिच्छेद जिनके वे जघन्यगुण हैं

तेषाम्=जघन्यगुणानाम्=न=अस्ति=बन्ध= तद्यथा= =तिन निकृष्टगुणों(वाली परमाणुओं)के बंध नहीं है। जैसे

एकगुणस्निग्धस्य=एकगुणस्निग्धेन=च=द्वि आदि-संख्येय =एकगुण स्निग्धका एकगुण स्निग्धकरि और(=च)दो आदिक संख्यात

असंख्येय अनंतगुण स्निग्धेन=न=अस्ति=बंध=तस्य= =असंख्यात अनंतगुण स्निग्धकरि बंध नहीं है। तिस

एव=एकगुण स्निग्धस्य=एकगुणरूक्षेण=वा=द्वि आदि =ही एकगुण स्निग्धका एकगुणरूक्षकरि अथवा दो आदिक

संख्येय असंख्येय अनन्तगुणरूक्षेण=बन्ध=न=अस्ति =संख्यात असंख्यात अनंतगुणरूक्षकरि बंध नहीं है

तथा=एकगुणरूक्षस्य=अपि=योज्यम्=इति= =तैसेही(=तथा)एकगुण रूक्षके भी लगाना चाहिये अर्थात् एकगुणरूक्षका एकगुण रूक्षकरि और दो तीन चार पांच आदिक संख्यात, असंख्यात, और अनंतगुण रूक्षकरि बन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकरि अथवा दो, तीन, चार, पांच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धकरि बंध नहीं होता है

एतौ=जघन्यगुण-स्निग्ध-रूक्षौ=वर्जयित्वा-अन्येषाम्= =ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाले स्निग्ध रूक्षोंको छोड़कर अन्य

स्निग्धानाम्=रूक्षानाम्=च परस्परेण=बंधः-भवति-इति=स्निग्ध और(=च)रूक्ष(गुणवाली परमाणु)निके परस्पर बन्ध होता है। ऐसे

अविशेषेण=प्रसक्ते=तत्र=अपि=प्रतिषेध- =विशेषरहित प्रसंग आनेपर तहां औरभी(=अपि) बन्धके निषेधके

और यह सूत्र केवल परमाणुओंसे संबन्ध रखता है क्योंकि जघन्यगुण परमाणुमेंही पायाजाता है स्कंधमें और किसीप्रकारकी जघन्यगुणवालेक

विपयस्यापनार्थमाह— ॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥

विपय-स्थापन अर्थम् ॥ आह ।

=प्रकरणके कहनेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं अर्थात् ऊपरके उपान्तिक या वपधा वाक्यसे ऐसा अनुमान निकलता है कि जघन्यगुणोंको छोड़कर अन्य सब गुणवाली परमाणुओंका स्निग्धरूक्षतासे बन्ध होजाता होगा सो इस प्रसंगको दूर करनेके लिये आचार्य बन्धके निपेधका निम्नलिखित ग्रन्थसूत्रमें कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—गुणसाम्ये सदृशानाम्॥ ३५॥ = (न)गुणसाम्ये(स्निग्धरूक्षत्वानाम्) सदृशानाम् (परमाणूनाम् बन्धः भवति) ॥ ३५ ॥

=गुणसाम्ये असदृशानाम् सदृशानाम् परमाणूनाम् बन्धः न भवति ॥ ३५ ॥

परमाणुमें बन्ध नहीं होसकता है तब वह परमाणु बिना बन्धके पृथक् रहेगी कभीभी स्कन्धरूपमें नहीं होसकी (अवतक जघन्य गुण उसमें विद्यमान है)। श्लोकवार्तिक पृ० ४२६ राजवार्तिक तथा ... वृत्तिपृ० ... ऐसा ... कि यह सूत्र केवल परमाणुओंसेही सम्बन्ध रखता है स्कन्धोंसे।

(१) यह सूत्र भी पर्व चौतीसवां सूत्रका अपवाद विशेष समर्थनके लिये है परमाणुओंसे सम्बन्ध रखता है स्कन्धोंसे नहीं क्योंकि चौतीसवां सूत्र से परमाणूनाम् शब्दकी भी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आती है। समस्त तैंतीसवां सूत्रभी यहां अनुवर्तता है। स्निग्धरूक्षत्वानाम् और असदृशानाम् पदों पर समानार्थवाची है अत "स्निग्धरूक्षत्वानाम्"के स्थानमें"असदृशानां"शब्दका आदेश करदिया है। यद्यपि स्निग्धरूक्षत्वानाम्"की अनुवृत्ति आती है इसके समर्थनमें श्लोकवार्तिकस निम्न वाक्य देते हैं। नन्वेवं विसदृशानां गुणसाम्ये बन्धप्रतिपेधो न स्यादिति न मंतव्यं सदृशग्रहणस्य विसदृशव्यवच्छेदार्थत्वाभावात् सदृशानामेवेत्यवधारणाभावात् ॥ गुणसाम्येवेति ... सदृशानां पुनर्वैषम्येऽपि बंधप्रतिपेधप्रसक्तौ तद्व्यवस्थित्यै सदृशग्रहणं तत्र स्निग्धरूक्षत्वस्य साम्येपि गुणवैषम्येबन्धसिद्धिः ॥ तत्वार्थ श्लोकवार्तिक सूत्र३५ पृ० ४४७ ॥

ननु एवं विसदृशानां गुणसाम्ये बंधप्रतिपेधो न स्यात् इति =प्रश्न ऐसे गुणोंकी समानता होनेपर विसदृशोंके बन्धका निपेध नहीं होता होगा

न मंतव्यं सदृशग्रहणस्य विसदृश- =(उत्तर—ऐसा) मानना ठीक नहीं है। क्योंकि सदृशके ग्रहणसे (जो) विसदृशके

व्यवच्छेदार्थत्वाभावात् =व्यवच्छेदका (=व्यवच्छेदार्थत्व) अभाव है अर्थात् विसदृश शब्दकी अनुवृत्ति बराबर आरही है उस (अनुवृत्ति)में कहींपर रुकावट नहीं हुई है

सदृशानाम् एव इति अवधारणा अनाश्रयणात्। =(और) सदृशोंका ही(=एव) ऐसा निश्चयात्मकपद (सूत्रमें) दिया नहीं है अर्थात् 'गुणसाम्ये सदृशानामेव"ऐसा सूत्र नहीं है नहीं तो मानलेते कि असदृशोंकी अनुवृत्ति नहीं आरही है और गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर केवल सदृशोंकाही बन्ध नहीं होता है असदृशोंका गुणोंकी समानता होने पर होजाता है ऐसा मानलेते ॥ कारण यहकि ऐसी अवस्थामें श्वेताम्बरतथा दिगम्बरआम्नायोंमें इसवार्थोंसूत्रोंका पाठभोरअर्थ एकहोजाता॥

जघन्यो निकृष्ट गुणो भाग । जघन्यो गुणो येषा ते जघन्यगुणा । तेषां जघन्यगुणाना नास्ति बन्ध । तद्यथा-एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति बन्ध तस्यैवैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेणद्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति बन्ध । तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति ॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वा अन्येषा स्निग्धाना रूक्षाणा च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसङ्गे तत्रापि प्रतिषेध-

रूक्षत्वका या स्निग्धता का एक अविभाग परिच्छेद(=जघन्यगुण) रहजाय सो बंधको प्राप्त नहीं होता है

सूत्रानुवाद—जघन्यः।निकृष्टः।गुणः।भागः। =जघन्य या घटिसे घटि है सो निकृष्ट है। गुण है सो गुणका अविभाग परिच्छेद है
जघन्यः।गुणः।येषाम्।ते।जघन्यगुणाः। =घटिस घटि है अविभाग परिच्छेद जिनके वे जघन्यगुण हैं
तेषां।जघन्यगुणानाम्।न॰अस्ति।बन्धः। तद्यथा॰- =तिन निकृष्टगुणों(वाली परमाणुओं)के बंध नहीं है। जैसे
एकगुणस्निग्धस्य।एकगुणस्निग्धेन।द्वि आदि-सख्येय- =एकगुण स्निग्धका एकगुण स्निग्धकरि और(=च)दो आदिक संख्यात
असंख्येय-अनंतगुण स्निग्धेन।न॰अस्ति बंध।तस्य। =असंख्यात अनंतगुण स्निग्धकरि बंध नहीं है। तिस
एव॰एकगुण स्निग्धस्य।एकगुण॰रूक्षेण।वा॰द्वि आदि =ही एकगुण स्निग्धका एकगुणरूक्षकरि अथवा दो आदिक
संख्येय असंख्येय अनन्तगुणरूक्षेण।बन्धः।न॰अस्ति =संख्यात असंख्यात अनंतगुणरूक्षकरि बंध नहीं है
तथा॰एकगुणरूक्षस्य।अपि॰योज्यम्। इति॰ =तैसेही(=तथा)एकगुण रूक्षके भी लगाना चाहिये अर्थात् एकगुणरूक्षका एकगुण रूक्षकरि और दो तीन चार पांच आदिक संख्यात,असंख्यात,और अनंतगुणरूक्षकरि बन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकरि अथवा दो, तीन, चार,पांच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धकरि बंध नहीं होता है
एतौ।जघन्यगुण-स्निग्ध-रूक्षौ।वर्जयित्वा-अन्येषाम्। =ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको छोड़कर अन्य
स्निग्धानाम्।रूक्षानाम्।च परस्परेण।बंधः-भवति-इति=स्निग्ध और(=च)रूक्ष(गुणवाली परमाणु)निकें परस्पर बन्ध होता है। ऐसे
अविशेषेण।प्रसंगे।तत्र॰अपि॰प्रतिषेध- =विशेषरहित प्रसंग आनेपर तहां औरभी(=अपि) बन्धके निषेधके

और यह सूत्र केवल परमाणुओंसे संबन्ध रखता है क्योंकि जघन्यगुण परमाणुमेंही पायाजाताहै नांक स्कंधमें और जबकिसीप्रकारकी जघन्यगुणपारूक

सदृशग्रहणं तुल्यजातीयसंप्रत्ययार्थं । गुणसाम्यग्रहणं तुल्यभागसंप्रत्ययार्थम् ॥ एतदुक्तं भवति—द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणरूक्षैः त्रिगुणस्निग्धानां त्रिगुणरूक्षैः द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणस्निग्धैः द्विगुणरूक्षाणां द्विगुणरूक्षैश्चेत्येवमादिषु नास्ति बन्ध इति ॥ यद्येवं

आदि संख्यात असंख्यात अनंत गुणवाली स्निग्धपरमाणुओंका बन्ध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥ उपर्युक्त उदाहरण विजातीय(असदृश वा विसदृश) परमाणुओंके, जो अविभाग परिच्छेदरूप अंशोंमें समान हैं । निम्नलिखित दृष्टान्त सजातीय वा सदृश परमाणुओंके हैं जो सबकी सब गुणोंमें एक दूसरेके बराबर वा समान हैं ।

जैसे दो गुणवा तीन गुणवाली स्निग्धपरमाणुका बन्ध दो, गुणवाली या तीन गुणवाली स्निग्ध परमाणुसे यथाक्रम न होगा और दो गुणवाली अथवा तीन गुणवाली रूक्ष परमाणुका बन्ध दो गुणवाली या तीनगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा, इसीप्रकार चार-पांच-छह-सात-आठ आदि संख्यात-असंख्यात-अनंत स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंका बन्ध चार-पांच-छह-सात-आठ आदि संख्यात-असंख्यात अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा और चार-पांच-छह-सात आठ-आदि संख्यात असंख्यात अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुओंका बंध क्रमसे चार-पांच छह-सात-आठ आदि संख्यात असंख्यात-अनंतगुणसे युक्त रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥

शब्दानुवाद—सदृश-ग्रहणम्[1] तुल्य जातीय-संप्रत्यय अर्थम्[1] =(इस सूत्रमें)सदृश(शब्द)का ग्रहण समानजातिको प्रगट करनेके लिये है

गुणसाम्य ग्रहणम्[1] तुल्य भाग-संप्रत्यय-अर्थम्[1] =(इससूत्रमें)गुणसाम्य वाक्यका लाना(स्निग्धता वा रूक्षताकेगणनामें) बराबर अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंके जतानेकेलिये है।

एतद्[1] उक्तम्[1] भवति । =यह कथन वाच्यार्थ होता है कि

द्विगुण[1] स्निग्धानाम्[1] द्विगुण[2] रूक्षैः[2] त्रिगुण[3] स्निग्धानाम्[3] =दोगुण स्निग्धोंके दोगुण रूक्षो करि, तीनगुण स्निग्धो के

त्रिगुणरूक्षैः[3] द्विगुणस्निग्धानाम्[1] द्विगुणस्निग्धैः[1] =तीनगुणरूक्षोंकरि, दोगुणस्निग्धोंके दोगुण स्निग्धोंकरि,

च द्विगुणरूक्षाणाम्[1] द्विगुणरूक्षैः[1] इत्येवम् आदिषु[1] =और दोगुण रूक्षोंके दोगुण रूक्षोंकरि इत्यादि में

न अस्ति । बन्धः[1] इति ॥ यदि एवम् =इस प्रकार बन्ध नहीं है । (प्रश्न) जो ऐसे है तो अर्थात् गुणोंकी संख्यामें बराबरी होनेपर न तो सदृश परमाणुओंका बंध होता है और न असदृश

---

(१)(२)(३)तीन स्थानोंपर इस पृष्ठमें और पांच स्थानोंमें १२७ पृष्ठमें "बहुवचनमें" ये शब्द इसलिये लाये गये हैं कि वाक्यमें एसी दशा अवश्यम्भावी है

सूभाप —गुणसाम्ये॥असदृशानाम् ॥सदृशानाम् ॥=गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर विजातीय और सजातीय(=रूक्षरूक्ष,स्निग्धस्निग्ध)
परमाणूनाम्॥बन्धः॥न भवति॥ =परमाणुओंके बन्ध नहीं होता है अर्थात् एक परमाणुके अविभाग परिच्छेदरूप अंशों(=गुणों)की गणना दूसरी परमाणुके अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंकी संख्याके यदि बराबर हो तो उन दोनों परमाणुओंका आपसमें चाहे रूक्षस्निग्ध(विजातीय) (क्रमसे) हो चाहे स्निग्धरूक्ष=(विजातीय)(क्रमसे)होंचाहे स्निग्धस्निग्ध=(सजातीय)(क्रमसे)होंचाहे रूक्षरूक्ष=(सजातीय)क्रमसे हों बंध नहींहोताहै जैसे रूक्षपरमाणुके दो अविभागपरिच्छेदरूप अंशका बंध स्निग्धपरमाणुके दो गुणोंके साथ नहीं होगा औरदो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध दो रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ नहीं होसकता है इसी प्रकार तीन चार-पांच-छह-सात आदि-संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंका बंध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात असंख्यात-अनंतगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके साथ नहीं होगा और तीन-चार पांच-छह-सात

गुणसाम्ये वा इति सूत्र उपदेशे हि सदृशानां गुणवैषम्येऽपि =' गुणसाम्ये वा' यदि ऐसा सूत्र करते तो गुणोंकी विषमता होनेपर भी सदृशोंके
बन्धप्रतिषेध प्रसक्ती =अबन्धका प्रसंग आजाता अर्थात् सदृशोंका भी बन्ध न होता। (इसलिये)
तद्वत् तद्-सिद्धये सदृश- =विसदृशोंके समान (=तद्वत्) सदृशोंका बंध (=तद्)सिद्ध करनेके लिये सदृशका
ग्रहणम् इतम् तेन स्निग्धरूक्षजात्या =ग्रहण (इससूत्रमें)किया है। तिसकरि अर्थात् स्निग्ध रूक्ष जातीयसे
साम्येऽपि =समान होने पर भी अर्थात् रूक्ष रूक्ष वा स्निग्ध स्निग्ध होनेपर भी
गुण वैषम्ये बंधसिद्धिः। =गुणोंकी विषमता होने पर बन्धकी सिद्धि है। बन्ध होजाता है॥

इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें बराबर मिलने पर भी अर्थमें भेद है। श्वेताम्बर आम्नायके आचार्यों ने 'स्निग्ध रूक्षत्वात्' तेतीसवें सूत्रकी अनुवृत्ति नहीं ली है वे कहते हैं कि तेतीसवें सूत्रसे उपर्युक्त अनुवृत्ति नहीं लेना चाहिये नहीं तो सूत्र अशुद्ध होजावेगा क्यों कारण है कि सूत्रके पाठ में भेद पड़जाता है उनके मतसे "गुणसाम्येसदृशानाम्" = "गुणसाम्ये सति सदृशानां बन्धो न भवति" = गुणकी समता होने पर सदृशोंका बन्ध नहीं होता पर असदृशोंका बंध अर्थात् रूक्षस्निग्धका बंध गुणोंकी बराबरी होनेपर भी होजाता है उनका भावार्थ यह है कि गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका (रूक्षका रूक्षके साथ और स्निग्ध का स्निग्धके साथ बंध होजाता है और यह गुणोंकी विषमता उनके "द्व्यधिकादिगुणानां तु (=द्व्यधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति" सूत्रके अनुसार केवल दो गुण एकसदृशमें दूसरे सदृशमें अधिक होना चाहिये तब बन्ध होजावेगा परन्तु उनके मतानुसार इससे यह फल निकला कि असदृशोंके परस्पर (रूक्षका स्निग्धके साथ अथवा यों कहिये कि स्निग्धका रूक्षके साथ) बन्ध होनेके लिये गुणोंकी अधिकताकी कोई आवश्यकता नहीं है तो असदृशोंके गुणोंकी संख्या समान होने पर भी बंध होजाता है। (इस टिप्पणी का हमने श्वेताम्बर आम्नायके ग्रंथोंसे मिलाकर सावधानी से लिखी है)॥

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

सदृश-ग्रहणम्॥ किम्॥ अर्थम्॥ ?

गुण-वैषम्ये॥(सदृशानाम्॥अपि॥) बंध
प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ सदृश-ग्रहणम्-क्रियते ॥

परमाणुओंकाही बंध होताहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न'की अनुवृत्ति'नजघन्यगुणानाम्'सूत्रसे आकर'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता कि'(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बंध नहीं होता' =(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निकें भी(=अपि) } बन्ध =जतलानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है॥शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्'सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहे सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजघन्यगुणोंवाली परमाणुओंका बंध होताहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां'सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है औरन असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहें सदृश हों चाहें विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्"सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्धहै तब सूत्रभी उसी ढांचपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें'सदृशानां'लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका बन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें "गुणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं"पाठ है द्वितीयावृत्तिमें 'गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं' पाठ है । तीन हस्तलिखित नवीन सिद्धिप्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है ॥ यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियों राजवार्तिककी वार्तिक पांचका है तदर्थ राजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि 'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्त्यर्थं' इत्यादि अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है ॥ 'गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिज्ञानार्थं सदृश'सिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ पाठ श्रुतसागरी टीकामें है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थमें दो स्थानोंपर देखो(पृष्ठ १३८)तथा भाष्यानुसारिसिद्धसेनीय टीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पत्र ४९३ पर दो स्थानोंपर'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति' पाठहै जो सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ है । 'गुणकी विषमता हो तो बन्ध होय है ऐसे जनावनेके अर्थ है' पं० जयचन्द्रजीने ऐसाअर्थ कियाहै॥'गुणकी विषमता होने सदृशोंमेभी बन्ध होय है स्याद्वादिवाकरकी प्रकाशित राजवार्तिक अध्याय ५ पत्र १८०में है पं०पन्नालालकृत भाषानुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पत्र १०० पर "गुणनिकी विषमतामें सदृशनिकै बन्ध है" ऐसा अर्थ मात्र है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इन सबका परिणाम यहहै कि यथार्थ में सर्वार्थ सिद्धिका पाठ था 'गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं' है ॥ "सदृशानां" वाक्य शेष है अर्थात् वह शब्द छिपा हुआ है हमने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए "सदृशानामपि" को कोष्ठकमें करदिया है क्योंकि "सदृशानां" सहित अनुवाद करनेसे तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता होजाती है॥

अतो विषमगुणाना तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन वन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्ययार्थमिदमुच्यते—

॥ द्व्यधिकादिगुणाना तु॥ ३६ ॥

नहीं होता यदि सूत्रमें 'सदृशानां' न लावे तो यह इस प्रकार कहजाता कि तेतीसवां सूत्र 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' की अनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आजाती और अर्थ यह होता कि गुणोंकी समानता होनेपर स्निग्धरूक्षोंका बन्ध नहीं होता है इस अनुवृत्तिसे इस बातकी प्राप्ति हुई कि गुणोंकी विषमता होनेपर असदृशोंका बन्ध होगा अब सूत्रमें 'सदृशानां' शब्द तो होताही नहीं अतएव सदृशानां का कथनही विषमगुणोंकी अवस्थामें नहीं करसकते इसी हेतुसे वृत्तिमें 'सदृशानां' के साथ 'अपि' (=भी) शब्द लाये हैं कि गुणोंकी विषमतामें सदृशोंका भी बन्ध प्रगट होजाय ; अपि शब्दसे यह भास होता है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असदृशोंका बन्धतो विषमगुणोंके होनेपर होहीजाता है।सूत्रमें 'सदृशानां' लानेसे विषमगुणोंमें सदृशोंके बन्धकीभी प्राप्ति होगई अत सूत्रमें सदृशानां' शब्द व्यर्थ नहीं है॥स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ करनेमें हमारे यहां 'साम्ये' शब्द पर बल देकर यह अर्थ किया है कि सदृशों (सजातीय परमाणुओं) का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका भी बन्ध होता है इसलिये सूत्रमें सदृशानां' शब्दका ग्रहण है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है॥श्वेताम्बर आम्नायमें 'सदृशानां' शब्दपर बलदेकर यह अर्थ किया है कि सदृशोंका बन्ध गुणोंकीसमानता होनेपर नहीं होता है विसदृशों का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ होजावेगा इसीलिये श्वेताम्बर तथा दिगम्बरआम्नायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है।

अतः॥विषमगुणानाम्॥तुल्यजातीयनाम्॥च॥	=इसलिये विषमगुणवाले सदृशोंका और (=च)
अतुल्यजातीयनाम्॥अनियमेन॥बन्ध	=विसदृशों(=असदृशों)का नियमरहित वा अविशेषरूपसे बन्धका
प्रसक्तौ॥विशिष्ट अर्थ-संप्रत्यय-अर्थम्॥	=प्रसंग आनेपर विशेष तात्पर्य वा अभिप्राय जतानेके लिये
इदम्॥उच्यते।	=यह(अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

[(1)]सूत्रम्—द्व्यधिकादिगुणाना तु।३६। = द्वि अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूना परस्परेण वन्ध) तु (भवति) ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ -द्वि अधिक-गुणानाम्॥	=किन्तु (पर-परंतु) दोगुण आदिसे(=आदिकरि)अधिकगुणवाले

(1) यह सूत्रभी परम गुप्त सम्बन्ध रखता है क्योंकि 'न जघन्यगुणानाम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन सूत्रोंसे अनुवृत्तियां इस सूत्रमें ग्रहण कीगईहैं

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

सदृश-ग्रहणम्¹ किम्² अर्थम्³ ?

गुण-वैषम्ये⁴ (सदृशानाम्⁵ अपि*) बंध प्रतिपत्ति-अर्थम्⁶ सदृश-ग्रहणम् क्रियते ।

परमाणुओंकाही बंध होताहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न' की अनुवृत्ति 'नजघन्यगुणानाम्' सूत्रसे आकर 'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता कि '(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बंध नहीं होता' =(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निके भी(=अपि) } बंध =बतलानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है॥शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्' सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहे सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजघन्यगुणोंवाली परमाणुओंका बंध होताहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है और न असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहें सदृश हों चाहें विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्" सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्धहै तब सूत्रभी ऐसी होनेपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें 'सदृशानां' लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका बन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें "गुणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है द्वितीयावृत्तिमें "गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है । तीन हस्तलिखित सर्वार्थ सिद्धिकीप्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है । यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियों राजवार्तिकको वार्तिक बोधका है तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्तिय" इत्यादि अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है । गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिज्ञानार्थं सत्वार्थ सिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ पाठ श्रुतसागरी टीकामें है । श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थसूत्रमें दो स्थानोंपर देखो(पृष्ठ १३८)तथा भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ टीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पत्र ४२८ पर दो स्थानोंपर'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति पाठहै जो सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीया वृत्तिमें मिलता जुलता हुआ है । "गुणका विषमता हो तो बन्ध होय है ऐसी जनावनेके अर्थ है" पं० जयचन्द्रजीने ऐसाअर्थ कियाहै। 'गुणकी विषमता होते सन्तेभी बन्ध होय है' न्यायदिवाकरजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय५ पत्र १५३में पं०पन्नालाल दूनीकी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पत्र १०० पर "गुणनिकी विषमतामें सदृशनिके बन्ध है" ऐसा अर्थ प्राप्त है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इस सबका परिणाम यहहै कि पत्राय में सर्वार्थ'सिद्धि का पाठ था गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं ' है । "सदृशानां" वाक्य शेष है अर्थात् यह शब्द छिपा हुआ है इसमें द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए "सदृशानामपि को कोष्ठकमें करदिया है क्योंकि "सदृशानां"सहित अनुवाद करनेमें तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता होजाती है॥

अतो विषमगुणाना तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन बन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्यर्थमिदमुच्यते—

॥ द्वयधिकादिगुणाना तु ॥ ३६ ॥

नहीं होता यदि सूत्रमें 'सदृशानां' न लाते तो यह इस प्रकार जानाता कि तेतीसवां सूत्रसे 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' की अनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आजाती और अर्थ यह होता कि गुणोंकी समानता होनेपर स्निग्धरूक्षोंका बन्ध नहीं होता है इस अनुवृत्तिसे इस बातकी प्राप्ति हुई कि गुणोंकी विषमता होनेपर असदृशोंका बन्ध होगा अब सूत्रमें 'सदृशानां' शब्द तो होताही नहीं अतएव सदृशानां का कथनहीविषमगुणोंकी अवस्थामें नहीं करसकतेये इसी हेतुसे वृत्तिमें 'सदृशानां' के साथ 'अपि' (=भी) शब्द लाये हैं कि गुणोंकी विषमतामें सदृशोंका भी बन्ध प्रगट होजाय ; अपि शब्दसे यह भास होता है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असदृशोंका बन्धतो विषमगुणोंके होनेपर होहीजाता है।सूत्रमें 'सदृशानां' लानेसे विषमगुणोंमेंसदृशोंके बन्धकीभी प्राप्ति होगई अतः सूत्रमें सदृशानां' शब्द व्यर्थ नहीं है।स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ करनेमें हमारे यहां 'साम्ये' शब्द पर वल देकर यह अर्थ किया है कि सदृशों(सजातीय परमाणुओं)का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका भी बन्ध होता है इसलिये सूत्रमें सदृशानां' शब्दका ग्रहण है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है।श्वेताम्बर आम्नायमें 'सदृशानां' शब्दपर वलदेकर यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंका बन्ध गुणोंकीसमानता होनेपर नहीं होता है विसदृशो का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ होजावेगा इसीलिय श्वेताम्बर तथा दिगम्बरआम्नायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है।

अत'॥विषमगुणानाम्'॥तुल्यजातीयनाम्'॥च॥	=इसलिये विषमगुणवाले सदृशोंका और (=च)
अतुल्यजातीयनाम्'॥अनियमेन'॥बन्ध	=विसदृशों(=असदृशों)का नियमरहित या अविशेषरूपसे बन्धका
प्रसक्तौ'॥विशिष्ट अर्थ-संप्रत्यय अर्थम्'॥	=प्रसंग आनेपर विशेष तात्पर्य या अभिप्राय जतानेके लिये
इदम्'॥उच्यते।	=यह(अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

[1]सूत्रम्—द्वयधिकादिगुणाना तु।३६। = द्वि अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूना परस्परेण बन्ध) तु (भवति) ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थ -द्वि अधिक-गुणानाम्'	=किन्तु (पर-परंतु) दोगुण आदिसे(=आदिकरि)अधिकगुणवाले

(१) यह सूत्रभी परम गुमास सम्बन्ध रखता है क्योंकि 'न जघन्यगुणानाम्, गुणसाम्ये सदृशानाम्, इन सूत्रोंसे अनुवृत्तियां इस सूत्रमें ग्रहण कीगई हैं

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

सदृश-ग्रहणम्॥ किम्॥ अर्थम्॥ ?

परमाणुओंकाही बंध होवाहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न'की अनुवृत्ति'नजघन्यगुणानाम्'सूत्रसे आकर'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता कि'(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बंध नहीं होता'

गुण-वैषम्ये॥(सदृशानाम्॥अपि*) बंध-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥सादृश-ग्रहणम्-क्रियते।

=(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निकें भी(=अपि) } बंध =मतजानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है॥शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्'सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहै सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजघन्यगुणोंवाली परमाणुओंका बंध होवाहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां'सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है और न असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहैं सदृश हों चाहैं विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्"सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्धहै तब सूत्रभी उसी ढांचेपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें'सदृशानां'लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका बन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें "गुणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं"पाठ है द्वितीयावृत्तिमें गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है । तीन हस्तलिखित सर्वार्थ सिद्धिकीप्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है । यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियों राजवार्तिककी वार्तिक पोषक है तत्वार्थराजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्त्यर्थं" इत्यादि अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थ सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है । 'गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिज्ञानार्थं सदृशग्रहण'सिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ पाठ प्रभाचन्द्री टीकामें है । श्वेताम्बर आम्नायके तत्वार्थ०में दो स्थानोंपर देखा(पृष्ठ १९८)तथा भाष्यानुसारिणीतत्वार्थ टीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पत्र ४४३ पर दो स्थानोंपर'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति"पाठहै जो सर्वार्थ'सिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ है । 'गुणका विषमता हो तो बन्ध होय है ऐसे जनावनेके अर्थ है" पं० जयचन्द्रजीने ऐसाअर्थ कियाहै।'गुणको विषमता होते समानी बन्ध होय है न्यायदिवाकरजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय५ पत्र १५२में है। पं०पन्नालाल दूनीजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पत्र १०० पर "गुणनिको विषमतामें सदृशनिकै बन्ध है ऐसा [illegible] प्राप्त है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इन सबका परिणाम यहहै कि पर्याय में सर्वार्थ सिद्धि का पाठ तो गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं है । 'सदृशानां' वाक्य शेष है अर्थात् वह उक्त किया हुआ है हमने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए सदृशानामपि को कोष्ठकमें करदिया है क्योंकि "सदृशानां"सहित अनुवाद करनेमें तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता होजाती है।

सदृशानाम्॥ विसदृशनाम्॥ परमाणूनाम्॥ परस्परेण॥ बन्धः॥ भवति॥ —सजातीय अथवा विजातीय परमाणुओंका —आपसमें बन्ध होता है ॥ द्वि अधिक आदिगुण वाक्यमें आदि शब्द प्रकार वा भातिवाची है। दोगुणकरि अधिक सो द्वयधिकगुण है अर्थात् बंध होनेयोग्य जो परमाणु दोगुण करि अधिकहै सो द्वयधिकगुण(परमाणु) है, जघन्यगुणको छोड़कर बंध होने योग्य दो अधिक गुणवाली परमाणु है। अतः द्वयधिक गुण परमाणु का अभिप्राय चार गुण संयुक्त परमाणु हुई ॥ "द्वयधिकादिव बंधभवति" अर्थात् द्वयधिक प्रकारसे बन्ध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुसे जिस में चारगुण हैं सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दके हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पांच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से छह गुण वाली दो गुण अधिक है, पांच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से उपरोक्त दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली परमाणुयें गर्भित हैं और इन्हीं प्रकार की परमाणुओंके बंध होता है ॥

(क) सजातीय परमाणुओं के आपस में बंध के उदाहरण —दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ बंधको प्राप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पांच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पांच गुणवाली स्निग्ध सात गुणवाली के साथ छह गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली स्निग्ध के साथ बंधको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुयें, असंख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनंत गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दश ग्यारह बारह आदि, संख्यात गुणवाली

श्वे श्वेताम्बर आम्नायके आचार्योंने "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रका यह अर्थ किया है कि गुणोंकी समान संख्या होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होता परन्तु विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी संख्याके तुल्य होनेपर भी होजावेगा तब यह परिणाम निकला कि सदृश परमाणुओंके ही बन्धके लिये एकसे दूसरेमें दोगुणोंके अधिक होनेकी आवश्यकता हुई क्योंकि उस आम्नायके सिद्धान्तके अनुकूल विसदृश परमाणुओंके आपसमें बन्ध होनेके लिये एकसे दूसरेमें अधिकगुणोंके होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारे यहां 'गुणसाम्ये सदृशानां' में 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' की भी अनुवृत्ति ग्रहण की है इसलिये ऐसा अर्थ होता है कि परमाणुओंमें गुणोंकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु सजातीय हों अथवा विजातीय हों बन्ध नहीं होता है और पश्चात् 'सदृशानां विसदृशानां' दोनोंकी अनुवृत्ति द्वि अधिकादि गुणानां तु सूत्रमें ग्रहण करके ऐसा तात्पर्य निकाला है कि द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाली सदृश परमाणुओंका परस्पर अथवा विसदृश परमाणुओं का आपसमें बन्ध होता है अन्य प्रकारसे नहीं जघन्यगुणवाली परमाणुओंका दोनोंही सम्प्रदायवालोंने बन्ध वर्जित रक्खा है ॥

गई है। अर्थात् 'सदृशानां विसदृशानां' इनो वर्जा सूत्रमें 'परमाणूनां' यांतीसवां सूत्रसे अनुवर्तन है 'परस्परेण' और 'भवति' शब्दोंका अध्याहार इस सूत्रमें किया गया है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें इस सूत्रकी प्रथमवार्तिककी वृत्तिमें जिनगही उदाहरण दिये हैं व समस्त परमाणुओंसे सम्बन्ध रखते हैं राज २४१। यह बात प्रगट है कि बन्ध होनेके पश्चात् स्कन्ध हो जावेगा जैसाकि प्रथमवार्तिककी वृत्तिके अन्तके वाक्यसे प्रगट है अर्थात् एवमुक्त विधिना बन्धे सति द्विप्रदेशादयः स्कन्धा अनन्तानन्त प्रदेशावसानाः स्कन्धाः परिनिर्वर्तितव्याः इसप्रकार कथित विधिद्वारा बन्ध होनेपर अणुओंके द्वि अणु आदि अनन्तानन्त प्रदेश पर्यन्त स्कन्धोंकी उत्पत्ति जानना चाहिये समर्थनमें देखो इसकाप० २८ जिसमें श्वेता०आम्नायके संबन्धमें कुछ कहा है

(२) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एक है तो भी अर्थमें यह भेद है कि उन्होंने केवल सदृशानाम् की अनुवृत्ति 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रसे लेकर [illegible] प्रकार सूत्र किया है किंतु अधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवतीति॥ भाष्यम्– द्वाभ्यां गुणविशेषाभ्यामभ्यधिकाद् विकार्यः परमाणु र्न आदिर्येषां गुणानां ते द्वि अधिकादिगुणाः यत्र शब्दोऽभगुणिवचन गुणवतागुणा परमाणव इत्यर्थः तथा द्वि अधिकादि गुणानामणूनां सदृशानां बन्धो भवति। सदृशानामितिस्नेहसामान्यं रुक्षसामान्यं चाश्रित्य सादृश्य व्याख्येयं॥ आसिद्धसेनसूरि विरचिता भाष्यानुसारिणी वृत्ती वा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका पर्व ४१६-श्वेताम्बर आम्नायमें यह ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्रपर महत्त्वका है इसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे अधिक कुछ है।

द्वि अधिक आदि गुणानां तु सदृशानाम् बन्ध भवति इति = परन्तु द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश(परमाणु)ओंका बन्ध होता है ऐसा है

भाष्यम् – अभ्यस्मात् द्वाभ्याम् गुणविशेषाभ्याम् अधिक. = व्याख्या(भाष्य) है कि अन्य(परमाणु अ(=अभ्यस्मात्) दो विशेषगुणकरि अधिक अर्थात् स्निग्धहोतो दोगुण अधिकस्निग्धकरि और रुक्षहोतो दोगुण अधिकरुक्षकरि

परमाणु ना आदिः येषाम् गुणानाम् ते द्वि अधि कादिगुणाः = जो परमाणु है सो द्व्यादिगुण(= आदिगुणानां)जिनके हैं वे(= त द्वि अधिकादि गुणाः)

गुणशब्दः अत्र गुणिवचन- = यहां (= यत्र अर्थात् इससूत्रमें) गुण शब्द है सो गुणीका वाचक(= गुणिन-वचन)है।

गुणवन्त गुणाः परमाणव इत्यर्थः = गुण सहित हैं वे गुणा परमाणु हैं ऐसा तात्पर्य है अर्थात् सूत्रमें 'गुणानां' शब्द है सो जिसके गुण विद्यमान है उससे प्रयोजन है ऐसी गुणवालीपरमाणु है

तेषाम् द्वि अधिकादिगुणानाम् अणूनाम्सदृशानाम् बंधोभवति = तिन'दोक अधिक आदिसे सदृश परमाणुओंका बन्ध होता है

सदृशानां इति स्नेहसामान्यं रुक्षसामान्यं च आश्रित्य = सदृशानां ऐसा वाक्य सामान्य स्निग्धका और सामान्यरुक्षको आश्रयकरि

सादृश्यव्याख्येयम् ॥ जैसेका भाष्य समाप्य०व प०११६से किया है = (सामान्य स्निग्ध और सामान्यरुक्षकी विवक्षासे)समानता वर्णित है

भाष्यम्-द्वि आद्यधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति = द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश पदार्थोंकाभी बन्ध होता है॥

विशेषव्याख्या– अब इस विषयको कहते हैं कि रुक्षका रुक्षके साथ औरस्निग्धका स्निग्धके साथ भी बन्ध होता है किन्तु रुक्ष तथा स्निग्धगुणों की इस प्रकारसे विषमता होनी चाहियेकि

तथथा स्निग्धस्य द्विगुणाद्यधिक स्निग्धेन(द्विगुण-आदिअधिक)। = जैसे स्निग्धकाअर्थात्सामान्य स्निग्धका द्विगुणआदि अधिक स्निग्धके साथबंधहोताहै

द्विगुणाद्यधिक स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विगुण आदि अधिक)। = (तथा)द्विगुण आदि अधिक स्निग्धका सामान्यस्निग्धके साथ बन्ध होता है

रुक्षस्यापि द्विगुणाद्यधिकरुक्षेण(द्वि-गुण आदि अधिक) = (ऐसेही सामान्य)रुक्षका द्विगुण आदि अधिक रुक्षके साथ बन्ध होता है

द्विगुणाद्यधिकरुक्षस्य रुक्षेण(= द्वि गुण-आदि-अधिक) = तथा द्विगुण आदि अधिक रुक्षका सामान्य रुक्षके साथ भी बन्ध होता है (तात्पर्य यह कि सामान्य स्निग्ध पदार्थका उससे द्विगुण अधिक स्निग्धके साथ बन्ध होता है और सामान्यरुक्ष पदार्थका उससे द्विगुण अधिक रुक्षके साथबन्ध होता है परन्तु यह वैषम्यद्विगुण आदिसे अधिक होना चाहिये)

एकादिगुणाधिकयोस्तु सदृशोर्बन्धो न भवति और एकादिगुण अधिक सदृशोंका बन्ध नहीं होता है॥ देखो समाप्य०पृ० ११६।

सदृशानाम्॥ विसदृशानाम्॥ परमाणूनाम्॥ परस्परेण॥बन्धः॥भवति।

—सजातीय अथवा विजातीय परमाणुओंका —आपसमें बन्ध होता है ॥ द्वि अधिक आदिगुण वाक्यमें आदि शब्द प्रकार वा आदियाची है। दोगुणाकरि अधिक सो द्व्यधिकगुण है अर्थात् बंध होनेयोग्य जो परमाणु दोगुण करि अधिक है सो द्व्यधिकगुण(परमाणु) है, जघन्यगुणको छोड़कर बंध होने योग्य दो अधिक गुणवाली परमाणु है। अतः द्व्यधिक गुण परमाणु [redacted] अभिप्राय चार गुण संयुक्त परमाणु हुई ॥ "द्व्यधिकादिबन्धभवति" अर्थात् द्व्यधिक प्रकारसे बन्ध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुसे जिस में चारगुण हैं सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दके हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पांच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से छह गुण वाली दो गुण अधिक है, पांच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दो गुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से उपरोक्त दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली परमाणुयें गर्भित है और इन्ही प्रकार की परमाणुओंके बंध होता है ॥

(क) सजातीय परमाणुओं के आपस में बंध के उदाहरणः—दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ बंधको प्राप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पांच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पांच गुणवाली स्निग्ध सात गुणवाली के साथ छह गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली स्निग्ध के साथ बंधको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुयें, असंख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनंत गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दश ग्यारह बारह आदि, संख्यात गुणवाली

जब श्वेताम्बर आम्नायके आचार्योंने "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रका यह अर्थ किया है कि गुणोंकी समान संख्या होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होता परन्तु विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी संख्याके तुल्य होनेपर भी होजावेगा तब [redacted] परिणाम निकला कि सदृश परमाणुओंके ही बन्धके लिये एकसे दूसरेमें दोगुणोंके अधिक होनेकी आवश्यकता हुई क्योंकि उस आम्नायके सिद्धान्तके अनुकूल विसदृश परमाणुओंके आपसमें बन्ध होनेके लिये एकसे दूसरेमें अधिकगुणोंके होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारे यहां गुणसाम्ये सदृशानां में स्निग्धरूक्षत्वानाम् कीभी अनुवृत्तिग्रहणकी है इसलिये ऐसा अर्थ होता है कि परमाणुओंमें गुणोंकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु सजातीय हों अथवा विजातीय हो बन्ध नहीं होता है और पश्चात् 'सदृशानां विसदृशानां' दोनोंकी अनुवृत्ति द्व्यधिकादि गुणानांतु' सूत्रमें ग्रहण करके ऐसा तात्पर्य निकाला है कि द्विगुण आदिसे अधिक गुण वाली सदृश परमाणुओंका परस्पर अथवा विसदृश परमाणुओं का आपसमें बन्ध होता है अन्य प्रकारसे नहीं जघन्यगुणवाली परमाणुओंका दोनोंही सम्प्रदायवालोंने बन्धसे वर्जित रक्खा है ॥

स्निग्ध परमाणुओंके साथ, असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ पूर्वोक्त से उपरोक्त दो दो गुण अधिक, अधिक स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

( ) दो गुणवाली रूक्ष परमाणु चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ, तीन गुणवाली रूक्ष पांच गुणवाली रूक्षके साथ, चार गुणवाली रूक्ष छह गुण वाली रूक्ष के साथ पांच गुणवाली, रूक्ष सात गुणवाली रूक्षके साथ, छह गुण वाली रूक्ष आठ गुणवाली रूक्षके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात गुणवाली रूक्ष परमाणुयें असंख्यात गुण वाली रूक्ष परमाणुये और अनंत गुण वाली रूक्ष परमाणुये यथासंख्य नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ, असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणु के साथ पूर्वोक्तसे उपरोक्त दो२गुण अधिक अधिक रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

(ख)विजातीय परमाणुओंके परस्पर बंधके दृष्टान्त—दो रूक्ष गुणवाली परमाणुओंका बंध चार स्निग्धवाली परमाणुओंके साथ होता है। तीनरूक्ष गुणवालीका पांच स्निग्धगुणवालीके साथ, चाररूक्षगुणवालीका छहस्निग्ध गुणवालीकेसाथ, पांचरूक्ष गुणवालीका सात स्निग्धवालीके साथ, छह रूक्षगुणवालीका आठ स्निग्धगुणवालोंके साथ बंध होता है ॥ इस प्रकारही सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली रूक्ष परमाणुयें, असंख्यात गुणयुक्त रूक्ष परमाणुयें और अनंत गुणसयुक्त रूक्ष परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं यदि पूर्वोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंसे उपरोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंमें दो दो गुण अधिक अधिक स्निग्धताके हों तो ॥

() दो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध चाररूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ होता है; तीन स्निग्धगुणवालीका पांच रूक्षगुणवालीके साथ, चारस्निग्धगुणवालीका छह रूक्षगुणवालीके साथ, पांच स्निग्धगुणवालीका सात रूक्षगुणवालीके साथ, छहस्निग्धगुणवालीका आठरूक्षगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली स्निग्धपरमाणुयें असंख्यातगुणयुक्त स्निग्धपरमाणुयें, और अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह, आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनन्तगुणवाली रूक्ष परमाणुओंके साथ बन्ध को प्राप्ति होती हैं यदि पूर्वोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंसे उपरोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंमें दो अधिक रूक्षताके हों तो ॥

द्वाभ्यां गुणाभ्यामधिको द्व्यधिकः । क पुनरसौ ? चतुर्गुणः ॥ आदिशब्द प्रकारार्थ । क पुनरसौ प्रकार ? द्व्यधिकता । तेन पंचगुणादीनां सम्प्रत्ययो न भवति । तेन द्व्यधिकादिगुणाना तुल्यजातीयाना मतुल्यजातीयाना च बन्ध उक्तो भवति । नेतरेषाम् ॥ तद्यथा-द्विगुणस्निग्धस्य परमाणोरेकगुणस्निग्धेन, द्विगुणस्निग्धेन, त्रिगुणस्निग्धेन वा नास्ति बन्धः ॥ चतुर्गुणस्निग्धेन पुनरस्तिबन्ध

वृत्त्यनुवादः—द्वाभ्याम्॥गुणाभ्याम्॥अधिकः॥द्वि अधिकः॥=(एक परमाणु दूसरेसे) दो गुणकरि अधिक परमाणु सो द्व्यधिक (गुण) है

कः॥पुनः॥असौ॥ ? चतुर्गुणः॥ ॥ =फिर यह(=असौ) क्या है। चारगुणवाली है अर्थात् जघन्यगुणवाली परमाणुओं को छोड़कर एकपरमाणुसे दोगुण जिस परमाणुमें अधिक हों सो चतुर्गुण वाली है।

आदि-शब्दः॥प्रकार अर्थः॥ =(इस सूत्रमें) आदि शब्द प्रकार अथवा जातिके लिये है अर्थात् द्व्यधिक प्रकार से बंध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुसे जिसमें चारगुण हैं सो दो अधिकगुण वाला परमाणु है 'आदि'शब्दके निमित्त से तीनगुणवाली परमाणुसे पांचगुणवाली परमाणु दोगुण अधिक है चार गुणवालीसे छहगुणवाली दोगुण अधिक है पांचगुणवालीसे सातगुणवाली दोगुण अधिक है, छह गुणवालीसे आठ गुणवाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीतिसे 'आदि'शब्दमें पूर्वोक्त से उपरोक्त दोगुण अधिक अधिक वाली क्रमसे सर्व संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुणवाली परमाणुयें गर्भित हैं और इन्ही प्रकारकी परमाणुओंके बंध होतहैं

कः॥पुनः॥असौ॥प्रकार ॥? द्वि अधिकता॥ =(प्रश्न)पहुरि [illegible] प्रकार क्या है ? (एकपरमाणुमें दूसरीसे)दो(गुण)की अधिकता है

तेन॥पञ्चगुण-आदीनाम्॥संप्रत्ययः॥न॥भवति। =तिस(द्व्यधिक)से पांच गुणादिकोंका जानना अथवा ज्ञान नहीं होता है

तेन॥द्वि अधिक-आदि-गुणानाम्॥तुल्य जातीयनाम्॥च॥ =तिस(द्व्यधिक)से दो अधिकादिगुणवाली सदृशोंका और(=च)

अतुल्य जातीयनाम्॥बन्धः॥उक्तः॥भवति । न॥इतरेषाम्॥=विसदृशोंका बन्ध कहागया(=उक्त है(=भवति)अन्यपरमाणुके(बंध) नहीं है

तद्यथा॥द्विगुण-स्निग्धस्य॥परमाणोः॥एकगुण =जैसे दोगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके एकगुण

स्निग्धेन॥द्विगुण-स्निग्धेन॥वा त्रिगुणस्निग्धेन॥ स्निग्ध(परमाणु)करि दोगुण स्निग्ध(परमाणु)करि वा तीनगुण स्निग्धकरि

न॥अस्ति॥बन्धः॥ । चतुर्गुण-स्निग्धेन॥पुनः॥अस्तिबंधः॥=बन्ध नहीं है । पहुरि चारगुण स्निग्ध (परमाणु)करि बन्ध है ।

स्निग्ध परमाणुओंके साथ, असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ पूर्वोक्त से उपरोक्त दो दो गुण अधिक, अधिक स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

( ) दो गुणवाली रूक्ष परमाणु चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ, तीन गुणवाली रूक्ष पांच गुणवाली रूक्षके साथ, चार गुणवाली रूक्ष छह गुण वाली रूक्ष के साथ पांच गुणवाली, रूक्ष सात गुणवाली रूक्षके साथ, छह गुण वाली रूक्ष आठ गुणवाली रूक्षके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात गुणवाली रूक्ष परमाणुयें असंख्यात गुण वाली रूक्ष परमाणुये और अनंत गुण वाली रूक्ष परमाणुये यथासंख्य नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ, असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणु के साथ पूर्वोक्त उपरोक्त दो२गुण अधिक अधिक रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

(ग) विजातीय परमाणुओंके परस्पर बंधके दृष्टान्त—दोरूक्ष गुणवाली परमाणुओंका बंध चार स्निग्धवाली परमाणुओंके साथ होता है। तीनरूक्ष गुणवालीका पांच स्निग्धगुणवालीके साथ, चाररूक्षगुणवालीका छहस्निग्ध गुणवालीकेसाथ, पांचरूक्ष गुणवालीका सात स्निग्धवालीके साथ, छह रूक्षगुणवालीका आठ स्निग्धगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इस प्रकारही सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली रूक्ष परमाणुयें, असंख्यात गुणयुक्त रूक्ष परमाणुयें और अनंत गुणसंयुक्त रूक्ष परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं यदि पूर्वोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंसे उपरोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंमें दो दो गुण अधिक अधिक स्निग्धताके हों तो ॥

() दोस्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध चाररूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ होता है; तीन स्निग्धगुणवालीका पांच रूक्षगुणवालीके साथ, चारस्निग्धगुणवालीका छह रूक्षगुणवालीके साथ, पांच स्निग्धगुणवालीका सात रूक्षगुणवालीके साथ, छहस्निग्धगुणवालीका आठरूक्षगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली स्निग्धपरमाणुयें असंख्यातगुणयुक्त स्निग्धपरमाणुयें, और अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह, आदि संख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ असंख्यातगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ और अनन्तगुणवाली रूक्ष-परमाणुओंके साथ बन्ध को प्राप्ति होती है यदि पूर्वोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंसे उपरोक्त रूक्षगुणवाली परमाणुओंमें दो अधिक रूक्षताके हों तो ॥

द्विगुणरूक्षस्य पंचगुणरूक्षादिभिस्तैर्नास्ति बन्ध ॥ एवं त्रिगुणरूक्षादीनामपि द्विगुणाधिकैर्बन्धो योज्य ॥ एवं भिन्नजातीयेष्वपि योज्य ॥उक्तंच–

द्विगुण-रूक्षस्य पंचगुणरूक्षादिभि तैः =दोगुणरूक्ष(परमाणु)का पांचगुणरूक्षादिकरि बन्ध नहिं

न अस्ति बन्ध ॥ एवम् त्रिगुणरूक्ष-आदीनाम् अपि =बन्ध नहीं है। इस प्रकार तीनगुण(वाले)रूक्षादिकोंका भी(=अपि)

(अर्थात् उस तीनगुण-चारगुण-पांचगुण-छहगुण आदि संख्यात, असंख्यात, और अनन्तगुणवाली रूक्षपरमाणुका यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

द्विगुण अधिकैः =दोगुण अधिककरि (अर्थात् पांचगुण रूक्षकरि, छहगुण रूक्षकरि, सातगुण रूक्षकरि, आठ आदिगुण रूक्षकरि ऐसे दोगुण अधिक संख्यातरूक्षगुणकरि, तथा दोगुणअधिक असंख्यातरूक्षगुणकरि, और दोगुण अधिक अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुकरि)

बन्धः योज्यः । एवम् भिन्नजातीयेषु अपि =बन्ध योग्य है। इस प्रकार भिन्नजातीय(परमाणुओं)में भी(अर्थात् स्निग्धपरमाणुओंका रूक्षोंकरि और रूक्षपरमाणुओंका स्निग्धोंकरि भी बन्ध)

योज्यः ॥ =योग्य है (=योज्य) भावार्थ द्विगुण स्निग्धके एक दो तीन रूक्षगुण संयुक्त परमाणुओंकरि बन्ध नहीं है। चतुर्गुणही रूक्षकरि बंध है इसी प्रकार तीनगुणस्निग्ध परमाणुओंके पांचगुण रूक्षपरमाणुकरि बंध है । शेष पूर्वोत्तर गुणयुक्त परमाणुओंकरि बंध नहीं है। इस प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्तगुणके धारक जे स्निग्ध रूक्षपरमाणु तिनकै सजातीयमें अथवा विजातीयमें दोगुण अधिक संयुक्त परमाणुकरिही बन्ध है अन्य प्रकार नहीं है। एक परमाणुके बंधके लिये दूसरीमें दोगुण अधिक होना ही चाहिये ॥

उक्तम् च =कहा भी है कि

णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण । लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण। णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि(हवेदि)बन्धो । जहण्णवज्जो विसमे समे वा ॥गोम्मटसार तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्रुतसागरी टीकामें 'दुराधिएण'के स्थानमें दुराहिएण' है ॥ गोम्मटसारमें'उवेदि हवेदि'=(उपैति)के स्थानमें'हवेज्ज' भवेत् है और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें 'उपइ'=है ॥ श्लोकवार्तिक,गोम्मटसार, श्रुतसागरी टीकामें'वज्ज' है सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें (दोनों आवृत्तियोंमें) राजवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें 'वज्जो' शब्द आये हैं

यह आर्यावृन्द अत्यन्त प्राचीन और महत्त्वका है क्योंकि हमारे यहां के लगभग सब संस्कृत भाष्योंमें जैसे सर्वार्थसिद्धिवृत्ति तत्त्वार्थ राजवार्तिक

तस्यैव पुनर्द्विगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन षट्सप्ताष्टसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन वा नास्ति । एवं त्रिगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन बन्धोऽस्ति ॥ शेषैः पूर्वोत्तरैर्न भवति ॥ चतुर्गुणस्निग्धस्य षड्गुणस्निग्धेनास्ति बन्धः । शेषैः पूर्वोत्तरैर्नास्ति । एवं शेषेष्वपि योज्य ॥ तथा—द्विगुणरूक्षस्य एकद्वित्रिगुणरूक्षैर्नास्ति बन्धः । चतुर्गुणरूक्षेणत्वस्ति बन्धः ॥ तस्यैव

तस्य॥पुनः॥द्वि-गुण-स्निग्धस्य॥पंचगुणस्निग्धेन॥ =तथा(=पुनः)तिसही दोगुण स्निग्ध(परमाणु)का पंचगुण स्निग्धकरि

षट्-सप्त-अष्ट-संख्येय असंख्येय अनन्तगुण-स्निग्धेन॥ वा =छह,सात,आठ (आदि ऐसे)संख्यात,असंख्यात वा अनन्तस्निग्ध(परमाणु) करि

बन्धः॥न॥अस्ति । एवम्॥त्रिगुणस्निग्धस्य॥पंचगुण- =बन्ध नहीं है । ऐसे तीनगुणस्निग्ध(परमाणु)के पांचगुणवाला

स्निग्धेन॥बन्धः॥अस्ति । शेषैः॥पूर्व =स्निग्धकरि बन्ध है।(पांचसे)प्रथम कहीहुई(संख्या एक-दो-तीन चार स्निग्ध)निकरि

उत्तरैः॥ =(तीनस्निग्ध गुणवाली परमाणुका बन्ध) तथा अग्रिम

(संख्यातस्निग्धगुणवाली,असंख्यात स्निग्धगुणवालीअनंतस्निग्धगुणवाली)निकरि

न॥भवति ॥ =(तीनस्निग्धवाली परमाणुओंका बन्ध) नहीं होता है अर्थात् तीनगुणवाली स्निग्धपरमाणुका बन्ध एक-दो-तीन-चार स्निग्ध परमाणुओंके साथ जो पांचस्निग्ध गुणवाली परमाणुसे संख्यामें पूर्व है तथा छ-सात-आठ-नौ आदि संख्यात असंख्यात अनंत पर्यन्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंके साथ जो पांचस्निग्ध गुणवाली परमाणुओंसे उपर वा अगली हैं बन्ध नहीं होता है केवलपांचगुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथही तीनस्निग्धगुणवाली परमाणु बन्धको प्राप्त होवी है

चतुर्गुणस्निग्धस्य॥षड्-गुणस्निग्धेन॥अस्ति॥बन्धः॥ =चारगुण स्निग्ध(परमाणु)का छहगुणस्निग्ध (परमाणुकरि) बन्ध है

शेषैः॥पूर्व =(छहगुणस्निग्धपरमाणुसे) पहली हुई पहली(एकसे पांच तक स्निग्धपरमाणु,निकरि

उत्तरैः॥ =(तथा छहगुणस्निग्धपरमाणुसे) अगली (सात आठ-नौ-दश आदिक संख्यातगुणा स्निग्ध परमाणु असंख्यातगुण स्निग्धपरमाणु अनंतगुण स्निग्धपरमाणु)निकरि

न॥अस्ति । एवम्॥शेषेषु॥अपि॥योज्यः॥, तथा॥ =बन्ध)नहीं होता है । इस प्रकार(दोगुणा अधिक) अवशेष विर्षेभी जोडो । उसीप्रकार

द्विगुणरूक्षस्य॥एक-द्वि त्रिगुणरूक्षैः॥न॥अस्ति॥बन्धः॥ =दोगुणरूक्ष(परमाणु)के एक दो तीन गुणवाली रूक्ष(परमाणु)करि बन्ध नहीं

चतुर्-गुणरूक्षेण॥तु॥अस्ति॥बन्धः॥तस्य॥एव॥ =किन्तु (=तु)चारगुण वाली रूक्ष परमाणु करि बन्ध है । तिसही

अर्थात् एकस्निग्ध परमाणुका दूसरी दोगुण अधिक स्निग्धपरमाणुके साथ बन्ध होता है ॥ एक रूक्षपरमाणुका दूसरी दोगुण अधिक रूक्षपरमाणुके साथ बन्ध होता है। एकस्निग्धपरमाणुका दूसरी दो अधिक गुणवाली रूक्षपरमाणुके साथ भी बन्ध होता है। समधारा और विषमधारा दोनोंमें बन्ध होता है किन्तु जघन्यगुणवाले परमाणुओंका बन्ध नहीं होता है भावार्थ ऐसा है कि एकगुणवाले परमाणुका तीनगुणवाले परमाणुके साथ बन्ध नहीं होताहै, शेष स्निग्ध वा रूक्ष दोनों जातिके परमाणुओं का समधारा वा विषमधारामें दोगुण अधिक रहनेपर बन्ध होजाताहै॥ स्निग्ध रूक्ष दोनोंमें दो-चार छह-आठ-दश-बारह-इत्यादि जहां दोगुण के ऊपर दो दो अंशोंकी वृद्धि वा अधिकता हो उसको समधारा कहते हैं और स्निग्ध रूक्ष दोनोंमें ही तीन-पांच-सात नौ-ग्यारह-तेरह इत्यादिक जहां तीन गुणोंके ऊपर दो दो अंशोंकी अधिकता हो वहां विषमधारा होती है। इन दोनों धाराओंमें जघन्यगुणको छोड़कर दोगुण अधिकताहीसे बन्ध होता है अन्यथा नहीं ॥ सो इन दोनों सम,विषम धाराओंमें अनन्तर-द्विक(अत्यन्त समीप-द्विक)का बन्ध होताहै अन्यका नहीं जैसे दोगुणवाले स्निग्ध वा दोगुणवाले रूक्षका चारगुणवाले स्निग्ध वा चारगुणवाले रूक्षकेसाथ तथा तीन गुणवाले स्निग्ध वा रूक्षका पांचगुणवाले स्निग्ध वा रूक्षके साथ बन्ध होताहै अन्य किसीके साथ नहीं ऐसे औरऔर अधिकगुणवाली परमाणुओंका समझानो

हमारे यहां भी यही बात है परन्तु दिगम्बरों के पर्याप्त सम्बन्ध में भाष्यकारोंके तथा भाषाके टीकाकारोंके दो अधिक परमाणुओं द्वारा बन्धका उल्लेख किया है वह इसप्रकार है(क)पूज्यपादस्वामी श्रीसर्वार्थसिद्धिमें कुछ भी पाठान्तरमें भी इस आर्याछंदका नहीं किया है(ख)राजवार्तिकके रचयिताने पूज्यपाद स्वामीके मतका विशेषरूपसे उदाहरणों द्वारा समर्थन करदिया है इस आर्या छंदकी वृत्ति नहीं दी है ॥ प० पन्नालालजी दूनी व जयचन्दजी व पं० सदासुखजी और श्रीअमितगत्याचार्यने सम समधारा सम समगुणवाली अर्थात् २,४ ६ ८ १० १२,१४ आदिगुणवाली परमाणु ली हैं और विषम व विषमगुणवाली अर्थात् ३ ५ ७ ९,११ १३ १५ आदि गुणवाली परमाणु ग्रहण की हैं जैसाकि उनके यथाक्रम निम्नलिखित लेखोंसे प्रगट होता है।

स्निग्धके स्निग्धकरि बन्ध होय है। तहां दोयगुण अधिककरि होय है। तथा रूक्षके रूक्षकरि बन्ध होय है। सोभी दोगुण अधिककरि होय है बहुर स्निग्धके रूक्षकरि तथा रूक्षके स्निग्धकरि दीसे जघन्यगुण वर्जिकरि समगुण होऊ तथा विषमगुण होऊ। दोगुण अधिकही करि बन्ध है।अन्यकरि नाही है इस प्रकार स्निग्ध और रूक्ष इनके दोय दोय अंश प्रत्यक्ष बन्ध होनेमें कारण हैं। नाकरि द्व्यणुकपरमाणुनिके एक विशालता बन्ध पर्याय होते संते त्रि-गुणक आदि अनन्तानंत प्रदेश पर्यन्त स्कन्धनिकी उत्पत्ति होय है। ऐसा जानना। प०(पन्नालालजी दूनीने इस गाथाका उपयु क्तअर्थ किया है) ॥

स्निग्धके स्निग्धकरि दोगुण अधिककरि बन्ध होय है। तथा रूक्षके रूक्षकरि दोयगुण अधिककरि बन्ध होय है। जघन्यगुणवर्जिकरि समगुण होऊ तथा विषमगुण होऊ दोय गुण अधिक हीकरि बन्ध है अन्यकरि नाहीं है पंडित जयचन्दजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४८५

स्निग्ध परमाणुके स्निग्धपरमाणु दोयगुण अधिककरि बन्ध होय है॥ बहुर रूक्षपरमाणुके दोयगुणअधिक रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है ॥ बहुर स्निग्ध परमाणुके दोयगुण अधिक रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है॥ बहुर जघन्यगुण जो एकगुण तिस सहित परमाणुकरि बन्ध नहीं होय है॥ अर दोय च्यारि, छह आठ इत्यादिक समगुणके धारकनिकेहू बन्ध है। बहुर तीन पांच सात नव ग्यारह इत्यादिक विषमगुण धारकनिकेहू बन्ध होय है। परन्तु गुणके दोय अधिकता होय तिनहीके बन्ध है अन्यके नहीं है भावार्थ स्निग्धस्निग्धके बहुर रूक्षरूक्षके बहुर स्निग्धरूक्षके बहुर रूक्षस्निग्धके दोय गुण अधिक सम विषम होते बन्ध होय है अन्य हीन अधिकके बन्ध नहीं होय पंडित सदासुखजीकृत अर्थ प्रकाशिका प० २२७ और २२८ देखो॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण । लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण ॥ णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि बन्धो । जहण्णवज्जो विसमे समे वा ॥ १ ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण (=स्निग्धस्य स्निग्धेन द्वि अधिकेन)	=स्निग्धका स्निग्धद्वारा दो अधिक(गुणों)करि
लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण (=रूक्षस्य रूक्षेण द्वि-अधिकेन)	=रूक्षका रूक्षद्वारा दो अधिक(गुणों)करि(और)
णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि बन्धो (=स्निग्धस्य रूक्षेण उपैति बन्धः)	=स्निग्धका रूक्षद्वारा(दो अधिकगुणोंकरि)बंध होता है
जहण्णवज्जो विसमे समे वा (जघन्यवर्ज्यः विषमे समे वा)	=जघन्य(गुणवाली परमाणु) के छोड़दियेजानेपर परमाणुमें समधारा(दो-चार-छह-आठ दश इत्यादि गुणों)में हो अथवा विषमधारा तीन-पांच-सात-नौ-ग्यारह इत्यादि गुणोंमें हो (बंध होजाता)है

राजवार्तिक श्रुतसागरि टीका इत्यादिमें तथा गोम्मटसार (जीवकांड)में दिया हुआ है यहांतक कि श्वेताम्बर आम्नायके श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्वार्थवृत्ति जो उमास्वामिकृत तत्वार्थसूत्रपर है जो श्वेताम्बर आम्नायमें महत्त्वका ग्रन्थ है जिसमें बाईसमत्रआदि साक्षियाती श्लोकई उसमें भी यह गाथा ऐसे पायाजाता है कि "णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण । लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण ॥ णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि बन्धो जहण्णवज्जो विसमे समे वा" परन्तु उक्त सम्प्रदायके अनुकूल अर्थ यह है कि स्निग्धपरमाणुका स्निग्ध द्विगुण अधिककरि (बन्ध होता है) । रूक्षपरमाणुका रूक्ष परमाणु द्विगुण अधिककरि (बन्ध होता है) । स्निग्ध का रूक्षकरि(अर्थात् सजातीयोंका विजातीयोंका)बन्ध होता है (यहांपर दोगुण अधिककी आवश्य कता नहीं है विजातीय परमाणुओंका समानगुण होनेपरभी बन्ध होजाता है) जघन्यगुणकी परमाणुको छोड़ कर सममें और विषममें (दोनों)में बंध होता है । अब प्रश्न यह है कि यह गाथा पूज्य सर्वार्थसिद्धिवृत्ति तत्वार्थराजवार्तिक, गोम्मटसार तथा श्वेताम्बर आम्नायके ग्रंथोंमें कहांसे आया।

(उत्तर) यह गाथा किसी ऐसे प्राचीन ग्रन्थकी है जो तत्वार्थ सूत्रके रचयिता दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें माननीय था क्योंकि दोनों आम्नायवालोंके यहां इसका पाठ समानरूपसे मिलता है दिगम्बर आम्नायमें सबसे प्रथम जहांतक तत्वार्थ सूत्रसे हमको मालूम है श्रीपूज्य पाद स्वामीने इस सूत्रका लिया क्योंकि इनका समय संवत् १०८ अर्थात् पहली शताब्दीका पहुताविद्वानोंसे प्रतीत होता है इस विक्रमसंवत्से शालिवाहन अथवा शक संवत् चलानेवाले राजासे अभिप्राय है वह प्रतापी विक्रमादित्यके संवत्से १३५ वर्ष पीछे चला है । इसके पश्चात् श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने तत्वार्थ राजवार्तिकमें इसका उल्लेख किया इसकेभी पश्चात् श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामीने इसका तत्वार्थ श्लोकवार्तिकमें ग्रहण किया फिर श्रीनेमिचन्द्र आचार्यने गोम्मटसारमें इसको स्थान दिया क्योंकि उनका समय इतिहास अन्वेषियोंने ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें अथवा उससे कुछ पूर्व सिद्ध किया है समन्तभद्रके पीछे जहांतक संस्कृत भाष्योंसे संबन्ध है इसको श्रीश्रुतसागरसूरिने श्रुतसागरी टीकामें संवत् १५५० में स्थान दिया। इनका श्रीसिद्धसेन निश्चित समय ज्ञात नहीं है इससे कह नहीं सकते कि उन्होंने किस समयमें इसका अपनी भाष्यानुसारिणी तत्वार्थवृत्तिमें स्थान दिया। कहीं कहीं पर इसका उत्तरार्ध हवेदि दुराधिएण दुराहिएण इत्येव पाठ मिलता है सो आचार्योंकी अपनी अपनी प्रकृतिअनुकूल जो शब्द अथवा और उचित जान पड़ा उसका ग्रहण करके कुछ पाठमें हेर फेर करलिया परन्तु ग्रंथके अभिप्राय (और जो कहिये कि लगभग शब्दोंपरभी) कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु इसको संदेह नहीं है कि यह महत्वपूर्ण ग्रंथ किसी न किसी ऐसे ग्रन्थमें अवश्य विद्यमान है जिसको दोनों सम्प्रदायवाले मानकर सत्यप्रामाण्य करते॥

(१) इस आर्याछंदरूप वर्ण श्वेताम्बर आम्नायमें क्रमशः नहीं मिलता है और [illegible] ये शब्दोंसे मिलजाते प्रथम सोर्पसिद्धिके [illegible]

पूरवनुपादः-अधिकारात्‌।गुणशब्दः।सम्बध्यते। अधिकगुणौ।अधिकौ।इति॥	=प्रकरण(वश)से(इस सैंतीसवें सूत्रमें)गुणशब्द लगायागया है या अनुवर्तन कियागया है =जो अधिक(=अधिकौ) हैं वे अधिक दोगुण हैं(जैसे दोगुणवाली परमाणुसे चारगुणवाली परमाणु अधिक दोगुणवाली है,तीनसे पांचगुणवाली, चारसे छहगुणवाली, पांचसे सातगुणवाली, छहसे आठ गुणवाली, आदि ऐसे और भी दो अधिकगुणवाली परमाणु कहलाती हैं ॥

कारण यह है कि दोनों आम्नायवालोंने 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रका अर्थ भिन्न भिन्न किया है। हमारी आम्नायके अनुकूल गुणोंके समान संख्यामें होनेपर न तो सदृशपरमाणुओंका बन्ध होता है और न विसदृशपरमाणुओंका इसलिये हमारे यहांके पाठमें 'सम' शब्द इस सूत्रमें नहीं है और "द्वि अधिकादि गुणानां तु" सूत्रमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार केवल 'सदृशानां' की अनुवृत्ति "गुणसाम्ये सदृशानाम्" सूत्रसे आती है इसलिये उन्होंने अर्थ किया है कि सदृशों के लिये दोगुण अधिककी आवश्यकता है विसदृशपरमाणुओंका बन्ध चाहें वे समगुणधारक हों चाहें विषम गुणवाले हों जघन्य गुणवाली परमाणुके अतिरिक्त और विसदृशोंमें सबमें सर्वप्रकारसे बंध होजाता है परन्तु हमारे यहांके सिद्धान्तके अनुकूल 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रसे सदृशानाम् और विसदृशानां (=सदृशानाम् और विसदृशानाम्)अर्थात् सदृशोंकी और असदृशोंकी अनुवृत्ति "द्वि अधिकादि गुणानां तु" में ग्रहण करके यह अर्थ किया है कि दोगुण आदिसे अधिकगुणवाली सदृशपरमाणुका और दोगुण आदिसे अधिक गुणवाली विसदृश परमाणुओंका ही बन्ध होता है यदि दोगुण एक परमाणमें दूसरीसे अधिक न होंगे तो बन्ध कदापि नहीं होगा अब हमारे यहां समगुणवाली परमाणुओंका बन्ध नहीं है तब 'सम' शब्द सैंतीसवां सूत्रमें नहीं आये हैं ।

"गुणसाम्ये सदृशानाम् न" पाठकगण आपका कुछभी विचार हो मैं तो यही कहूंगा कि इस सूत्रकी रचना विचित्र और अस्फुट है वह कैसे? यदि इस सूत्रकाअर्थ इसी क्रमसे कियाजावे जैसेकि वह है तब अर्थके सम्बन्धमें श्वेताम्बराचार्योंके अनुकूल स्पष्टसे ध्वनि निकलतीहै यदि 'सदृशानां गुणसाम्ये न' इस क्रमसे अनुवाद कियाजावे तब दिगम्बराचार्योंके मतानुसार अर्थकी ध्वनि निकलतीहै जैसे गुणोंकी समानता या बराबरी होनेपर सदृशों का बन्धनहीं होताहै ध्वनि आती है कि विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी समानता होजानेपर होजाताहै यदि अर्थ किया जावे कि सदृशोंका गुणकी समानता होनेपर बन्ध नहीं होता है तब ध्वनि निकलती है कि गुणोंकी असमानतामें सदृशोंका भी बन्ध होजाता है इसी हेतुसे पूज्यपाद स्वामीने उत्तर दिया है कि 'गुणवैषम्ये संप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते' गुणोंकी विषमतामें बन्धके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें 'सदृशानां' लायागया है इसलिये कह सक्ते हैं कि उमा स्वामिना सूत्राणाम् विचित्रा हि कृतिः कृता अर्थात् उमा स्वामीके सूत्रोंकी रचना या बनावट विचित्र और अस्फुटही है ॥

श्वेताम्बर आम्नायमें बन्धसमाधिकौ पारिणामिकौ पाठ है इस कथनके समर्थनमें हम तत्त्वार्थराजवार्तिकसे इसी सूत्रके नीचे वार्तिक तीन उसकी वृत्तिके सहित उल्लेख करतेहैं"समाधिकौ चित्येपरेषां पाठः (=समाधिकौ इति अपरेषांपाठः)(=बन्ध होनेपर)सम(परिणमन)वा अधिक परिणामहोता है ऐसे अन्यअन्यआचार्यों का पाठहै।तत्त्वार्थराज॰सेवृत्ति"बन्धे समाधिकौपारिणामिकौ इत्यपरे सूत्रपठंति,द्विगुणस्निग्धस्यद्विगुणरूक्षोपिपरिणामकइति" =बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ इस प्रकार अन्य अन्य (आचार्य) सूत्रको पढ़ते हैं (यथा) "द्विगुणस्निग्धके द्विगुण रूक्ष भी परिणामका कर्ता है" पं॰ पन्नालाल दूनी अध्याय ५ पर्व १०२ ॥

॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च = बन्धे अधिकौ गुणौ पुद्गलौ(परमाणू वा स्कन्धौ)पारिणामकौच भवत ॥

सन्धार्थ — बन्धे(सति)अधिकौ(गुणौ) =और बंध होनेपर दो अधिक गुणवाला

पुद्गलौ (=परमाणू वा स्कन्धौ) =पुद्गल(=परमाणु वा स्कंध (हीन गुणवाले परमाणु वा स्कन्धको अपने रूपमें)

पारिणामिकौ च भवतः =परिणामावनवाला होता है अर्थात् दो गुण आदि स्निग्ध वा रूक्ष पुद्गलके चतुर्गुण आदि स्निग्ध वा रूक्ष गुणरूपपुद्गलस्वरूप पारिणामिकता होतीहै। भावार्थ जैसे एक परमाणु वा स्कंध में दोगुण स्निग्धताके होंय और दूसरे परमाणु वा स्कंधमें चारगुण रूक्षपनाके होंय तो दोनोंके बंध होनेपर अधिकगुणरूप जो रूक्ष पुद्गल (=परमाणु वा स्कंध) तिसरूप हीनगुणरूप जो स्निग्धपरमाणु वा स्कंध है सो होजाता है। इसी प्रकार रूक्षसे स्निग्धमें बंध होय तो, रूक्षसे रूक्ष मिले तो, और स्निग्धसे स्निग्धमें बन्ध होय तो दो अधिकगुण जिस परमाणु अथवा स्कन्धमें होय तिसरूप हीनगुणवाला परमाणु वा स्कंध परिणामि जाता है और इस परिणमन अथवा पलटनेकी अवस्थामें प्रथम और दूसरी अवस्थाओंका अभाव होकर एक तीसरी भिन्न अवस्था प्रगट होजाती है। इस प्रकार अधिकगुणके और हीनगुणके एक स्वरूपपना होता है ॥

धारण करके बाधक निवारण करें। ऐसा ही तत्त्वार्थ राजवार्तिक, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ वृत्ति (जो श्वेताम्बरीय भाष्यों)में भी कहा है जैसाकि निम्न उद्धृत वाक्यों से प्रगट है।

"गुणग्रहणं व्यावृत्तिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं = सूत्रमें) गुणशब्द(निषेधको)हटानेको और दूर करनेके तथा बंधकी विधिको विशेष अवस्थामें जतलानेकेलियेहै।" ऐसा तत्त्वार्थ राजवार्तिक,वार्तिक दूसरी।

"गुणशब्दः क्रियमाणः प्रतिषेधं व्यावर्तयति-बन्धं च विशेषयति =(सूत्रमें) गुणशब्द ("न जघन्यगुणानाम्" "गुणसाम्ये सदृशानाम्" इन दो सूत्रोंमें) किये हुए निषेधको हटाता है दूर करता है और बन्धका विशेष अवस्था (दोगुण अधिकवाली)में विधान करता है "अत्र गुणग्रहणं व्यावृत्तिविशेषणार्थं प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धं च विशेषयति (सभाष्य० पृ० ११६ भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति पत्र ४३०) "इस सूत्रमें द्वि अधिकादिगुणानां तु यहां जो गुणशब्द गर्भित है वह व्यावृत्ति तथा विशेषणके लिये है अर्थात् न जघन्यगुणानां जो गुणसाम्ये सदृशानाम् इत्याकारक प्रतिषेधको तो व्यावृत्ति करता है और बन्ध को विशेषित करता है।("सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११६ से उद्धृत)

(१) मुद्रित तत्वार्थ श्लोकवार्तिकमें 'च' नहीं है परन्तु हस्तलिखितमें है। बहुधा प्रतियोंमें उपयुक्त पाठहै।श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०पृ०११६में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ वृत्ति पृ०४३१में "बन्धेसमाधिकौपारिणामिकौ" = बन्धे सति समगुणस्यसमगुण-परिणामकोभवति।अधिकगुणोहीनस्येति। बन्ध होनेपर यदि समगुण है तब तो समगुणका समगुणवालाही परिणाम होगा और हीनगुणका अधिक गुणवाला परिणाम होगा। इस पाठमें भेदका

उक्तेन विधिना बंधे पुन सति ज्ञानावरणादीनां कर्मणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिस्थितिरुपपन्ना भवतिउत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्त पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह-

॥ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

पुनः॰उक्तेन॥विधिना॥बन्धे॥सति॥ =बहुरि कथित रीतिकरि बन्धानपर अर्थात् अन्यभधिकर एकमेकरूप होतेहुए बन्ध होनेपर तीसरी अवस्थाके उपादान करनेपर

ज्ञानावरण आदीनाम्॥कर्मणाम्॥त्रिंशत् =ज्ञानावरणादिक कर्मोंकी तीस

सागरोपम-कोटी-कोट्यादि-स्थितिः॥उपपन्ना॥भवति =कोड़ाकोड़ी आदिक सागरप्रमाण स्थिति उत्पन्न होती है

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्॥सत्॥इति॰द्रव्यलक्षणम्॥ =उत्पत्ति-नाश स्थिरतास्वरूपसहित =युक्त)सत् है ऐसा द्रव्यका लक्षण

उक्तम्॥पुनः॰अपरेण॥प्रकारेण॥द्रव्य-लक्षण प्रतिपादन अर्थम्॥आह=(सूत्र ३०में कहागयाहै)अन्यप्रकारकरि द्रव्यका लक्षणकथनकेलिए कहतेहैंकि

सूत्रम्—(१ गुणपर्याय वद्द्रव्यम्(२)(३)॥ ३८ ॥ = गुणपर्यायवत्-द्रव्यम् अस्ति ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—गुण-पर्यायवत्॰द्रव्यम्॥अस्ति। =गुण-पर्याय(स्वभाव-स्वरूप)वाला(=वत्)द्रव्य है,अथवा गुणवान् पर्यायवान् द्रव्यहै, गुण और पर्यायोंकरि युक्त(सहित)द्रव्य है अर्थात् गुण और पर्याय जिसके हैं वा जिसमें हैं वही द्रव्य है। भावार्थ द्रव्यकी अनेक परिणति होनेपर भी जो द्रव्यसे भिन्न न हो द्रव्यके साथ नित्य रहै सो तो गुण है। और क्रमवर्ती होय पलटनरूप होय सो पर्याय है। द्रव्यके जितने गुण हैं वे द्रव्यसे कभी भिन्न नहीं होवे हैं॥ समस्त गुणोंका समूह (=समुदाय)ही द्रव्य है। द्रव्यकी अनेक पर्यायें (अवस्थायें)पलटते हुए भी गुण कभी नहीं पलटत। द्रव्यके नित्य साथ वा अविनाभावी हैं। इसी कारण गुणोंको अन्वयी कहते हैं और पर्यायोंको व्यतिरेकी(क्योंकि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं)

(१) गुणपर्यायवत द्रव्यम =गुणवत्वे सति पर्यायवत्वंद्रव्यत्वम् "(सभाष्य॰ पृष्ठ १४०)गुणवान् होते सन्ते जिसमें कोइ न कोई पर्याय हो वह द्रव्यहै (२)वत् =वाला सहित युक्त संयत संयुक्त=जैसे गुणवत् गुणवाला गुणसहित,गुणयुक्त गुणसंपन्न गुणसंयुक्त(३)३८वां सूत्रमें दोबारा द्रव्यका लक्षण क्यों कहा जब २९वां सूत्रमें सत्द्रव्यलक्षणम् कहा है ? (उत्तर)पहिले सत् लक्षण कहा सो तो मुख्य द्रव्यका लक्षण है सो(सत्) एकहै सो सामान्य है, अभेदरूपहै इसका महान् द्रव्यभी कहिये। जातैं सर्ववस्तु हैं सो सत्ताको उलंघि नहीं वर्तैं है।सर्वद्रव्य सर्वपर्याय सत्ताके विशेषहैं जिसको प्रमाणगोचर तथा नयगोचर कहिये सा सर्व सत्तामयी है। बहुरि द्रव्य अनेक हैं तिनका भिन्न व्यवहार करनेका यह गुणपर्याय सहितपना दूसरा लक्षण कहा सो यह लक्षण न कहिये तो द्रव्योंके गुणपर्याय न्यारे न्यारे हैं, ते द्रव्य न ठहरै तब सर्वथा सत्ही द्रव्य ठहरे। चेतन अचेतन आदि द्रव्योंका लोप होय तब संसार मोक्ष आदि व्यवहारका भी नाश होय तिससे दूजे लक्षण का कथन यह है ॥

भावान्तरोपादान परिणामकत्व क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नो गुडोऽधिकमधुररस परीताना रेण्वादीना स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिक । तथाऽन्योऽप्यधिकगुण अल्पीयस पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्ष परिणामको भवति । तत पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तर प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते ॥ इतरथा हि शुक्लकृष्णतन्तुवत् सयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत ॥

(भाव अन्तर उपादान)॥(परिणामकत्वं)॥(क्लिन्नगुडवत्)=अन्य अवस्था ग्रहणकरनेको परिणामकता अर्थात् पलटाव गीले गुड के सदृश है
यथा॰(क्लिन्न)(गुड)(अधिकमधुररस)(परीतानाम्) =जैसा बहुत मीठे रसवाला गीला गुड गिरेहुये
(रेणु आदीनाम्)(स्वगुण उत्पादनात्)(पारिणामिक)(तथा=रेणुआदिकके अपना मधुररस) गुणके उपजावनेसे परिणमावनेवाला होता है तैसे
(अन्य)(अपि॰अधिकगुण)(अल्पीयस)(पारिणामिक)=अन्य भी अधिकगुणवाला अल्पगुणवालेका अपनेरूपमें परिणमावनेवाला होता है
इति॰ कृत्वा॰ द्विगुण आदि-स्निग्धरूक्षस्य(चतुर्गुण =ऐसें करि (वा ऐसें करके) दो गुणआदिक स्निग्धरूक्षका चार गुण
आदि-स्निग्धरूक्ष) परिणामक॰भवति =आदिक स्निग्ध-रूक्षपुद्गल अपने स्वरूपमें परिवर्तनकरनेवाला वा पलटनेवाला होवाहै
तत॰पूर्व अवस्था प्रच्यवन-पूर्वकम्॥(तार्तीयिकम्)॥ =तिस(परिणामकता)से पहिलीअवस्थाका अभाव वा त्यागपूर्वक तीसरी(प्रच्यवन=अच्यवन)
अवस्थान्तरम्॥(प्रादुर्भवति)(इति एकत्वम्)॥(उपपद्यते)=अन्य अवस्था प्रगट होती है ।ऐसे एकता वा एकपना अर्थात् एकस्वरूपपना उपजताहै
इतरथा॰हि॰ =औरप्रकारसे तो अर्थात् यदि दो परमाणु वा स्कंधके बन्ध होनेपर एकता न हो तो
शुक्ल-कृष्ण-तन्तुवत्(संयोगे)(सति)(अपि॰अपरिणामकत्वात्=सेत काले ततुके सदृश सयोग होनेपर भी एकरूपमें नीरक्षीरके सदृशपलटाउ नहोनेसे
सर्वम्॥(विविक्त-रूपेण)॥(अवतिष्ठेत) =समस्त पृथक् पृथक् रूपकरि ही तिष्ठै, दीसैं ॥ (अवतिष्ठेत है नकि अवतिष्ठते)

(१ सर्वार्थसिद्धि [illegible] ... के अनुसार भावान्तरोपादान परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् । यथा क्लिन्नो गुडोऽधिक मधुर रस परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिक । तथान्योऽप्यधिक-गुण अल्पीयस पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्ष परिणामको भवति । ततः पूर्वावस्था प्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते । इतरथा हि शुक्लकृष्ण तन्तुवत् संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत [illegible]

तत्त्वार्थ राजवार्तिकका शुद्धपाठ ... [illegible] ... भावान्तरापादानं परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नगुडोऽधिक मधुर रस ... [illegible] ... तथा अन्योऽप्यधिक गुणः अल्पीयसः परिणामक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षपरिणामको भवतीति ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते इतरथा हि शुक्लकृष्ण तन्तुवत् संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात् सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत [illegible] ... किया है । पृष्ठ ११८में भी परिणामक=पारिणामिक)

उक्तेन विधिना बंधे पुन सति ज्ञानावरणादीनां कर्मणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिस्थितिरुपपन्ना भवतिउत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्त पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह-

॥ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

पुनः॰उक्तन॥विधिना॥बन्धे॥सति॥	=बहुरि कथित रीतिकरि बन्धहोनपरअर्थात् अन्यअधिकऽएकमेकरूप होतेहुए बन्ध होनेपर तीसरी अवस्थाके उपादान करनेपर
ज्ञानावरण आदीनाम्॥कर्मणाम्॥त्रिंशत्	=ज्ञानावरणादिक कर्मोंकी तीस
सागरोपम-कोटी-कोट्यादि-स्थितिः॥उपपन्ना॥भवति	=कोड़ाकोड़ी आदिक सागरप्रमाण स्थिति उत्पन्न होती है
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्॥सत्॥इति॰द्रव्यलक्षणम्॥	=उत्पत्ति-नाश-स्थिरतास्वरूपसहित =युक्त)सत् है ऐसा द्रव्यका लक्षण
उक्तम्॥पुनःअपरेण॥प्रकारेण॥द्रव्य-लक्षण-प्रतिपादन अर्थम्आह	=(सूत्र३०मेंकहाथारे)अन्यप्रकारकरि द्रव्यका लक्षणकहनेकेलिये कहतेहैंकि

सूत्रम्—[1] गुणपर्याय वद्द्रव्यम्[2][3]॥ ३८ ॥ = गुणपर्यायवत-द्रव्यम् अस्ति ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—गुण-पर्यायवत्॰द्रव्यम्॥ अस्ति। =गुण-पर्याय(स्वभाव-स्वरूप,वाला(=वत्)द्रव्य है,अथवा गुणवान् पर्यायवान् द्रव्यहै, गुण और पर्यायोंकरि युक्त(सहित)द्रव्य है अर्थात् गुण और पर्याय जिसकै हैं वा जिसमें हैं वही द्रव्य है। भावार्थ द्रव्यकी अनेक परिणति होनेपर भी जो द्रव्यसे भिन्न न हो द्रव्यके साथ नित्य रहै सो तो गुण है। और क्रमवर्ती होय पलटनरूप होय सो पर्याय है। द्रव्यके जितने गुण हैं वे द्रव्यसे कभी भिन्न नहीं होते हैं॥ समस्त गुणोंका समूह (=समुदाय)ही द्रव्य है। द्रव्यकी अनेक पर्यायें (अवस्थायें)पलटते हुए भी गुण कभी नहीं पलटते। द्रव्यके नित्य साथ वा अविनाभावी हैं। इसी कारण गुणोंको अन्वयी कहते हैं और पर्यायोंको व्यतिरेकी(क्योंकि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं)

(१) गुणपर्यायवत् द्रव्यम् = गुणवत्त्व सति पर्यायवत्त्वंद्रव्यत्वम् (सभाष्य॰ पृष्ठ १४०)गुणवान् हाते सन्ते जिसमें कोई न कोई पर्याय हो वह द्रव्यहै (२)वत् = वाला सहित युक्त संपन्न संयुक्त—जैसे गुणवत् गुणवाला गुणसहित,गुणयुक्त गुणसंपन्न गुणसंयुक्त(३)३८वां सूत्रमें दोबारा द्रव्यका लक्षण क्यों कहा जब २९वां सूत्रमें सत्द्रव्यलक्षणम् कहा है? (उत्तर)पहिले सत लक्षण कहा सो ता शुद्ध द्रव्यका लक्षण है सो(सत्) एकहै वा सामान्य है अभेदरूपहै इसका महान् द्रव्यभी कहिये। जातैं सर्ववस्तु हैं सो सत्ताको उलंघि नाहीं वर्ते है।सर्वद्रव्य सर्वपर्याय सत्ताके विषयवर्ती जिससे ज्ञानगोचर तथा वचनगोचर कहिय सो सर्व सत्तामयी है। बहुरि द्रव्य अनेक हैं तिनका भिन्न व्यवहार करनेका यह गुणपर्याय सहितपना दूसरा लक्षण कहा सो यह लक्षण न कहिये तो द्रव्योंके गुणपर्याय न्यारे न्यारे हैं ते द्रव्य न ठहरै तब सर्वथा सत्ही द्रव्य ठहरे।चेतन अचेतन आदि द्रव्योंका लोप होय तब संसार मोक्ष आदि व्यवहारका भी लोप होय जिससे यह लक्षण भी कहना युक्त है॥

भावान्तरोपादान परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नो गुडोऽधिकमधुररस परीताना रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिक । तथाऽन्योऽप्यधिकगुण अल्पीयस पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्ष परिणामको भवति । तत पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते ॥ इतरथा हि शुक्लकृष्णतन्तुवत् सयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत ॥

(१)भाव अन्तर उपादानं॥परिणामकत्वं॥क्लिन्नगुडवत्=अन्य अवस्था ग्रहणकरनेको परिणामकता अर्थात् पलटाव गीले गुड के सदृश है
यथा॥क्लिन्नः॥गुडः॥अधिकमधुररसः॥परीतानाम्॥ =जैसा बहुत मीठे रसवाला गीला गुड गिरेहुये
रेण्वादीनाम्॥स्वगुण-उत्पादनात्॥पारिणामिकः॥तथा=रेतआदिकके अपना मधुररस) गुणके उपजावनेसे परिणमावनेवाला होता है तैसे
अन्यः॥अपि॥अधिकगुणः॥अल्पीयसः॥पारिणामिकः॥=अन्य भी अधिकगुणवाला अल्पगुणवालेका अपनेरूपमें परिणमावनेवाला होता है
इति॥ कृत्वा॥द्विगुण आदि स्निग्धरूक्षस्य॥चतुर्गुण =ऐसें करि (वा ऐसें करके) दो गुणआदिक स्निग्धरूक्षका चार गुण
आदि-स्निग्धरूक्ष॥ परिणामकः॥भवति॥ =आदिक स्निग्ध-रूक्षपुद्गल अपने स्वरूपमें परिवर्तनकरनेवाला वा पलटनेवाला होताहै
ततः॥पूर्व अवस्था प्रच्यवन-पूर्वकम्॥तार्तीयिकम्॥ =तिस(परिणामकता)से पहिलीअवस्थाका अभाव वा त्यागपूर्वक तीसरी(प्रच्यव=प्रच्यवन)
अवस्थान्तरम्॥प्रादुर्भवति॥इतिएकत्वम्॥उपपद्यते॥=अन्य अवस्था प्रगट होती है ।ऐसे एकता वा एकपना अर्थात् एकस्वरूपपना उपजताहै
इतरथा॥हि॥ =औरप्रकारसे तो अर्थात् यदि दो परमाणु वा स्कंधके बन्ध होनेपर एकता न हो तो
शुक्ल-कृष्ण-तन्तुवत्॥संयोगे॥सति॥अपि॥अपरिणामकत्वात्=स्वेत काले ततुके सदृश संयोग होनेपर भीएकरूपमें नीरक्षीरके सदृशपलटाव नहोनेसे
सर्वम्॥विविक्त-रूपेण॥अवतिष्ठेत॥ =समस्त पृथक् पृथक् रूपकरि ही तिष्ठै, तिष्ठें ॥ (अवतिष्ठेत है नकि अवतिष्ठते)

(१ सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी छपी प्रतियों के [illegible] मूलपाठसूत्रोंके अनुसार भावान्तरोपादान परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत्। यथा क्लिन्नोगुडोऽधिक मधुर रसः परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिकः। तथान्योऽप्यधिकगुण । अल्पीयसः पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षः परिणामको भवति । ततःपूर्वावस्था प्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते। इतरथा हि शुक्लकृष्ण तन्तुवत् संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत
तत्त्वार्थ राजवार्तिकका शुद्धपाठ आचार पांचप्रतियोंका मिलाकर लिखागयाहै भावान्तरोपादान परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नगुडोहि मधुर रस पतितानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात्परिणामकः तथाऽन्योऽप्यधिक गुणः अल्पीयसः परिणामक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षपरिणामकोभवतीति ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरमाप्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते इतरथा हि शुक्लकृष्ण तन्तुवत्संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात् सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत
(२)[illegible] पारिणामिकः के स्थानमें परिणामक लिया है। पृष्ठ १२५में यद्यपि परिणामकः = पारिणामिकः।

उक्तेन विधिना बंधे पुन सति ज्ञानावरणादीना कर्मणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिस्थितिरुपपन्ना भवतिउत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्त पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह-

॥ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

पुनः।उक्तेन।विधिना।बन्धे।सति।	=बहुरि कथित रीतिकरि बन्धहोनेपरअर्थात् अल्पअधिकएकमेकरूप होतहुए बन्ध होनेपर तीसरी अवस्थाके उपादान करनेपर
ज्ञानावरण आदीनाम्।कर्मणाम्।त्रिंशत्	=ज्ञानावरणादिक कर्मोंकी तीस
सागरोपम-कोटी-कोट्यादि-स्थितिः।उपपन्ना।भवति	=कोड़ाकोड़ी आदिक सागरप्रमाण स्थिति उत्पन्न होती है
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्।सत्।इति।द्रव्यलक्षणम्।	=उत्पत्ति-नाश-स्थिरतास्वरूपसहित =(युक्त)सत् है ऐसा द्रव्यका लक्षण
उक्तम्।पुनः।अपरेण।प्रकारेण।द्रव्य-लक्षण-प्रतिपादन अर्थम्।आह	=(सूत्र३०में कहागयाहै)अन्यप्रकारकरि द्रव्यका लक्षणकहनेके लिएकहते हैं कि

सूत्रम्—[1] गुणपर्याय वद्द्रव्यम्[२][३]॥ ३८ ॥ = गुणपर्यायवत-द्रव्यम् अस्ति ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थ—गुण-पर्यायवत्।द्रव्यम्।अस्ति।	=गुण-पर्याय(स्वभाव-स्वरूप)वाला(=वत्)द्रव्य है,अथवा गुणवान् पर्यायवान् द्रव्यहै, गुण और पर्यायोंकरि युक्त(सहित)द्रव्य है अर्थात् गुण और पर्याय जिसके हैं

या जिसमें हैं वही द्रव्य है। भावार्थ द्रव्यकी अनेक परिणति होनेपर भी जो द्रव्यसे भिन्न न हो द्रव्यके साथ नित्य रहै सो तो गुण है। और क्रमवर्ती होय पलटनरूप होय सो पर्याय है। द्रव्यके जितने गुण हैं वे द्रव्यसे कभी भिन्न नहीं होते हैं॥ समस्त गुणोंका समूह (=समुदाय)ही द्रव्य है। द्रव्यकी अनेक पर्यायें (अवस्थायें)पलटते हुए भी गुण कभी नहीं पलटते। द्रव्यके नित्य साथ या अविनाभावी हैं। इसी कारण गुणोंको अन्वयी कहते हैं और पर्यायोंको व्यतिरेकी(क्योंकि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं)

(१) गुणपर्यायवत् द्रव्यम = गुणवत्वे सति पर्यायवत्वद्रव्यत्वम् (सभाष्य० पृष्ठ १४०)गुणवान् वाले सवत जिसमें कोई न कोई पर्याय हो वह द्रव्यहै (२)वत् = वाला सहित युक्त सपक्ष सपृक्त—जैसे गुणवत् गुणवाला गुणसहित,गुणयुक्त गुणसंपन्न गुणसपृक्त(३)३८वां सूत्रमें दोबारा द्रव्यका लक्षण क्यों कहा जब २९वां सूत्रमें सतद्रव्यलक्षणम् कहा है? (उत्तर)पहिले सत् लक्षण कहा सो तो मुख्य द्रव्यका लक्षण है सो(सत्) एकही सा सामान्य है, अभेदरूपहै इसका महान् द्रव्यभी कहिये। जातैं सर्ववस्तु हैं सो सत्ताको उलंघि नाहीं वर्तैं है।सर्वद्रव्य सर्वपर्याय सत्ताके विषयहैं जिसको ज्ञानगोचर तथा वचनगोचर कहिये या सर्व सत्तामयी है। बहुरि द्रव्य अनेक हैं तिनका भिन्न व्यवहार करनेका यह गुणपर्याय सहितपना दूसरा लक्षण कहा सो यह लक्षण न कहिये तो द्रव्योंके गुणपर्याय न्यारे न्यारे हैं, व द्रव्य न ठहरै तब सर्वथा सत्ही द्रव्य ठहरे।चेतन अचेतन आदि द्रव्योंका लोप होय तब संसार मोक्ष आदि व्यवहारका भी लोप होय [illegible]

गुणाश्च पर्यायाश्च गुणपर्याया तेऽस्य सतीतिगुणपर्यायवद्द्रव्यम्॥ अत्र मतोरुत्पत्तावुक्त एव समाधि । कथंचित् भेदोपपत्तेरिति। केगुणा केपर्याया । अन्वयिनोगुणा व्यतिरेकिण पर्याया । उभयैरुपेतंद्रव्यमिति। उक्तंच

पदच्छेद सहित अन्वयानुवाद।–गुणाः॥ च॥ पर्यायाः॥ च॥ गुण-पर्यायाः॥ =बहुरि(=च) गुणहैं और(=च)पर्यायें हैं, 'गुणपर्यायाः'ऐसा वाक्य (द्वन्द्वसमासमें) है
ते॥ अस्य॥ संति॥ इति॥ गुणपर्यायवत्॥ द्रव्यम्॥ =वे (गुण-पर्याय जिसके हैं ऐसा 'गुण-पर्यायवत् द्रव्यम्' सत्र हुआ ।
अत्र॥ (¹)मतो॥ उत्पत्तौ॥ उक्त॥ एव॥ समाधि॥ =यहां मतुप् मत्=वत्)प्रत्ययकी उत्पत्ति विषय)में(एव)कथित वा कहाहुआ ही समाधान है
कथंचित्॥ भेद उपपत्ते॥ इति॥ =कथंचित्भेदकी युक्ति वा साधन(=उपपत्तेः)से(मतुप् प्रत्ययके)एसाहै अर्थात् जिस वस्तुके (भावात्मक शब्दके)साथ मतुप् (मत्=वत् ,प्रत्यय लगायाजाताहै वो कभी तो भेदपनासेएक वस्तुको दूसरी वस्तुसे भिन्न दिखाता होता है और कथंचित् अभेद विवक्षासे पृथक् न बतानेके लियेभी(मतुप् प्रत्यय) लाते हैं। जैसे "दण्डवान् देवदत्त" यहांपर देवदत्त मनुष्य है सो अन्य वस्तु है और दण्ड अन्य वस्तु है, भेद विवक्षामें मतुप्(प्रत्यय)है। 'सारवान् स्तम्भ'में स्तम्भसे सार पृथक् नहीं।स्तम्भ और सार(=छोड़ा)अथवा वह वस्तु जिसका स्तम्भ हो पृथक पृथक नहीं रहती हैं तौभी मतुप् प्रत्यय अभेदपनाके अर्थमें वा एकपनाके अर्थमें लाये हैं तैसे ही द्रव्य है सा अपने 'गुणपर्यायोंसे भिन्नभिन्न नाहिं' । "गुणपर्याय बिनाद्रव्य नहीं"पं० सदासुखकीकृता तत्त्वार्थसूत्र(लघु)टीका पृष्ठ २४॥
के॥ गुणा॥ के॥ पर्याया॥ अन्वयिन॥ गुणा॥ =गुण क्या हैं ? पर्यायें क्या हैं ? अन्वयी अथवा नित्य साथ रहनवाले गुण हैं अर्थात् जो द्रव्यसे किसी काल और किसी अवस्थामें पृथक् नहीं होते हैं वे गुण, सदैव (नित्य) जोड़रूप साथही रहते हैं । वे सबगुण कदापि नहीं पलटते हैं । उन गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है वे द्रव्यमें एकमेकतन्मयहैं
व्यतिरेकिण॥ पर्याया॥ =पलटनेवाली वा भिन्न भिन्न रूपमें होनेवाली पर्यायें हैं अर्थात् द्रव्यकी अवस्थायें समय समयपर क्रमवर्ती होय पलटती रहतीहैं अथवा पर्यायेंहैं वे द्रव्यकाविकार(=क्रमपरिणाम,हैं
उभयै॥ उपेतम्॥ द्रव्यम्॥ इति॥ उक्तम्॥ च॥ =दोनों(गुणों तथा पर्यायों)करि युक्त (=उपेतं)द्रव्य है कहाभी गया है कि

(१ 'मत्' अब विशेषण है तब [illegible] जाता है "मतो" [illegible] रूप है। यह एक प्रत्यय है जो सबके पश्चात् 'सम्बन्धार्थ' में अर्थात् 'वाला [illegible] सहित युक्त सम्पन्न' इन अर्थों का वाचक होताहै जैसे विद्यावत (=विद्यावाला विद्यासंयुक्त,विद्यासहित विद्यायुक्त विद्यासंपन्न)॥ यदि [illegible] आजाय तो वर्तमान कृदन्त बनजाता है जैसे 'कृत से कृतवत् (काम करचुकनेवाला)॥ दूसरे जब अव्यय होता है तब सदृश वा समान अर्थ में आताहै जैसे रामवत् (रामके सदृश वा समान)[illegible] सीधा नहीं [illegible] वाला)इसको यहां द्वितीय अर्थ से प्रयोजन नहीं है अब प्रश्न यह है कि मतुप् (=मत्) [illegible] 'म' का 'व' में कैसे परिवर्तन होजाता है ॥ अष्टाध्यायी ८-२-९ सूत्रमें गणपठित यवादि [illegible] [illegible] [illegible] म् व [illegible] तो मतुप(मत्)के म् का [illegible] व् हो । यहांपर 'मत्' के स्थानमें [illegible] [illegible] पृष्ठ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

गुणइदि दव्वविहाणं दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो। तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं इति एतदुक्तं भवति-द्रव्यं द्रव्यान्तराद्येन विशिष्यते स गुण। तेन हि तद्द्रव्यं विधीयते। असति तस्मिन् द्रव्यसंकरप्रसंग स्यात्॥ तद्यथा-जीव पुद्गलादिभ्यो ज्ञानादिभिर्गुणैर्विशिष्यते पुद्गलादयश्च रूपादिभिः। ततश्चाविशेषे संकर स्यात्॥

(१ गुणो इदि दव्वविहाणं (गुणः इति द्रव्यविधानम्) =गुण ऐसा द्रव्यका विधान है अर्थात् गुणका समुदाय सो द्रव्य है

दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो (द्रव्य-विकारः हि पर्यायः भणितः) =द्रव्यके विकारही(=हि वा क्रमपरिणामही पर्याय कहीजाती है अर्थात् द्रव्यका क्रमरूपसे एक अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना सो पर्यायकहीजाती है

(२ तेहि अणूणं दव्वं (तेभ्यः अन्यूनम् द्रव्यम्) =तिन(गुण तथा पर्यायों)करि सहित द्रव्य है

अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं (अयुतप्रसिद्धं भवेत् नित्यम्) =अयुत प्रसिद्ध अर्थात् संयोगरूप नहीं है तदात्मक स्वरूप है(और)नित्य है॥ (द्रव्य अपने विशेष लक्षणको कदापि नहीं छोड़ताहै सारांश गुणपर्यायोंकरि सहित द्रव्य है तदात्मक स्वरूप है कभी विशेष लक्षणको नहीं छोड़ती है)

इति एवत् उक्तम् भवति द्रव्यम् =इस प्रकार या कथन का अर्थ होता है कि (एक)द्रव्य

द्रव्यान्तरात् येन विशिष्यते =अन्यद्रव्यसे जिसकरि विशेषित कीजाती है अर्थात् विशेषरूप होकर भिन्न दीसती है

सः गुणः तेन हि तद् द्रव्यम् विधीयते =वह गुण है। तिस(गुण)करिही वहद्रव्यविधान कीजाती है वा व्यवस्थित कीजाती है

असति तस्मिन् द्रव्य-संकर-प्रसंगः स्यात् =तिस(गुण)के न होनेपर(=असति द्रव्यके पलटने [illegible] 'एकता'का प्रसंग होजाय

तद्यथा जीव-पुद्गलादिभ्यः ज्ञानादिभिः गुणैः =जैसे जीवद्रव्य पुद्गलादिक(द्रव्यों)से ज्ञानादिक गुणोंकरि

विशिष्यते पुद्गलादयः च रूपादिभिः =न्यारा दीखता है और पुद्गलादिक रूपादि (गुणों)करि(जीवसे न्यारे जानेजाते हैं

ततः च अविशेषे =और(ज्ञानादि और रूपादिक गुणोंके) विशेषन होनेमें तो(=ततः)(एक द्रव्य दूसरेमें

संकरः स्यात् =पलटजाय अर्थात् जो जीवद्रव्य ज्ञानादिकगुणोंकरि और पुद्गलद्रव्य रूपादि गुणोंकरि

(१) प्राकृतमें 'गुण' नहि 'गुण गुणः' प्रथमाविभक्ति एकवचन पुल्लिंग 'रामा' शब्दवत् अकारान्त है। (प्राकृत सुबन्त कौमुदी पृष्ठ १७२)

(२) हि=निश्चये निश्चय समाधाने निश्चयार्थ (प्राकृत व्याकरण हरिषेणकृत पृष्ठ १३३) यहाँ पर निश्चय करके ही अर्थमें है।

(३) तेहि=तेभ्यः, इकारान्त पुल्लिंग तद् शब्दकी पंचमी विभक्ति बहुवचन है (प्राकृत सुबन्तकौमुदी पृष्ठ १८३)

तद्यथा-परस्परविलक्षणानां समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्य सर्वाभावः परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥ यदिदं रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । ततः समुदायोऽनर्थान्तरभूतः ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूतः समुदायः स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा॰परस्पर-विलक्षणानाम्॥	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुणपर्याय)निका
समुदाये॥सति॥समुदायस्य॥एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्॥	=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कथंचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व-अभावः॥	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परतः॰अर्थान्तरभूतत्वात्॥यत्॥इदम्॥	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम्॥तस्मात्॥अर्थान्तरभूताः॥रस-आदयः॥	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः॰ समुदायः॥अनर्थान्तरभूतः॥यः॥च॰	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्यः॥अर्थान्तरभूतात्॥रूपात्॥	=रसादिक से भेदरूप होनेसे या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूतः॥समुदायः॥सः॥कथं॰रसादिभ्यः॥	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः॥न॰भवेत्॥ततः॰च॰रूपमात्रम्॥	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवके राग, द्वेष क्रोध मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षट्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीना च रूपादय ॥तेषा विकारा विशेषात्मना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीवो मंद इत्येवमादय । तेभ्योऽन्यत्व कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जायें तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय वा एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्रव्यका दूसरेद्रव्यमें पलटाव होजावे, पूर्वोक्त विशेष गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहे तो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहे तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरे।

तत॰सामान्य अपेक्षया॰ अन्वयिन॰ज्ञान =वहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले या सदैवसाथरहनेवाले(=अन्वयिनः)ज्ञान

आदय॰जीवस्य॰गुणा ॥ पुद्गल-आदीनाम्॰च॰ =आदिक जीवके गुण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)

रूप-आदय॰तेषाम्॰विकारा॰ =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोड़कर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेष आत्मना॰भिद्यमाना॰पर्याया॰ ॥घटज्ञानम्॰ =विशेष स्वरूपकरिके भेदरूप हुए ते पर्याय हैं (जैसे)घड़ेका ज्ञान

पटज्ञानम्॰क्रोध॰मान॰गंध॰वर्ण॰तीव्र॰ =कपड़ेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मंद॰इत्येवम्॰आदय॰ =मंद इत्यमरु आदि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घड़ेका ज्ञान कपड़ेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध-रूप-तीव्र-मंद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्य॰अन्यत्वम्॰ ॥कथंचित्॰आपद्यमान॰ =तिन(गुण पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदाय॰द्रव्य व्यपदेश-भाक्॰ =समुदाय द्रव्यनामका प्राप्तकरनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेद रूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३४५)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होतीहै(संस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२)

यदि॰हि॰सर्वथा॰समुदाय॰ अनर्थान्तरभूत॰ =यदि सर्वप्रकारसेही(=हि)समुदाय(उनगुणपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्थांतरभूत)

एव॰स्यात्॰सर्व-अभाव॰स्यात्॰ =ही हो तो सबका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में

——— सर्वप्रकार से ही तो सबकी अविनाभाविता रहै न किसीका भी अस्तित्व न रहै

तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ।यदिद रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । तत समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूतः समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा=परस्पर विलक्षणानाम्	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले (¹गुण पर्याय)निका
समुदाये सति समुदायस्य एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायको(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्	=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व अभावः	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परत अर्थान्तरभूतत्वात् यत् इदम्	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम् तस्मात् अर्थान्तरभूताः रस-आदयः	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः समुदायः अनर्थान्तरभूतः यः च	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्यः अर्थान्तरभूतात् रूपात्	=रसादिक से भेदरूप होनेसे या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूतः समुदायः सः कथं रसादिभ्यः	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः न भवेत् ततः च रूपमात्रम्	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक, देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो जैसे रागद्वेष राग, द्वेष क्रोध मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीनां च रूपादय ॥तेषा विकारा विशेषात्मना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णास्तीवो मद इत्येवमादय । तेभ्योऽन्यत्वं कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जावें तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय वा एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्रव्यका दूसरेद्रव्यमें पलटाव होजावे, पूर्वोक्त विशेष गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहे तो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहे तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरे ।

तत॥सामान्य अपेक्षया॥ अन्वयिनः॥ ज्ञान =वहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले वा सदैवसाथरहनेवाले(=अन्वयिनः)ज्ञान

आदयः॥ जीवस्य॥ गुणा ॥ पुद्गल-आदीनाम्॥ च॥ =आदिक जीवके गुण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)

रूप-आदयः॥ तेषाम्॥ विकारा॥ =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोड़कर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेष आत्मना॥ भिद्यमाना॥ पर्याया॥ ॥घटज्ञानम्॥ ॥=विशेष स्वरूपकरिके भेदरूप हुए वे पर्याय हैं (जैसे)घड़ेका ज्ञान

पटज्ञानम्॥ ॥क्रोधः॥ मानः॥ गंधः॥ वर्णः॥ तीव्रः॥ =कपड़ेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मदः॥ इत्येवम्॥ आदयः॥ =मद इत्येव् आदि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घड़ेका ज्ञान कपड़ेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध-रूप-तीव्र-मंद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्यः॥ अन्यत्वम्॥ ॥कथंचित्॥ आपद्यमानः॥ =तिन(गुण पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदायः॥ द्रव्य व्यपदेश-भाक्॥ =समुदाय द्रव्यनामका प्राप्तकरनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेद रूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३५५)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होतीहै(संस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२)

यदि॥ हि॥ सर्वथा॥ समुदाय॥ अनर्थान्तरभूतः॥ =यदि सर्वप्रकारसही(=हि)समुदाय(उनगुणपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्थान्तरभूत)

एव॥ स्यात्॥ सर्व-अभावः॥ स्यात्॥ =ही हो तो सबका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में अनन्यपना सर्वप्रकार से हो तो समस्तकी [illegible] ठहरे वा किसीका भी अस्तित्व न ठहरे

तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥ यदिद रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादय । ततः समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूतः समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा॰परस्पर विलक्षणानाम्॥	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुणपर्याय)निका
समुदाये॥सति॥समुदायस्य॥एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्॥	=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व अभाव॥	=सर्वथा अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परतः॰अर्थान्तरभूतत्वात्॥॥यत्॥॥इदम्॥॥	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम्॥॥तस्मात्॥॥अर्थान्तरभूताः॥रस-आदयः॥	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः॰ समुदायः॥अनर्थान्तरभूतः॥यः॥च॰	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्यः॥अर्थान्तरभूतात्॥रूपात्॥	=रसादिक से भेदरूप होनेसे या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूतः॥समुदाय॥स॥कथं॰रसादिभ्यः॥	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः॥न॰भवेत्॥ततः॰च॰रूपमात्रम्॥॥	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से हो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवके राग द्वेष क्रोध मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीनां च रूपादय ॥ तेषा विकारा विशेपात्मना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीवो मंद इत्येव मादय । तेभ्योऽन्यत्वं कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थातरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जावें तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय वा एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्रव्यका दूसरेद्रव्यमें पलटजाय होजावे, पूर्वोक्त विशेष गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहै तो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहै तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरे।

तत्र=सामान्य अपेक्षया॥ अन्वयिन॥ ज्ञान =वहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले वा सदैवसाथरहनेवाले(=अन्वयिनः)ज्ञान

आदय॥ जीवस्य॥ गुणा॥ पुद्गल-आदीनाम्॥ च॥ =आदिक जीवके गुण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)

रूप-आदय॥ तेषाम्॥ विकारा॥ =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोड़कर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेष-आत्मना॥ भिद्यमाना॥ पर्याया॥ ॥घटज्ञानम्॥ =विशेष स्वरूपकरिके भेदरूप हुए वे पर्याय हैं (जैसे)घड़ेका ज्ञान

पटज्ञानम्॥ क्रोध॥ मान॥ गंध॥ वर्ण॥ तीव्र॥ =कपड़ेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मंद॥ इत्येवम् आदय॥ =मंद इत्येव आदि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घड़ेका ज्ञान कपड़ेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध-रूप-तीव्र-मंद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्य॥ अन्यत्वम्॥ कथंचित्॥ आपद्यमान॥ =तिन(गुण पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदाय॥ द्रव्य व्यपदेश-भाक्॥ =समुदाय द्रव्यनामको प्राप्त करनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेद रूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ २४५)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होतीहै(संस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२)

यदि॥ हि॥ सर्वथा॥ समुदाय॥ अनर्थान्तरभूत॥ =यदि सर्वप्रकारसही(=हि)समुदाय(उनगुणपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्था तरभूत)

एव॥ स्यात्॥ सर्व-अभाव॥ स्यात्॥ =ही हो तो सर्वका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में अनन्यपना सर्वप्रकार [illegible] हो तो सबहीकी अविद्यमानता ठहरे [illegible]

तद्यथा-परस्परविलक्षणानां समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥ यदिदं रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । तत समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूत समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा=परस्पर विलक्षणानाम्	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुणपर्याय)निका
समुदाये सति समुदायस्य एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्	=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपनां मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व अभावः	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परतः=अर्थान्तरभूतत्वात् यत् इदम्	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम् तस्मात् अर्थान्तरभूताः रस-आदयः	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः= समुदायः अनर्थान्तरभूतः यः च=	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्यः अर्थान्तरभूतात् रूपात्	=रसादिक से भेदरूप होनेसे या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूतः समुदायः सः कथं=रसादिभ्यः	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः न=भवेत् ततः=च=रूपमात्रम्	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवके राग द्वेष क्रोध मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं धर्म अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षट्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

तत सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा । पुद्गलादीना च रूपादय ॥ तेषा विकारा विशेपात्मना भिद्यमाना पर्याया ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीव्रो मद इत्येवमादय । तेभ्योऽन्यत्व कथंचिदापद्यमान समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभाव स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जायँ तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय वा एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्रव्यका दूसरेद्रव्यमें पलटाव होजावे, पूर्वोक्त विशेष गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहै तो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहै तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरे ।

ततः सामान्य-अपेक्षया अन्वयिनः ज्ञान =वहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले वा सदैवसाथरहनेवाले(=अन्वयिनः)ज्ञान

आदयः जीवस्य गुणाः पुद्गल-आदीनाम् च रूप-आदयः तेषाम् विकाराः =आदिक जीवके गुण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी) =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोड़कर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेप आत्मना भिद्यमानाः पर्यायाः घटज्ञानम् =विशेष स्वरूपकरिके भेदरूप हुए ते पर्याय हैं (जैसे)घड़ेका ज्ञान

पटज्ञानम् क्रोधः मानः गन्धः वर्णः तीव्रः =कपड़ेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मदः इत्येवम् आदयः =मंद इत्यादि आदि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घड़का ज्ञान कपड़ेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध-रूप-तीव्र-मंद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्यः अन्यत्वम् कथंचित् आपद्यमानः =तिन(गुण पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदायः द्रव्य व्यपदेश-भाक् =समुदाय द्रव्यनामका प्राप्तकरनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेद रूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३४४)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होतीहै(सस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२)

यदि हि सर्वथा समुदायः अनर्थान्तरभूतः =यदि सर्वप्रकारसही(=हि)समुदाय(उनगुणपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्थान्तरभूत)

एव स्यात् सर्व-अभावः स्यात् =ही हो तो सर्वका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में अनन्यपना सर्वप्रकार से हो तो सबकी अविद्यमानता होवै न किसीका भी [illegible]

तद्यथा-परस्परविलक्षणाना समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभाव परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥ यदिद रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । तत समुदायोऽनर्थान्तरभूत ॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूत समुदाय स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा=परस्पर विलक्षणानाम्॥	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ('गुणपर्याय)तिनका
समुदाये॥सति॥समुदायस्य॥एकानर्थान्तर	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर
भावात्॥	=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व अभाव॥	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परतः=अर्थान्तरभूतत्वात्॥यत्॥इदम्॥	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम्॥तस्मात्॥अर्थान्तरभूता॥रस आदय॥	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
तत=समुदाय॥अनर्थान्तरभूत॥य॥च=	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्य॥अर्थान्तरभूतात्॥रूपात्॥	=रसादिक से भेदरूप होने से या भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूत॥समुदाय॥स॥कथं=रसादिभ्य॥	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूत॥न=भवेत्॥तत=च=रूपमात्रम्॥	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=तत)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच नारक देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ पर्याय हो जैसे आत्माके राग द्वेष क्रोध मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

ममुदाय प्रसक्त ॥नचैकं रूपंसमुदायो भवितुमर्हति।तत समुदायाभाव ।समुदायाभावच्च तदनर्थान्तर-भूताना समुदायिनामप्यभाव इति सर्वाभाव ।एवरसादिष्वपि योज्यम्॥ तस्मात्समुदायमिच्छताकथंचिद्

अर्थात् रसादिक से समुदाय भिन्नहोनेके कारणसे

समुदायः।प्रसक्तः।न॰च॰ =समुदाय प्राप्तहुआ ॥ और न

एकम्।रूपम्।समुदायः।भवितुम्।अर्हति। =एक रूप(मात्र) समुदाय हो सकता है, वा होनेके योग्य है अर्थात् समुदायतो बहुतोंको कहते हैं और रूपगुण एकही हुवा इसलिये केवल रूपको समुदाय नहींकहसकते

ततः॰समुदाय अभावः।समुदाय अभावात्।च॰ =तिस कारणसे समुदायका अभाव हुआ और (=च)समुदायकी अविद्यमानतासे

तद्-अनर्थान्तरभूतानाम्।समुदायिनाम्।अपि॰ =उस(समुदाय)के अभेदरूप समुदायियोंका भी (अर्थात् वह जिस में समुदाय रहे उनकाभी)

अभावः।इति॰सर्व अभावः। =अभाव हुआ इस प्रकार समस्त का अभाव हुआ (कुछभी न रहा)

एवम्॰रसादिषु।अपि॰योज्यम्।। =इस प्रकार(द्रव्य के गुण)रसादिकमें भी लगाना चाहिये भावार्थ जैसे यह रस गुण है तिस(रस) से भिन्न भिन्न रूप-गंध-स्पर्श आदिक हैं और रस गुण को-समुदाय से अभेदरूप माना है। इस लिये समुदाय रूप-गंध-स्पर्श आदिकमें न्यारा न्यारा (भेदरूप) हुआ,तब एकरस(मात्र गुण) समुदाय ठहरा सो समुदाय नहीं हो सक्ता क्यों कि समुदाय तो बहुतोंका होता है। रसतो एकही है। उसको समुदाय क्यों कहना चाहिये इसप्रकार समुदायका अभाव आया और समुदाय (अपने) समुदायियों से भिन्न नहीं हो सक्ते हैं। तिन समुदायियोंका भी अभाव हुआ इस प्रकार समुदाय-समुदायी दोनों के अभाव होने से समस्तका अभाव हुआ॥

तस्मात्।समुदायम्।(१ इच्छता)।(२ कथंचित्॰ =तिससे समुदायकी इच्छा करनेवालेकरि (गुण-पर्यायोंके समुदायरूपद्रव्यको) कथंचित्

(१) इच्छत् यह शब्द इकन्त पुल्लिङ्ग है इसकी तृतीया विभक्ति त् में आ लगाने से बनती है। जैसे गच्छत्"की गच्छता, तैसे इच्छत्"की इच्छता।

(२) "जैसे मृत्तिका नाम द्रव्य है। तिसके घटादिक पर्याय हैं। सो मृत्तिकाके अर घटादिकके कथंचित् संज्ञा वा नामकरि भेद है। वाकू मृत्तिका कहिये। वाकू घट कहिये। अर संख्या करि भेद है मृत्तिका का पिंड एक था ताके घट पांच बणिगये तातें संख्या करि भी भेद है। बहुरि मृत्तिका का लक्षण तो पिंडादिक रूप अन्य है। अर घटका लक्षण कुछ और जलधारणादिरूपका भिन्न हैं बहुरि मृत्तिकाका प्रयोजन तो लेपन इत्यादि योग्यतादिक अन्य है और घट का जल धारणादि प्रयोजन अन्य है।ऐसे द्रव्यकें और पर्यायोंकें संज्ञा, संख्या लक्षण प्रयोजनादि करि कथंचित् भेद होते भी वस्तुपना करि भेद नहीं है वही एक वस्तु वा है" ॥ ऐसो सर्वार्थसिद्धिः॥

ऽर्थान्तरभाव एषितव्य ॥उक्तानां द्रव्याणां लक्षणनिर्देशात्तद्विषय एव द्रव्याध्यवसाये प्रसक्ते अनुक्तद्रव्यसंसूचनार्थमिदमाह—

॥ कालश्च ॥ ३९ ॥

किम्? द्रव्यमिति वाक्यशेष ॥ कुत?। तल्लक्षणोपेतत्वात् ॥ द्विविधं लक्षणमुक्तम्। "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्" "गुणपर्यायवद्द्रव्यमिति"च॥ तदुभयं लक्षणं कालस्य विद्यते। तद्यथा—ध्रौव्यं तावत्कालस्य स्वप्रत्ययं स्वभावव्यवस्थानात् ॥

अर्थान्तर- =(सत्ता-संख्या-लक्षण-प्रयोजनादिककी अपेक्षा)न्यारा(=अर्थान्तर)
भाव एषितव्य । उक्तानाम् । द्रव्याणाम् । लक्षण- =पदार्थ (=भाव) मानना योग्य है। कथित द्रव्योंके लक्षण
निर्देशात् । तद्-विषय । एव द्रव्य अध्यवसाये =वर्णन करनेसे पहिले कहेहुये (=अत) विषय ही (पांच)द्रव्योंके निश्चयका
प्रसक्ते । अनुक्त-द्रव्य-संसूचन अर्थम् । इदम् । आह । =प्रसंग होनेपर अकथित या अगणित द्रव्यके सूचनाके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहतेहैं कि

[1]सूत्रम्— कालश्च ॥३९॥ -काल च (द्रव्यम्) अस्ति ॥३९॥

सूत्रार्थः—काल । च द्रव्यम् । अस्ति । =काल भी द्रव्य है

वृत्त्यनुवाद —किम् । द्रव्यम् । इति वाक्य शेष । =क्या (कहा)। 'द्रव्यम्' ऐसा(शब्द इस सूत्रमें)वाक्यशेष है अर्थात् वह वाक्य जिस बिना सूत्र अपूर्ण या अधूरा रहता है वह (वाक्य इस सूत्रमें) मिला लेना चाहिये ॥
कुत । तत्(=तद्)लक्षण-उपेतत्वात् । ॥ =(वाक्य शेष) क्योंकर है क्योंकि उस (द्रव्य)के लक्षण (कालविषैं) प्राप्त है ॥
द्विविधम् । लक्षणम् । उक्तम् । उत्पाद-व्यय =दो प्रकार (द्रव्यका) लक्षण कहागया, उत्पत्ति-नाश-
ध्रौव्य-युक्तं । सत् । गुण-पर्यायवत् द्रव्यम् । इति च=स्थिरता युक्त सत् है। और(=च) गुणवान्-पर्यायवान् द्रव्य है ॥
तद्-उभयं । लक्षणं कालस्य । विद्यते तद्यथा ध्रौव्यं । =(ऊपर सूत्रोंमें कहे हुये)सो दोनों लक्षण कालके विद्यमान हैं जैसे स्थिर रहना।
तावत्कालस्य । स्व-प्रत्ययम् । स्वभाव-व्यवस्थानात् । =सो(प्रथम)कालके स्वभावकरि व्यवस्थित होने (केनिमित्त)से स्वकारणकृत है अर्थात्

(१)हमारी आम्नायमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। श्वेताम्बर आम्नायके 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में और भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थवृत्तिमें "कालश्चेत्येके" सूत्र है। कालः च इति एके =काल भी (=च, (द्रव्य) है ऐसा केइक के मत में है अर्थात् कोई आचार्य कहतेहैं कि काल भी द्रव्य है। इस सूत्रके पाठसे जो श्वेताम्बरआम्नायमें है और उनके यहांके बियालीसवां, तेतालीसवां और चवालीसवां सूत्रोंसे जो तत्त्वार्थभाष्यतरका

व्ययोदयौ परप्रत्ययौ । अगुरुलघुगुणवृद्धिहान्यपेक्षया स्वप्रत्ययौ च ॥ तथा गुणा अपि कालस्य साधारणासाधारणरूपा सन्ति ॥ तत्रासाधारणो वर्तनाहेतुत्व, साधारणाश्चाचेतनत्वामूर्तत्वसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वादय ॥[1]पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणा योज्या ॥तस्माद्द्विप्रकारलक्षणोपेतत्वादाकाशादिवत्कालस्य द्रव्यत्वं सिद्धम् ॥ तस्यास्तित्वलिङ्गं धर्मादिवद्व्याख्यातं,वर्तनालक्षण काल इति,

लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु जो अमूर्त अचेतन-निष्क्रिय, स्पर्श-रस-गंध वर्ण गुण रहित और जो मिलनेकी शक्ति रहित(=अकाय) है रत्नकी राशिके सदृश स्वभावसे ही स्थिरता लियेहुये तिष्ठीहुई है ॥

व्यय उदयौ॥परप्रत्ययौ॥ ।	=व्यय-उत्पाद (पर द्रव्यके परणमनिकी अपेक्षा) पर(निमित्त) कृत हैं ।
अगुरुलघुगुणवृद्धिहानिअपेक्षया॥च॥स्वप्रत्ययौ॥ ।	=और (=च)अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिकी अपेक्षाकरि स्व कारणकृत हैं ॥
तथा॥गुणाः॥अपि॥कालस्य॥साधारण	=और गुण भी काल के साधारण
असाधारणरूपाः॥सन्ति ।।तत्र॥असाधारणः॥	=और साधारण रूप हैं तहां कालका) असाधारण (गुण)
वर्तना-	=वर्तना(=पदार्थोंके पर्यायोंके पूराकरनेमें वा द्रव्योंके परणतिमें बाह्य सहकारिता)
हेतुत्वम्॥ ,साधारणाः॥च॥अचेतनत्व अमूर्तत्व	=हेतुपना और (=च साधारण (गुण)अचेतनपना, अमूर्तपना,
सूक्ष्मत्व-अगुरुलघुत्व-आदयः॥(1 पर्यायाः॥च॥व्यय	=सूक्ष्मपना, अगुरुलघुपना, आदिकहैं बहुरि पर्यायें व्यय,
उत्पाद-लक्षणाः॥योज्याः॥	=उत्पाद लक्षणरूप जोड़ीली जाय अर्थात् उत्पादरूप और व्ययरूप पर्यायें होती हैंही ॥
तस्मात्॥द्वि प्रकार	=तिससे दो प्रकारके (उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् और गुण पर्यायवत् द्रव्यम् ऐसे) ऽ
लक्षण उपेतत्वात्॥।आकाश-आदिवत्॥कालस्य॥	=लक्षण युक्त पनासे आकाशादिकके सदृश कालके
द्रव्यत्वं॥।सिद्धं॥।तस्य॥अस्तित्व-लिङ्ग ॥।धर्मादि-वत्॥	=द्रव्यता सिद्ध है। तिस (काल)की विद्यमानता का चिन्ह धर्मादिक द्रव्योंके समान
व्याख्यातम्॥।वर्तना-लक्षणः॥कालः॥इति॥,	=वर्णन किया गया था कि वर्तना लक्षणवाला काल है ।

पंचिमम सूत्रमें तथा 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका में दिये हैं (वेतीन सूत्र हमारे यहां नहीं हैं) जिन सूत्रोंका कथन हम इस अध्यायके अन्तमें विशेषरूपसे करेंगे उससे प्रगट है कि उनके यहां काल को द्रव्य नहीं माना है देखो।इस अध्यायके पृष्ठ १५६ १६० ॥

(1) द्रव्य तथा पर्याय तीन कहलाते और तब द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो हैं गुणार्थिकनय तीसरा क्यों नहीं कहागया ? (उत्तर)"जो पर्याय तीनकाल हैं एक सहवर्ती दूसरी क्रमवर्ती तहां सहवर्तीतो गुण है सो सहवर्ती पर्यायमें गुण आजावै तातैंगुणार्थिकनयसिद्धनहीं।गुणपर्यायवान् ही द्रव्यका निर्दोषलक्षण है।

किमर्थमयं काल पृथगुच्यते? । यत्रैव धर्मादय उक्तास्तत्रैवायमपि वक्तव्य । अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गला इति॥नैवं शंक्यम् ।तत्रोपदेशे सति कायत्वमस्य स्यात् । नेष्यते च मुख्योपचारप्रदेशप्रचयकल्पनाभावात् ॥ ।धर्मादीना "तावन्मुख्यप्रदेशप्रचय उक्त असंख्येया प्रदेशा इत्येवमादिना ॥ अणोरप्येकप्रदेशस्य पूर्वोत्तरप्रज्ञापननयापेक्षयोपचारकल्पनयाप्रदेशप्रचय उक्त ।

किम्॥अर्थम्॥अयम्॥काल ॥पृथक् • उच्यते ।	=अरन) किसलिये यहकाल न्यारा(स्थानमें)कहागया है ।
यत्र • एव•धर्म आदय॥उक्ता॥तत्र • एव •	=जहां ही धर्मादिक (द्रव्य) कहेगये थे वहां ही
अयम्॥अपि • वक्तव्य॥अजीवकाया॥धर्म	=यह (काल) भी कहाजाना योग्य था । 'अजीवकाया-धर्म-
अधर्म आकाश-काल-पुद्गला॥इति • एवम् •	=अधर्म आकाश-काल-पुद्गला'इस प्रकार (इसअध्यायका प्रथम सूत्र)होता तो(उत्तर)ऐसे
न • शंक्यम्॥तत्र • उपदेशे॥सति॥	=संशय या वितर्क नहीं होनी चाहिये, तहां(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें)उपदेश होनेपर
कायत्वम्॥अस्य॥स्यात् ।	=कायपना अर्थात् बहुत प्रदेशों का मिलनरूप शक्तिपना)इस(काल)के होजाता
च • मुख्य उपचार-प्रदेश-	=और मुख्यपना तथा उपचारसे प्रदेशोंकी
प्रचय-कल्पना अभावात्॥न • इष्यते ।	=समूह कल्पनाके अभावसे (कालके कायपना) नहीं देखा गया या माना गयाहै ॥
धर्मादीनाम्॥तावत् • मुख्य-प्रदेश-प्रचय॥	=धर्मादिक (द्रव्यों) के तो मुख्य प्रदेशोंका प्रचय
असंख्येया ॥प्रदेशा॥इत्येवम् • आदिना॥उक्त॥ ॥	=असंख्येयाः प्रदेशाः इत्येवं आदि(देखो इस अध्यायके सूत्र ८,९,१०)सूत्रोंकरि कहागया
अणो॥अपि • एक प्रदेशस्य॥पूर्व-उत्तर प्रज्ञापन	=अणु भी (=अपि)एक प्रदेशवालाहै(देखोसूत्र११)पूर्व उत्तर भावप्रतापनेवाली=प्रज्ञापन
नय अपेक्षया॥उपचार-कल्पनया॥	=नयकी अपेक्षासे उपचार या कल्पनाकरि अर्थात् पूर्व भाव यह कि पृथक् पृथक् अणु है उत्तर भाव यह कि तौभी उनमें भविष्यत् कालमें मिलन शक्ति है इन दोनों भावोंकी प्रकाशक या जतानने वाली नयकी अपेक्षा करि, उपचार या कल्पना से
प्रदेश-प्रचय॥उक्त ॥	=प्रदेश समूहवाली कहीजाती है भावार्थ परमाणु (संघात से) स्कन्धरूप होजाती है । जिससे प्रदेशप्रचय कही गई है ।

व्ययोदयौ परप्रत्ययौ । अगुरुलघुगुणवृद्धिहान्यपेक्षया स्वप्रत्ययौ च ॥ तथा गुणा अपि कालस्य साधारणासाधारणरूपा सन्ति ॥ तत्रासाधारणो वर्तनाहेतुत्वं, साधारणाश्चाचेतनत्वामूर्तत्वसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वादय ॥[1]पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणा योज्या ॥तस्माद्द्विप्रकारलक्षणोपेतत्वादाकाशादिवत्कालस्य द्रव्यत्वं सिद्धम् ॥ तस्यास्तित्वलिङ्गं धर्मादिवद्व्याख्यातं,वर्तनालक्षण काल इति,

लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु जो अमूर्त अचेतन-निष्क्रिय, स्पर्श-रस-गंध वर्ण गुण रहित और जो मिलनेकी शक्ति रहित(=अकाय)है रत्नकी राशिके सदृश स्वभावसे ही स्थिरता लियेहुये तिष्ठीहुई है ॥

व्यय उदयौ॥परप्रत्ययौ॥ । =व्यय उत्पाद (पर द्रव्यके परणमनिकी अपेक्षा) पर(निमित्त) कृत हैं।
अगुरुलघुगुणवृद्धिहानिअपेक्षया॥च॥स्वप्रत्ययौ॥ । =और (=च)अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिकी अपेक्षाकरि स्व कारणकृत है ॥
तथा॥गुणा॥अपि॥कालस्य॥साधारण =और गुण भी काल के साधारण
असाधारणरूपा॥सन्ति।।तत्र॥असाधारणो॥ =और साधारण रूप हैं वहां कालका) असाधारण (गुण)
वर्तना- =वर्तना(=पदार्थोंके पर्यायोंके पूराकरनेमें वा द्रव्योंके परणतिमें बाह्य सहकारिता)
हेतुत्वम्॥,साधारणा॥च॥अचेतनत्व अमूर्तत्व =हेतुपना और (=च साधारण (गुण)अचेतनपना, अमूर्तपना,
सूक्ष्मत्व-अगुरुलघुत्व आदय॥(१ पर्यायाः॥च॥व्यय- =सूक्ष्मपना, अगुरुलघुपना, आदिकहैं बहुरि पर्यायें व्यय,
उत्पाद-लक्षणाः॥योज्याः॥ =उत्पाद लक्षणरूप जोड़ीली जांय अर्थात् उत्पादरूप और व्ययरूप पर्यायें होती हैंसी ॥
तस्मात्॥द्वि प्रकार =तिससे दो प्रकारके (उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् और गुण पर्यायवत् द्रव्यम् ऐसे)
लक्षण उपेतत्वात्॥॥आकाश-आदिवत्॥कालस्य॥ =लक्षण युक्त पनासे आकाशादिकके सदृश कालके
द्रव्यत्वं॥सिद्धं॥।तस्य॥अस्तित्व-लिङ्गं॥धर्मादि-वत्=द्रव्यपना सिद्ध है। तिस (काल)की विद्यमानता का चिन्ह धर्मादिक द्रव्योंके समान
व्याख्यातम्॥वर्तना-लक्षण॥काल॥इति, =वर्णन किया गया था कि वर्तना लक्षणवाला काल है।

यो[illegible] अथवा तथा "भाष्यानुसारिणी तत्वार्थ" टीका में दिये हैं (वतीम सब हमारे पास नहीं हैं) जिन सूत्रोंका कथन हम इस अध्यायके अन्तमें विशेषरूपसे करेंगे उससे प्रगट है कि उनके यहां 'काल' को द्रव्य नहीं माना है देखो।इस अध्यायके पृष्ठ १५६ १६० ॥

(१) द्रव्य गुण पर्याय तीन कहनेसे और नय द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो हैं [illegible] तीसरा क्यों नहीं कहागया ? (उत्तर)"जो पर्याय तीन कालमें एक सदृश [illegible] नहीं रहते [illegible] गुण है जो [illegible] पर्यायमें गुण [illegible] गुणपर्यायवान् ही द्रव्यका [illegible]

एकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पृथगिह कालोद्देशः क्रियते॥ अनेकद्रव्यत्वेसति किमस्य प्रमाणं? ।
लोकाकाशस्य यावन्त प्रदेशा

एकद्रव्यत्वम् । अस्य । स्यात्	=(यदि धर्म अधर्म और आकाश के मध्य में काल होता तो) एक द्रव्यपना इस (काल) के भी होजाता
तस्मात् । पृथक् । इह । काल उद्देशः । क्रियते	=तिस (कारण) से न्यारा इस स्थानमें (=इह) कालका कथन कियागया है ॥
अनेकद्रव्यत्वे । सति । किम् । अस्य । प्रमाणम्	=अनेक द्रव्यपना होनेमें (=सति) इस (काल) का क्या प्रमाण है ?
	अर्थात् काल को अनेक द्रव्य कहा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥
लोक-आकाशस्य । यावन्त । प्रदेशा	=लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं ।

(१) पृथक् ही यदि पूर्वोक्तकारणोंसे प्रथम सूत्रसे कहलाया तो इतने अन्तरसे क्यों कहा? इस अध्यायका तीसरा सूत्र ऐसा रचते कि "अजीवा जीवाश्च, वा जीवाः कालश्च" इन दोनों विधिमें एक व'कम भी होजाता है क्योंकि जीवाश्च तीसरा और कालश्च उनतालीसवां सूत्रोंमें दो चकारहैं यदि तीसरा सूत्र 'जीवाश्च' ही रचना था तो कालोऽपि इसको इस 'जीवाश्च' तीसरे सूत्रकी वार्तिक मान लेते अथवा 'जीवाश्च' सूत्रके पश्चात् 'कालोऽपि' ऐसा मिश्र सूत्र करते तो चार सूत्रों में "द्रव्यव्यपदेशप्रकरण" भी समाप्त होजाता क्योंकि प्रथम सूत्रमें चार द्रव्य कहे दूसरे सूत्रमें धर्म अधर्म आकाश-पुद्गलोंको स्थापित की तीसरे में जीवों को भी द्रव्य नाम दिया । चौथेमें वा 'जीवाश्च' दो सूत्रमें मिलाकर काल कहदेना योग्य था कि द्रव्य नामा विषय चार वा तीन सूत्रोंमें समाप्त होजाता। इन बातोंके उपरान्त चौथे छठवें, और सातवें (अर्थात् नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ आआकाशादेक द्रव्याणि ॥ ६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥) सूत्रोंके अर्थ करनेमें कि काल द्रव्य सहित नित्य हैं अवस्थित हैं अरूपी हैं धर्म अधर्म आकाश ये तीन एक एक द्रव्य हैं और जीव पुद्गल-काल अनेक द्रव्य हैं। धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं काल भी निष्क्रिय है खैंचातानी न करनी पड़ती और सुगमताल (काल को जीव के समीप द्रव्य कहते तो) इन सूत्रों के अर्थ हो जाते । सातवां सूत्र "निष्क्रियाणि च" का अर्थ मेरी समझ में चकारका समुच्चय अर्थमें लेनेसे यह अर्थ हो सका है कि धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं चकार से काल भी (=च) (निष्क्रिय है)। कुछ वाक्य ज्यों के त्यों देतेहैं जो १ ४ ६ ७ २२ वें सूत्रोंके अर्थ कर गये पं० जयचन्द्रायजी ने सर्वार्थसिद्धि वचनिका में पं० सदासुखजीने 'अर्थ प्रकाशिका' में तथा 'तत्त्वार्थ'सूत्र लघुटीका में "काल" को द्रव्य ३६ वां सूत्र के अनुकूल मानकर अर्थ किया है (क) 'जीव हैं ते भी द्रव्यहैं ऐसें च आगे कहेंगे जो काल द्रव्यको ताकरि सहित षड्द्रव्यहैं। धर्म अधर्म आकाश, जीव पुद्गल काल इन छहूनि का द्रव्य नाम कहिये है । जीवाश्च ॥३॥ के अर्थमें ये वाक्य हैं पृ० ४०८ (मुद्रित) (ख) तातैं अवस्थित कह धर्मादिक छह द्रव्य हैं । पृष्ठ ४११ (नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस सूत्र के अर्थ में) यह वाक्य है (ग) "बहुरि आगे कहियेगा काल द्रव्य सो भी क्रिया रहित है" यह वाक्य "निष्क्रियाणि च के अर्थमें पृष्ठ ४१६ परलघनिकामें है (घ) "आगे कहेंगे जो काल ए पांचो अजीव द्रव्यहैं"। "अर यहां कह्या जीव द्रव्यकालकरि सहित ए छह द्रव्य जानना" ये वाक्य जीवाश्च सूत्रके अर्थमें कहे हैं अर्थ प्रकाशिका पृ० २८७ (ङ) "ए धर्मादिक द्रव्यहैं ते अपनी छहकी संख्या कदाही छोड़ै नहीं पांच नहीं होय सात नहीं होय तातैं अवस्थित हैं । "अर काल के एक प्रदेशीपना है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याको नहीं छोडे है तातैं अवस्थित हैं" ये वाक्य 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इस चौथे, सूत्र के अर्थ में आये हैं (देखो अर्थ प्रकाशिका पृ २८८) (च) "धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनि को एक एक कहने तैं ही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनि कै अनेकपना आया काल द्रव्य असंख्यातहैं"। ये वाक्य छठवां सूत्र के अर्थमें है, देखो

कालस्य पुनर्द्वेधाऽपि प्रदेशप्रचयकल्पना नास्तीत्यकायत्वम् ॥ अपि च तत्र पाठे निष्क्रियाणि चेत्यत्र धर्मादीनामाकाशान्तानां निष्क्रियत्वे प्रतिपादिते इतरेषा जीवपुद्गलादीनां सक्रियत्वप्राप्तिवत्कालस्यापि सक्रियत्वं स्यात् ॥ अथाकाशात्प्राक्काल उद्दिश्येत । तन्न । आ आकाशादेकद्रव्याणीति,

कालस्य॥ पुनः॰ द्वेधा॰ अपि॰ प्रदेश-प्रचय	=बहुरि कालके दोनों प्रकार (मुख्यपनासे तथा उपचारपनासे भी प्रदेश समूहकी
कल्पना॥ न॰ अस्ति॥ इति॰ अकायत्वम्॥ ॰अपि॰ च॰ तत्र	=कल्पना नहीं है। इस प्रकार (काल द्रव्य के) अकायपना है। बहुरि तहां भी (इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें भी अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गलाः ऐसे)
पाठे॥ निष्क्रियाणि॥ च॰ इति॰ अत्र॰	=पठनमें भी (काल के कायपना ठहरनेके उपरान्त) " निष्क्रियाणि च " यहां इसी अध्याय के इस सातवां सूत्र में)
	=धर्मादिक द्रव्यों से आकाश
धर्मादीनाम्॥ आकाश-	=पर्यन्तनिकें (अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश-के) हलनचलनक्रियासेरहितपनाकेकथनकरनेमें
अन्तनाम्॥ निष्क्रियत्वे॥ प्रतिपादिते॥	=अन्यशेष जीव पुद्गल (द्रव्य) निके क्रिया सहित पनाकी प्राप्तिके समान
इतरेषाम्॥ जीवपुद्गलादीनाम्॥ सक्रियत्व प्राप्तिवत्॰	=कालकेभी सक्रियपना होजाता (परन्तुकालनिष्क्रिय है ही) ॥
कालस्य॥ अपि॰ सक्रियत्वम्॥ स्यात्॥	=यदि (अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः सूत्र के) आकाश (शब्द) के पहिले
॥ अथ॰ आकाशात्॥ प्राक्॰	=काल उपदेश कियागया होता तो अर्थात् इस का प्रथम सूत्र अजीवकाया धर्माधर्म काल पुद्गलाः के स्थानमें अजीवकाया धर्माधर्मकालाकाशपुद्गलाः ऐसाकहते तौ
कालः॥ उद्दिश्येत॥	
तत्॥ न॰ आ॰ आकाशात्॥	=(उत्तर) सोनहीं क्योंकि छठा सूत्रकि(इसअध्यायकेप्रथमसूत्रके) आकाश (शब्द) पर्यंत (=आ)
एकद्रव्याणि॥ इति॰	=एक एक द्रव्य हैं अर्थात्-धर्म-अधर्म आकाश एक एक द्रव्यहैं ऐसे

( ) अथ शब्दके साथ प्रश्नोत्तर अधिकार होने पर भी यहां 'यदि' के अर्थ में है (देखो जैन संस्कृतादि [illegible] पृष्ठ १९) (२) किसी किसी हस्तलिखित प्रतियें 'उद्दिश्यते' पाठ है हमारी समझ में 'उद्दिश्येत' शब्द श्रेष्ठ है क्योंकि दिश् धातु [illegible] उत् उपसर्ग लगाया है [illegible] 'उद्दिश्' बनता है इस में कर्मणि प्रयोग का [illegible] 'उद्दिश्य' बना इसमें 'ते' अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान कालका चिन्ह लगाने से 'उद्दिश्यते' उपदेश किया जाता है यह हुआ, ईत प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) एक वचन आत्मने पदी विधिलिङ् क्रियाका 'उद्दिश्य' शब्दमें लगाने से उद्दिश्य + ईत = उद्दिश्येत बना उद्दिश्येत = उपदेश किया जाता होता इसी अर्थ में यहांपर है अर्थात् यदि काल प्रथम सूत्रके [illegible] उपदेश किया गया होता तो [illegible] कालके [illegible] है ॥

एकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पृथगिह कालोद्देश क्रियते॥ अनेकद्रव्यत्वेसति किमस्य प्रमाणं? । लोकाकाशस्य यावन्त प्रदेशा

एकद्रव्यत्वम्॥१॥(१ अस्य॥२॥स्यात्॥	=(यदि धर्म अधर्म और आकाश के मध्य में काल होता तो)एक द्रव्यपना इस(काल)के भी होजाता
तस्मात्॥१॥पृथक्॥२॥इह॥३॥काल-उद्देश॥४॥क्रियते॥	=तिस (कारण) से न्यारा इस स्थानमें (=इह)कालका कथन कियागया है ॥
अनेकद्रव्यत्वे॥१॥सति॥२॥किम्॥३॥अस्य॥४॥प्रमाणम्॥५॥	=अनेक द्रव्यपना होनेमें (=सति)इस (काल) का क्या प्रमाण है ?
	अर्थात् काल को अनेक द्रव्य कहा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥
लोक आकाशस्य॥१॥यावन्त॥२॥प्रदेशाः॥३॥	=लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं ।

(१) पृथक् ही यदि पूर्वोक्तकारणोंसे प्रथम सूत्रसे कहलाता तो इतने अन्तरसे क्यों कहा? इस अध्यायका तीसरा सूत्र ऐसा रचते कि "कालोजीवाश्च वा जीवा॥ कालश्च इन दोनों विधियें एक व कम भी होजाता है क्योंकि जीवाश्च तीसरा और कालश्च उनतालीसवां सूत्रोंमें दो चकारहैं यदि तीसरा सूत्र 'जीवाश्च' ही रचना था तो कालोऽपि इसको इस 'जीवाश्च' तीसरे सूत्रकी वार्तिक मान लेते अथवा 'जीवाश्च सूत्रके पश्चात् 'कालोऽपि' ऐसा भिन्न सूत्र करते तो चार सूत्रों में "द्रव्यस्यपदेशप्रकरण" भी समाप्त होजाता क्योंकि प्रथम सूत्रमें चारद्रव्य कहे दूसरे सूत्रमें धर्म अधर्म आकाश-पुद्गलोंका स्थापित को तीसरे में जीवों को भी द्रव्य नाम दिया । चौथेमें वा 'जीवाश्च तो सूत्रमें मिलाकर काल कहदेना योग्य था कि द्रव्य नामा विषय चार वा तीन सूत्रोंमें समाप्ति होजाता॥इन बातोंके उपरान्त चौथे छठवें और सातवें(अर्थात् नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ आआकाशादेक द्रव्याणि ॥ ६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥) सूत्रोंके अर्थ करनेमें कि काल द्रव्य सहित नित्य हैं अवस्थित हैं अरूपी हैं धर्म अधर्म आकाश ये तीन एक एक द्रव्य हैं और जीव पुद्गल-काल अनेक द्रव्य हैं। धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं काल भी निष्क्रिय है ऐसा तामी न करनी पड़ती और सुगमतासे (काल को जीव के समीप द्रव्य कहते तो) इन सूत्रों के अर्थ हो जाते । सातवां सूत्र "निष्क्रियाणि च" का अर्थ मेरी समझ में चकारको समुच्चय अर्थमें लेनेसे यह अर्थ हो सक्ता है कि धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं चकार से काल भी (=च) (निष्क्रिय है)॥ कुछ वाक्य ज्यो के त्यों देतेहैं जो२ ४ ६ ७ २१ वें सूत्रोंके अर्थ कर नेमें पं० जयचन्द्रजी ने 'सर्वार्थसिद्धि वचनिका में पं० सदासुखजीने 'अर्थ प्रकाशिका' में तथा 'तत्त्वार्थ सूत्र लघुटीका में काल" को द्रव्य ३९ वां सूत्र के अनुकूल मानकर अर्थ किया है(क)"जीव हैं ते भी द्रव्यहैं ऐसें च आगे कहेंगे जो काल द्रव्यको ताकरि सहित छहद्रव्यहैं। धर्म अधर्म आकाश जीव पुद्गल काल इन छहूनि के द्रव्य नाम कहिये हैं । जीवाश्च ॥३॥ के अर्थमें ये वाक्य हैं पृ० ४०८ (मुद्रित) (ख) तातें अवस्थित कहे धर्मादिक छह द्रव्य हैं । पृष्ठ ४१२ (नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस सूत्र के अर्थ में) यह वाक्य है (ग) 'बहुरि आगे कहियेगा काल द्रव्य सो भी क्रिया रहित है" यह वाक्य "निष्क्रियाणि च"के अर्थमें पृष्ठ ४१६ परवचनिकामेंहै(घ)"आगे कहेंगे जो काल व पांचों अजीव द्रव्यहैं"॥"अर यहां कहाजीव द्रव्यकालकरि सहित ए छह द्रव्य जानने" ये वाक्य जीवाश्च सूत्रके अर्थमें कहे हैं अर्थ प्रकाशिका पृ० २८७(ङ) 'ए धर्मादिक द्रव्यहैं ते अपनी छहकी संख्या कदाचित्भी पांच नहीं होय सात नहीं होय तातें अवस्थित हैं ॥"अर काल कैं एक प्रदेशीपना है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याको नहीं छोड़े है तातें अवस्थित हैं" ये वाक्य 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस चौथे, सूत्र के अर्थ में आये हैं (देखो अर्थ प्रकाशिका पृ २८८) (च) "धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनि को एक एक कहने तें ही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनि कै अनेक पना आया 'काल द्रव्य असंख्यातहैं"। ये वाक्य छठवां सूत्र के अर्थमें है, देखो

कालस्य पुनर्द्वेधाऽपि प्रदेशप्रचयकल्पना नास्तीत्यकायत्वम् ॥ अपि च तत्र पाठे निष्क्रियाणि चेत्यत्र धर्मादीनामाकाशान्तानां निष्क्रियत्वे प्रतिपादिते इतरेषां जीवपुद्गलादीनां सक्रियत्वप्राप्तिवत्कालस्यापि सक्रियत्वं स्यात् ॥ अथाकाशात्प्राक्काल उद्दिश्येत । तन्न । आ आकाशादेकद्रव्याणीति,

कालस्य॥ पुन ॥ द्वेधा ॥ अपि ॥ प्रदेशप्रचय =बहुरि कालके दोनों प्रकार (मुख्यपनासे तथा उपचारपनासे भी प्रदेश समूहकी

कल्पना॥ न ॥ अस्ति ॥ इति ॥ अकायत्वम् ॥ अपि ॥ च ॥ तत्र =कल्पना नहीं है । इस प्रकार (काल द्रव्य के)अकायपना है । बहुरि तहां भी (इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें भी अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गलाःऐसे)

पाठे॥ निष्क्रियाणि॥ च ॥ इति ॥ अत्र ॥ =पठनमें भी (काल के कायपना ठहरनेके उपरान्त) " निष्क्रियाणि च " यहां इसी अध्याय के (इस सातवां सूत्र में)

धर्मादीनाम्॥ आकाश- =धर्मादिक द्रव्यों स आकाश

अन्तानाम्॥ निष्क्रियत्वे॥ प्रतिपादिते॥ =पर्यन्तनिके (अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश-के)हलनचलनक्रियासेरहितपनाकेकथनकरनेमें

इतरेषाम्॥ जीवपुद्गलादीनाम्॥ सक्रियत्व-प्राप्तिवत् ॥ =अन्यशेष जीव पुद्गल (द्रव्य)निके क्रिया सहित पनाकी प्राप्तिके समान

कालस्य॥ अपि ॥ सक्रियत्वम्॥ स्यात् ॥ =कालकेभी सक्रियपना होजाता(परन्तुकालनिष्क्रिय है ही) ॥

॥ अथ ॥ आकाशात्॥ प्राक् ॥ =यदि (अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः सूत्र के)आकाश(शब्द)के पहिले

कालः॥ उद्दिश्येत ॥ =काल उपदेश कियागया होता तो अर्थात् इस का प्रथम सूत्र अजीवकाया धर्माधर्मा कालपुद्गलाःके स्थानमें अजीवकाया धर्माधर्मकालाकाशपुद्गलाः ऐसाकहते तो?

तत्॥ न ॥ आ ॥ आकाशात्॥ =(उत्तर)सोनहीं क्योंकि छठा सूत्रकि(इसअध्यायकेप्रथमसूत्रके)आकाश(शब्द,पर्यंत(=आ)

एकद्रव्याणि॥ इति ॥ =एक एक द्रव्य हैं अर्थात्-धर्म-अधर्म आकाश एक एक द्रव्यहैं ऐसे

( )कल कालके सात कर्मोसे अधिकदाके पर भी यहां 'धर्मि' क पाठ' से है (देखो देव संस्करणोपक बाला पृष्ठ १२) (७) किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें 'उद्दिश्यत' पाठ है हमारी समझ में 'उद्दिश्यत' शब्द ठीक है क्योंकि 'दिश्' तुदादि कठको गणक धातुमें 'उद्' अव्यय आ क्रिया के साथ आनेवर उपसर्ग कहलाता है जोड़ने से 'उद्दिश्' बनता है इस में कर्मणि प्रयोग का य चिन्ह जोड़कर 'उद्दिश्य' बना इसमें 'त' अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान कालका चिन्ह लगाने से 'उद्दिश्यते' उपदेश किया जाता है यह हुआ ईत प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) एक वचन आत्मने पदी विधिलिङ् चिन्हाच 'उद्दिश्य' शब्दके लगाने से उद्दिश्य+ईत=उद्दिश्येत बना उद्दिश्येत=उपदेश किया गया होता इसी अर्थ में नतीजा है अर्थात् यदि काल प्रथम सूत्रमें कहने और-आकाश के पहले उपदेश किया गया होता तो एक द्रव्यपना कालके होता परन्तु कालके अनेकपना है ॥

एकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पृथगिह कालोद्देश क्रियते॥ अनेकद्रव्यत्वेसति किमस्य प्रमाणं? । लोकाकाशस्य यावन्त प्रदेशा

एकद्रव्यत्वम्॥ अस्य॥ स्यात्॥	=(यदि धर्म अधर्म और आकाश केमध्य में काल होता तो)एक द्रव्यपना इस(काल)के भी होजाता
तस्मात्॥ पृथक्॥ इह॥ काल-उद्देश॥ क्रियते॥	=तिस (कारण) से न्यारा इस स्थानमें (=इह)कालका कथन कियागया है ॥
अनेकद्रव्यत्वे॥ सति॥ किम्॥ अस्य॥ प्रमाणम्॥	=अनेक द्रव्यपना होनेमें (=सति)इस (काल) का क्या प्रमाण है ! अर्थात् काल को अनेक द्रव्य कहा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥
लोक आकाशस्य॥ यावन्त॥ प्रदेशा॥	=लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं ।

(१) यदि पूर्वोक्त कारणोंसे प्रथम सूत्रसे बचाना था इतने अन्तरसे क्यों कहा? इस अध्यायका तीसरा सूत्र ऐसा रचते कि 'कालोजीवाश्च' वा जीवाः कालश्च इन दोनों विधिमें एक 'च'कम भी होजाता है क्योंकि जीवाश्च तीसरा और कालश्च उनतालीसवां सूत्रोंमें दो चकार हैं यदि तीसरा सूत्र 'जीवाश्च' ही रचना था तो कालोऽपि इसको इस 'जीवाश्च' तीसरे सूत्रकी वार्तिक मान लेते अथवा 'जीवाश्च' सूत्रके पश्चात् 'कालोऽपि' ऐसा भिन्न सूत्र करते तो चार सूत्रों में "द्रव्यस्वरूपप्रकरण" भी समाप्त होजाता क्योंकि प्रथम सूत्रमें चारद्रव्य कहे दूसरे सूत्रमें धर्म अधर्म आकाश-पुद्गलको सत्ता स्थापित की तीसरे में जीवों को भी द्रव्य नाम दिया । चौथेमें वा 'जीवाश्च' ही सूत्रमें मिलाकर काल कहना योग्य था कि द्रव्य नामा विषय चार वा तीन सूत्रोंमें समाप्ति होजाता। इन वातोंके उपरान्त चौथे छठवें और सातवें (अर्थात् नित्यावस्थितान्यरूपाणि ४॥ आआकाशादेक द्रव्याणि । ६॥ निष्क्रियाणि च ।७॥) सूत्रोंके अर्थ करनेमें कि काल द्रव्य सहित नित्य हैं अवस्थित हैं अरूपी हैं धर्म अधर्म आकाश ये तीन एक एक द्रव्य हैं और जीव पुद्गल-काल अनेक द्रव्य हैं। धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं काल भी निष्क्रिय है खैंचातानी न करनी पड़ती और सुगमतासे (काल को जीव के समीप द्रव्य कहते तो) इन सूत्रों के अर्थ हो जाते । सातवां सूत्र "निष्क्रियाणि च" का अर्थ मेरी समझ में चकारको समुच्चय अर्थमें लेनेसे यह अर्थ हो सक्ता है कि धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं चकार से काल भी (=च) (निष्क्रिय है)। कुछ वाक्य ज्यों के त्यों देतेहैं जो २ ४ ६ ७ ३९ वें सूत्रोंके अर्थ कर तेमें पं० जयचन्द्रजी ने 'सर्वार्थसिद्धि वचनिका में पं० सदासुखजीने 'अर्थप्रकाशिका' में तथा 'तत्त्वार्थसूत्र सटीका में काल" को द्रव्य ३९ वां सूत्र के अनुकूल मानकर अर्थ किया है(क)"जीव हैं ते भी द्रव्यहैं ऐसे च आगे कहेंगे जो काल द्रव्यको ताकरि सहित छहद्रव्यहैं। धर्म अधर्म आकाश जीव पुद्गल काल इन छहनि के द्रव्य नाम कहिये हैं । जीवाश्च ।३॥ के अर्थमें ये वाक्य हैं पृ० ४०८ (मुद्रित) (ख) तातैं अवस्थित कहे धर्मादिक छह द्रव्य हैं । पृष्ठ ४१२ (नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस सूत्र के अर्थ में) यह वाक्य है (ग) 'बहुरि आगे कहियेगा काल द्रव्य सो भी क्रिया रहित है" यह वाक्य निष्क्रियाणि च"के अर्थमें पृष्ठ ४१६ परवचनिकामेंहै(घ)"आगे कहेंगे जो काल य पांचों अजीव द्रव्यहैं"।"यह यहां कहाजीव द्रव्यकालकरि सहित छह द्रव्य जानने" ये वाक्य जीवाश्च सूत्रके अर्थमें कहेहैं अर्थ प्रकाशिका पृ० २८७(ङ) 'ए धर्मादिक द्रव्यहैं ते अपनी अपनी संख्या कदाचित्कोऊहैं पांच नहीं होय सात नहीं होय तातैं अवस्थित हैं ।"अर काल कै एक प्रदेशीपना है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याको नहीं छोड़े है तातैं अवस्थित हैं" ये वाक्य 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस चौथे सूत्र के अर्थ में आये हैं (देखो अर्थ प्रकाशिका पृ २८८) (च) "धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनि कों एक एक कहने तैं ही जीव पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनि कै अनेकपना आया काल द्रव्य असंख्यातहैं"। ये वाक्य छठवां सूत्र के अर्थमें हैं, देखा

१४ तावन्त कालाणवो निष्क्रिया एकैकाकाशप्रदेशे एकैकवृत्त्या लोकं व्याप्य व्यवस्थिता ॥ उक्तं च—
५ लोगागासपदेसे एक्केक्के जे

२ तावन्तः।कालअणवः।निष्क्रियाः।एकैक आकाश- =तितनेकालकेअणु हलनचलनरूपक्रियारहित एकएक (लोक)आकाशके प्रदेशे।एकैक वृत्त्या।लोकं।व्याप्य + व्यवस्थिताः।उक्तम्।च =प्रदेशमें एकएक स्थितिकरि लोकको व्याप्त करि तिष्ठैं॥कह्याभीआचार्यनि लोगागास-पदेसे।एक्केक्के।जे।(=लोकाकाश-प्रदेशे।एकैकस्मिन्।ये।)=लोकाकाशके प्रदेश एक एक में जो

(अर्थ प्रकाशिका पृ-२८६)(क) 'धर्म अधर्म आकाश तथा आगे कहेंगे काल द्रव्य एकद्रव्य हो निष्क्रिय हैं' यह ७वां सूत्रके अर्थ में है पृ २९०(ख)"वर्त्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए काल द्रव्यकृत उपकार हैं"। 'सब द्रव्यनिके वर्तावनेवाला कालद्रव्य है यह वर्त्तनाहीमा कालद्रव्यका अस्तित्व जनावै है। (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३०८) "द्रव्यनिका पर्याय वर्त्तै है ताका वर्तावने वाला काल द्रव्य है। "कालस्तु द्रव्य है" ये सर्व ही वाक्य २२ वां सूत्र वर्त्तना इत्यादि के अर्थ में कह हैं। (यदि ३९वां सूत्र के समीप काल द्रव्य कहते तो यह पौंचा तानी अर्थ में क्यों करने लगी। क्यों कि जब तक आचार्य काल द्रव्य को न उपदेशैं तब तक टीका कारोंको उसका काल द्रव्य के नाम से पुकारने का क्या अधिकार है)(ग) "जीव धर्म अधर्म आकाश अब ये पांच द्रव्य नित्य कहिये अविनाशी हैं" चौथे सूत्र का अर्थ किया है। "इन द्रव्यमें पुद्गल द्रव्यरूपी हैं"। यह 'रूपिणः पुद्गलाः' के अर्थ में है(द्रव्य तो पांच ही अब तक कहे छठवां ये कहां से लाए। जिस वस्त नाको वाह्यनिमित्त काल द्रव्य है। नमस्त काल द्रव्य का उपकार है' में दो वाक्य वर्त्तना-परिणाम इत्यादि बाईसवां सूत्र के अर्थ में है। तत्त्वार्थ सूत्र लघु टीका सदासुखकृत पृष्ठ२१,२२,। अब पुनः कोई प्रश्न है कि इन सर्व कठिनाइयों और उलझनों को सहन करते हुए उमास्वामी ने इस सूत्र को क्यों इतने अन्तर से पठन किया। इस अनुवादक की अल्प बुद्धि के अनुसार यह विशेष कारण ज्ञात पड़ता है कि आचार्यों में परस्पर इस बात पर मत भेद था कि कितने ही काल को द्रव्य मानते थे और कितनेही इसको द्रव्य नहीं मानते थे इसी लिये तत्त्वार्थ सूत्रके कर्ताने द्रव्यव्यपदेश प्रकरण का छोड़ कर अर्थात् ३९वां के समीप इस सूत्र को न कह करि २२ वां सूत्र में कालका उपकार और द्रव्यों के लक्षण बताकर पश्चात् ३८वां सूत्रमें द्रव्य का लक्षण मत् कहा और 'गुणपर्ययवत् द्रव्यम्(वा गुणपर्यायवद्द्रव्यम्) इत्यादि सूत्रमें विशेष रूपसे द्रव्य का लक्षण कहा अब द्रव्यके सर्व प्रकारके लक्षण स्थापित करदिये तत्पश्चात् "कालश्च" यह सूत्र कहा और साधारण असाधारण द्रव्य के सर्व लक्षण कालमें घटित किये कि अपना मत कि काल भी द्रव्य है ऐसे प्रकार से पुष्ट करादिया। कालमें द्रव्य लक्षणोंके लक्षणमें देखो सर्वार्थ सिद्धि संस्कृत वृत्ति पृष्ठ १०७ पंक्ति ११-१७ और पृष्ठ १०८ पंक्ति १-६ तक इसका अनुवाद पर्व में करदिया है। (घ) इस मत के पुष्टि करने के लिये एक प्रमाण और देते हैं। यह यह है कि श्वेताम्बर आम्नाय के 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में और 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका' में इस सूत्र को "कालश्चेत्येके" ऐसे लिखा है (=अर्थात् काल च इति एके)। भाष्यम्। एकेत्वाचार्या व्याचक्षते कालोऽपि द्रव्यमिति =कोई एक आचार्य ऐसा कहते हैं कि काल भी द्रव्य है। इन वाक्यों से जाना कि आचार्यों में काल के सम्बन्धमें मत भेद था कि कालको द्रव्य माने या न माने (१) यहाँ २ [illegible] ऐसा पाठ है [illegible] हो है। (२) यहाँ २ [illegible] ऐसा पाठ है॥

ठिया हु एक्केक्के ॥ रयणाणं रासीविव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ १॥ रूपादिगुणविरहादमूर्त्ता ॥ वर्तना-

लक्षणस्यमुख्यस्यकालस्यप्रमाणमुक्तम्।परिणामादिगम्यस्यव्यवहारकालस्यकिंप्रमाणमित्यतइदमुच्यते-

(१ ठिया॥(२ हु॥(३ एक्केक्के॥ (स्थिताः॥ हि॥ एकैके॥) =एक एक (कालाणु) निश्चय करके(=हु=हि)स्थित

रयणाणं॥ रासी॥ ४ विव॥(रत्नानाम्॥ राशिः॥ इव॥) = रत्नोंकी राशिके समान हैं

(५) ते॥ काल-अणू॥ असंख-दव्वाणि॥ } = वे कालके अणु असंख्यात द्रव्य हैं अर्थात् एकएक लोकाकाशके प्रदेशमें जो एकएक

ते॥ काल-अणवः॥ असंख्य-द्रव्याणि॥ } कालके अणु रत्नोंकी राशिके समान निश्चयकरके स्थित हैं, वे असंख्यात द्रव्य हैं ॥

आचार्य एक एकके क्रमसे लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उतनेही प्रदेशोंमें निश्चय कालके असंख्य अणु रत्नोंकी राशिके समान भरेहुए हैं। रत्नोंके ढेरका उदाहरण देनेका अभिप्राय यह है कि जिनका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न भिन्नभिन्न है उसी प्रकारसे कालके अणु पृथक् पृथक् एकके पश्चात् एकक्रमसे भरे हुए हैं। इसीलिये जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतनेही कालद्रव्य गणनामें हैं ॥

रूप-आदि-गुण-विरहात्॥ अमूर्त्ताः॥ । = रूपादि गुणोंसे रहित (कालाणव) अमूर्तीक हैं

वर्तना-लक्षणस्य॥ मुख्यस्य॥ कालस्य॥ प्रमाणम्॥ = (प्रथम) वर्तना लक्षणवाले मुख्य कालका प्रमाण

उक्तम्॥ परिणाम-आदि-गम्यस्य॥ व्यवहार = कहागया। परिणाम-क्रिया-परत्व अपरत्वकरि ज्ञात होनेवाले (ऐसे) व्यवहार

कालस्य॥ किम्॥ प्रमाणम्॥ इति॥ अतः॥ इदं॥ उच्यते = कालका क्या प्रमाण(वा निश्चयकरण)है इसलिये यह (अग्रिम सूत्र) कहाजाता है कि

(१) ठिया-स्थिताः प्राकृतमें विसर्ग नहीं है और भिन्न वर्गीय वर्णोंका (अक्षरोंका) संयोग नहीं होता भिन्न वर्गके पञ्चम अक्षरका कहीं २ संयोग होता है। इसलिये ठिया ट्ठिया ऐसे पाठ हैं क्यों कि ट ठ भिन्न वर्गके अक्षर नहीं है (२) हु (संस्कृत) हि=ही निश्चय करके। (३) एक्कक्के यह शब्द दो स्थानोंमें आया है ऊपर जिस प्रकार यह गाथा लिखी है उसमें इसका सर्व नाम मानाहै इसलिये'सर्व'शब्दके सदृश एकैकस्मिन् पुल्लिंग सप्तमी विभक्ति एक वचन पहिले शब्द 'एक्केक्के' की संस्कृत छाया लिखी है और द्वितीय एक्केक्के की 'सर्व' शब्दके सदृश सर्वनाम संज्ञा मानकर 'एकैके' पुल्लिंग प्रथमा विभक्ति बहु वचनमें संस्कृत छाया दी है।जहां'एक्कक्का'पाठ है वहां सर्वनाम नहीं मानाहै वहां प्रथमा है एकैका'संस्कृतछाया है

रासी-(३)यह शब्द प्राकृत शब्द 'रासि' का पुल्लिंग एकवचन प्रथमाविभक्ति है, जैसे-प्राकृत'हरि'से हरिःसंस्कृत छाया राशिःहै (४)विव पिव, मिव, इव तीन प्रकारके पाठ हैं मिव-पिव विव,व्व विव इवार्थे वार १८हेमचन्द्र आचार्यकृत प्राकृतव्याकरण।येइवप्रत्यय इव अर्थमेंविकल्पसे अर्थात् किसी के स्थानमें कोई आते हैं इव न तो हेमचन्द्र आचार्यकृत प्राकृत व्याकरणमें मिला न शौरसेनी अव्यय प्रकरणमें मिलाकिन्तु द्रव्यसंग्रह की २४वीं गाथामें "काया इव बहुदेसा" इस वाक्य में आया है इससे जाना जाता है कि प्राकृत में 'इव' भी कहीं२ काममें आतेहैं(५)"ते कालाणू असंख दव्वाणि" पांच प्रतियों में ऐसा पाठ है पं० मनोहरलाल जी और पं० खूबचन्द्र जी द्वारा संपादित गोम्मटसार में 'असंख दव्वाणि के स्थानमें" 'मुणेयव्वा' है जिस की संस्कृत छाया मन्तव्या' है ध्यान रखना चाहिये पूज्यपादस्वामी नेमिचन्द्र आचार्यसे पहिले हुए हैं जिनने गोम्मटसार, द्रव्यसंग्रह इत्यादि रचे हैं।

॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

साम्प्रतिकस्यैकसमयिकत्वेऽपि अतीता अनागताश्च समयाअनन्ता इति कृत्वा अनन्तसमय इत्युच्यते अथवा मुख्यस्यैव कालस्य प्रमाणावधारणार्थमिदमुच्यते ॥ अनन्तपर्यायवर्त्तना हेतुत्वादेकोऽपि

(१)सूत्रम् (२)सो ऽनन्त समय ॥४०॥ =स (२)काल अनन्तसमय अस्ति ॥४०॥

सूत्रार्थ—सः ॥ काल ॥ अनन्तसमयः ॥ अस्ति ॥	=यह काल अनन्त समयवाला है । अथवा यह काल अनन्त समयरूप है ॥ अर्थात् वर्तमान काल तो एक समय मात्र है किन्तु अतीत (भूत) और अनागत (भविष्यत्) काल के समय अनन्त हैं ॥
वृत्त्यर्थः—साम्प्रतिकस्य ॥ एकसमयिकत्वे ॥	=वर्तमान (काल)का एक समय होने पर
अपि अतीता ॥ अनागता ॥ च समयाः ॥ अनन्ताः ॥	=भी भूत और भविष्यत् समय अनन्ते हैं ।
इति कृत्वा अनन्तसमयः ॥ इति उच्यते ॥	=ऐसा करके अनन्त समय (=अनन्त समयवाला) ऐसा (सूत्र) कहा गया है ॥
अथवा मुख्यस्य एव कालस्य ॥ (३)प्रमाण	=अथवा मुख्य ही कालका परिमाण (मर्यादा-इयत्ता)
अवधारण अर्थम् ॥ इदम् ॥ उच्यते ॥	=निश्चय करनेके लिये यह (सूत्र) कहागया है (कि मुख्य कालका परिमाण-सीमा मर्यादा-इयत्ता-अनन्त समय है)
अनन्त-पर्यायवर्तना-हेतुत्वात् ॥ एकः ॥ अपि	=अनन्त पर्याय वर्तन (पदार्थों के परणति में बाह्य सहकारिता) के निमित्तपनासे एक भी

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥

(२) 'तद्' का पुल्लिङ्ग एक वचन प्रथमा विभक्ति 'सः' है और इसके पश्चात् क्योंकि स्वर 'अ' अनन्त शब्दका सूत्रमें आये हैं इससे विसर्ग रहा और इसका उकार होकर अ+उ मिलकर "ओ" रूप होगया पुनः ओ और ए के पश्चात् 'अ' 'ए अथवा ओ' में गर्भित होजाताहै । और अ के स्थानमें ऽ ऐसा चिन्ह विस्तार से कर देतेहैं वह चिन्ह सूत्रमें देखो विद्यमान है (अध्याय प्रथम पृष्ठ १०) ॥ अर्थ 'सः' के पश्चात् व्यञ्जन का व्यंजनसे आरम्भ होता है लोप तब (अष्टाध्यायी सूत्र ६ १ १३२) से विभक्ति प्रत्यय 'स' अर्थात् विसर्ग जाता रहा और ऊपर 'स कालः' ऐसा लिखागया है ॥

(३) "प्रमाणंहेतु-मर्यादाशास्त्रेयत्ताप्रमातृषु" अमरकोश नानार्थवर्ग ३३ श्लोक ७४ का प्रथमार्ध है ॥ प्रमाणका अर्थ (क) हेतु कारण (ख) मर्यादा सीमा (ग) शास्त्र षड्दर्शन (घ) इयत्ता प्रमाण मात्र परिच्छेद (=विभाजक से इयत्ताकरण) (ङ) प्रमाता ज्ञाता यहां पर मुख्य कालका परिमाण माप के अर्थ में है कि मुख्य काल कितना है ॥

पंच चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा देशोना.।

वा चतुर्दशभागाः ₁। पंच ₁। = वा [लोकत्रसनालीके] चौदह राजू हैं।

(सो मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे) कुछ घाटि पांच

चत्वार ₁। देशोना ₁। द्वौ ₁। = कुछ हीन चार कुछ न्यून दो राजू छुये जाते हैं अर्थात्

सासादन गुणस्थानवर्तीका सातवें नरकमें मरण नहीं होता है अतः मारणान्तिक समुद्घात भी उसके सातवें नरकमें नहीं हो सका है परन्तु कृष्णलेश्यासे युक्त छठवां नरकमें मरण करे और मध्यलोकमें जन्म लेवे सब मारणांतिक समुद्घात करे तब मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन पांच राजू स्पर्शे है क्योंकि छठवा नरकसे मध्यलोक तक पांच राजूकी ऊंचाईमें है, इसीप्रकार पांचवां नरकसे उत्कृष्ट नील लेश्यावाला सासादन गुणस्थानवर्ती मरकर मारणांतिक समुद्घात करे और मध्यलोकमें जन्म लेवे तो मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ न्यून चारराजू क्षेत्र छुवा है क्योंकि पांचवा नरकसे मध्यलोक चार राजू ऊंचा है, वैसे ही तीसरे नरकसे मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा उत्कृष्ट कापोतलेश्यावाले सासादन गुणस्थानवर्ती कुछ घाटि दो राजू छूते हैं क्योंकि तीसरे नरकसे मध्यलोक दो राजू ऊंचा है।

(१) एक द्वि त्रि चतुर पञ्चन् षष् सप्तन् अष्टन् नवन् दशन् एकादशन् द्वादशन् त्रयोदशन् चतुर्दशन् पञ्चदशन् षोडशन् सप्तदशन् अष्टादशन् नवदशन् तक विशेष्य समझे जासक्ते हैं उनके वचन और विभक्ति वही होती है जो सज्ञाकी होती है जिसके साथ व आती है और एक द्वि त्रि चतुरका लिंग भी संज्ञाके समान होता है शेष संख्या तीनों लिंगोंमें आती जा सक्ती हैं अतः यहां विधियो भी हो सक्ता है।

(१) काऊ, काऊ, काऊ, णीला णीला य णील किण्हा य। किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥ गोम्मटसारे कर्मकाण्डलेश्यामार्गणायामिय गाथा ५२९ दृश्यते ॥ अस्या गाथाया अर्थः कथ्यते—प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां जघन्या कपोतलेश्या भवति, द्वितीयायां मध्यमा। तृतीयायामिन्द्रकेषु उत्कृष्टा। शेष पटलेषूपरि उत्कृष्टा तथैव केषांचिन्नारकाणां जघन्या नीललेश्या भवति। चतुर्थ्यां तस्यां मध्यमा नीला। पंचम्यां पृथिव्यां उपरिमेषु चतुर्षिन्द्रकेषु उत्कृष्टा एव। पटलेषु उत्कृष्टा नीललेश्या जघन्या कृष्णलेश्या च भवति ॥ षष्ठ्यां मध्यमा कृष्णलेश्या। सप्तम्यां पृथिव्यां उत्कृष्टा कृष्णलेश्या। ततः षष्ठपृथिवीतः मारणान्तिकं कुर्वाणान् कृष्णलेश्या सासादनानपि पञ्चचतुर्दशभागाः कथिताः ॥

काऊ ।।। काऊ ।।। (=कापोता ।।। कापोता ।।।) = (यथासंख्य वा अनुक्रमसे) कापोतलेश्या कापोतलेश्या,

काऊ ।।। णीला ।।। णीला ।।। य (=कापोता ।।। नीला ।।। नीला ।।। च) =कापोत नीललेश्या और (=य =च) =नीललेश्या

णीलकिण्हा ।।। य, किण्हा ।।। य (=नीलकृष्णा ।।। च कृष्णा ।।। च) = और (=य) नीलकृष्णलेश्या और (=य) कृष्णलेश्या

परम-किण्हा ।।। लेस्सा ।।। (=परमकृष्णा ।।। लेश्या ।।। = (तथा) उत्कृष्ट कृष्णलेश्या

पढमादि-पुढवीण ।।। (=प्रथमादि—पृथिवीनाम् ।।।) =पहिले, दूसरे, तीसरे चौथे पाँचवे, छठे सातवे नरककी (पृथिवीकी) है अर्थात् यहाँपर नारकियोंके भाव लेश्याकी अपेक्षासे कथन है यथा प्रथम नरकमें कापोतलेश्या का जघन्य अंश है तथा दूसरे नरकमें कापोतलेश्याका मध्यम अंश है । तथा तीसरी पृथिवीमें कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अंश और नीललेश्याका जघन्य अंश है, तथा चौथे नरकमें नीलका मध्यम भाग है पाँचवी पृथिवी अरिष्टामें नीललेश्याका उत्कृष्ट अंश और कृष्णलेश्याका जघन्य अंश है । छठा नरक मघवीमें कृष्णलेश्याका मध्यम अंश है माघवी सातवें नरकमें कृष्णका उत्कृष्ट अंश है । प्राकृत भाषामें इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंकी तृतीया विभक्तिसे लेकर सप्तमी विभक्ति तकके सर्वरूप रुचि शब्दके रूपोंके सदृश हैं और रुचि शब्दकी षष्ठी विभक्ति बहुवचन " रुचीणं " है अतः पृथिवीके षष्ठी बहुवचनमें लिखा गया है प्राकृत सुबन्तरूपोंमकरो पृष्ठ १७०-१७८

गोमट्टसार ।।। कर्मकाण्डे ।।। लेश्यामार्गणायाम् ।।। =गोमट्टसार कर्मकांडमें लेश्यामार्गणा (प्रकरण) में

इयम् ।।। गाथा ।।। ५२१ वर्तते =यह गाथा ५२१ वीं लिखी आती है ॥

अस्याः ।।। गाथायाः ।।। अर्थः ।।। कथ्यते प्रथमायां ।।। =इस आर्या छंदका अर्थ कहा जाता है-पहिले

पृथिव्यां ।।। नारकाणां ।।। जघन्या ।।। कापोतलेश्या ।।। =नरक (=पृथिवी)में नारकियोंके जघन्य कापोत लेश्या होती है ।

द्वितीयायां । मध्यमा । तृतीयायाम् ।	—दूसरे (नरक) में मध्यम कापोत लेश्या होती है तीसरे (नरक) में
अष्टेषु । इन्द्रकेषु । उत्कृष्टा ।	—आठ इन्द्रक बिल (=पटलके मध्यके बिल) में उत्कृष्ट कापोत होती है
सा । एव * चरम-इन्द्रके । उत्कृष्टा ।	—वह (कापोत लेश्या) ही अंतके इन्द्रक बिलमें उत्कृष्ट है
च तत्र एव केषांचित् * नारकाणां ।	—और वहां (तीसरे नरकमें) ही कितने नारकियोंके
जघन्या । नीललेश्या । भवति ।	—जघन्य नील लेश्या होती है ।
चतुर्थ्यां । तस्याम् । मध्यमा । नीला ।	—तिस (=तस्याम्) चौथी (पृथिवी अथवा नरक) में मध्यम नील लेश्या है
पञ्चम्याम् । पृथिव्याम् । उपरिमेषु । चतुर्षु ।	—पांचवें नरकविषैं ऊपरमें चार
इन्द्रकेषु । उत्कृष्टा । सा । एव । चरम-इन्द्रकेषु ।	—इन्द्रक बिलमें उत्कृष्ट (वही नील) है अंतके इन्द्रक बिलमें
उत्कृष्टा । नीललेश्या । जघन्या । कृष्णलेश्या ।	—उत्कृष्ट नील लेश्या है तथा जघन्य कृष्णलेश्या
च भवति षष्ठ्यां । मध्यमा । कृष्णलेश्या ।	—होती है । छट्ठी (पृथिवी) विषैं मध्यम कृष्णलेश्या है
सप्तम्यां । पृथिव्याम् । उत्कृष्टा । कृष्णलेश्या ।	—सातवी पृथिवीमें उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या है
चतुर्दश । भागा । तत्र षष्ठपृथिवीतः*	—(लोक असनाडीके) चौदह राजू हैं (सो) तहां छट्ठी नरकसे
मारणान्तिकं । कुर्वाणाः ।	—मारणान्तिक समुद्घात करते हुये
कृष्णलेश्यासासादनानाम् । प्रति *	—कृष्णलेश्यावाले दूसरे गुणस्थानवर्तीनके (स्पर्शनके)
पञ्च । कथिताः ।	—पांच (राजू) कहे गये हैं ॥ 'मारणान्तिकोऽस्ति' वाक्यमें मारणान्तिक शब्द पुल्लिंगमें है अतः हमने भी पुल्लिंग माना है

सप्तमपृथिवीपरित्यागः कुत इति चेत् "तमतमप्रभापढविगया य ण मरतीति " वचनेन तमप्रभासासादनानां मरणाभावात् । मरणाभावेऽपि मारणान्तिकाभावप्रतीतिः कथमिति चेत्—कृष्णलेश्यापेक्षया पञ्चचतुर्दशभागा इति वचनान्यथानुपपत्तेः । पञ्चमपृथिवीचरमेन्द्रकात् नीललेश्यो–

तृतस्थानात् मरणान्तिकं कुर्वद्भिः सासादनैश्चत्वारश्चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः । २६ । तृतीयपृथ्वीचरमेन्द्रकात्कपोतलेश्योत्कृष्टस्थानान्मारणान्तिकं कुर्वद्भिः द्वौ चतुर्दशभागौ स्पृष्टौ । २७ । ईशोनत्वे भोगभूमिषु प्रतिपादनस्यसमात् ।

सप्तमपृथिवीपरित्यागः ६। कृतः *	=सातवीं नरकका छोड़ना (सासादनोंकरि) क्योंकर हो
इति चेत् *	=ऐसे संदेह पर (कहते हैं)
च * तमतमप्रभ (=च तमस्तमप्रभ)	=और (=च) महातम प्रभा पृथिवी (=सातवें नरक) के (सम्यक्त्व) गुण
पतितपतना (=प्रतिपन्ना ६।)	=वाले "सासादन-मिश्र-असंयत नारकी" (दूसरे-तीसरे-चौथे-गुणस्थानोंके)
न * मरति T (=न म्रियन्ते T)	=नहीं मरते हैं सारांश कि सातवें नरकमें सम्यक्त्वसहित जीव मरता नहीं है
इति वचनेन ३।। तस्य*	=ऐसे (गोम्मट्टसार कर्मकाण्डके ५१ वे गाथाके मत) वाक्यकरि यहांवाले
सासादनस्य ६। मरण-अभावात् ५।	=दूसरे गुणस्थानवर्तीका मृत्युके न होनेसे (सातवीं नरकका परित्याग किया है)
मरण-अभावे ७। अपि मारणान्तिक-असम्भवतीति	=मौतके न होने पर भी मारणान्तिक समुद्घातके न होनेका विन्यास वा समाधान
कथम् * इति* चेत् *	=कैसे ? इसप्रकार संदेह होनेपर (कहा जाता है)
चतुर्दश ३। भागाः ६। कृष्णलेश्या—अपेक्षया ३।।	= क्योंकि (लोक असनालके) चौदह भाग हैं सो कृष्णलेश्याकी विवक्षाकरि
पञ्च ६। इति-	=पांच (राजू मारणान्तिक अपेक्षासे छूये जाते) हैं इस
वचन-अन्यथा-	=वाक्यकी दूसरे प्रकार (अर्थात् मरणके अभाव होनेपर मारणान्तिकका अभाव न
अनुपपत्तेः ५।।	=होता तो) यथार्थता न बनती
पञ्चमपृथिवीचरम + इन्द्रकात् ५।।	=पांचवीं नरकके अन्तके इन्द्रकबिलेसे
नीललेश्या + उत्कृष्टस्थानात् ५।। सासादनैः ३।	=नीललेश्याके उत्कर्षस्थानसे दूसरे गुणस्थानवर्तीनसे
मारणान्तिकं २। कुर्वद्भिः ३।	=मारणान्तिक समुद्घातकरनेकरि
चत्वारः ३। चतुर्दश ६ भागाः ३। स्पृष्टाः ३।	= (लोक असनालके) चौदहराजू हैं सो चार राजू स्पर्श जाते हैं

"द्वादशभागा. कुतो न लभ्यन्ते इति चेत् तत्रावस्थितलेश्यापेक्षया पञ्चैव। अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादशभागा न दत्ता. ।"

द्वादशभागाः कुतः न लभ्यन्ते इति चेत्	= बारह राजू क्योंकर नहीं लिये गये हैं ऐसी शंका [= चेत्] पर कहते हैं कि
तत्र अवस्थित-लेश्या-अपेक्षया	= वहां [नरकमें] नियमित (= अवस्थित) लेश्या (होने) की विवक्षासे
पञ्च एव	= (चौदह राजू त्रसनालीमेंसे) पांच ही राजू [छठे नरकवाले सासादन गुणस्थानवर्ती जीव कृष्ण नील कापोत लेश्याओंके धारकोंसे] छुये जाते हैं ॥
अथवा येषाम् मते सासादनः एकेन्द्रियेषु	= या जिनके मतमें सासादन गुणस्थानवर्ती एकेन्द्रिय (जीवों) में
न उत्पद्यते तत्-मत-अपेक्षया	= नहीं उपजता है उनकी सम्मतिकी विवक्षासे
द्वादशभागाः न दत्ताः	= बारह राजू (= भागाः) नहीं दिये गये हैं अर्थात् जो आचार्य मानते हैं कि सासादन गुणस्थानवर्ती एकेन्द्रियोंमें जन्म लेता है उनकी अपेक्षासे कुछ हीन बारह राजू भी स्पर्श हो सकता है और जिनका मत है कि एकेन्द्रिय में जन्म नहीं लेता है उनके मतानुसार केवल कुछ न्यून पांच राजू स्पर्श हैं
३४३	= समस्त लोकके एक राजू लंबे, एक राजू चौड़े एक राजू ऊंचे खंड किये जांय तो तीनसौ तेतालीस घनाकार भाग होंगे ऐसे चौदह घनाकार राजूओंकी त्रसनाली है उसके चार घनाकार राजू किये हैं अतः चार बटे हुये तीनसौ तेतालिस हैं ।
तृतीयपृथ्वीचरम + इन्द्रकात् कपोतलेश्या-	= तीसरे नरकके अन्तके इन्द्रकबिलेसे कपोत लेश्याके
उत्कृष्टस्थानात् मारणान्तिकम् कुर्वाणैः	= उत्कृष्ट स्थानसे (दूसरे गुणस्थानवर्तीमेंसे) मारणान्तिक समुद्घात करनेवालोंकरि
द्वौ चतुर्दश भागौ स्पृष्टौ	= (लोकत्रसनालीके) चौदह राजू हैं (सो) दो राजू स्पर्श जाते हैं
३४३	= तीनसौ तेतालिस घनाकार राजूओंमेंसे (त्रसनालीके) दो घनाकार राजू लिये हैं।
भोगभूमिषु अविधौ अस्पर्शनात्	= भोगभूमियोंके अविधि (कोने) में स्पर्शन न होनेसे
देश-ऊनत्वम्	= कुछ न्यूनपना (पांच चार तथा दो घनाकार राजू क्षेत्रमेंसे) है

सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः।

सम्यङ्मिथ्यादृष्टि–	=(कृष्णनील–कपोतलेश्यावाले) मिश्रगुणस्थानवर्ती और
असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ३। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	=(कृष्ण–नील–कपोतलेश्याके धारक) असंयत सम्यग्दृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवा अंश [स्पर्शा जाता है]

(१) षष्ठपृथ्वीपर्यन्तस्थितानामशुभलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति। अतो लोकस्यासंख्येयभागः कथमिति चेत्–तेषां मनुष्यक्षेत्रे एवोत्पत्ति सद्भावेन एकरज्जुविष्कम्भे सर्वत्र स्पर्शाभावादिति ब्रूमः। श्रेणीबद्धप्रकीर्णकवर्तिनामपि स्वकीयस्वकीयपृथिव्यामेव इन्द्रकपर्यन्तं तिर्यगागत्य पुनरूर्ध्वागमनात्तावानेव अन्यथा लोकासंख्येयकथनानुपपत्तेः॥

(१) षष्ठपृथ्वीपर्यन्तस्थितानाम् ३। अशुभ–	=छठवीं नरकतकके रहनेवाले कृष्ण–नील कपोत (=अशुभ)
लेश्यामसंयतसम्यग्दृष्टीनाम् ३। मरणम् १। अस्ति	=लेश्यामें चतुर्थगुणस्थानवर्तीनकी मृत्यु है।
अतः • लोकस्य ६। असंख्येयभागः १। कथम् •	=इसलिये लोकका असंख्यातवां अंश कैसे (स्पर्शा जाता है)
इति• चेत्•	=ऐसे संदेहपर (कहते है कि)
तेषाम् ३। मनुष्यक्षेत्रे ७। एव+उत्पत्तिसद्भावेन ३।	=तिन (असंयतसम्यग्दृष्टियों) का ढाईद्वीपविषै (=मनुष्यक्षेत्रे) ही जन्म होनेसे
एकरज्जुविष्कम्भे ७। सर्वत्र स्पर्श–अभावात् ५।	=एकराजू विस्तारमें सबजगह स्पर्शनके न होनेसे (असंख्यातवा भाग है)
इति ब्रूमः ❊	=इसप्रकार हम कहते हैं (वर्तमानकाल उत्तमपुरुष बहुवचन परस्मैपद अदादिगणमें ब्रू धातुका ब्रूमः होता है)
श्रेणीबद्धप्रकीर्णकवर्तिनाम् ६। अपि•	=श्रेणीबद्धबिलोंके रहनेवाले (तथा) प्रकीर्णक बिलोंके रहनेवालोंकिसी
स्वकीयस्वकीयपृथिव्याम् ७। एव इन्द्रकपर्यन्तं २।	=अपनी अपनी (स्वकीय) पृथिवीविषै ही इन्द्रकबिल (=मध्यका बिल) तक
तिर्यक् • आगत्य पुनः ऊर्ध्वागमनात् ५। तावान् १। एव•	=तिरछे आकर फिर ऊपरको गमन करनेसे इतना ही (असंख्यातवा भाग है)
अन्यथा • लोक+असंख्येयकथन+अनुपपत्तेः ५।	=दूसरे प्रकार असंख्यातका कहना सम्भव (असत्य) पतित है अर्थात् दूसरे प्रकारसे असंख्यातवाँ भागका स्पर्श नहीं बन सकता है

तेजोलेश्यैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः । अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा देशोनाः । सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः ।

तेजोलेश्यैः ॥ मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिः ॥ = पीत लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि (पीतलेश्यावाले) सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ = लोकका असंख्यातवां अंश है वा [लोक त्रसनालके] चौदह राजू हैं (सो)
अष्टौ ॥ नव ॥ देशोनाः ॥ = कुछ घाटि आठ [वा] कुछ हीन नौ (राजू) छुए जाते हैं
सम्यग्मिथ्यादृष्टि–असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ॥ = (पीत लेश्यावाले) मिश्र गुणस्थानवर्ती और असंयत गुणस्थानवर्तीनकरि
लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = लोकका असंख्यातवां अंश (छुआ जाता) है
वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ = अथवा (लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो)
अष्टौ ॥ देशोनाः ॥ (स्पृष्टाः ॥) = कुछ घाटि आठ राजू छुए जाते हैं

(१) विहारवत्स्वस्थानापेक्षया अष्टौ चतुर्दशभागाः । ८/३४३ । विहारवत्स्तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिदेवास्तृतीयपृथिवीतोऽप्यमपृथिवीबादरपृथिवीकायिकत्वेनोत्पत्स्यं मारणान्तिकं कुर्वन्ति तदपेक्षया नव चतुर्दशभागाः ९/३४३ ।

विहारवत् = (तेज लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्तीयों करि) विहारवत्
स्वस्थान + अपेक्षया ॥ चतुर्दश ॥ भागाः ॥ अष्टौ ॥ = स्वस्थान अपेक्षासे (त्रसनालीके) चौदह राजू हैं उनमेंसे आठ राजू स्पर्शे जाते हैं
८/३४३ = तीनसौ तेतालीस राजू घनाकार सब लोक है जिसमें आठ राजू लिये हैं ।
विहारवन्तः ॥ तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिदेवाः ॥ = विहार करनेवाले तेज लेश्याके (धारक) मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती देव
तृतीयपृथ्वीतः ॥ अप्यमपृथिवी– = तीसरे नरकसे मोक्षस्थान या आठ पर्यंत (=अष्टम पृथिवी) में
बादरपृथिवीकायिकत्वेन ॥ उत्पत्स्यं ॥ = बादर पृथिवी कायिकमें जन्मके लिये
मारणान्तिकम् ॥ कुर्वन्ति तद् अपेक्षया ॥ = मारणांतिक समुद्घात करते हैं तिस (मारणांतिक समुद्घातकी) विवक्षासे
चतुर्दश ॥ भागाः ॥ नव ॥ = (लोकत्रस नालके) चौदह राजू हैं (सो) नौ (राजू स्पर्शे जाते) हैं
९/३४३ = तीनसौ तेतालीस घनाकार समस्त लोक है जिसमें नौ राजू ग्रहण किये हैं

(२) विहारवत्स्वस्थानापेक्षया ८/३४३ = स्वस्थान विहार अपेक्षासे तीनसौ तेतालिस घनाकार राजू लोकमेंसे आठराजू त्रसनालके लिये हैं

सयतासयतैर्लोकस्यासंख्येयभाग• अध्यर्धचतुर्दशभागा वा देशोना• ॥

संयतासंयतै ३। लोकस्य ६। असंख्येयभाग° १।	=(पीत लेश्यावाले) देश संयमियोंकरि लोकका असंख्यातवां खंड है
वा अधि-अर्ध चतुर्दशभागा १। देशोना• १।	= वा [त्रस नालके] चौदह राजू हैं (सो मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षा प्रथम स्वर्ग) कुछ घाटि डेढ राजू [छुआ जाता] है [अध्यर्ध=अधि+ अर्ध=अधिक अर्ध यस्य बहुव्रीहि समास है अर्थात् कोई वस्तु जो अपने आधेके साथ हो ऐसा अभिप्राय है)

विहारवत्स्वस्थानापेक्षया ,᳚, । यह वही टिप्पणी है जो पृष्ठ १५२ में दोकी संख्या पर लिखी है ।

	(तेजो लेश्यावाले मिश्र गुणस्थानवर्ती और तेजो लेश्यावाले असंयत सम्यग्दृष्टिके)
विहारवत्स्वस्थान-अपेक्षया ३। ,᳚,	=विहार करने योग्य क्षेत्र लोकके तीनसौ तेतालीस घनाकार राजूमेंसे आठ राजू (प्रमाण) है ।

(१) तेजोलेश्या—देशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिकसमुद्घातापेक्षयाऽध्यर्धचतुर्दशभागाः चतुर्दशभागैस्त्रिभिर्भवितव्यम् ३४३ । सनत्कुमार माहेन्द्रपर्यन्त तेजोलेश्यासद्भावादिति चोदनायां परिहारो गोम्मटसारे जीवकाण्ड लेश्यामार्गणायां स्पर्शाधिकारे "एव तु समुग्घादे णव चोद्दस भागयं च किंचूणम् । उववादे पढमपदं दिवड्ढ चोद्दस य किंचूणं ॥ १ ॥' इति गाथायास्तृतीयपादव्याख्यान [illegible] घारश कर्तव्य ॥

तेजोलेश्यादेशसंयतैः ३।	=पीतलेश्या (वाले) संयमासंयमियों करि
क्रियमाणमारणान्तिकसमुद्घात+अपेक्षया ३।	=किये जानेवाले मारणांतिक समुद्घातकी विवक्षासे
अध्यर्धचतुर्दशभाग° १।	=(लोक त्रसनालके) चौदह (राजू) है (सो) डेढ राजू (माप) स्पर्शा जाता है
सनत्कुमारमाहेन्द्रपर्यन्तं २।	=(परन्तु यह) सनत्कुमार (तीसरे स्वर्ग) माहेन्द्र (चौथे स्वर्ग) तक
तेजस्+लेश्या सद्भावात् ५।	=पीत लेश्याके विद्यमान होनेसे
३४३	=तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू सब लोकके क्षेत्र फलमेंसे तीन घनाकार राजू
चतुर्दशभागैः ३। त्रिभिः ३। भवितव्यम् ३।	=(या लोक त्रसनालके) चौदह राजूओंमेंसे तीन (राजू) होना चाहिये

प्रमत्तापमत्तैर्लोकस्यासङ्ख्येयभागः ॥

प्रमत्त–अप्रमत्तैः ३।	=(पीतलेश्यावाले) प्रमत्त गुणस्थानवर्ती और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तीनसे
लोकस्य प असङ्ख्येयभाग ॥	=(स्वस्थान विहार अपेक्षासे) लोकका असङ्ख्यातवांभाग छुआ जाता है

इति० आगमात्यां ३। मात्सरस्सारे ३। जीवकाण्डे ३।	=ऐसी तर्कणापर (=चोदनायां) गोम्मटसार ग्रन्थमें जीवके कथनके अध्यायमें
लेश्यामार्गणायां ३। स्पर्श–अधिकारे ३।	=लेश्यामार्गणा (के वर्णन) में स्पर्शनके प्रकरण विषैं (नीचेके गाथामें)
परिहार ३।—॥ एवं ७ (=एवम०)	=समाधान है कि–"इस प्रकार ही है (=एव) अर्थात् तेजोलेश्यावाले विहारवत् स्वस्थानकी भांति 'वेदना समुद्घात अर कषायसमुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घात विषैं स्पर्श किछु घाटि चौदह भागोंमें आठ भाग प्रमाण हैं"
च समुद्घात ७। चौदस–(तु समुद्घाते ३। चतुर्दश–)	=और (=तु) मारणांतिक समुद्घातमें (=समुद्घाते) चौदह
भागस् ३।। अंश ३।। किंचूण ३।। (भाग।। अंश ३। किंचिदूर्ण) भाग (लोकके आकाशके) है (सो) भी राजू (=भाग) कुछ हीन है	
य उववादे ३।। (=च उपपादे ।।।)	=और (=च–तेजो या पद्मलेश्यावाले जीवके) उपपाद (अवस्था)में
पढम–पदं ३।। (=प्रथम–पदं ।।।)	=(स्पर्शन योग्य) उत्कृष्ट (=पढम=प्रथम) स्थान (=पद=पद)
दिवड्ढचउद्दस ,। पढ़ै (=अर्धचतुर्दश ,। च०	=(अध्यात्मके राजू) चौदहमेंसे डेढ (राजू) भी (=च)
किंचूणं ३।। ● (=किंचित् ● ऊनम् ।।।) ॥ १ ॥	=कुछ घाटि होता है ॥ १ ॥ यहां च इस बातके समुच्चयके लिये है कि कितेक आचार्योंके मतानुसार तेजोलेश्याका अस्तित्व सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोतक (जो मध्य लोकसे तीन राजू है) होनेके हेतुसे तेजोलेश्यावालोंका स्पर्शन कुछ न्यून तीन राजू उपपादकी अपेक्षासे है । गाथाकार अपने मतानुसार कहते हैं कि स्पर्शनयोग्य उत्कृष्ट स्पर्श स्थान (=पढमपदं) डेढराजूसे कुछ घाटि है उपर्युक्त गाथाके प्रमाणमें राजप्रसादजीके भाषाका कुछ भाग शब्दशः इसप्रकार है—

तेजोलेश्याका विहारवत्स्वस्थान अर वेदना समुद्घात अर कषाय समुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घातविषैं स्पर्श किछु घाटि चौदह भागमें आठ भाग प्रमाण है । कारहें ? सो कहिये है—

लोक चौदह राजू कह्या है। त्रसनाली अपेक्षा एक राजू लंबा चौडा सो तहां चौदह राजूविषैं सनत्कुमार माहेंद्रवासी उत्कृष्ट तेजोलेश्यावाले देव ऊपरि अच्युत सोलहां स्वर्ग पर्यंत गमन करैं हैं अर नीचैं तीसरी नरक पृथ्वीपर्यंत गमन करैं है सो अच्युत स्वर्गतैं तीसरा नरक आठ राजू है तातैं चौदह भागमैं आठ भाग कहे अर तिसमैं तिस तीसरा नरककी पृथिवीकी मोटाईविषैं जहां पटल न पाइए ऐसा हजार योजन घटावने तातैं किंचित् ऊन कहे हैं। तहां जो चौदह घनरूप राजूनिकी एक शलाका होइ तो आठ घनरूप राजूनिकी केती शलाका होइ? ऐसे त्रैराशिक कीयें आठ चौदहां भाग आवै है। अथवा भवनत्रिक देव ऊपरि वा नीचे स्वयमेव तो सौधर्म ईशान स्वर्गपर्यंत वा तीसरा नरक पर्यंत गमन करै है अर अन्य देवके लेगए सोलहां स्वर्गपर्यंत विहार करै है तातैं भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श संभवै है बहुरि तेजोलेश्याका मारणांतिकसमुद्घातविषैं स्पर्श चौदह भागमैं नव भाग किछू घाटि संभवै है । काहेतैं? भवनत्रिक देव वा सौधर्मादिक च्यारि स्वर्गनिके वासी देव तीसरे नरक गए अर तहां ही मरण समुद्घात कीया बहुरि ते जीव आठवीं मुक्ति पृथ्वीविषैं बादरपृथ्वीकायके जीव उपजै हैं तातैं तहां पर्यंत मरण समुद्घातरूप प्रदेशनिका विस्तारकरि दंड कीया । तिस आठवीं पृथ्वीतैं तीसरा नरक नव राजू है अर तहां पटलरहित पृथिवीकी मोटाई घटावनी तातैं किंचित् ऊन नव चौदहां भाग संभवै है। बहुरि तैजस समुद्घात अर आहारक समुद्घातविषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना जातैं ए मनुष्य लोकविषैं ही हो हैं बहुरि केवलिसमुद्घात इस लेश्यावालेके होता नाहीं। बहुरि उपपादविषैं स्पर्श चौदह भागनिविषैं किछू घाटि डेढभाग न जानना सो मध्यलोकतैं तेजोलेश्यातैं मरिकरि सौधर्म ईशानका अंत पटलविषैं उपजैं तीहि अपेक्षा संभवै। इहां कोऊ कहै कि तेजोलेश्याके उपपादविषैं सनत्कुमार माहेंद्रपर्यंत देवका स्पर्श पाइए है सो तीन राजू ऊंचा तातैं चौदह भागनिविषैं किंचित् ऊन तीन भाग क्यों न कहिए? ताका समाधान–सौधर्म ईशानतैं ऊपरि संख्यात योजन जाइ सनत्कुमार माहेंद्रका प्रारंभ हो है तहां प्रथम पटल है अर डेढ राजू जाइ अंतिम पटल है सो अन्य पटलविषैं तेजोलेश्या नाहीं है ऐसा केई आचार्यनिका उपदेश है तातैं अथवा विश्रामभूमिविषैं तिष्ठता तिर्यंच मनुष्यनिका उपपाद ईशान पर्यंत ही संभवै है तातैं किंचित् ऊन डेढ भागमात्र ही स्पर्श कह्या है। बहुरि गाथाविषैं चकार कह्या है तातैं तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं तिनके सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गका अंतका चक्र नामा इंद्रकसंबंधी श्रेणीबद्धविमाननिविषैं उत्पत्ति केई आचार्य कहे हैं तिनिका अभिप्रायकरि यथासंभव तीन भागमात्र भी स्पर्श संभवै है किछू नियम नाहीं। इस ही वास्ते सूत्रविषैं चकार कह्या। गोम्मटसार बडी टीका जीवकांड मुद्रित पृष्ठ ८०६—८०७

पद्मलेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोनाः ।
संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः पञ्च चतुर्दशभागा वा देशोनाः ॥ प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः

पद्मलेश्यैः ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-असंयतसम्यग्दृष्टि = पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टीसे असंयत चौथे गुणस्थानवर्तीयों
अन्तैः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = करि लोकका असंख्यातवां अंश (स्वस्थान अपेक्षासे) छुआ जाता है
वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ अष्टौ ॥ देशोनाः ॥ = वा लोकत्रसनालके चौदराजू हैं (सो) कछु हीन आठ (राजू छुए जात) है
संयतासंयतैः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = (पद्मलेश्यावाले) संयतासंयतीयोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश (छुआ जाता) है
वा चतुर्दश ॥ भागाः ॥ पञ्च ॥ देशोनाः ॥ = अथवा (लोकत्रसनालके) चौदराजू हैं (सो) कछु हीन पांच (राजू मारणांतिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षासे छुये जाते हैं) [जाता है)
प्रमत्त+अप्रमत्तैः ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानवालों करि लोकका असंख्यातवांमात्र अंश (छुआ

(१) विहारवत्स्वस्थानवेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातापेक्षया अष्टचतुर्दशभागाः । रँर ।

विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय- = परस्थान विहार (=विहारवत्स्वस्थान) वेदनासमुद्घात कषाय समुद्घात,
वैक्रियिक-समुद्घात-अपेक्षया ॥ अष्टचतुर्दश = वैक्रियिक समुद्घात अपेक्षासे (लोकत्रसनालके) चौदह मेंसे आठ
भागाः ॥ । रँर = राजू, (कुछ हीन, पद्मलेश्यावाले देवोंका स्पर्शन हो सका है) अर्थात् प्रथम स्वर्गसे तीसरे नरक तक दो राजू हुये और पहिले स्वर्गसे अच्युत सोलहवां स्वर्गतक छहराजू ये हुये इसप्रकार आठ राजू भये । " मारणांतिक समुद्घात विषै भी तैसे ही किंचित् ऊन आठ चौदहवां भाग मात्र स्पर्श जानना जातैं पद्म लेश्यावाले भी देव पृथ्वी अप् वनस्पति विषैं उपजे हैं । गोम्मटसार पृष्ठ ६७७

(२) पद्मलेश्यावेशसंयतैः क्रियमाणमारणान्तिकापेक्षया पञ्चचतुर्दशभागाः सहस्रारकल्पादुपरि पद्मलेश्याभावात् ।

पद्मलेश्यावेशसंयतैः ॥ क्रियमाणमारणान्तिक+ = (पद्मलेश्यावाले) संयतासंयतियोंकरि किये जानेवाले मारणांतिक समुद्घातकी
अपेक्षया ॥ चतुर्दश ॥ भागाः ॥ पञ्च ॥ = विवक्षाकरि (लोकत्रसनालोके) चौदहराजू हैं (सो) पांच (राजू छुआ जाता है)

शुक्लेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट् चतुर्दशभागा वा देशोनाः॥

शुक्ललेश्यैः ‡ मिथ्यादृष्टि-आदि-संयतासंयत अन्तैः ‡ = शुक्ललेश्याके धारक मिथ्यादृष्टियोंसे अप्रमत्तसंयमी पर्यंतोंकरि लोकस्य ‡ असंख्येय-भागः ‡ = लोकका असंख्यातवां भाग [स्पर्शा जाता] है अर्थात् "शुक्ललेश्यावाले जीवनिके स्वस्थानस्वस्थानविषैं तेजोलेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है वा * चतुर्दशभागाः ‡ षट् ‡ देश ऊनाः ‡ = वा [लोकत्रसनाडीके] चौदह [घन] राजू हैं सो कछूघाटि छः राजू स्पर्शे जाते हैं सहस्रारकल्पात् ‡ उपरि * पद्मलेश्या-अभावात् = सहस्रारकल्प (बारहवांस्वर्ग) से ऊपर पद्मलेश्याके न होनेके कारणसे स्पर्श जाते हैं। उपपादविषैं स्पर्श चौदह भागविषैं छःभाग किछू घाटि जानना जातें पद्मलेश्या शतार सहस्रार पर्यंत उपजै है सो शतार सहस्रार मध्य लोकतैं पांचराजू ऊंची है।" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ९७८

(४) शुक्लेश्यासंयतस्य मारणान्तिकापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनं सुगमम्। अच्युतकल्पादुपरि तस्योत्पादाभावात्। इतरेषामपि मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतान्तानां षट्चतुर्दशभागा इति कथनात् शुक्ललेश्यावतां मध्यलोकादधो विहारो नास्तीति युक्त्याऽवगम्यते। अन्यथा अष्टौ चतुर्दशभागा इति कथयेत् शास्त्रकारः। ननु तेषां मध्यलोकपर्यन्तमपि विहारो नास्ति। केवलं मारणान्तिकोपपादापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनमिति च न मन्तव्यम्। सम्यग्मिथ्यादृष्टेस्तदभावात्॥ मिस्साहारस्सयया खवगा चडमाणपढमपुव्वा य। पढमुवसम्मा (पढमुवसमया) तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति। इति वचनेन 'मरणतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि' इति वचनेन च तदभावात्। क्षेत्रलोकेऽपि षट्चतुर्दशभागा इति न च शास्त्रकारवचनमिति च वाच्यं कल्पनीयम्। नैमिचन्द्रदेवा सिद्धान्तचक्रवर्तिभिरपि लेश्याधिकारे स्पर्शोक्तत्वात्। 'सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोद्दस्सा हीणा। ' उपरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा। ११। सव्वो वा खलु लोगो' फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो इति। ननु पञ्चानुत्तरपर्यन्तं शुक्ललेश्यासद्भावेन ततोऽधः शुक्ललेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिभिरुपपादपरिणतैः स्पृष्टत्वात् देशोनसप्तचतुर्दशभागा इति वक्तव्यं युक्तं। न युक्तं मनुष्यलोकवर्तिमनुष्याणामेव तत्रोत्पत्तेः। तथा अच्युतानामपि मनुष्यलोके एवोत्पत्तेर्लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावात्। एकरज्जुविष्कम्भे सर्वत्र स्पर्शाभावात्। कल्पातीतानां विहाराभावाच्च। ननु " उवरि सहस्सारस्स त्ति तिरियजुगं। तिरियाणं उववाद अत्थि तदो णत्थि सदर-चउ" इति गोम्मटसारकर्मकाण्डबन्धोदयसत्त्वाधिकारगाथाया सहस्रारकल्पादुपरितनदेवानां तिर्यगायुष्याद्यबन्धाभावकथनात्तेषां तिर्यग्गत्युत्पत्त्यभावोऽवगम्यते। तथा च, मनुष्यलोकेऽस्त्येतावपि स्वयम्भूरमणद्वीपवर्तितिरश्चामच्युतपर्यन्तमुत्पत्तिसद्भावात्। अन्यथा सामान्यस्पर्शकथनायसरे देशसंयतापेक्षया षट्चतुर्दशभागकथनानुपपत्तेर्लोकासंख्येयभागकथनप्रसङ्गात् क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतवत् आनतादच्युतपर्यन्तदेवानां विहार एवास्ति कल्पातीतानामेव कथं नास्तीति लोकासंख्येयभाग एवेत्यवगन्तव्यम्॥

अर्थात् उपपाद (=पहले जो पर्याय धरता था ताको छांडि पहिले समय अन्य पर्यायरूप होइ अवतार विषें जो प्रवर्तना ” इस अवस्था) में “ चतुरि विहारवत्स्वस्थानविषें अर वेदना कषाय वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घातनि विषें स्पर्श चौदह भागनिविषें छह भाग किछू एक घाटि स्पर्श जानना। जातें अच्युत स्वर्गके ऊपरि देवनिके स्वस्थान छोड़ि अन्यत्र गमन नाहीं है तातें अच्युत पर्यंत ही ग्रहण कीया ” गोमट्टसार छपटीका पृष्ठ मुद्रित ९७८, ९७९

शुक्ललेश्या —तैजसपद्मवत् ॥ मारणान्तिक—	—शुक्ल लेश्यावाले संयमासंयमियोंका (स्पर्शन) मारणांतिक समुद्घातकी
अपेक्षया ॥ षट्—चतुर्दश-भाग—कथन ॥ सुगम ॥	—अपेक्षासे चौदह राजू (त्रसनाड़ी) मेंसे छह (राजू) का कथन स्पष्ट है
अच्युत—कल्पात् ॥ उपरि ० तस्य ॥ उत्पत्ति-	—क्योंकि अच्युत सोलहवां स्वर्गसे ऊपर उस (देश संयमी) की उत्पत्ति
अभावात् ॥	—नहीं है अर्थात् मध्यलोकसे अच्युत सोलहवां स्वर्ग छह राजू है वहां तक ही पांचवां गुणस्थानवर्ती मरकर जन्म ले सकता है नव ग्रैवेयक और उनसे ऊपर नहीं ।
स्पर्शो ॥ अपि मिथ्यादृष्टि-आदि-संयतासंयतान्तानां ॥	—प्रश्न या पहले हुये (शुक्ललेश्यावाले) मिथ्यादृष्टियोंसे असंयमी पर्यंतोंका भी (स्पर्शन)
षट्-चतुर्दशभागा ॥ इति वचनात् ॥	—चौदह भागोंमेंसे छः भाग है ऐसा वाक्यसे
शुक्ललेश्यादेवानां ॥ मध्यलोकात् ॥ अधः ० विहारः ॥	—शुक्ललेश्याके धारक देवोंका मध्यलोकसे नीचे विहार या गमन
न ० अस्ति इति ० युक्त्या ॥ अवगम्यते । अन्यथा ०	—नहीं होता है ऐसा कथन या युक्तिसे जाना जाता है । नहीं तो (अर्थात् मध्यलोकसे नीचे शुक्ललेश्यावाले देवोंका गमन होता तो) स्पर्शनके
अष्टौ ॥ चतुर्दशभागा ॥ इति —	—आठ (राजू लोक त्रसनाड़ीके) चौदह राजुओंमेंसे होते हैं ऐसा —
उपदेशः । खलु ० स्यात् ॥ ननु ० देवाः ॥	—निश्चय या अवश्य उपदेश कहते । प्रश्न (= ननु) देव (शुक्ललेश्यावाले
मध्यलोक—पर्यंत ॥ अपि विहारः ॥ न ० अस्ति ।	—देवोंका मध्यलोक तक भी तो गमन नहीं है

केवलं ।।। मारणांतिक-उपपाद-अपेक्षया ।।।	—(अतः) केवल मारणान्तिक समुद्घातकी और उपपाद (अवस्था) की अपेक्षासे
षट्-चतुर्दशभाग-कथनम् ।।।	—चौदहभागोंमेंसे छहभागका कथन है
इति च न मन्तव्यम् ।।। सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ।।	—यह मानने योग्य नहीं है क्योंकि मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्तीके
तद्-अभावात् ।।	—उन (मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद समुद्घात) का अभाव है (जैसा कि निम्नलिखित आर्याछन्दोंसे प्रमाणित है)

मिस्साहारस्सयया खवगा चडमाणपढमपुव्वा य । पढमुवसम्मा (पढमुवसमया) तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥
मिश्राहारकमयकाः क्षपकाः चटमानप्रथमपूर्वाश्च । प्रथमोपशमसम्यक्त्वाः (प्रथमोपशमकाः) तमस्तमोगुणप्रतिपन्नाश्च न म्रियन्ते ॥

मिस्सा ।। (=मिश्राः ।।)	—"मिश्रगुणस्थानवर्तिनः" (=मिस्सा ।।=मिश्राः ।।) या मिश्रगुणस्थानवाले
आहारस्सयया ।। (=आहार-आश्रयकाः ।।)	—आहारक मिश्रकाययोगी या निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्थारूप मिश्रकाययोगी (अर्थात् जो शरीर पर्याप्ति पूरी करनेवाला है उस शरीर पर्याप्तिके पहिले जैसे औदारिक मिश्र—वैक्रियिकमिश्र—आहारकमिश्र)
खवगा ।। (=क्षपकाः ।।)	—क्षपकश्रेणिवाले (अर्थात् अपूर्वकरण आठवें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले)
च * चडमाण—(=च चटमान-)	—और (=च=च) (उपशमश्रेणी) चढ़े आनेमें (=चटमान=आरुह्यमाण)
पढमपुव्वा ।। (प्रथमपूर्वाः ।।)	—अपूर्वकरणका प्रथमभागवाले (=पढमपुव्वा ।।=प्रथमभाग-अपूर्वकरणाः) अर्थात् उपशमश्रेणी चढ़नेमें अपूर्वकरण नामा आठवें गुणस्थानके पहिले भागवाले
पढमुवसम्मा ।। (=प्रथमोपशमसम्यक्त्वाः ।।)	—प्रथम उपशम सम्यक्त्व संयुक्त या प्रथम उपशमसम्यक्त्वके धारक
पढमुवसमया ।। (=प्रथमोपशमकाः ।।)	—अथवा पहिली बारके उपशम सम्यक्त्ववाले
च * तमतमगुण (=च तमोस्तमोगुण-)	—और (=च) महातमप्रभा पृथिवी (=सातवें नरक) के (सम्यक्त्व) गुण
पडिवण्णा (=प्रतिपन्नाः ।।)	—वाले "सासादन मिश्र-असंयतनारकी (दूसरे-तीसरे चौथे गुणस्थानोंके)
ण * मरंति (=न म्रियन्ते)	—नहीं मरते हैं (सातवां नरकमें सम्यक्त्व सहित जीव मरता नहीं है)

इति • वचनेन । च	=इस वाक्य (गाथा) से और (=च)
च मरणंतसमुग्घादो । (=च मारणान्तिकसमुद्घातः ।	=पुनः (=च) मारणांतिक समुद्घात
वि • य • मिस्सम्मि । (अपि • न • मिश्रे ।	=भी (=वि अपि) मिश्रगुणस्थानमें नहीं होता है
इति • वचनेन । तद्—अप्रमाणं ।	=ऐसे वाक्यसे उनका ज्ञान (कि मिश्र तीसरे गुणस्थानमें मारणांतिक समुद्घात और उपपादका अभाव है) होता है
	(अपने उपर्युक्त प्रश्नका पुष्टि करते हुये कहता है कि तो)
लेखक—दोषः । अयम् ।	=लिपिकार या लिखने वालेकी यह चूक या भूल है कि
	(संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके लोकस्यासंख्येयभागाः इस वाक्यके पश्चात्)
षट्चतुर्दशभागाः । इति न च शास्त्रकार-वचनं ।	="षट् चतुर्दश भागाः ऐसा (वाक्य लिख दिया) है न कि शास्त्रकारका वचन
इति • न• न• आशङ्कनीयम् ।	=ऐसा है (उत्तर) निश्चयसे (=न) यह बात आशंका योग्य नहीं है
	अर्थात् लेखककी भूल नहीं है
नेमिचन्द्रसैद्धान्तिकचक्रवर्तिभिः । अपि •	=क्योंकि नेमिचन्द्रसैद्धांतिक चक्रवर्ती द्वारा भी (गोम्मटसारके)
लेश्या—अधिकारे । तथा• एव• उक्तत्वात् ।	=लेश्या अधिकारमें वैसा (=तथा) ही (निम्नप्रकार गाथामें) कहा गया है

सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोद्दसा हीणा । णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा । सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो ५५०

शुक्लस्य च त्रिस्थाने प्रथमः षट्चतुर्दशहीनः । नवरि समुद्घाते च संख्यातीता भवन्ति भागा वा । सर्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः

सुक्कस्स । च• (शुक्लस्य । च•)	=शुक्ल लेश्यावाले (जीव)न का भी (=च) है अर्थात् शुक्ल लेश्यावाले जीव तिके स्वस्थान स्वस्थानविधि तैजस लेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है
	(और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंका) तीन
ति-(=त्रि)	=(१ विहारवत्स्वस्थान २ वेदना-कषाय वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घात ३ उपपाद)
ठाणे । पढमो । (स्थाने । प्रथमः ।)	=स्थानमें पहला (=पढमो प्रथमः स्पर्श)
छच्चोद्दसा । हीणा । (षट्चतुर्दशहीनाः ।)	=(लोक त्रसनालक) चौदह भागों (राजुओं) में से कुछ कमि छह भाग है।

य ० यपरि ० समुग्घादम्मि ३। (च ० केवलसमुद्घाते ७।) —और केवल समुद्घातमें अर्थात् सयोग केवलीके प्रतर समुद्घातमें
सखातीदा ४। भागा ४। वा ० (= सं० —अतीताः ४। भागाः ७। वा ०) —(लोकके) संख्यातरहित भाग अर्थात् असंख्याते भाग (स्पर्शमें)
हुवंति T वा सव्वा ४। लागु० (—भवन्ति वा सर्वः ४। लोकः) —होते हैं अथवा (— वा) नियमसे (—लोकः) सब
लोगो ४। फासा ४। होदि T (लोकः ४। स्पर्शः ४। भवति T) —लोक (लोकपूरण समुद्घातमें) होता है
इदि (इदि) ० णिद्दिट्ठा ४। (इति० निर्दिष्टः ४।) —इसप्रकार कथन किया गया है । (यवरि प्राकृतका अव्यय है अथ केवल है)
प्रथम 'वा' पाद पूरणके लिये है। हमने आवश्यकता अनुसार शब्दशः स्पष्ट अर्थ
किया है । विशेष जानने लिये इसी अनुवादका पृष्ठ ११६ से १२१ तक देखो।

मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानसे संयतासंयत पांचवां गुणस्थान तकके शुक्लेश्यावाले जीवोंके (१) स्वस्थानस्वस्थानमें स्पर्श (—स्वस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्श) (२) विहारवत्स्वस्थानमें स्पर्श (—परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्श (३) आहारक समुद्घातमें स्पर्श (४) तैजस समुद्घात में स्पर्श (५) केवल समुद्घातमें स्पर्श (६) उपपाद अवस्थामें स्पर्श (७) मारणांतिक समुद्घातमें स्पर्श (८) कषाय समुद्घातमें स्पर्श (९) वेदना समुद्घातमें स्पर्श (१०) वैक्रियिक समुद्घातमें स्पर्शमेंसे कौन कौन किस किस पांचों गुणस्थानवर्तियोंमेंसे होते हैं उसका मान चित्र नीचे देते हैं—

शुक्लेश्यावालेके गुणस्थान	आहारक स० तैजस स० केवल समुद्घात	स्वस्थान स्वस्थान	विहारवत्स्वस्थान वेदना कषाय-वैक्रियिक समुद्घात	उपपाद मारणांतिक समुद्घात
मिथ्या शुक्ल	कोई भी नहीं	लोकका असंख्यातवांभाग	[illegible] राजूसे कुछहीन	[illegible] राजूसे कुछ [illegible]
सासा शुक्ल	" "	"	"	
मिश्र० शुक्ल	" "	"	" "	"
असंयत शुक्ल	" "	" "	" "	"
देशसंयत शुक्ल		"	"	"

हमने यह मानचित्र "सुक्कस्स य तिट्ठाणे इत्यादि गोमट्टसारकी ५५४ गाथाके अनुसार बनाया है। पाठकगण उक्त गाथाके अपसे मिलान करें" (देखो ब्रह्मचारीकृत गोमट्टसार मुद्रित पृष्ठ १७८–१७९ और सूरचंद्रजी कृत गोमट्टसार गाथा ५५८ पृष्ठ १९० ।

नतु • पञ्च-अनुत्तर	=तर्क—पांच (विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-सर्वार्थसिद्धि) अनुत्तर
पर्यन्त ,।ा शुक्ललेश्या-असंयत ।। तत्' • अधः•	=(विमान) तक शुक्ललेश्याके अस्तित्वसे तिन (पंचानुत्तर) से नीचे
शुक्ललेश्या-असंयतसम्यग्दृष्टिभिः ।।	=शुक्ललेश्याके धारक असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथेगुणस्थानवर्ती) करि
उपपादपरिणतैः ।। स्पृष्टत्वात् ।।। देशोन-	=उपपाद (अवस्था) के परिणमन द्वारा स्पर्शन करनेसे कुछ कमि
सप्तचतुर्दशभागा ।। इति • वचन ।।।	=चौदहमेंसे सात राजू होते हैं ऐसा वाक्य (उनके स्पर्शके सम्बन्धमें)
युक्त ।।। न युक्त ।।। मनुष्यक्षेत्र	=होना चाहिये (=युक्त)। (उत्तर) न होना चाहिए। क्योंकि मनुष्यक्षेत्र(ढाईद्वीप)के
वर्तिमनुष्याणाम् ।। एव • तत्र • उत्पत्तेः ।।। ततः •	=रहनेवाले मनुष्योंकी ही वहां (पांच विमानोंमें) उत्पत्ति है। वहां (पंचानुत्तर)से
अच्युतानाम् ।। अपि• मनुष्य-क्षेत्र ।।। एव उत्पत्तेः ।।।	=च्युत होनेवाले देवोंका भी ढाई द्वीपमें ही (मनुष्यका) जन्म होनेसे
लोक-असंख्येय भागे ,। अन्तर्भावात् ,।	=लोकके असंख्यात भागमें (उनका स्पर्शन) गर्भित हो जाता है।
एकरज्जु विष्कम्भे ।। सर्वत्र• स्पर्श-अभावात् ,।	=इससे एकराजूके विस्तारमें सबस्थानमें स्पर्श नहीं होता है
कल्प अतीतानां ।।	=कल्पसे ऊपर नवग्रैवेयक-नवअनुदिश-पंचानुत्तरके (रहनेवालोंके)
विहार-अभावात् ।। च	=गमनका अभाव भी है (=च)। आगतसे सर्वार्थसिद्धिवकका देव मनुष्य ही होता है। (नव अनुदिश और पांच अनुत्तरवासी देव सब असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं)

उक्तं—"कप्पत्थीसु ण तित्थ सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं। तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥ ११२ ॥

छाया—कल्पस्त्रीषु न तीर्थं शतारसहस्रारगा इति तिर्यग्द्विकम्। तिर्यगायुः उद्योतः अस्ति ततो नास्ति शतारचतुष्कम् ॥ ११२ ॥

कप्पत्थीसु ,।ा ण• तित्थ ।।। (=कल्पस्त्रीषु ।।। न तीर्थ ।।।)	=(प्रथम) कल्प (वासिनी) स्त्रियोंमें तीर्थंकर (प्रकृतिका बंध) नहीं होता है
सदरसहस्सारगा ।। (=शतारसहस्रारगा ।।)	=शतार-सहस्रार (ग्यारहवां बारहवां स्वर्ग) के रहने वालों
इति • तिरिय-दुगं ।।। (इति• तिर्यग्द्विकम् ।।।)	=तक (=इति) तिर्यंच-युग्म या तिर्यग्युगल अर्थात् तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी (=तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी—तिर्यंचकी आयु पूर्ण होनेपर आत्मा शरीरसे पृथक् हो कर किसी भव प्रति जानेको सन्मुख हो उस

तिर्यगायुः ।।। उद्योतो ।। (=तिर्यगायुः ।।। उद्योतः ।।
अस्ति T ततो ॰ सहस्र- (अस्ति ततः सहस्र)
एक ।।। (=शतुष्कम् ।।।)

न ॰ अस्ति T (न ॰ अस्ति T)
सहस्रारकल्पात् ।। उपरितन—देवानां ।। तिर्यग्-
आयुष्य—आदि—बन्ध—अभाव-
कथनात् ।।। तेषां ।। तिर्यक्षु ।।
उत्पत्ति—अभावः ।। अवगम्यते T

समय मार्गमें जिसके उदयसे आत्माके प्रदेशोंका पहिले तिर्यंच शरीरके आकार रहना । इस कर्मका उदय विग्रह गतिमें ही होता है और जघन्य काल एक समय मध्यम दो समय और उत्कृष्ट तीन समयमात्र होता है) 'इति' तक-समाप्ति अर्थमें है
=तिर्यंच आयु (और) उद्योत (प्रकृतियोंका बन्ध)
=होता है । तिन (शतार-सहस्रार स्वर्गों)से (ऊपर) शतार
=चौकड़ी (अर्थात् शतार युगल तक बंधनेवाली चार तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानु पूर्वी तिर्यंच आयु और उद्योत नाम कर्मकी प्रकृतियें)
=नहीं होती है इस (गोमटसारके कर्मकांडकी ११२ वीं गाथा) से
=सहस्रार (बारहवां) स्वर्गसे ऊपर रहनेवाले देवोंके तिर्यंच
=आयु तिर्यंचगति तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और उद्योत (प्रकृतियोंके) बन्ध न होनेके
=उपदेशसे तिन (सहस्रार बारहवां स्वर्गसे ऊपरवालों) का तिर्यंचोंमें
=उपजनेका अभाव जाना जाता है ॥ अर्थात् बारहवां स्वर्गसे ऊपरका देव जहां भी पर्यौ मनुष्य ही होता है । शिष्यके प्रश्न करने पर कि उपपादकरि पांच अनुत्तर तक कुछ आदि सात राजू स्वर्गमें वाच्य कहना था उत्तर था कि-नहीं, क्योंकि अढ़ाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र)के मनुष्य ही सोलह स्वर्गसे ऊपर उत्पन्न होते हैं और सोलह स्वर्गसे ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्र हीमें जन्म लेते हैं और प्रमथ भी वेकरते नहीं इससे उनका स्पर्शन असंख्यात भागमें गर्भित हो गया ॥ शिष्यने यह सुनकर कि सोलह स्वर्ग से ऊपरके देव मनुष्य क्षेत्रमें उत्पन्न होते हैं प्रश्न कर दिया कि बारह स्वर्गसे ऊपरके सर्व देव ही मनुष्य क्षेत्रमें जन्म लेते हैं तो ११ स्वर्गसे सोलहवें स्वर्ग तकके उपपाद विषयसे चौदह भागोंमेंसे छह भाग न ठहरे ॥ अब उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि—

तत्र च ०	=उसपर भी (=तत्र च) अर्थात् (सहस्रारसे ऊपरके देवोंका मनुष्यक्षेत्रमें)
मनुष्येषु ७। एव ० उत्पत्तौ ७। अपि संयमासंयम-	=मनुष्योंमें ही (=एव) जन्म होनेपर भी संयमासंयमवाले
परिहत ०	=चाहिए
वर्ति तिरश्चाम् ६। अच्युत-पर्यन्तम् २। उत्पत्तिसद्भावात्	=रहनेवाले तिर्यंचोंका अच्युत (सोलहवें स्वर्ग) तक जन्म होता है अर्थात् बारह वें स्वर्गसे ऊपर आनत स्वर्गके देवका मनुष्योंमें ही जन्म होनेसे यह न समझना चाहिये कि मध्यलोकका तिर्यंच भी बारहवां स्वर्गसे ऊपरका देव नहीं हो सकता है यहां मध्यलोकका तिर्यंच सोलहवां स्वर्ग तकका देव हो सकता है इस अपेक्षासे अपपाद अवस्थामें चौदहराजूमेंसे छहराजू स्पर्शन बनता है ॥
अन्यथा ०	=अन्यथा मानने में (यदि यहांके तिर्यंचोंका जन्म १३ से १६ तक न हो तो)
सामान्य-स्पर्श-कथन-अवसरे ७।	=संक्षेपसे (गुणस्थान अपेक्षासे कथित) स्पर्शनके कथनके प्रसंगमें
देशसंयत-अपेक्षया ३।	=(देखो इस प्रतिका पृष्ठ १३६ पंक्ति २ से ८ तक) संयतासंयतकी अपेक्षासे
षट्चतुर्दशभाग-कथन अनुपपत्तेः ५।	=चौदहराजूमेंसे छह (राजूके स्पर्श) का उपदेश न बननेसे
क्षायिकसम्यग्दृष्टि-देशसंयतस्य ०	=क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयमियोंके सदृश (जो ढाईद्वीप मनुष्य होते हैं)
लोक-असंख्येयभाग-कथन-प्रसङ्गात् ५।	=(केवल) लोकके असंख्यातवें भाग के स्पर्शनके कथनका प्रसंग आता है (उपपाद और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे छहराजूका स्पर्शन जो गुण स्थानके कथनमें संयतासंयत गुणस्थानवर्तीका पृष्ठ १३६ में कहा है वह नहीं बन रहा है जो संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंच स्वयम्भूरमण समुद्र तक न होवें जिस स्वयम्भूरमणका व्यास सुमेरुसे होता हुआ एकराजूसे कुछ न्यून लम्बाईमें है
च-आनत-आदि-	=और (=च) आनत तेरहवां प्राणत चौदहवां आरण पन्द्रहवां स्वर्ग और
अच्युत-पर्यंत-देवानां ६।	=अच्युत सोलहवां स्वर्ग तकके शुक्ललेश्या धारक देवोंके विहारवत् (स्पर्शन) छहराजू है (मध्यलोकसे १३वां १४वां १५वां १६वां स्वर्ग छठे राजूमें है, शुक्ल लेश्यावाले असंयत देव जो मध्यलोकसे नीचे नहीं जाते हैं परन्तु विहार अपेक्षा कुछ हीन छहराजू स्पर्शते हैं । देवोंके प्रथमसे चार तक गुणस्थान हो सके हैं)

प्रमत्तादिसयोगकेवल्यन्तानां अलेश्यानां च सामान्योक्त स्पर्शनम् ॥ (११) भव्यानुवादेन—भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां समान्योक्त स्पर्शनम् । अभव्यै. सर्वलोकः स्पृष्ट' ॥ [१२] सम्यक्त्वानुवादेन—क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तम् ।

प्रमत्त—आदि—सयोगकेवलि—अन्तानाम् ॥	=(शुक्ललेश्यावाले) प्रमत्त गुणस्थानवर्तीसे सयोगकेवली तकोंका
अलेश्यानाम् ॥ च स्पर्शनम् ॥ सामान्य—	=और लेश्यारहित [= अयोगकेवलियों] का स्पर्शन सामान्य (प्रकरण)में
उक्तम् ॥	=कथित (गुणस्थानवत्) है [पृष्ठ ११६,११५ व १२० तक इसी पुस्तक का देखो)
भव्य—अनुवादेन ॥ भव्यानाम् ॥ मिथ्यादृष्टि—आदि—	=(११) भव्योंके कथनके अनुसारकरि भव्य मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अयोगकेवलि—अन्तानां ॥ सामान्य उक्त ॥	=अयोगकेवली पर्यन्तोंका संक्षेप [प्रसंग] में कहा हुआ (गुणस्थानवत्)
स्पर्शनम् ॥	=स्पर्शन है। पृष्ठ ११५से १२० तक, पृष्ठ १३२ से १३६ तक इसी प्रतिका देखो।
अभव्यै ॥ सर्वलोक. ॥ स्पृष्टः ॥ सम्यक्त्व—अनुवादेन ॥	=अभव्य करि समस्तलोक छुआजाता है । [१२] सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे
क्षायिकसम्यग्दर्शीनाम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टि—आदि—	=क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले असंयत सम्यग्दृष्टि [चौथे गुणस्थानवाले) निसे
अयोगकेवलि—अन्तानाम् ॥ सामान्य—उक्तम् ॥	=अयोगकेवली तकोंका (स्पर्शन) संक्षेप (प्रकरण) में कहा हुआ (गुणस्थानवत्) है। पृष्ठ ११५ से १२० तक, पृष्ठ १३५, १३६ इसी पुस्तक का देखो ।

कल्प-अतीतानाम् ॥ एषः ॥ क्रमः ॥ न अस्ति	=(सोलह) स्वर्ग (=कल्पाः) से ऊपरके रहनेवालोंके यह नियम (=क्रमः) नहीं है अर्थात् नवग्रैवेयकोंमें-नव अनुदिशोंमें-पांचअनुत्तरोंमें मनुष्यक्षेत्र (ढाई द्वीप)से मनुष्य ही जन्म लेते हैं और वहांसे च्युत होकर अढ़ाईद्वीपमें मनुष्य ही होते हैं । उक्त स्थानोंसे विहारका अभाव है
इति लोकः असंख्येय-भागः ॥ एव इति अवगन्तव्यं ॥	—ऐसे लोकके असंख्यातवेंभाग (का स्पर्श) ही (इनके) जानना चाहिये

किंतु संयतासंयतानां लोकस्यासंख्येयभागः ।

किंतु ॥ संयतासंयतानां ६। लोकस्य ६।	=परंतु (क्षायिक सम्यग्दृष्टि) देश संयमियोंका (स्पर्श) लोकका
असंख्येयभागः १।	= असंख्यातवां भाग है।

(१) प्राक्सामान्यकथनावसरे देशसंयतस्य षट् चतुर्दशभागा इत्युक्तम्। इदानीं क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतापेक्षया लोकासंख्येयभाग इति कथ्यते। तत्कुत इति चेत्—मानुषोत्तरपर्वतबहिर्वर्तितिर्यक्षु सर्वत्र क्षायिकसम्यक्त्वाभावात्। तत्र तदभावश्च "दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजा मणुसा। तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले॥" इत्यागमादवगम्यते। प्राग्बद्धतिर्यगायुषां पश्चाद्गृहीतक्षायिकसम्यक्त्वानामपि उ-त्तमभोगभूमितिर्यक्ष्वेवोत्पत्तेस्तत्र क्षायिकसम्यक्त्वाभाव एव। "चत्तारि वि खेत्ताई आउगबंधेण होइ सम्मत्तं। अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं॥" इति बद्धतिर्यगायुष्केऽपि सम्यक्त्वसद्भावमस्तीत्यवगन्तव्यम्॥

प्राक्सामान्यकथन-अवसरे ७। देशसंयतस्य ६।	=पहिले संक्षेप व्याख्यानके प्रसंगविषै संयमासंयमीयोंका (स्पर्शन)
षट् १। चतुर्दश ६। भागाः १। इति उक्तम् १।१।	=(लोकसंबंधी) चौदह राजू है (सो) छह (राजू) ऐसा कहा गया है
इदानीम् ॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयत+अपेक्षया ३।१।	=अब क्षायिक सम्यग्दर्शनवाले संयमासंयमीयोंकी विवक्षासे
लोक-असंख्येयभागः १। इति कथ्यते ?	=लोकका असंख्यातवां भाग (का स्पर्शन है) ऐसा कहा गया है
तत्+कुतः ॥ इति॥ चेत्॥	=सो (लोकका असंख्यातवांभाग) क्योंकर है ? ऐसे सवेद (=चेत्, शंकाकर कहते हैं)
मानुषोत्तरपर्वत—	=मानुषोत्तर पहाड़के (जो पुष्कर द्वीपके मध्य गोलाकार पड़कर उसके
बहिर्वर्तितिर्यक्षु ७। सर्वत्र ॥	=दो भाग करता है) बाहिर रहनेवाले तिर्यञ्चविषै सब स्थानोंमें
क्षायिकसम्यक्त्व+अभावात् ५।१।तत्र॥	=क्षायिक सम्यग्दर्शनके न होनेसे तहां (मानुषोत्तर पर्वतके बाह्य)
तद् अभावः १। च॥	=उस (क्षायिक सम्यक्त्वी देशसंयमी) का भी (=च) अभाव है।
	ऐसा कि—नीचेकी गाथासे प्रगट है॥

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो। तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले॥ इसकी संस्कृत छाया नीचे लिखते हैं—

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजः मनुष्यः तीर्थकरपादमूले केवलि-श्रुतकेवलिमूले॥ इसका निम्न लिखित शब्दशः अनुवाद—

दंसणमोह- (=दर्शनमोह-)	=दर्शन मोह (की मिथ्यात्व प्रकृति- सम्यक्त्वप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति) के

पट्ठवगो-पट्ठवगो ॥ (प्रस्थापक ॥)	=क्षपणका या नाशका प्रारम्भ करनेवाला
कम्मभूमिजा ॥ मणुसा ॥ (=कर्मभूमिज ॥ मनुष्य ॥)	=कर्मभूमिका उत्पन्न हुआ मनुष्य या पुरुष
तित्थयर पादमूले ॥ (तीर्थकर—पादमूले ॥)	=तीर्थकरके चरणोंके समीपमें (=मूले ॥) और
केवलि सुदकेवली मूले ॥ (केवलि श्रुतकेवलिमूले ॥)	=केवली (सयोग केवली) श्रुतकेवलीके निकटमें (=मूले ॥) होता है अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्मके क्षय होनेका जो क्रम है उसका प्रारम्भ तीर्थंकर, केवली अथवा श्रुतकेवलीके समीप ही होता है और उस दर्शन मोहका प्रारम्भक केवल कर्मभूमिका उत्पन्न हुआ मनुष्य ही होता है । यदि पूर्ण क्षय होनेसे पहिले ही प्रारम्भक मृत्युको प्राप्त हो जाय तो उस क्षपणकी समाप्ति चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें हो सकती है । गोम्मटसारजीमें यह गाथा ऐसे है कि–

(गाथा) दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु । मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥ ६५८ ॥

(छाया) दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्वत्र ॥ ६५८ ॥

(अर्थ) दर्शन मोहनीय कर्मके नाशका प्रारंभ करनेहारा कर्मभूमिका जन्मा पुरुष ही केवली या श्रुतकेवलीके निकटमें होता है । (यदि क्षयकी समाप्तिके प्रथम यह मनुष्य मर जावे तो क्षयकी समाप्ति सब गतिमें हो सकती है) दर्शन मोहके क्षयका "विधान होतैं हातैं मरण हो जाय तौ जहां संपूर्ण दर्शन मोहके नाशका कार्य होइ निवरे तहां ताकौं निष्ठापक कहिये सो निष्ठापक "च्यारो गतिविषै हो है" गोम्मटसारजी मुद्रित पृष्ठ १ ६८—१०११ बीयकांड ॥

इति * आगमात् ॥ अवगम्यते ॥ प्राक्-बद्ध—	=ऐसा शास्त्रसे जाना जाता है (क्षायिक सम्यक्त्व प्रारंभ होनेके) पहिले बांधी हुई
तिर्यग्-आयुषां ॥ पश्चात् * गृहीत—क्षायिक—	=तिर्यंच आयुके पीछे प्राप्त हुए क्षायिक
सम्यक्त्वानाम् ॥ अपि उत्कृष्टभोगभूमि-तिर्यक्षु ॥	=सम्यक्त्ववालोंके भी उत्कृष्ट भोगभूमिके तिर्यंचोंमें
एव * उत्पत्तेः ॥ तत्र * क्षायिक—	=ही जन्म होने (के हेतु) से वहां (मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर) क्षायिक
सम्यक्त्व-अभावः ॥ एव *	=सम्यग्दर्शनका अभाव ही है । किसी जीवने तिर्यंच आयु बांधी हो पश्चात् क्षायिक सम्यक्त्व हो तो वह सम्यक्त्वके कारण उत्तम भोगभूमिमें (ढाई द्वीपमें ही) जन्म लेगा।

आयुबंधके पीछे सम्यक्त्वका होना निम्न गोम्मटसारकी गाथासे ज्ञात होता है—

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं । अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥ गोम्मटसारकी कर्मकांड ३३४, जीवकांड ६५३ ।

चत्वारि अपि क्षेत्राणि आयुष्कबन्धेन भवति सम्यक्त्वं । अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ॥

चत्तारि ¹ वि खेत्ताइं ²॥ (=चत्वारि ¹ क्षेत्राणि ²) =चारो गतियोंको (=क्षेत्राणि ²)

आउगबंधेण ³॥ वि॰ (=आयुष्क-बन्धेन ³॥ अपि॰) =आयुका बंध होकरि भी (=अपि)

होइ ⁴ सम्मत्तं ⁵॥ अणुवद-(=भवति सम्यक्त्वं अणुव्रत)=सम्यक्त्व (जिसके पहले किसी आयुका बंध हो चुका है) हो सकता है। अणुव्रत

महव्वदाइं ⁶॥ लहइ ⁷ (=महाव्रतानि ⁶॥ लभते ⁷) =और महाव्रतोंकी प्राप्ति का धारण

देव-आउगं ⁸॥ मोत्तुं (=देव-आयुष्कं ⁸॥ मुक्त्वा) =देव आयुके बंधको छोड़कर या बांधकर नहीं कर सका है अर्थात् चारो गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें रहनेवाले जीवके चार प्रकारकी आयुमेंसे किसी भी आयुका बंध होनेपर भी सम्यक्त्वकी उत्पत्ति हो सकती है किन्तु सम्यक्त्व ग्रहण होनेके अनन्तर यदि तिर्यंच हो तो अणुव्रत और मनुष्य हो तो अणुव्रत या महाव्रत उसी जीवके हो सकते हैं जिसके चार आयुकर्मोंमेंसे केवल देवायुका बंध हुआ हो। नरकायु तिर्यगायु मनुष्य आयुका बंध करनेवाले सम्यग्दृष्टिके अणुव्रत या महाव्रत नहीं होते क्योंकि वहां उनके कारण भूत विशुद्ध परिणाम नहीं होसकते हैं।

इति॰ वचनात् ⁹॥ तिर्यक्-आयुस्-बन्ध ¹⁰॥ अपि॰ =(आगमके) ऐसे (उपर्युक्त) वाक्यसे तिर्यंचकी आयुके बंध होने पर भी

सम्यक्त्व-ग्रहणस् ¹¹॥ अस्ति-इति-अवगन्तव्यम् ¹²॥ =सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है इसप्रकार जानना चाहिये।

(१) चत्तारि—चत्वारि। चतुर् शब्दकी द्वितीया बहुवचन चत्तरो चत्तारो चत्तारि है (प्रा॰ सु॰ पो १८०) खेत्तशब्दकी द्वितीया बहुवचन नपुंसक लिंग खेत्ताइं है (प्रा॰ सु॰ पृ॰ १७५) गोम्मटसारकी तीन प्रतियोंमें इसकी संस्कृत छाया भी चत्वारि-क्षेत्राणि है। वही हमने लिखी है अनुवाद भी तदनुसार द्वितीयामें किया है। किसी किसी प्रतिमें चतुर्णाम्, क्षेत्राणाम् षष्ठीविभक्ति-बहुवचन नपुंसक लिंगमें चत्तारि खेत्ताइंकी संस्कृत छाया लिखी है वह समझमें नहीं आई। अनुवाद षष्ठीविभक्तिमें भी बन जाता है क्योंकि हिंदी अनुवाद प्रायः षष्ठी–द्वितीया दोनोंमें लगभग एकसा रहता है॥

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥ औपशमिकसम्यक्त्वानामसंयतसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । शेषाणां

क्षायोपशमिक–सम्यग्दृष्टीनां ६। = वेदकसम्यग्दर्शनवालोंका (जो असंयतसे अप्रमत्त गुणस्थानतक हैं)

सामान्य–उक्तम् ४।११ = संक्षेप [प्रसंग] में कहा हुआ [गुणस्थानवत् स्पर्शन] है अर्थात् (१) असंयत क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टिका (स्वस्थान विहार अपेक्षासे) लोकका असंख्यातवां भाग है अथवा लोक प्रमनालके चौदहभागोंमेंसे आठ भाग कुछ हीन है क्योंकि असंयत गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यक्त्वका धारक देव अच्युत सोलहवें स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करता है ॥ अच्युतस्वर्ग से मध्यलोक छराजू है मध्यलोकसे तीसरा नरक दो राजू है ऐसे आठ राजू हुवे ॥ १२५ पृष्ठानुसार [२] संयतासंयत वेदक सम्यक्त्ववालोंसे स्वस्थान विहारकी अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है अथवा चौदहराजू लोकत्रसनालमेंसे कुछ हीन छराजू मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे स्वयंप्रभाचल पर्वतके बाहिरके तिर्यंचोंकी उत्पत्ति सोलहवें अच्युत स्वर्गतक होनेके कारणसे छुए जाते हैं (३) प्रमत्तसंयत वेदक सम्यक्त्ववालोंका और अप्रमत्त वेदक सम्यग्दर्शनवालोंका स्पर्शन पृष्ठ १२६ के अनुकूल क्षेत्रसदृश है जो पृष्ठ ११९ के अनुसार लोकका असंख्यातवां भाग [स्पर्शन] होता है ॥

औपशमिकसम्यक्त्वानां ३। = उपशम सम्यग्दर्शनवाले

असंयतसम्यग्दृष्टीनां ५। = असंयत सम्यग्दृष्टियोंका

सामान्य–उक्तम् ४।११ = संक्षेप प्रकरणमें कथित (गुणस्थानवत् स्पर्शन) है अर्थात् १२५ पृष्ठके अनुसार लोकके असंख्यातवां भाग स्वस्थान विहार अपेक्षासे है और परस्थान विहार अपेक्षासे कुछ हीन आठराजू (क्योंकि अच्युत सोलहवां स्वर्गका देव तीसरे नरक तक गमन करता है पृष्ठ १२५) स्पर्शन होता है ॥

शेषाणाम् ३। = (उपशम सम्यग्दर्शनके) शेष पांचवां से ग्यारहवां गुणस्थान तकका

(१) शेषेषां लोकासंख्येयभाग इत्यनेन उपशमसम्यक्त्वविशेषसंयतापेक्षयाऽपि लोकासंख्येयभागकथनात्मनुष्यक्षेत्रवर्द्धिर्वर्तुपशमसम्यग्दृष्टीनां

लोकस्यासंख्येयभागः ।

लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ =(स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है

मरणरहितानां मारणान्तिकाभावोऽभ्युपगम्यते । अन्यथा तदपेक्षया षट् चतुर्दशभागा इति कथयन्ति । मनुष्यक्षेत्रवर्तिद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति । मारणान्तिकोऽस्ति नास्तीत्यत्र नास्माकं निश्चयः । उपदेशाभावात् । यद्यस्ति तदपि लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः । मनुष्यक्षेत्राद्बहिरभावात् ॥

शेषाणाम् ॥ =(उपशम सम्यक्त्वके) बच हुये (गुणस्थानवालोंनि)का (स्पर्शन)

लोक-असंख्येयभागः ॥ इति॰ अनेन ॥ —लोकका असंख्यातवां अंश है ऐसे इस (वाक्य) करि

उपशमसम्यग्दृष्टि-वैवक्षत + अपेक्षया ॥ अपि॰ —उपशम सम्यग्दर्शनवाले उपमासप्तमीनकी विवक्षासे भी

लोक-असंख्येयभागकथनात् ॥ —लोकके असंख्यातवा भागके व्याख्यानसे

मनुष्यक्षेत्रबहिर् ॰ वर्ति-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ॥ —मनुष्य क्षेत्र (अढाई द्वीप) से बाहर रहनेवाले उपशम सम्यग्दर्शनवाले

मरणरहितानाम् ॥ मारणान्तिक-अभावः ॥ अपि ॰ —मृत्यु वर्जितके मारणांतिक समुद्घातका न होना भी

अभ्युपगम्यते । अन्यथा ॰ —माना जाता है । दूसरे प्रकार(यदि मारणांतिक समुद्घातका होना माना जाय तो)

तद्-अपेक्षया ॥ —उस (मारणांतिक समुद्घातकी) अपेक्षासे

षट् ॥ चतुर्दश ॥ भागाः ॥ इति॰ कथयन्ति । —(लोक नालीके) चौदह राजू है (सो) छह (राजू हुये जाते) हैं ऐसा कहते हैं पृष्ठ ११६ इसी पुस्तकका देखो ।

मनुष्यक्षेत्रवर्तिन्-द्वितीय-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ॥ —अढाई द्वीपमें रहनेवाले द्वितीय उपशम सम्यग्दर्शनके धारकोंकी

मरणम् ॥ अस्ति । मारणान्तिकः ॥ अस्ति न अस्ति इति —मृत्यु है । मारणांतिक समुद्घात है (अथवा) नहीं है ऐसे

अत्र॰ न अस्माकम् ॥ निश्चयः ॥ उपदेश-अभावात् ॥ —इसमें (हमारा) शिक्षा (=उपदेश) न होनेके कारणसे हमको निर्णय नहीं है ।

यदि अस्ति-तद् अपि लोक-असंख्येयभागे ॥ —जो (मारणांतिक समुद्घात) है तो भी लोकके असंख्यात भाग (के स्पर्शन)में

मनुष्य-क्षेत्रात् ॥ बहिर् ॰ —अढाई द्वीपसे बाहर (द्वितीय उपशम सम्यक्त्व तथा उसमें मारणांतिक समु

अभावात् ॥ अन्तर्भावः ॥ —द्घात) न होनेके हेतुसे—गर्भित है । (टिप्पणी) मनुष्य और तिर्यंच अढाई द्वीप तक हैं और तिर्यंच अढाई द्वीपसे बाहिर भी हैं तिर्यंचोंके पांचवां गुणस्थान तक हो सकता है और द्वितीय उपशम आठवे गुणस्थानमें होता है इसलिये तिर्यंचनके नहीं हो सकता है इस कारणसे मनुष्य क्षेत्रसे बाहिर द्वितीय उपशम नहीं है

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम्॥

सासादनसम्यग्दृष्टि— = सासादन सम्यग्दृष्टियोंकेलिका,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि— = मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्तीनिका
मिथ्यादृष्टीनां ३। = और मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन]
सामान्य–उक्तम् ४॥ = संक्षेपमें [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि स्वस्थान विहार अ–पेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन किया जाता है। तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू लोकमें जो इक राजू लोकत्रसनाल है सो सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि कुछ हीन आठ राजू परस्थान विहार अपेक्षासे और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन बारह राजू छुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुए और ऊपर सोलह स्वर्ग तक विहार करते हैं सो छह राजू ये हुये इस प्रकार आठराजू परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्शन हुये। कुछ भाग छूट जाता है अतः कुछ हीन आठराजू हुये। मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकसे मर सकता है [क्योंकि सम्यक्त्व गुण सहित किसी जीवका मरण सातवें नरकसे नहीं हो सकता है] यदि इस छठे नरकसे मारणांतिक समुद्घात करे और बादर पृथिवी कायादिक लोकके अंत भागमें उत्पन्न हो तो छठे नरकसे–मध्य लोक तक पांच राजू हुये और मध्यलोकसे अंत तक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये कुछ [किंचित्] भाग छूनेसे रह जाता है अत कुछ हीन बारह राजू हुये। पृष्ठ १२३, १२४ इसी अनुवादका (२) मिश्र गुणस्थानवर्ती स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे कुछ हीन आठ राजू जैसे मिश्र गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करे तब कुछ न्यून आठराजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १२५। (३) मिथ्यादृष्टियोंकरि सर्वलोक छुआ जाता है। पृष्ठ १२२॥

लोकस्यासंख्येयभागः ।

लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥	=(स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है

मरणरहितानां मारणान्तिकमावोऽप्यवगम्यते । अन्यथा तदपेक्षया षट् चतुर्दशभागा इति कथयन्ति । मनुष्यक्षेत्रवर्तिद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति । मारणान्तिकोऽस्ति नास्तीयत्र नास्माकं निश्चयः । उपदेशाभावात् । यद्यस्ति तदपि लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः । मनुष्यक्षेत्र बहिरभावात् ।

शेषस्य ॥	=(उपशम सम्यक्त्वके) बचे हुये (गुणस्थानवालोंमें)का (स्पर्शन)
लोक-असंख्येयभागः ॥ इति॰ अनेन ॥	=लोकका असंख्यातवां अंश है ऐसे इस (वाक्य) करि
उपशमसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत+अपेक्षया ॥ अपि॰	=उपशम सम्यग्दर्शनवाले संयमासंयमीकी विवक्षासे भी
लोक-असंख्येयभागकथनात् ॥	=लोकके असंख्यातवां भागके व्याख्यानसे
मनुष्यक्षेत्रबहिः ॰ वर्ति-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ॥	=मनुष्य क्षेत्र (अढाई द्वीप) से बाह्य रहनेवाले उपशम सम्यग्दर्शनवाले
मरणरहितानाम् ॥ मारणान्तिक-अभावः ॥ अपि ॰	=मृत्यु वर्जितके मारणांतिक समुद्घातका न होना भी
अवगम्यते । अन्यथा ॰	=जाना जाता है । दूसरे प्रकार(यदि मारणांतिक समुद्घातका होना माना जाय तो)
तद्-अपेक्षया ॥	=उस (मारणांतिक समुद्घातकी) अपेक्षासे
षट् ॥ चतुर्दश ॥ भागा ॥ इति॰ कथयन्ति ।	=(लोक असनालीके) चौदह राजू हैं (सो) छह (राजू छुये जाते) हैं ऐसा कहते हैं पृष्ठ १३६ इसी पुस्तकका देखो ।
मनुष्यक्षेत्रवर्ति-द्वितीय-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ॥	=अढाई द्वीपमें रहनेवाले द्वितीय उपशम सम्यग्दर्शनके धारकोंकी
मरणम् ॥ अस्ति । मारणान्तिकः ॥ अस्ति न अस्ति इति	=मृत्यु है । मारणांतिक समुद्घात है (अथवा) नहीं है ऐसे
अत्र॰ न अस्माकम् ॥ निश्चयः ॥ उपदेश-अभावात् ॥	=इसमें (=यहां) शिक्षा (=उपदेश) न होनेके कारणसे हमको निर्णय नहीं है ।
यदि अस्ति-तद् अपि लोक-असंख्येयभागे ॥	=जो (मारणांतिक समुद्घात) है तो भी लोकके असंख्यात भाग (के स्पर्शन)में
मनुष्य-क्षेत्रात् ॥ बहिः ॰	=अढाई द्वीपसे बाहर (द्वितीय उपशम सम्यक्त्व तथा उसमें मारणांतिक समु
अभावात् ॥ अन्तर्भावः ॥	=द्घात) न होनेके हेतुसे—गर्भित है । (टिप्पणी) मनुष्य और तिर्यंच अढाई द्वीप तक है और तिर्यंच अढाई द्वीपसे बाहिर भी हैं तिर्यंचोंके पांचवां गुणस्थान तक हो सकता है और द्वितीय उपशम सातवें गुणस्थानमें होता है इसलिये तिर्यंचोंके नहीं हो सकता है इस कारणसे मनुष्य क्षेत्रसे बाहिर द्वितीय उपशम नहीं है

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम्॥

सासादनसम्यग्दृष्टि— = सासादन सम्यग्दर्शनवालेनिका,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि— = मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्तीनिका
मिथ्यादृष्टीनां च = और मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन]
सामान्य-उक्तम् ॥ = संक्षेपमें [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन किया जाता है। तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू लोकमें चौदह राजू लोकत्रसनाल है सो सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि कुछ हीन आठ राजू परस्थान विहार अपेक्षासे और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन बारह राजू छुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुए और ऊपर सोलह स्वर्ग तक विहार करते हैं तब छह राजू ये हुये इस प्रकार आठराजू परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्शन हुये। कुछ भाग छूट जाता है अतः कुछ हीन आठराजू हुये। मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकसे मर सक्ता है [क्योंकि सम्यक्त्व गुण सहित किसी जीवका मरण सातवें नरकसे नहीं हो सक्ता है] यदि इस छठे नरकसे मारणांतिक समुद्घात करे और बादर पृथिवी कायादिक लोकके अंत भागमें उत्पन्न हो तो छठे नरकसे–मध्य लोक तक पांच राजू हुये और मध्यलोकसे अंत तक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये कुछ [किंचित्] भाग छूनेसे रह जाता है अत कुछ हीन बारह राजू हुये। पृष्ठ १५३, १५४ इसी अनुवादका (२) मिश्र गुणस्थानवर्ती स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे कुछ हीन आठ राजू जैसे मिश्र गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करे तब कुछ न्यून आठराजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १५५। (३) मिथ्यादृष्टियोंकरि सर्वलोक छुआ जाता है। पृष्ठ १२२ ॥

लोकस्यासंख्येयभाग' ।

लोकस्य ।। असंख्येयभाग' ।। =(स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है

मरणरहितानां मारणान्तिकाभावोऽभ्युपगम्यते । अन्यथा तदपेक्षया षट् चतुर्दशभागा इति कथयन्ति । मनुष्यक्षेत्रवर्तिद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणमस्ति । मारणान्तिकोऽस्ति नास्तीत्यत्र नास्माकं निश्चयः । उपदेशाभावात् । यदस्ति तदपि लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः । मनुष्यक्षेत्राद्बहिरभावात् ॥

शेषाणाम् ।। —(उपशम सम्यक्त्वके) बचे हुये (गुणस्थानवालोंनि)का (स्पर्शन)
लोक-असंख्येयभागः ।। इति॰ अनेन ।। —लोकका असंख्यातवां अंश है ऐसे इस (वाक्य) करि
उपशमसम्यग्दृष्टि-देशसंयत + अपेक्षया ।। अपि॰ —उपशम सम्यक्त्ववाले संयमासंयमीनिकी अपेक्षासे भी
लोक-असंख्येयभागकथनात् ।। —लोकके असंख्यातवा भागके व्याख्यानसे
मनुष्यक्षेत्रबहिर् ॰ वर्ति-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ।। —मनुष्य क्षेत्र (अढाई द्वीप) से बाहर रहनेवाले उपशम सम्यग्दर्शनवाले
मरणरहितानाम् ।। मारणान्तिक-अभावः ।। अपि ॰ —मृत्यु वर्जितनके मारणांतिक समुद्घातका न होना भी
अभ्युपगम्यते । अन्यथा ॰ —जाना जाता है । दूसरे प्रकार(यदि मारणांतिक समुद्घातका होना माना जाय तो)
तद्-अपेक्षया ।। —उस (मारणांतिक समुद्घातकी) अपेक्षासे
षट् ।। चतुर्दश ।। भागा ।। इति॰ कथयन्ति । —(लोक त्रसनालके) चौदह राजू हैं (सो) छह (राजू छुये जाते) हैं ऐसा कहते हैं पृष्ठ १३६ इसी पुस्तकका देखो ।
मनुष्यक्षेत्रवर्तिन्-द्वितीय-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ।। —अढाई द्वीपमें रहनेवाले द्वितीय उपशम सम्यग्दर्शनके धारकोंकी
मरणम् ।। अस्ति । मारणान्तिकः ।। अस्ति न अस्ति इति —मृत्यु है । मारणांतिक समुद्घात है (अथवा) नहीं है ऐसे
अत्र॰ न अस्माकम् ।। निश्चय ।। उपदेश-अभावात् ।। —इसमें (हमको) शिक्षा (=उपदेश) न होनेके कारणसे हमको निश्चय नहीं है ।
यदि अस्ति-तद् अपि लोक-असंख्येयभागे ।। —जो (मारणांतिक समुद्घात) है तो भी लोकके असंख्यात भाग (के स्पर्शन)में
मनुष्य-क्षेत्रात् ।। बहिर् ॰ —अढाई द्वीपसे बाहर (द्वितीय उपशम सम्यक्त्व तथा उसमें मारणांतिक समु-
अभावात् ।। अन्तर्भाव' ।। —द्घात) न होनेके हेतुसे—गर्भित है । (टिप्पणी) मनुष्य और तिर्यंच अढाई द्वीप तक हैं और तिर्यंच अढाई द्वीपसे बाहिर भी हैं तिर्यंचोंके पांचवां गुणस्थान तक हो सकता है और द्वितीय उपशम छठवे गुणस्थानमें होता है इसलिये तिर्यंचनके नहीं हो सकता है इस कारणसे मनुष्य क्षेत्रसे बाहिर द्वितीय उपशम नहीं है

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि— = सासादन सम्यग्दर्शनवालेनिका,
सम्यग्मिथ्यादृष्टि— = मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्तीनिका
मिथ्यादृष्टीनां ३। = और मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन]
सामान्य-उक्तम् ४॥ = संक्षेपमें [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन किया जाता है। तीनसौ तेंतालीस घनाकार राजू लोकमें जो दश राजू लोकत्रसनाल है सो सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि कुछ हीन आठ राजू परस्थान विहार अपेक्षासे और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन बारह राजू छुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुए और ऊपर सोलह स्वर्ग तक विहार करते हैं तब छह राजू ये हुये इस प्रकार आठराजू परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्शन हुये। कुछ भाग छूट जाता है अतः कुछ हीन आठराजू हुये। मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकसे मर सक्ता है [क्योंकि सम्यक्त्व गुण सहित किसी जीवका मरण सातवें नरकसे नहीं हो सक्ता है] यदि इस छठे नरकसे मारणांतिक समुद्घात करे और बादर पृथिवी कायादिक लोकके अंत भागमें उत्पन्न हो जो छठे नरकसे-मध्य लोक तक पांच राज हुये और मध्यलोकसे अंत तक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये कुछ [किंचित्] भाग छूनेसे रह जाता है अत कुछ हीन बारह राजू हुये। पृष्ठ १२३, १२४ इसी अनुवादका (२) मिश्र गुणस्थानवर्ती स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे कुछ हीन आठ राजू जैसे मिश्र गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करे तब कुछ न्यून आठराजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १२५। (३) मिथ्यादृष्टियोंकरि सर्वलोक छुआ जाता है। पृष्ठ १२२ ॥

लोकस्यासंख्येयभागः ।

लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥	=(स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है

मनुष्यक्षेत्रवर्तिद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टीनां मरणरहितानां मारणान्तिकाभावोऽप्यवगम्यते । अन्यथा तदपेक्षया षट् चतुर्दशभागा इति कथयन्ति । मनुष्यक्षेत्रे मरणमस्ति । मारणान्तिकोऽस्ति नास्तीत्यत्र नास्माकं निश्चयः । उपदेशाभावात् । यद्यस्ति तदपि लोकासंख्येयभागेऽन्तर्भावः । मनुष्यक्षेत्र बहिरभावात् ॥

शेषाणाम् ॥	=(उपशम सम्यक्त्वके) बचे हुये (गुणस्थानवालोंनि)का (स्पर्शन)
लोक-असंख्येयभागः ॥ इति॰ अनेन ॥	=लोकका असंख्यातवां अंश है ऐसे इस (वाक्य) करि
उपशमसम्यग्दृष्टि-देशसंयत + अपेक्षया ॥ अपि॰	=उपशम सम्यक्त्ववाले संयमासंयमीनकी विवक्षासे भी
लोक-असंख्येयभागकथनात् ॥	=लोकके असंख्यातवां भागके व्याख्यानसे
मनुष्यक्षेत्रबहिर् ॰ वर्ति-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ॥	=मनुष्य क्षेत्र (अढाई द्वीप) से बाह्य रहनेवाले उपशम सम्यग्दर्शनवाले
मरणरहितानाम् ॥ मारणान्तिक-अभावः ॥ अपि ॰	=मृत्यु वर्जितनके मारणांतिक समुद्घातका न होना भी
अवगम्यते । अन्यथा ॰	=माना जाता है। दूसरे प्रकार(यदि मारणांतिक समुद्घातका होना माना जाय तो)
तद्-अपेक्षया ॥	=उस (मारणांतिक समुद्घातकी) अपेक्षासे
षट् ॥ चतुर्दश ॥ भागा ॥ इति॰ कथयन्ति ।	=(लोक प्रमाणके) चौदह राजू हैं (सो) छह (राजू हुये जाते) हैं ऐसा कहते हैं पृष्ठ १२६ इसी पुस्तकका देखो।
मनुष्यक्षेत्रवर्तिद्-द्वितीय-उपशमसम्यग्दृष्टीनाम् ॥	=अढाई द्वीपमें रहनेवाले द्वितीय उपशम सम्यग्दर्शनके धारकोंकी
मरणम् ॥ अस्ति । मारणान्तिकः ॥ अस्ति न अस्ति इति	=मृत्यु है। मारणांतिक समुद्घात है (अथवा) नहीं है ऐसे
अत्र॰ न अस्माकम् ॥ निश्चयः ॥ उपदेश-अभावात् ॥	=इसमें (आगम) शिक्षा (=उपदेश) न होनेके कारणसे हमको निश्चय नहीं है।
यदि अस्ति-तद् अपि लोक-असंख्येयभागे ॥	=जो (मारणांतिक समुद्घात) है तौ भी लोकके असंख्यात खंड (के स्पर्शन)में
मनुष्य-क्षेत्रात् ॥ बहिर् ॰	=अढाई द्वीपसे बाहर (द्वितीय उपशम सम्यक्त्व तथा इसमें मारणांतिक समु
अभावात् ॥ अन्तर्भावः ॥	=द्घात) न होनेके हेतुसे—गर्भित है। (टिप्पणी) मनुष्य और तिर्यंच अढाई द्वीप तक है और तिर्यंच अढाई द्वीपसे बाहिर भी है तिर्यंचोंके पांचवां गुणस्थान तक ही सका है और द्वितीय उपशम छाठवे गुणस्थानमें होता है इसलिये तिर्यंचनके नहीं हो सका है इस कारणसे मनुष्य क्षेत्रसे बाहिर द्वितीय उपशम नहीं है

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम् ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि— = सासादन सम्यग्दर्शनवालोंनिका,

सम्यग्मिथ्यादृष्टि— = मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवर्तीनिका

मिथ्यादृष्टीनां ॥ = और मिथ्यादृष्टियोंका [स्पर्शन]

सामान्य-उक्तम् ॥ = संक्षेपमें [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन किया जाता है। तीनसौ तेतालीस घनाकार राजू लोकमें जो इस राजू लोकत्रसनाळ है सो सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि कुछ हीन आठ राजू परस्थान विहार अपेक्षासे और मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे कुछ हीन बारह राजू छुए जाते हैं जैसे विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती देव तीसरे नरक तक विहार करते हैं सो मध्य लोकसे तीसरे नरक तक दो राजू हुए और ऊपर सोलह स्वर्ग तक विहार करते हैं तब छह राजू ये हुये इस प्रकार आठराजू परस्थान विहार अपेक्षासे स्पर्शन हुये। कुछ भाग छूट जाता है अतः कुछ हीन आठराजू हुये। मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे सासादन गुणस्थानवर्ती जो केवल छठे नरक तकसे मर सका है [क्योंकि सम्यक्त्व गुण सहित किसी जीवका मरण सातवें नरकसे नहीं हो सकता है] यदि इस छठे नरकसे मारणांतिक समुद्घात करे और बादर पृथिवी कायादिक लोकके अंत भागमें उत्पन्न हो तो छठे नरकसे-मध्य लोक तक पांच राजू हुये और मध्यलोकसे अंत तक स्पर्शनमें सात राजू ये हुये कुछ [किंचित्] भाग छूनेसे रह जाता है अत कुछ हीन बारह राजू हुये। पृष्ठ १२३, १२४ इसी अनुवादका (२) मिश्र गुणस्थानवर्ती स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे कुछ हीन आठ राजू जैसे मिश्र गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करे तब कुछ न्यून आठराजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १२५। (३) मिथ्यादृष्टियोंकरि सर्वलोक छुआ जाता है। पृष्ठ १२२ ॥

१२ सञ्ज्ञानुवादेन सञ्ज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत्।

सञ्ज्ञा—अनुवादेन ३। = सैनीके कथनानुसार करि अर्थात् मनसहित जीवोंकी अपेक्षासे

सञ्ज्ञिनां ३। चक्षुर्दर्शनिवत् * = सैनी या मनसहित जीवोंका [स्पर्शन] चक्षुदर्शनवालोंके समान है अर्थात् चक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकषायवालोंका स्पर्शन पंच इन्द्रिय जीवोंके सदृश है [पृष्ठ १४५] और पंचेन्द्रिय जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंकरि लोकका असंख्यातवां अंश छुआ जाता है। लोकत्रसनालके चौदहराजूओंमेंसे परस्थान विहार अपेक्षासे कुछ घाटि आठ राजू हैं और मारणांतिक अपेक्षासे स्पर्शनका सर्व लोक है। [पृष्ठ १४०–१४१] सासादन गुणस्थानमें पंचेन्द्रिय जीवोंका स्पर्श स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग है। परस्थान विहार अपेक्षासे त्रसनालके चौदह राजूओंमेंसे आठ राजू कुछ हीन है और मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे चौदह राजूओंमेंसे कुछ न्यून बारह राजू है (विशेषके लिये पृष्ठ १२२ १२४) सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियोंकरि स्वस्थानविहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छुआ जाता है परस्थान विहार अपेक्षासे चौदह राजूओंमेंसे कुछ घाटि आठ राजू स्पर्शा जाता है [मिश्रगुणस्थानवर्ती देव और असंयत गुणस्थानवर्ती देव अच्युत सोलहवां स्वर्गसे तीसरे नरक तक विहार करें तब कुछ न्यून आठ राजू स्पर्शते हैं पृष्ठ १२५] संयतासंयत गुणस्थानमें पञ्चेन्द्रियोंकरि स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श किया जाता है अथवा लोकत्रसनालके चौदह राजूओंमेंसे मारणांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे अच्युत सोलहवां स्वर्गतक उत्पत्ति होनेके कारणसे कुछ हीन छह राजू स्पर्शा जाता है (पृष्ठ १२६) जैसे स्वयम्प्रभाचलके बाहिरका देशसंयमी तिर्यंच अच्युत सोलहवें स्वर्ग पर्यंत जन्म लेनेसे मारणांतिक समुद्घात अपेक्षासे कुछहीन छः राजू स्पर्श करता है [पृष्ठ १२७] प्रमत्त संयतसे क्षीणकषाय तक सर्व गुणस्थानोंमें पंचेन्द्रिय जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रवत् है (पृष्ठ ११६) क्षेत्रवत् स्पर्शन प्रमत्तसंयत छठे गुणस्थानसे बारह तक लोकका असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ ११६)॥

असञ्ज्ञिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तम् । [१४] आहारानुवादेन–आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तम् ॥

असञ्ज्ञिभिः ।। सर्वलोकः ।। स्पृष्टः ।। = असैनी (मनरहित) निकरि समस्तलोक स्पर्शा जाता है ॥

तद्–उभयव्यपदेश–रहितानां ।। = इन दोनो [मनसहित मनरहित] नामसे वर्जित अर्थात् सयोगकेवली अयोगकेवलीनिका स्पर्शन

सामान्य–उक्तम् ।।। = संक्षेप [प्रकरण] में कथित गुणस्थानवत् है अर्थात् एक समयमें होनेवाले उत्कृष्ट ८९८५०२ सयोगकेवलियोंका स्वस्थान स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षासे लोकका असंख्यातवांभाग स्पर्श है। दण्डसमुद्घात और कपाट समुद्घातोंकी अपेक्षासे भी लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श है प्रतर समुद्घातमें लोकके असंख्याते भागोंमेंसे एक भाग हीन [वातवलयोंके क्षेत्रके प्रमाण भाटि] सर्वलोक है और लोक पूरण समुद्घातकी अपेक्षासे सब ही लोकमें सयोगकेवलीके प्रदेश व्याप्त हो जाते हैं। और अयोगकेवलीनिका स्पर्शन लोकका असंख्यातवांभाग स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षासे है पृष्ठ १२४ पंक्ति २,३ पृष्ठ ११८ से १२०

आहार–अनुवादेन ।। आहारकाणां = [१४] आहारके कथनानुसारकरि आहारक

मिथ्यादृष्टि–आदि–क्षीणकषाय– = मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकषाय (बारहवां) गुणस्थानवर्ती

अन्तानां ।। सामान्य–उक्तम् ।।। = तकनिका (स्पर्शन) संक्षेप (प्रकरणमें) कथित (गुणस्थानवत्) है ॥ अर्थात् आहारक अवस्था जीवकी प्रथमसे तेरह गुणस्थान तक हो सकती है सो [१] मिथ्यादृष्टि प्रथम गुणस्थानवर्ती आहारकोंकरि सब लोक छूआ जाता है (पृष्ठ १३२) (२) सासादन सम्यग्दृष्टि आहारक वाले स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवा भाग स्पर्शन करते हैं, परस्थानविहार, अपेक्षासे लोक त्रसनालीके चौदह राजुओंमेंसे आठ राजू कछु घाटि स्पर्शन करते हैं और मार णांतिक समुद्घातकी अपेक्षासे लोक त्रसनालके चौदह राजुओंमेंसे बारह राजू कछु न्यून छूते हैं (विशेष पृष्ट १३३–१३४) ॥ [३–४] मिश्र गुणस्थानवर्ती आहारक और असयत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवर्ती आहारक स्वस्थान विहार अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छूते हैं

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः।

और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ घाटि आठ भाग छूते हैं (विशेष पृष्ठ ११५) ॥ [५] संयतासंयमी आहारक स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षासे लोकका असंख्यातवां भाग छूते हैं और परस्थान विहार अपेक्षासे लोक त्रसनाडीके चौदह राजुओंमेंसे कुछ न्यून छह राजू छूते हैं ॥ [६–१२] प्रमत्त संयमी छठे गुणस्थानवाले आहारकोंसे लेकर क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानवर्ती आहारकों तकका स्पर्शन क्षेत्रवत् है [पृष्ठ ११६] यह क्षेत्र सदृश स्पर्शन पृष्ठ ११६ के अनुकूल लोकका असंख्यातवां अंश होता है ॥

सयोग–केवलिनाम् ॥ = योगसहित केवलीका (जो स्वस्थानविहार और परस्थानविहार दण्ड कपाट समुद्घातोंमें आहारक और प्रतर लोक पूर्ण समुद्घातोंमें अनाहारक होते हैं)

लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥ = लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्शन है अर्थात् सयोगकेवली आहारक और अनाहारक दोनों अवस्थाओंमें होते हैं इनका भी स्पर्शन क्षेत्रवत् है [पृष्ठ ११६] यह क्षेत्र समान स्पर्शन आहारक अवस्थामें स्वस्थान विहार अपेक्षासे और परस्थान विहार अपेक्षासे दंड–कपाट समुद्घातोंमें असंख्यातवां भाग है (विशेष पृष्ठ ११५ से १२०) और अनाहारक सयोग केवली हैं प्रतर समुद्घातमें लोकके असंख्यात भागोंमेंसे एक भाग न्यून (तीनोंवात वलयोंके क्षेत्रके बराबर न्यून) स्पर्शन करते हैं (एक भाग घाटि सबही लोक स्पर्शते हैं) और लोक पूर्ण समुद्घातमें अनाहारक सयोगकेवलीके आत्माके प्रदेश सर्वत्र लोकमें व्याप्त हो जाते हैं अतः सर्वलोक स्पर्शन है ॥

अन्+आहारकेषु ॥ = अनाहारक (मिथ्यादृष्टि–सासादनसम्यग्दृष्टि–असंयतसम्यग्दृष्टि–सयोगकेवली–अयोग–केवलीनिमें)

मिथ्यादृष्टिभिः ॥ सर्वलोकः ॥ स्पृष्टः = मिथ्यादृष्टियोंकरि समस्त लोक स्पर्श्या जाता है

सासादनसम्यग्दृष्टिमिश्रौ लोकस्यासंख्येयभाग । एकोदश चतुर्दशभागा वा देशोना: ।

सासादन-सम्यग्दृष्टि: ?। = [मनाहारक बाके] सासादन सम्यग्दृष्टिवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) निकृष्टि

लोकस्य ?? असंख्येयभाग ?। = लोकका असंख्यातवां भाग छुआ जाता है

एकादश ? द्वादश ?? भाग ?? वा देशोना: ?। = (सासादनसम्यग्दृष्टि) चौदहभाग हैं (सो) कुछ घाटि ११ अथवा भी है

(१) पद्धपूर्वमिथ्यादृष्टिसासादनानां मध्यलोके स्वस्थितिक्षेत्र । मध्यलोकादिभागपूर्वकस्पर्शनमनुपर्यवसितिक्षेत्र । तत्र उपपादस्पर्शनकृतावस्थाय लोके स्पृष्टम् । तत प्रकारेण चतुर्दशभागाः समाहारकसासादनगणत्वेनोक्ति इत्याह । यदि विशेषविवक्षया देवनायकस्थितिक्षेत्र तथापि लोकाकर्षणेन मारणान्तिकसमुद्घातेन मनुष्याधोगमनेन निष्क्रमणस्यापि ॥ तत्र सामान्यकथनात्सर्वे सासादनापेक्षया अवस्थानादेकादश चतुर्दशभागा स्पृष्टा सासादनेन क्रियमिति बद्ध- सासादनो बादरपृथिवीपर्यन्तं मारणान्तिक मुक्त्वा मिथ्यात्वपरिणामेन म्रियते । तत्र बादरपृथिवी सासादनदृष्टिर्बद्धायुस्तेषां पृथिवीपर्यन्त देशेन स्पृष्टा । मध्यलोकात् पद्धपूर्वोक्तपञ्चभागाधोलोकसम्बन्धीति द्वौ स्पृष्टा । एतदपेक्षया सप्तसप्ताः सर्वतः ॥ पद्धपूर्वमिथ्यादृष्टिर्मनुष्यादिसासादनाः मिथ्यात्वपरिणामेन मियन्त (इति) द्वौ मिश्रा इति भेद—सौधर्मैशानादिदेवलोकेषु सासादनानामुपपादक्षेत्रसंस्पर्शनात् ॥ कथमेषा मनोहि- तिति भेद—पूर्वोक्तलोकोऽपि पञ्चम मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्तिभिः विशिष्टगुणस्थानापेक्षया एव चतुर्दशभागा स्पृष्टा पद्धपूर्वा

मध्यलोकादिभागाः देशोनाः ॥

पद्धपूर्वमिथ्यादृष्टिसासादनानाम् ?। —मनुष्यलोक तथा देवलोक सासादन गुणस्थानवर्ती (मारणान्तिक)—

मध्यलोकैः बादरपि ?। बाहि ?। = मध्यलोकसे नीचे भाग है (सो) नीचे नरकसे मध्यलोकतक छुआ गया पांच राजू हुए)

मध्यलोकादि बादरतिनाम् ?। अच्युतस्वर्गपर्यन्तम् ?। = मध्यलोकसे ऊपरवाले दूसरे (गुणस्थानवर्ति) जिनके अच्युत (सोलहवां) स्वर्ग तक

क्षयकि ?। बाहि तदा ● अपपादपरिवेषः ?। = (छूआ गया है सो) भाग है यहां (छठे नरक) से (अपपाद) में परिवर्तन हुए

वे: ?। बाप्त ● = तिन (दूसरे गुणस्थानवर्ति) वहां छूआ (छूआ पांच राजू—बाप्त)

देवम् ?। स्पृष्टम् ?। ?। पकसप्त ?। चतुर्दश ?। भागाः = देव संस्पृष्टाः है । किंतु (लोकसामान्यके) चौदहभागोंसे मापके है दिखाया पूर्ण

मनाहारक—सासादन अपेक्षया ?। एकि छुआ ?। —— मनाहारक दूसरे गुणस्थानवर्तिको अपेक्षासे है छिपकर एक या स्पष्ट है

पदि ● मिथ्यात्वपर्यन्तम् ?। देवम् ?। = या (लोकके सबसे ऊपर , नवग्रैवेयक तक) जिन मनाहारक सासादनवालोंका

उत्पत्ति ॥ अस्ति तथापि • लोकासंख्येयभागे ॥ —जन्म है तब भी लोकके असंख्यात भाग (के कथन) विषैं

अन्तर्भावः ॥ मनुष्याणाम् ॥ एव विकेषेषु ॥ उत्पत्तिः ॥ —गर्भित है (क्योंकि) मनुष्योंका ही जन्म (जन्म) विकेषक विषैं है

ननु • सामान्यकथन-प्रसङ्गे ॥ सासादनस्य स्पर्शना ॥ —प्रश्न-संक्षेप व्याख्यानके प्रसंगमें दूसरे गुणस्थानवर्तीनिकी स्पर्शनासे

द्वादश ॥ चतुर्दश ॥ भागाः ॥ इति • उक्तम् ॥ (लोकनसनालके) चौदह राजू है (सो) बारह (राजूका स्पर्शन है) ऐसा कहा गया है

तत्सम्भवः ॥ कथम् • इति • चेत् • —तिस (चौदह राजूमें बारह राजूके स्पर्शन) का होना कैसे है ऐसे संशय (पर कहते हैं कि)

सासादनाः ॥ सप्तमपृथिवीपर्यन्तम् ॥ —सासादनसम्यग्दृष्टी नीचे सेव लग (=सप्तमपृथिवीपर्यन्तम्)

मारणान्तिकम् ॥ कृत्वा+मिथ्यात्वपरिणामेन ॥ म्रियन्ते —मारणान्तिक समुद्घात करके मिथ्यात्व स्वभावसे मरते हैं

ततः • आहारके ॥ सासादने ॥ अच्युतात् ॥ —इसकारणसे (=ततः) आहारक सासादन सम्यग्दृष्टियोंकरि सोलहवां स्वर्गसे

उपरि • सप्तमपृथिवीपर्यन्तम् ॥ क्षेत्रम् ॥ स्पृष्टम् ॥ —ऊपर मोक्षतक (=सप्तमपृथिवीपर्यन्तम्) क्षेत्र स्पर्शा जाता है अतः बारह हुवे

अच्युतात् ॥ अधः • षष्ठपृथिवीपर्यन्तम् ॥ —अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) से नीचे छठवां नरक (=पृथिवी) तक

ते ॥ आहारके ॥ अनाहारकैः ॥ अपि —तिन (दूसरे गुणस्थानवर्ती) आहारकनिकरि (तथा) अनाहारकनिसे भी

स्पृष्टम् ॥ —(इनतीन ग्यारह राजू अर्थात् अच्युतसे छठवां नरक तक) छुआ जाता है

एतद् अपेक्षया ॥ तत्सम्भवः ॥ भवति । —इस (प्रकार) अपेक्षासे वह (कुछ हीन ग्यारह राजूका स्पर्शन) संभव है।

सप्तमपृथिव्याम् ॥ उत्पद्यमानसासादनाः ॥ —सातवीं भूमिविषै उत्पन्न होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टी

मिथ्यापरिणामेन ॥ एव • (म्रियन्ते इति) —केवल (=एव) मिथ्यात्वस्वभावकरि मरण करते हैं (ऐसा)

कुतः • नियमः ॥ इति • चेत् • — —कहांसे नियम है इसप्रकार संदेह (=चेत् ऐसा होनेपर कहते हैं)

एतैः ॥ आचार्यैः ॥ एकद्वित्रि-इन्द्रियेषु ॥ —इन (=एतैः) आचार्योंकरि एक इंद्रिय बेइन्द्रिय तीइन्द्रिय चारइन्द्रियनमें

सासादन अन उत्पत्तिपक्ष-अभ्युपगमात् ॥ —सासादन वालोंका जन्म न होनेकी पक्ष ग्रहण करनेसे (व्यक्त है कि सातवीं पृथिवीमें ऐसा होनेवाले सासादन सम्यग्दृष्टि मिथ्यापरिणाममें ही मरते हैं)

कथम् • वा ॥ स्पृष्टिः ॥ —यह विपर्यास (कि सासादन सम्यग्दृष्टी विकल इन्द्रियनविषै जन्म नहीं लेते) कैसे (हुआ)

असयतसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्येयभाग । पद चतुर्दशभागावा देशोना ॥

अर्थात् अनाहारक सासादन सम्यग्दृष्टि ' छठा पृथिवीतें मध्यलोकमें उपजै, ताके उत्पाद अपेक्षा तो पांच राजू अर मध्यतैं मध्यलोकमें आय उपजै, ताके उत्पाद अपेक्षा छह ऐसें ग्यारह राजू भये। मारणांतिक अपेक्षा बारह राजू होय हैं। परन्तु मारणांतिकमें अनाहारक नाहीं। तातें उत्पाद अपेक्षा ग्यारह हैं॥" सर्वार्थसिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ ८८ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टीनां ॥ लोकस्य ॥ असंख्येयभागः ॥	=(अनाहारक) असंयत गुणस्थानवर्तीनिका (स्पर्शन) लोकका असंख्यातवां अंश है।
पद् ॥ चतुर्दशभागा ॥ वा देशोना ॥	=वा (लोक त्रसनालीके) चौदह राजू हैं (सो) कछु हीन छह छूए जाते हैं
इति चेत्	=इसप्रकार संशय (=चेत्) (कोईपर कहते हैं)
पूर्वम् ॥ एकविकलइन्द्रिये ॥ पञ्चम् ॥ एव	=पहिले (देखो पृष्ठ १४० पंक्ति १) एक इन्द्रिय विकल इन्द्रीमें एक ही
मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् ॥ इति उक्तत्वात् ॥ पूर्वम् ॥	=मिथ्यात्व गुणस्थान है ऐसे कथन होनेसे प्रथम (देखो पृष्ठ १३८ पंक्ति ४)
तिर्यग्-मनुष्यसासादन-अपेक्षया ॥	=(दूसरे गुणस्थानवर्ती) तिर्यंच तथा मनुष्यनकी अपेक्षासे
सप्त ॥ चतुर्दश ॥ भागाः ॥ इति उक्तम् ॥	=(लोक त्रसनालीके) चौदह राजू हैं (सो) सात (राजू स्पर्श जाते) हैं ऐसे कहा गया है
तद्+अपि	=पहिले कहा हुआ (=तद्) भी (चौदह राजूमेंसे बारह राजूका स्पर्शन तथा)
अत्र उक्तम् ॥	=यहां (=अत्र) कहा हुआ (चौदह राजूमेंसे सासादन तिर्यंच और नरकमध्य सात राजू स्पर्शन)
मारणान्तिक-अपेक्षया ॥ इति	=मारणांतिक समुद्घातकी विवक्षाकरि है ऐसें—
अवगन्तव्यम् ॥	=जानने योग्य है (चौदह राजूमें ग्यारह राजू उत्पाद अपेक्षासे हैं बारह राजू मारणांतिक अपेक्षासे हैं परन्तु मारणान्तिकमें अनाहारक नहीं है, आहारक ही है)

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा। अयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥ स्पर्शनं व्याख्यातम्। कालः प्रस्तूयते।

सयोगकेवलिनां ६। लोकस्य ६। असंख्येयभागः १।	= सयोग केवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग (आहारक अवस्थामें स्वस्थान विहार अपेक्षासे परस्थान विहार अपेक्षासे दण्ड समुद्घात अपेक्षासे और कपाट समुद्घात अपेक्षासे) होता है
	= अथवा [अनाहारक अवस्थामें प्रतर समुद्घातमें एक भाग न्यून और]
वा	= (लोक पूर्ण समुद्घातमें) समस्तलोक है [देखो पृष्ठ ११५ से १२० तक]
सर्वलोकः १।	
अयोग–केवलिनां ६। लोकस्य असंख्येयभागः १।	= अयोगकेवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग है।
स्पर्शनं १। व्याख्यातम् १। कालः १। प्रस्तूयते।	= स्पर्शन [प्ररूपणाका] वर्णन किया गया। कालका वर्णन किया जाता है

---

(१) विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदा अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥ गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ६६६

विग्रहगतिमापन्नाः केवलिनः समुद्घाताः अयोगिनः च। सिद्धाः च अनाहाराः शेषाः आहारकाः जीवाः ॥ गाथाकी यह संस्कृत छाया है।

विग्गहगदिमावण्णा १। (= विग्रहगतिमापन्नाः १।)	= विग्रहगति (= नवीन जन्म धारण करनेके लिये गमन) को प्राप्त हुये जीव
केवलिणो १। समुग्घदा १। (= केवलिनः १। समुद्घाताः १।)	= (प्रतर, और लोक पूरण) समुद्घात प्राप्त सयोगकेवली
अजोगी १। य० सिद्धा १। य०(अयोगिनः १। च सिद्धाः १। च)	= और (= य = च) अयोगी जिन और (= य = च) सिद्ध भगवान
अणाहारा १। सेसा १। (= अनाहाराः १। शेषाः १।)	= अनाहारक (जीव) हैं अवशेष या बचे हुये
आहारया १। जीवा १। (= आहारकाः १। जीवाः १।)	= आहारक जीव हैं (देखो पृष्ठ ४२ आहार और आहारकके लिये)

(२) प्रस्तूयते–स्तु अदादि द्वितीयगणका परस्मैपद और आत्मनेपदी धातु प्रशंसा अर्थमें आता है। कर्मणि प्रयोग करनेमें यदि धातुके अन्तमें इ अथवा उ होवे तो उसको दीर्घ करके य प्रत्यय लगा देते हैं पश्चात् आत्मनेपद प्रत्यय लगा देते हैं। स्तु धातुमें उपसर्ग लगाकर स्तुके उ को दीर्घ करके य कर्मणि प्रत्यय लगाकर प्रस्तूय बना लिया पश्चात् ते अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपदी वर्तमानकालका प्रत्यय जोड़ा तो प्रस्तूयते बन गया।

मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एक-
स द्विविधः । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्–मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एक-
जीवापेक्षया त्रयो भङ्गाः । अनादिरपर्यवसानः अनादिसपर्यवसानः सादिसपर्यवसानश्चेति ॥

सः ।१ द्विविधः ।१ सामान्येन ।३ विशेषेण ।३ च	=वह [काल] दो प्रकारका है संक्षेपसे और भेदसे
सामान्येन ।३ तावत् मिथ्यादृष्टेः ।६	=संक्षेपकरि प्रथम मिथ्यादृष्टिका
नानाजीव+अपेक्षया ।३ सर्वः ।१ कालः ।१	=अनेक जीवोंकी अपेक्षासे समस्त काल है
एक–जीव+अपेक्षया ।३ त्रयः ।१ भङ्गाः ।१	=एक आत्माकी विवक्षाकरि तीन भंग हैं
अनादिः ।१ अपरि–अवसान ।१	=(अभव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) रहित [= अपरि] =अर्थात् अनादि अनन्त (काल) है
अनादिः ।१ सपरि+अवसानः ।१	=(भव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) सहित (= सपरि) अर्थात् अनादिसान्त (काल) है
स+आदि ।१ सपरि+अवसानः ।१ च इति	=बहुरि [भव्यका] आदिसहित अन्त [= अवसान] सहित [= सपरि] सादिसान्त [काल] है ऐसे तीन भंग हैं,

(१) अनादिरपर्यवसानो मिथ्यात्वकालः अभव्येषु । अनादिमिथ्यादृष्टिर्यः कश्चन प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृहीष्यति तस्य प्राक्तनमिथ्यात्वकालः अनादिः सपर्यवसानः कश्चित्तु परिगृहीतसम्यक्त्वो मिथ्यात्वं प्राप्नोति तस्य तन्मिथ्यात्वं सादिसपर्यवसानम् ।

अनादिः ।१ अपरिअवसानः ।१ मिथ्यात्वकालः ।१	=अनादि अन्तरहित मिथ्यात्वकाल अभव्य विषें है अर्थात् अभव्य मिथ्यादृष्टियों का काल अनादि अनन्त है
अनादिमिथ्यादृष्टिः ।१ यः ।१ कश्चन ।१	=अनादि मिथ्यादृष्टी जो (= यः) कोई (= कश्चन)
प्रथम+उपशमसम्यक्त्वम् ।२ गृहीष्यति T	=प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनको धारण करैगा
तस्य ।६ प्राक्तन–	=तिस (प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनवाले) का पहिलेका (= प्राक्तन)
मिथ्यात्वकालः ।१ अनादिः ।१ सपरि+अवसानः ।१	=मिथ्यात्वका समय अनादि अन्त सहित (= सान्त) है

एटानिवासी मथुरूपसहायमक्षीकृत पदच्छेद और विमपत्यर्थसहित

सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ८।

सयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा। अयोगकेवलिनां लोकस्यासंख्येयभागः ॥ स्पर्शनं व्याख्यातम्। कालः प्रस्तूयते।

सयोगकेवलिनां ।। लोकस्य ।। असंख्येयभागः ।।	= सयोग केवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग (आहारक अवस्थामें स्वस्थान विहार अपेक्षासे परस्थान विहार अपेक्षासे दण्ड समुद्घात अपेक्षासे और कपाट समुद्घात अपेक्षासे) होता है
वा	= अथवा [अनाहारक अवस्थामें प्रतर समुद्घातमें एक भाग न्यून और]
सर्वलोकः ।।	= (लोक पूर्ण समुद्घातमें) समस्तलोक है [देखो पृष्ठ ११५ से १२० तक]
अयोग-केवलिनां ।। लोकस्य असंख्येयभागः ।।	= अयोगकेवलियोंका [स्पर्शन] लोकका असंख्यातवां भाग है।
स्पर्शनं ।।। व्याख्यातम् ।।। । कालः ।। प्रस्तूयते।	= स्पर्शन [प्ररूपणाका] वर्णन किया गया। कालका वर्णन किया जाता है

(१) विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदा अजोगी य। सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥ गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६६६

विग्रहगतिमापन्नाः केवलिनः समुद्घाताः अयोगिनश्च। सिद्धाश्च अनाहाराः शेषा आहारका जीवाः ॥ गाथाकी यह संस्कृत छाया है।

विग्गहगदिमावण्णा ।। (= विग्रहगतिमापन्नाः ।।) = विग्रहगति (= नवीन जन्म धारण करनेके लिये गमन) को प्राप्त हुये जीव

केवलिणो ।। समुग्घदा ।। (= केवलिनः ।। समुद्घाताः ।।) = (प्रतर, और लोक पूरण) समुद्घात प्राप्त सयोगकेवली

अजोगी ।। य॰ सिद्धा ।। य॰ (अयोगिनः ।। च सिद्धाः ।। च) = और (= य च) अयोगी जिन और (= य = च) सिद्ध भगवान

अणाहारा ।। सेसा ।। (= अनाहाराः ।। शेषाः ।।) = अनाहारक (जीव) हैं अवशेष या बचे हुये

आहारया ।। जीवा ।। (= आहारकाः ।। जीवाः ।।) = आहारक जीव हैं (देखो पृष्ठ ६२ आहार और आहारकके लिये)

(२) प्रस्तूयते-स्तु अदादि द्वितीयगणका परस्मैपद और आत्मनेपदी धातु प्रशंसा अर्थमें आता है ॥ कर्मणि प्रयोग बनानेमें यदि धातुके अन्तमें इ अथवा उ होवे तो उसको दीर्घ करके य प्रत्यय लगा देते हैं पश्चात् आत्मनेपद प्रत्यय लगा देते हैं ॥ स्तु धातुमें उपसर्ग लगाकर स्तुके उ को दीर्घ करके य कर्मणि प्रत्यय जोड़कर प्रस्तूय बना लिया पश्चात् ते अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालका प्रत्यय जोड़ा तो प्रस्तूयते बन गया ॥

स द्विविधः। सामान्येन विशेषेण च॥ सामान्येन तावत्–मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एक-जीवापेक्षया त्रयो भङ्गाः। अनादिरपर्यवसानः अनादिसपर्यवसानः सादिसपर्यवसानश्चेति॥

सः ।१ द्विविधः ।१ सामान्येन ।३ विशेषेण ।३ च	= वह [काल] दो प्रकारका है संक्षेपसे और भेदसे
सामान्येन ।३ तावत् मिथ्यादृष्टेः ।६	= संक्षेपकरि प्रथम मिथ्यादृष्टिका
नानाजीव+अपेक्षया ।३ सर्वः ।१ कालः ।१	= अनेक जीवोंकी अपेक्षासे समस्त काल है
एक-जीव+अपेक्षया ।३ त्रय ।१ भङ्गाः ।१	= एक आत्माकी विवक्षाकरि तीन भंग हैं
अनादिः ।१ अपरि-अवसानः ।१	= (अभव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) रहित [= अपरि]
	= अर्थात् अनादि अनन्त (काल) है
अनादिः ।१ सपरि+अवसानः ।१	= (भव्यका) अनादि अन्त (= अवसान) सहित (= सपरि) अर्थात् अनादिसान्त (काल) है
स+आदिः ।१ सपरि+अवसानः ।१ च इति	= बहुरि [भव्यका] आदिसहित अन्त [= अवसान] सहित [= सपरि] सादिसान्त [काल] है ऐसे तीन भंग हैं,

(१) अनादिरपर्यवसानो मिथ्यात्वकालः अभव्येषु। अनादिमिथ्यादृष्टिः कश्चन प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृहीष्यति तस्य प्राक्तनमिथ्यात्वकालः अनादिः सपर्यवसानः कश्चित्तु गृहीतसम्यक्त्वो मिथ्यात्वं प्राप्नोति तस्य तन्मिथ्यात्वं सादिसपर्यवसानम्।

अनादिः ।१ अपरिअवसानः ।१ मिथ्यात्वकालः ।१	= अनादि अन्तरहित मिथ्यात्वकाल अभव्य विर्षें है अर्थात् अभव्य मिथ्यादृष्टियोंका काल अनादि अनन्त है
अनादिमिथ्यादृष्टिः ।१ यः ।१ कश्चन ।१	= अनादि मिथ्यादृष्टी जो (= यः) कोई (= कश्चन)
प्रथम+उपशमसम्यक्त्वम् ।२ गृहीष्यति	= प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनको धारण करैगा
तस्य ।६ प्राक्तन-	= तिस (प्रथम उपशम सम्यग्दर्शनवाले) का पहिलेका (= प्राक्तन)
मिथ्यात्वकालः ।१ अनादिः ।१ सपरि+अवसानः ।१	= मिथ्यात्वका समय अनादि अन्त सहित (= सान्त) है

तत्र सादि॰ सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्त॰। उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्त्तो देशोन ॥

तत्र स+आदिः ,। सपरि+अवसान ;। = तहां आदिसहित अन्तसहित अर्थात् सादिसान्त

जघन्येन ,। अन्तर्मुहूर्तः ;। = जघन्य [अपेक्षा] करि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण ;। अर्धपुद्गलपरिवर्त ;। देशोन ;। = अतिशयकरि कुछ हीन अर्धपुद्गल परावर्तन है

कश्चित्+तु गृहीतसम्यक्त्व । = परन्तु (=तु) कोई (जीव) सम्यग्दर्शन प्राप्तकरि

मिथ्यात्वम् ।।। प्राप्नोति T तस्य ।। तद्+मिथ्यात्वम् ।।। = मिथ्यात्वको ग्रहण करता है (प्राप्नोति) = तिस (जीवके) वह मिथ्यात्व

सादि '। सपरि+अवसानम् ।।। = आदिसहित (तथा) अन्तसहित अर्थात् सादिसान्त है

(२) यः कश्चित् गृहीतवेदकोपशमसम्यक्त्वा मिथ्यात्व प्राप्य संसारे परिभ्रमति स नियमेनार्धपुद्गलपरिवर्तनकालपरिसमाप्तौ संसारे न तिष्ठति किंतु मुक्तो भवति तदुक्तम्—पुद्गलपरिवर्तार्धं परितो व्यालीढवेदकोपशमौ । वसतः संसाराब्धौ क्षायिकदृष्टिर्भवचतुष्कः ॥ इति सम्यक्त्व-ग्रहणम् । पुन' अर्धपुद्गलपरिवर्तनपरिसमाप्तः प्रागेव भवति । अन्यथा तदा मुक्त्यनुपपत्तिस्ततः सादिपर्यवसानमिथ्यात्वकालस्योत्कृष्टस्य देशोना र्धपुद्गलपरिवर्तत्व युक्तमेव ।

यः ।। कश्चित्+गृहीतवेदक+उपशमसम्यक्त्वा ,। = जो कोई जीव क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शन(= वेदक,तथा)उपशमसम्यग्दर्शन ग्रहणकरि

मिथ्यात्वम् ।।। प्राप्य + = (पश्चात्) मिथ्यात्वको प्राप्त होकर

संसारे ,। परिभ्रमति स' ।। नियमेन ।। = जगतविषै परिभ्रमण करता है वह नियमसे

अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालपरिसमाप्तौ ।।। संसारे ।। = आधापुद्गलपरिवर्तन समय परिपूर्ण होनेपर संसारमें

न तिष्ठति किंतु ॰ मुक्त' ।। भवति ,। = नहीं रहता है परन्तु मुक्त हो जाता है

तद्+उक्तम् ।।। = सो (ही निम्न लिखित आर्याछन्दमें) कहा गया है

व्यालीढवेदक+उपशमौ ।। = क्षायोपशमिक (और) उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त करके

पुद्गलपरिवर्त+अर्धं ।।। परित' वसतः Tसंसार+ अब्धौ ।। = अर्धपुद्गलपरावर्तन काल सर्वत्र संसाररूप समुद्रमें बसते है (और)

क्षायिकदृष्टि ।। भवचतुष्कः ।। = क्षायिकसम्यग्दर्शनधारीकरि चार जन्म (= भव) (धारण किये जाते) है अर्थात् वेदक और उपशम सम्यक्त्व होनेके पश्चात् मिथ्यात्व ग्रहण होनेपर जीव उत्कृष्ट अर्धपुद्गल परावर्तन संसारमें भ्रमण करके पीछे मोक्ष प्राप्ति करता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टी उत्कृष्ट चार भवका धारण करके मोक्ष प्राप्त करता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः॥ एक

सासादनसम्यग्दृष्टे ॥ नानाजीव+अपेक्षया ॥ = सासादन [दूसरे गुणस्थान]वालेका अनेक जीवकी विवक्षासे
जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ = जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ॥ पल्य+उपम+असंख्येयभाग ॥ = उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां भाग बराबर [=उपम] है
एकजीवम् ॥ प्रति = [सासादन सम्यग्दृष्टि] एक जीवकी अपेक्षासे [=प्रति]

इति सम्यक्त्वग्रहणम् ॥ पुनः अर्धपुद्गल- = इस प्रकार सम्यग्दर्शनका ग्रहण है फिर आधा पुद्गल
परिवर्तनपरिसमाप्तः ॥ प्राक् * एव भवति = परावर्तन परिपूर्ण होनेसे पहिले ही (जीवके सम्यक्त्व) हो जाता है
अन्यथा = दूसरे प्रकार यदि अर्ध पुद्गलपरावर्तनके पूरे होनेसे पहिले सम्यक्त्व न हो
तदा मुक्ति + भव+अपपत्ति ॥ तत् * = तो (=तदा) मोक्षका (प्राप्तिका) प्रसंग नहीं बनता है जिससे
स+आदिपरि-अवसानमिथ्यात्वकालस्य ॥ उत्कृष्टस्य ॥ = आदि सहित अन्त (=अवसान) सहित (=परि) अर्थात् सादिसान्त उत्कृष्ट मिथ्यात्वका काल
देशोन+अर्धपुद्गल-परिवर्तनम् ॥ युक्तम् ॥ एव = कुछ होन आधा पुद्गलपरिवर्तन समय परिपूर्ण होना ठीक ही है

आवलिका असंख्यातसमयलक्षणा भवति। गोमट्टसारे जीवकाण्डे सम्यक्त्वमार्गणायां तथा चोक्तम्। आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूह उस्सासो। सत्तुस्सासा थोवा सत्तत्थोवा लवो भणियो ॥ ५७४ ॥ आवलिः असंख्यसमया संख्येयावलिसमूह उच्छ्वासः। सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः सप्त स्तोकाः लवो भणितः।

च+असंख्यातसमयलक्षणा ॥ आवलिका ॥ भवति तथा च* = और (=च) असंख्यात समय लक्षणवाली एक आवली होती है ऐसा कि
गोमट्टसार जीवकाण्डे सम्यक्त्वमार्गणायां ॥ उक्तम् = गोमट्टसार जीवकांड सम्यक्त्व मार्गणामें कहा गया है
आवलि ॥ असंखसमया ॥ (=आवलिः ॥ असंख्यसमया ॥)= असंख्यात समयवाली (एक) आवली है
संखेज्जावलिसमूह ॥ (=संख्येय-आवलि-समूहः ॥) = संख्यात आवलीके समूह रूप या संख्यात आवलियोंका समुदाय
उस्सासो ॥ सत्तुस्सासा ॥ (उच्छ्वासः ॥ सप्तोच्छ्वासाः ॥) = (एक) उच्छ्वास होता है। सात उच्छ्वासवाला
थोवो ॥ सत्तत्थोवा ॥ (=स्तोकः ॥ सप्तस्तोकाः ॥) = (एक) स्तोक होता है। सात हैं स्तोक जिसके ऐसा
लवो ॥ भणियो ॥ (लवः ॥ भणितः) = (एक) लव होता है

जीव प्रति जघन्येनैक: समय. । उत्कर्षेण षडावलिका: ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्त र्मुहूर्त्त । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभाग' ॥ एकजीव प्रति जघन्य: उत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्त. ॥ असंयतसम्यग्दृष्टे र्नानाजीवापेक्षया सर्व. काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्त' "तिण्णि सहस्सा सत्त य सदाणि तेहत्तरि च उस्सासा ॥ एसो हवइ मुहुत्तो सव्वेसिं चेव मणुयाण ॥ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि

जघन्येन ॥ एक ॥ समय ॥ उत्कर्षेण ॥ षट्+आवलिका ॥ = जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि छह आवली है
सम्यङ्मिथ्यादृष्टे: ॥ नाना+जीव+अपेक्षया ॥ जघन्येन॥ = मिश्रगुणस्थानवालेका अनेक जीवोंकी अपेक्षासे जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्त ॥ उत्कर्षेण ॥ पल्य+उपम+असंख्येयभाग:॥ = अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवां भागके बराबर है
एक जीवम् ॥ प्रति * = (मिश्रगुणस्थानवर्तीका) एक एक (= प्रति) जीवका
जघन्य ॥ च उत्कृष्ट: ॥ अन्तर्मुहूर्त: ॥ = जघन्य तथा उत्कर्ष (काल) अन्तर्मुहूर्त है
असंयतसम्यग्दृष्टे ॥ = असंयत सम्यग्दर्शन [चौथे गुणस्थान]वालेका
नानाजीव-अपेक्षया ॥ सर्व ॥ = अनेक आत्माओंकी विवक्षाकरि समस्त
काल' ॥ एकजीवम् ॥ प्रति* जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्त ॥ = काल है प्रत्येक जीवके जघ यकरि अंतर्मुहूर्त है
[जिस मुहूर्तका प्रमाण निम्नलिखित आर्या छदमें कहते हैं]
सव्वेसिं ॥ चेव * मणुयाणं ॥ (सर्वेषां ॥ च एव मानवानां ॥) = समस्त मनुष्योंके ही
ति ण्ण॥ सहस्सा ॥ सत्त ॥ य [त्रीणि ॥ सहस्राणि ॥ सप्त॥ च] = तीन सहस्र और (= च) सात
सदाणि ॥ तेहत्तरि ॥ च उस्सासा [॥ शतानि ॥ त्रिसप्तति: ॥ च उच्छ्वासा: ॥] = सौ तथा तेहत्तरि उच्छ्वास होतो
एसा ॥ हवइ मुहुत्तो [= एष मुहूर्त: भवति] ॥ = यह मुहूर्त होता है
उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत्॥ सागरोपमाणि ॥ = उत्कृष्टकरि तेतीस सागरके बराबर [= उपम]
स+अतिरेकाणि ॥ = [कुछ] अधिक सहित है अर्थात् तेतीस सागरसे अधिक है

१ त्रीणि सहस्राणि सप्तशतानि त्रिसप्ततिरुच्छ्वासा मुहूर्तो कथ्यते ३७७३ ॥ तेतीससौ तेहत्तरि उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त होता है

(२) त्रीणि ॥ सहस्राणि ॥ सप्त ॥ शतानि ॥ — तीन हजार सात सौ
त्रि+अधिकसप्तति ॥ उच्छ्वासाः ॥ मुहूर्त ॥ कथ्यते — तिहत्तरि उच्छ्वासोंका है (सो) मुहूर्त कही गई है ॥ १७१७ ॥

(१) यः कश्चित्संयमी सम्यग्मृतिः सर्वार्थसिद्धावुत्पद्यते तत्र स्वस्थितिं जीवित्वा मृतो मनुष्यगतावुत्पन्नो यावद्देशसंयमं सकलसंयमं वा प्राप्नोति तावत्साधिक त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालोऽप्यसंयतसम्यग्दृष्टेरुत्कृष्टकालोऽवेदितव्यः ॥ ननु ॥ "वेदगसम्मत्तट्ठिदिजहण्णमंतोमुहुत्तमुक्कस्सं । छासट्ठिसायरसमा णिद्दिट्ठा मणुवदेवभवे" ॥ इति गाथोदितप्रकारेण वेदकसम्यक्त्वस्य उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमपर्यन्तं स्थितिसंभवेऽपि असंयमेन सह तावत्कालं तस्यावस्थानासम्भवात् । मध्ये देशसंयमसकलसंयमयोः प्राप्तिसम्भवादिति तस्योत्कृष्टत्वेनाग्रहणम् । इह चासंयतसम्यग्दृष्टिकालः परीक्षितुमुपक्रान्तो न तु सम्यक्त्वकालः ॥

यः ॥ कः+चित्+संयमी ॥ सम्यग्मृतिः ॥ — जो कोई संयम धारण करनेवाला मरण पाकर
सर्वार्थसिद्धौ ॥ उत्पद्य ॥ — सर्वार्थसिद्धिविमानविषैं जन्म धारण करता है (सो)
तत्र स्वस्थितिम् ॥ — वहांही अपने कालकी मर्यादा भर
(जो तेतीस सागर है क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य आयु नहीं होती है)
जीवित्वा मृतः ॥ मनुष्यगतौ ॥ उत्पन्नः ॥ — जीवित रहकर मरता है मनुष्यगतिमें जन्म लेता है (और)
यावत् ॥ देशसंयमं ॥ वा सकलसंयमं ॥ प्राप्नोति ॥ — जब तक अणुव्रत वा महाव्रत धारण करता है
तावत् ॥ सः ॥ अधिक—त्रयस्त्रिंशत्सागर+उपमकालः ॥ — तबतक कुछ अधिक तेतीस सागरके बराबर समय होता है
अयम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेः ॥ कालः ॥ — यह (—अयम् कालः) असंयत सम्यग्दर्शनवालेका
उत्कृष्टकालः ॥ वेदितव्यः ॥ ॥ ननु ॥ — उत्कृष्ट समय जानना चाहिये (प्रश्न)

वेदगसम्मत्तट्ठिदिजहण्णं अंतोमुहुत्तमुक्कस्सं । छासट्ठिसायरसमा णिद्दिट्ठा मणुवदेव हवे ।

वेदकसम्यक्त्वस्थितिर्जघन्यं अन्तर्मुहूर्तः उत्कृष्टा । षट्षष्टिसागरोपमा निर्दिष्टा मानवदेवः भवेत् ।

वेदगसम्मत्तट्ठिदि (वेदकसम्यक्त्वस्थिति) — वेदक वा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनका ठहराव वा टिकाव
जहण्णं ॥ अंतोमुहुत्तं ॥ (जघन्यं ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥) — जघन्य अन्तर्मुहूर्त है (मुहूर्तके भीतर भीतर (—अंतर) होता है
उक्कस्स—छासट्ठि—(उत्कृष्ट—षट्षष्टि—) — अधिकसे अधिक (—उत्कृष्ट) छासठ

सागर-उपमा ॥ निर्दिष्टा ॥ (सागर-उपमा॥निर्दिष्टा,॥)	=सागर प्रमाण (=उपमा) कहा गया है
मनुष्य-देवत्वे (=मानवः देव-सवेन)	=(वेदक सम्यक्त्वकी अवस्थामें जीव) मनुष्य या देव होता है
इति	=ऐसा (प्रश्न होनेपर) कि असंयत सम्यग्दृष्टीके (जिसका काल तैंतीस सागरसे कुछ अधिक कहा है) वेदक सम्यक्त्व भी होता है उस वेदकका समय उत्कृष्ट अपेक्षा छ्यासठि सागर है सो असंयत कालका छ्यासठि सागर क्यों न कहा, उत्तर
भाष्य+उदितप्रकारेण ॥ वेदकसम्यक्त्वस्य ॥	=भाष्यमें कहे हुये प्रकारसे क्षायोपशम सम्यग्दर्शनकी
उत्कर्षेण ॥ षट्षष्टिसागर+उपमपर्यन्तम् ॥	=उत्कृष्ट छ्यासठि सागर तक
स्थितिसम्भवे । अपि॰ असंयम ॥ सह॰तावत्॰	=टिकाव होनेपर भी असंयम सहित रहने (छ्यासठि सागर)
कालम् ॥ तस्य ॥ अवस्थान—असम्भवात् ॥	=समय तक तिस (असंयतसम्यग्दृष्टी) की स्थिति अवस्थान असम्भव है क्योंकि
मध्ये ॥ देशसंयमसकलसंयमयोः ॥	=(अन्तर्मुहूर्त और चौबीस सागरके) बीचमें (असंयतसम्यग्दृष्टीके) अणुव्रत्त महाव्रतकी
प्राप्तिसम्भवात् ॥ इह॰ तस्य ॥	=प्राप्ति हो जाती है । यहां (इस प्रकरणमें) तिस (असंयत सम्यग्दृष्टिके)
उत्कर्षेण ॥ अग्रहणम् ॥ इह॰	=उत्कर्षसे (छ्यासठि सागर कालका) ग्रहण नहीं है किंतु यहां नियमसे (=खलु)
असंयतसम्यग्दृष्टिकाला ॥ खलु॰	=असंयमीसम्यग्दर्शनवालेका समय कहा जा रहा है
न॰ तु॰ सम्यक्त्वकाल ॥	=(=तु) न (कि) सम्यग्दर्शनका काल
परीक्षितुम्	=परीक्षा या निरूपण करनेके लिये (परीक्षुम्, तुमर्थ कृदन्त है)
उपक्रान्त ॥	=आरम्भ किया गया है। उत्तरका भावार्थ यह है कि वेदक सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति छ्यासठि सागर है और असंयत सम्यग्दृष्टिके वेदक सम्यक्त्व भी होता है परंतु असंयम अवस्थामें जीव केवल तेतीस सागरसे कुछ अधिक ही उत्कृष्ट रह सकता है पश्चात् वही जीव संयमी या, सकल संयमी हो जाता है इस कारण प्रकरणके अनुसार असंयत सम्यग्दृष्टिका समय कुछ अधिक तेतीस सागर कहा है सम्यक्त्वका समय नहीं कहा न ऐसा समझना चाहिये ।

संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः ॥ उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया

संयतासंयतस्य ६। नानाजीव अपेक्षया ३॥ सर्वः १।	= देशसंयमी (पांचवां गुणस्थानवर्तीनि) का अनेक जीवकी अपेक्षासे सब
कालः १। एकजीवं २। प्रति * जघन्येन ३॥	= काल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य करके अन्तर्मुहूर्त है [पांचवांगुण
अन्तर्मुहूर्तः १। उत्कर्षेण ३। पूर्वकोटी १॥ देशोना १॥	= स्थानवर्तीका) उत्कृष्टकरि कुछ हीन करोड़ पूर्व है [एकपूर्व चौरासी लाख पूर्वांगका है और एक पूर्वांग चौरासी लाख बरसका होता है)
प्रमत्त अप्रमत्तयो ६।	= प्रमत्तसंयमी (छठवां गुणस्थानवर्ती) अप्रमत्त संयमी [सातवांगुणस्थानवर्ती]का
नानाजीव-अपेक्षया ३॥ सर्वः १। कालः १।	= अनेक जीवकी विवक्षाकरि समस्त काल है
एकजीवं २। प्रति जघन्येन ३॥ एकः १। समयः १।	= एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ३। अन्तर्मुहूर्तः १।	= (प्रमत्त तथा अप्रमत्तका समय) उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है ॥
चतुर्णाम् ६।	= चार अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय उपशांत मोह
उपशमकानाम् ६। नानाजीव-अपेक्षया ३॥	= उपशम (गुणस्थान वर्तीनिका अनेक जीवोंकी विवक्षाकरि

(१) वर्षाष्टकं नीत्वा प्रतीत्य गृहीतदेशसंयमः पूर्वकोट्यायुर्यो जीवः आमरणाद्देशसंयमं पालयति तदपेक्षया देशोनपूर्वकोटी देशसंयमकालः ।

वर्ष-अष्टकम् २॥ नीत्वा ३॥ प्रतीत्य+	— आठ बरस काल अवस्थाको प्राप्त करके या पहुंच करके (प्रति इत्य)
गृहीतदेशसंयमः १।	— अणुव्रत धारण करने वाला (इत्य = प्राप्य, प्रति = लांघना)
पूर्व + कोटी—आयुः १॥ यः १। जीवः १। आमरणात् ५॥	— एक करोड़ पूर्व आयुका धारक जो आत्मा मृत्यु होने तक (आ = तक)
देशसंयमम् २। पालयति T तद् अपेक्षया ३॥	— अणुव्रतको पालन करता है उस (जीव) की विवक्षासे
देशोनपूर्वकोटी १॥ देशसंयमकालः १।	— कुछ हीन करोड़ पूर्व संयमासंयमी का काल (होता) है

एकजीवापेक्षया च जघन्येनैक समय उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥

एकजीव-अपेक्षया ।। च जघन्येन ।। एकः ।। समयः ।।	=तथा (=च) एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ।। अन्तर्मुहूर्तः ।।	=उत्कृष्ट करके अंतर्मुहूर्त है

(१) नन्वेवं मिथ्यादृष्टेरप्येकसमयः कस्मान्न सम्भवतीत्यनुपपन्नम्। कोऽर्थः? मिथ्यादृष्टेरेकसमयः कालो न घटते इत्यर्थः। कस्मात्? प्रतिपन्नमिथ्यात्वस्यान्तर्मुहूर्तमध्ये मरणासम्भवात्। तदुक्तम्—"मिथ्यात्वं प्रशमात्प्राप्ते नास्त्यनन्तानुबन्धिनाम्। यावदावलिका पाकान्तर्मुहूर्ते मृतिर्न च ॥१॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेः परिणामकाले तद्गुणस्थानकालाभावादेकसमयः सम्भवतीति प्रतिपन्नासंयतसंयतासंयतगुणोऽप्यन्तर्मुहूर्तमध्ये न म्रियते। अतोऽसंयतसंयतासंयतयोरप्येकसमयो न भवति।

एवम्० मिथ्यादृष्टेः ।। अपि एकसमयः ।।	=ऐसे ही मिथ्यादृष्टीका एक समय
कस्मात् ।। न० सम्भवति इति ननु	=किस कारणसे नहीं सम्भवै है ऐसे प्रश्न (=ननु होनेपर कहते हैं कि)
अन्+उपपन्नम् ।।।	=।मिथ्यादृष्टीके जघन्य एक समयका काल)पाया नहीं जाता है (=अनुपपन्न—व्याकोष पृष्ठ ७७)
कः ।। अर्थः ।।	=(अनुपपन्न अथवा पाया नहीं जाता है इस वाक्यका) क्या अभिप्राय है !
मिथ्यादृष्टेः ।। एकसमयः ।। कालः ।। न घटते ।	=(उत्तर)मिथ्यादृष्टीका एक समय काल नहीं होता है (=घटते)
इति० अर्थः ।। कस्मात् ,। न	=ऐसा अभिप्राय है किस हेतुसे (एक समय) नहीं (होता है) ? (क्योंकि सम्यक्त्वके पीछे)
प्रतिपन्नमिथ्यात्वस्य ।।। अन्तर्मुहूर्तमध्ये ।।।	=प्राप्त या लब्ध मिथ्यात्ववाले या मिथ्यादृष्टीका अन्तर्मुहूर्तके भीतर
मरण—असम्भवात् ।।	=मृत्यु नहीं हो सकी है ॥
तद् उक्तम् ।।। प्रशमात् ।।।	=सो (निम्नलिखित श्लोकमें) कहा गया है। सम्यक्त्वसे (सम्यग्दर्शनके पीछे)
मिथ्यात्वं ।।। प्राप्ते ।।। अनन्तानुबन्धिनाम् ।।।	=मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर अनंतानुबन्धी (क्रोध-मान-माया—लोभ) का
यावत्० आवलिका ।।। न अस्ति	=जब तक आसमय या उदयका अभाव (आवलिका) नहीं होता है
तावत् पाक-अन्तर्मुहूर्ते ।।। मृतिः ।।। न० च०	=(तब तक मिथ्यात्वशिका फल) पाक या उदयके अन्तर्मुहूर्तमें मरण भी (=च) नहीं

चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्त

चतुर्णाम् ॥	= चार (आठवां, नववां, दशवां तथा बारहवां) गुणस्थानवर्तीनिके
क्षपकाणाम् ॥ अयोगकेवलिनाम् ॥ च	= क्षपक श्रेणीवालोंका तथा [= च] अयोगकेवलियोंका [काल]
नानाजीव-अपेक्षया ॥ एकजीव-अपेक्षया ॥ च-	= अनेक जीवकी विवक्षाकरि तथा एक जीवकी विवक्षासे
जघन्यः च उत्कृष्टः ॥ च अन्तर्मुहूर्तं ॥	= जघन्य और [= च] उत्कृष्ट भी (= च) अंतर्मुहूर्त है

है। भावार्थ-यह है कि यदि जीवके सम्यग्दर्शन छूट जाय और मिथ्यात्व हो जाय तो उस जीवके अनन्तानुबंधी (क्रोध मान माया लोभ)का पाक या उदय अन्तर-मुहूर्त तक रहता है और उस अन्तरमुहूर्त तक मिथ्यात्वमें मरण नहीं होता है इसलिये मिथ्यादृष्टिका एक समय काल नहीं है

सम्यङ्मिथ्यात्वस्य ॥ परिसमाप्ता ॥	= मिश्र गुणस्थानवर्तीनिका निश्चित वा परिमित कालविर्षे
तद्गुणस्थानत्यागात् ॥ एकसमयः ॥ सम्भवति	= उस गुणस्थानके छोडनेसे एक समय सम्भवै है
अविरतसम्यक्त्व-असंयत-संयतासंयत—गुणः	= असंयत तथा देशसंयत नाम्न (= अविरत) गुणस्थानवाले
अपि अन्तर्मुहूर्तमध्ये ॥ न म्रियते तत् अतः च असंयत	= भी अन्तर्मुहूर्तके भीतर नहीं मरते हैं इसलिये (= अतः) असंयमी
संयतासंयतयोः ॥ अपि एकसमयः ॥ न भवति	= (तथा) संयमासंयमियोंका भी एक समय (काल) नहीं है

(१) अन्तर्मुहूर्तम् चतुर्णां क्षपकाणामपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायक्षीणकषायाणामयोगकेवलिनां च मोक्षगामित्वेन अन्तरे मरणासं भवात् ।

तत् कथम् ?	= यह (= जघन्य उत्कृष्ट करके अन्तरमुहूर्त) कैसे है ?
चतुर्णाम् ॥ क्षपकाणाम् ॥ अपूर्वकरण-	= चार क्षपकश्रेणी अपूर्वकरण
अनिवृत्तिकरण—सूक्ष्मसाम्पराय-क्षीणकषायाणाम् ॥	= अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय क्षीणकषाय (वाले) निका
अयोगकेवलिनाम् ॥ च मोक्षगामित्वेन ॥	= तथा (= च) अयोगकेवलीनिका (काल) (उसीभवसे) मुक्तगामी होनेसे

मुहूर्त ॥ सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥

सयोगकेवलिनाम् ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ सर्वः = योगसहित केवलीनिका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति = काल है एक जीव [अर्थात् एक सयोगकेवली] की अपेक्षासे
जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = जघन्यकरि अन्तर मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ पूर्वकोटी ॥ देशोना ॥ = उत्कर्षकरि कछु हीन क्रोड पूर्व है [निम्नलिखित टिप्पणी अवश्य देखो]

च अन्तरे ॥ मरण असम्भवात् ॥ = निश्चय (= च)(आयुके) बीचमें वा भीतर मृत्युके सम्भव न होनेसे (जघन्य और उत्कृष्टकरि अंतर्मुहूर्त है)

(१) सयोगकेवलिगुणस्थानानन्तरमन्तर्मुहूर्तमध्ये अयोगकेवलिगुणस्थानप्राप्तेः ।

सयोगकेवलिगुणस्थान-अनन्तरम् ॥ = सयोगकेवलि (तेरहवां) गुणस्थानके अनन्त समीप वा लगतेही (अनन्तरम्)
अंतर्मुहूर्तमध्ये ॥ अयोगकेवलिगुणस्थानप्राप्तेः ॥ = अंतर्मुहूर्तमें (= मध्ये) अयोग केवली गुणस्थानकी प्राप्ति होनेसे (एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अंतर मुहूर्तकाल सयोगकेवलिका है) (भावार्थ-क्षीणकषाय गुणस्थानसे जीव तेरहवां गुणस्थानमें आकर एक अंतर्मुहूर्त रहकर उस मुहूर्तके भीतर ही भीतर चौदहवां गुणस्थानमें आनेकी अपेक्षासे तेरहवांका समय जघन्य पने एक अंतर्मुहूर्त है ॥

(२) अष्टवर्षानन्तरं तपो गृहीत्वा केवलमुत्पादयतीति किंचिदूर्वहीनत्वात्पूर्वकोटी वेदितव्या

अष्टवर्ष-अनन्तरं ॥ तपः ॥ गृहीत्वा = (जन्मसे आदिसे आदि) आठ बरस पीछे (= अनन्तरं) तप धारण करके (जीव)
केवलं ॥ उत्पादयति ॥ इति = केवलज्ञानको प्राप्त करता है इसलिये
किंचित् ० वर्षहीनत्वात् ॥ पूर्वकोटी ॥ वेदितव्या ॥ = कुछ वर्ष हीनपनाकरि करोड पूर्व जानना चाहिये ।

"बारे मास वर्ष लाख चउरासी पूरवांग गुणा करा सो पूरव मानों सेयराश है । भावत पुण्य पचीसी १२ । बारह महीनेका एक वर्ष चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग चौरासी लाख वर्षको चौरासी लाख वर्षसे गुणा करा सो पूरव है । अतः ८४०००००×८४ ० ०० वर्ष अर्थात् सात नील छप्पन खब वर्षका ७ ५६ ०० ० ० ० का अथवा चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है ॥

विशेषेण (१) गत्यनुवादेन—नरकगतौ नारकेषु सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण यथासंख्यं एक—त्रि—सप्त—दश—सप्तदश—द्वाविंशति—त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्तः कालः।

विशेषेण ॥ (१) गति+अनुवादेन ॥ = भेदकरि (१) गतिके कथनानुसारसे
नरकगतौ ॥ नारकेषु ॥ = नरकगतिविषै नारकिनमें
सप्तसु ॥ पृथिवीषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीवापेक्षया ॥ = सातों भूमिमें (= नरकमें) मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे
सर्वः ॥ कालः ॥ = समस्त काल है
एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ यथासंख्यम् ॥ एक—त्रि—सप्त—दश = उत्कृष्टकरि यथाक्रम—एक—तीन—सात—दश
सप्तदश—द्वाविंशति—त्रयस्त्रिंशत्सागर-उपमानि = सत्रह बाईस तेतीस सागरकी बराबर (उपमाकि) काल है
सासादनसम्यग्दृष्टेः ॥ च ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ॥ = सासादन सम्यग्दर्शनवालेका और मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकिन) का
सामान्य+उक्तः ॥ कालः ॥ = संक्षेप (प्रकरण) में (पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन गुणस्थानवर्ती नारकियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग प्रमाण है। एक नारकीकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अपेक्षासे छः आवली है॥ मिश्रगुण

---

(१) पश्चान्मिथ्यात्वादिगुणस्थानत्यागसंभवात् ॥

पश्चात्मिथ्यात्वादिगुणस्थानत्यागसंभवात् ॥ = (अन्तर्मुहूर्त) पीछे मिथ्यात्वादि गुणस्थानका छोड़ना सम्भव होनेसे जघन्यकाल एक जीव अपेक्षासे अन्तर्मुहूर्त कहा है।

अ सयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण उक्त पवोत्कृष्टो देशोनं ॥

स्थानवाले नारकियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है । एक नारकीकी अपेक्षासे उत्कृष्ट और जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥

असंयतसम्यग्दृष्टे ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ = असंयतसम्यग्दर्शनवाले [नारकिन] का अनेक जीवकी विवक्षासे सब

कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण ॥ उक्तः ॥ एव उत्कृष्ट ॥ देशोनः ॥ = उत्कृष्टकरि कुछ घाट [पहिले] कही हुई ही उत्कर्ष (आयु प्रमाण) है ॥

"उत्कृष्ट आयु प्रमाण किछु घाटि" अथवा प्रकृत वचनिका पृष्ठ मुद्रित ९० । (एक वा तीन वा सात वा दश वा सतरह वा बाईस वा तेतीस सागरसे कुछ हीन क्रमसे पहले नरकसे सातवें तक है)

(१) प्रथमपृथिव्यामपि देशोनत्वव्याख्यानम् बद्धायुष्कक्षायिकसम्यक्त्वानामुत्कृष्टायुष्येषोत्पत्त्यभावोऽपगम्यते ॥

प्रथमपृथिव्याम् ॥ अपि देशोनत्व—व्याख्यान् ॥ = पहिले नरकविर्षे भी कुछ हीनपनाका व्याख्यान करनेसे (यह अभिप्राय है कि—

बद्धायुष्कक्षायिक—सम्यक्त्वानाम् ॥ = क्षयोपशम (तथा) क्षायिकसम्यग्दर्शनवान् (सहित वेदक-क्षायिक) सम्यग्दृष्टियोंका

उत्कृष्ट- आयुष्येषु ॥ तत्र उत्पत्ति+अभावः ॥ अपगम्यते ॥ — उत्कृष्ट आयु सहित (—आयुष्येषु) तहां (पहिले नरकविर्षे भी) जन्म लेनेका अभाव जाना गया है । भावार्थ—दूसरे तीसरे नरकोंका तो कहना ही क्या है जिस जीवने वेदक वा क्षायिक सम्यग्दर्शनसहित मरण किया है और पहिले नरक में गया है वह वहां भी आयु उत्कृष्ट नहीं पाता अर्थात् एक सागरसे कम आयुवाला नारकी होता है इसलिये देशोन है ।

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतासंयतानां सामान्योक्तः कालः॥

तिर्यग्गतौ ॥ तिरश्चाम् ॥ मिथ्यादृष्टीनाम् ॥ = तिर्यंच गतिविषैं तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका

नानाजीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः एकजीवं ॥ = अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है। एक जीव

प्रति ॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ = केलिये जघन्यकरि अन्तर मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

अनन्तकालः ॥ असंख्येयाः ॥ पुद्गलपरिवर्ताः ॥ = अनन्त काल है सो (अनन्तकाल) असंख्याते पुद्गलपरावर्तन है

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-संयता— = सासादन सम्यग्दर्शनवाले मिश्रगुणस्थानवर्ती (तथा) संयमा

संयतानां ॥ सामान्येन ॥ उक्तः ॥ कालः ॥ = संयमी [तिर्यंच] निका संक्षेप [प्रकरण] करि कथित [गुणस्थानवत्]

काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका नाना तिर्यंचोंकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है॥ एक तिर्यंच जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है॥ मिश्र गुणस्थानवर्ती नाना तिर्यंचोंकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टतासे पल्योपमके असंख्यातवां भाग है॥ एक तिर्यंच मिश्रगुणस्थानवर्तीकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥ संयतासंयतगुणस्थानवर्ती नाना भांतिके तिर्यंचोंकी अपेक्षासे सब काल है एक तिर्यंच-संयमासंयमीके लिये जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और एक संयमासंयमी तिर्यंचके लिये उत्कृष्टकाल कुछ हीन एक करोड़ पूर्व है॥

(१) यः कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिर्जीवो गत्यन्तरे स्थितः तिर्यग्गतिं प्रविष्टः स तिर्यग्गतावुत्कर्षेणानन्तकालमसंख्येयपुद्गलपरिवर्तान् तिष्ठति तत ऊर्ध्वं गत्यन्तरं प्राप्नोति तदपेक्षया तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालः अनन्तः कालः असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ता इत्युक्तम्।

१ यः ॥ कश्चित् ॥ अनादिमिथ्यादृष्टिः ॥ = जो कोई अनादि मिथ्यात्वसहित

जीवः ॥ गति-अन्तरे ॥ स्थितः ॥ तिर्यग्गतिम् ॥ प्रविष्टः ॥ = जीव अन्यगतिमें स्थित होकर तिर्यंचगतिमें प्रवेश करता है

असयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि॥ मनुष्यगतौ मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वैरभ्यधिकानि॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः।

असयतसम्यग्दृष्टेः ।६। नानाजीव अपेक्षया ।३। सर्वः ।१। = असयत सम्यग्दृष्टी तिर्यंचोंका अनेक जीवकी विवक्षासे सब
कालः ।१। एकजीव ।२। प्रति जघन्येन ।३। अन्तर्मुहूर्तः ।१। = काल है एक जीव तिर्यंच असयमीके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।३। त्रीणि ।१। पल्योपमानि ।१। मनुष्यगतौ ।७। = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर है। मनुष्यगतिमें
मनुष्येषु ।७। मिथ्यादृष्टेः ।६। नानाजीवापेक्षया ।३। सर्वः ।१। = मनुष्यनिमें मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ।१। एकजीवम् ।२। प्रति जघन्येन ।३। अन्तर्मुहूर्तः ।१। = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।३। त्रीणि ।१। पल्योपमानि ।१। = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर (और)
पूर्वकोटिपृथक्त्वैः ।३। अभ्यधिकानि ।१। = पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नवसे नीचे) करोड़ पूर्वकरि अधिक हैं
सासादनसम्यग्दृष्टेः ।६। नानाजीव-अपेक्षया ।३। = सासादन सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे
जघन्येन ।३। एकः ।१। समयः ।१। = जघन्यकरि एक समय (काल) है
उत्कर्षेण ।३। अन्तर्मुहूर्तः ।१। = उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

सः ।१। तिर्यग्गतौ ।७। उत्कर्षेण ।३। = वह (जीव) तिर्यंच गतिविषैं उत्कृष्टकरि
अनंतकालम् ।२। असंख्येयान् ।२। पुद्गलपरिवर्तान् ।२। = अनंतकाल या असंख्याते पुद्गल परावर्तन
तिष्ठति T ततः ऊर्ध्वं गति अंतरम् ।२। प्राप्नोति T = ठहरता है या रहता है (और) वहांसे आगे अन्यगतिको प्राप्त होता है
ततः तत् अपेक्षया ।३। तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालः ।१। = इसलिये (ततः) उस (= तत्) अपेक्षासे तिर्यंच मिथ्यादृष्टी जीवका काल
अनंतः ।१। कालः ।१। असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ।१। इति — = अनंतकाल (वा) असंख्याते पुद्गल परिवर्तन हैं ऐसा
उक्तम् ।१। = कहा गया है

एकजीव प्रति जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण षडावलिका. ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व. काल'। एक जीव प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्त'। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि सातिरेकाणि ॥

एकजीवम् ।। प्रति ।। जघन्येन ।।। एकः ।। समय ।। = (सासादन सम्यग्दृष्टिका) एक जीवके लिये जघन्यकरि एक समय है

उत्कर्षेण ।। षड् आवलिका ।। सम्यग्मिथ्यादृष्टे ।। = उत्कृष्टकरि छह आवली है। मिश्रगुणस्थानवर्तीका

नानाजीव-अपेक्षया ।।। एकजीव-अपेक्षया ।।। च = अनेकजीवकी विवक्षासे तथा एकजीवकी अपेक्षासे

जघन्य ।। च उत्कृष्टः ।। च अन्तर्मुहूर्तः ।। = जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त (काल) है

असंयतसम्यग्दृष्टे ।। नानाजीव-अपेक्षया ।।। सर्व = असंयतसम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त

काल ।। एकजीवम् ।। प्रति ।। जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तः ।। = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (काल) है

उत्कर्षेण ।। त्रीणि ।।। पल्योपमानि च अतिरेकाणि ।।। = उत्कृष्टकरि तीन पल्योपम कुछ अधिक है

---

(१) यः कश्चिन्मनुष्यो बद्धमनुष्यायुष्कः पश्चात् गृहीतसम्यक्त्व उत्तमभोगभूमावुत्पद्यते तदपेक्षया सातिरेकाणि त्रिपल्योपमानि प्राक्तन-मनुष्यभवसम्बन्धिना सम्यक्त्वप्राप्त्युत्तरकालवर्तिनायुषा अधिकानि यतो विग्रहगतावपि मनुष्यगतिनामकर्मोदयापेक्षत्वेन मनुष्यत्वापरित्याग-त्वात् ॥

यः ।। कश्चित् ।। मनुष्यः ।। बद्धमनुष्य-आयुष्कः ।। — जो कोई मनुष्य नरआयु बांधकरि

पश्चात् ।। गृहीतसम्यक्त्वः ।। उत्तमभोगभूमौ ।।। — पीछे सम्यग्दर्शन प्राप्तकरि उत्कृष्ट भोगभूमिविषैं

उत्पद्यते ।। तद् अपेक्षया ।।। स- अतिरेकाणि ।।। — जन्म लेता है उस विवक्षासे कुछ अधिक

त्रिपल्योपमानि ।।। प्राक्तनमनुष्यभवसम्बन्धिना ।।। — तीनपल्यके बराबर (= उपम) (काल) है पहिले नर भवसम्बन्धी

सम्यक्त्वप्राप्ति-उत्तरकालवर्ति-आयुषा ।।। — सम्यग्दर्शनके प्राप्त करनेके पश्चात् समयवर्ती आयु

अधिकानि ।।। — अधिक है अर्थात् तीनपल्य है और सम्यग्दर्शनके पश्चात्का काल और विग्रह गतिका काल अधिक है

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि॥ मनुष्यगतौ मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वैरभ्यधिकानि॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः।

असंयतसम्यग्दृष्टेः ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ = असंयत सम्यग्दृष्टी तिर्यंचोंका अनेक जीवकी विवक्षासे सब
कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = काल है एक जीव तिर्यंच असंयमीके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ त्रीणि ॥ पल्योपमानि ॥ मनुष्यगतौ ॥ = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर है। मनुष्यगतिमें
मनुष्येषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीवापेक्षया ॥ सर्वः ॥ = मनुष्यनिमें मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ त्रीणि ॥ पल्योपमानि ॥ = उत्कृष्टकरि तीन पल्यके बराबर (और)
पूर्वकोटिपृथक्त्वैः ॥ अभ्यधिकानि ॥ = पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नवसे नीचे) क्रोड पूर्वकरि अधिक हैं
सासादनसम्यग्दृष्टेः ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ = सासादन सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे
जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ = जघन्यकरि एक समय (काल) है
उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

सः ॥ तिर्यक्षु ॥ उत्कर्षेण ॥ = वह (जीव) तिर्यंच गतिनिर्विषै उत्कृष्टकरि
अनंतकालम् ॥ असंख्येयाः ॥ पुद्गलपरिवर्तान् ॥ = अनंतकाल वा असंख्याते पुद्गल परावर्तन
तिष्ठति ॥ ततः ॥ ऊर्ध्वं ॥ गति अन्तरम् ॥ प्राप्नोति ॥ = ठहरता है वा रहता है (और) वहांसे आगे अन्यगतिको प्राप्त होता है
ततः ॥ तद् अपेक्षया ॥ तिर्यङ्मिथ्यादृष्टिकालः ॥ = इसलिये (ततः) उस (=तद्) अपेक्षासे तिर्यंच मिथ्यादृष्टी जीवका काल
अनंतः ॥ कालः ॥ असंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ इति— = अनन्तकाल (वा) असंख्याते पुद्गल परिवर्तन है ऐसा
उक्तम् ॥ = कहा गया है

असयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व॰ काल ॥ एकजीव पृति जघन्येनान्तर्मुहूर्त॰ । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन–एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्व॰ कालः । एक जीव पृति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ।

समय है । उत्कृष्टकरि पल्योपमके असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है । एक जीवका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

असंयतसम्यग्दृष्टे ॥ नानाजीव+अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ = असंयत [चौथेगुणस्थान] वर्ती [देव]का अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
काल ॥ एकजीवम् ॥ प्रति+जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त [काल] है
उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ = उत्कृष्टकरि तेतीस सागरके तुल्य [उत्तम] है
[२] इन्द्रिय+अनुवादेन ॥ एक+इन्द्रियाणाम् ॥ नानाजीव – [२] इन्द्रियके कथनानुसारकरि एक इन्द्रियनकें अनेक जीवकी
अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति+जघन्येन ॥ = अपेक्षासे समस्त काल है एकजीवके लिये जघन्यकरि
क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ = क्षुद्रभवका (काल) लिया गया है

२ तत्कथमिति चेत्—एकस्मिन्नन्तर्मुहूर्तमध्ये तावदेकेन्द्रियो भूत्वा कश्चिज्जीवः षट्षष्टिसहस्रद्वात्रिंशदधिकशतपरिमाणानि जन्ममरणान्यनुभवति ६६१३२ । तथा स एव जीवः तस्यैव मुहूर्तस्य मध्ये द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियो भूत्वा यथासंख्यमशीतिषष्टिचत्वारिंशच्चतुर्विंशतिजन्ममरणान्यनुभवति । सर्वेऽप्येते समुदिताः क्षुद्रभवा एतावन्त एव भवन्ति ६६३३६ । गोम्मटसारे जीवकाण्डे पर्याप्त्यधिकार गाथायां १२२-१२४ उक्तं च—

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि । अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ १२२ ॥

संस्कृत छाया त्रीणि शतानि षट्त्रिंशत् षट्षष्टिसहस्रकाणि मरणानि अन्तर्मुहूर्तकाले तावन्तश्चैव क्षुद्रभवाः॥

सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे । छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥ १२४ ॥

संस्कृत छाया-अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशद्विकले चतुर्विंशतिर्भवन्ति पंचाक्षे । षट्षष्टिश्च सहस्राणि शतं च द्वात्रिंशदेकाक्षे ॥
यदा चैव मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति जन्ममरणानि भवन्ति तदैकस्मिन्नुच्छ्वासे अष्टादश जन्ममरणानि लभ्यन्ते ॥ तत्रैकस्य क्षुद्रभवसंज्ञा ॥

च ॥ औदयम् ॥ इति+चेत्* – (यह क्षुद्रभव) कैसा है ऐसा (=इति) सदेह (=चेत्) (करनेपर कहते हैं)

शेषाणां सामान्योक्त काल ॥ देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व. काल.। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेश्च सामान्योक्त काल ॥

शेषाणाम् १। = (मनुष्यगतिविषै मनुष्यनमें) अवशेष [पांचवांसे चौदहवां गुणस्थानवर्तिनिका]
सामान्य-उक्त २। काल ३। = संक्षेपसे [पूर्व] कथित [गुणस्थानवत्] काल है अर्थात्

संयमासंयमिनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एक करोड पूर्व है । प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें नानाजीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ चार (अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांत कषाय) उपशम श्रेणीवालेका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है ॥ चार [आठवां-नवमां-दशवां-बारहवां] क्षपकश्रेणी चढनेवालोंका और अयोगकेवलीनिका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सयोग केवलीनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सब काल है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टकरि कुछ घाटि एक करोड पूर्व है ॥

देवगतौ १ देवेषु २। मिथ्यादृष्टे ३। = सुरगतिविषै सुरनमें मिथ्यादृष्टीका
नानाजीव-अपेक्षया १। सर्वः २। काल ३। = नानाजीवकी विवक्षासे समस्त काल है
एकजीवम् १। प्रति जघन्येन २। अन्तर्मुहूर्त ३। उत्कर्षेण १। = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
एकत्रिंशत्सागरोपमाणि २। सासादनसम्यग्दृष्टेः १। = इकतीस सागरके बराबर है सासादन सम्यग्दर्शनवाले देवका
सम्यग्मिथ्यादृष्टेः १। च सामान्य-उक्त २। काल ३। = तथा मिश्रगुणस्थानवर्ती [देवका] संक्षेपसे कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टी देवका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक

यतः ॥ विग्रहगतौ २। अपि॰ = क्योंकि (= यतः) विग्रहगति (या नयाशरीर धारण करनेके लिये गमनमें) भी
मनुष्यगतिनामकर्म-उदय उपेतत्वेन ३। = मनुष्यगति (नामा) नामकर्मके उदय होनेसे
मनुष्यत्व-अपरित्यक्तत्वात् ४। = मनुष्यपनेका (जीवके) त्याग नहीं होता है

असयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व॰ काल ॥ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त॰। उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्व॰ कालः। एक जीव प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम्।

समय है। उत्कृष्टकरि पल्योपमके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली है॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंका नानाभाव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥

असंयतसम्यग्दृष्टे ॥ नानाजीव+अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ = असंयत [चौथेगुणस्थान] वर्ती [जीव]का अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त

कालः॥ एकजीवम् ॥ प्रति+जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥ = काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त [काल] है

उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ = उत्कृष्टकरि तेतीस सागरके तुल्य [काल] है

[२] इन्द्रिय+अनुवादेन ॥ एक+इन्द्रियाणाम् ॥ नानाजीव — [२] इन्द्रियके कथनानुसारकरि एक इन्द्रियनके अनेक जीवकी

अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति+जघन्येन ॥ = अपेक्षासे समस्त काल है एकजीवके लिये जघन्यकरि

क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ = क्षुद्रभवका (काल) लिया गया है

---

२ तत्कीदृशमिति चेत्—उक्तमसंख्यमुहूर्तमध्ये तावदेकेन्द्रियो भूत्वा कश्चिज्जीवः षट्षष्टिसहस्रद्वात्रिंशदधिकशतपरिमाणानि जन्ममरणान्यनुभवति ६६१३२। तथा स एव जीवः तस्यैव मुहूर्तस्य मध्ये द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियो भूत्वा यथासंख्यमशीतिषष्टिचत्वारिंशच्चतुर्विंशतिजन्ममरणान्यनुभवति। सर्वेऽप्येते समुदिताः क्षुद्रभवाः एतावन्त एव भवन्ति ६६३३६। गोमट्टसारे जीवकाण्डे पर्याप्त्यधिकारे गाथायो १२१-१२४ उक्तं च—

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि। अंतोमुहुत्तकाले ताबदिया चेव खुद्दभवा ॥ १२३ ॥

संस्कृत छाया त्रीणि शतानि षट्त्रिंशत् षट्षष्टिसहस्रकाणि मरणानि अन्तर्मुहूर्तकाले तावन्तश्चैव क्षुद्रभवाः॥

सीदी सट्ठी ताळं वियले चउवीस होंति पंचक्खे। छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥ १२४ ॥

संस्कृत छाया-अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशद्विकले चतुर्विंशतिर्भवन्ति पंचाक्षे। षट्षष्टिश्च सहस्राणि शतं च द्वात्रिंशदेकाक्षे॥

यथा चैव मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति जन्ममरणानि भवन्ति तत्रैकस्मिन्नुच्छ्वासे अष्टादश जन्ममरणानि लभ्यन्ते। तत्रैकस्य क्षुद्रभवसंज्ञा॥

तद् ॥ कीदृशम् ॥ इति+चेत्॰ — (वह क्षुद्रभव) कैसा है ऐसा (=इति) यदि (=चेत्) (कहोगे तो कहते हैं)

क्षुद्रभवमुहूर्तमध्ये॥	=कही हुई क्षुद्रभववाली मुहूर्तके बीचमें या भीतर अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें
तावत्‌एक+इन्द्रियः ॥ भूत्वा कश्चित् + जीवः ॥	=कोई चेतन प्रथम (=तावत्) एकेंद्रिय होकर
षट्षष्टिसहस्र-द्वात्रिंशत्+अधिकशतपरिमाणानि ॥ स	=छ्यासठि हजार बत्तीस अधिक (और) एकसौके प्रमाण
६६१३२ जन्ममरणानि ॥ अनुभवति T तथा॰ स ॥	=६६१३२ जन्म मरणोंको धारण करता है पुनरि (=तथा) वह (=स)
एव॰ जीवः ॥ तस्य ॥ एक॰मुहूर्तस्य ॥ मध्ये ॥	=ही (=एव) चेतन उस ही मुहूर्तके बीचमें अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें
द्वि-त्रि-चतुस्-पञ्च+इन्द्रियः ॥ भूत्वा+	=द्वींद्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय होकर
यथाक्रमम् ॥ अशीतिषष्टिचत्वारिंशत्—	=यथाक्रम या क्रमानुसार अस्सी साठ चालीस
चतुर्विंशति-जन्ममरणानि ॥ अनुभवति	=(और) चौबीस जन्म मरणोंको ग्रहण करता है

अर्थात् द्वींद्रिय अस्सीवार त्रींद्रिय साठवार चतुरिंद्रिय चालीस बार पचेंद्रिय चौबीसवार होता है।

सर्वे ॥ अपि॰ एते ॥ समुदिताः ॥ क्षुद्रभवाः ॥	=ये (=एते) सब ही (=अपि) सूक्ष्म भव मिले हुए (=समुदिताः)
एतावन्तः ॥ एव भवंति T ६६३३६	=इतने (=एतावन्तः) ही अर्थात् ६६३३६ होते हैं ॥
गोम्मटसारे ॥ जीवकाण्डे ॥ पर्याप्ति-अधिकारे ॥	=गोम्मटसार ग्रन्थमें जीवकाण्डविषैं पर्याप्तिके प्रकरणमें
गाथयोः ॥ ॥ १२३—१२४ उक्त ॥ च॰	=गाथांक १२३—१२४ में कहा भी (=च) गया है कि
तिण्णि (तिण्णि) ॥ सया ॥ छत्तीसा॥ (=त्रीणि ॥ शतानि ॥ षट्त्रिंशत् ॥)	=तीनसौ छत्तीस
छावट्ठिसहस्साणि ॥ मरणाणि ॥ (षट्षष्टिसहस्राणि ॥ मरणानि ॥)	=छ्यासठ हजार (बार) मरण
अन्तोमुहुत्तकाले ॥ तावदिया ॥ च (अन्तर्मुहूर्तकाले ॥ तावन्तः ॥)	=और (=च) अन्तर्मुहूर्तमें इतने
एव॰खुद्दभवा (एव॰ क्षुद्रभवाः ॥)	=ही सूक्ष्म जन्म एक लब्ध्यपर्याप्तक जीवके होते हैं
सीदी ॥ सट्ठी ॥ तालं ॥ वियले ॥ (=अशीतिः ॥ षष्टि ॥ चत्वारिंशत् ॥ विकले ॥)	=अस्सी साठ चालीस, विकल इन्द्रियवालों अर्थात् द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय और चतुरिंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तकों) में (भव) होते हैं और
चउवीस ॥ होंति T पंचक्खे ॥ (=चतुर्विंशतिः ॥ भवति T पंच-अक्षे ॥)	=चौबीस (जन्म) पचेंद्रियवाले (लब्ध्यपर्याप्तकों) में होते हैं

उत्कर्षेणानन्त॰ कालोऽसङ्ख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया सर्वः काल । एकजीव प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि ॥ पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल. । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त. ।

उत्कर्षेण ॥ अनन्तः ॥ कालः ॥ असङ्ख्येया ॥ = उत्कृष्टकरि (एकेन्द्रिय जीवका) अनंतकाल है (सो) असंख्यात
पुद्गलपरावर्ताः ॥ विकल-इन्द्रियाणाम् ॥ नानाजीव- = पुद्गल परावर्तन है विकल (द्वि-त्रि-चतु) इन्द्रिय जीवनका अनेक जीवकी
अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीव ॥ प्रति ॥ = अपेक्षासे समस्त काल है एक जीवकेलिये
जघन्येन ॥ क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ = जघन्यकरि सूक्ष्म भव [का काल] लिया गया है ।
उत्कर्षेण ॥ सङ्ख्येयानि ॥ वर्षसहस्राणि ॥ = उत्कृष्टकरि सङ्ख्यात हजार वरस हैं ॥
पञ्चेन्द्रियेषु ॥ मिथ्यादृष्टे ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ = पांच इन्द्रीवाले जीवनमें मिथ्यादृष्टोका अनेक जीवकी अपेक्षासे
सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ = सब काल है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ॥ = अन्तर्मुहूर्त है

च ॥ षट्षष्टिः ॥ सहस्राः ॥ त्रयं ॥ (षट्त्रिंशत् ॥ सहस्राणि ॥ शत ॥) = और छयासठ सहस्र तीनसौ छत्तीस (= च)
च ॥ द्वात्रिंशत् ॥ पञ्चके ॥ —(= पञ्चेन्द्रियेषु ॥ चतुर्विंशति ॥) = बत्तीस (सूक्ष्मभव)एकेंद्रियवाले (अपर्याप्तको)में होते हैं।
च एव ॥ एवं ॥ मुहूर्तस्य ॥ मध्ये ॥ एतावन्ति ॥ = बहुरि अब ही मुहूर्तके बीचमें ही इतने अर्थात् अन्तर्मुहूर्तमें ही
जन्ममरणानि ॥ भवन्ति तदा एकस्मिन् ॥ उच्छ्वासे ॥ = जन्म मरण होते हैं तब एकही उच्छ्वासमें
अष्टादश ॥ जन्म मरणानि ॥ लभ्यन्ते ॥ = अठारह जन्म मरण प्राप्त किये जाते हैं (गणित करनेसे ६६३३६ जन्म मरण / ३६८५॥ श्वास

अर्थात् यह अन्तर मुहूर्त ३६८५॥ श्वासोंका है
तत्र एकस्य ॥ क्षुद्रभवसंज्ञा ॥ = यहां एक (जन्म मरण) की क्षुद्रभव संज्ञा है
(१) उत्कर्षेण अनन्तकालोऽसंख्यातपुद्गलपरिवर्तमात्रस्ततो निरन्तरमेकेन्द्रियत्वेन मृत्वा पुनर्भवात्ततो विकलेन्द्रिय॰ पञ्चेन्द्रियो वा भवति ॥
उत्कर्षेण ॥ अनन्तकालः ॥ असंख्यातपुद्गल— = उत्कृष्टकरि अनन्तकाल जो असंख्यात पुद्गल

उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥

उत्कर्षेण ॥ सागरोपम-सहस्रम् ॥। = उत्कृष्टकरि हजार सागर प्रमाण और

पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ॥। अभ्यधिकम् ॥। = पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] करोड़ पूर्व अधिक है

शेषाणाम् ॥। = अवशिष्ट (सासादनगुणस्थानसे लेकर अयोगकेवलीतक)नका

सामान्य-उक्तः ॥। कालः ॥। = संक्षेपसे कहाहुआ [गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवा भाग प्रमाण है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छःआवली काल है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ असंयत सम्यग्दृष्टीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ उत्कृष्टकाल तेतीस सागरसे कुछ अधिक है। संयमासंयमीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकाल कुछ न्यून एक करोड़ पूर्व है ॥ प्रमत्तसंयमीनिका और अप्रमत्तसंयमीनिका नाना जीव अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीवका काल जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। आठवां गुणस्थानसे ग्यारहवें तकके उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ चार क्षपक श्रेणी चढनेवालोंका और अयोगकेवलिनका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । सयोगकेवलीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड़ पूर्व है ॥

परावर्तकालकः ॥ निरन्तरं ॥। एकेन्द्रियत्वेन ॥। —परावर्तन कालवाला है बराबर या लगातार एकेन्द्रिय होकरि (पश्चात्)

मृत्वा + ततः० पुनर् (० भवति) ॥ —मरकरि वहां (एकेन्द्रिय) से फिर (—पुनर्) जन्म लेकरि

विकलेन्द्रियः ॥ पंचेन्द्रियः ॥ वा भवति ॥ —विकल (द्वि-त्रि-चतु॰) इन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय होता है

(३) कायानुवादेन–पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वं काल'। एकजीव प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेणासङ्ख्येय काल ॥ वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत् ॥ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वं काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके । शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत् ॥

काय अनुवादेन ॥ पृथिवी अप्-तेज वायु = कायके कथनानुसारकरि भूमि, जल, अग्नि पवन
कायिकानाम् ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ सर्व ॥ काल ॥ = कायिकनका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है ।
एकजीवस ॥ प्रति॰ जघन्येन ॥ क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ = एक जीवके लिये जघन्यकरि क्षुद्र भवका [काल] लिया गया है
उत्कर्षेण ॥ असंख्येय ॥ काल ॥ = उत्कृष्टकरि असंख्यात [लोक परिमाण] काल है
वनस्पतिकायिकानाम् ॥ एकेन्द्रियवत्॰ = वनस्पति कायिकनिका (काल) एकेन्द्रियके सदृश है अर्थात् एक जीव की अपेक्षासे जघन्यकरि क्षुद्र भवमें जितना काल लगे उतना (= श्वास के अठारहवां भाग) उत्कृष्टकरि अनंत काल है जो असंख्यात पुद्गल-परावर्तोंके तुल्य है ॥
त्रसकायिकेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ = त्रसकायिकनिमें मिथ्यादृष्टियोंका अनेक जीवकी विवक्षासे
सर्व ॥ काल ॥ एकजीवम् ॥ प्रति जघन्येन ॥ = सब काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्त ॥ उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥ = अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि दो हजार सागरके बराबर [और]
पूर्वकोटीपृथक्त्वै ॥ अभि अधिके ॥ = पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] करोड़ पूर्वकरि अधिक है
शेषाणाम् ॥ पञ्चेन्द्रियवत्॰ = बचे हुये [गुणस्थानोंके त्रसकायिकोंका] पचेन्द्रियके सदृश (काल) है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टिका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक इत्यादि से कुछ घाटि करोड़ पूर्व है ॥ यहां तक पृष्ठ १९२ का लेख देखो ॥

उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तः कालः ॥

उत्कर्षेण ३। सागरोपम-सहस्रम् १।१।	= उत्कृष्टकरि हजार सागर प्रमाण और
पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ३।३। अभ्यधिकम् १।१।	= पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] करोड़ पूर्व अधिक है
शेषाणाम् ६।३।	= अवशिष्ट (सासादनगुणस्थानसे लेकर अयोगकेवलीतक)नका
सामान्य-उक्तः १। कालः १।	= संक्षेपसे कहाहुआ [गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीका

नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवा भाग प्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छ आवली काल है ॥ मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ असंयत सम्यग्दृष्टीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ उत्कृष्टकाल तेतीस सागरसे कुछ अधिक है । संयमासंयमीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकाल कुछ न्यून एक करोड़ पूर्व है ॥ प्रमत्तसंयमीनिका और अप्रमत्तसंयमीनिका नाना जीव अपेक्षासे सर्व काल है । एक जीवका काल जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । आठवां गुणस्थानसे ग्यारहवें तकके उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ चार क्षपक श्रेणी चढनेवालोंका और अयोगकेवलिनका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । सयोगकेवलीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड़ पूर्व है ॥

परावर्तनकालमात्रः १। निरन्तरं १।१। एकेन्द्रियत्वेन ३।१।	— परावर्तन कालमात्रका है बराबर या लगातार एकेन्द्रिय होकरि (पश्चात्)
मृत्वा + क्त्वा० पुनर् अ० भवति ?	— मरकरि वहां (एकेन्द्रिय) से फिर (— पुनर्) जन्म लेकरि
विकलेन्द्रियः १। पंचेन्द्रियः १। वा भवति ?	— विकल (द्वि-त्रि-चतु) इन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय होता है

(३) कायानुवादेन–पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेणासंख्येयः कालः ॥ वनस्पतिकायिकानामेकेन्द्रियवत् ॥ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके । शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत् ॥

काय अनुवादेन ॥ पृथिवी अप् तेज वायु	= कायके कथनानुसारकरि भूमि, जल, अग्नि पवन
कायिकानाम् ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥	= कायिकनका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है ।
एकजीवम् ॥ प्रति० जघन्येन ॥ क्षुद्रभवग्रहणम् ॥	= एक जीवके लिये जघन्यकरि सूक्ष्म भवका [काल] लिया गया है
उत्कर्षेण ॥ असंख्येयः ॥ कालः ॥	= उत्कृष्टकरि असंख्यात [लोक परिमाण] काल है
वनस्पतिकायिकानाम् ॥ एकेन्द्रियवत्०	= वनस्पति कायिकनिका (काल) एकेन्द्रियके सदृश है अर्थात् एक जीव की अपेक्षासे जघन्यकरि क्षुद्र भवमें जितना काल लगे उतना (=श्वास के अठारहवां भाग) उत्कृष्टकरि अनंत काल है वा असंख्यात पुद्गल-परावर्तोंके तुल्य है ॥
त्रसकायिकेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥	= त्रसकायिकनिमें मिथ्यादृष्टियोंका अनेक जीवकी विवक्षासे
सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति जघन्येन ॥	= सब काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥	= अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि दो हजार सागरके बराबर [और]
पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ॥ अभि अधिके ॥	= पृथक्त्व [तीनसे ऊपर नवसे नीचे] कोटि पूर्वकरि अधिक है
शेषाणाम् ॥ पञ्चेन्द्रियवत्०	= बाकी [illegible] [गुणस्थानोंके त्रसकायिकोंका] पंचेन्द्रियके सदृश (काल) है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टिको नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक इत्यादि से छठा पाटि कर८ पूर्व है ॥ यहां [illegible] पृष्ठ १९२ का लेख देखो ॥

(४) योगानुवादेन—वाङ्मानसयोगिषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः॥ चतुर्णामुपशमकानां क्षपकाणां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च।

(४) योग-अनुवादेन ॥	= योगकी विवक्षाकरि
वाङ्मानसयोगिषु ॥ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि	= वचन मन योगनिविषैं मिथ्यादृष्टी असंयत सम्यग्दृष्टिवालेनिका
संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-	= संयतासंयमी प्रमत्त [छठे गुणस्थानवर्ती] अप्रमत्त [गुणस्थानवर्ती]
सयोगकेवलिनां ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ सर्वः ॥	= (तथा) योगसहित केवलिनका अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त
कालः ॥ एकजीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥	= काल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक
समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ सासादन-	= समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है सासादन सम्यग्दृष्टि (दूसरे गुणस्थानवर्ती)
सम्यग्दृष्टेः ॥ सामान्य उक्तः-	= का संक्षेपसे कहाहुआ (गुणस्थानवत्)
कालः ॥	= काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है
सम्यग्मिथ्यादृष्टेः नानाजीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥	= मिश्र गुणस्थानवालेका अनेक जीवकी विवक्षासे जघन्यकरि
एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ पल्योपम असंख्येय	= एक समय है उत्कृष्टकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भागः ॥ एकजीवम् ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥	= भाग है। एक जीवके लिये (मिश्रगुणस्थानवर्तीका) जघन्यकरि एक
समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ चतुर्णाम् ॥	= समय है उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है। चार
उपशमकानाम् ॥	= उपशम श्रेणी (आठवां नवमां दशवां ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका
क्षपकाणाम् ॥ च	= तथा क्षपक श्रेणी (आठवां नवमां दशवां और बारहवां गुणस्थान) वालेनका
नानाजीव अपेक्षया ॥ एकजीव-अपेक्षया ॥ च	= अनेक जीवकी विवक्षासे और [=च] एक जीवकी अपेक्षासे

जघन्येनैक' समय. । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः ॥ काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एक जीव प्रति जघन्येनेक समयः । उत्कर्षेणानन्त. कालोऽसंख्येया' पुद्गलपरिवर्ता. ॥ शेषाणां मानसयोगिवत् ॥ अयोगानां सामान्यवत् ॥ (५) वेदानुवादेन–स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व' काल. । एकजीव प्रतिजघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पल्यापेमपृथक्त्वम् ॥

जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ = जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है ।
काययोगिषु ॥ मिथ्यादृष्टे' ॥ = काययोगीनिमें मिथ्यादृष्टीका
नानाजीव+अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ काल ॥ = अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है ।
एकजीवम् ॥ प्रति*जघन्येन ॥ एकः ॥ समय ॥ = एक जीवके लिये जघन्यकरि एक समय है ।
उत्कर्षेण ॥ अनन्तः ॥ काल ॥ असंख्येया ॥ = उत्कृष्टकरि अनन्त काल है (सो) असंख्यात
पुद्गलपरिवर्ता ॥ शेषाणाम् ॥ = पुद्गलपरिवर्तन है । अवशेष(दूसरेसे तेरहवां गुणस्थानवाले)निका काल
मानस+योगिवत्* = मन योगीनके [कालके] सदृश है [देखो पृष्ठ २००)
अयोगानाम् ॥ सामान्यवत्* = अयोगकेवलीनिका संक्षेप [प्रकरणमें कथित गुणस्थान]वत् (काल) है अर्थात् अयोग केवलनिका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है (पृष्ठ १८७ देखो)

(५) वेद+अनुवादेन ॥ स्त्रीवेदेषु ॥ मिथ्यादृष्टे ॥ = वेदके कथनानुसारकरि स्त्री वेदविषैं मिथ्यादृष्टी (की) का
नानाजीव+अपेक्षया ॥ सर्व ॥ कालः ॥ = अनेक जीवकी विवक्षासे समस्त काल है
एकजीवम् ॥ प्रति * जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = एक चैतन्यके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है ।
उत्कर्षेण ॥ पल्य+उपमपृथक्त्वम् ॥ = उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (=तीनसे ऊपर नवसे नीचे) पल्यके बराबर है

साम्रादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्त कालः किं तु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नाना जीवापेक्षया सर्वः कालः।

सासादनसम्यग्दृष्टि–आदि = सासादनसम्यक्त्ववाली [स्त्रीवेदी] से
अनिवृत्तिबादर–अन्तानां ६। = अनिवृत्ति बादर गुणस्थानवर्ती तकनिका
सामान्य–उक्त ६। कालः १। = संक्षेप [प्रकरण] में (पहिले) कथित [गुणस्थानवत्] काल है

अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टी स्त्रीवेदीनिका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है, उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका काल जघन्य एक समय है–उत्कृष्ट छः आवली है॥ मिश्रगुणस्थानवर्ती स्त्री-वेदियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ असंयमी चौथ गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदियोंका इसके नीचे सर्वार्थसिद्धिमें न्यारा कहा है॥ संयमासंयमी स्त्रीवेदीनिका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट कछु घाटि कोड़ पूर्व है। प्रमत्त छठे अप्रमत्त सातवें गुणस्थानवाले स्त्रीवेदियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है॥ अपूर्व करण उपशमश्रेणी स्त्री (भाव) वेदीका और अनिवृत्तिकरण उपशम श्रेणी स्त्री (भाव) वेदीका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्व करण क्षपक श्रेणी स्त्री (भाव) वेदीका और अनिवृत्तिकरण क्षपक श्रेणी स्त्री [भाव] वेदीका नाना जीवोंकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

किंतु असंयतसम्यग्दृष्टेः ६। = परंतु असंयत सम्यग्दृष्टी (स्त्री वेदियों) का
नानाजीव+अपेक्षया ३। = अनेक जीवकी अपेक्षासे
सर्वः १। कालः १। = समस्त काल है

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि ॥ पुंवेदेषु मि-
थ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ।

एकजीवं ।। प्रति० जघन्येन ।।। अन्तर्मुहूर्तः ।। = एक जीवकी अपेक्षा जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है।
उत्कर्षेण ।। पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि ।।। देशोनानि।।। = उत्कर्षकरि कुछ हीन पचपन पल्यके बराबर है।
पुंवेदेषु ।। मिथ्यादृष्टेः ।। नानाजीव अपेक्षया ।।। सर्वः कालः = पुरुष वेदविर्षे मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे सब काल है।

---

(१) देशोनानि कथमिति चेत् स्त्रीवेदासंयतैकजीवं प्रति उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि गृहीतसम्यक्त्वस्य स्त्रीवेदोत्पत्त्यभावात् पर्याप्तः सन् सम्यक्त्वं गृहीष्यतीति पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्तहीनत्वाद्देशोनानि तानि पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि स्त्रीवेदे पाकसस्यों सम्भवन्तीति वेदितव्यम्

देशोनानि ।।। कथम्० इति० चेत्० = कुछ हीन कैसे ? इसप्रकार संदेह है।
स्त्रीवेद असंयत एकजीवम् ।। प्रति० = (उत्तर) स्त्रीवेदीमें चौथे गुणस्थानवर्ती एक जीवके लिये
उत्कर्षेण ।। पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि ।।। = उत्कर्षकरि पचपन पल्यके तुल्य है
गृहीतसम्यक्त्वस्य ।। स्त्रीवेद-उत्पाद- = सम्यग्दर्शनसहित (जीव) के स्त्रीवेदविर्षे उत्पन्न होनेका वा जन्म लेनेका
अभावात् ।। = अभाव होनेसे
पर्याप्तः ।। सन् सम्यक्त्वम् ।।। गृहीष्यति । इति० = पर्याप्त होनेपर (=सन्) सम्यग्दर्शन धारण करता है इसप्रकार
पर्याप्तिसमापक अन्तर्मुहूर्तहीनत्वात् ।।। = पर्याप्ति अवस्थाको पूरण करनेवाले अंतरमुहूर्तकर हीन होनेसे
देशोनानि ।।। तानि ।।। पञ्चपञ्चाशत् ।। पल्योपमानि ।।। = कुछ हीन वे पचपन पल्योपम
स्त्रीवेदे ।। पाकसस्यों ।। सम्भवन्ति । इति वेदितव्यम् ।।। = स्त्रीवेदमें सोलहवां स्वर्गविर्षे सम्भवे है इसप्रकार जानना योग्य है (सन् वर्त-मान कृदन्त है) अर्थात् जो जीव सम्यग्दर्शनसहित मरता है वह स्त्री नहीं होता है इसलिये सोलह स्वर्गकी स्त्री भी कोई जीव हो जिसकी उत्कृष्ट आयु पचपन पल्यकी होतो वह स्त्री असंयत सम्यग्दृष्टी केवल अन्तर्मुहूर्त घाटि पचपन पल्य ही रहेगी क्योंकि अन्तर्मुहूर्तमें पर्याप्त होनेपर सम्यक्त्व धारण करेगी सो यही अन्तर्मु-हूर्त न्यून हो आयेगी । इसके बाद मरकर तो वह पुरुषवेदी हो जायगी ।

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्योक्तः कालः॥ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्यवत्। किं त्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः।

एकजीवम् ॥ प्रति॰ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है।

उत्कर्षेण ॥ सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥ = उत्कृष्टकरि पृथक्त्व सौ सागरके तुल्य है अर्थात् तीनसौ सागरसे अधिक नवसौ सागरसे नीचे है॥

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि अनिवृत्तिबादर अन्तानां ॥ = [पुरुषवेदविषै] सासादनसम्यग्दर्शनवालेसे लेकर अनिवृत्तिबादर पर्यन्तका

सामान्योक्तः ॥ कालः ॥ = संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत्] काल है। यह काल वही है जो २०२ पृष्ठका है परंतु असंयमीका एक जीवकी अपेक्षासे उत्कृष्टकरि तेतीस सागर से कुछ अधिक है॥

नपुंसकवेदेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ = नपुंसक वेदविषै मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे

सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति॰ जघन्येन ॥ = समस्त काल है एक जीवके लिये जघन्यकरि

अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ अनन्तः ॥ कालः ॥ = अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि अनन्त काल है [सो]

असंख्येयाः ॥ पुद्गलपरिवर्ताः ॥ = असंख्याते पुद्गल परावर्तन हैं

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि— = [नपुंसक वेदविषै] सासादन सम्यग्दर्शनवालेसे लेकर

अनिवृत्तिबादर अन्तानां ॥ सामान्यवत् ॥ = नवमां गुणस्थानवर्ती तकनिका संक्षेपसे (कथित गुणस्थानवत् काल) है॥

किम्॰ तु॰ असंयतसम्यग्दृष्टेः ॥ = परंतु असंयत सम्यग्दर्शनवालेका

नानाजीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ = नानाजीवकी विवक्षासे समस्त काल है

एकजीवम् ॥ प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ अपगतवेदानां सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन चतुष्कषायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां मनोयोगिवत् द्वयोरुपशमकयोर्द्वयोः क्षपकयोः केवललोभस्य च अकषायाणां च

उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ देशोनानि	= उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीससागरके बराबर है
अपगतवेदानाम् ॥	= वेदरहित [दसवां, ग्यारहवां, बारहवां तेरहवां चौदहवा गुणस्थानवर्तीनि) का
सामान्यवत् ॥	= (काल) संक्षेप [प्रकरणमें कहाहुआ गुणस्थानवत्) है अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय, उपशांतकषाय क्षीण उपशम श्रेणीवालोंके नानाजीव और एक जीवकी अ पेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल है। सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक श्रेणीवालोंका और क्षीणकषाय अयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षा से और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सयोग केवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे सर्वकाल है एक सयोगकेवलीकी अपेक्षासे जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल कुछ घाटि एक करोड पूर्व है।
(६) कषाय अनुवादेन ॥	= (६) कषायके कथनानुसार करि
चतुष्कषायाणां ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि	= चार [क्रोध मान माया लोभ) कषाय वाले मिथ्यादृष्टिसे लेकर
अप्रमत्त अन्तानां ॥ मनस्-योगिवत् ॥	= अप्रमत्त तकोंका (काल) मनोयोगीके सदृश है [पृष्ठ २०० पंक्ति दूसरीसे १२ तक यही मनोयोगी का काल पढ़लो)
द्वयोः ॥ उपशमकयोः ॥ द्वयोः ॥	= दो उपशमश्रेणी (आठवां नवमां गुणस्थान वालेनिका) दो
क्षपकयोः ॥ केवललोभस्य ॥ च॥	= क्षपकश्रेणीवालेनिका और केवल लोभवालेका दशवें गुणस्थानवर्तीनका (जहां एक संज्वलन लोभ है अन्य कषाय कोई नहीं है)
अकषायाणाम् ॥ च॥	= तथा कषायरहित [ग्यारहवां बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवर्तीनि]का

सामान्योक्त काल ॥ (७) ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्योः सामान्यवत् ॥

सामान्य-उक्तः १। काल १। =संक्षेपसे कथित [गुणस्थानवत] काल है अर्थात् अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण उपशम श्रेणीवाले कषाय सहितोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणीवाले कषायसहितोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥ सूक्ष्मसाम्पराय उपशमश्रेणीवालोंका एक जीव और नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकका एकजीवकी और अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तकाल है उपशांत कषाय वालोंका नानाजीव और एकजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ क्षीणकषाय वालोंका नानाजीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ सयोगकेवलियों। नानाजीव अपेक्षासे समस्त काल है एकजीवका जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है उत्कृष्ट काल कुछ घाटि एक करोड पूर्व है ॥ अयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे और एक जीव अपेक्षासे उत्कृष्ट काल और जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त है ॥

* ज्ञान+अनुवादेन ३। =७ ज्ञानके कथनानुसारकरि

मति+अज्ञानि+श्रुत+अज्ञानिषु ७। =मतिअज्ञानी श्रुतअज्ञानियोंविषै

मिथ्यादृष्टि+सासादनसम्यग्दृष्ट्योः =मिथ्यादृष्टि [तथा] सासादन सम्यग्दर्शनवालेका (काल)

सामान्यवत्* =संक्षेप [प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थानवत] है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानीका नाना जीव अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीव अपेक्षासे तीन भेद हैं [१] अनादि अपर्यवसान [२] अनादि सपर्यवसान और सादिसपर्यवसान तहां सादिसपर्यवसान काल जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कछु हीन अर्धपुद्गल परावर्त है ॥ मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवों भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट छ आवली है ॥

पर्याप्तिवासी नगरूपसहायकवचनिका … उत्क

विभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः सामान्योक्तः कालः ॥ आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्योक्तः कालः ॥

विभङ्गज्ञानिषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीव+अपेक्षया ॥ = कुअवधि ज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टीका अनेक आत्माकी अपेक्षासे
सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ = समस्त काल है एक आत्माके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ देशोनानि ॥ = उत्कर्षकरि कुछ हीन तेतीस सागरके बराबर है (त्रयस्त्रिंशत्को सागरोपमके साथ समासमें अथवा भिन्न भी ला सके हैं)
सासादनसम्यग्दृष्टेः ॥ सामान्य+उक्तः ॥ कालः ॥ = (कुअवधि ज्ञानियोंमें) सासादन सम्यग्दर्शन वालेका संक्षेप(प्रकरण)से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है, उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवाँ भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है॥
आभिनिबोधिकश्रुत+अवधिमनःपर्यय = मतिज्ञानी (= आभिनिबोधिक) श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मनःपर्यय
केवलज्ञानिनाम् ॥ च सामान्य+उक्तः ॥ कालः ॥ = और केवल ज्ञानीनका संक्षेपकरि कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् मति–श्रुत–अवधि ये तीन ज्ञान चारसे बारह गुणस्थान तक होते हैं, मनःपर्ययज्ञान छठेसे बारह तक होता है अतः कालका

(१) देशोनानीति कथम्—विभङ्गज्ञानिमिथ्यादृष्ट्येकजीवं प्रति उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । पर्याप्तश्च विभङ्गज्ञानं प्रतिपद्यत इति पर्याप्तिसमापकान्तर्मुहूर्तहीनत्वात् देशोनानि ॥

देशोनानि ॥ इति कथम् = कुछ हीन (कम) कैसे
विभङ्गज्ञानिमिथ्यादृष्टि-एकजीवम् ॥ प्रति = कुअवधिज्ञानी मिथ्यादृष्टी एक जीवनके लिये
उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत् ॥ सागर+उपमाणि ॥ = उत्कृष्टकरि तेतीस सागर (के) तुल्य (काल) है (टिप्पणी पृष्ठ १२१)
पर्याप्तः ॥ च विभङ्ग+ज्ञानम् ॥ प्रतिपद्यते ॥ इति = पर्याप्त जीव ही (= च) खोटी अवधिको प्रारम्भ करता है इस प्रकार
पर्याप्तिसमापक+अन्तर्मुहूर्तहीनत्वात् ॥ देश+ऊनानि ॥ = पर्याप्तको पूरण करनेवाला अन्तर्मुहूर्त हीन होनेसे कुछ हीन (तेतीस सागर) है

८ संयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातशुद्धिसंयतानां संयतासंयतानामसंयतानां च

प्रमाण इस भांति है कि असंयत सम्यग्दृष्टी मतिज्ञानियों श्रुतज्ञानियों और अवधिज्ञानियोंका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्व काल है एक जीवका काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट तेतीस सागरसे कुछ अधिक है। संयमासंयमी मतिज्ञानियोंका श्रुतज्ञानियोंका अवधिज्ञानियोंका नानाजीव अपेक्षासे सर्व काल है एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एक करोड पूरव है । प्रमत्त संयमी अप्रमत्तसंयमी मतिज्ञानियोंका श्रुतज्ञानियोंका अवधिज्ञानियोंका और मनःपर्ययज्ञानियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीवका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । चार उपशमश्रेणीवाले मति–श्रुत–अवधि–मनःपर्ययज्ञानियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चार क्षपकश्रेणीवाले मति–श्रुत–अवधि मनःपर्यय ज्ञानियोंका और अयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है सयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे सब काल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट [काल] कुछ न्यून एक करोड पूर्व है ॥

[८] संयम+अनुवादेन॥ = (८) संयमके कथनानुसारसे
सामायिकच्छेदोपस्थापन– = सामायिक और छेदोपस्थापन संयमी (छठा सातवां आठवां नवमां गुणस्थानवर्ती)निका
परिहारविशुद्धि– = परिहारविशुद्धि संयमी (छठे सातवें गुणस्थानवाले) निका
सूक्ष्मसाम्पराय– = सूक्ष्मसाम्पराय संयमी (दशवें गुणस्थानवर्ती)निका
यथाख्यातशुद्धिसंयतानां = यथाख्यात शुद्धिसंयमी [ग्यारहवां बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थानवाले] निका
संयतासंयतानाम्॥ = संयतासंयमी (पांचवें गुणस्थानवर्ती)निका
असंयतानाम्॥ च = तथा [=च] असंयमी (पहलेसे चौथे गुणस्थानवाले] निका

सामान्योक्त काल ॥ (९) दर्शनानुवादेन–चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः ॥ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तः कालः ॥

सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =संक्षेप (प्रकरण) द्वारा कथित (गुणस्थानवत्) काल है (देखो पृष्ठ १७९ से १८८)
(९) दर्शन अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ =(९) दर्शनकी विवक्षा करि चक्षुदर्शनवालोंमें मिथ्यादृष्टीका
नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति =अनेक जीवकी विवक्षासे सर्व काल है । एक जीवके लिये
जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपम =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि सागरोपम दो
सहस्रे ॥ सासादन सम्यग्दृष्टि आदीनां ॥ क्षीणकषाय =सहस्र है । सासादन सम्यग्दृष्टि आदिकोंका क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थानवर्ती)
अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =पर्यन्तोंका संक्षेप (प्रकरण) से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात्

चक्षुदर्शनवाले सासादन सम्यग्दृष्टिनिका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है । मिश्रगुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शन वालेनिका नाना जीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । असंयत सम्यग्दृष्टि चक्षुर्दर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है । एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट तेतीस सागर से कुछ अधिक काल है । संयतासंयतो चक्षुदर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षा से सर्वकाल है एक जीव की अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एक करोड़ पूर्व है । प्रमत्त छठे गुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शन वालेनिका और अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्ती चक्षुदर्शन वालनिका नानां जीवकी अपेक्षासे सर्वकाल है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । चार उपशमक चक्षुदर्शन वालेनिका नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । चार क्षपक श्रेणीवाले चक्षुर्दर्शन वालेनिका नानां जीवकी अपेक्षासे और एक जीव की अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥

अचक्षुः दर्शनिषु ॥ मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय– =अचक्षुदर्शनवालेनि में मिथ्यादृष्टिसे लेकर (=आदि) क्षीणकषाय
अन्तानां ॥ सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =पर्यन्तनिका संक्षेपसे कहा हुआ गुणस्थानवत् काल है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका

असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ।

असंयत-सम्यग्दृष्टेः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥	=(कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले) असंयत सम्यग्दृष्टिका नाना जीवकी अपेक्षासे
सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥	=सर्वकाल है । एक चेतनके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोनानि ॥ त्रयस्त्रिंशत्-	=अन्तर्मुहूर्त (काल) है । उत्कृष्टकरि कुछ हीन तेतीस
सप्तदश-सप्त-सागरोपमाणि ॥	=सत्रह सात सागर प्रमाण (काल) है ।
तेजः-पद्मलेश्ययोः ॥ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ॥	=पीत पद्म लेश्याओं में मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टिवाले का ——
नाना-जीव अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥	=अनेक चेतनकी विवक्षासे समस्त काल है

दोनों कालोंका आशय है कुछ अधिक तेतीस कुछ अधिक सत्रह या कुछ अधिक सात सागर काल उत्कृष्टकरि होता है यद्यपि यह नियम नहीं है कि नरक से जन्म लेने के पश्चात् उस जीवके कापोती लेश्या होगी ।

† उक्त लेश्यायुक्त संयत सम्यग्दृष्टकजीवं प्रति उत्कर्षेण नारकापेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । पर्याप्तिसमाप्त्यन्तर्मुहूर्त सप्तम्यां मारणान्तिके च सम्यक्त्वमपायादेशोनानि ॥

उक्त-लेश्या-युक्त-असंयत-सम्यग्दृष्टि एकजीवं ॥	=कथित (कृष्ण नील कापोत) लेश्याओं सहित असंयत सम्यग्दृष्टिका एकजीवके
प्रति ॥ उत्कर्षेण ॥ नारक-अपेक्षया ॥ त्रयस्त्रिंशत् ॥	=लिये उत्कृष्टकरि नरककी अपेक्षासे कहे हुये
सप्त॰ सागरोपमाणि ॥	=हौ सागर प्रमाण काल है अर्थात् सातवीं नरक में तेतीस और पांचवी नरक में सत्रह और तीसरे नरक में सात सागर काल है (परन्तु) ।
पर्याप्तिसमाप्त्य-अन्तर्मुहूर्ते	=पर्याप्ति अवस्थाका पूरी करने वाली अन्तर्मुहूर्त (तीसरे पांचवें सातवें नरक में)
च सप्तम्यां ॥ मारणान्तिके ॥	=और (=च) सातवीं (नरक) में मृत्युके समीप में (भी) अर्थात् सातवीं नरक में मरते समय अवश्य मिथ्यात्व आ जाता है ।
सम्यक्त्व अपायात् । देशोनानि ॥	=सम्यक्त्वके अभाव होने से कुछ हीन (तेतीस सागर सत्रह सागर सात सागर काल क्रमसे सातवीं पांचवी तीसरे नरक में) है । तीसरे पांचवें सातवें नरकों में पर्याप्ति पूरी करनेके पीछे सम्यक्त्व होता है ।

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

एकजीवं ,। प्रति ॥ जघन्येन ॥॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥	=एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥	=उत्कृष्टकरि (सौधर्म ऐशान स्वर्गोंके पीत-पद्म लेश्यावाले देवोंका काल)
द्वे ॥ सागरोपमे ॥ स-अतिरेकाणि ॥ च	=कुछ अधिक दो सागर प्रमाण है और
अष्टादश ॥ सागर उपमाणि ॥ (स-अतिरेकाणि)	=कुछ अधिक अठारह सागर प्रमाण (सतार और सहस्रार स्वर्गोंके पीत-पद्म लेश्याके धारक देवोंका काल) है

(१) द्वे सागरोपमे =दो सागर [illegible] (काल) है परंतु सम्यक्त्व हो और घातायुष्क हो तो उस जीवकी आयु उत्कृष्ट आयुसे कुछ न्यून आधसागर अधिक होती है और जीव जो सागर आयु पावे तो घातायुष्क अन्तर्मुहूर्त न्यून अढाई सागर आयु पावे घातायुष्क [illegible] बारहवें स्वर्ग तक है इसके ऊपर नहीं है।

घातायुष्क =पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयुका बंध अधिक किया था, पश्चात् संक्लेश परिणामों के वशसे आयु घटाय थोड़ी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य [illegible] [illegible] आयु दशसागर प्रमाण बंधकिया फिर उसही मनुष्य भवमें संक्लेश परिणामोंके वशसे उस आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ऐशानमें आय उपजा सो घातायुष्क है सो अन्य देवोंकी दो सागर प्रमाण आयु से अन्तर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावै है। आयुका घात दो प्रकार है। एक अपवर्तन घात दूजा कदलीघात। तहां बध्यमान आयुका घटना सो अपवर्तन घात है और भुज्यमान आयुका घटना कदलीघात है। देवोंमें कदलीघात संभव नहीं है।

पद्म-लेश्यायुष्कानां ॥ मारणान्तिक =उन (पीतलेश्या और पद्मलेश्या) वायुष्कोंके मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद-सम्भवात् ॥ सातिरेके च सागरोपमे =उपपाद अवस्थाके होनेसे कुछ आयु बढ़जाने (के हेतु)से और (क्रमसे दो और अठारह) सागरोपम पूर्वस्यात् ,॥ सातिरेकाणि ॥॥ किंचित् अधिकानि इति अर्थः =सहित कुछ अधिक (सातिरेकाणि) हुई। कुछ अधिक है ऐसा अर्थ है।

जिस पर्यायको छोड़कर देव वा नारकी उत्पन्न हो उस पर्यायके अन्तके अन्तर्मुहूर्तमें तथा देव नारक पर्यायको छोड़कर जिस पर्यायमें उत्पन्न हो उस पर्यायके आदिके अन्तर्मुहूर्तमें वही लेश्या होती है। प्रथमको पूर्वभव चरमांतर्मुहूर्त और द्वितीयको उत्तरभव प्रथमांतर्मुहूर्त कहते है। (यहाँ लेश्याओंके उत्कृष्टकाल प्रमाणमें दो दो अन्तर्मुहूर्त का काल अधिक अधिक समझना) इसलिये पीत-पद्मलेश्यावाले एकजीव घातायुष्कवाले का सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें उत्कृष्टकाल =दो सागर+अन्तर्मुहूर्त न्यून आधा सागर (घातायुष्क)+पूर्वभव चरमांतर्मुहूर्त+उत्तरभव प्रथमांतर्मुहूर्त ॥ सतार सहस्रार स्वर्गोंके पीतपद्मलेश्यावाले घातायुष्क जीवका उत्कृष्टकाल =१८सागर+अन्तर्मुहूर्त घाटि आधसागर+मारणान्तिकअन्तर्मुहूर्त+उपपाद अन्तर्मुहूर्त।

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः सामान्योक्तः काल• ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया सर्व• काल ॥ एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समय•। उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तं ॥ शुक्ललेश्यानां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ॥	=(पीतपद्मलेश्याओं में) सासादनसम्यग्दृष्टी और मिश्रगुणस्थानवालों का
सामान्य-उक्तः ॥ कालः ।	=संक्षेपकरि (पहिले) कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि पीत-पद्मलेश्या धारकों का नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवा भाग है एक जीव प्रति जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट छह आवली है ॥ पीत-पद्मलेश्या वाले मिश्रगुणस्थान वालों का नाना जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है । एक जीव की अपेक्षा-से जघन्य औरउत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥
संयतासंयत-प्रमत्त अप्रमत्तानां ॥ नाना-	=(पीत-पद्म-लेश्या वालों में) देशसंयतनिका प्रमत्त अप्रमत्त वालों का अनेक
जीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति ॥	=जीवकी अपेक्षासे सब काल है । एक जीव के लिये
जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तं॥	=जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है
शुक्ललेश्यानां ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥	=शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि का अनेक जीवकी विवक्षा से
सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥	=सर्व काल है । एक जीव के लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तं ॥ उत्कर्षेण ॥ स-अतिरेकाणि ॥	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक
एकत्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥	=इकतीस सागर प्रमाण है अर्थात् मिथ्यादृष्टि शुक्ललेश्याका धारक

† ग्रैवेयकदेवापेक्षया तेषां मारणान्तिकोपपादावस्थायामपि शुक्ललेश्यासम्भवात्सातिरेकाणि ॥

ग्रैवेयक-देव अपेक्षया ॥ तेषां ॥ मारणान्ति ॥	=(नवम) ग्रैवेयक (मिथ्यादृष्टि) देवों की अपेक्षासे तिनके नाम
मारणान्तिक	=मारणान्तिक समुद्घातमें अर्थात् पूर्वभवचरमान्तरमुहूर्त में) और
उपपाद-अवस्थायाम् ॥ अपि ॥ शुक्ललेश्या-	=उपपाद अवस्था में भी (अर्थात् उत्तर भवप्रथमान्तर्मुहूर्त में भी) शुक्ललेश्या के
सम्भवात् ॥ स-अतिरेकाणि ॥	=संभव होने (के हेतु) से कुछ अधिक (इकतीस सागर प्रमाण) है मिथ्यादृष्टि शुक्ल लेश्या वाले जीव का

मामादनसम्यग्दृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामलेश्यानां च सामान्योक्तः काल । किं तु संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्व कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनैक समय । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तं ॥

मरकर नव ग्रैवेयक तक उत्पन्न होसकता है जहां उत्कृष्ट आयु इकतीस सागर है मारणान्तिक समुद्घातके अन्तर्मुहूर्त में और उपपाद अवस्था के अन्तर्मुहूर्त में भी शुक्ल लेश्या रहती है अतः उत्कृष्टकाल इकतीस सागरसे पूर्वभवचरमान्तर्मुहूर्त और उत्तरभवप्रथमान्तर्मुहूर्त के बराबर अधिक है

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि-सयोग-केवलि-अन्तानाम्
च अलेश्यानां ॥ सामान्य
उक्त ॥ काल ॥

किन्तु॰ संयतासंयतस्य ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥
सर्व ॥ काल ॥ एकजीवम् ॥ प्रति॰ जघन्येन॥॥
एक ॥ समय ॥ उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥

=(शुक्ल लेश्या वाले) सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर सयोग केवली तकनिका
=और (च) लेश्या रहित (अयोगकेवलि) निका संक्षेप (प्रकरण) करि
=(प्रथम) कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात्

यही काल है जो पृष्ठ १८१ से १८८ तक में लिखा है। इसमेंसे पृष्ठ १८५ मेंसे "संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एक जीवं प्रति जघन्येन अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण पूर्वकोटीदेशोना" छोड़दो क्योंकि संयमासंयमियोंका काल नीचे लिखा जाता है

=परन्तु संयमासंयमियोंका अनेक जीवकी अपेक्षा से
=सब काल है। एक जीवके लिये जघन्य करि
=एक समय है। उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है

११ भव्यानुवादेन–भव्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एकजीवापेक्षया द्वौ भङ्गौ। अनादिः सपर्यवसानः सादिः सपर्यवसानश्च। तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तं। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः ॥

(११) भव्य-अनुवादेन ॥ भव्येषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नाना =भव्यके अनुवादकरि भव्यजीवों में मिथ्यादृष्टिका अनेक

जीव-अपेक्षया ॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीव =जीवकी अपेक्षासे समस्तकाल है। एक जीवकी

[अपे]क्षया ॥ द्वौ ॥ भङ्गौ ॥ =अपेक्षासे दो भेद हैं

[अनादिः] ॥ सपरि-अवसानः ॥ =आदिरहित (=अनादि) अन्त (=अवसान) सहित (=सपरि) अर्थात अनादि सांत है

[सादिः] ॥ सपरि-अवसानः ॥ =(और दूसरा) आदि सहित (=सादि) अन्त (=अवसान) सहित अर्थात सादि सांत है

[तत्र] सादिः ॥ सपरि अवसानः ॥ जघन्येन ॥ =वहां सादिसांत (काल) जघन्यकरि

अन्तर्मुहूर्तं ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोनः ॥ =अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कछूहीन

अर्द्धपुद्गलपरिवर्तः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टि-आदि =अर्धपुद्गलपरिवर्तन (काल) है। सासादनसम्यग्दृष्टीसेलेकर

अयोगकेवलि-अन्तानाम् ॥ =अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थानवर्ती) पर्यन्तोंका

सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =संक्षेप (प्रकरण) करि कहाहुआ (गुणस्थानवत्) काल है

(देखो पृष्ठ १८१ से १८८ तक इस मुद्रित पुस्तकका)

प्रवासी [illegible] ....सम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोग

अभव्यानामनाद्यपर्यवसान ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोग केवल्यन्ताना सामान्योक्त काल ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीना चतुर्णां सामान्योक्त काल ॥ औपशमिकसम्यक्त्वेषु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभाग । एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्त ॥ प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चतुर्णामुपशमकाना च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैक समय । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीना सामान्योक्त काल ।

अभव्यानाम् ॥ अनादि-अपरि॰ अवसान ॥ =अभव्योंका अनादि अन्त (=अवसान) रहित (=अपरि) अर्थात् अनादि अंतकाल है

(११) सम्यक्त्व-अनुवादेन ॥ क्षायिक-सम्यग्दृष्टीनां ॥ =(१२)सम्यग्दर्शन के कथनानुसारकरि क्षायिकसम्यग्दर्शनवालोंका

असंयतसम्यग्दृष्टि-आदि-अयोगकेवलि-अन्तानां ॥ =असंयत (चौथे गुणस्थान) वर्ती से अयोगकेवली पर्यन्तनिका

सामान्य-उक्तः ॥ कालः । =संक्षेपकरि (पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है (पृष्ठ १८२ से १८८ तक)

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टीनां ॥ चतुर्णां ॥ =वेदक सम्यग्दर्शनवाले चारों (चारसे सातवां गुणस्थानवर्ती) निका

सामान्य-उक्तः । कालः ॥ =संक्षेपसे कथित (गुणस्थानवत्) काल है (पृष्ठ १८२ पंक्ति ३ से १८५ पंक्ति ३ तक)

औपशमिकसम्यक्त्वेषु ॥॥ असंयतसम्यग्दृष्टि- =उपशमसम्यग्दर्शनमें असंयमसम्यग्दर्शन वाले और

संयतासंयतयोः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ =देशसंयमीनिका अनेक चेतनकी अपेक्षासे

जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ पल्योपम =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (काल) है उत्कृष्टकरि पल्योपमके

असंख्येयभागः ॥ एकजीवं ॥ प्रति॰ जघन्यः ॥ च =असंख्यातवांभाग है और एक जीव के लिये जघन्य

उत्कृष्टः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ॥ च प्रमत्त-अप्रमत्तयोः ॥ =और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (काल) है। और प्रमत्त (छठे) अप्रमत्त (सातवें) गुणस्थानोंका

च चतुर्णां ॥ =और चार (अपूर्वकरण—अनिवृत्तिकरण—सूक्ष्मसांपराय—उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती)

उपशमकानां ॥ नाना—जीव—अपेक्षया ॥॥ च = उपशमश्रेणीवालों का नाना जीवकी अपेक्षासे और

एक-जीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ =एक जीवकीविवक्षा से जघन्यकरि एक समय है

उत्कर्षेण ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ -सासादनसम्यग्दृष्टि- =उत्कृष्टकरि अन्तर्मुहूर्त है। सासादन सम्यग्दृष्टि

सम्यङ्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टीनां ॥ सामान्य-उक्तःकालः=मिश्र और मिथ्यादृष्टियों का संक्षेप में कथित (गुणस्थानवत्) काल॰ है अर्थात्

११ भव्यानुवादेन–भव्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः ॥ एकजीवापेक्षया द्वौ भङ्गौ। अनादिः सपर्यवसानः सादिः सपर्यवसानश्च। तत्र सादिः सपर्यवसानो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्तः कालः ॥

(११) भव्य-अनुवादेन ॥ भव्येषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नाना	=भव्यके अनुवादकरि भव्यजीवों में मिथ्यादृष्टिका अनेक
जीव-अपेक्षया॥ सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीव-	=जीवकी अपेक्षासे समस्तकाल है। एक जीवकी
अपेक्षया॥ द्वौ ॥ भङ्गौ ॥	=विवक्षासे दो भेद हैं
अनादिः ॥ सपरि-अवसानः ॥	=आदिरहित (=अनादि) अन्त (=अवसान) सहित (=सपरि) अर्थात् अनादि सांत है
च अस्य आदिः ॥ सपरि-अवसानः ॥	=(और दूसरा) आदि सहित (=सादि) अन्त (=अवसान) सहित अर्थात् सादि सांत है
तत्र सादिः ॥ सपरि अवसानः ॥ जघन्येन ॥॥	=तहां सादिसांत (काल) जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोनः ॥	=अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कछुहीन
अर्द्धपुद्गलपरिवर्तः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टि-आदि	=अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन (काल) है। सासादनसम्यग्दृष्टीसेलेकर
अयोगकेवलि-अन्तानाम् ॥	=अयोगकेवली (चौदहवें गुणस्थानवर्ती) पर्यन्तोंका
सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥	=संक्षेप (प्रकरण) करि कहाहुआ (गुणस्थानवत्) काल है
	(देखो पृष्ठ १८१ से १८८ तक इस मुद्रित पुस्तकका)

शेषाणा सामान्योक्त काल ॥ असंज्ञिना मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व कालः। एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठी सहस्सगाणि मरणाणि। अंतोमुहुत्तमेत्ते तावदिया चेव होंति खुद्दभवा ॥ ६६३३६ ॥ उत्कर्षेणानन्त कालोऽसंख्येया.

का नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण क्षपक श्रेणी वाले संज्ञियों का नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त काल है

=बचे हुये (सैनी दसवां-ग्यारहवां-बारहवां गुण स्थानवर्ती) जिनका

शेषाणां ॥
सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥ =संक्षेप (प्रकरण) में कहा हुआ (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात शेष उपशम श्रेणीवाले दसवां-ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती संज्ञियों का नाना जीवकी और एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है और शेष क्षपक श्रेणीवाले दसवां बारहवां गुणस्थानवर्ती सैनियों का नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ संज्ञी प्रथमसे बारह गुणस्थान तक होते हैं ॥ असंज्ञी केवल मिथ्यात्व गुणस्थानमें होते हैं ॥

असंज्ञिनां ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ =मन रहित (= असंज्ञिनां) मिथ्यादृष्टीका अनेक चेतनकी अपेक्षासे

सर्वः ॥ कालः ॥ एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥ =समस्त काल है एक जीव केलिये जघन्यकरि

क्षुद्रभव-ग्रहणम् ॥ =सूक्ष्मभव (का काल) लिया गया है [सो श्वांस के अठारहवां भाग होता है]

तिण्णि ॥ सया ॥ छत्तीसा ॥ (=त्रीणि शतानि षट् त्रिंशत्=तीन सौ छत्तीस

छावट्ठी ॥ सहस्सगाणि ॥ (=षटषष्टि ॥ सहस्रकाणि)=छासठ सहस्र

मरणाणि ॥ अंतोमुहुत्त—(=मरणानि ॥ अन्तर्मुहूर्त-)=मरण अन्तर्मुहूर्त

मेत्ते ॥ तावदिया ॥ च (मात्रे ॥ तावन्तः ॥ च) =मात्र में और (= च)इतने (अर्थात ६६३३६)

एव होंति T खुद्दभवा ॥ (=एव भवन्ति क्षुद्रभवाः) =ही सूक्ष्म भव (एक लब्ध्य पर्याप्तक जीव के) होते हैं ॥

उत्कर्षेण ॥ अनन्तः ॥ कालः ॥ असंख्येयाः ॥ =(मन रहित मिथ्यादृष्टी का) उत्कृष्ट करि अनंत काल है। सो असंख्यात

(१२) सञ्ज्ञानुवादेन – संज्ञिषु मिथ्यादृष्ट्याद्य निवृत्तिबादरान्तानां पुंवेदवत् ॥

सासादनसम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय काल है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है एक जीवकी अपेक्षा स जघन्य एक समय उत्कृष्ट छः आवली है। मिश्र गुणस्थानवालोंका नाना जीवों की प्रति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है। मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है। एक जीव प्रति तीन भेद हैं (१) अनादि अनंत काल (२) अनादि सान्त काल (३) सादि सान्त काल। तहां सादि सान्त काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कर्ष कुछ न्यून अर्ध पुद्गल परावर्त है ॥

(१२) सञ्ज्ञा-अनुवादेन ॥ =शैली के कथनानुसार करि

संज्ञिषु ॥ मिथ्यादृष्टि- =(प्रथम गुणस्थानवर्ती) सैनियोंमें मिथ्यादृष्टी-

आदि अनिवृत्तिबादर- =से लेकर (= आदि) अनिवृत्तिबादरसाम्पराय नवमां गुणस्थानवर्ती

अन्तानां ॥ पुंवेदवत् =पर्यन्तनिका पुरुषवेद समान (काल) है ॥ इसलिये पुरुष वेद के अनुकूल मिथ्यादृष्टि सैनियों का नानाजीव अपेक्षासे सर्व काल है। एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कर्ष तीन सौ सागर से ऊपर और नौ सौ सागर से नीचे काल है। सासादन सम्यग्दृष्टी सैनियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है। एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छः आवली है ॥ मिश्र गुणस्थानवर्ती सैनियोंका काल नाना जीव अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है एक जीव की अपेक्षा स जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ॥ असंयत सम्यग्दृष्टी सैनियों का काल नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है एक जीव की अपेक्षा स जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट तेतीस सागर से कुछ अधिक है ॥ संयमासंयमी सैनियों का काल नाना जीव अपेक्षासे सर्व है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि एक क्रोड पूर्व है ॥ प्रमत्तसंयमी सैनियों का और अप्रमत्त संयमी सैनियों का नाना जीव अपेक्षा से सर्व काल है एक जीव अपेक्षा स जघन्य एक समय उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है ॥ अपूर्वकरण और अनिवृत्ति करण उपशमश्रेणीवाले संज्ञियों

शेषाणां सामान्योक्त काल ॥ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीवं प्रति जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण त्रय' समया ॥

शेषाणां ॥	=(आहारकनिमें) अवशिष्ट (दूसरेसे तेरहवें गुणस्थानवाले) निका
सामान्य उक्त । काल ॥	=संक्षेपमें कथित (गुणस्थानवत) काल है अर्थात १८१ से १८८ पृष्ठ तक देखो और पृष्ठ १८७ मेंसे अयोगकेवलियों का काल जो नाना जीव की और एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है मत पढ़ो ॥
अनाहारकेषु ॥ मिथ्यादृष्टे ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥	=अनाहारकनिमें मिथ्यादृष्टीका अनेक चेतनकी अपेक्षा से
सर्व ॥ काल ॥ एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥	=सब काल है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
एक ॥ समय ॥ उत्कर्षेण ॥ त्रय' । समया ॥	=एक समय (मात्र) है । उत्कृष्टकरि तीन समय (तक विग्रहगति में) हैं अनाहारक अवस्था जीव की पहले-दूसरे-चौथे-तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानो में है

(२)अगुल असख्येय भाग। देखपृष्ठ २२० यह वाक्य सर्वार्थ सिद्धि के वाला "स्तरको म अगुल (छप गया) है यह वाक्य इस प्रकार होना चाहिये कि अगुल असख्येय भाग। इत्यादि और अगुल ये सूच्यगुल समझना चाहिये क्योंकि पंडित दौलतराम जी कृत गो० सा० की गाथा ७ इस प्रकार कि 'अगुल असख भागा काला आहारयस्स उक्कस्सा (अगुलासख्यभागा काला आहारकस्योत्कृष्ट)॥ जीव तत्त्व प्रदीपिका टीका में इस का अर्थ यह किया है कि आहार काल। उत्कृष्ट सूच्यगुलासंख्यातैकभाग " भाषा टोडरमल जी आहार का काल उत्कृष्ट सूच्यगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण है। सूच्यगुल का असख्यातवाँ भाग के जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारक का काल है ॥ अ रचन्द् रायजी ने भी असख्यातवाँ भाग अनुवाद किया है न कि असख्यातभाग उत्कृष्ट अगुल के असख्यातवाँ भाग है सो असंख्याता सख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी परिमाण है । अगुल के प्रदेश और इन के समय समान हैं ॥ सर्वार्थ सिद्धि वचनिका पृष्ठ मुद्रित ९७ ॥ इस का भावार्थ यह है कि आहार की अपेक्षा से मिथ्यादृष्टी का एक जीव की विवक्षा से उत्कृष्ट काल सूच्यगुल के असख्यातवाँ भाग है इस सूच्यगुल के असख्यातवाँ भाग के प्रदेश संख्या व गणना में इतने हैं कि जितने पूर्वोक्त टिप्पणी में कथित उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के समय गणना में होते हैं ॥ (सूच्यगुल क्या है पृ० २६९ से २७६)

(१) एक द्वौ त्रीन् वाऽनाहारकः इति व वक्ष्यमाणत्वात् ॥	(मृत्यु भय अनन्तर जन्म धारण करने के लिये गमन में जीव)
एक ॥ द्वौ ॥ त्रीन् ॥ वा ॥	—एक (समय तक) के लिये वा (समय दोक) को अथवा तीन (समय तक) को
अन् आहारक ॥	—अनाहारक है अर्थात् नो कर्म वर्गणा का आहार या ग्रहण नहीं करता है
इति वक्ष्यमाणत्वात् ॥	—क्योंकि ऐसा (अध्याय २ सूत्र ३० में) कहा जायगा ।

पुद्गलपरिवर्ता । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तः कालः ॥ (१४) आहारानुवादेन – आहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वः कालः । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभागः असंख्येया संख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ।

पुद्गलपरिवर्ता ॥ तद्-उभय-व्यपदेश-रहितानां ॥ सामान्य उक्तः ॥ कालः ॥ –पुद्गल परावर्तन है । उन (सैनी असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित –(सयोग-अयोग केवली) तिनका संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् सयोग केवलियोंका नाना जीवकी प्रति सब काल है एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ घाटि करोड़ पूर्व है । अयोग केवलियों का काल नाना जीव की और एक जीवकी प्रति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है

(१४) आहार-अनुवादेन ॥ आहारकेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ –आहार के कथनानुसार करि आहारकनि में मिथ्यादृष्टी का

नाना जीव अपेक्षया ॥ सर्व ॥ कालः ॥ एकजीव ॥ –अनेक जीवकी अपेक्षासे सब काल है । एक जीव के

प्रति॰ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥ उत्कर्षेण ॥ –लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि

अंगुल। असंख्येय-भाग ॥ असंख्येया संख्येया ॥ –(सूची अंगुल के असंख्यातवां अंश है सो असंख्यातासंख्यात

उत्सर्पिणि-अवसर्पिण्य ॥ –उत्सर्पिणी (काल) अवसर्पिणी काल (परिमाण) है अर्थात अंगुल के प्रदेश और इनके समय समान है ॥ भावार्थ सूच्यंगुलके असंख्यातवां भाग के प्रदेशोंकी संख्याके बराबर आहारक का समय है ।

(१) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह कालों से भरत और ऐरावत क्षेत्रों में मनुष्यों की आयु काय भोगोपभोग सम्पदा वीर्य बुद्ध्यादिक का बढ़ना और घटना होता है उत्सर्पिणी के छह कालों में वृद्धि और अवसर्पिणी के छह कालोंमें दिनों दिन ह्रास होता जाता है । अवसर्पिणी काल के (१) सुखमसुखमा (२) सुखमा (३) सुखमदुःखमा (४) दुःखमसुखमा (५) दुःखमा (६) अति दुःखमा ऐसे छह भाग हैं । इसी प्रकार उत्सर्पिणीके भी (१) अति दुःखमा (२) दुःखमा (३) दुःखमसुखमा (४) सुखमदुःखमा (५) सुखमा (६) सुखमसुखमा ये छह हैं ॥ अव सर्पिणी काल दश कोड़ा कोड़ी सागर का है अर्थात् १०००००० × १०००००० = १०००००० ०००००० (दशमील सागर का) × १० (दशगुणा करत) तो १०००००० ०० ०००० ० सौ मीलसागर हुये । और उत्सर्पिणी काल भी दश कोड़ा कोड़ी सागर अर्थात् सौ मीलसागर का है । इन दोनों कालों को मिलाकर बीस कोड़ा कोड़ी सागर का एक कल्प कहते हैं ॥ (२) देखो टिप्पणी मुद्रित पृष्ठ २१९ से २७५ तक

अन्तरं निरूप्यते– विवक्षितस्य गुणस्य गुणान्तरसङ्क्रमे सति पुनस्तत्प्राप्तेः प्राङ्मध्यमन्तरम् । तत् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे षट्षष्ठी देशोने सागरोपमाणाम् सासादनसम्यग्दृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया

अन्तरं॥ निरूप्यते॥ विवक्षितस्य॥ गुणस्य॥ =अन्तर अर्थात् विरह या बिछोहकाल निरूपण किया जाता है अपेक्षितगुणका

गुणान्तर-संक्रमे॥ सति॥ पुनः॥ तत्-प्राप्तेः॥ प्राक्॥ =अन्यगुणमें पलटन होनेपर (=सति)फिर उसी (गुणकी) प्राप्तिसे पहिले

मध्यम्॥ अन्तरम्॥ =मध्य या बीच (का काल) सो अन्तर है अर्थात् एक गुणको छोड़करि फिर उसी गुणके ग्रहण करने में विलम्ब या देरी हो सो अन्तर है ॥

तत्॥ द्विविधम्॥ सामान्येन॥ विशेषेण॥ च॥ =यह (अन्तर) दो प्रकार है संक्षेपकरि और (=च) भेदकरि

सामान्येन तावत्॥ मिथ्यादृष्टेः॥ नानाजीव-अपेक्षया॥ =संक्षेपसे प्रथम (=तावत्) मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षा से

न-अस्ति अन्तरम्॥ एकजीवं॥ प्रति॥ जघन्येन॥ =अन्तर नहीं है। एक जीव के लिये जघन्यकरि

अन्तर्मुहूर्तं॥—उत्कर्षेण॥ देशोने॥ द्वे॥ =अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है। उत्कृष्टकरि कुछ न्यून दुगुणे

षट्षष्ठी॥ सागरोपमाणाम्॥ =छयासठि (अर्थात् एकसौ बत्तीस) सागरोपमका (अन्तर) है

सासादनसम्यग्दृष्टेः॥ अन्तरं॥ नानाजीव अपेक्षया॥ =सासादन सम्यग्दर्शन वालेका (विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षा से

(१) एकान्नविंशति (उन्नीस) से नवनवति (निन्यानवे) तक अर्थात् अस्सी संस्कृत की संख्याओं को संज्ञा मान सकते हैं ये सब अस्सी इ स्त्री लिङ्ग में हैं। संज्ञा जिस के साथ ये लाई जाती हैं। बहु वचन संज्ञा के साथ ये एक वचन में लाई जा सकती हैं जैसे षट्षष्टि ,॰ वेषस्मिन्, । चतुर्थि ॥ जहानि ॥॥ छयासठ दिवस सामर्थ्य स्मृतया ॥ । विंशति ॥ ब्राह्मणाः ॥ अथवा विंशति ब्राह्मण्याः ॥ । (बीस ब्राह्मण) दूसरी संज्ञाओं के समान ये द्वि वचन और बहु वचन में भी लाई जा सकती हैं परन्तु उस समय में संज्ञाय जिन के साथ ये लाई जाती हैं षष्ठी विभक्ति में आती हैं जैसे ब्राह्मणानां ॥ विंशती ॥ (दो कोड़ी या दो बीसी ब्राह्मणों) की ब्राह्मणानां ॥ विंशतयः ॥ बहुत कोड़ी ब्राह्मणों की ॥ इसी प्रकार द्वे षट्षष्ठी ॥ सागरोपमाणाम् ॥॥ दो गुणे छयासठि सागर। इन अस्सी संख्याओं में से किसी को भी एक वचनमें लानेपर भी संज्ञायें उनके साथ ये संख्यायें लाई जायँ षष्ठीविभक्तिमें भी ला। जासकती हैं जैसे ब्राह्मणाम्॥ विंशतिः॥ पच्चीसी ब्राह्मण ।

सासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेणावलिकाया असंख्येयभागः। एकजीवं प्रति जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण द्वौ समयौ॥ सयोगकेवलिनो नानाजीवापेक्षया जघन्येन त्रयः समयाः। उत्कर्षेण संख्येयाः समयाः। एकजीवं प्रति जघन्यश्चोत्कृष्टश्च त्रयः समयाः॥ अयोगकेवलिनां सामान्योक्तः कालः॥ कालो वर्णितः॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः नाना	=(अनाहारकोंमें) सासादन सम्यग्दृष्टीका असंयत सम्यग्दृष्टीका नाना
जीव अपेक्ष ।॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥	= जीव की अपेक्षा से जघन्य करि एक समय (मात्र) है
उत्कर्षेण ॥ आवलिकायाः ॥ असंख्येय भागः ॥	=उत्कृष्टकरि आवलीका असंख्यातवां भाग है
एक जीवं ॥ प्रति॥ जघन्येन । एकः ॥ समयः ॥	=एक जीव के लिये जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण॥ द्वौ ॥ समयौ ॥ सयोग-केवलिनः ॥	=उत्कृष्ट करि दो समय हैं। सयोगकेवलीका
नाना-जीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ त्रयः ॥	=अनेक आत्माओं की अपेक्षासे जघन्यकरि तीन
समयाः ॥ उत्कर्षेण॥ संख्येयाः ॥ समयाः ॥	=समय हैं। उत्कृष्टकरि संख्याते समय हैं।
च॥एक जीवं ॥ प्रति॥ जघन्यः । उत्कृष्टः ॥ च	=और (सयोगकेवली का ही) एक जीवकी अपेक्षा से जघन्य और (=च) उत्कृष्ट
त्रयः ॥ समयाः ॥	=तीन समय हैं अर्थात् एक सयोगकेवली भगवानकी अपेक्षा से जब तीसरे

समय में प्रतर समुद्घात करते हैं और चौथे समय में लोकपूर्ण समुद्घात को करते हैं, फिर इस लोकपूर्ण समुद्घात को पांचवीं समय में संकोचते हैं तब इन तीसरे चौथे पांचवें समयों में कार्मांण योग होता है और अनाहारक अवस्था होती है॥ "औरालदण्ड दुगे" इत्यादि गाथा पृष्ठ १२५ से प्रतर समुद्घात के संकोचने में छठी समय में भी कार्मांण योग होता है अतः चार समय अनाहारक हो जाते हैं॥ कितेक आचार्य तीन समय ही मानते हैं (११६ से १२६ तक)

अयोगकेवलिनां॥ सामान्य-उक्तः ॥ कालः ॥	=अयोगकेवलीयोंका संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत्) काल है अर्थात् नाना जीवकी और एक जीवकी अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है (पृष्ठ १८७ के अनुसार)
कालः॥ वर्णितः ।	=काल (इस प्रकार) वर्णन किया गया है

एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्द्धपुद्गल परिवर्तो देशोन ॥ चतुर्णां क्षपकाणामयोग केवलिना च नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण षण्मासा । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सयोगकेवलीना नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ विशेषेण (१) गत्यनुवादेन–नरकगतौ नारकाणा सप्तसु पृथ्वीषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त दश-सप्तदश–

एकजीवं ;। प्रति+जघन्येन ;।। अन्तर्मुहूर्त ;।	=(चार उपशम श्रेणीवालेकानिका) एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ;। देशोन ;। अर्द्धपुद्गल–परिवर्त ;।	= उत्कृष्टकरि कुछ घाटि अर्द्ध पुद्गल परावर्तन (विरह काल) है
चतुर्णाम् ; क्षपकाणाम् ;।	=चार(आठवें से दशवें तक–बारहवें गुणस्थानवर्ती)क्षपक श्रेणीवालेनिका
अयोगकेवलीनां ;। नानाजीव-अपेक्षया ;।। जघन्येन ;।।	=और(=च) अयोग केवली निका अनेक जीवनकी विरहतें जघन्यकरि
एक ; समय ;। उत्कर्षेण ;। षण्मासाः ;।	=एक समय(विरहकाल) है । उत्कृष्टकरि छ महीना अन्तर है
एकजीव ;। प्रति * न * अस्ति अन्तरम् ;।।	=(उक्त क्षपक श्रेणियों का) एक जीव के लिये(कुछ) विरहकाल नहीं है
सयोगकेवलीनां ;। नाना–जीव–अपेक्षया ;। च *	=सयोगकेवलीनिका अनेक जीवों की विरहतें और(=च)
एक–जीव अपेक्षया ;।। न * अस्ति अन्तरम् ;।।	=एक जीव की अपेक्षासे (कुछभी) विरह काल नहीं है
विशेषेण ;। [१] गति अनुवादेन ;। नरक–गतौ ;।	=भेदकरि (१) गति के कथनानुसारकरि–नरक गति में
नारकाणां ;। सप्तसु ;। पृथ्वीषु ;।। मिथ्यादृष्टि	=नारकिनका सातवें नरकमें(=पृथ्वीषु ;।) मिथ्यादृष्टि और
असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ;।। नाना जीव अपेक्षया ;।	असंयत सम्यग्दर्शनवालेनिका नानाजीव की अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् ;।।—एकजीवं ;। प्रति * जघन्येन	=(कुछ) विरह काल नहीं है । एकजीवकेलिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्त ;। उत्कर्षेण ;। एक–	=अन्तर्मुहूर्त (अन्तर) है । उत्कृष्ट करि (प्रथम नरक में कुछ हीन) एक
त्रि–सप्त–	=(दूसरे नरकमें कुछ न्यून) तीन (तीसरे नरकमें कुछ न्यून) सात
दश–सप्तदश–	=(चौथे नरक में किंचित् घाटि) दश (पाचवां नरक में कुछ घाटि) सत्रह

जघन्येनैक समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागः उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तरं नानाजीवापेक्षया सासादनवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ असंयतसम्यग्दृष्टयाद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणार्द्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्

जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ पल्योपम-	—जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि पल्योपमके
असंख्येय-भाग ॥ एकजीवं ॥ प्रति जघन्येन ॥	—असंख्यातवें भाग है । एक जीव के लिये जघन्यकरि
पल्योपम का असंख्येय भाग ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोनः ॥	—पल्योपम का असंख्यातवां खंड है । उत्कृष्ट करि कुछ न्यून
अर्ध-पुद्गल-परिवर्त ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ॥	—अर्ध पुद्गल परावर्तन है ॥ मिश्रगुणस्थान वर्तीनिका
अन्तरं ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥ सासादनवत् ॥	—विरह काल अनेक जीवकी विवक्षा से सासादन (दूसरे गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य अंतर एक समय है उत्कर्ष पल्य के असंख्यातवां भाग है
एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥	—एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कर्ष करि
अर्ध-पुद्गल परावर्त ॥ देशोन ॥ असंयत-	—कुछ घाटि आध पुद्गल परावर्तन है । असंयमी
सम्यग्दृष्टि-आदि अप्रमत्त-अन्तानां ॥ नानाजीव	—सम्यग्दर्शन वाले से अप्रमत्त गुणस्थानतकनिका अनेक जीव की
अपेक्षया ॥ न ॥ अस्ति ॥ अन्तरम् ॥	—विवक्षा से वियोग काल (कुछ) नहीं है ॥ (चौथे से सातवें गुणस्थान वालोंका)
एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥	—एक आत्मा के लिये जघन्य करि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट करि
अर्ध-पुद्गल परिवर्त ॥ देशोन ॥	—कुछ न्यून आध पुद्गल परावर्तन (अन्तर) है
चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥	—चार उपशम श्रेणी (आठवें से ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका (अन्तर)
नाना जीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समय ॥	—अनेक जीव की विवक्षा से जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ॥ वर्ष-पृथक्त्वम् ॥	—उत्कृष्ट करि पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है

अधिकम् ।। अपि ● कस्मात् ।। (कस्मात् ।।।।) ?

न ● इति ● वेद ● क्षपणा आरम्भक

वेदक पुरुषस्य ।। तिर्यक्षु ।। उत्पाद अभावात् ।।

वद्-पुरुष ।। हि● देवेषु ।। एव ● उत्पद्यते T

अतः ● मिथ्यात्वपुरुष ।। त्रिपल्योपम-आयुष्कः ।।

भोगभूमिषु ।। उत्पद्यते T तत्र ● च ● उत्पन्नानां ।।

तिर्यक्-मनुष्याणां ।। किंचित् ● अभ्यधिक अष्ट-

चत्वारिंशत् ।। दिनेषु ।।। सम्यक्त्व ग्रहण-योग्यता ।।

भवति नियमात् ।। पञ्चसु ● दिनेषु ।। मिथ्यात्व

परित्यागात् ।। सम्यक्त्वं ।।। इत्यादि T त्रि पल्योपम

आयुः शेषे ।। पुनर्मिथ्यात्व ।।।। प्रतिपद्यते T इति

गर्भकाले ।। किंचित् ● अधिक अष्टचत्वारिंशत् ।।।

दिनैः ।।

= (मिथ्यात्वादि तिर्यंचका उत्कर्ष अन्तर तीन पल्यसे) अधिक किस हेतु से

= नहीं है ऐसी शंकापर (= वेद-कहते हैं कि) क्षपणाका प्रारम्भ करने वाले अर्थात् दर्शनमोहनीयकर्मकी तीन मिथ्यात्व(= अतत्त्व श्रद्धान)सम्यक्त्व मिथ्यात्व (जिस कर्म प्रकृति के उदय से मिश्र परिणाम हों जिनको न तो सम्यक्त्वरूप ही और न मिथ्यात्वरूपही कह सकते हैं) और सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व (जिसके उदय से सम्यक्त्व का मूलघात तो न हो परन्तु चल मलादि दोषहों) के क्षयका आरम्भ करने वाला

= क्षायोपशम सम्यक्त्व सहित(जीव) का तिर्यंचों में जन्मका अभाव होनेसे

= इस क्षपणात्मक वेदक सम्यक्त्व सहित जीव देवों म ही उपजता है

= इसलिये मिथ्यात्ववाला तीन पल्यप्रमाण आयुसहित

= भोगभूमियों म जन्म धारण करता है और (= व) वहां उपजने वाल

= तिर्यंच और मनुष्यों की कुछ अधिक अठ

= चाल स दिवस में सम्यग्दर्शन प्राप्तिकी योग्यता या सामर्थ्य

= होती है क्योंकि नियमसे इतने दिनों म मिथ्यात्व

= छोड़देता है और सम्यग्दर्शनका ग्रहण करता है । तीन पल्य प्रमाण

= आयु म कुछ शेष रहने पर फिर मिथ्यात्वका ग्रहण करता है इस प्रकार

= गर्भ (के रहने के) कालमें, कुछ अधिक अड़तालीस दिनसहित (कालमें)

= अर्थात् जब भोगभूमिका मनुष्य तिर्यंच बाल अवस्था से तरुणाई को पहुंच के सम्यक्त्व के प्राप्त करने के योग्य होजाता है वह समय

द्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादन सम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय ।उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभाग । एकजीव प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण एक त्रि सप्त दश सप्तदश-द्वाविंशति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चा मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणिपल्योपमानि देशोनानि ॥

द्वा-विंशति—त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमाणि ,॥ देशोनानि ,॥।	=(छठे नरकमें कुछ न्यून) बाईस (सातवां में) कुछ न्यून तेतीस सागर प्रमाण है
सासादन सम्यग्दृष्टि—सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यो ।।	=सासादन सम्यग्दर्शनवाले और मिश्र गुण स्थानवाले (नारकियोंका)
नानाजीव—अपेक्षया।। जघन्येन एक ।। समय ।।	=अनेक जीव की विवक्षा से जघन्यकरि एक समय (अन्तर है)
उत्कर्षेण ।। पल्योपम—असंख्येय—भाग ।, एकजीवं ।।	=उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है । एक (नारक) जीवका
प्रति जघन्येन ।, पल्योपम—असंख्येय—भाग ।। च	=लिये जघन्यकरि पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण है ।।। और (च)
अन्तर्मुहूर्त ।। उत्कर्षेण ।। एक—त्रि—	=अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि (प्रथम नरकमें कुछ घाटि) एक (दूसरे नरकमें कुछ न्यून) तीन
सप्त-दश-	=(तीसरे नरकमें कुछ हीन) सात (चौथे नरकमें कुछ न्यून) दश
सप्तदश—द्वाविंशति—	=(पांचवां नरकमें कुछ घाटि) सत्रह छठे (नरकमें कुछ न्यून) बाईस
त्रयस्त्रिंशत् सागर उपमाणि ।।। देशोनानि ।।।।	=[सातवां नरकमें] कुछ न्यून तेतीस सागर प्रमाण [विरह काल] है [नारकीयों के प्रथम मिथ्यात्व से असंयत चौथे गुणस्थान तक धारही हो सकते हैं]
तिर्यग्गतौ ।। तिरश्चां ।। मिथ्यादृष्टे ।। नानाजीव—	=तिर्यंच गति में तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों का अनेक जीवों की
अपेक्षया ।। न अस्ति अन्तरम् एकजीवं ।। प्रति जघन्येन	=अपेक्षा से विरहकाल नहीं है । एक (तिर्यंच) जीव के लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्त उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि ।।।। देशोनानि ।।।।	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन तीन पल्य प्रमाण है

(१) कथिकमपि [illegible] तिर्यक्सुत्पादाभावात् । तथ काचि देवव्यवस्थापयते । अन्यो मिथ्यात्वयुक्तत्रिपल्योपमायुष्का भागभूमिषूत्पद्यते । तत्र [illegible] तिर्यङ्मनुष्याणां [illegible] सम्यक्त्व [illegible] भवति । नियमादेवादिषु मिथ्यात्व परित्यागात् सम्यक्त्व गृह्णाति । त्रिपल्योपमायु [illegible] पुनर्मिथ्यात्वं प्रतिपद्यते । इति [illegible] त्रीणि पल्योपमानि [illegible] ।

मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्टेस्तिर्यग्वत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ॥

समय है ॥ उत्कृष्टकरि पल्य के असंख्यातवां भाग है। एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है उत्कृष्टकरि कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है। मिश्र तीसरे गुणस्थान वर्ती तिर्यंचनिका विरहकाल अनेक जीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है। उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि आधे पुद्गल परावर्तन है। असंयमी सम्यग्दर्शन वाले तिर्यंचों का और संयमा संयमी पांचवें गुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंका अनेक जीवकी विवक्षा से वियोगकाल (कुछ) नहीं है। एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछ न्यून आधे पुद्गल परावर्तन (अंतर) है (तिर्यंचों में पांच ही गुणस्थान होते हैं)

मनुष्यगतौः॥ मनुष्याणांः॥ मिथ्यादृष्टेः॥ तिर्यग्वत्॥ =मनुष्यगति में मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका तिर्यंच सदृश (अन्तर) है अर्थात् मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका नाना जीवकी अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि कुछ हीन तीन पल्य है

(मनुष्य भोग भूमि में वैसे ही उत्पन्न होते हैं जैसे तिर्यंच टिप्पणी २२७-२२८)

सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः॥ =सासादन गुणस्थानवर्ती (मनुष्य) निका मिश्र गुणस्थानवर्ती (मनुष्य) निका

नानाजीव-अपेक्षयाः॥ सामान्यवत्॥ =अनेक जीवकी अपेक्षा से (अन्तर) संक्षेप (प्रकरण) में कथित (गुणस्थानवत्) है अर्थात् दूसरे गुणस्थान वालोंका जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग है ॥ मिश्रका भी (सासादनवत्) जघन्य एक समय उत्कर्ष पल्यके असंख्यातवां भाग है ॥ (पृष्ठ २२३, २२४ देखो)

सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां चतुर्णां सामान्योक्तमन्तरम् ॥

सासादन सम्यग्दृष्टि-आदिनाम् ॥ चतुर्णाम् ॥ =सासादन सम्यग्दृष्टि आदिक चार (दूसरेसे पांचवां गुणस्थान वाले) तिनका

सामान्य-उक्तम् ॥॥ अन्तरम् ॥॥ =संक्षेप से कथित (गुणस्थानवत्) विरहकाल है, अर्थात् सासादन गुणस्थान वाले तिर्यंचनिका (विरहकाल) अनेक जीवों की अपेक्षा से जघन्यकरि एक

च । अवसानकाले हि शेषम् ॥ =और (=च) अंतिम [मरण] काल में [आयुष्य] यथायुका काल अर्थात् भोगभूमि के मनुष्य तिर्यंच के मरने से पहिले आयु के बचे हुए काल में सम्यक्त्व नहीं रहता

[illegible] ॥॥ स्थानानि ॥॥ =[उक्त तीन प्रकारके कालोंका उत्कृष्ट आयु तीनपल्य में से] घटाने से कुछ तीन [तीनपल्य उत्कृष्ट अन्तरकाल मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्वको प्राप्तकर फिर

[illegible] ॥॥ मिथ्यात्व में आनेका] जानना चाहिये अथवा जानो

इस टिप्पणीका आचार्य जिनके प्रथम इस वाक्य [illegible] उचित समझते हैं कि मिथ्यादृष्टी तिर्यंचोंका यही अन्तर है या मिथ्यादृष्टी मनुष्यों का "मनुष्य पर्यो मनुष्याणां मिथ्यादृष्टितिर्यग्वत्" इस सूत्र के अनुकूल अब प्रश्न इसरूपमें होगया कि मिथ्यादृष्टि तिर्यंच या मिथ्यादृष्टि मनुष्यके मिथ्यात्वका अन्तर क्या है अर्थात् पहिले मनुष्य वा तिर्यंच मिथ्यात्व सहित था पश्चात् मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्व ग्रहण किया और पुनः मिथ्यात्व में आया वा पहिलीबार मिथ्यात्वसे दूसरीबार मिथ्यात्व ग्रहण करने में कितना काल व्यतीत हुआ यही अन्तर वा विछोह काल मिथ्यात्व का है। उसमें कहते हैं कुछ न्यून तीन पल्य प्रमाण है या कैसे ? ([illegible]) मोहनीयकर्म की तीन मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व [illegible] सहित जीवका जन्म देवों में ही होता है अतः मिथ्यात्ववाले जीवका जन्म भोगभूमिके तिर्यंच वा मनुष्य में हो सक्ता है। भोगभूमि में उत्कृष्ट आयु तीन पल्यकी हो सक्ती है जिसमें मिथ्यात्वका अंतर होता है अर्थात् तीन पल्यतक सम्यक्त्व रहता परन्तु उन तीन पल्यों में से (१) गर्भमें रहने का काल (२) भोगभूमिके मनुष्य वा तिर्यंचमें जन्म होने से अड़तालीस दिनसे कुछ अधिक समय तक जिसमें उक्त मनुष्य वा तिर्यंचमें सम्यक्त्व ग्रहण करने की योग्यता नहीं होती है (३) मरणसे पहिले कुछ कालतक सम्यक्त्व नहीं रहता परन्तु ये तीन प्रकारका समय तीन पल्यसे घटाकर अन्तरकाल तीन पल्यसे कुछ न्यून ही रहता है इस लिये यह अन्तरकाल तीन पल्यसे कुछ न्यून ही कहा ॥

उत्कर्षेण पूर्वकोटी पृथक्त्वानि । शेषाणां सामान्यवत् ॥ देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योः नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येय भागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण

उत्कर्षेण ॥ पूर्वकोटी पृथक्त्वानि ॥—शेषाणां ॥	– उत्कृष्टकरि तीन से ऊपर नवसे नीचे (=पृथक्त्व) करोड़ पूर्व है अवशेष (चार अपूर्वकरण आठवां-अनिवृत्तिकरण नववां-सूक्ष्मसांपरायदशवां क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानवर्ती सयोग केवली और अयोग केवली) तिनका
सामान्यवत्॥	(विरह काल) संक्षेप [प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान] सदृश है अर्थात् चार क्षपकश्रेणीवाले और अयोगकेवलियों का (अन्तर) नाना जीव की अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्टकरि छह मास है। एकजीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है। सयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है [देखो पृष्ट २२५]
देवगतौ ॥ देवानां ॥ मिथ्यादृष्टि-असंयत सम्यग्दृष्ट्योः॥	– देवगति में सुर मिथ्यादृष्टि और असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (देव) तिनका
नानाजीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अंतरं ॥ एकजीवं ॥	– नानाजीव की अपेक्षा से विरह काल नहीं है। एक जीवके लिये
प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ उत्कर्षेण ॥	– जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि
एकत्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥ देशोनानि ॥	– कुछ हीन इकतीस सागर प्रमाण है
सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ॥ नाना-जीव	– सासादन [द्वितीय] गुणस्थानवर्ती [देव] मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवाले [देव] तिनका
अपेक्षया ॥ सामान्यवत्॥	–(विरह काल) नानाजीव की अपेक्षा से संक्षेप [विषय में पूर्वकथित गुणस्थान] – सदृश है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है। उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां भाग है [देखो पृष्ट २२३,२२४
एकजीवं ॥ प्रति॥ जघन्येन ॥ पल्योपम-	– [सासादन मिश्रवर्तियोंका] एकजीव की अपेक्षा से जघन्यकरि पल्योपम के
असंख्येय-भागः ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ च—उत्कर्षेण ॥	– असंख्यातवां भाग है और अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

एकजीव प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं ।

एक-जीवं ।। प्रति॥	=(सासादन और मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्ती मनुष्यनिका) एकजीवके लिये
जघन्येन ।।।। पल्योपम-असंख्येयभाग अन्तर्मुहूर्तं ।। च	=जघन्यकरि पल्योपम के असंख्यातवांभाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥
उत्कर्षेण। त्रीणि ।।। पल्योपमानि ।।पूर्वकोटिपृथक्त्वैः।।।	=उत्कृष्टकरि तीन पल्य प्रमाण पृथक्त्व (तीनसे ऊंचे नौसे नीचे) करोड़ पूर्वकरि
अभ्यधिकानि ।।। असंयतसम्यग्दृष्टेः । नानाजीव-	=अधिक है असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (मनुष्य) तिनका अनेक जीवकी
अपेक्षया।। न॥ अस्ति अन्तरम्।।। एक-जीव-अपेक्षया।।।	=अपेक्षा से विरह काल नहीं है एक जीव के कथनानुसार से
जघन्येन ।।। अन्तर्मुहूर्तः ।। उत्कर्षेण ।। त्रीणि ।।। पल्यो	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि तीन पल्य
पमानि ।।। पूर्वकोटीपृथक्त्वैः ।।। अभ्यधिकानि ।।।	=प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ स नीचे) करोड़ पूर्वकरि अधिक है ॥
संयतासंयत प्रमत्त-अप्रमत्तानां ।। नानाजीव-	=संयमासंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्तसंयमी (मनुष्य) तिनका नानाजीव
अपेक्षया ।।न अस्ति अन्तरम् ।।। एक-जीवं ।। प्रति॥	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्मा के लिये
जघन्येन ।।। अन्तर्मुहूर्तं ।। उत्कर्षेण ।। पूर्वकोटी-	=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि तीन करोड़ पूर्व के
पृथक्त्वानि ।।। चतुर्णाम् ।।	=ऊपर नव के नीचे (= पृथक्त्वानि) है । चार (आठ से ग्यारह गुणस्थानवर्ती तक)
उपशमकानां ।। नाना-जीव-अपेक्षया ।।।	=उपशम श्रेणी चढ़ने वालेनिका नाना जीवों के कथनानुसारकरि
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान) वत् (विरह काल) है अर्थात् नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट तीन और नव के मध्य है
एकजीवं ।। प्रति॥ जघन्येन ।।। अन्तर्मुहूर्तः ।।	=(चार उपशम श्रेणी वालेनिका) एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण पूर्वकोटी पृथक्त्वानि । शेषाणां सामान्यवत् ॥ देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टया नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येय भागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण

उत्कर्षेण ।। पूर्वकोटी पृथक्त्वानि ।।।—शेषाणां ।। — उत्कृष्टकरि तीन से ऊपर नवसे नीचे (=पृथक्त्व) क्रोड पूर्व है अवशेष (चार अपूर्वकरण आठवां-अनिवृत्तिकरण नववां-सूक्ष्मसांपरायदशवां क्षीणकषाय बारवें गुणस्थानवर्ती सयोग केवली और अयोग केवली) निका

सामान्यवत्॥ (विरह काल) सक्षेप [प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान] सदृश है अर्थात् चार क्षपकश्रेणीवाले और अयोगकेवलियों का (अन्तर) नाना जीव की अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्टकरि छह मास है । एकजीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है । सयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है [देखो पृष्ठ २२५]

देवगतौ ।। देवानां ।। मिथ्यादृष्टि-असंयत सम्यग्दृष्ट्योः।। — देवगति में सुर मिथ्यादृष्टि और असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (देव) निका

नानाजीव-अपेक्षया ।। न अस्ति अंतरं ।।। एकजीवं ।। — नानाजीव की अपेक्षा से विरह काल नहीं है । एक जीव के लिये

प्रति जघन्येन ।।।अन्तर्मुहूर्त ।। उत्कर्षेण ।। — जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि

एकत्रिंशत् ।।। सागरोपमाणि ।।।। देशोनानि ।।।। — कुछ हीन इकतीस सागर प्रमाण है

सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ।। नाना-जीव — सासादन [द्वितीय] गुणस्थानवर्ती [देव] मिश्र [तीसरे] गुणस्थानवाले [देव] निका

अपेक्षया ।।। सामान्यवत्॥ —(विरह काल) नानाजीव की अपेक्षा से संक्षेप[विषय में पूर्वकथित गुणस्थान] — सदृश है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है [देखो पृष्ठ २२३,२२४

एकजीवं ।। प्रति॥जघन्येन ।।।। पल्योपम — [सासादन-मिश्रवर्तिदेवोंका] एकजीव की अपेक्षा से जघन्यकरि पल्योपम के

असंख्येय-भागः ।। अन्तर्मुहूर्त ।। च—उत्कर्षेण ।। — असंख्यातवां भाग है और अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेनएकेन्द्रियाणा नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः एवमिन्द्रियं प्रत्यन्तरमुक्तम् ।

देशोनानि॥॥ एकत्रिंशत्॥॥ सागरोपमाणि॥॥	=कुछ कम इकतीस सागर प्रमाण (अन्तर या विरह काल) है
(२) इन्द्रिय-अनुवादेन ॥ एक-इन्द्रियाणां ॥ नानाजीव	=(२)इन्द्रियों के कथनानुसारकरि एकेन्द्रियों के अनेक जीवकी
अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम्॥॥ एक-जीव-अपेक्षया॥॥	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्माकी अपेक्षा से
जघन्येन ॥॥ क्षुद्रभव-ग्रहणम् ॥॥	–जघन्यकरि क्षुद्रभव (का काल-श्वासके अठारहवां भागके बराबर) लिया गया है
उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥॥ पृथक्त्वैः ॥॥	–उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे)
पूर्व कोटी, अभ्यधिके ॥	–क्रोड पूर्व अधिक है (जैसे एकजीव एकेन्द्रिय था, एकेन्द्रिय की अवस्था को छोड़ कर अन्य इन्द्रिय धारण की तो शीघ्र से शीघ्र वही जीव फिर एकेन्द्रिय हो तो श्वास के अठारहवां भाग काल के पश्चात् एकेन्द्रिय होजावेगा और यदि देरी से देरी करे तो वही जीव दो हजार सागर, तीनसे ऊपर और नौसे नीचे क्रोड़ पूर्व काल तक अन्य इन्द्रियों वाला होकर पश्चात् फिर एकेन्द्रियही हो जावेगा)
विकल-इन्द्रियाणां ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥॥ अन्तरं ॥॥	–विकलत्रय (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) तिनका नाना जीव अपेक्षा से अंतर
न अस्ति एक-जीव-अपेक्षया ॥॥ जघन्येन ॥ क्षुद्रभव	–नहीं है । एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि क्षुद्रभव ($\frac{1}{18}$ श्वासवत्काल)
ग्रहणम् ॥ उत्कर्षेण ॥ अनन्तः ॥ कालः ॥	–लिया गया है । उत्कृष्टकरि अनन्तकाल है
असंख्येयाः ॥ पुद्गलपरिवर्ताः ॥ एवम् इन्द्रियं ॥॥	–[सो असंख्याते पुद्गलपरावर्तन [काल के तुल्य] है ऐसे इन्द्रियों की
प्रति अन्तरम् ॥॥ उक्तम् ॥॥	–[अर्थात् एकेन्द्रिय और विकलत्रय की] अपेक्षा से विरहकाल कहा गया है

गुण प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् ॥

गुणं । प्रति॰ उभयत॰	–गुणस्थान की (–गुणं) अपेक्षा से (–प्रति) दोनों (एकेन्द्रिय-विकलत्रय) का
अपि॰ न॰ अस्ति T अन्तरम् ॥	–भी अंतर नहीं है (क्योंकि दोनों के मिथ्यात्व ही गुणस्थान होता है)

(१) एकेन्द्रियविकलेन्द्रियतोऽपीत्यथ। यतस्ते एकेन्द्रियविकलेन्द्रिया मिथ्यादृष्टय एव। एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणां चतुर्णां गुणस्थानान्तरासम्भवात्। पञ्चेन्द्रियाणां तु तत्सम्भवात्। मिथ्यात्वात् सासादनादीनां अन्तरं वक्ष्यते॥

एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियतः॰ अपि॰ इति॰	–(सूत्र में 'उभयतोऽपि' पाठका) एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियपने से भी ऐसा
अर्थः ।। यतः॰ ते ।। एकेन्द्रिय विकल-	–अर्थ है। क्योंकि (–यतः) वे एकेन्द्रिय जीव और विकल (दो-तीन-चार)
इन्द्रियाः ।। मिथ्यादृष्टयः ।। एव॰ चतुर्णां ॥ एकेन्द्रिय-	–इन्द्रिय वाले जीव मिथ्यादृष्टि ही हैं। क्योंकि चार एकेन्द्रिय जीव के और
विकलेन्द्रियाणां ।। गुणस्थान अन्तर-	–दो इन्द्रिय जीव तीन्द्रिय जीव-चतुरिन्द्रिय जीवों के अन्य गुणस्थान
असम्भवात् ।। तु पञ्चेन्द्रियाणां ।।	–नहीं हो सकता है। परंतु (– तु) पंचेन्द्रिय जीवों के
तत्सम्भवात्, मिथ्यात्व आद ।।	–वे (द्वितीयादि गुणस्थानान्तर) संभव होने से मिथ्यात्व आदि (गुणस्थानों) का
सासादन आदिना ।। अन्तरं ।।। वक्ष्यते ॥	=सासादन आदि (शेष गुणस्थानों) से (अग्रिम पृष्ठों में) अन्तर देखना चाहिये। सारांश यह है कि इन्द्रियों का गुणस्थानों से संयोजन करने पर अन्तर या विरह काल ऐसे है कि एकेन्द्रिय वाले जीवों से चार इन्द्रिय धारक जीवों तक के सदैव मिथ्यात्व

गुणस्थान ही रहता है अतः उन के नाना जीव के अपेक्षा से कभी विरह काल नहीं होता है। सदा उक्त चारों इन्द्रिय वाले जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में बने ही रहते हैं। पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व गुणस्थान भी होता है और सासादन आदि अयोगकेवली तक शेष तेरह गुणस्थान भी होते हैं। इन पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व गुणस्थान वाले जीवों के नाना जीव की अपेक्षा से कुछ विरह काल (= अन्तर) नहीं है क्योंकि पंचेन्द्रिय जीव भी सदा प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में बने ही रहते हैं पंचेन्द्रिय मिथ्यात्व वाले एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर है। सासादन आदि शेष तेरह गुणस्थानों का अन्तर आगे कहते हैं।

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ (२) इन्द्रियानुवादेनएकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसङ्ख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः एवमिन्द्रियं प्रत्यन्तरमुक्तम् ।

देशोनानि ॥ एकत्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥	=कुछ हीन इकतीस सागर प्रमाण (अन्तर या विरह काल) है
(२) इन्द्रिय-अनुवादेन ॥ एक-इन्द्रियाणां ॥ नानाजीव-	(२) इन्द्रियों के कथनानुसारकरि एकेन्द्रियों के अनेक जीवकी
अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥ एक-जीव-अपेक्षया ॥	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक आत्माकी अपेक्षा से
जघन्येन ॥ क्षुद्रभव-ग्रहणम् ॥	—जघन्यकरि क्षुद्रभव (का काल-श्वासके अठारहवां भागके बराबर) लिया गया है
उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥ पृथक्त्वैः ॥	—उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाण और पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे)
पूर्व कोटी, अभ्यधिके ॥	—करोड़ पूर्व अधिक है (जैसे एकजीव एकेन्द्रिय था, एकेन्द्रिय की अवस्था को छोड़ कर अन्य इन्द्रिय धारण की तो शीघ्र से शीघ्र वही जीव फिर एकेन्द्रिय हो तो श्वास के अठारहवां भाग काल के पश्चात् एकेन्द्रिय होजावेगा और यदि देरी से देरी करे तो वही जीव दो हजार सागर, तीनसे ऊपर और नौसे नीचे करोड़ पूर्व काल तक अन्य इन्द्रियों वाला होकर पश्चात् फिर एकेन्द्रियही हो जावेगा)
विकल-इन्द्रियाणां ॥ नाना जीव-अपेक्षया ॥ अन्तरं ॥	—विकलत्रय (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) तिनका नाना जीव अपेक्षा से अंतर
न अस्ति एक-जीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ क्षुद्रभव-	—नहीं है । एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि क्षुद्रभव (१/१८ श्वासकाल)
ग्रहणम् ॥ उत्कर्षेण ॥ अनन्तः ॥ कालः ॥	—लिया गया है । उत्कृष्टकरि अनन्तकाल है
असंख्येयाः ॥ पुद्गलपरिवर्ताः ॥ एवम् ॥ इन्द्रियं ॥	—[जो असंख्याते पुद्गलपरावर्तन [काल के तुल्य] है ऐसे इन्द्रियों की
प्रति ॥ अन्तरम् ॥ उक्तम् ॥	—[अर्थात् एकेन्द्रिय और विकलत्रय की] अपेक्षा से विरहकाल कहा गया है

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटिपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ शेषाणां सामान्योक्तम् ॥ (२) कायानुवादेन–पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ॥ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः ॥ वनस्पतिकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया

एक जीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ =[चार उपशमश्रेणी वालोंका] एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उत्कर्षेण ॥ सागरोपम-सहस्रं ॥ पूर्वकोटी- =उत्कृष्टकरि हजार सागर प्रमाण और तीनकरोड़ पूर्व से ऊपर

पृथक्त्वैः ॥ अभ्यधिकम् ॥ शेषाणाम् ॥ =नोकरोड़ [पूर्वसे] नीचे अधिक है । [पंचेन्द्रियों में] बचेहुये तिनका अर्थात् अपूर्वकरण क्षपक अनिवृत्तिकरण क्षपक, सूक्ष्मसांपरायक्षपक, क्षीणकषायक्षपक अयोगकेवली और सयोगकेवलिनिका [विरहकाल]

सामान्य-उक्तम् ॥ =सामान्य [प्रकरणमें पहिले] कहा हुआ [गुणस्थान सदृश] है अर्थात् चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है, उत्कृष्टकरि छह महीने हैं । एक जीवकी अपेक्षा से अंतर नहीं है । सयोग केवलियोंका नानाजीव की अपेक्षा से और एक जीवकी अपेक्षा से विरहकाल नहीं है ॥ [पृष्ठ २२५]

[२] काय अनुवादेन ॥ पृथिवी-अप्-तेज =(२) कायके कथनानुसारकरि भूमिकायिकके जलकायिकके, अग्निकायिकके

वायुकायिकानां ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ अन्तरं ॥ =वायुकायिकके नानाजीवकी अपेक्षा से अन्तर

न-अस्ति । एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ क्षुद्रभव- =नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि क्षुद्रभव ॥ श्वासका काल

ग्रहणं ॥ उत्कर्षेण ॥ अनन्तकालः ॥ असंख्येयाः ॥ =ग्रहण कियागया है । उत्कृष्टकरि अनंतकाल है सो असंख्यात

पुद्गलपरिवर्ताः ॥ वनस्पतिकायिकानां ॥ नानाजीव- =पुद्गल परिवर्तन हैं । वनस्पति कायिकोंके नानाजीवकी

अपेक्षया ॥ अन्तरं ॥ न अस्ति एकजीवं ॥ अपेक्षया ॥ =अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एकजीवकी अपेक्षा से

पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ।

पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेः। सामान्यवत्॥	=पंचेन्द्रिय जीवों में मिथ्यादृष्टिका संक्षेप (विषय में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टिका नाना जीव अपेक्षासे कुछ अन्तर नहीं है एक जीव की अपेक्षासे जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट एकसौबत्तीस सागर से कुछ हीन है
सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः॥ नाना जीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्॥	=सासादन सम्यग्दर्शनवाले और मिश्र तीसरे गुणस्थानवर्तीनिका अनेक =जीवों की अपेक्षा से संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पल्यका असंख्यातवां भाग है
एक जीवं॥ प्रति॥ जघन्येन॥ पल्योपम-असंख्येय भाग॥ च अन्तर्मुहूर्तः॥ उत्कर्षेण॥ सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटि पृथक्त्वैः॥ अभ्यधिकम्॥	=एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां =भाग और अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि एक सहस्र सागर प्रमाण (और) =पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नवसे नीचे) करोड़ पूर्वकरि अधिक है॥
असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि अप्रमत्त-अन्तानां॥ नानाजीव-अपेक्षया॥ न अस्ति॥ अन्तरम्॥ एकजीवं॥ प्रति॥ जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्तः॥ उत्कर्षेण॥ सागरोपम-सहस्रं॥ पूर्व कोटी पृथक्त्वैः॥ अभ्यधिकं॥	असंयमी =सम्यग्दर्शनवालेसे अप्रमत्त गुणस्थानवालेनितक अनेक जीवकी =अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीवकी अपेक्षासे =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि सागरोपम =हजार और पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक है।
चतुर्णां॥ उपशमकानां॥ नाना जीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्॥	चार [अपूर्वकरणसे उपशांतकषाय तक] =उपशम श्रेणीवालेनिका [अन्तर] नाना जीवकी अपेक्षासे संक्षेप [कथन] वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीनसे ऊपर नव वर्षसे नीचे है

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ॥ =(त्रस काय की अपेक्षा से) सासादन सम्यग्दृष्टि का और मिश्र गुणस्थान वालोंका
नानाजीव-अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॥ =अनेक जीवों की अपेक्षा से संक्षेप में (कथित गुणस्थान) सम (अन्तर) है (दोनों गुणस्थानोंका नानाजीव प्रति जघन्य एक समय उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवांभाग है)
एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ पल्योपम-असंख्येय = एक जीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि पल्योपम के असंख्यातवें
भागः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरो =भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि दो हजार सागर
पमसहस्रे ॥ पूर्व कोटी-पृथक्त्वैः ॥ अभि-अधिके ॥ =प्रमाण (और) तीन से ऊपर नौ से नीचे (=पृथक्त्व) क्रोड़ पूर्वकरि अधिक है ।
असंयत-सम्यग्दृष्टि आदि अप्रमत्त अंतानां ॥ =असंयमी सम्यग्दर्शनवालों से लेकर अप्रमत्तसंयमी तकनिका
नानाजीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरं ॥ एकजीवं ॥ =अनेक जीव की अपेक्षा से (कुछ) अंतर नहीं है एक जीव के
प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ =प्रति जघन्यकरि अंतर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि दो
सागरोपमसहस्रे ॥ पूर्वकोटी-पृथक्त्वैः ॥ अभि-अधिके ॥ हजार सागर प्रमाण (और) तीन नौ के बीच (=पृथक्त्व) क्रोड़ पूर्व करि अधिक है
चतुर्णां ॥ =चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय)
उपशमकानां ॥ नाना जीव-अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॥ =उपशमश्रेणीवालों का नाना जीव की अपेक्षा से संक्षेप (से कथित अंतर) (वत) है जघन्य एक समय नाना जीव प्रति है उत्कृष्ट तीन से ऊपर नौ वर्ष से नीचे है
एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ =एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥ =उत्कृष्टकरि दो हजार सागर प्रमाण (और)
पूर्व-कोटी-पृथक्त्वैः ॥ अभि-अधिके ॥ =पृथक्त्व (तीन से ऊपर नव से नीचे) क्रोड़ पूर्व अधिक है ॥

जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण असंख्येया लोकाः ॥ एवं कायं प्रत्यन्तरमुक्तम् । गुणं प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् ॥ त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् ॥

जघन्येन ॥ क्षुद्रभवग्रहणम् ॥	=जघन्यकरि क्षुद्रभव (श्वासकेकाल के बराबर अन्तर) लिया गया है ।
उत्कर्षेण ॥ असंख्येया ॥ लोका ॥	=उत्कृष्टकरि असंख्यात लोक हैं अर्थात् "जेते असंख्यात लोक के प्रदेश हैं तेते कालके समय प्रमाण हैं" सर्वार्थ सिद्धि वचनिका मुद्रित पृष्ठ १०१
एवं कायं । प्रति॰ अन्तरम् ॥ उक्तम्,॥ गुणं,॥	=इस प्रकार कायकी अपेक्षा से अन्तर कहा गया । गुणस्थान की
प्रति ॰ उभयतः ॰ अपि ॰	=अपेक्षा से दोनों (पृथिवी जल अग्नि-पवन कायिकों में और वनस्पतिकायिकानि) में भी
न ॰ अस्ति । अन्तरम् ॥	=अन्तर नहीं है (क्योंकि उनके मिथ्यात्व गुणस्थान नहीं है)
त्रस-कायिकेषु ॰, मिथ्यादृष्टे ॰,	=त्रस (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय) कायिकों में मिथ्यादृष्टी का
सामान्यवत् ॰	संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है (नाना जीवकी अपेक्षा) अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन१३२सागर है ॥

(१) गुण शब्द यथार्थ में पुल्लिंग है परन्तु यहां पर गुणस्थान के लिये स्वीकार किये है अतः गुणस्थान के स्वरूप होने से नपुंसक माना है

(२) पृथिव्यादि चतुर्णां वनस्पतिकायिकानां चान्तरं नास्ति यतः पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकास्तथा वनस्पतिकायिकाः उभयेऽपि मिथ्यादृष्टयः वर्तन्ते ॥

पृथिवी आदि-चतुर्णां ॥ वनस्पति-कायिकानां ॥ च=पृथिवी जल अग्नि-पवन (कायिकानि) चारोंका तथा वनस्पतिकायिकोंका अन्तरं ॥ न अस्ति यतः ॰ पृथिवी-अप् तेजः-वायु = नियत काल नहीं है क्योंकि भूमि (कायिक) जल (कायिक) अनल (कायिक) पवन कायिकाः । तथा॰ वनस्पतिकायिकाः ॥ उभये ॥ अपि = कायिक और (=तथा) वनस्पति कायिक, दोनों (पृथिव्यादि चार और वनस्पति) में ही मिथ्या दृष्टयः वर्तन्ते ।

मिथ्यादर्शनवाले जीव होते हैं अर्थात् पृथिवीकायिक,जलकायिक,अग्नि कायिक पवन कायिक और वनस्पतिकायिकों में गुणस्थानकी अपेक्षासे कुछ अन्तर नहीं है क्योंकि सदैव इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही वर्तता है अथवा होता है ॥

एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च सामान्यवत्॥ (५) वेदानुवादेन-स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं। उत्कर्षेण पंचपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि॥

(सासादन सम्यग्दृष्टी और मिथ्यगुणस्थान वाले मन-वचन-काय योगवाले की)

एक जीवं ॥ प्रति॰ न अस्ति-अन्तरं ॥॥ चतुर्णां ॥ =एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है॥ चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्म साम्पराय उपशान्तकषाय)

उपशमकानां ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सामान्यवत्॰ =उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्ष से ऊपर नौसे नीचे है (पृ० २२४)

एक जीवम् ॥ प्रति॰ न॰ अस्ति अन्तरम्॥॥ =एक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है

चतुर्णाम् ॥ =चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-क्षीणकषाय)

क्षपकाणाम् ॥ च॰ अयोगकेवलिनाम् ॥ =क्षपकश्रेणी वालों का और (=च) अयोगकेवलियों की (अन्तर)

सामान्यवत्॰ =संक्षेप (प्रकरण) में (पूर्व कथित गुणस्थान) तुल्य है अर्थात् नानाजीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीवकी अपेक्षासे कुछ विरहकाल नहीं है [पृष्ठ २२५]

[५] वेद-अनुवादेन ॥ स्त्री वेदेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ =[५] वेदकी अपेक्षा से स्त्री वेदमें मिथ्या दृष्टीका-

नाना-जीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरं ॥॥ एक जीवं ॥ =अनेक जीवकी अपेक्षा से अंतर नहीं है। एक जीवकी

प्रति॰ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ उत्कर्षेण ॥ =अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि

देशोनानि ॥॥ पञ्चपञ्चाशत् ॥ पल्योपमानि ॥॥ =कुछकम पचपन पल्यके तुल्य है॥

शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत् ॥ (४) योगानुवादेन–कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ।

शेषाणां। पञ्चेन्द्रियवत्॥ —[त्रसकायों में] बचे हुये [गुणस्थानवर्ती] निका अर्थात् चार क्षपक श्रेणीवालोंका, सयोगकेवलियोंका और अयोगकेवलियोंका [अन्तर] [पहिले कहा हुआ] पञ्चेन्द्रिय सदृश है अर्थात् पंचेन्द्रियोंका अंतर पृष्ट २३५ के अनुसार संक्षेप में कथित गुणस्थान सदृश है इसलिये शेष उपर्युक्त त्रसकायोंका अन्तर गुणस्थान सदृश है सो अंतर पृष्ट २२५ के अनुकूल चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे एक समय है उत्कृष्ट करि छः मास है। एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है सयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है॥

[४] योग-अनुवादेन॥ काय-वाङ्-मानस योगिनां॥ मिथ्यादृष्टि असंयत-सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत-प्रमत्त अप्रमत्त-सयोगकेवलिनां॥ नानाजीव॥ अपेक्षया॥ एकजीव अपेक्षया॥ च अंतरम्॥ न अस्ति। सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः॥ नानाजीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्॥ — [४] योगकी अपेक्षा से काय-वचन-मनो योगी मिथ्यादर्शनवाले, असंयमी सम्यग्दर्शनवाले, देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्तसंयमी, सयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और [=च] एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है। सासादन सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका अनेकजीवकी विवक्षासे संक्षेप (जिसमें कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृ० २२२)॥

शेषाणां पञ्चेन्द्रियवत् ॥ (४) योगानुवादेन—कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ।

शेषाणां। पञ्चेन्द्रियवत्॥	=[त्रसकायों में] बचे हुये [गुणस्थानवर्ती] निका अर्थात् चार क्षपक श्रेणीवालोंका, सयोगकेवलियोंका और अयोगकेवलियोंका [अन्तर] [पहिले कहा हुआ] पञ्चेन्द्रिय सदृश है अर्थात् पंचेन्द्रियोंका अंतर पृष्ट २१५ के अनुसार संक्षेप में कथित गुणस्थान सदृश है इसलिये शेष उपर्युक्त त्रसकायोंका अन्तर गुणस्थान सदृश है सो अंतर पृष्ट २२५ के अनुकूल चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे एक समय है उत्कृष्ट करि छः मास है। एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है सयोग केवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है॥
[४]-योग-अनुवादेन। काय-वाङ्-मानस योगिनां॥	[४]योगकी अपेक्षा से काय-वचन-मनो योगी
मिथ्यादृष्टि असंयत-सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत-प्रमत्त अप्रमत्त-सयोगकेवलिनां॥ नानाजीव-अपेक्षया॥ एकजीव अपेक्षया॥ च अंतरम्॥ न अस्ति।	मिथ्यादर्शनवाले, असंयमी सम्यग्दर्शनवाले, देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्तसंयमी, सयोगकेवलियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे और [=च] एकजीवकी अपेक्षासे अंतर नहीं है।
सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः नानाजीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्॥	सासादन सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवर्तीनिका अनेकजीवकी अपेक्षासे संक्षेप (विषयमें कथित (गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृ० २२३)

एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम्। चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलीनां च सामान्यवत्॥ (५) वेदानुवादेन-स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पंचपञ्चाशत्पल्योपमानि देशोनानि॥

	(सासादन सम्यग्दृष्टी और मिश्रगुणस्थान वाले मन-वचन-काय योगवाले की)
एक जीवं ॥ प्रति॥ न अस्ति-अन्तरं ॥॥ चतुर्णां ॥	=एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है॥ चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्म साम्पराय-उपशान्तकषाय)
उपशमकानां ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥॥ सामान्यवत्॥	=उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्ष से ऊपर नौसे नीचे है (पृ०२२४)
एक जीवम् ॥ प्रति॥ न॥ अस्ति ॥ अन्तरम्॥॥	=एक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है
चतुर्णाम् ॥	=चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-क्षीणकषाय)
क्षपकाणाम् ॥ च॥ अयोगकेवलिनाम् ॥	=क्षपकश्रेणी वालों का और (=च) अयोगकेवलियों की (अन्तर)
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरण) में (पूर्व कथित गुणस्थान) तुल्य है अर्थात् नानाजीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीवकी अपेक्षासे कुछ विरहकाल नहीं है [पृष्ठ २२५]
[५] वेद-अनुवादेन ॥ स्त्री वेदेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥	=[५] वेदकी अपेक्षा से स्त्री वेदमें मिथ्या दृष्टीका ॥
नाना-जीव-अपेक्षया ॥॥ न अस्तिअन्तरं ॥॥ एक जीवं ॥	=अनेक जीवकी अपेक्षा से अंतर नहीं है। एक जीवकी
प्रति॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण	=अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि
देशोनानि ॥॥ पञ्चपञ्चाशत् ॥॥ पल्योपमानि ॥॥	=कुछहीन पचपन पल्यके तुल्य है॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम्॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम्॥ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण पल्योपमशतपृथक्त्वम्॥ द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया

सासादन सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः॥	=(स्त्रीवेदी) सासादनसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका (अन्तर)
नाना जीव अपेक्षया॥ सामान्यवत्॥	=अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप में (कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२३)
एकजीवं॥ प्रति॥ जघन्येन॥ पल्योपम असंख्येय	=एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भाग॥ च अन्तर्मुहूर्त॥ उत्कर्षेण। पल्योपम	=भाग और अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि पल्योपम
शत-पृथक्त्वम्॥॥ असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि	=तीनसौ से ऊपर और नौसौ के भीतर है। असंयत सम्यग्दृष्टी से
अप्रमत्त अन्तानां॥ नाना जीव-अपेक्षया अन्तरं॥॥	=अप्रमत्त संयमी तकनिका अनेक जीवकी अपेक्षासे अंतर
न-अस्ति एकजीवं॥ प्रति जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्तः॥	नहीं है। एकजीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण॥ पल्योपम-शत पृथक्त्वम्॥॥	उत्कृष्टकरि पृथक्त्व शत (तीनसौसे ऊपर नौसौसे न्यून) पल्योपम है
द्वयोः॥ उपशमकयोः॥ नानाजीव अपेक्षया॥	दो (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण) उपशमश्रेणी वालोंका नानाजीव प्रति
सामान्यवत्॥	संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) तुल्य (अन्तर) है अर्थात् नानाजीव प्रति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन और नौ वर्ष के भीतर है
एकजीवम्॥ प्रति॥ जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्तः॥	एकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण॥ पल्योपम-शत-पृथक्त्वम्॥॥ द्वयोः॥	उत्कृष्टकरि तीनसौ पल्यसे ऊपर नौसौसे नीचे है (स्त्रीवेदी) दो
क्षपकयोः॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥॥	(अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण) क्षपकश्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षा से

जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् ॥ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं ।

जघन्येन ।। एकः ।। समयः ।। उत्कर्षेण ।। वर्ष	=जघन्यकरि एक समय है । उत्कर्षकरि वर्ष
पृथक्त्वम्-।।। एकजीवं ।। प्रति॰अन्तरम् ।।।	=तीन से-ऊपर नौ से तीन है । एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल
न॰ अस्ति T पुंवेदेषु ।। मिथ्यादृष्टेः ।। सामान्य-वत्॰	=नहीं है । पुरुषवेद में मिथ्यादृष्टी का संक्षेप (में पूर्व-उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टी पुरुषवेदी का नाना जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है एक जीव के लिए जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ हीन एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है (देखो पृष्ठ २२१)
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ।।	=(पुरुषवेदमें) सासादन गुणस्थान और मिश्र गुणस्थान वालों का (अन्तर)
नाना जीव-अपेक्षया।। सामान्यवत्॰	=अनेक जीव की अपेक्षा से संक्षेप (में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग है (पृ० २२२, २२३)
एकजीवं।। प्रति॰जघन्येन।। पल्योपम	=(पुरुषवेदी सासादन मिश्रवाले का) एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्योपम के
असंख्येय-भागः।। च अन्तर्मुहूर्तः।। उत्कर्षेण।।	=असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (अन्तर)
सागरोपम-शतपृथक्त्वम् ।।।	=तीन सौ सागर प्रमाण से अधिक और नौ सौ से नीचे (शतपृथक्त्व) है
असंयतसम्यग्दृष्टि आदि-अप्रमत्त-अन्तानां।।	=(पुरुषवेदी) असंयमी सम्यग्दर्शनवाले से अप्रमत्त गुणस्थान तकनिका
नाना-जीव-अपेक्षया।। न॰ अस्ति T अन्तरम् ।।।	=अनेक जीव की विवक्षा से विरह काल नहीं है
एकजीवं।। प्रति॰ जघन्येन।। अन्तर्मुहूर्तः।।	=एकजीवकी अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ शेषाणासामान्यवत् ॥

(६) कषायानुवादेन – क्रोधमानमायालोभकषायाणामिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्त्युपशमकान्ताना मनोयोगिवत् ॥

उपशान्तकषायस्य ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ सामान्यवत्

=(वेद वर्जितों में) उपशान्तकषाय (ग्यारहवां) गुणस्थानवालेका अनेक जीव की =अपेक्षासे (विरहकाल) संक्षेप (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्ववर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)

एक जीवं ॥ प्रति नः अस्ति T अन्तरम् ॥

=एक जीवके लिये विरहकाल अथवा अन्तर नहीं है

शेषाणां ॥

=(वेदरहितोंमें) शेष या बचेहुये (क्षपकश्रेणीके अनिवृत्ति नवम गुणस्थान के छहभागों में से अन्तके या पिछले तीन, वेदरहित भागवाले–सूक्ष्म साम्पराय क्षपक, क्षीणकषाय क्षपक, सयोगकेवलि और अयोगकेवलि) तिनका (विरहकाल)

सामान्यवत्

=संक्षेप (प्रसंग में पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् चारक्षपक श्रेणीवालों का और अयोगकेवलियों का नानाजीवकी अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छहमास है एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है सयोगकेवलियों का नानाजीव अपेक्षा से और एक जीव प्रति अन्तर नहीं है

(६) कषाय-अनुवादेन ॥ क्रोध-मान-माया लोभ-कषायाणां । मिथ्यादृष्टि-आदि-अनिवृत्ति-उपशमक-अन्तानां ॥ मनः (=मनस) योगिवत्

=(६) कषायके कथनानुसारकरि-क्रोध-मान-माया (=कपट) लोभ =कषायोंवालों का मिथ्यादर्शनवाले से अनिवृत्तिकरण उपशमवाले =(नवमां गुणस्थान) पर्यन्तिका मनोयोगी सदृश है अर्थात

द्वयो क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण संवत्सर सातिरेक ॥ केवललोभस्य सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ क्षपकस्य तस्य सामान्यवत् ॥

(क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) मिथ्यादृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि (चौथा) संयतासंयत (पांचवां) प्रमत्त (छठा) अप्रमत्त (सातवां) गुणस्थानवालोंका नानाजीव अपेक्षासे और एकजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । (चार कषायवाले) सासादनसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवाले (दोनों) का अनेक जीवके लिये जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२१) एक जीवकी अपेक्षासे (इन दोनों गुणस्थानोंमें) अन्तर नहीं है । (क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) अपूर्वकरण उपशमक और अनिवृत्तिकरण उपशमकका अन्तर अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन वर्षसे ऊपर और नौ वर्षसे नीचे है (पृष्ठ २२४) एकजीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है (पृष्ठ २१८,२१९)

द्वयो ॥ =(क्रोध-मान-माया-लोभ कषायवाले) दो (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण)

क्षपकयोः॥ नाना-जीव-अपेक्षया॥ जघन्येन॥ =क्षपक श्रेणीवालोंका अनेकजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि

एकसमय उत्कर्षेण॥ संवत्सर॥ स अतिरेक॥ =एक समय है । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक एक बरस है

केवल-लोभस्य ॥ सूक्ष्मसाम्पराय उपशमकस्य॥ =केवल (संज्वलन) लोभकषायधारी सूक्ष्मसाम्पराय उपशम श्रेणीवालेका

नाना-जीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्॥ =अनेकजीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रकरणमें कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीनसे ऊपर नौसे नीचे वर्ष है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं॥ प्रति न अस्ति अन्तरम्॥॥ तस्य॥ =एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । तिस (सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान)

क्षपकस्य॥ सामान्यवत्॥ =क्षपक श्रेणीवालेका संक्षेप (प्रकरणमें कहा हुआ गुणस्थान) वत् है अर्थात्

अकषायेषु उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्॥ शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत्॥ [७] ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया

अकषायेषु ।। उपशान्तकषायस्य । नानाजीव-अपेक्षया । सामान्यवत् ॥

एक जीवं ।। प्रति ॥ न अस्ति अन्तरम् ।।। शेषाणां ।। त्रयाणां ।।

सामान्यवत् ॥

[७] ज्ञान अनुवादेन ।। मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभंग ज्ञानिषु ।। मिथ्यादृष्टेः ।। नाना जीव अपेक्षया ।।। च एक जीव अपेक्षया ।।। न ॥ अस्ति ॥ अन्तरम्।।।। सासादनसम्यग्दृष्टेः ।। नानाजीव-अपेक्षया ॥

जघन्य एक समय उत्कृष्ट छमास है । एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ।
–कषाय वर्जितनि में उपशांत कषायगुणस्थानवालेका अनेक जीवकी
–अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वकथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है
अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)
–एक जीवके लिये वियोगकाल नहीं है । बचे हुए अथवा अवशेष
–तीन (क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानवर्ती तेरहवां गुणस्थान में सयोग-केवली और चौदह गुणस्थानविषें अयोग केवली) तिनका
–(विरहकाल) संक्षेप (प्रसगमें पहले कथित गुणस्थान) वत् है
अर्थात् क्षीणकषाय (बारहवां) गुणस्थान वालोंका और अयोग केवलियों का नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट छैमास है । इन्हीं गुणस्थानों में एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है । सयोग केवलियों का नानाजीवकी अपेक्षासे और एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है (पृ० २२५)
–[७] ज्ञानके अनुवादकरि मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान, कुअवधि–
–ज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे और (–च)
–एक जीव की अपेक्षा से विरहकाल नहीं है
–(उक्तीन कुज्ञानियोंमें) सासादनसम्यग्दृष्टिका [illegible]

सामान्यवत् ॥ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिषु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नाना जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतस्य नाना जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णाम्

सामान्य-वत् ॥	=संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्यकरि एक समय है उत्कर्षकरि पल्यका असंख्यातवांभाग है पृ० २२३
एक जीवं ॥ प्रति ॥ न ॥ अस्ति ॥ अन्तरम् ॥॥	=एक जीवकी अपेक्षा (=प्रति) विरहकाल वा अन्तर नहीं है
आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानिषु ॥ असंयत-	=मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानियों में अविरत
सम्यग्दृष्टेः ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥॥	=सम्यग्दृष्टीका अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल नहीं है
एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ पूर्वकोटी ॥ देशोना ॥ संयतासंयतस्य ॥	उत्कर्षकरि कुछ हीन करोड़ पूर्व है । (उक्त तीनों ज्ञानियोंमें) देश संयमीका
नाना जीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥॥ एकजीवं ॥	=अनेक जीव की अपेक्षा से अन्तर (विरहकाल) नहीं है । एक जीवकी
प्रति॰ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ उत्कर्षेण ॥	=अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
स अतिरेकाणि ॥॥ षट् षष्टि-सागरोपमाणि ॥॥ प्रमत्त	=कुछ अधिक छासठि सागर प्रमाण है । (उक्त तीनोंज्ञानियों में) प्रमत्त
अप्रमत्तयोः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ अन्तरम् ॥॥	=और अप्रमत्त गुणस्थानवालोंका नानाजीव की अपेक्षा से अन्तर
न अस्ति एकजीवं ॥ प्रति॰ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=नहीं है । एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ सातिरेकाणि ॥॥ त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि ॥॥	=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर प्रमाण है
चतुर्णाम् ॥	=(मति-श्रुत अवधि ज्ञानियों में) चार (आठवां अपूर्वकरण, नवमां
	=अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसाम्पराय),(ग्यारहवां उपशांतकषाय गुणस्थान)

उपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण षट्षष्टि सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णां क्षपकाणा सामान्यवत् । किं तु अवधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समय । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । मन पर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तं ॥

उपशमकानाम् ।। नाना-जीव अपेक्षया ।।। सामान्यवत्॥ =उपशम श्रेणीवर्तीयों का नाना जीवकी अपेक्षा से संक्षेप (में उक्त) सम है अर्थात जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है (पृष्ठ २२४)

एकजीवं ।। प्रति॥ जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण ।=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि

स-अतिरेकाणि ।।। षट्षष्टि-सागरोपमाणि ।।। =कुछ अधिक छ्यासठि सागर प्रमाण है

चतुर्णां ।। क्षपकाणां ।। =(मति श्रुतज्ञानियोंमें) चार क्षपकश्रेणी (आठवां अपूर्वकरण नवमां अनिवृत्तिकरण, दसवां सूक्ष्मसाम्पराय, बारहवां क्षीणकषाय गुणस्थान) वालों का

सामान्यवत्॥ =(विरहकाल) संक्षेप (प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात अनेक जीव कीअपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीव की अपेक्षा से कुछ विरह काल नहीं है (देखो पृष्ठ २२५)

किन्तु॥ अवधिज्ञानिषु ।। नाना-जीव- =परन्तु अवधिज्ञानियों में (क्षपक श्रेणियोंका विरह काल)अनेक जीवकी

अपेक्षया ।।। जघन्येन ।। एकः ।। समय ।। उत्कर्षेण ।। =अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि

वर्ष-पृथक्त्वम् ।।। एकजीव ।। प्रति न अस्ति अन्तरम् =पृथक्त्व (मध्य तीन और नव) वर्ष है एक जीवकी अपेक्षास अन्तर नहीं है

मनः पर्यय-ज्ञानिषु ॰। प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ॰। =मनः पर्यय ज्ञानियों में प्रमत्तसंयमी और अप्रमत्तसंयमियों का

नानाजीव-अपेक्षया ।। न अस्ति अन्तरम् एकजीवं ।। =अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ एक जीव की

प्रति॥ जघन्यम् ।।। उत्कृष्टः ।। च अन्तर्मुहूर्तः ।। =अपेक्षासे (= प्रति) जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है

चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिवत् ॥ द्वयो केवलज्ञानिनो सामान्यवत् ॥ (८) संयमानुवादेन– साम.यिकच्छेदोपस्थापन

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानां ॥	=(मन पर्यय ज्ञानियों में) चार उपशम श्रेणी (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण
नानाजीव-अपेक्षया ॥	=सूक्ष्मसाम्पराय उपशांतकषाय गुणस्थान) वर्तियों का अनेक जीव की अपेक्षा से
सामान्य-वत्*	=शेष (प्रकरण में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (विरहकाल) है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्ववर्ष है (पृष्ठ २२४)
एकजीवं ॥ प्रति* जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ॥ पूर्वकोटी ॥ देशोना ॥ चतुर्णां ॥	=उत्कृष्टकरि कुछ हीन करोड़ पूर्व है । (मनः पर्यय ज्ञानियों में) चार
क्षपकाणाम् ॥	=क्षपकश्रेणी (अपूर्वकरणसे सूक्ष्मसाम्परायतक और क्षीणकषाय गुणस्थान) वालों का
अवधिज्ञानि-वत्*	=(विरह काल) अवधिज्ञानियों के सदृश है अर्थात् अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्ववर्ष है एक जीव प्रति अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २४८)
द्वयोः ॥ केवलज्ञानिनोः ॥ सामान्य-वत्*	=दो (सयोग और अयोग) केवलज्ञानियों का सामान्य (में उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीव प्रति कुछ विरह काल नहीं है । सयोग केवलियोंका नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)
[८] संयम अनुवादेन ॥ सामायिक—च्छेदोपस्थापन-	=(८) संयम के कथनानुसारकरि सामायिक और च्छेदोपस्थापन

उपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण षट्षष्टि सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णां क्षपकाणा सामान्यवत् । किं तु अवधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समय । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । मन पर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तं ॥

उपशमकानाम् ।। नाना-जीव अपेक्षया ।।। सामान्यवत्*	=उपशम श्रेणीवर्तीयों का नाना जीवकी अपेक्षा से संक्षेप (में उक्त) सम है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है (पृष्ट २२४)
एकजीवं ।। प्रति* जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण ।	=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि
स-अतिरेकाणि ।।। षट्षष्टि-सागरोपमाणि ।।।	=कुछ अधिक छ्यासठि सागर प्रमाण है
चतुर्णां ।। क्षपकाणां ।।	=(प्रति गुणस्थानियोंमें) चार क्षपकश्रेणी (आठवां अपूर्वकरण नवमां अनिवृत्तिकरण, दशवां सूक्ष्मसाम्पराय, बारहवां क्षीणकषाय गुणस्थान) वालों का
सामान्यवत्*	=(विरहकाल) संक्षेप (प्रकरण में पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अनेक जीव कीअपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीव की अपेक्षा से कुछ विरह काल नहीं है (देखो पृष्ठ २२५)
किन्तु* अवधिज्ञानिषु ।। नाना-जीव-	=परन्तु अवधिज्ञानियों में (क्षपक श्रेणियोंका विरह काल)अनेक जीवकी
अपेक्षया ।।। जघन्येन ।। एकः।। समयः।। उत्कर्षेण।।	=अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि
वर्ष-पृथक्त्वम् ।।। एकजीवं ।। प्रति न अस्ति अन्तरम्	=पृथक्त्व (मध्य तीन और नव) वर्ष है एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है
मनः पर्यय-ज्ञानिषु ।। प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ।।	=मन पर्यय ज्ञानियों में प्रमत्तसंयमी और अप्रमत्तसंयमियों का
नानाजीव-अपेक्षया ।। न अस्ति अन्तरम् एकजीवं ।।	=अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है ।। एक जीव की
प्रति* जघन्यम् ।।। उत्कृष्टः ।। च अन्तर्मुहूर्तः ।।	=अपेक्षासे (= प्रति) जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है

चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिवत् ॥ द्वयोः केवलज्ञानिनो सामान्यवत् ॥ (८) संयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापन

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानां ॥ नानाजीव-अपेक्षया ॥ सामान्य वत्	=(मन पर्यय ज्ञानियों में) चार उपशम श्रेणी (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण =सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय गुणस्थान) वर्तियों का अनेक जीव की अपेक्षा से =संक्षेप (प्रकरण में पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (विरहकाल) है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्ववर्ष है (पृष्ठ २२४)
एकजीवं ॥ प्रति ॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तं ॥ उत्कर्षेण ॥ पूर्वकोटी ॥ देशोना ॥ चतुर्णां ॥ क्षपकाणाम् ॥ अवधिज्ञानि-वत्	=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है =उत्कृष्टकरि कुछ हीन करोड़ पूर्व है । (मन पर्यय ज्ञानियों में) चार =क्षपकश्रेणी (अपूर्वकरणसे सूक्ष्मसाम्परायतक और क्षीणकषाय गुणस्थान) वालों का =(विरह काल) अवधिज्ञानियों के सदृश है अर्थात् अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्ववर्ष है एक जीव प्रति अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २४८)
द्वयोः ॥ केवलज्ञानिनोः ॥ सामान्य-वत्	=दो (सयोग और अयोग) केवलज्ञानियों का सामान्य (में उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है एक जीव प्रति कुछ विरह काल नहीं है । सयोग केवलियोंका नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से कुछ भी अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)
[८] संयम अनुवादेन ॥ सामायिक—च्छेदोपस्थापन-	=(८) संयम के कथनानुसारकरि सामायिक और च्छेदोपस्थापन

शुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः ॥ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । द्वयोः क्षपकयोः सामान्यवत् ॥

(१) शुद्धिसंयतेषु ॥ प्रमत्त अप्रमत्तयो ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥ न+अस्ति अन्तरम् ॥ एकजीवं ॥	= शुद्धिसंयमियों में प्रमत्त (छठा) अप्रमत्त (सातवां) गुणस्थानवालोंका अनेक = जीवकी अपेक्षा से विरहकाल (अन्तर) नहीं है एकजीव के
प्रति+जघन्यम् ॥ उत्कृष्ट ॥ च+अन्तर्मुहूर्तो ॥	=लिये जघन्य और (-च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
द्वया ॥ उपशमकयोः ॥	= (सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमियों में) दो उपशमश्रेणी (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान) वालों का (विरहकाल)
नानाजीव ॥ अपेक्षया ॥ सामान्यवत्	=नाना जीव की विवक्षासेसंक्षेप (विषय में उक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व और नौ वर्ष के है (पृष्ठ २२४)
एक-जीव ॥ प्रति+जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=एक जीव कीअपेक्षासे (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण । पूर्वकोटी ॥ देशोना ॥	= उत्कृष्टकरि कुछहीन (एक) करोड़ पूर्व है । (उपर्युक्त दो शुद्धिसंयमियों में)
द्वय ॥ क्षपकयोः ॥	=दो क्षपक श्रेणि (अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान) वर्तियों का
सामान्यवत्	=(वियोगकाल) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव केलिये जघन्य एकसमय है उत्कृष्ट छै मास है । एकजीवके लिये अन्तर नहीं है

(१)सामायिक और छेदोपस्थापन संयम प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में होते हैं । परिहार विशुद्धि संयम प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानों में सूक्ष्म साम्पराय संयम दशवां सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में और यथाख्यात संयम उपशांतकषायसे अयोग केवलि तक चार गुणस्थानों में होता है ।

परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तं ॥ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषूपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ तस्यैव क्षपकस्य सामान्यवत् ॥ यथाख्याते अकषायवत् ॥

परिहार विशुद्धिसंयतेषु। प्रमत्त अप्रमत्तयोः। =परिहारविशुद्धिसंयमियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तियोंका

नाना जीव अपेक्षया॥ न॰ अस्ति अन्तरम्॥ =अनेक जीवकी विरहास विरहकाल या अन्तर नहीं है।

एकजीवं प्रति जघन्यम्॥ उत्कृष्टं॥ अन्तर्मुहूर्तं =एकजीवकी अपेक्षा (=प्रति) जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु। उपशमकस्य॥ =सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमियोंमें उपशमश्रेणीवालेका (विरहकाल)

नानाजीव-अपेक्षया॥ सामान्यवत्॰ =अनेकजीव प्रति संक्षेप (विषयमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्ववर्ष है (देखो पृष्ठ २२४)

एकजीवं प्रति॰ न॰ अस्ति अन्तरम्॥ =एकजीवकी अपेक्षा (=प्रति=अपेक्षासे) वियोगकाल नहीं है

तस्य। क्षपकस्य॥ एव॰ =तिस (सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमी) क्षपकश्रेणी वालेका ही (अन्तर)

सामान्य-वत्= =संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव प्रति जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छै मास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है

यथाख्याते। अकषायवत्॰ =यथाख्यातसंयममें (विरहकाल) कषाय (वर्जित) (उपशांतकषाय-क्षीणकषाय सयोगकेवली अयोगकेवली) निके समान है अर्थात् कषाय रहितमें उपशांतकषायवालेका नानाजीव प्रति गुणस्थानवत् है (पृष्ठ २४६) (=जघन्य अन्तर एक समय है। उत्कृष्ट अन्तर पृथक्त्ववर्ष है (पृष्ठ २२४) एकजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥

स्यतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ असंयतेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत् ॥

(अकषायेषु) शेषाणां त्रयाणां सामान्य (गुणस्थान) वत् (पृष्ठ २४६) इस वाक्य का भावार्थ यह है कि कषायरहितनिमें क्षीणकषाय गुणस्थानवर्तीका और अयोग केवलियों का (अन्तर)नाना जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है । उपर्युक्त दो गुणस्थानों में एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है । कषाय रहितनि में सयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षा से और एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है (देखो पृष्ठ २२५) ॥

संयतासंयतस्य ।। नाना-जीव-अपेक्षया ।।। च
एकजीव अपेक्षया न-अस्ति अन्तरम् असंयतेषु ॥
मिथ्यादृष्टेः नानाजीव-अपेक्षया न अस्ति अन्तरम् ॥।
एकजीवं ।। प्रति॰ जघन्येन , अन्तर्मुहूर्तः ।।
उत्कर्षेण ; त्रयस्त्रिंशत् ।।। सागरोपमाणि देशोनानि
शेषाणां ; त्रयाणां ।।
सामान्यवत्॰

=संयमासंयमी (पांचवां गुणस्थान वाले) का अनेक जीवकी अपेक्षासे और (=च)
=एक जीवकी अपेक्षा से विरह काल अथवा अन्तर नहीं है । असंयमियों में
=मिथ्यादृष्टीका अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है
=एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
=उत्कृष्टकरि कछु हीन तेतीस सागर प्रमाण है
=(असंयमियों में) बचे हुये तीन (सासादन मिश्र-असंयत गुणस्थान वाले) तिनका
=(वियोगकाल=अन्तर) संक्षेप (प्रकरण में प्रथम कहा हुआ गुणस्थान) सम है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टी का अन्तर अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है । एक जीवके लिये जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवांभाग है उत्कृष्ट कछुहीन अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है (पृष्ठ २२३) मिश्रगुणस्थानवर्ती का अन्तर (असंयमियों में) नाना जीवकी अपेक्षा से